श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत

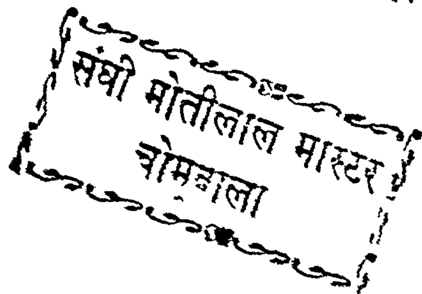
समयप्राभृत

की

श्रीमदाचार्य अमृतचंद सूरिकृत संस्कृत टीका तथा



पण्डित श्रीजयचन्द्रजीकृत



आत्मख्याति-वचनिका सहित.

प्रकाशक—नेमीचंद महावीरप्रसाद पांड्या

४१ शिवतल्ला स्ट्रीट, बड़ाबाजार कलकत्ता।

प्रति १०००]　　वीर निर्वाण सं० २४६८　　[न्योछावर—स्वपर कल्याण

मुद्रक-
श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ
आनरेरी मंत्री—भा० जैन-सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था
जैन सिद्धांत प्रकाशक (पवित्र) प्रेस
नं० ७ वैसाख स्ट्रीट, कलकत्ता।



ग्रन्थ मिलनेका पता—
सेठ चैनसुख गंभीरमल पांड्या
कुचामन (मारवाड़)

स्वर्गीय श्रीमान् जाति-शिरोमणि दानवीर सेठ चैनसुखजी पांड्याकी

संक्षिप्त जीवनी

आपका जन्म मरुदेश कुचामन (जोधपुर) में आजसे ६७ वर्ष पहले हुआ था। वहीं आपके शैशवकालके दिन बीते थे। आपके पिताजीका नाम था सेठ चन्दरलालजी। आप तीन भाई थे और आप ही सबसे ज्येष्ठ थे। आपसे छोटे श्रीमान् जातिशिरोमणि सेठ गंभीरमलजी हैं और सबसे छोटे स्वर्गीय सेठ मदनचन्दजी पाण्ड्या थे, जो अपने काका सेठ छोगालालजी पाण्ड्याके गोद गये थे। आपके पिता लक्ष्मीके लाड़ले नहीं थे, किंतु समाजमें उनका स्थान ऊंचा था और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते थे।

आप अपने बाल्यकालके ९ वर्ष ही पूरे कर पाये कि आपको अपनी जन्मभूमि छोड़कर कूचबिहार जाना पड़ा। आपने अपने काका को संरक्षकतामें व्यापारिक शिक्षा पाई और फिर १० वर्ष बाद कलकत्ता आकर दलालीका काम आरम्भ किया। सफलता आपकी अनुगामिनी हो चली और अपनी योग्यता दिखाकर आप 'सेठ हणुतमल हरखचन्द' फ़र्म में हिस्सेदार हो गये और विपुल धन संचय किया। संवत् १९६२ से हिस्सेदारीके कामको छोड़ आपने स्वतंत्र कार्य संभाला और अपने फर्मका नाम 'चैनसुख गंभीरमल' रखा। कुछ दिन बाद आपके सबसे लघु भ्राता स्व० सेठ मदनचन्द जी इस फर्मसे अलग हो गये और उन्होंने अपने काकाके पुत्र सेठ प्रभुलालजीके साथ एक नया फर्म 'मदनचंद प्रभुलाल' के नामसे स्थापित किया। यह फर्म सं० १९८३-८४ तक इस नामसे रहा। फिर सेठ प्रभुलालजीके अलग होनेपर फ़र्म सेठ छोगालाल मदनचंदके नामसे हुआ। आजकल यही फर्म उन्नति रूपमें "मदनचंद नेमीचंद" के नामसे प्रसिद्ध है। 'चैनसुख गंभीरमल' फर्म १९९५ तक इसी नामसे बराबर रहा। बादमें दोनों भाइयोंके दो फर्म हो गये और आपके फर्मका नाम तबसे 'चैनसुख

महावीरप्रसाद' चला आता है; और आपके भ्राता सेठ गंभीरमलजीके फर्म 'गंभीरमल महावीरप्रसाद' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

आपके दो विवाह हुये। पहले ब्याहका सुख तो दो वर्ष भी न भोग पाये; हां, दूसरे ब्याह का सुख सं० १९८७ तक रहा। उनके कई पुत्र और पुत्रियाँ हुईं किंतु कराल कालसे यह न देखा गया। वर्तमानमें तीन पुत्रिय हैं, तीनों ही समृद्धि-सम्पन्न घरानोंमें सम्बन्धित हैं, और अखण्ड सुखसम्पन्न हैं। सेठ गंभीरमलजी पाण्ड्याके चार पुत्ररत्न हैं जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र नेमीचंद पाण्ड्या (मैं) सेठ मदनचंदजीके, पुत्र न होनेसे, गोद ले लिये गये। द्वितीय पुत्र महावीरप्रसाद पाण्ड्या स्व० दानवीर जाति-शिरोमणि श्रीमान् सेठ चैनसुखजीके गोद गये। तृतीय और चतुर्थ पुत्र सुमेरमल और पूनमचंद पूज्य पिताश्रीकी संरक्षतामें हैं। आपका पौत्र इस समय लगभग २ वषका है।

आपने अपने पौरुषसे अतुल सम्पत्ति जोड़ी और वैसे ही खर्च भी की। आप समाजके माने हुए नेता थे। इसीसे आपकी बातको कोई टालता न था। आपका निर्णय विरोधी-दलवाले भी शिरोधार्य करनेमें अपना सौभाग्य समझते थे। क्या छोटा क्या बड़ा, सभी आपके पास समान स्नेह पाते थे। आपने गरीबी देखी थी, इससे आप गरीबोंके हृदयको टटोलनेकी क्षमता रखते थे, आपकी गुप्त सहायताने न जाने कितने असहायों और निर्धनोंको संकटसे बचाया है।

आपकी विपुल संपत्तिसे या बड़े-बड़े भवनोंसे मोहित हो लोग आपके प्रेमी नहीं बने थे; किन्तु वे बने थे आपके सद्गुणोंसे। आपकी सदा-शांत प्रकृति कभी भूलनेकी वस्तु नहीं है। आपका हंसमुख स्वभाव दुःखीसे दुःखीको भी ढाड़स देता था। आपका शिष्ट मिष्ट भाषण सुननेवालोंको मुग्ध कर लेता था। और आप थे अपने वचनके सच्चे धनी। जिसको जो कुछ वचन दिया उसे निवाहा अवश्य, फिर चाहे कितनी ही आपत्तियां क्यों न उमड़ आवें। और सबसे कीमती रत्न आपके पास था आपका सुन्दर चारित्र। वैसा दीपक लेकर ढूंढ़नेसे भी मिलना दुर्लभ है। इसी चारित्रके कारण आप सदा अपनी कायाको निरोग रख सके। तम्बाकू, पान-सुपारी तकका आपको व्यसन न था। केवल दो वक्त सात्त्विक आहार लेते थे।

इन्हीं गुणोंसे मुग्ध हो समाज आपपर विश्वास रखती थी। अपने मित्र सेठ किशनदास माधोदास को जायदादके आप ट्रस्टी एक्सेक्यूटर हुए और आपने उसे १५ वर्षोंमें लगभग तिगुनी संपत्ति कर अधिकारी सेठ प्रतापसिंहको सौंप दिया। आप दि० जैन मन्दिर बड़ाबाजारके ट्रस्टी थे, और बङ्ग बिहार तीर्थक्षेत्र-कमेटीके सभापति थे, दि० जैन भवन कलकत्ताके प्रधान ट्रष्टी थे, दि० जैन कन्या पाठशालाके सभापति भी थे; और इन सब पदोंपर अन्त तक अवस्थित रहे। श्री दि० जैन स्याद्वाद प्रचारिणी सभा के संरक्षक थे, इण्डियन पीस गुड्स एसोसियेशनके आप चेयरमैन थे, कहाँ तक कहें आप न जानें कितनी लोकहितकारी संस्थाओंमें अपना योग देते रहते थे।

लाखोंका दान आपके धनकोषसे हुआ। आपने दिगम्बर जैन भवनके लिये २१,०००), रु० श्री बड़े जैन मन्दिरजीके लिये रु० ११,०००) प्रदान किये, नये श्री मन्दिरजी (मछुआबाजार) में चार विशाल रजतमूर्तियाँ श्री पंचायती दि० जैन मंदिरजी चावलपट्टीमें एक श्रीरजतजिनविम्ब तथा पाषाणके अनेक विशाल विम्ब स्थापित कराये; श्रीखण्डगिरि उदयगिरिमें एक धर्मशाला, श्रीसम्मेदशिखरजीमें रजत कपाट, श्रीपावागढ़में एक श्री जैन मन्दिरजी बनवाया। कुचामनमें पाठशाला, औषधालय और और बोर्डिङ्ग हाउस। आपके अन्य दोनों भ्राता सेठ गंभीरमलजी पाण्ड्या तथा स्व० सेठ मदनचंदजी पाण्ड्याके संयुक्तदानसे चल रहा है। आपकी धर्म-पत्नीने भी ७५०००) का दान किया था। प्रत्येक तीर्थस्थानों और संस्थाओंको विपुल दान आपकी ओरसे दिया जाता था। स्वर्गारोहणके १५ दिन पहले आपने लगभग ढाई २॥ लाखका दान निकाला था जिसमें मुख्य इस प्रकार है:—

डेढ़ लाख १,५०,०००) रु० कलकत्तेमें जैन-भवन बनानेके लिये

२५,०००) रु० भवनके अन्तर्गत दि० जैन आयुर्वेदिक औषधालयके लिये

५०००) रु० श्रीसम्मेदशिखरजीमें औषधालयके लिये

११,०००) रु० बड़े मंदिरजी कलकत्ता (चावलपट्टी) के लिये

५०००) रु० भवनमें त्यागी-व्रती व्यक्तियोंके आहारार्थ

आपके लघु भ्राता स्वर्गीय सेठ मदनचंदजीने स्वर्गारोहणके समय लगभग १॥ लाख १,५०,०००) को दान निकाला था। वह इस प्रकार है:—

५०,०००) रु० श्री दि० जैन पाठशाला और बोर्डिङ्ग हाउस कुचामन

५०,०००) रु० श्री दि० जैन खंडेलवाल विधवा सहायतार्थ

५,०००) रु० श्रीसम्मेदशिखरजीके यात्रियोंके जलकष्ट निवारणार्थ

५,०००) रु० असहाय और दीनहीन गरीबोंको नाज वितरणार्थ

४०,०००) रु० कुचामनमें श्री जिनेन्द्रदेव के चांदीके रथ निर्माणार्थ (जो अब बनकर तैयार है और अपनी सुन्दरता तथा कलामें अपूर्व है)

स्व० पूज्य बाबाजी चैनसुखजीके स्वर्गारोहण होनेपर सब भाइयों के फर्मों के प्रबंधका भार श्रीमान् पूज्य गंभीरमलजी पर ही है। वे समाज के नेता हैं और परम धार्मिक-वृत्तिके हैं। उनके हाथों लाखों रुपयोंका दान होता जा रहा है और होता रहेगा। उनकी ही छत्रछायामें अब सब कुटुम्बीजन धार्मिक-भावनामय जीवन बिता रहे हैं।

स्वर्गीय पूज्य बाबाजी चैनसुखजीकी स्मृतिमें

यह 'समय-प्राभृत' शास्त्र आत्मकल्याणार्थ और ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थ प्रकाशित किया गया है।

—नेमीचन्द पाण्ड्या



॥ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्रीमदाचार्य कुंदकुंदस्वामि विरचित—





समयप्राभृत

श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि विरचित आत्मख्याति संस्कृतटीका,

स्व० पं० जयचन्द्रजीकृत हिन्दी वचनिका सहित

दोहा—श्रीपरमातमकूं प्रणमि, सारद सुगुरु मनाय।
समयसारशासन करूं, देशवचनमय भाय ॥ १ ॥
शब्दब्रह्म परब्रह्मकैं, वाचकवाच्यनियोग।
मङ्गलरूप प्रसिद्ध ह्वै, नेम धर्म धन भोग ॥ २ ॥

चौपाई—नयनय लहइ सार शुभवार। पयपय दहइ मारदुखकार ॥
लयलय गहइ पारभवधार। जयजय समयसार अविकार ॥ ३ ॥

छप्पय—शब्द अर्थ अरु ज्ञान समयत्रय आगम गाये।
मत सिद्धान्त अरु काल भेद त्रय नाम बताये ॥

इनहि आदि शुभ अर्थ समय बचके सुनिये बहु।
अर्थ समयमें जीवनाम है सार सुनहु सहु॥
तातैं जु सार विन कर्ममल शुद्ध जीव शुधनय कहै।
इस ग्रन्थमांहि कथनी सबै समयसार बुधजन गहै॥ ४॥

दोहा—नामादिक छह ग्रन्थमुख, तामैं मंगल सार।
विघनटरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार॥ ५॥

ऐसैं मङ्गलपूर्वक प्रतिज्ञा करि, श्रीकुंदकुंद नाम आचार्यकृत गाथाबंध समयप्राभृत नाम ग्रंथ है, ताकी संस्कृत टीका श्री अमृतचंद्र आचार्यकृत आत्मख्याति नाम है, ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां इस ग्रंथका होनेका संबंध ऐसा है—जो श्रीवर्धमानस्वामी अंतिम तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ वीतराग परम भट्टारककूं निर्वाण पधारे पीछैं पांच श्रुतकेवलि भये। तिनमें अंतके श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी भये, तहांताईं तो द्वादशांगशास्त्रके प्ररूपणतैं व्यवहारनिश्चयात्मक मोक्षमार्ग यथार्थ प्रवर्तवो ही किया। पीछैं कालदोषतैं अंगनिका ज्ञानकी व्युच्छित्ति होती गई अर केतेक मुनि शिथिलाचारी भये. तिनिमैं श्वेताम्बर भये, तिनिनैं शिथिलाचार पोषनेकूं न्यारे सूत्र बनाये। तिनिमैं शिथिलाचार पोषनेकी अनेक कथा लिखि अपना संप्रदाय दृढ किया, सो तो अवताईं प्रसिद्ध है। बहुरि जे जिनसूत्रकी आज्ञामैं रहे तिनिका आचार भी यथावत् रह्या, प्ररूपणा भी यथावत् रही, ते दिगम्बर कहाये। तिनिका सम्प्रदायमैं श्री वर्धमानस्वामीकूं निर्वाण पधारे पीछैं छहसै तियासी वर्ष पीछैं दूसरे भद्रबाहुस्वामी आचार्य भये। तिनिकी परिपाटीमें केतेक वर्ष पीछैं मुनि भये तिनिनैं सिद्धांतनिकी प्रवृत्ति करी सो लिखिये है।

एक तो धरसेन नामा मुनि भये, तिनिकूं अग्रायणीपूर्वका पांचमा वस्तुका महाकर्मप्रकृति नामा

चौथा प्राभृतका ज्ञान था । सो यह प्राभृत भूतबली अर पुष्पदन्त नाम दोऊ मुनीनिकूं पढाया । पीछैं तिनि दोऊ मुनीनिनैं आगामी कालदोषतैं बुद्धिकी मन्दता जाणि तिस प्राभृतके अनुसार षट्खंड सूत्र बांधि पुस्तकोंमें लिखाय तिनिकी प्रवृत्ति करी । ता पीछैं जे मुनि भये, तिननैं तिनही-सूत्रनिकूं पढिकरि तिनिकी टीका विस्ताररूप करि धवल महाधवल जयधवल आदि सिद्धान्त रचे । तिनिकूं पढिकरि नेमिचन्द्र आदि आचार्यनिनैं गोमटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि शास्त्रनिकी प्रवृत्ति करी । यह तो प्रथम सिद्धान्तकी उत्पत्ति है । तिनिमैं तो जीव अर कर्मके संजोगतैं भया जो आत्माका संसारपर्याय, ताका विस्तार गुणस्थानमार्गणा रूप संक्षेपकरि वर्णन है । यह तो पर्यायार्थिक नय प्रधानकरि कथन है इसही नयकूं अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहिए । तथा अध्यात्मभाषाकरि अशुद्धनिश्चय कहिये तथा व्यवहार भी कहिये ।

बहुरि एक गुणधर नामा मुनि भये, तिनिकूं ज्ञानप्रवादपूर्वका दशम वस्तु तिसका तीसरा प्राभृतका ज्ञान था । तिस प्राभृतकूं नागहस्ती नामा मुनि पढ्या, तिनि दोऊ मुनीनितैं यतिनायक नामा मुनि तिस प्राभृतकूं पढि, तिसकी चूर्णिका रूप छह हजार सूत्रोंका शास्त्र रच्या । ताकी टीका समुद्धरण नामा मुनि बारह हजार प्रमाण रची । ऐसैं आचार्यनिकी परम्परातैं कुन्दकुन्द मुनि तिनि सिद्धान्तनिके ज्ञाता भये । ऐसैं इस द्वितीय सिद्धान्तकी उत्पत्ति है, यामैं ज्ञानकूं प्रधानकरि शुद्ध-द्रव्यार्थिकनयकरि कथन है । तहां अध्यात्मभाषाकरि आत्माहीका अधिकार है । याकूं शुद्धनिश्चय कहिये परमार्थ कहिये । यामैं पर्यायार्थिकनयकूं गौणकरि व्यवहार कहि असत्यार्थ कह्या है, सो जहां-तांई पर्यायबुद्धि रहै, तहांतांई या जीवकै संसार है ।

बहुरि जब शुद्धनयका उपदेश पाय द्रव्यबुद्धि होय, अपने आत्माकूं अनादि अनन्त एक सर्व-परद्रव्यपरभावनिके निमित्ततैं भये अपने भाव तिनितैं भिन्न जानै, अपना शुद्धस्वरूपका अनुभवकरि शुद्धोपयोगमें लीन होय, तब कर्मका अभाव करि निर्वाणकूं प्राप्त होय है । या प्रकार इस द्वितीय सिद्धान्तकी परम्परातैं शुद्धनयका उपदेशके शास्त्र पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, परमात्म-

प्रकास आदि प्रवर्ते हैं। तिनिमैं समयप्राभृतनाम शास्त्र है सो प्राकृतभाषामय गाथाबन्ध है, ताकी आत्मख्याति नामा संस्कृतटीका अमृतचन्द्र आचार्य करी है। सो कालदोषतैं जीवनिकी बुद्धि मन्द होती आवै है, ताके निमित्ततैं प्राकृत संस्कृतके अभ्यास करनेवाले विरले रहि गये। अर गुरुनिकी परम्पराका उपदेश भी विरल हो गया। तातैं मेरी बुद्धिसार ग्रन्थनिका अभ्यास करि इस ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करनेका प्रारंभ किया है। सो भव्यजीव बाचैंगे, पढैंगे, सुनैंगे तिसका तात्पर्य धरैंगे तिनिका मिथ्यात्वका अभाव होयगा, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होयगी ऐसा अभिप्राय है। किछु पंडिताईका तथा मान लोभ आदिका अभिप्राय है नाहीं। यामैं कहीं बुद्धिकी मन्दतातैं तथा प्रमादतैं हीनाधिक अर्थ लिखूं तो बुद्धिके धारक जन मूलग्रन्थ देखि शुद्धकरि बांचियो, हास्य मति करियो। सत्पुरुषनिका स्वभाव गुणग्रहण करनेहीका होय है। यह मेरी परोक्ष प्रार्थना है।

इहां कोई कहै—इस समयसारग्रन्थकी तुम वचनिका करो हौं सो यह अध्यात्मग्रन्थ है, यामैं शुद्धनयका कथन है, अशुद्धनय व्यवहारनय है, सो ताकूं गौणकरि असत्यार्थ कह्या है, तहां व्यवहारचारित्रकूं अर ताके फल पुण्यबन्धकूं अत्यन्त निषेध किया है, मुनिव्रतभी पाले ताकै मोक्ष-मार्ग नाहीं ऐसैं कह्या है, सो ऐसे ग्रन्थ तो प्राकृत संस्कृतही चाहिये, इनिकी वचनिका भये सर्वही प्राणी वांचै, तामैं जो व्यवहारचारित्रकूं निष्प्रयोजन जाणै अर अरुचि आवै तो अंगीकार न करै, पहले किछु अंगीदार किया होय तो भ्रष्ट हो जाय, स्वच्छंद होय, प्रमादी होय, श्रद्धानका विपर्यय होय तो बडा दोष उपजे। यह ग्रन्थ तो—जो पहले मुनि भये होय दृढ चारित्र पालते होय अर शुद्ध आत्मस्वरूपके सन्मुख न होय अर व्यवहारमात्रहीतैं सिद्धि होनेका आशय आगया होय तिनिकूं शुद्धात्माकै सन्मुख करनेकूं है तिनिहीका सुननेका है, तातैं देशभाषामय वचनिका करना युक्त नाहीं। ताकूं कहिये है—

जो यह तो सत्य है यामैं कथन शुद्धनयहीका है। परंतु जहां जहां अशुद्धनय रूप व्यवहारनयका

गौणताका कथन है, तहां आचार्य ऐसे भी कहते गये हैं—जो पहिली अवस्थामैं यह व्यवहारनय हस्तावलंबरूप है, उपरि चढनेकूं पैडीरूप है, तातैं कथंचित् कार्यकारी है। इसकूं गौण करनेतैं ऐसा मति जानियो, जो आचार्य व्यवहारकूं सर्वथाही छुड़ावै हैं। आचार्य तौ उपरि चढनेकूं नीचली पैडी छुडावै है, अर जब अपना स्वरूपकी प्राप्ति होयगी, तब तौ शुद्ध अशुद्ध दोऊही नयका आलंबन छूटैगा। नयका आलंबन तो साधक अवस्थामैं है। ऐसें ग्रन्थमें जहां तहां कथन है। ताकूं यथार्थ समझे श्रद्धानका विपर्यय नाहीं होयगा। जे यथार्थ समझेंगे तिनकै व्यवहारचारित्रतैं अरुचि नहीं आवैगी अर जिनिका होनहारही खोटा होयगा ते तौ शुद्धनय सुणूं तथा अशुद्धनय सुणूं विपर्यय ही समझेंगे, तिनिकूं तौ सर्वही उपदेश निष्फल है।

बहुरि इहां तीन प्रयोजन मनमैं धारि प्रारंभ किया है। प्रथम तो अन्यमती वेदांती तथा सांख्यामती आत्माकूं सर्वथा एकांतपक्षतैं शुद्ध, नित्य, अभेद, एक ऐसें विशेषण करि कहे हैं। अर कहे हैं—जो जैनी कर्मवादी हैं इनिकैं आत्माकी कथनी नाहीं। आत्मज्ञानविना वृथा कर्मका क्लेश करे हैं। आत्माकूं जाने विना मोक्ष नाहीं। जे कर्महीमैं लीन हैं तिनिकैं संसारका दुःख कैसें मिटै? बहुरि ईश्वरवादी नैय्यायिक कहे हैं जो ईश्वर सदा शुद्ध है, नित्य है, एक है, सर्वकार्यनिप्रति निमित्तकारण है। ताकूं जाने विना अर ताकूं भक्तिभावकरि ध्याये विना संसारी जीवकै मोक्ष नाहीं। ईश्वरका शुद्धध्यानकरि तासूं लय लगावै तब मोक्ष होय, जैनी ईश्वरकूं तो मानै नाहीं अर जीवहीकूं मानै, सो जीव तो अज्ञान है असमर्थ है। आपही अहंकारकरि ग्रस्त है। सो अहंकार छोडि ईश्वरका ध्यावना जैनीनिकैं नाहीं, तातैं इनिकैं मोक्ष नाहीं इत्यादिक कहे हैं। सो लौकिकजन तिनिके मतके हैं। तिनिमैं यह प्रसिद्ध करी राखी है। सो ते जिनमतकी स्याद्वादकथनीमैं तो समझे नाहीं। अर प्रसिद्ध व्यवहार देखी निषेध करे हैं। तिनिका प्रतिषेध शुद्धनयकी कथनी प्रगट भयेविना होय नाहीं। जो यह कथनी प्रगट न होय तो भोले जीव अन्यमतीनिकी सुनै तब भ्रम

उपजी आवै । तब श्रद्धानतें चिगिजाय । तातैं यह कथन प्रगट होय तौ श्रद्धानतें चिगै नाहीं । एक प्रयोजन तौ यह है ।

बहुरि दूजा यह है—जो इस ग्रन्थकी वचनिका पहलै भी भयी है, ताकै अनुसारि बाणारसीदासनैं कलसाके कवित्त बांधे हैं, ते स्वमतपरमतमैं प्रसिद्ध भये हैं । परंतु तिनिमें अर्थ सामान्यही लोक समझे हैं । तामैं विशेष समझा विना कोईकै पक्षपात भी उपजि आवै है । तथा तिनि कवित्तनिकूं अन्यमती पढि अपना मतका अर्थमैं भेलै हैं, सो विशेष अर्थ समझाविना यथार्थ होय नाहीं, भ्रम मिटै नाहीं । तातैं इस वचनिकामैं जहां तहां नयविभागका अर्थ स्पष्ट खोलियेगा, तातैं भ्रम न रहैगा ।

बहुरि तीसरा प्रयोजन यह है—जो कालदोषतैं बुद्धिकी मंदतातैं प्राकृतसंस्कृतके पढनेवाले तौ विरले होय हैं । तिनिमें भी स्वमतपरमतका विभाग समझी यथार्थ तत्त्वार्थकूं समझनेवाले विरले होय हैं । बहुरि गुरुआम्नाय जैनग्रन्थनिकी कमि रहि गई, स्याद्वादके मर्मकी बात कहने वाले गुरुनिकी व्युच्छित्ति ही दीखे है तातैं शुद्धनयका मर्म स्याद्वादविद्याकूं समझिकरि समझैं, तब यथार्थ होय । सो इस ग्रन्थकी वचनिका विशेष अर्थरूप होय तै सर्वही बाचैं पढैं तो पहिली वचनिकाके सामान्य अर्थमैं किछू भ्रम उपजे तौ मिटिजाय, इस शास्त्रका यथार्थज्ञान होय, तौ अर्थमैं विपर्यय न होयगा । ऐसैं तीन प्रयोजन मनमैं धारि वचनिकाका प्रारंभ कीया है ।

बहुरि एक प्रयोजन यह भी है—जो जैनमतमैं मोक्षमार्गका वर्णनमैं मुख्य पहलै सम्यग्दर्शन प्रधान कह्या है, सो व्यवहारनयकरि तो सम्यग्दर्शन भेदरूप अन्यग्रन्थनिमें अनेक प्रकार कह्या है, सो प्रसिद्ध है । बहुरि इस ग्रन्थमैं शुद्धनयका विषय जो शुद्ध आत्मा ताहीका श्रद्धानकूं सम्यग्दर्शन एकही प्रकार नियमकरि कह्या है। सो लोकमैं यह कथनी प्रसिद्ध बाहुल्यताकरि नाहीं है। तातैं व्यवहारहीकूं लोक जाने हैं । जैसें पहलै अशुभका व्यवहार लोककै है ताकूं निषेधकरि व्यवहारनय शुभमैं प्रवर्तावै है, सो लोक अशुभकी पक्ष छोडि शुभमैं प्रवर्तैं । अर कदाचित् शुभहीका पक्ष पकडी याहीका एकांत

करै तो पहलै अशुभकी पक्षका एकांत तथा अब शुभका एकांत भया याहीकूं मोक्षमार्ग मान्या तब मिथ्यात्वही दृढ भया। तातैं शुभकी पक्ष छुडावनेकूं शुद्धनयका आलंबनका उपदेश है, याहीकूं निश्चनय कहि सत्यार्थ कह्या है। अशुद्धनयकूं व्यवहार कहि असत्यार्थ कह्या है जातैं व्यवहार शुभाशुभरूप है, बंधका कारण है। सो यामैं तौ प्राणी अनादिसूंहि प्रवर्तै है। अर शुद्धनयरूप कदे भया नाहीं, तातैं याका उपदेश सुणि यामैं लीन होय, व्यवहारका आलंबन छोडे तब बंधका अभाव करै।

बहुरि स्वरूपकी प्राप्ति भये पीछै शुद्ध अशुद्धका दोऊही नयका आलंबन नाहीं रहे है। नयका आलंबन तौ साधक अवस्थामैं प्रयोजनवान् है। सो या ग्रन्थतैं ऐसा वर्णन है, तातैं याकूं खोली-करि स्पष्ट अर्थ वचनिकारूप लिखिये तो सर्वथा एकान्तकी पक्ष मिटै, स्याद्वादका मर्म यथार्थ समझै, यथार्थश्रद्धान होय मिथ्यात्व कटै। यह भी वचनिका करनेका प्रयोजन है। बहुरि ऐसा जानना—जो स्वरूपकी प्राप्ति दोय प्रकार है, प्रथम तौ यथार्थ ज्ञान होय करि श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन होगा। सो यह तौ अविरतसम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्तीकै भी होय है। तहां बाह्यव्यवहार तौ अविरत-रूप ही रहै। तहां व्यवहारका आलंबन है ही। अर अन्तरंग सर्व नयका पक्षपातरहित अनेकांत-तत्त्वार्थकी श्रद्धा होय है। बहुरि जब संयम धारि प्रमत्ताप्रमत्तस्थानगुणवर्ती मुनि होय अर जहांताईं साक्षात् शुद्धोपयोगकी प्राप्ति न होय श्रेणी न चढै, तहां शुभरूपव्यवहारका भी बाह्य आलम्बन रहै।

बहुरि दूजा साक्षात् शुद्धपयोगरूप वीतराग चारित्रका होना सो अनुभवमें शुद्धोपयोगकी साक्षात् प्राप्ती होय तामैं व्यवहारका भी आलम्बन नाहीं। अर शुद्धनयका भी आलम्बन नाहीं। जातैं आप साक्षात् शुद्धपयोगरूप भया, तब नयका आलम्बन कहैका? नयका आलम्बन तौ जेतै राग अंश था। तेतैंहि था। ऐसैं अपने स्वरूपकी प्राप्ति भये पीछै पहलै तो श्रद्धामैं नयपक्ष मिटै है। पीछैं साक्षात् वीतराग होय तब चारित्रसम्बन्धी पक्षपात मिटै है। ऐसा नाहीं, जो साक्षात् वीत-

राग तौ भया नाहीं अर शुभव्यवहारकूं छोडि स्वच्छन्द प्रमादी होय प्रवर्तै। ऐसैं होय तौ नयविभागमें समझा नाहीं उलटा मिथ्यात्व ही दृढ भया। ऐसैं मंदबुद्धीनिहूंकैं यथार्थज्ञान होनेका प्रयोजन जानि इस ग्रन्थकी वचनिकाका प्रारम्भ कीया है ऐसैं जानना।

आगैं इस ग्रन्थकी पीठिका लिखिये हैं। तहां इस ग्रन्थमैं अधिकार नव हैं। तिनिके नाम—जीवाजीव १, कर्तृकर्म २, पुण्यपाप ३, आस्रव ४, संवर ५, निर्जरा ६, बंध ७, मोक्ष ८, सर्वविशुद्ध ९, ऐसैं। तहां प्रथम जीवाजीव अधिकारकी गाथा अडसठि हैं। तहां पहलैं तौ टीकाकार रंगभूमिका स्थल बांध्या है। ताकी गाथा अडतीस हैं। तहां प्रथम ही एक गाथामैं मङ्गलाचरण करी। बहुरि दूजी गाथामैं जीवनामा पदार्थका स्वरूप कह्या है। यह जीवाजीवरूप षड्द्रव्यात्मक लोक है। तिनिमैं धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारि द्रव्य तौ स्वभावपरिणतिस्वरूपही है। अर जीव अर पुद्गलद्रव्यकै अनादिसंयोगतैं विभावपरिणति भी है। तातैं पुद्गल स्पर्शरसगंधवर्णशब्दरूप मूर्तिक हैं। ताकूं जीव देखिकरि रागद्वेषमोहरूप परिणमै है। अर इसके निमित्ततैं पुद्गलकर्मरूप होय जीवतैं बंधे है। ऐसैं इनिकैं अनादिहीतैं बंधावस्था है। सो जब निमित्त पाय रागादिक रूप न परिणमै तब नवीन कर्म बंधै नाहीं। पुरातनकर्म झडिजाय तब मोक्ष होय। ऐसैं जीवकै स्वसमयपरसमयकी प्रवृत्ति होय है। सो जब जीव सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावरूप अपना स्वभावरूप परिणमै तब स्वसमय होय। अर मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणमै है तेतैं पुद्गलकर्मकेविषैं तिष्ठ्या परसमय है, ऐसैं कह्या है।

आगैं तीसरी गाथामैं कही है, जो जीवकै पुद्गलकर्मके बंधतैं परसमयपणा है,. सो यह सुन्दर नाहीं, यामैं जीव संसारमैं भ्रमता अनेक प्रकार दुःख पावै है। तातैं स्वभावमैं तिष्ठे न्यारा होय एकला तिष्ठे तब सुन्दर। आगैं चौथा गाथामैं कही है, जो यह जीवका न्यारापणाका अर एकपणाका पावना दुर्लभ है। जातैं बंधकी कथा तौ सर्वप्राणी करे हैं। अर यह कथा विरलै जानैं हैं, तातैं दुर्लभ हैं। आगैं कहे हैं जो यह कथा हमारा ज्ञानका विभवका सर्वस्वकरि हम कहे हैं, सो

अन्य भी अपना अनुभवतैं परीक्षा करि ग्रहण किजियो। आगैं जीवकूं शुद्धनय करि देखिये तब प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ दशातैं न्यारा एक ज्ञायकभावमात्र देखिये, जो जाननेवाला है सोही जीव है ऐसैं कह्या है।

आगैं इस ज्ञायकभावमात्र आत्माके दर्शनज्ञानचारित्रका भेदकरि भी अशुद्धपणा नाहीं है, ज्ञायक है सो ज्ञायक ही है ऐसैं कह्या है। आगैं आत्माकूं व्यवहारनय अशुद्ध कहै है। ताके उपदेशका प्रयोजन गाथा तीनमैं कह्या है। आगैं शुद्धनयकूं सत्यार्थ कह्या है व्यवहारनयकूं असत्यार्थ कह्या है। आगैं कह्या है, जो, जे स्वरूपका शुद्ध परमभावकूं पहुंचि गये तिनिकै तो शुद्धनयही प्रयोजनवान है। अर जे साधक अवस्थामैं हैं तिनकैं व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् है ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है जीवादितत्त्वनिकूं शुद्धनयकरि जानना यह सम्यक्त्व है। आगैं शुद्धनयका विषयभूत आत्माकूं बध्द, स्पृष्ट, अन्य, अनियत, विशेषसंयुक्त इनि पांच भावनितैं रहित कह्या है। आगैं शुद्धनयका विषय आत्माकूं जानै सो सम्यग्ज्ञान है ऐसैं कह्या है। आगैं सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र साधूकरि सेवनेंयोग्य है ऐसैं दृष्टांत सहित कह्या है। आगैं शुद्धनयके विषयभूत आत्माकूं न जानै जेतैं जीव ते अज्ञानी हैं ऐसैं कह्या है। आगैं अज्ञानीकूं समझावनेकी रीति कही है। आगैं अज्ञानी जीवदेहकूं एक देखि तीर्थंकरकी स्तुतिका प्रश्न किया, ताकै प्रश्नका उत्तर है। आगैं इस उत्तरमें जीवदेहकी भिन्नता दिखाई है। आगैं शिष्यका प्रश्न जो चारित्रमैं प्रत्याख्यान कह्या, सो प्रत्याख्यान कहा है, ताका उत्तर है, जो ज्ञानही प्रत्याख्यान है।

आगैं दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप परिणया आत्माका स्वरूप कहिकरि रंगभूमिकाका स्थल गाथा अठतीसमैं पूर्ण किया है। आगैं जीव अजीव दोऊ बंधपर्यायरूप होय एकप्रतिभासमैं आवै हैं, तिनिमैं जीवका स्वरूप न जानतै अज्ञानी हैं, ते जीवकी कल्पना अध्यवसानादिक भावरूप अन्यथा करै हैं तिनिका प्रकार गाथा पांचमैं कह्या है। आगैं जीवका स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं तिनिका निषेधकी गाथा एक है। आगैं अध्यवसानादिकभाव पुद्गलमय हैं जीव नाहीं हैं ऐसैं कह्या है। आगैं अध्यव-

सानादिकभावकूं व्यवहारनय जीव कहे हैं ऐसैं कह्या है। आगैं परमार्थरूप जीवका स्वरूप कह्या है। आगैं वर्णको आदि लेकरि गुणस्थानपर्यंत जेते भाव हैं ते जीवकै नाहीं हैं ऐसैं छह गाथामैं कह्या है। आगैं ए वर्ण आदिक भाव जीवकै व्यवहारनय कहे हैं निश्चयनय न कहै हैं ऐसैं दृष्टांत सहित कह्या है। आगैं वर्णादिभावनिकै जीवकै तादात्म्य कोई अज्ञानी मानै तौ ताका निषेध किया है। ऐसैं अडसठि गाथामैं जीवाजीव अधिकार पूर्ण किया। यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य पैंतालीस हैं।

आगैं 'कर्तृकर्म' नामा दूसरा अधिकारका प्रारंभ है। ताकी गाथा छिहत्तरी हैं। तहां प्रथमही गाथा दोयमैं यह कह्या है जो यह अज्ञानी जीव क्रोधादिकविषैं वर्तै हैं तेतै कर्मका बंध करै हैं। आगैं कह्या है आस्रवका अर आत्माका भेदज्ञान भये बंध न होय है। आगैं आस्रवनितैं निवृत्त होनेका विधान कह्या है। आगैं आस्रवनितैं निवृत भया आत्माका चिह्न कह्या है। आगैं आस्रवका अर आत्माका भेदज्ञान भये आत्मा ज्ञानी होय, तब, कर्तृकर्मभाव भी याकै न होय ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है, जो जीवपुद्गलकर्मकैं परस्पर निमित्तनैमित्तिकभाव है, तौ कर्तृकर्मभाव न कहिये। आगैं कह्या है, यह निश्चयनय है जो जैसैं आत्माकै अर कर्मकै कर्तृकर्मभाव नाहीं है, तैसैं भोक्तृभोग्यभाव भी नाहीं है। आपका आपहीकै कर्तृकर्मभाव भोक्तृभोग्यभाव है। आगैं व्यवहारनय है सो आत्माकै अर पुद्गलकर्मकै कर्तृकर्मभाव अर भोक्तृभोग्यभाव कहै है ऐसा कह्या है।

आगैं आत्मा पुद्गलकर्मका कर्ता मानिये, तौ, तामैं बडा दोष आवै है। दोय क्रियाका कर्ता आत्मा ठहरै, तो यह जिनमत नहीं। ऐसैं माननेवाला मिथ्यादृष्टि है ऐसैं कह्या है। आगैं मिथ्यात्वादि आस्रवनिकूं जीव अजीव भेदकरि दोय प्रकार कहे हैं अर दोय प्रकार कहनेका हेतु कह्या है। आगैं आत्माकै मिथ्यात्व अज्ञान अविरति ए तीन परिणाम अनादि हैं, तिनिका कर्तृपणा दिखाया है, अर तिस निमित्ततैं पुद्गल कर्मरूप होय है ऐसैं कह्या है। आगैं आत्मा मिथ्यात्वादिभावरूप न परिणमै तब कर्मका कर्ता नाहीं है ऐसैं कह्या है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो अज्ञानतैं कर्म कैसैं

होय है, ताका उत्तर है। आगैं कह्या है, कर्मका कर्तापणाका मूल अज्ञानही है, तातैं अज्ञानका अभाव होय, ज्ञान होय, तब कर्तापणा नाहीं है। आगैं कह्या है, जो व्यवहारी जीव पुद्गलकर्मका कर्त्ता आत्माकूं कहै है सो यह अज्ञान है। आगैं कह्या है, जो आत्मा पुद्गलकर्मका कर्त्ता निमित्तनैमित्तिकभावकरि भी नाहीं है। आत्माके योग उपयोग हैं ते निमित्तनैमित्तिकभावकरि कर्त्ता हैं। अर योग उपयोगका आत्मा कर्त्ता है। आगैं कह्या है, जो अज्ञानी भी अपने अज्ञानभावका तौ कर्त्ता है, अर पुद्गलकर्मका तौ कर्त्ता निश्चयकरि नाहीं है, जातैं परद्रव्यकै तौ परस्पर कर्तृकर्मभाव निश्चयकरि नाहीं है ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है, जो जीवकूं परद्रव्यका कर्तृपणाका हेतु देखि उपचारकरि कहिये है, जो यह कार्य जीव कीया सो यह व्यवहारनयका वचन है। आगैं कह्या है, जो मिथ्यात्वादिक तो सामान्य आस्रव अर विशेषभेद गुणस्थान ए बंधका कर्त्ता हैं, तातैं निश्चयकरि इनिका जीव कर्त्ता भोक्ता नाहीं है।

आगैं जीवकै अर आस्रवनिकै भेद दिखाया है, अभेद कहनेमैं दूषण दिखाया है। आगैं सांख्यमती पुरुषकूं अर प्रकृतीकूं अपरिणामी कहे हैं, ताका निषेध करि पुरुषकूं तथा पुद्गलकूं परिणामी कह्या है। आगैं ज्ञानकरि तौ ज्ञानभाव ही निपजे है, अर अज्ञानकरि अज्ञानभाव ही निपजे है ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है अज्ञानी जीव द्रव्यकर्म बंधनेकूं निमित्त होय है। आगैं कह्या है, पुद्गलका परिणाम तौ जीवतैं न्यारा है, अर जीवका परिणाम पुद्गलतैं न्यारा है। आगैं शिष्यका प्रश्न है जो कर्म जीवविषैं बद्धस्पृष्ट है की अबद्धस्पृष्ट है? ताका उत्तर निश्चयव्यवहारनयकरि दीया है। आगैं कह्या है, जो नयनिका पक्षकरिरहित है, सो कर्तृकर्मभावकरि रहित समयसार शुद्ध आत्मा है, ऐसैं कहिकरि कर्तृकर्म अधिकारकूं पूर्ण किया है। गाथा छिहत्तरीसैं। अर या अधिकारसैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य चोवन ५४ हैं।

आगैं पुण्यपापका अधिकार है। तहां प्रथमही शुभाशुभकर्मका स्वभावका वर्णन है। पीछें दोऊही कर्मबंधके कारण कहे हैं। याहीतैं दोऊ कर्मकूं निषेध हैं। ताका दृष्टांत है, अर आगमकी

साक्षी है। आगैं मोक्षका कारण ज्ञानकूं कह्या है, व्रतादिक पाले तौऊ ज्ञानविना मोक्ष न होय ऐसैं कह्या है। आगैं मोक्ष साधनेवालाका स्वरूप कह्या है। आगैं परमार्थस्वरूप मोक्षका कारण कहि, अन्यका निषेध करि अर कर्म है सो मोक्षका कारणकूं घाते है, ताका दृष्टांत करि घातना दिखाया है। अर कह्या है, सो कर्म आप बंधस्वरूपही है। अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षका कारण है। तिनिका प्रतिपक्षी घातक कहे हैं। सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व है। ज्ञानका प्रतिपक्षी अज्ञान है। चारित्रका प्रतिपक्षी कषाय है। ऐसैं कह्या है। ऐसैं तीसरा पुण्यपापाधिकार उगणीस गाथामैं पूर्ण कीया है। यामैं कलशरूप काव्य टीकाकारकृत तेरा हैं।

आगैं चौथा अधिकार आस्रवका है। तहां प्रथम ही आस्रवका स्वरूप कह्या है। मिथ्यात्व, अविरत, योग, कषाय हैं ते जीव अजीवकरि दोय प्रकार हैं। ते कर्मबंधकूं कारण हैं ऐसैं कह्या है। पीछैं ज्ञानीकै तिनिका अभाव कह्या है। आगैं कह्या है, जो रागद्वेषमोहरूप जीवकै अज्ञानमय परिणाम हैं ते ही आस्रव हैं। आगैं रागादिकविना जीवका भाव है ताका संभवना दिखाया है। आगैं ज्ञानीकै द्रव्यभाव आस्रवका अभाव दिखाया है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो ज्ञानी निरास्रव कैसैं? ताका उत्तर है, जैसैं अज्ञानीकै अर ज्ञानीकै आस्रवका सद्भाव अर असद्भाव है ताका युक्तिकरि वर्णन है, तहां रागद्वेषमोह ही अज्ञानपरिणाम है, सो ही बंधका कारणरूप आस्रव है, सो ज्ञानीकै नाहीं है, यातैं ज्ञानीकै कर्मबंध भी नाहीं है। ऐसा निश्चय करि अधिकार पूर्ण कीया है। ताकी गाथा सतरा है। यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य ग्यारा हैं।

आगैं पांचमा अधिकार संवरका है। तहां संवरका मूल उपाय भेदविज्ञान है। ताकी रीति तीन गाथामैं कही है। पीछैं शिष्यका प्रश्न है, जो भेदविज्ञानहीतैं संवर कैसे होय? ताका दृष्टांतपूर्वक उत्तर है। आगैं भेदज्ञानतैं शुद्धात्माकी प्राप्ति होय, तिसतैं संवर होय है, ताका विधान कह्या है। आगैं संवर होनेका प्रकार तीन गाथामैं कह्या है। आगैं संवर होनेका अनुक्रम कह्या है गाथा

तीनमैं। ऐसैं गाथा बारहमैं संवरका अधिकार पूर्ण कीया है। यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य आठ हैं। आगैं निर्जराका अधिकार है।

तहां प्रथम ही द्रव्यनिर्जराका स्वरूप कह्या है। पीछैं भावनिर्जराका स्वरूप कह्या है। आगैं ज्ञानका सामर्थ्य दिखाया है। आगैं वैराग्यका सामर्थ्य दिखाया है। पीछे ज्ञानवैराग्यसामर्थ्यकूं प्रगटकरि दिखाया है। आगैं सम्यग्दृष्टिकै आपपरका जाननेका सामान्यविशेषका विधान कह्या है। आगैं तिसही विधानतैं वैराग्य होय है ऐसैं कह्या है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो सम्यग्दृष्टि रागी कैसैं न होय है, ताका उत्तर है। आगैं उपदेश किया है जो अज्ञानी रागी प्राणी रागादिककूं अपना पद जाने है तिस पदकूं छोडि, अपना वीतराग एकज्ञायकभावपदविषैं तिष्ठो। आगैं आत्माका पद ज्ञायकस्वभाव है, सो ज्ञानविषैं भेद हैं ते कर्मके क्षयोपशमके निमित्ततैं हैं। ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है, जो ज्ञान है सो ज्ञानहीतैं पाइये है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो ज्ञानी परकूं काहेतैं ग्रहण न करे हैं, ताका उत्तर है। आगैं ज्ञानी परिग्रहका त्याग करै, ताका विधान कह्या है। आगैं कह्या है, जो इस विधानतैं परिग्रहकूं त्यागै, तौ कर्मसूं न लिपै है। आगैं कह्या है, जो कर्मका फलकी वांछा करि कर्म करै, सो, कर्मकरि लिपै, विना वांछा कर्मकूं करै, तौऊ कर्मतैं लिपै नाहीं, ताका दृष्टांतकरि कथन है।

आगैं कह्या है, जो सम्यक्त्वके आठ अंग हैं, सो प्रथम तो सम्यग्दृष्टि निःशंक होय है। सात भयनिकरि रहित होय है। बहुरि निष्कांक्षिता, निर्विचिकित्सा, उपगूहन, अमूढत्व, वात्सल्य, स्थितिकरण, प्रभावना इनिका निश्चयनयकूं प्रधानकरि वर्णन है। ऐसैं गाथा ४४ चवालीसमैं निर्जराधिकार पूर्ण किया है। यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य तीस हैं।

आगैं बंधका अधिकार है। तहां प्रथमही बंधका कारण कह्या है गाथा पांचमैं। पीछैं कह्या है; जो ऐसैं कारणरूप आत्मा न प्रवर्तै, तो, बंध न होय गाथा पांचमैं। आगैं मिथ्यादृष्टिकै बंध होय है ताका आशयकूं प्रगट करि कह्या है। आगैं शिष्य पूछे है, मिथ्यादृष्टिका आशयकूं प्रगट अज्ञान

कह्या, सो यह अज्ञान कैसा, ताका उत्तर है । आगैं कह्या है, यह मिथ्यादृष्टीका आशय अज्ञानभावरूप है सो ही बंधका कारण है । आगैं बाह्यवस्तुकै निश्चनयकरि बंधका कारणपणाका निषेध किया है । आगैं कह्या है, जो मिथ्यादृष्टि अज्ञानरूप अध्यवसायतैं अपने आत्माकूं अनेक अवस्थारूप करे है, आगैं कह्या है, जो यह अज्ञानरूप अध्यवसाय जाकै नाहीं, ताकै कर्मबंध नाहीं होय है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो यह अध्यवसाय कहा है ताका उत्तर है । आगैं कह्या है, जो यह अध्यवसान है याका निषेध है, सो व्यवहारनयहीका निषेध है । आगैं कह्या है, जो केवलव्यवहारहीकूं आलंबे है, सो मिथ्यादृष्टि है, जातैं याका आलंबन अभव्य भी करै है, व्रत, समिति, गुप्ति पालै है, ग्यारह अंग पढे है, तोऊ मोक्ष न पावै । अभव्य धर्मकी भी सामान्य श्रद्धा करे है, तोऊ ताकै भोगके निमित्त है, तातैं मोक्षके निमित्त न होय । आगैं निश्चयव्यवहारका स्वरूप कह्या है । आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो रागादिकभावनिका निमित्त आत्मा है, कि परद्रव्य है ? ताका उत्तर है। ऐसैं बंधाधिकार पूर्ण कीया है गाथा एकावनमैं । यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य सतरा हैं ।

आगैं मोक्षाधिकार है । तहां, प्रथमही मोक्षका स्वरूप कर्मबंधनतैं छूटना है । सो कोई बंधका स्वरूपहीकूं जानि संतुष्ट होय, जो ऐसैंही बंधतैं छूटियेगा ताका निषेध है, जो बंध छेदेविना छूटे नाहीं ऐसैं कह्या है । आगैं बंधकी चिंता किये भी न छूटे है ऐसैं कह्या है । बंध छेदे ही मोक्ष है। आगैं बंधतैं छूटनेका कारण कह्या है । आगैं शिष्य पूछ्या है, जो बंधका छेद काहिकरि कीजिये ताका उत्तर है, जो कर्मबंधकै छेदनेकूं प्रज्ञा करण है, शस्त्र है । आगैं कह्या है, जो प्रज्ञारूप करणतैं आत्मा अर बंध दोऊकूं न्यारे न्यारे करि आत्माकूं प्रज्ञाहिकरि ग्रहण करना, बंधकूं छोड़ना । आगैं कह्या है, जो आत्माकूं चैतन्यमात्र ग्रहण करना, तहां चेतना दर्शनज्ञानरूप है, तिनिविना नाहीं है ।

आगैं कह्या है, जो आत्माशिवाय अन्यभावका त्याग करना, ऐसा पंडित कौन है ? जो परके भावकूं जाणिकरि ग्रहण करै, अर्थात् परके भावकूं नाहीं ग्रहण करै। आगैं कह्या है, परद्रव्यकूं ग्रहण करै है सो अपराधी है, बंधनमैं पडै है । अपराध न करे सो बंधनमैं न पडै है । आगैं अपरा-

धका स्वरूप कह्या है। आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो शुद्धआत्माका ग्रहण करि मोक्ष कह्या, सो आत्मा प्रतिक्रमणादिकरि दोषनितैं छूटे है, शुद्ध आत्माका ग्रहण करि कहां होय है ताका उत्तर है, जो प्रतिक्रमणाप्रतिक्रमणतैं रहित तीसरी अप्रतिक्रमणादिस्वरूप अवस्था शुद्ध आत्माहीका ग्रहण है, सो याहीतैं आत्मा निर्दोष होय है। ऐसैं गाथा वीसमैं मोक्षाधिकार संपूर्ण किया है। यामैं टीकाकारकृत कलशरूप काव्य तेरा हैं।

आगैं सर्वविशुद्धज्ञानरूप आत्माका अधिकार है। तहां प्रथम ही आत्माकै परद्रव्यका कर्ता भोक्तापणाका अभाव दिखाया है। तहां पहले तो कर्तापणाका अभाव दृष्टांतपूर्वक चारि गाथामैं कह्या है। पीछैं कर्तापणा जीव अज्ञानतैं माने हैं, सो अज्ञानकी सामर्थ्य दिखाई है गाथा दोयमैं। आगैं अज्ञानीकूं मिथ्यादृष्टि कह्या है गाथा दोयमैं। आगैं परद्रव्यका आत्माकै भोक्तापणाका भी स्वभाव नाहीं है ऐसैं कह्या है, अर अज्ञानीकूं भोक्ता कह्या है, गाथा दोयमैं। आगैं ज्ञानी कर्मफलका भोक्ता नाहीं हैं ऐसैं कह्या है गाथा दोयमैं। आगैं जे आत्माकूं कर्ता माने हैं तिनिकै मोक्ष नाहीं है ऐसैं तीन गाथामैं कह्या है। आगैं अज्ञानी अपने भावकर्मका कर्ता है ऐसैं युक्तिकरि साध्या है गाथा चारिमैं। आगैं आत्माकै कर्तापणा अर अकर्तापणा जैसैं है, तैसैं स्याद्वादकरि साध्या है गाथा तेरामैं। आगैं बौद्धमती ऐसैं माने हैं, जो कर्मकूं करै और है भोगवै और है ताका निषेध युक्तिकरि चारि गाथामैं कीया है। आगैं कर्तृकर्मके भेद अभेद जैसैं है तैसैं नयविभागकरि साध्या है, दृष्टांतपूर्वक गाथा सातमैं, आगैं निश्चयव्यवहारके कथनकूं खडीका दृष्टांतकरि स्पष्ट कह्या है दश गाथा मैं। आगैं कह्या है, जो रागद्वेषमोहकरि अपना दर्शनज्ञानचारित्रकाही घात होय है छह गाथामैं। आगैं कह्या है, अन्यद्रव्यकै अन्यद्रव्य किछू करिसकै नाहीं, गाथा एकमैं। आगैं कह्या है, जो स्पर्श आदि पुद्गलके गुण हैं ते आत्माकूं किछू कहै नाहीं, जो हमकूं ग्रहणकरि अज्ञानी जीव इनितैं वृथा राग, द्वेष, मोह करै है, ऐसैं दश गाथाकरि वर्णन है।

आगैं चारित्रका विधान कह्या है। तामैं ज्ञानचेतनाका तौ अनुभवन अर कर्मचेतना कर्मफलचेतनाका त्याग कैसैं करै ताकी रीति कही है गाथा चारिमैं। आगैं जो कर्मकूं अर कर्मफलकूं वेदता संता आपकूं तिसरूप करे है, सो नवीन कर्मकूं बांधे है ऐसैं कह्या है गाथा तीनमैं। इहां टीकाकार इस कर्मचेतना अर कर्मफलचेतनाका विधानकूं स्पष्ट किया है। तहां कर्मचेतनाका तो अतीत वर्तमान अनागत कर्मके त्यागके कृत कारित अनुमोदनाके मन वचन कायकरि गुणचास गुणचास भंग करि त्यागका विधान दिखाया है। अर कर्मफलचेतनाका त्यागका एकसो अठतालीस कर्मप्रकृतिनिके नाम लेकरि त्यागका विधान दिखाया है। आगैं कर्तृकर्मभावतैं ज्ञानकूं न्यारा दिखाय अर अन्य समस्त अन्यद्रव्यनितैं न्यारा दिखाया है गाथा पंधरामैं। आगैं कह्या है, जो आत्मा अमूर्तिक है, तातैं याकै पुद्गलमयी देह नाहीं है गाथा तीनमैं। आगैं कह्या, द्रव्यलिंग है सो देहमयी है, सो आत्माके मोक्षका कारण नाहीं है, दर्शनज्ञानचारित्र अपना भाव है, सोही मोक्षका कारण है ऐसैं गाथा तीनमैं वर्णन है।

आगैं उपदेश किया है, जो मोक्षका अर्थी दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षमार्गविषैं ही आत्माकूं प्रवर्तावो। आगैं द्रव्यलिंगहीविषैं जे ममत्व करे हैं तिनिकै मोक्ष नाहीं होय है, ऐसैं कह्या है। आगैं कह्या है, जो व्यवहारनय तौ मुनि श्रावककै लिंगकूं मोक्षमार्ग कहे है, अर निश्चयनय काहू ही लिंगकूं मोक्षमार्ग कहै नाहीं है। आगैं इस ग्रंथकूं पूर्ण किया है, ताका पढनेका अर्थ जाननेका फलकी गाथा एक कहि ग्रंथ पूर्ण किया है। आगैं टीकाकारके वचन हैं, जो इस ग्रंथमैं आत्माकूं ज्ञानमात्र कहि अनुभव कराया, अर आत्मा अनंतधर्मा है, सो स्याद्वादतैं साधे है, सो ज्ञानमात्र कहनेमैं स्याद्वादतैं विरोध आवै, ताकै परिहारके अर्थि तथा एकही ज्ञानमैं उपायभाव अर उपेयभाव कैसे बनै, ताके साधनेके अर्थि स्याद्वादाधिकार अर उपायोपेयाधिकार इस सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारविषैं व्याख्यान किया है। तहां एकही ज्ञानविषैं "तत् अतत्। एक अनेक। सत् असत्। नित्य अनित्य" इनि भावनिकै १४ भंगकरि तिनिके १४ काव्य कहि अर स्याद्वादकरि ज्ञानमात्रभावविषैं

अनेकांतात्मक वस्तुपना दिखाया है अर ज्ञानमात्र कहनेका प्रयोजन दिखाया है, जो लक्षणकी प्रसिद्धिकरि लक्ष्य प्रसिद्ध होय है, तातैं ज्ञान लक्षण है, आत्मा लक्ष्य है ऐसा वर्णन है। बहुरि एक ज्ञानक्रियाही रूप परिणमति (मिति) आत्मामैं अनंतशक्ति प्रगट है। तिनिमैंसूं सैंतालीस शक्तिके नाम लक्षण कहे हैं। आगैं उपायोपेयभावका वर्णन है, तहां आत्मा परिणामी है, तातैं साधकपणा अर सिद्धपणा दोऊ भाव भलेप्रकार बने हैं, ऐसैं कहि स्याद्वादकी महिमा करि, इस समयसार शुद्ध आत्माका अनुभवकी बढाई करि, ग्रंथ पूर्ण किया है। इस सर्वविशुद्धज्ञानके अधिकारमैं गाथा एकसौ सात है अर कलशरूप काव्य तीयासी ८३ हैं। सर्व अधिकारनिकी गाथा चारसौ चौदा ४१४ हैं अर कलशरूप काव्य दोयसौ सतहत्तरि हैं २७७। अब ग्रंथकी वचनिकाका प्रारंभ है।

दोहा— **समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।**
मुद्रा जिन निरग्रंथता, नमूं करै सब चैन ॥१॥

अथानंतर संस्कृतटीकाकार श्रीमान् अमृतचंद्र नामा आचार्य ग्रंथकी आदिकै विषै मंगलके अर्थि इष्टदेवकूं नमस्कार करे हैं।

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

याका अर्थ—समय कहिये जीव नामा पदार्थ, ताविषैं सार जो द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्मरहित शुद्ध आत्मा, ताकै अर्थि मेरा नमस्कार होऊ। कैसा है? 'भावाय' कहिये शुद्ध सत्तारूप वस्तु है। इस विशेषणकरि सर्वथाअभाववादी जो नास्तिकताका, परिहार है। बहुरि कैसा है? 'चित्स्वभावाय' कहिये चेतनागुणरूप है स्वभाव जाका। इस विशेषणकरि गुणगुणिकै सर्वथाभेद माननेवाला जो नैयायिक, ताका निषेध है। बहुरि कैसा है? 'स्वानुभूत्या चकासते' कहिये अपनी

ही अनुभवनरूप क्रिया, ताकरि प्रकाश करता है–आपकूं आपहीकरि जाने है, प्रगट करे है। इस विशेषणकरि आत्माकूं तथा ज्ञानकूं सर्वथापरोक्ष ही माननेवाले जे जैमिनीय भट्ट प्रभाकर मतके मीमांसक तिनिका व्यवच्छेद है, तथा ज्ञान अन्यज्ञानकरि जान्याजाय है आप आपकूं जानै नाहीं ऐसैं मानते जे नैयायिक तिनिका प्रतिषेध है। बहुरि कैसा है? 'सर्वभावांतरच्छिदे' कहिये सर्व जीव अजीव जे आपतें अन्य चराचरपदार्थ, तिनिकूं सर्वक्षेत्रकालसंबंधी सर्वविशेषणनिकरि सहित एककाल जाननेवाला है। इस विशेषणकरि सर्वज्ञका अभाव माननेवाले जे मीमांसक आदि तिनिका निराकरण है। ऐसैं विशेषणनिकरि अपना इष्ट देव सिद्ध करि नमस्कार किया है।

भावार्थ—इहां मंगलके अर्थि शुद्ध आत्माकूं नमस्कार किया है, सो कोई पूछे है–इष्टदेवका नाम ले नमस्कार क्यों नहीं किया? ताका समाधान—जो यह अध्यात्मग्रंथ है, तातैं जो इष्टदेवका सामान्यस्वरूप सर्वकर्मरहित सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्माही है। सो समयसार कहनेमैं इष्टदेव आयगया, एक ही नाम लेनेमैं अन्यवादी मतपक्षका विवाद करेहैं, तिनि सर्वका निराकरण विशेषणनितैं जनाया। अन्यवादी अपने इष्टदेवका नाम लेहैं, ताका तौ अर्थ बाधासहित है। बहुरि स्याद्वादी जैनीनिकै सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्मा इष्ट है, ताकै नाम कथंचित् सर्व ही सत्यार्थ संभवे हैं। इष्टदेवकूं परमात्मा भी कहिये, परमब्रह्म कहिये, परमज्योति कहिये, परमेश्वर कहिये, शिव कहिये, निरंजन कहिये, निष्कलंक कहिये, अक्षय कहिये, अव्यय कहिये, शुद्ध, कहिये, बुद्ध कहिये, अविनाशी कहिये, अनुपम कहिये, अच्छेद्य, अभेद्य, परमपुरुष, निराबाध, सिद्ध, सत्यात्मा, चिदानंद, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हत्, जिन, आप्त, भगवान्, समयसार इत्यादि हजारां नामकरि कहिये। किछू विरोध नाहीं। सर्वथा एकांतवादीनिकै भिन्न नाममैं विरोध है। अर्थ यथार्थ समझना ऐसैं जानना।

दोहा— **प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।**
सब ज्ञाता लखिकै नमौ, समयसार सबभूप ॥२॥

आगें सरस्वतीकूं नमस्कार करे हैं।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

याका अर्थ—अनेक है अंत कहिये धर्म जामैं ऐसा जो ज्ञान तथा वचन तिसमयी मूर्ति है सो नित्य कहिये सदा ही प्रकाशतां कहिये प्रकाशरूप होऊ। कैसी है? अनंत है धर्म जामैं ऐसा अर प्रत्यक् कहिये परद्रव्यनितैं तथा परद्रव्यके गुणपर्यायनितैं भिन्न अर परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपने विकारनितैं कथंचित् भिन्न एकाकार जो आत्मा ताका तत्त्व कहिये असाधारण सजातीय विजातीय द्रव्यनितैं विलक्षण निजस्वरूप ताही पश्यंती कहिये अवलोकन करती है।

भावार्थ—इहां सरस्वतीकी मूर्तिकूं आशीर्वचनरूप नमस्कार किया है, सो लौकिकमैं सरस्वतीकी मूर्ति प्रसिद्ध है, परंतु यथार्थ नाहीं, तातैं ताका यथार्थ वर्णन किया है। जो यह सम्यग्ज्ञान है सो सरस्वतीकी सत्यार्थ मूर्ति है, तहां संपूर्णज्ञान तो केवलज्ञान है, जामैं सर्वपदार्थ प्रत्यक्ष प्रतिभासे हैं, सोही अनंतधर्मनिसहित आत्मतत्त्वकूं प्रत्यक्ष देखे है। बहुरि ताहीके अनुसार श्रुतज्ञान है सो परोक्ष देखे है, तातैं यह भी ताहीकी मूर्ति है। बहुरि द्रव्यश्रुत वचनरूप है, सो यह भी ताहीकी मूर्ति है, जातै वचनद्वारकरि अनंतधर्मा आत्माकूं यह जनावे है। ऐसैं सर्वपदार्थनिके तत्त्वकूं जनावती ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकांतमयी सरस्वतीकी मूर्ति है, याहीतैं सरस्वतीका नाम वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादि अनेक कहिये है। अनंतधर्मनिकूं स्यात्पदतैं एक धर्मीविषैं अविरोधरूप साधे है, तातैं सत्यार्थ है। अन्यवादी कोई सरस्वतीकी मूर्ति अन्यथा थापे हैं, सो पदार्थकूं सत्यार्थ कहनहारी नाहीं। इहां कोई पूछे—आत्माका अनंतधर्मा विशेषण किया, सो ते अनंतधर्म कौन कौन हैं? तहां कहिये—जो वस्तुमैं सत्पणा, वस्तुपणा, प्रमेयपणा, प्रदेशपणा, चेतनपणा, अचेतनपणा, मूर्तिकपणा, अमूर्तिकपणा इत्यादि तौ गुण हैं। बहुरि तिनि गुणनिका

परिणमनरूप पर्याय तीनकालसंबंधी समयसमवर्ती अनंत हैं। वहुरि एकपणा, अनेकपणा, नित्यपणा, अनित्यपणा, भेदपणा, अभेदपणा, शुद्धपणा, अशुद्धपणा आदि अनेकधर्म हैं, ते सामान्यरूप तो वचनगोचर हैं, अर विशेषवचनतैं अगोचर हैं, ते अनंत हैं ज्ञानगम्य हैं। ऐसैं आत्मा भी वस्तु है, तासैं भी अपने अनंत धर्म हैं। तिनिमैं चेतनपणा असाधारण हैं, अन्य अचेतनद्रव्यमैं नाहीं। अर सजातीय जीवद्रव्य अनंत हैं, तिनिमैं हैं तोऊ अपना अपना जुदाजुदा निजस्वरूपकरि कह्या है। जातैं द्रव्यद्रव्यनिके प्रदेशभेद हैं, तातैं काहूका काहूमैं मिलता नाहीं। सो यह चेतनपणा अपने अनंतधर्मनिमैं व्यापक है, तातैं याहीकूं आत्माका तत्त्व कह्या है, ताकूं यह सरस्वतीकी मूर्ति देखे है, अर दिखावे है, तातैं याकूं आशीर्वादरूप वचन कह्या है—जो सदा प्रकाशरूप रहौ, यातैं सर्वप्राणीनिका कल्याण होय है ऐसैं जानना। आगैं टीकाकार इस ग्रंथका व्याख्यान करनेका फलकूं चाहतासंता प्रतिज्ञा करे हैं।

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

याका अर्थ—श्रीमान् अमृतचंद्र आचार्य कहे हैं, जो इस समयसार कहिये शुद्धात्मा तथा यह ग्रंथ, ताकी व्याख्या कहिये कथनी तथा टीका, ताहीकरि मेरी अनुभूति कहिये अनुभवनक्रियारूप परिणति, ताकै परमविशुद्धि कहिये समस्त रागादिविभावपरिणतिरहित उत्कृष्ट निर्मलता होऊ। कैसी है यह मेरी परिणति? परपरिणतिकूं कारण जो मोहनामा कर्म, ताका अनुभाव कहिये उदयरूप विपाक, तातैं अनुभाव्य कहिये रागादिक परिणाम तिनिकी जो व्याप्ति ताकरि निरंतर कल्माषित कहिये मैली है। वहुरि मैं कैसा हूं? द्रव्यदृष्टिकरि शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूं।

भावार्थ—आचार्य कहे हैं, जो शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिकरि तो मैं शुद्धचैतन्यमात्र मूर्ति हूं। परंतु मेरी परिणति मोहकर्मके उदयके निमित्तकरि मलिन है, रागादिरूप होय रही है। सो इस शुद्ध आत्माकी कथनीरूप जो यह समयसार ग्रंथ, ताकी टीका करनेका फल यह चाहूं हूं, जो मेरी परिणति रागादिकतैं रहित होयकरि शुद्ध होऊ, मेरै शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होऊ, अन्य किछू ख्याति, लाभ, पूजादिक नाहीं चाहूं हूं। ऐसैं आचार्यनें टीका करनेकी प्रतिज्ञा-गर्भित याका फलकी प्रार्थना करी है। आगैं मूलगाथासूत्रकार श्रीकुंदकुंदाचार्य, सो ग्रंथकी आदिविषैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करे हैं।

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड, मिणमो सुयकेवलीभणियम् ॥१॥

वन्दित्वा सर्वसिद्धान्ध्रुवामचलामनौपम्यां गतिं प्राप्तान्।
वक्ष्यामि समयप्राभृतमिदं श्रुतकेवलिभणितम् ॥ १ ॥

आत्मख्यातिः—अथ सूत्रावतारः वंदित्तु इत्यादि—

अथ प्रथमत एव स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमवलंबमानामनादिभावांतरपरपरिवृत्तिविश्रांतिवशेनाचलत्वमुपगतामखिलोपमानविलक्षणाद्भुतमाहात्म्यत्वेनाविद्यमानौपम्यामपवर्गसंज्ञकां गतिमापन्नान् भगवतः सर्वसिद्धान् सिद्धत्वेन साध्यस्यात्मनः प्रतिच्छंदस्थानीयान् भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि परात्मनि च निधायानादिनिधनश्रुतप्रकाशितत्वेन निखिलार्थसार्थसाक्षात्कारिश्रुतकेवलिप्रणीतत्वेन श्रुतकेवलिभिः स्वयमनुभवद्भिरभिहितत्वेन च प्रमाणतामुपगतस्यास्य समयप्रकाशकस्य प्राभृताह्वयस्यार्हत्प्रवचनावयस्य स्वपरयोरनादिमोहप्रहाणाय भाववाचा द्रव्यवाचा च परिभाषणमुपक्रम्यते ॥१॥ तत्र तावत्समयएवाभिधीयते—

याका अर्थ—आचार्य कहे हैं, मैं सर्व सिद्धनिकूं वंदिकरि, यह समयसार नाम प्राभृत है ताही कहूंगा। कैसैं हैं सिद्ध ? ध्रुव अर अचल अर अनौपम्य, इनि तीन विशेषणकरि युक्त गतीकूं प्राप्त भये हैं। बहुरि कैसा है यह समयप्राभृत ? श्रुतकेवलीनिकरि कह्या है।

टीकाकारके वचन—तहां, अथशब्द तो मंगलके अर्थमें है। बहुरि प्रथमत एव कहिये ग्रंथकी आदिहीविषैं सिद्ध भगवान् हैं, तिनि सर्वहीकूं भावद्रव्यस्तवन करि अपने आत्माविषैं अर परके आत्माविषैं स्थापि करि, इस समय नाम प्राभृतका भाववचन अर द्रव्यवचनकरि परिभाषण आरंभिये है, ऐसैं श्रीकुंदकुंदाचार्य कहे हैं। कैसे हैं सिद्ध भगवान्? सिद्धनामतैं साध्य जो आत्मा, ताकै प्रतिच्छंदके स्थान हैं, जिनिका स्वरूप संसारी भव्य जीव चिंतवन करि, तिनिसमान अपना स्वरूपकूं ध्याय तिनिसारिखे होय हैं। बहुरि चारीगतितैं विलक्षण जो पंचमगति मोक्ष, ताही पाइये हैं। कैसी है पंचमगति? स्वभावतैं उपजी हैं, तातैं ध्रुवपणाकूं अवलंबे हैं, इस विशेषणकरि चारी गति परनिमित्ततैं होय हैं, तातैं ध्रुव नाहीं—विनाशीक है, ताका व्यवच्छेद भया। बहुरि कैसी है? अनादितैं अन्यभाव जे पर, तिनिके निमित्ततैं भई परविषैं परिवृत्ति कहिये भ्रमण, ताकी विश्रांति कहिये अभाव ताका वशकरि अचलपणाकूं प्राप्त भई है। इस विशेषणकरि चारी गतीकै परनिमित्ततैं भया भ्रमण है, ताका व्यच्छेद भया। बहुरि कैसी है? समस्त जे जगतमैं उपमान पदार्थ तिनितैं विलक्षण अद्भुत माहात्म्यकरि नाहीं विद्यमान है काहूकी उपमा जाकै ऐसी है। इस विशेषण करि चारी गतीकै परस्पर कथंचित् समानपणा पाईये है, ताका व्यवच्छेद भया। बहुरि कैसी है? अपवर्ग है नाम जाका। इस विशेषणतैं धर्म, अर्थ, काम, इनिकूं त्रिवर्ग कहिये हैं; सो मोक्षगति इस वर्गमैं नाहीं, यातैं अपवर्ग नाम पाया है। ऐसी पंचमगतीकूं सिद्ध भगवान् प्राप्त भये हैं।

बहुरि-कैसा है यह समयप्राभृत? अनादिनिधन जो श्रुत कहिये परमागम शब्दब्रह्म, ताकरि प्रकाशितपणाकरि, बहुरि समस्तपदार्थनिका सार्थ कहिये समूह, ताके साक्षात्करणहारे जे केवली भगवान् सर्वज्ञ, तिनिकरि प्रणीतपणाकरि, तथा तिनि केवलीनिके निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले जे श्रुतकेवली गणधरदेव आप आप अनुभव करते तिनिकरिभाषितपणाकरि प्रमाणताकूं प्राप्त भया है, अन्यवादीनिके आगमकीज्यों छद्मस्थहीका कल्प्या नाहीं है, जातैं अप्रमाण होय। बहुरि समय जो

सर्वपदार्थ तथा जीव नामा पदार्थ ताका प्रकाशक है । बहुरि अरहंत भगवानका प्रवचन जो परमागम ताका अवयव है अंश है। ऐसा समयप्राभृतका मैं अपना अर परका अनादिकालतैं भया जो मोह अज्ञान मिथ्यात्व ताका नाश होनेके अर्थि परिभाषण करूंगा ।

भावार्थ—इहां सूत्रमैं आचार्यनें वक्ष्यामि क्रिया कही, ताका अर्थ टीकाकार वच परिभाषणे धातुतैं परिभाषण अर्थ लेकरि कह्या है, सो याका ऐसा आशय सूचे है, जो चौदहपूर्वमैं ज्ञानप्रवाद नामा छट्टा पूर्व है, तामैं बारह वस्तु अधिकार हैं, तिनिमैं एक एक वस्तुमैं वीस वीस प्राभृत अधिकार हैं, तिनिमैं दशमावस्तुमैं समय नामा प्राभृत है, ताका परिभाषण आचार्य करे हैं, सूत्रनिकी दश जाति कही है । तिनिमैं एक जाति परिभाषा भी है, तहां जो अधिकारके यथास्थान अर्थमैं सूचै सो परिभाषा कहिये, सो इस समय नामा प्राभृतके सूल सूत्रनिका शब्दनिका ज्ञान तो पहिलै बडे आचार्यनिकै था, अर तिसके अर्थका ज्ञान आचार्यनिकी परिपाटीके अनुसार श्रीकुंदकुंद आचार्यको भी था, सो तिनिनें यह समयप्राभृतके परिभाषा सूत्र बांधे हैं । सो तिस प्राभृतके अर्थकूं ही सूचै है ऐसा जानना ।

बहुरि मंगल अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कार किया अर तिनिका सर्व ऐसा विशेषण किया, सो सिद्ध अनंत हैं, अन्यमती शुद्ध आत्मा एक कहे हैं, तिनिका व्यवच्छेद जानना । बहुरी संसारीकै शुद्ध आत्मा साध्य है, सो साक्षात् शुद्ध आत्मा सिद्ध है, तिनिकूं नमस्कार उचित है । अर काहू इष्टदेवका नाम न लिया ताकी चरचा टीकाकारके मंगलपरी करी है, सो इहां भी जाननी । बहुरी श्रुतकेवलीशब्दका अर्थमैं श्रुत तो अनादिनिधनप्रवाहरूप आगम कह्या, अर केवलीशब्दकरि सर्वज्ञ अर परमागमके जाननहारे श्रुतकेवली कहे । तिनितैं समयप्राभृतकी उत्पत्ति कही, प्रमाणता कही, अर अपनी ही बुद्धिकल्पित कहनेका निषेध भया, अन्यवादी छद्मस्थ अपनी बुद्धितैं पदार्थका स्वरूप जैसैंतैसैं कह करी विवाद करे हैं तिनिका असत्यार्थपना जनाया । बहुरि अभिधेय, संबंध, प्रयोजन इस ग्रंथके प्रगट ही हैं । अभिधेय तो शुद्ध आत्माका स्वरूप है, अर संबंध ताके

वाचक या ग्रंथमैं शब्द हैं तिनिकै वाच्यवाचकरूप है ही, बहुरि प्रयोजन शुद्धात्माका स्वरूपकी प्राप्ति होना है। ऐसा प्रथमगाथासूत्रका तात्पर्यार्थ जानना।

आगैं प्रथमगाथामैं समयका प्राभृत कहनेकी प्रतिज्ञा करी, तहां आकांक्षा उपजी है, जो—समय कहां? तहां प्रथम ही समयकूं कहे हैं। गाथा—

जीवो चरित्तदंसणणाणठ्ठिद तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मुवदेसठ्ठिदं च तं जाण परसमयं॥ २॥

जीवश्चरित्रदर्शनज्ञानस्थितस्तं हि स्वसमयं जानीहि।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम्॥ २॥

आत्मख्यातिः—योयं नित्यमेव परिणामात्मनि स्वभावे अवतिष्ठमानत्वात् उत्पादव्ययध्रौव्यैक्यानुभूति लक्षणया सत्तयानुस्यूतश्चैतन्यस्वरूपत्वान्नित्योदितविशददृशिज्ञप्तिज्योतिरनंतधर्माधिरूढैकधर्मित्वादुद्योतमानद्रव्यत्वः क्रमाक्रमप्रवृत्तविचित्रभावस्वभावत्वादुत्संगितगुणपर्यायः स्वपराकारावभासनसमर्थत्वादुपात्तवैश्वरूप्यैकरूपः प्रतिविशिष्टावगाहगतिस्थितिवर्त्तनानिमित्तरूपत्वाभावादसाधारणचिद्रूपतास्वभावसद्भावाच्चाकाशधर्माधर्मकालपुद्गलेभ्यो भिन्नोऽत्यंतमनंतद्रव्यसंकरोपि स्वरूपादप्रच्यवनात् टंकोत्कीर्णचित्स्वभावो जीवो नाम पदार्थः स समयः। समयत एकत्वेन युगपज्जानाति गच्छति चेति निरुक्तेः। अयं खलु यदा सकलस्वभावभासनसमर्थविद्यासमुत्पादकविवेकज्योतिरुद्गमनात्समस्तपरद्रव्यात्प्रच्युत्य दृशिज्ञप्तिस्वभावनियतवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकत्वगतत्वेन वर्तते तदा दर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वात्स्वमेकत्वेन युगपज्जानन् गच्छंश्च स्वसमय इति। यदा त्वनाद्यविद्याकंदलीमूलकंदायमानमोहानुवृत्तितया दृशि ज्ञप्तिस्वभावनियतवृत्तिरूपादात्मतत्त्वात्प्रच्युत्य परद्रव्यप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावैकगतत्वेन वर्तते तदा पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितत्वात्परमेकत्वेन युगपज्जानन् गच्छंश्च परसमय इति प्रतीयते। एवं किल समयस्य द्वैविध्यमुद्भावति॥ २॥ यथैतद्भाष्यते—

याका अर्थ—हे भव्य, जो निश्चयकरि जीव है, सो दर्शनज्ञानचारित्रविषैं तिष्ठ्या होय ताहि तू स्वसमय जान। बहुरि पुद्गलकर्मके प्रदेशनिविषैं तिष्ठ्या होय ताहि परसमय जान।

टीका—जो यहु जीवनामा पदार्थ है सो ही समय है। जातैं समयशब्दका ऐसा अर्थ है,

जो—सम् ऐसा तो उपसर्ग है, बहुरि अय गतौ धातु है ताका गमन अर्थ भी है अर ज्ञान अर्थ भी है, उपसर्गका एकपणा अर्थ है, तातैं एककाल जानना अर परिणमना दोऊ क्रिया होय सो समय, सो ही जीव नामा पदार्थ है। एकैकाल परिणमै भी है अर जानै भी है, ऐसैं दोऊ क्रिया एककाल जाननी। सो कैसा है? नित्य ही परिणामस्वभावविषैं तिष्ठनेतैं उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकतारूप जो अनुभूति सो है लक्षण जाका ऐसी जो सत्ता, ताकरि अनुस्यूत है—सहित है। इस विशेषणकरि नास्तिकवादी जीवकी सत्ता मानै नाहीं ताका निराकरण भया, तथा सांख्यमती पुरुषकूं अपरिणामी मानै हैं, ताका परिणामस्वभाव कहनेतैं व्यवच्छेद भया, तथा नैयायिक वैशेषिकमती सत्ताकूं नित्य ही मानै हैं, तथा बौद्धमती सत्ताकूं क्षणिक ही मानै हैं तिनिका उत्पादव्ययध्रौव्यरूप कहनेतैं निराकरण भया।

बहुरि कैसा है? चैतन्यस्वरूपपणातैं नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञानज्योतिःस्वरूप है, चैतन्यका परिणमन दर्शनज्ञानरूप है। इस विशेषणकरि सांख्यमती चैतन्यकूं ज्ञानाकारस्वरूप नाहीं मानै हैं, ताका निराकरण भया। बहुरि कैसा है? अनंतधर्मनिविषैं अधिरूढ़ तिष्ठ्या जो एकधर्मीपणा तातैं प्रगट भया है द्रव्यपणा जाका, अनंतधर्मनिका एकपणा सो ही द्रव्यपणा है। इस विशेषणकरि वस्तुकूं धर्मनितैं रहित माननेवाला बौद्धमती ताका निषेध भया। बहुरि कैसा है? क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तैं जे अनेअभाव तिस स्वभावपणातैं अंगीकार करे हैं गुणपर्याय जाके। पर्याय तो क्रमवर्ती हैं अर गुण सहवर्ती हैं तिनिकूं अक्रमरूप कहना। इस विषेशणकरि पुरुषकूं निर्गुण मानै ऐसे सांख्यादिक तिनिका निरास है।

बहुरि कैसा है? अपना अर अन्यद्रव्यनिका आकारके प्रकाशनेविषैं समर्थपणातैं पाया है समस्तरूप जानैं झलकै ऐसा एकरूपपणा जानैं, अनेकवस्तुनिका आकार जामैं झलकै ऐसा एकज्ञानका आकाररूप है। इस विशेषणकरि ज्ञान आपहीकूं जानै परकूं न जानै ऐसा एकाकार माननेवालाका तथा आपकूं न जानै परहीकूं जानै ऐसा अनेकाकार ही माननेवालाका व्यवच्छेद

भया। वहुरि कैसा है? न्यारे न्यारे द्रव्यनिके गुण जे अवगाहनगतिस्थिति वर्तना हेतुपणा तथा रूपीपणा तिनिके अभावतैं अर असाधारणचैतन्यरूपपणास्वभावके सद्भावतैं अन्यद्रव्य जे आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल इनितैं भिन्न है। इस विशेषणतैं एकही ब्रह्मवस्तु माननेवालाका व्यवच्छेद भया। वहुरि कैसा है? अनंत अन्यद्रव्यनितैं अत्यंत संकर कहिये एकक्षेत्रावगाहरूप होतैं भी अपने स्वरूपतैं न छूटनेतैं टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। इस विशेषणतैं वस्तुस्वभावका नियम जनाया है। ऐसा जीव नामा पदार्थ समय है। सो यह जिस काल सकलपदार्थनिके स्वभाव भासनेविषैं समर्थ ऐसी विद्या जो केवलज्ञान ताका उपजावनहारा जो भेदज्ञानज्योति ताका उदय होनेतैं समस्त परद्रव्यनितैं छूटिकरि दर्शनज्ञानविषैं निश्चितप्रवृत्तिरूप जो आत्मतत्त्व तिसतैं एकपणारूप लीन होय प्रवर्तै, तिसकाल दर्शनज्ञानचारित्रविषैं तिष्ठनेतैं अपने स्वरूपकूं एकतारूप करि एककाल जानता तथा परिणमता संता स्वसमय कहावे है।

वहुरि जिस काल अनादिअविद्यारूप कंदली है मूल जाका ऐसा कंदज्यौं पुष्ट भया जो मोह, ताके उदयके अनुसार प्रवृत्तिके आधीनपणाकरि दर्शनज्ञानस्वभावविषैं निश्चितवृत्तिरूप जो आत्मतत्त्व, तातैं छूटिकरि, अर परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा जो मोहरागद्वेषादिभाव तिनिविषैं एकतारूप लीन होय प्रवर्तै, तिस काल पुद्गलकर्मके प्रदेश जे कार्मणस्कंध तिनिविषैं तिष्ठनेतैं, परद्रव्यकूं आपतैं एकपणा करि एककाल जाणता तथा रागादिरूप परिणमता संता, परसमय ऐसा प्रतीतिरूप कीजिये है। ऐसैं इस जीव नामा पदार्थके स्वसमय परसमय ऐसा दोय प्रकारपणा प्रगट होय है।

भावार्थ—जीव नामा वस्तूकूं पदार्थ कह्या, सो पद तो जीव ऐसा अक्षरसमूहरूप है और इस पदकरि द्रव्यपर्यायरूप अनेकांतात्मकपणा निश्चित कीजिये सो पदार्थ है। सो ऐसा पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है। वहुरि दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है। वहुरि अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है। वहुरि द्रव्य है सो वस्तु है। वहुरि गुणपर्यायवान् है। वहुरि स्वपरप्रकाशकज्ञान अनेकाकाररूप एक है। वहुरि आकाशादिकतैं भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है। वहुरि अन्यद्रव्य-

नितैं एकक्षेत्रावगाहरूप तिष्ठे है तोऊ अपने स्वरूपतैं नाहीं छूटे है। ऐसा जीव नामा पदार्थ समय है सो यह जब अपने स्वभावविषैं तिष्ठे, तब तो स्वसमय है, अर परस्वभाव रागद्वेषमोहरूप होय तिष्ठै तब परसमय है, ऐसैं याकै द्विधापणा आवे है।

आगैं आचार्य कहे हैं, जो यह समयके द्विविधपणा सुंदर नाहीं, जातैं यह बाधासहित है सो बाधिये है। गाथा—

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहाएयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥ ३ ॥

एकत्वनिश्चयगतः समयः सर्वत्र सुन्दरो लोके।
बन्धकथा एकत्वे तेन विसंवादिनी भवति ॥ ३ ॥

आत्मख्यातिः—समयशब्देनात्र सामान्येन सर्वएवार्थोऽभिधीयते। समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति निरुक्तेस्ततः सर्वत्रापि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्यात्मनि लोके ये यावंतः केऽप्यर्थास्ते सर्वएव स्वकीयद्रव्यांतर्मग्नानंतस्वधर्मचक्रचुंबिनोपि परस्परमचुंबतोत्यंतप्रत्यासत्तावपि नित्यमेव स्वरूपादपतंतः पररूपेणापरिणमनादविनष्टानंतव्यक्तित्वाट्टंकोत्कीर्ण इव तिष्ठंतः समस्तविरुद्धाविरुद्धकार्यहेतुतया शश्वदेव विश्वमनुगृह्णतो नियतमेकत्वनिश्चयगतत्वेनैव सौंदर्यमापद्यन्ते। प्रकारांतरेण सर्वसंकरादिदोषापत्तेः। एवमेकत्वे सर्वार्थानां प्रतिष्ठिते सति जीवाह्वयस्य समयस्य बंधकथाया एव विसंवादत्वापत्तिः। कुतस्तन्मूलपुद्गलकर्मप्रदेशस्थितत्वमूलपरसमयोत्पादितमेतस्य द्वैविध्यं। अतः समयस्यैकत्वमेवावतिष्ठते ॥ ३ ॥ तथैतद सुलभत्वेन विभाव्यते—

अर्थ—समय है सो एकत्वनिश्चयविषैं प्राप्त है, सो सर्वलोकविषैं सुंदर है, तिस कारणकरि एकत्वविषैं अन्यके बंधकी कथा है सो विसंवादिनी कहिये निंदा करावनहारी है।

टीका—इहां समयशब्दकरि सामान्यकरि सर्व ही पदार्थ कहिये। जातैं समयशब्दकी ऐसी निरुक्ति है—जो 'समयते' कहिये एकीभावकरि अपने गुणपर्यायनिकूं प्राप्त होय परिणमे सो समय है। तातैं सर्व ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्यस्वरूप लोकविषैं जे जितने कोई

पदार्थ हैं, ते सर्व ही अपने द्रव्यविषैं अंतमग्न जे अपने अनंतधर्म, तिनिके समूहकूं चूंवते स्पर्शते हैं, तोऊ परस्पर अन्यकूं अन्य नाहीं स्पर्शते हैं। बहुरि अत्यंतनिकट एकक्षेत्रावगाहरूप तिष्ठे हैं, तोऊ सदाकाल निश्चयतैं अपने स्वरूपतैं नाहीं चिगते हैं यातैं पररूप नाहीं परिणमनतें अविनष्ट जे अपनी व्यक्ति तिनिकरि जैसी टाकीकी उपरी मूर्ति होय तैसे शाश्वत तिष्ठते है। याहीतैं विरुद्धकार्य जे स्वभावतैं विपरीतकार्य अर विरुद्ध जे स्वभावरूपकार्य, तिनिका हेतुपणाकरि निरंतर समस्तनैं परस्पर उपकार करे हैं, परंतु निश्चयकरि एकत्वनिश्चयपणाकूं प्राप्त भये ही सुंदरपणाकूं पावे हैं। जो अन्यप्रकार होय, तौ संकरव्यतिकरादि दोष हैं ते सर्वही आय पडें। ऐसैं सर्वपदार्थनिके भिन्न-भिन्न एकपणा ठहरता संता जीव नामा जो समय, ताकै बंधकी कथातैं विसंवादकी आपत्ति होय है। काहेतैं? जातैं बंधकथाका मूल जो पुद्गलकर्मके प्रदेशनिमैं तिष्ठना सो ही है मूल जाका, ऐसा जो परसमयपणा, ताकरि उपजाया जीवकै परसमयस्वसमयरूप द्विविधपणा आया है। यातैं समयकै एकपणा ही ठहरे है, यह ही सराहने योग्य है।

भावार्थ—निश्चततैं सर्वपदार्थ अपने अपने स्वभावमैं ही तिष्ठते शोभा पावे हैं, यातैं जीव नामा पदार्थकै पुद्गलकर्मके निमित्तरूप अनादितैं बंधावस्था है, ताकरि याकै विसंवाद उपजे है, यातैं शोभा न पावे है, तातैं निश्चयकरि विचारियो, तौ एकपणा ही सुंदर है, याहीतैं शोभा पावे है।

आगैं कहे हैं, जो–यह एकपणाका पावना दुर्लभ है। ताका गाथासूत्र—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विभत्तस्स ॥ ४ ॥

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबंधकथा।
एकत्वस्योपलंभः केवलं न सुलभो विभक्तस्य ॥ ४ ॥

आत्मख्यातिः—इह सकलस्यापि जीवलोकस्य संसारचक्रक्रोडाधिरोपितस्याश्रांतमनंतद्रव्यक्षेत्रकालभवभावपरावर्त्तैः समुपक्रांतभ्रांतेरेकच्छत्रीकृतविश्वतया महता मोहग्रहेण गोरिव वाह्यमानस्य प्रसभोज्जृंभिततृष्णातंकत्वेन व्यक्तांतराधेरुत्तम्योत्तम्य मृगतृष्णायमानं विषयग्राममुपरुंधानस्य परस्परमाचार्यत्वमाचरतो नंतशः श्रुतपूर्वानंतशः परिचितपूर्वाऽनंतशोऽनुभूतपूर्वा चैकत्वविरुद्धत्वेनात्यंतविसंवादिन्यपि कामभोगानुबद्धा कथा। इदं तु नित्यव्यक्ततयांतः प्रकाशमानमपि कषायचक्रेण सहैकीक्रियमाणत्वादत्यंततिरोभूतं सत्स्वस्यानात्मज्ञतया परेषामात्मज्ञानामनुपासनाच्च न कदाचिदपि श्रुतपूर्वं न कदाचिदपि परिचितपूर्वं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं च निर्मलविवेकालोकविविक्तं केवलमेकत्वं अतएकत्वस्य न सुलभत्वं ॥ ४ ॥ अथ एतैतस्य उपदर्श्यते—

अर्थ—सर्व ही लोककै कामभोगसंबंधी बंधकी कथा तो सुननेमैं आई है, परिचयमैं आई है, अनुभवमैं आई है, तातैं सुलभ है। बहुरि यह भिन्न आत्माका एकपणा कबहू श्रवणमैं न आया, तथा परिचयमैं न आया, तथा अनुभवमैं न आया, यातैं केवल एक यहही सुलभ नाहीं है।

टीका—इस समस्त ही जीवलोककैं कामभोगसंबंधी कथा है सो एकपणाकरि विरुद्धपणातैं अत्यंत विसंवाद करावनहारी है, आत्माका अत्यंत बुरा करनहारी है, तौऊ अनंतवार पहलैं सुननेमैं आई है, बहुरि अनंतवार पहलैं परिचयमैं आई है, बहुरि अनंतवार पहलैं अनुभवमैं आई है। कैसा है जीवलोक? संसार सो ही भया चक्र, ताका क्रोड कहिये मध्य, ताविषैं आरोपण किया है स्थाप्या है। बहुरि कैसा है? निरंतर अनंतवार द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप परावर्त जो पलटना तिनिकरि प्राप्त भया है भ्रमण जाकै। बहुरि कैसा है? समस्तलोककूं एकछत्रराज्यकरि वशी किया तिसपणाकरि महान् बडा जो मोहरूप पिशाच ताकरि गऊकीज्यों वाह्यमान है, वलधकीज्यों वाह्या है। बहुरि बलात्कारकरि उठी जो तृष्णा सो ही भया रोग, ताके दाहपणाकरि प्रगट भई है अंतरंगविषैं पीडा जाकै। बहुरी मृगकीज्यों तृष्णाकरि जैसैं भाडलीपरी दौडे, तैसैं उछलि उछलि अर इंद्रियनिका दाह विषयके ठिकाणेकूं आपणे करे है। बहुरि कैसा है? परस्पर आचार्यपणाकूं आचरता है, वह वाकूं कहिकरि अंगीकार करावे है। यातैं कामभोगसंबंधी कथा तो सर्वकै सुलभ है। बहुरि यह भिन्न आत्माका एकपणा है सो सदा प्रगटपणाकरि अंतरंगविषैं

प्रकाशमान है, तौऊ कषायके समूहकरि एकरूपसा होय रह्या है, तातैं अत्यंततिरोभाव होय रह्या है, आच्छादित है, सो आपकै तौ अनात्मज्ञपणाकरि कदे आपकूं आप जान्या नाहीं, अर पर जे आत्माके जाननेवाले तिनिकै सेवन विना न तौ कदे सुननेमैं आया, न कदाचित् परिचयमैं आया, न कदाचित् अनुभवमें आया। कैसा है यह? निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाशकरि प्रगट देखनेमैं आवै है, तौऊ पूर्वोक्तकारणनिकरि इस भिन्न आत्माका एकपणा पावना दुर्लभ है।

भावार्थ—या लोकमैं सर्व ही जीव संसाररूप चक्र चढै पांच परावर्तनरूप भ्रमण करै हैं, तहां मोहकर्मका उदय सो ही भया पिशाच, ताकरि वाहिये है, ताकरि विषयनिकी तृष्णारूप दाहकरि पीडैं, तिसका इलाज इंद्रियनिके विषयनिकूं जानि, तिनिपरि दौडे हैं। अर आपसमैं विषयनिहीका उपदेश परस्पर करे हैं, यातैं काम कहिये विषयनिकी इच्छा अर भोग कहिये तिनिका भोगना, यह कथा तौ अनंतवार सुणी, परिचयमैं करी, अनुभवमें आई, तातैं सुलभ है। वहुरि सर्व परद्रव्यनितैं भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप अपना आत्माकी कथा अपने तौ स्वयमेव ज्ञान कदे याका भया नाहीं, अर जिनिकै भया, तिनिकी उपासना कदे करी नाहीं। यातैं याकी कथा कदे न सुनी, न परिचई, न अनुभवमैं आई। तातैं याका पावना दुर्लभ भया।

अव आचार्य कहे हैं, इस भिन्न आत्माका एकपणा हम आत्माके पासि ही दिखावे हैं। गाथा—

तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घित्तव्वं॥ ५॥

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेऽहमात्मनः स्वविभवेन।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलितं छलं न गृहीतव्यम्॥ ५॥

आत्मख्यातिः—इह किल सकलोद्भासिस्यात्पदमुद्रितशब्दब्रह्मोपासनजन्मा समस्तविपक्षक्षोदक्षमातिनिस्तुषयुक्त्यवलंबनजन्मा निर्मलविज्ञानघनांतर्निमग्नपरापरगुरुप्रसादीकृतशुद्धात्मतत्त्वानुशासनजन्मा अनवरतस्यंदिसुन्दरानंदमुद्रितामंदसंवि-

दात्मकस्वसंवेदनजन्मा च यः कथनापि ममात्मनः स्वो विभवस्तेन समस्तेनापि यमेकत्वविभक्तमात्मानं दर्शयेहमिति बद्ध-व्यवसायोस्मि। किंतु यदि दर्शयेयं तदा स्वयमेव स्वानुभवप्रत्यक्षेण परीक्ष्य प्रमाणीकर्त्तव्यं। यदि तु स्खलेयं तदा तु न छलग्रहणजागरूकैर्भवितव्यं ॥ ५ ॥ कोऽसौ शुद्ध आत्मेति चेत्—

अर्थ—सो आत्मा एकत्वविभक्त है, ताहि मैं अपने आत्माके विभवकरि दिखाऊँ हूं। जे मैं दिखाऊँ तौ प्रमाण करना। अर जो कहूं चूकूं, तो छल नाहीं, ग्रहण करना।

टीका—आचार्य कहे हैं, जो कछू मेरा आत्माका निजविभव है, तिस समस्तकरि यह मैं एकत्वविभक्त आत्मा है ताही दिखाऊँ हूं, ऐसा उद्यम बांध्या है। कैसा है मेरा आत्माका निजविभव? इस लोकविषैं प्रगट समस्तवस्तुका प्रकाश करनहारा अर स्यात्पदकरि चिह्नित जो शब्दब्रह्म कहिये अरहंतका परमागम ताका उपासनाकरि है जन्म जाका। इहां 'स्यात्' ऐसा पदका तौ कथंचित् अर्थ है, कोई प्रकार कहना। बहुरि सामान्यधर्मकरि जे वचनगोचर धर्म हैं, तिनिका सर्वका नाम पावे है। अर जे केई विशेषधर्म वचनके अगोचर हैं तिनिका अनुमान करावै, ऐसैं सर्ववस्तुका प्रकाशक है। यातैं सर्वव्यापी कहिये, याहीतैं अरहंतके परमागमकूं शब्दब्रह्म कहिये, तिसकी उत्पत्ति, उपासनाकरि ज्ञानविभव उपज्या है। बहुरि कैसा है? समस्त जे विपक्ष कहिये, अन्यवादीनिकरि ग्रही सर्वथैकांतरूप नयपक्ष, तिनिका क्षोद कहिये निराकरण तिसविषैं समर्थ जो अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति ताका अवलंबनकरि है जन्म जाका। बहुरि कैसा है? निर्मलः विज्ञानघन जो आत्मा ताविषैं अंतर्निमग्न जे परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरादिकतैं लगाय हमारे गुरुपर्यंत, तिनिकरि प्रसादरूप कीया दीया जो शुद्धात्मतत्त्वका अनुशासन अनुग्रहकरि उपदेश, तथा पूर्वाचार्यनिके अनुसार उपदेश ताकरि है जन्म जाका। बहुरि कैसा है? निरंतर झरता आस्वादमें आवता अर सुंदर जो आनंद ताकरि मिल्या हुवा जो प्रचुरसंवेदनस्वरूप जो स्वसंवेदन, ताकरि है जन्म जाका। ऐसा जो क्यों त्यों मेरा ज्ञानका विभव है, ता समस्तकरि दिखाऊँ हूं। सो जो यह दिखाऊँ तौ स्वयमेव अपने अनुभवप्रत्यक्षकरि परीक्षा करि प्रमाण

करना । बहुरि जो कहूं अक्षर मात्रा अलंकार युक्ति आदि प्रकरणनिमैं चिगि जाऊँ, तौ छलग्रहणविषैं सावधान न होना, जातैं प्रकरण शास्त्रसमुद्रके बहुत हैं, तातैं इहां स्वसंवेदरूप अर्थ प्रधान है, तातैं अर्थकी परीक्षा करना ।

भावार्थ—आचार्य आगमका सेवन, युक्तिका अवलंबन परापरगुरुका उपदेश, स्वसंवेदन इनि चारि बातनिकरि उपज्या जो अपना ज्ञानका विभव, ताकरि, एकत्वविभक्त शुद्ध आत्माका स्वरूप दिखावे हैं । सो सुननेवाले अपना स्वसंवेदनप्रत्यक्षकरि प्रमाण करो । कहूं कोई प्रकरणमैं चूकूं, तौ तिसमात्र छलग्रहण मति करौ । इहां अपना अपना अनुभव प्रधान है, तिसतैं शुद्धस्वरूपका निश्चय करि ल्यौ, ऐसा कहनेका आशय है ।

आगैं प्रश्न उपजे है, जो ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है ? ताका स्वरूप जान्या चाहिये । ऐसैं प्रश्नका उत्तररूप गाथासूत्र कहे हैं—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव ॥ ६ ॥

नापि भवत्यप्रमत्तो न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भावः ।
एवं भणन्ति शुद्धा ज्ञाता यः स तु स चैव ॥६॥

आत्मख्यातिः—यो हि नाम स्वतःसिद्धत्वेनानादिरनंतोनित्योद्योतिविशदज्योतिर्ज्ञायिक एको भावः स संसारावस्थायामनादिबंधपर्यायनिरूपणया क्षीरोदकवत्कर्मपुद्गलैः सममेकत्वेपि द्रव्यस्वभावनिरूपणया दुरंतकषायचक्रोदयवैचित्र्यवशेन प्रवर्त्तमानानां पुण्यपापनिर्वर्त्तकानामुपात्तवैश्वरूप्याणां शुभाशुभभावानां स्वभावेनापरिणमनात्प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च न भवत्येष एवाशेषद्रव्यांतरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते । न चास्य ज्ञेयनिष्ठत्वेन ज्ञायकत्वप्रसिद्धेः दाह्यनिष्ठदहनस्येवाशुद्धत्वं यतो हि तस्यामवस्थायां ज्ञायकत्वेन यो ज्ञातः स स्वरूपप्रकाशनदशायां प्रदीपस्येव कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात् ज्ञायक एव ॥ ६ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रवत्वेनाशुद्धत्वमिति चेत्—

अर्थ—जो ज्ञायकभाव है, सो अप्रमत्त नाहीं है बहुरि प्रमत्त भी नाहीं है। ऐसैं याकूं शुद्ध कहे हैं। बहुरि जो ज्ञायकभावकरि जाण्या, सो, सो ही है। अन्य दूसरा कोई नाहीं है।

टीका—जो ज्ञायक एक भाव है, सो आपहीतैं सिद्ध है, काहूकरि भया नाहीं है। तिसभावकरि तौ अनादिसत्तारूप है। बहुरि कबहू याका विनाश नाहीं है, तातैं अनंत है। नित्य उद्योतरूप है, तातैं क्षणिक नाहीं है। ऐसा स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। सो संसारकी अवस्थामैं अनादिबंधपर्यायकी निरूपणाकरि कर्मरूप पुद्गलद्रव्यकरि सहित क्षीरनीरकीज्यौं एकपणा होतै भी द्रव्यका स्वभावकी निरूपणाकरि देखिये, तब कठिन है सिटना जाका ऐसा जो कषायसमूहका उदय, ताका विचित्रपणाकरि प्रवर्तें जे पुण्यपापके उपजावनहारे समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव, तिनिके स्वभावकरि नाहीं परिणमे है। ज्ञायकभावतैं जडभावरूप नाहीं होय है। यातैं प्रमत्त भी नाहीं है, अर अप्रमत्त भी नाहीं है। यह ही समस्त अन्यद्रव्यनिके भावनिकरि भिन्नपणाकरि सेया हुवा शुद्ध ऐसा कहिये है। बहुरि याकै ज्ञेयाकार होनेतैं ज्ञायकपणा प्रसिद्ध होय है। जैसैं दाहनेयोग्य दाह्य जो इंधन, तिस आकार अग्नि होय है, तातैं अग्नीकूं दहन कहिये है, तथापि अग्नि तौ अग्नि ही है, दाहनेयोग्य वस्तु इंधन अग्नि नाहीं है। तैसैं ज्ञेयरूप आप नाहीं है, आप तौ ज्ञायक ही है। ऐसैं तिस ज्ञेयकरि किया हुवा भी याकै अशुद्धपणा नाहीं है। जातैं ज्ञेयाकार अवस्थाविषैं भी जो ज्ञायकभावकरि जाण्या जो अपना ज्ञायकपणा, सो ही स्वरूप प्रकाशनेकी जाननेकी अवस्थामैं भी ज्ञायक ही है, ज्ञेयरूप न भया, जातैं अभेदविवक्षातैं कर्ता तो आप ज्ञायक, अर कर्म, आपकूं जाण्या, सो ए दोऊ एक आपही है, अन्य नाहीं है। जैसैं दीपक घटपटादिककूं प्रकाशे है, तिनिकै प्रकाशनेकी अवस्थामैं भी दीपक ही है, सो ही अपनी ज्योतीरूप लोय, ताकै प्रकाशनेकी अवस्थामैं भी दीपक ही है, किछू अन्य नाहीं, तैसैं जानना।

भावार्थ—अशुद्धपणा परद्रव्यके संयोगतैं आवे है। तहां जो मूल द्रव्य तौ अन्यद्रव्यरूप होय नाहीं। अर किछू परद्रव्यके निमित्ततैं अवस्था मलिन होय, तहां द्रव्यदृष्टिकरि तौ द्रव्य जो है

सो ही है। अर अवस्थाकी दृष्टि, पर्यायदृष्टि है, ताकरि देखिये तव मलिन ही दीखे। तैसैं आत्माका द्रव्यस्वभाव ज्ञायकपणामात्र है, अर ताकी अवस्था पुद्गलकर्मके निमित्ततैं रागादिरूप-मलिन है। सो यह पर्याय है ताकी दृष्टिकरि देखिये, तव मलिन ही दीखे अर द्रव्यदृष्टिकरि देखिये तव ज्ञायकपणा तो ज्ञायकपणा ही है, किछू जडपणा न भया। सो इहां द्रव्यदृष्टिकूं प्रधान करि कह्या है। जो प्रमत्त अप्रमत्तका भेद है, सो तो परद्रव्यके संयोगजनितपर्याय है। सो यह अशुद्धता है, सो द्रव्यदृष्टिमें यह गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। तातैं आत्मा ज्ञायक है, यामैं भेद नाहीं यातैं प्रमत्त अप्रमत्त न कहिये। वहुरि ज्ञायक ऐसा भी नाम ज्ञेयके जाननेकरि कहिये है, तातैं ज्ञेयका प्रतिविंव झलके तव, तैसा ही अनुभवमें आवै। सो यह भी अशुद्धपणा याकै नाहीं कहिये, जातैं जैसैं ज्ञेय ज्ञानमैं प्रतिभास्या, तैसैं ज्ञायकहीका अनुभवन करतें ज्ञायक ही है। यह मैं जाननहारा हूं, सो मैं ही हूं दूजा कोई नाहीं है, ऐसा आपका आपकै अभेदरूप अनुभव हुवा, तव तिस जाननक्रियाका कर्ता आप ही है, अर जाकूं जाण्या सो कर्म भी आप ही है। ऐसैं एक ज्ञायकपणामात्र आप शुद्ध है, यह शुद्धनयका विषय है। अन्य परसंयोगजनित भेद हैं; ते सर्व भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके विषय हैं। सो शुद्धद्रव्यकी दृष्टिमें यह भी पर्यायार्थिक ही है, सो व्यवहारनय ही है, ऐसा आशय जानना।

वहुरि इहां ऐसा भी जानना, जो–जिनमतकी कथनी स्याद्वादरूप है। सो शुद्धता अर अशुद्धता दोऊ वस्तुधर्म हैं, सो अशुद्धनयकूं सर्वथा असत्यार्थ ही मानना। जो वस्तुधर्म है, सो वस्तुका सत्त्व है, परद्रव्यके संयोगतैं भये यह ही भेद है। इहां अशुद्धनयकूं हेय कह्या है, सो अशुद्धनयका संसार विषय है, तामैं आत्मा क्लेश भोगवे है, सो आप परद्रव्यतें भिन्न होय, तव संसार मिटै, तव क्लेश मिटै, । ऐसैं दुःख मेटनेकूं शुद्धनयका प्रधान उपदेश है। अर अशुद्धनयकूं असत्यार्थ कहनेतैं ऐसा तो न समझना, जो–यह वस्तुधर्म सर्वथा ही नाहीं, आकाशके फूलकीज्यों

है। ऐसैं सर्वथा एकांत समझे मिथ्यात्व आवै है। तातैं स्याद्वादका शरण ले शुद्धनयका आलंबन करना, स्वरूपकी प्राप्ति भये पीछैं शुद्धनयका भी अवलंबन नाहीं है, जो वस्तुस्वरूप है, सो है, यह प्रमाणदृष्टि है, याका फल वीतरागता है। ऐसा निश्चय करना। बहुरि इहां गाथामैं प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है, ऐसैं कह्या है। सो गुणस्थानकी परिपाटीमैं छट्टा गुणस्थानतांई तो प्रमत्त है, अर सातमांतैं लगा अप्रमत्त है। सो ए सर्व ही गुणस्थान अशुद्धनयकी कथनीमैं हैं। शुद्धनयमैं आत्मा ज्ञायक ही है। आगैं फेरि प्रश्न उपजे है, जो—दर्शन ज्ञान चारित्र ए आत्माके धर्म कहे हैं, सो तीन भेद भये, सो इनि भावनिकरि याकै अशुद्धपणा आवै है। ऐसा प्रश्न होतैं याका उत्तरका गाथासूत्र कहे हैं। गाथा—

ववहारेणुवदिस्सदि, णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ ७ ॥

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चरित्रं दर्शनं ज्ञानम्।
नापि ज्ञानं न चरित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः ॥७॥

आत्मख्यातिः—आस्तां तावद्बंधप्रत्ययात् ज्ञायकस्याशुद्धत्वं दर्शनचारित्राण्येव न विद्यन्ते। यतोनंत धर्मण्येकस्मिन् धर्मिणि निष्णातस्यांतेवासिजनस्य तदवबोधायिभिः कैश्चिद्धर्मैस्तमनुशासतां सूरीणां धर्मधर्मिणां स्वभावतोऽभेदेपि व्यपदेशतो भेदमुत्पाद्य व्यवहारमात्रेणैव ज्ञानिनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्युपदेशः। परमार्थतस्त्वेकद्रव्यनिष्पीतानंतपर्यायतयैकं किंचिन्मिलितास्वादमभेदमेकस्वभावमनुभवतो न दर्शनं न ज्ञानं न चारित्रं ज्ञायक एवैकः शुद्धः ॥ ७ ॥ तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत्—

अर्थ—ज्ञानीकै चारित्र, दर्शन, ज्ञान ये तीन भाव हैं, ते व्यवहारकरि उपदेशिये हैं। निश्चयकरि ज्ञान भी नाहीं है, चारित्र भी नाहीं है, दर्शन भी नहीं है। ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है, याहीतैं शुद्ध कहिये।

टीका—इस ज्ञायक आत्माकै बंधपर्यायके निमित्ततैं अशुद्धपणा है, सो तौ दूरि हि तिष्ठो, याकै दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते भी विद्यमान नाहीं हैं। ज्यातैं निश्चयकरि अनंतधर्मा जो एकधर्मी वस्तु, ताकूं जानैं न जाण्या, ऐसा जो निकटवर्ती शिष्यजन, ताकूं तिस अनंतधर्मस्वरूप धर्मीका जनावनहारे जे केई धर्म, तिनिकरि तिस शिष्यजनकूं उपदेश करते जे आचार्य, तिनिका धर्मनिके अर धर्मीके स्वभावथकी अभेद है। तौऊ नामथकी भेद उपजाय करि व्यवहारमात्रहीकरि, ज्ञानीकै दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है ऐसा उपदेश है। वहुरि परमार्थतैं देखिये तब एक द्रव्यनैं पीये जे अनंतपर्याय, तिसपणाकरि एकज्यौं मिल्या हुवा आस्वादरूप अभेदस्वभाव वस्तूकूं अनुभव करते जे पंडित पुरुष तिनिकै दर्शन नाहीं, ज्ञान नाहीं, चारित्र नाहीं, एक ज्ञायक ही है, सो ही शुद्ध है।

भावार्थ—या शुद्ध आत्माकै कर्मबंधके निमित्ततैं अशुद्धपणा आवे है, सो तौ दूरि ही रहो। याकै दर्शन ज्ञान चारित्रका भी भेद नाहीं है, जातैं वस्तु है सो अनंतधर्मरूप एकधर्मी है। सो व्यवहारी जन धर्मनिहीकूं समझे हैं, अर धर्मीकूं नाहीं जाने हैं। तातैं वस्तूका केई असाधारण धर्मनिकूं उपदेशमैं लेकरि, यद्यपि वस्तू अभेद है, तथापि धर्मनिका नामरूप भेदकूं उपजाय ऐसा उपदेश करे हैं। जो, ज्ञानीकै दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, यह अभेदविषैं भेद किया, तातैं व्यवहार है। परमार्थ विचारिये तब अनंतपर्यायनिकूं एकद्रव्य अभेदरूप पीये बैठा है, तातैं भेद नाहीं। इहां कोई कहै, पर्याय भी तौ द्रव्यहीके भेद हैं, अवस्तु तौ नाहीं, ताकूं व्यवहार कैसैं कहिये? ताका समाधान—जो, यह तौ सत्य है, परंतु इहां द्रव्यदृष्टिकरि अभेदकूं प्रधान करि उपदेश है। तातैं अभेददृष्टिमैं भेद गौण कहें ही, अभेद स्पष्ट दीखै, तातैं भेदकूं गौणकरि व्यवहार कह्या है। इहां प्रयोजन ऐसा—जो, भेददृष्टिमैं निर्विकल्पदशा होय नाहीं, अर सरागीकै विकल्प रहै। जेतैं रागादिक मिटै नाहीं तातैं भेदकूं गौणकरि अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया है, वीतराग भये भेदाभेदरूप वस्तूका ज्ञाता होय है तहां नयका आलंबन है नाहीं। आगैं

फेरि प्रश्न उपजे है, जो, ऐसैं है तौ एक परमार्थहीका उपदेश क्यौं न करिये ? व्यवहार काहेकूं कहना ? ताका उत्तरका गाथासूत्र कहे हैं। गाथा—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥ ८ ॥

यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम्।
तथा व्यवहारेण विना परमार्थोपदेशनमशक्यम् ॥ ८ ॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु म्लेच्छः स्वस्तीत्यभिहिते सति तथाविधवाच्यवाचकसंबंधावबोधबहिष्कृतत्वान्न किंचदपि प्रतिपद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रेक्षत एव। यदा तु स एव तदेतद्भाषासंबंधैकार्थज्ञेनान्येन तेनैव वा म्लेच्छभाषां समुदाय स्वस्तिपदस्याविनाशो भवतो भवत्वित्यभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमंदानंदमयाश्रुजलझलज्झलल्लोचनपात्र-स्तत्प्रतिपद्यत एव। तथा किल लोकोप्यात्मेत्यभिहि ते सति यथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानबहिष्कृतत्वान्न किंचिदपि प्रति-पद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रक्षेत एव। यदा तु स एव व्यवहारपरमार्थपथप्रस्थापितसम्यग्बोधमहारथरथिनान्येन तेनैव वा व्यवहारपथमास्थाय दर्शनज्ञानचारित्राण्यततीत्यात्मेत्यात्मपदस्याभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमंदानंदतः सुन्दरबंधुरबोधतरंगस्तत्प्रतिपद्यत एव। एवं म्लेच्छभाषास्थानीयत्वेन परमार्थप्रतिपादकत्वादुपन्यसनीयोऽथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनाद्व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः ॥ ८ ॥ कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत्—

अर्थ—जैसैं अनार्य कहिये म्लेच्छ है सो म्लेच्छभाषा विना किछू वस्तूका स्वरूप ग्रहण करा-वनेकूं असमर्थ हूजिये, तैसैं व्यवहार विना परमार्थका उपदेश करनेकूं समर्थ न हूजिये है।

टीका—जैसैं प्रगटपणैं कोई म्लेच्छकूं काहू ब्राह्मण स्वस्ति होऊ ऐसा शब्द कह्या, सो, म्लेच्छ तिस शब्दका वाच्यवाचकसंबंधका ज्ञानतैं बाह्य है, तातैं ताका अर्थ किछू भी न पावता संता ब्राह्मणकी तरफ मींढाकीज्यों नेत्र उघाडि टिमकारै। विना देखता रह्या जो यानै कहा कह्या, तब तिस ब्राह्मणकी भाषा तथा म्लेच्छकी भाषा दोऊका एक अर्थ जाननेवाला सो ही ब्राह्मण तथा अन्य कोई तिस म्लेच्छभाषाकूं लेकरि स्वस्तिशब्दका अर्थ ऐसा कह्या—जो, तेरा अविनाश

कल्याण होऊ, ऐसा याका अर्थ है, तब सो म्लेच्छ तत्काल उपज्या जो बहुत आनंद, तिससमयी जो अश्रुपात, तिसकरि झलकते भरि आये हैं लोचनपात्र जाकै, ऐसा हुवा संता, तिस स्वस्तिशब्दका अर्थ समझे ही है। तैसैं ही व्यवहारी है, सोऊ आत्मा ऐसा शब्द कहते संते जैसा आत्मशब्दका अर्थ है, ताका ज्ञानके बाह्य वर्ते है। तातैं याका अर्थ किछू न पावता संता मींढेकी ज्यों नेत्र उघाडि टिमकारै विना देखताही रहै। अर जब व्यवहारपरमार्थमार्गविषैं चलाया है सम्यग्ज्ञानरूप महारथ जानै, ऐसा सारथीसारिखा सो ही आचार्य तथा अन्य कोई आचार्य व्यवहारमार्गमैं तिष्ठिकरि दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं निरंतर प्राप्त होय सो आत्मा है, ऐसा आत्मशब्दका अर्थ कहै, तब तत्कालही उपज्या प्रचुर आनंद जामैं पाईये ऐसा अंतरंगविषैं सुन्दर अर बंधुर कहिये प्रबंधरूप ज्ञानरूप तरंग जाकै, ऐसा व्यवहारी जन, सो तिस आत्मशब्दका अर्थ पावै ही। ऐसैं जगत् तौ म्लेच्छस्थानीय जानना बहुरि व्यवहारनय म्लेच्छभाषास्थानीय जानना। यातैं व्यवहारकूं परमार्थका कहनहारा मानि स्थापना योग्य है। अथवा ब्राह्मणकूं म्लेच्छ न होना इस वचनतैं व्यवहारनयकूं सर्वथा उपादेय ही मानि अंगीकार करना।

भावार्थ—लोक शुद्धनयकूं जाने नाहीं, जातैं शुद्धनयका विषय अभेद एकरूप वस्तु है, बहुरि अशुद्धनयहीकूं जाने है, जातैं याका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है। तातैं व्यवहारके द्वारैं ही शुद्धनयरूप परमार्थकूं समझे है। तातैं व्यवहारनय परमार्थका कहनहारा जानि, याका उपदेश करे है। इहां ऐसा न जानना, जो व्यवहारका आलंबन करावै है। इहां तौ व्यवहारका आलंबन छुडाय, परमार्थकूं पहुचावे है ऐसा जानना। आगैं प्रश्न उपजे है जो, व्यवहारनयकै परमार्थका प्रतिपादकपणा कैसैं है? ताका उत्तरका सूत्र कहे है। गाथा—

जो हि सुदेणभिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥९॥

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुदकेवली तह्मा ॥१०॥

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम् ।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणन्ति लोकप्रदीपकराः ॥ ९ ॥
यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुर्जिनाः ।
ज्ञानमात्मा सर्वं यस्माच्छ्रुतकेवली तस्मात् ॥ १० ॥

आत्मख्यातिः—यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति तावत्परमार्थो यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः । तदत्र सर्वमेव तावत् ज्ञानं निरूप्यमाणं किमात्मा किमनात्मा, न तावदनात्मा समस्तस्याप्यनात्मनश्चेतनेतरपदार्थपंचतयस्य ज्ञानतादात्म्यानुपपत्तेः । ततो गत्यंतराभावात् ज्ञानमात्मेत्यायात्यतः श्रुतज्ञानमप्यात्मैव स्यात् । एवं सति यः आत्मानं जानाति स श्रुतकेवलीत्यायाति स तु परमार्थ एव । एवं ज्ञानज्ञानिनो भेदेन व्यपदिश्यता व्यवहारेणापि परमार्थमात्रमेव प्रतिपद्यते न किंचिदप्यतिरिक्तं अथ च यः श्रुतेन केवलशुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति परमार्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वाद्यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः परमार्थप्रतिपादकत्वेनात्मानं प्रतिष्ठापयति ॥ ९-१० ॥ कुतो व्यवहारनयो नानुसर्तव्य इति चेत्—

अर्थ—जो जीव निश्चयकरि श्रुतज्ञानकरि इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्माकूं सन्मुख होयकरि जानै, तिसकूं लोकके प्रगट जाननेवाले ऋषीश्वर हैं ते श्रुतकेवली ऐसा कहे हैं । बहुरि जो जीव सर्वश्रुतज्ञानकूं जाने है, ताकूं जिनदेव श्रुतकेवली कहे हैं । काहेतैं, जातैं ज्ञान है सो सर्व आत्माही है, तातैं आत्माहीकूं जान्या यातैं श्रुतकेवली कहे हैं ।

टीका—जो श्रुतकरि केवल शुद्ध आत्माकूं जाने है सो श्रुतकेवली है, यह तो प्रथम परमार्थ है । बहुरि जो श्रुतज्ञान सर्वकूं जाने है सो श्रुतकेवली है, यह व्यवहार है । सो इहां परीक्षा दोय पक्षकरि कहे है । जो यह कह्या हुवा सर्व ही ज्ञान आत्मा है कि अनात्मा है ? तहां प्रथमपक्ष लीजिये, जो अनात्मा है तौ अनात्मा तौ नाहीं है । जातैं समस्त ही जे जडरूप अनात्मा आका-

शादि पांच द्रव्य हैं, तिनिकै ज्ञानतें तादात्म्यकी अनुपपत्ति है, तत्स्वरूपपणा बनै नाहीं। तातैं अन्यपक्षके अभावतैं ज्ञान है सो आत्मा है, ऐसा दूजा पक्ष आया। यातैं श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है, ऐसैं होते जो आत्माकूं जानैं है सो श्रुतकेवली है ऐसा हि आवै है, सो परमार्थही है। ऐसैं ज्ञान अर ज्ञानीकूं भेदकरि कहता जो व्यवहार, तिसकरि भी परमार्थमात्रहि कहिये है, तिसतें जुदा अधिक तौ कछु भी न कहे है। अथवा जो श्रुतकरि केवल शुद्ध आत्माकूं जानै है सो श्रुतकेवली है। ऐसैं परमार्थका लक्षणके कहेविना कहनेका असमर्थपणा है तातैं जो सर्वश्रुतज्ञानकूं जाने है सो श्रुतकेवली है ऐसा व्यवहार है सो परमार्थके प्रतिपादकपणेतैं आत्माकूं प्रतिष्ठारूप करे है, प्रगटरूप स्थापे है।

भावार्थ—जो शास्त्रज्ञानकरी अभेदरूप ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्माकूं जानै, सो श्रुतकेवली है, यह तौ परमार्थ है। बहुरि जो सर्वशास्त्रज्ञानकूं जानै सो श्रुतकेवली है, यह ज्ञान है सो ही आत्मा है, सो ज्ञानकूं जाण्या सो आत्माहीकूं जान्या सोही परमार्थ है, ऐसैं ज्ञान ज्ञानीकै भेद कहता जो व्यवहार तिसनैं भी परमार्थ ही कह्या, अन्य तो किछू न कह्या। बहुरि ऐसा भी है जो परमार्थका विषय तो कथंचित् वचनगोचर नाहीं भी है तातैं व्यवहारनय ही प्रगटरूप आत्माकूं कहे है ऐसैं जानना। आगैं फेरि प्रश्न उपजे है, जो पहलै कह्या था जो व्यवहारकूं अंगीकार न करना। सो जो परमार्थका कहनहारा है, तो ऐसा व्यवहारकूं अंगीकार क्यौं न करना? ताका उत्तरका सूत्र कहे हैं—

नीचे लिखी दो गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छापी है।

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा तह्मा कुण भावणं आदे॥

ववहारो भूदत्थो, भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूदत्थमस्सिदो खलु, सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥११॥

व्यवहारोऽभूतार्थो, भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः ।
भूतार्थमाश्रितः खलु, सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः ॥ ११ ॥

आत्मख्यातिः—व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतमर्थं प्रद्योतयति । तथा हि यथा प्रबलपंकसंवलनतिरोहितसहजैकार्थभावस्य पयसोऽनुभवितारः पुरुषाः पंकपयसोर्विवेकमकुर्वंतो बहवोऽनर्थमेव तदनुभवंति । केचित्तु स्वकरविकीर्णकतकनिपातमात्रोपजनितपंकपयोविवेकतया स्वपुरुषाकाराविर्भावितसहजैकार्थभावत्वादर्थमेव तदनुभवति । तथा प्रबलकर्मसंवलनतिरोहितसहजैकज्ञायकभावस्यात्मनोऽनुभवितारः पुरुषा आत्मकर्मणोर्विवेकमकुर्वंतो व्यवहारविमोहितहृदयाः प्रद्यो-

---

ज्ञाने भावना खलु कर्त्तव्या दर्शने चारित्रे च ।
तानि पुनः त्रीण्यपि आत्मा तस्मात् कुरु भावना आत्मनि ॥

तात्पर्यवृत्तिः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयभावना खलु स्फुटं कर्त्तव्या भवति । पुनस्त्रीण्यपि निश्चये नात्मैव यतः कारणात् तस्मात् कुरु भावनां शुद्धात्मनीति । अथ भेदाभेदरत्नत्रयभावनाफलं दर्शयति—

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥

यः आत्मभावनामिमां नित्योद्यतः मुनिः समाचरति ।
सः सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥

तात्पर्यवृत्तिः—यः कर्ता आत्मभावनामिमां नित्योद्यतः सन् मुनिः तपोधनः समाचरित सम्यगाचरति भावयति स सवदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण स्तोककालेनेत्यर्थः । इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयभावनाभावनाफलव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ यथा कोपि ब्राह्मणादिविशिष्टोजनो म्लेच्छाप्रतिबोधनकाले एव म्लेच्छभाषां ब्रूते न च शेषकाले तथैव ज्ञानीपुरुषोप्यज्ञानिप्रतिबोधनकाले व्यवहारमाश्रयति न च शेषकाले । कस्मादभूतार्थत्वादिति प्रकाशयति—

तमानभाववैश्यरूप्यं तमनुभवंति। भूतार्थदर्शिनस्तु स्वमतिनिपातितशुद्धनयानुबोधमात्रोपजनितात्मकर्मविवेकतया स्वपुरुषाकाराविर्भावितसहजैकज्ञायकस्वभावत्वात् प्रद्योतमानैकज्ञायकभावं तमनुभवंति। तदत्र ये भूतार्थमाश्रयंति तएवं सम्यक् पश्यंत सम्यग्दृष्टयो भवंति न पुनरन्ये कतकस्थानीयत्वात् शुद्धनयस्यातः प्रत्यगात्मदर्शिभिर्व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः ॥१३॥ अथ च केषांचित्कदाचित्सोपि प्रयोजनवान्। यतः—

अर्थ—व्यवहारनय है सो अभूतार्थ है। वहुरि शुद्धनय है सो भूतार्थ है। यह ऋषीश्वरनिनैं दिखाया है। तहां जो जीव भूतार्थकूं आश्रित भया है सो जीव निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि होय है।

टीका—व्यवहारनय है सो सर्व ही अभूतार्थ है तातैं अविद्यमानं असत्य अभूतार्थ है ताहि प्रगट करे है। वहुरि शुद्धनय है सो एकही है सो भूतार्थ है। तातैं विद्यमान सत्यरूप अर्थकूं प्रगट करे है। सो ही दृष्टांतकरि दिखाये है। जैसें प्रबलकर्दमके मिलनेकरि तिरोहित कहिये आच्छादित भया है स्वाभाविक एक निर्मलभाव जाका ऐसा जो जल ताके पीवनेवाले पुरुष हैं ते घणे तौ जलका अर कर्दमका भेद नाहीं करते संते तिस जलकूं मलिनहीकूं पीवे हैं। वहुरि केई जीव अपने हस्ततैं वखेर डारया जो कतक कहिये निर्मली ताके पटकनेमात्रकरी ही भया जो कर्दमका अर जलका भेद तिसपणाकरि जामें अपना पुरुषाकार दिखाई है ऐसा प्रगट भया जो स्वाभाविक जलस्वभावरूप निर्मलभाव ताहीकूं पीवे है। तैसें ही प्रबलकर्मका संवलन कहिये मिलना संयोग होना ताकरि आच्छादित भया है स्वाभाविक एक ज्ञायकभाव जाका ऐसा जो आत्मा ताके अनुभव करनेवाले पुरुष हैं, ते आत्माका अर कर्मका भेद नाहीं करते व्यवहारविषें विमोहित भया है हृदय जिनिका ते प्रगटमान है भावनिका विश्वरूपपणा अनेकरूपपणा जाकै ऐसा जो अशुद्ध आत्मा तिसहीकूं अनुभवे है। वहुरि भूतार्थ जो शुद्धनय ताकै देखनेवाले हैं। ते अपनी बुद्धिकरि पातन करी जो शुद्धनय ताके अ[illegible]ार ज्ञान होनेमात्रकरी भया जो आत्माका अर कर्मका भेद, तिसपणाकरि अपने पुरुषाकाररूप स्वरूपकरि प्रगट भया जो स्वाभाविक एक ज्ञायकभाव तिसपणाकरि प्रद्योतमान है, प्रकाशमान है, एक ज्ञायकभाव ज[illegible], ऐसा शुद्ध आत्माकूं

अनुभवे है। तातैं इहां जो पुरुष भूतार्थ जो शुद्धनय ताकूं आश्रय करे हैं, तेही सम्यगवलोकन करते संते सम्यग्दृष्टि होय हैं अन्य जे अशुद्धनयकूं सर्वथा आश्रय करे हैं, ते सम्यग्दृष्टि न होय हैं। इहां शुद्धनयके कतकनिर्मलीस्थानीयपणा है। तातैं कर्मतैं भिन्न आत्माके देखनेवालेनिकरि व्यवहारनय अंगीकार नाहीं करना।

भावार्थ—इहां व्यवहारनयकूं अभूतार्थ कह्या। अर शुद्धनयकूं भूतार्थ कह्या। सो जाका विषय विद्यमान नाहीं होय, असत्यार्थ होय ताकूं अभूतार्थ कहिये। सो ऐसा आशय जानना—जो, शुद्धनयका विषय अभेद एकाकाररूप नित्यद्रव्य है। याकी दृष्टिमैं भेद दीखे नाहीं। यातैं दृष्टिमैं भेद अविद्यमान असत्यार्थही कहिये। ऐसा तौ नाहीं, जो, भेदरूप किछु वस्तुही नाहीं। ऐसा मानिये तौ वेदांतमतवाले जैसैं भेदरूप अनित्यकूं देखि अवस्तु मायास्वरूप कहे हैं अर सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्धब्रह्मकूं वस्तु कहे हैं, तैसैं ठहरै। तातैं सर्वथा एकांतशुद्धनयकी पक्षरूप मिथ्यादृष्टिकाही प्रसंग आवै है। तातैं जिनवाणी स्याद्वाद है, प्रयोजनके वशतैं नयकूं मुख्य गौणकरी कहे है। तातैं इहां ऐसा समझना जो भेदरूप व्यवहारकी तौ प्राणीनिकै अनादिहीतैं पक्ष है। तथा याका उपदेश भी बाहुल्यताकरि सर्वही प्राणी परस्पर करे हैं। जिनवाणीमैं व्यवहारका उपदेश शुद्धनयका हस्तावलम्ब जानि बहुत कीया है परंतु ताका फल संसार ही है। बहुरि शुद्धनयकी पक्ष कदे आई नाहीं, तथा याका उपदेश भी विरला है। तातैं श्री गुरु उपकारी या शुद्धनयका ग्रहणका फल मोक्ष जाणि याहीका उपदेश प्रधानकरि दिया है, जो शुद्धनय भूतार्थ है सत्यार्थ है याकूं आश्रयकीये सम्यग्दृष्टि होय है। याकूं विनाजाने व्यवहारमैं मग्न है जेतैं आत्माका ज्ञान श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नाहीं होय है ऐसा जानना। आगैं कहे हैं जो यह व्यवहारनय है सो भी केईकनिकूं कोई कालविषैं प्रयोजनवान् है, सर्वथाही निषेधने योग्य नाहीं है। जातैं ऐसा उपदेश है। गाथा—

सुद्धोसुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥१२॥

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभिः ।
व्यवहारदेशितः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे ॥१२॥

आत्मख्यातिः—ये खलु पर्यंतपाकोत्तीर्णजात्यकार्त्तस्वरस्थानीयपरमं भावमनुभवंति तेषां प्रथमद्वितीयाद्यनेकपाकपरंपरापच्यमानकार्त्तस्वरानुभवस्थानीयापरमभावानुभवनशून्यत्वाच्छुद्धद्रव्यादेशितया समुद्योतितास्खलितैकस्वभावैकभावः शुद्धनय एवोपरितानेकप्रतिवर्णिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानः प्रयोजनवान् । अन्ये तु प्रथमद्वितीयाद्यनेकपाकपरंपरापच्यमानकार्त्तस्वरस्थानीयमपरमं भावमनुभवंति तेषां पर्यंतपाकोत्तीर्ण जात्यकार्त्तस्वरस्थानीयपरमभावानुभवनशून्यत्वादशुद्धद्रव्यादेशितयोपदर्शितप्रतिविशिष्टैकभावानेकभावोऽव्यवहारनयो विचित्रवर्णमालिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान् तीर्थतीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात् । उक्तं च "जइजिणमयं पवज्जह तामा ववहारणिच्छए मुयह । एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं ।"

अर्थ—परमभावदर्शी जे शुद्धनयतांई पहुंचि श्रद्धावान् भये तथा पूर्ण ज्ञानचारित्रवान् भये तिनिकरि तो शुद्धका है आदेश कहिये आज्ञा, उपदेश जामें ऐसा शुद्धनय जानने योग्य है । इहां प्रकरण शुद्ध आत्माका है, सो शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना । वहुरि जे पुरुष अपरमभाव कहिये श्रद्धाके तथा ज्ञानचारित्रके पूर्णभावकूं नाहीं पहुंचे हैं साधक अवस्थामें तिष्ठे हैं तिनिकैं व्यवहारका देशीपणा है अथवा ते व्यवहारकरि उपदेशने योग्य हैं ।

टीका—इहां दृष्टांतद्वारकरि कहे हैं, जे पुरुष अंतके पाककरि उतरया जो शुद्धसुवर्ण तिसस्थानीय जो वस्तुका उत्कृष्ट असाधारणभाव तिनिकूं अनुभवे हैं । तिनिकैं प्रथम, द्वितीय अनेकपाककी परंपराकरि पच्यमान जो अशुद्धसुवर्ण तिसस्थानीय जो अनुत्कृष्टमध्यमभाव तिसके अनुभवकरि शुद्धपणातें शुद्धद्रव्यका आदेशीपणाकरि प्रगट कीया है अचलित अखंड एकस्वभावरूप एकभाव जानै ऐसा शुद्धनय है । सो ही उपरि ही उपरिका एक प्रतिवर्णिका स्थानीयपणातें

जान्याहूवा प्रयोजनवान् है। बहुरि जे केई पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाककी परंपराकरि पच्यमान जो वह ही सुवर्ण तिसस्थानीय जो वस्तुका अनुत्कृष्ट मध्यमभाव ताकूं अनुभवे हैं। तिनिके अंतके पाककरी उतर्या जो शुद्ध सुवर्ण तिस स्थानीय वस्तुका उत्कृष्टभाव ताका अनुभवकरि शून्यपणातैं अशुद्धद्रव्यका आदेशोपणाकरि दिखाया है, न्यारा न्यारा एकभावस्वरूप अनेकभाव जानैं ऐसा व्यवहारनय है। सो ही विचित्र अनेक जे वर्णमाला तिसस्थानीयपणातैं जान्याहुवा तिसकाल प्रयोजनवान् है, जातैं तीर्थ अर तीर्थका फल इनि दोऊनिका ऐसा ही व्यवस्थितपणा है। तीर्थ तौ जाकरि तरिये ऐसा व्यवहारधर्म। बहुरि जो पार होना सो व्यवहारधर्मका फल, अपना स्वरूपका पावना सो तीर्थफल है। इहां उक्तं च गाथा—जो जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छये मुयह। एक्केण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण उणतच्चं। अर्थ—आचार्य कहे हैं जो हे पुरुष हौ ! तुम जो जिनमतकूं प्रवर्त्तावो हौ तौ व्यवहार अर निश्चय इनि दोऊ नयनिकूं मति छोडौ। जातैं एक जो व्यवहारनय ताविना तौ तीर्थ कहिये व्यवहारमार्ग ताका नाश होयगा। बहुरि अन्येन कहिये निश्चयनय विना तत्त्वका नाश होयगा।

टीका—लोकमैं सोनाके सोलहवान प्रसिद्ध है। तहां पंधरहवानतांई तो तामैं चूरी आदि परसंयोगकी कालिमा रहे है। तेतैं अशुद्ध कहिये हैं। बहुरि ताव देतैं देतैं अंतका तावतैं उतरे तब सोलहवान शुद्ध सुवर्ण कहावै है। तहां जिनिकै सोलहवानका सुवर्णका ज्ञान श्रद्धान तथा प्राप्ति भई तिनिकै तौ पंधरैवानताईंका किछू प्रयोजनवान् है नाहीं। बहुरि जिनिकै सोलहवानका शुद्ध सुवर्णकी प्राप्ती जेतैं न होय तेतैं पंधरेवानतांईकाभी प्रयोजवान् है। तैसैंही यह जीवनामा पदार्थ है सो पुद्गलके संयोगमैं अशुद्ध अनेकरूप होय रह्या है। ताका सर्व परद्रव्यतैं भिन्न एक ज्ञायक-मात्रका जिनिकै ज्ञान श्रद्धान तथा ताका आचरणरूप प्राप्ति भई, तिनिकै तौ पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपपणाके कहनहारा जो अशुद्धनय सो किछू प्रयोजनवान् है नाहीं। बहुरि जेतैं शुद्धभाव-हीकी प्राप्ती न भई तेतैं जेती अशुद्धनयकी कथनी है तेती यथापदवी प्रयोजनवान है। तहां जेतैं

यथार्थज्ञानश्रद्धानकी प्रातीरूप सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न भई होय, तेतैं तो यथार्थ उपदेश जिनितैं पायीये ऐसैं जिनवचनका सुनना, धारना तथा जिनवचनके कहनेवाले श्रीजिनगुरु तिनिकी भक्ति जिनबिंबका दर्शन इत्यादि व्यवहारमार्गमें प्रवर्तना प्रयोजनवान् है ।

बहुरि जिनिकै श्रद्धान, ज्ञान तौ भया अर साक्षात्प्राप्ति न भई तेतैं पूर्वोक्तकार्यभी अर परद्रव्यका आलंबन छोडनेरूप अणुव्रत महाव्रतका ग्रहण तथा समिति गुप्ति पंचपरमेष्ठीका ध्यान-रूप प्रवर्तना तथा तैसैं प्रवर्त्तनेवालेकी संगति करना विशेषज्ञान करनेकू शास्त्रनिका अभ्यास करना इत्यादि व्यवहारमार्गविषैं आप प्रवर्तना अर अन्यकूं प्रवर्त्तावना ऐसा व्यवहारनयका उपदेश तथा अंगीकार करना प्रयोजनवान् है। बहुरि व्यवहारनयकूं कथंचित् असत्यार्थ कहनेतैं सर्व सत्यार्थ जानि छोडै तौ शुभोपयोगरूप व्यवहार छोडै अर शुद्धोपयोगकी साक्षात् प्राप्ती न भई तातैं अशुभोपयोगहीमैं उलटा आय भ्रष्ट हुवा सन्ता यथाकथंचित् स्वेच्छा प्रवर्तैं तव नरकादिगति प्राप्त होय परंपरा निगोद प्राप्त होय संसारहीमैं भ्रमै। तातैं साक्षात् शुद्धनयका विषय जो शुद्ध आत्मा ताकी प्राप्ति न होय तेतैं व्यवहारभी प्रयोजनवान् है । ऐसा स्याद्वादमतमें श्री गुरुनिका उपदेश है । इस अर्थका कलशरूप काव्य टीकाकारका कह्या है ।

मालिनीछन्दः

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके, जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परंज्योतिरुच्चै, रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥ १ ॥

अर्थ—निश्चयव्यवहाररूप जे दोय नय तिनिके विषयके भेदतैं परस्पर विरोध है, तिस विरोधका दूर करनहारा स्यात्पदकरि चिन्हित जो जिनभगवानका वचन तिसविषैं जे पुरुष रमे हैं प्रचुरप्रीतिसहित अभ्यास करे हैं ते स्वयं कहिये स्वयमेव विनाकारण आपैआप वम्या है मोह कहिये मिथ्यात्वकर्मका उदय जिनिनैं ते पुरुष इस समयसार जो शुद्ध आत्मा अतिशयरूप परमज्योति प्रकाशमान ताहि शीघ्र ही अवलोकन करे हैं । कैसा है समयसार ? अनव कहिये नवीन उपज्या

नाहीं है, कर्मतैं आच्छादित था सो प्रगट व्यक्तिरूप भया है। वहुरि कैसा है? अनय जो सर्वथा एकांतरूप कुनय ताकी पक्षताकरि अक्षुण्ण कहिये खंड्या न जाय है निर्बाध है।

भावार्थ—जिनवचन स्याद्वादरूप है। सो जहां दोय नयकै विषयका विरोध है, जैसैं—सद्रूप होय सो असद्रूप न होय, एक होय सो अनेक न होय, नित्य होय सो अनित्य न होय, भेदरूप होय सो अभेदरूप न होय, शुद्ध होय सो अशुद्ध न होय इत्यादि नयनिके विषयनिविषैं विरोध है। तहां जिनवचन कथंचित् विवक्षातैं सत् असद्रूप, एक अनेकरूप, नित्य अनित्यरूप, भेद अभेदरूप शुद्ध अशुद्धरूप जैसैं विद्यमान वस्तु है तैसैं कहिकरि विरोध मिटै है, झूठी कल्पना नाहीं करे है। तातैं द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय नयमैं प्रयोजनके वशतैं शुद्ध द्रव्यार्थिककूं मुख्यकरी निश्चय कहे हैं। अर अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिककूं गौणकरि व्यवहार कहे हैं। ऐसैं जिनवचनविषैं जे पुरुष रमे हैं ते इस शुद्ध आत्माकूं यथार्थ पावे हैं। अन्य सर्वथैकान्ती सांख्यादिक नाहीं पावे हैं। जातैं सर्वथा एकान्तपक्षका वस्तु विषय नाहीं। एक धर्ममात्रहीकूं ग्रहणकरि वस्तुकी असत्य कल्पना करे हैं। सो असत्यार्थही है, वाधासहित मिथ्यादृष्टि है ऐसैं जानना। ऐसैं वारह गाथामैं पीठवन्ध है। आगैं आचार्य शुद्धनयकूं प्रधानकरि निश्चयसम्यक्त्वका स्वरूप कहे हैं। जातैं अशुद्धनय जो व्यवहारनय ताकी प्रधानतामैं जीवादितत्त्वनिका श्रद्धानकूं सम्यक्त्व कह्या है। तहां तिनही जीवादिककूं भूतार्थ जो शुद्धनय तिसकरि जानैं सम्यक्त्व होय है ऐसैं कहे हैं। तहां टीकाकार ताकी सूचनिकारूप तीन काव्य कहे हैं। तिनिमैं पहले काव्यमैं कहे हैं जो व्यवहारनयकूं कथंचित् प्रयोजनवान् कह्या तौऊ यह कछू वस्तुभूत नाहीं है।

मालिनीछन्दः

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हन्त हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किंचित् ॥ २ ॥

अर्थ—व्यवहारनय है सो यद्यपि इस पहिली पदवी जो शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति जेतैं न होय

तेतैं तिसविषैं स्थाप्या है अपना पद जानैं ऐसे पुरुषनिकूं हस्तावलंबतुल्य कह्या। सो "हन्त" कहिये यह बडा खेद है। तथापि जे पुरुष चैतन्यचमत्कारमात्र परम अर्थ शुद्धनयका विषयभूत परद्रव्य भावनिसूं अतरङ्गविषैं रहितकूं अवलोकन करे हैं, ताका श्रद्धान करे हैं, तथा तिसस्वरूपलीन होय चारित्रभावकूं प्राप्त होय हैं। तिनिकैं यह व्यवहारनय किछूभी प्रयोजनवान् नाहीं है।

भावार्थ—शुद्धस्वरूपका ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरण भये पीछैं अशुद्धनय किछूभी प्रयोजनकारी नाहीं है। अब दूसरा काव्यमैं निश्चयसम्यक्त्वका स्वरूप कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः, पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं, तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥३॥

अर्थ—जो इस आत्माका अन्यद्रव्यनितैं न्यारा देखना श्रद्धान करना सोही यहू नियमतैं सम्यग्दर्शन है। कैसा है आत्मा? अपने गुणपर्यायनिविषैं व्यापनेवाला है। बहुरि कैसा है? शुद्धनयतैं एकपणाविषैं निश्चित कीया है। बहुरि कैसा है? पूर्ण ज्ञानघन है। बहुरि जेता यह सम्यग्दर्शन है तेताही आत्मा है। तातैं आचार्य प्रार्थना करे हैं जो इस नवतत्त्वको परिपाटीकूं छोडि यहू आत्माही हमारै प्राप्त होहू।

भावार्थ—सर्व जे स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप गुणपर्यायभेद तिनिमैं व्यापनेवाला जो यहू आत्मा शुद्धनयकरि एकपणाविषैं निश्चित कीया, शुद्धनयतैं ज्ञायकमात्र एक आकार दिखाया, ताका सर्व अन्यद्रव्य अर अन्यद्रव्यनिके भाव तिनितैं जो न्यारा देखना श्रद्धान करना सो यह नियमतैं सम्यग्दर्शन है। व्यवहारनय आत्माका अनेकभेदरूप कहि सम्यग्दर्शनकूं अनेकभेदरूप कहे हैं तहां व्यभिचार आवै, यातैं नियम न रहै। शुद्धनयको हद पहुंचे व्यभिचार नाहीं है, तातैं नियमरूप है। कैसा है? शुद्धनयका विषयभूत आत्मा पूर्णज्ञानघन है। सर्व लोकालोकका जाननहारा ज्ञानस्वरूप है। बहुरि याका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है। सो किछु

न्यारा पदार्थ नाहीं है आत्माहीका परिणाम है। तातैं आत्माही है, तातैं सम्यग्दर्शन है सोही आत्मा है, अन्य नाहीं है।

भावार्थ—इहां एता और जानना, जो नय है ते श्रुतप्रमाणके अंश हैं यातैं यह शुद्धनय है सोऊ श्रुतप्रमाणहीका अंश है। अर श्रुतप्रमाण है सो परोक्षप्रमाण है, वस्तुकूं सर्वज्ञके आगमके वचनतैं जान्या है। सो यह शुद्धनय है सो यहू परोक्ष सर्वद्रव्यनितैं न्यारा असाधारण चैतन्यधर्मकूं सर्व आत्माकी पर्यायनिविषैं व्याप्त पूर्ण चैतन्य केवलज्ञानरूप सर्व लोकालोकका जाननहारा दिखावै। तिसकूं यह व्यवहारी छद्मस्थजीव आगमकूं प्रमाण करि पूर्ण आत्माका श्रद्धान करै सोही श्रद्धान निश्चयसम्यग्दर्शन है। जेतैं व्यवहारनयके विषयभूत जीवादिकभेदरूप तत्त्वनिका केवल श्रद्धान रहै, तेतैं निश्चयसम्यग्दर्शन नाहीं, यातैं आचार्य कहे हैं, जो इस तत्त्वनिकी सन्तति परिपाटीकूं छोडिकरि यह शुद्धनयका विषयभूत एक आत्मा है सोही हमकूं प्राप्त होऊ अन्य किछु न चाहे हैं। यहु वीतराग अवस्थाकी प्रार्थना है, किछू नयपक्ष नाहीं है। जो सर्वथानयनिका पक्षपात होऊही करै तो मिथ्यात्वही है। इहां कोई पूछै यह अनुभवमैं चैतन्यमात्र तौ नास्तिकविना सर्वही मतके आत्माकूं मानै हैं, सो एताही श्रद्धानकूं सम्यक्त्व कहिये तौ सर्वहीकै सम्यक्त्व ठहरै तातैं सर्वज्ञकी वाणीमैं जैसा पूर्ण आत्माका स्वरूप कहा है तैसा श्रद्धान भये निश्चयसम्यक्त्व होय है। अब तीसरा काव्यमैं कहे हैं जो सूत्रकार आचार्य ऐसैं कहे हैं जो याके आगे शुद्धनयके आधीन जो सर्वद्रव्यनितैं भिन्न आत्मज्योति है सो प्रगट होय है।

अनुष्टुप्

अतः शुद्धनयायत्तं, प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि, यदेकत्वं न मुञ्चति ॥३॥

अर्थ—इहातैं आगैं जो शुद्धनयके आधीन भिन्न आत्मज्योति है सो प्रगट होय है। जो नवतत्त्वमैं गत होय रह्या है, तोऊ आपना एकपणाकूं नाहीं छोडे है।

भावार्थ—जो नवतत्त्वमैं आत्मा प्राप्त हुवा अनेकरूप दीखे है, सो याका भिन्नस्वरूप विचारिये तो अपना चैतन्यचमत्कारमात्र ज्योतिकूं छोडे नाही है, सोही शुद्धनयकरि जाणिये है सोही सम्यक्त्व है। ऐसैं सूत्रकार गाथामैं कहे हैं। गाथा—

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्यपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबन्धोमोक्खो य सम्मत्तं ॥१३॥

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बन्धो मोक्षश्च सम्यक्त्वम् ॥१३॥

आत्मख्यातिः—अमूनि हि जीवादीनि नवतत्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं सपद्यंत एवामीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तमभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरावंधमोक्षलक्षणेषु नवतत्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोनुभूतेरात्मख्यातिलक्षणायाः संपद्यमानत्वात्ततो विकार्यविकारकोभयं पुण्यं तथा पापं। आस्राव्यास्रावकोभयमास्रवः, संवार्यसंवारकोभयं संवरः निर्जर्यनिर्जरकोभयं निर्जरा वंध्यवंधकोभयं वंधः मोच्यमोचकोभयं मोक्षः। स्वयमेकस्य पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरावंधमोक्षानुपपत्तेः। तदुभयं च जीवाजीवाविति बहिर्दृष्ट्या नवतत्त्वान्यमूनि जीवपुद्गलयोरनादिवंधपर्यायमुपेत्यैकत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि अथचैकजीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीषु नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते। तथांतर्दृष्ट्या ज्ञायको भावो जीवो जीवस्य विकारहेतुरजीवः केवलजीवविकाराश्च पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरावंधमोक्षलक्षणाः। केवलाजीवविकारहेतवः पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरावंधमोक्षा इति। नवतत्वान्यमून्यपि जीवद्रव्यस्वभावमपोह्य स्वपरप्रत्ययैकद्रव्यपर्यायत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि अथ च सकलकालमेवास्खलंतमेकं जीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीष्वपि नवतत्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते एवमसावेकत्वेन द्योतमानः शुद्धनयत्वेनानुभूयतएव। यात्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेवेति समस्तमेव निरवद्यं।

अर्थ—भूतार्थनयकरि जान्या हूवा जीव, अजीव बहुरि पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, वन्ध अर मोक्ष ए नव तत्त्व हैं तेही सम्यक्त्व है।

टीका—जीवादिक नवतत्त्व हैं ते भूतार्थनयकरि जाणेसंते सम्यग्दर्शनही है यह नियम कह्या। जातैं ये नवतत्त्व जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष है लक्षण जिनिका ऐसे तीर्थ जो व्यवहारधर्म ताकी प्रवृत्तिकै अर्थि अभूतार्थनय जो व्यवहारनय ताकरि कहे हुये हैं। तिनिविषैं एकपणा प्रगट करनहारा जो भूतार्थनय ताकरि एकपणाकूं प्राप्त करी शुद्धपणाकरी स्थाप्या जो आत्मा ताकी आत्मख्याति है लक्षण जाका ऐसी अनुभूतिका प्राप्तपणा है। शुद्धनयकरि नवतत्त्वकूं जाणै आत्माकी अनुभूति होय है इस हेतुतैं नियम है। तहां विकार्य जो विकारी होनेयोग्य अर विकार करनेवाला विकारक एक दोऊ तौ पुण्य हैं। बहुरि ऐसैंही विकार्य विकारक दोऊ पाप हैं। बहुरि आस्राव्य कहिये आस्रव होनेयोग्य अर आस्रावक कहिये आस्रव करनेवाला ए दोऊ आस्रव हैं। बहुरि संवार्य कहिये संवररूप होनेयोग्य अर संवारक कहिये संवर करनेवाला ए दोऊ संवर हैं। बहुरि निर्जरनेयोग्य अर निर्जरा करनेवाला ए दोऊ निर्जरा हैं। बहुरि बन्धनेयोग्य अर बन्धनकरनेवाला ए दोऊ बन्ध हैं। बहुरि मोक्ष होनेयोग्य अर मोक्ष करनेवाला ए दोऊ मोक्ष हैं। जातैं एकहीकै आपहीतैं पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध मोक्षकी उपपत्ति बने नाहीं।

बहुरी ते दोऊ जीव अर अजीव हैं ऐसें ए नवतत्त्व हैं। इनिकूं बाह्यदृष्टिकरि देखीये तब जीवपुद्गलकी अनादिबन्धपर्यायकूं प्राप्तकरि एकपणाकरि अनुभवन करते सन्ते तौ ए नवही भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं। बहुरि एक जीवद्रव्यहीका स्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। जीवके एकाकार स्वरूपमें ये नाही हैं॥ तातैं इनिका तत्त्वनिविषैं भूतार्थनयकरि जीव एकरूपही प्रकाशमान है, तैसैं ही अन्तर्दृष्टिकरि देखीये तब ज्ञायकभाव तौ जीव है। बहुरि जीवकै विकारका कारण अजीव है। बहुरि पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष है लक्षण जाका ऐसा केवल एकला जीवका विकार नाहीं है। बहुरि पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष ये सात केवल एकला अजीवके विकारतैं जीवके विकारकूं कारण हैं। ऐसैं

ये नवतत्त्व हैं ते जीवद्रव्यका स्वभावकूं छोडिकरि आप अर पर है कारण जाकूं ऐसा एक द्रव्य-पर्यायपणाकरि अनुभवन करते सन्ते तौ भूतार्थ हैं। वहुरी सर्वकालमें नाहीं चिगता एक जीव-द्रव्यका स्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते संते ए अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। तातें इनि नवतत्त्वनि-विषैं भूतार्थनयकरि देखीये तव जीव है सो तौ एकरूपही प्रकाशमान है ऐसें यहू जीवतत्त्व एक-पणाकरि प्रगट प्रकाशमान हुवा सन्ता शुद्धनयपणाकरि अनुभवन कीजिये है। सो यहू अनुभवन है सो आत्मख्याति है आत्माहीका प्रकाश है। वहुरि आत्मख्याति है सोही सम्यग्दर्शन है। ऐसें यह समस्त कहना निर्दोष है बाधारहित है।

भावार्थ—इनि नवतत्त्वनिकविषें शुद्धनयकरि देखिये तव जीव है सो एक चैतन्यचमत्कार-मात्रही प्रकाशरूप प्रगट है। इसविना न्यारेन्यारे नवतत्त्व देखिये तौ किछू हैं नाहीं। जवतांई ऐसें जीवतत्त्वका जाणपणा नाहीं, तवतांई व्यवहारदृष्टिमें है। न्यारेन्यारे नवतत्त्वनिकूं माने हैं। जीवपुद्गलकी वन्धपर्यायरूप दृष्टिकरि न्यारे न्यारे सत्यार्थ दीखे हैं। वहुरी जव जीवपुद्गलका निजस्वरूप न्यारान्यारा शुद्धनयकरि देखीये तव ये पुण्यपाप आदि सात तत्त्व किछूभी वस्तु नाहीं दीखे हैं। निमित्तनैमित्तिकभावतैं भये थे सो निमित्तनैमित्तिकभाव मिटे। जीवपुद्गल न्यारेन्यारे होय तव किछू वस्तु न रहै। वस्तु तौ द्रव्य है, सो द्रव्यके निजभाव तौ द्रव्यकी लार है अर नैमित्तिकभावका तौ अभावही होय, तातें शुद्धनयकरि जीवकूं जान्या हूवा ही सम्यग्दृष्टिको प्राप्ति करे है, न्यारे न्यारे जाने जेते आत्माकूं जान्या नाहीं पर्यायवुद्धि है। इहां इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

मालिनीछन्दः

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं, कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं, प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥ ४ ॥

ऐसें नवतत्त्वनिविषैं वहुतकालतैं छिप्या हुवा यह आत्मज्योति शुद्धनयकरि निकासि प्रगट

कीहैया , जैसैं वर्णकी मालाके समूहमें सुवर्णका एकाकार छिप्याकूं निकासै तैसैं, सो अब भव्य-जीव याकों निरन्तर अन्यद्रव्यनितैं तथा तिनितैं भयो नैमित्तिकभावनितैं भिन्न एकरूप अवलोकन करो। यहू पदपदप्रति कहिये पर्यायपर्यायप्रति एकरूप चिच्चमत्कार मात्र उद्योतमान हैं।

भावार्थ—यह आत्मा सर्व अवस्थामैं नानारूप दीखै था, सो शुद्धनय एक चैतन्यचमत्कारमात्र दिखाया है। सो अब सदा एकाकारही अनुभवन करो पर्यायबुद्धिका एकान्त मति राखो यह श्रीगुरुनिका उपदेश है। अब टीकाकार फेरि कहे हैं; जो जैसैं नवतत्वमें एक जीवहीका जानना भूतार्थ कह्या, तैसैंही एकपणाकरि प्रकाशमान जो आत्मा ताका अधिगमके उपाय ये प्रमाणनय-निक्षेप हैं तेभी निश्चतैं अभूतार्थ हैं। तिनिविषैंभी यहू एक आत्माही भूतार्थ है। जातैं ज्ञेयके अर वचनके भेदतैं ते अनेक भेदरूप होय हैं। तहां प्रथमही प्रमाण दोयप्रकार है परोक्ष अर प्रत्यक्ष। तहां उपात्त कहिये इन्द्रियनितैं भिडिकरि प्रवर्तै अर अनुपात्त कहिये विना भिडे मनकरि प्रवर्त्तै ऐसैं दोय परद्वारकरि प्रवर्त्तमान सो परोक्ष। बहुरी केवल आत्माहीकरि प्रतिनिश्चितपणाकरि प्रवर्त्तमान होय सो प्रत्यक्ष है।

भावार्थ–प्रमाण ज्ञान है, सो ज्ञान पांचप्रकार है, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। तिनिमैं मति श्रुत तौ परोक्ष हैं। अर अवधि, मनःपर्यय विकलप्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है। सो ये दोऊही प्रमाण हैं। ते प्रमाता प्रमाण प्रमेयके भेदकूं अनुभवन करते सन्ते तौ भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं। बहुरी गौण भये हैं। समस्त भेद जामैं ऐसा जो एक जीवका स्वभाव ताका अनुभव करते सन्ते अभूतार्थ हैं असत्यार्थ है। बहुरि नय है सो द्रव्यार्थिक है, पर्यायार्थिक है। तहां वस्तु है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है। तामैं द्रव्यकूं मुख्यपणाकरि अनुभवन करावै ऐसा तौ द्रव्यार्थिक है। बहुरि पर्यायकूं मुख्यपणाकरि अनुभवन करावै सो पर्यायार्थिक है। सो ए दोऊही नय द्रव्यपर्यायकूं भेदरूप पर्यायकरि अनुभवन करते सन्ते तो भूतार्थ है सत्यार्थ है। बहुरी द्रव्यपर्याय दोऊहीकूं नाहीं आलिंगन करता ऐसा शुद्ध वस्तुमात्र जो जीवका स्वभाव चैतन्यमात्र ताकूं अनुभवन

करते संते भेद अभूतार्थ असत्यार्थ है। वहुरी निक्षेप है सो नाम स्थापना द्रव्य भाव भेदकरि चारिप्रकार है। तहां जामैं जो गुन तौ न होय अर तिसके नाम वस्तुकी संज्ञा करीये सो तौ नामनिक्षेप है। वहुरी अन्यवस्तुविषैं अन्यकी प्रतिमारूप स्थापना करना जो यहू वह वस्तु है सो यहू स्थापनानिक्षेप है। वहुरी वर्त्तमानपर्यायतैं अन्य अतीत, अनागत पर्यायरूप वस्तु होय ताकूं वर्तमानवस्तुमैं कहिये सौ द्रव्यनिक्षेप है। वहुरी वर्त्तमानपर्यायरूप वस्तूकूंही वर्त्तमान कहिये सो भावनिक्षेप है। सो ए चारोंही निक्षेप अपने अपने लक्षणभेदतैं न्यारे न्यारे विलक्षणरूपकरि अनुभवनकरि करते सन्ते भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं। वहुरि भिन्नलक्षणतैं रहित एक अपना चैतन्य-लक्षणरूप जीवके स्वभावकूं अनुभवन करते सन्ते चारोंही अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। ऐसैं इनि प्रमाणनयनिक्षेपनिविषैं भूतार्थपणाकरि एक जीवही प्रकाशमान है।

भावार्थ—इहां इनि प्रमाणनयनिक्षेपनिका विस्ताररूप व्याख्यान इनिके प्रकरणके ग्रंथनिमैं है, तहांतैं जानना। इनितैं वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक साधिये है। सो साधक अवस्थामैं तौ ए सत्यार्थही है, जातैं ए ज्ञानहीके विशेष हैं, इनिविना वस्तूकूं यथाकथंचित् साधै तव विपर्यय होय है। अवस्थाके व्यवहारके अभावकी तीन रीति हैं। एक तो यथार्थवस्तूकूं जानि ज्ञानश्रद्धानकी सिद्धि करना, सो ज्ञानश्रद्धान सिद्ध भये पीछे इनि प्रमाणादिकतैं श्रद्धानके अर्थि तो किछु प्रयोजन नाहीं। वहुरि दूजी अवस्था, विशेषज्ञान अर रागद्वेषमोहकर्मका सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्रका होना है,। याहीतैं केवलकी प्राप्ति है। सो यहू भये पीछे प्रमाणादिकका आलंवन नाहीं है। तापीछे तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, सो तहां भी किछू आलंवन नाहीं है। ऐसैं सिद्ध अवस्था मैं प्रमाणनयनिक्षेपनिका अभावही है। इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

मालिनीछन्दः

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥ ९ ॥

अर्थ—आचार्य शुद्धनयका अनुभवकरि कहे हैं, जो इस सर्वभेदनिका गौण करनहारा जो शुद्धनयका विषयभूत चैतन्यचमत्कारमात्र तेजःपुंज आत्मा ताकै अनुभव आये सन्ते नयनिकी लक्ष्मी है सो उदयकूं नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि प्रमाण है सो अस्तकूं प्राप्त होय है। बहुरि निक्षेपनिका समूह है सो कहूं जाता रहै है सो हम नाहीं जाने हैं। इस सिवाय और कहां कहै द्वैतही नाहीं प्रतिभासे है।

भावार्थ—भेदकूं अत्यंत गौण करि कह्या है जो प्रमाणनयादिकका भेदकी कहां चली है ? शुद्ध अनुभव होतैं द्वैतही नाहीं भासे है, एकाकार चिन्मात्रही दीखे है। इहां विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदांती कहैं जो परमार्थ तौ अद्वैतहीका अनुभव भया सोही हमारा मत है, तुमने विशेष कहा कह्या ? ताकूं कहिये जो तुमारा मतमैं सर्वथा अद्वैत माने है, सो सर्वथा माने तौ बाह्यवस्तुका अभाव होय है, सो ऐसा अभाव प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि हमारे नयविवक्षा है सो बाह्यवस्तुका लोप नाहीं करे है। शुद्ध अनुभवतैं विकल्प मिटे है, तब परमानंदकूं आत्मा प्राप्त होय है, तातैं अनुभव करावनेकूं ऐसा कह्या है। अर बाह्यवस्तुका लोप कीये तौ आत्माकाभी लोप आवै तब शून्यवादका प्रसङ्ग आवे है, सो तुम कहो तैसे वस्तुस्वरूप सधै नाहीं, अर वस्तुस्वरूपकी यथार्थश्रद्धा विना जो शुद्ध अनुभवभी करे तौ मिथ्यारूप है, शून्यका प्रसङ्ग आया तब आकाशके फूलका अनुभव है। आगैं शुद्धनयका उदय होय है ताकी सूचनिका काव्य कहे हैं।

उपजातिछन्दः।

आतमस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम्।
विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति ॥ १० ॥

अर्थ—शुद्धनय है सो आत्माके स्वभावकूं प्रगट करता सन्ता उदय होय है। कैसा प्रगट करे है ? परद्रव्य तथा परद्रव्यके भाव तथा परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपने विभाव ऐसैं परभावनितैं भिन्न प्रगट करे है। बहुरि कैसा प्रगट करे है ? आपूर्ण कहीये समस्तपणाकरि पूर्ण स्वभाव

समस्त लोकालोकका जाननहारा ऐसा स्वभावकूं प्रगट करे है। जातें ज्ञानमें भेद तो कर्मसंयोगतें है, शुद्धनयमें कर्म गौण हैं। वहुरि कैसा प्रगट करे है? आदि अंतकरि रहित, जो कछू हू आदि लेकरि काहूतें भया नाहीं तथा कबहूं काहूकरि जाका विनाश नाहीं ऐसा पारिणामिक भावकूं प्रगट करे है। वहुरि कैसा प्रगट करे है? एक है, सर्व भेदभावतें द्वैतभावतें रहित एकाकार है, वहुरि विलय भये हैं समस्त सङ्कल्प अर विकल्पके समूह जामें। सङ्कल्प तो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्गलद्रव्यनिविषें आपा कल्पे सो लेणे अर विकल्प जे ज्ञेयनिके भेदतें ज्ञानमें भेद दिखे ते लेणे। ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होय है। सो इस शुद्धनयकूं गाथासूत्रकरि कहे हैं। गाथा—

जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥१४॥

यः पश्यति आत्मानं अवद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतं।
अविशेषमसंयुक्तं तं शुद्धनयं विजानीहि ॥१४॥

आत्मख्यातिः—या खल्वबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयः सत्यानुभूतिरात्मैवेत्यात्मैकएव प्रद्योतते कथं यथोदितस्यात्मनोनुभूतिरिति चेद्बद्धस्पृष्टत्वादीनामभूतार्थत्वात्तथाहि—यथा खलु विसिनीपत्रस्य सलिलनिमग्नस्य सलिलस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां सलिलस्पृष्टत्वभूतार्थमप्येकांततः सलिलास्पृश्यं विसिनीपत्रस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं। तथात्मनोनादिबद्धस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां बद्धस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकांततः पुद्गलास्पृश्यमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं। यथा च मृत्तिकायाः करककरीरकर्करीकपालादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोप्यस्खलंतमेकं मृत्तिकास्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो नारकादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोप्यस्खलंतमेकमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं। तथा च वारिधेर्वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितं वारिधिस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं। यथा च कांचनस्य स्निग्धपीतगुरुत्वादिपर्यायेणानुभयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेष-

कांचनस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो ज्ञानदर्शनादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं। यथा वापां सप्तार्चिःप्रत्ययोष्णसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकांततः शीतस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनः कर्मप्रत्ययमोहसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकांततः स्वयंबोधबीजस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं।

अर्थ—जो नय आत्माकूं अबद्धस्पृष्ट कहिये बंध्या अर स्पर्शा नाहीं, बहुरि अनन्य कहिये अन्य नाहीं, बहुरि नियत कहिये चलाचल नाहीं, बहुरि अविशेष कहिये जामैं विशेष नाहीं, बहुरि असंयुक्त कहिये अन्यके संयोगरहित ऐसा पांच भावरूप अवलोकन करै, ताहि, हे शिष्य तू शुद्धनय जाणि।

टीका—जो खलु कहिये निश्चयतैं अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त, ऐसी आत्माकी अनुभूति कहिये अनुभवन सोही शुद्धनय है। सो यह अनुभूति निश्चयतैं आत्माही है। ऐसैं आत्मा ही एक प्रकाशमान है।

भावार्थ—शुद्धनय कहो तथा आत्माकी अनुभूति कहो तथा आत्मा कहो एकही है, न्यारा कछू नाहीं है। इहां शिष्य पूछे है, जो जैसा कह्या तैसैं आत्माकी अनुभूति इनि पांच भावनिमैं कैसी है? ताका समाधान करे हैं। जो, बद्धस्पृष्टत्व आदि पांच भाव हैं तिनिकै अभूतार्थपणा है, असत्यार्थपणा है, तातैं शुद्धनयही आत्माकी अनुभूति है सोही दृष्टान्तकरि प्रगट दिखावै हैं। जैसैं बिसिनी कहिये कमलिनी ताका पत्र जलमें डूब्या होय ताके जलके स्पर्शनेरूप अवस्थाकरि अनुभवन करते सन्ते जलका स्पर्शनपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ एकान्ततैं जलके स्पर्शनेयोग्य नाहीं, ऐसा कमलिनीका पत्रका स्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते जलका स्पर्शनपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है, तैसैं आत्माकूं अनादिपुद्गलकर्मतैं बद्धस्पर्शपणाकी अवस्थाकरि अनुभवन करते सन्ते बद्धस्पृष्टपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौ एकान्ततैं पुद्गलकै स्पर्शनेयोग्य नाहीं ऐसा आत्मस्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते बद्धस्पृष्टपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है।

बहुरि जैसैं मृत्तिकाका ? खा, ढकणा, कोंडी, कपाल आदि पर्यायभेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते अन्य अन्यपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ सर्वपर्यायभेदनितैं नाहीं चिगता भेदरूप न होता जो एक मृत्तिकास्वभाव ताकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते पर्यायभेद अभूतार्थ है असत्यार्थ है। तैसैं आत्माकूं नारक आदि पर्यायभेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते पर्यायनिका और औरपणारूप अन्यपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ सर्व पर्यायभेदनितैं नाहीं चिगता एक चैतन्याकार आत्मस्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते अन्यपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है। बहुरि जैसैं समुद्रकूं वृद्धि हानि अवस्थाकरि अनुभवन करते सन्ते अनितपणा जो अनिश्चितपणा सो भूतार्थ है। तौऊ नित्य ठहरयाहुवा समुद्रस्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते अनियतपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है। तैसैं आत्माकूं वृद्धिहानिपर्यायभेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते अनियतपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ नित्य ठहरयाहुवा निश्चल आत्माका स्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते अनियतपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है।

बहुरि जैसैं सुवर्णकूं चीकणा, भारी, पीला आदि गुणरूप भेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ विलय भये हैं समस्त विशेष जामैं ऐसा स्वर्णस्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है। तैसैं आत्माकूं ज्ञानदर्शन आदि गुणरूप भेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ विलय भये हैं समस्त विशेष जामैं ऐसा चैतन्यमात्र आत्मस्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है। बहुरि जैसैं जलकै अग्नि है निमित्त जाकूं ऐसा जो उष्णसूं मिल्या तप्तपणारूप अवस्था तिसकरि अनुभवन करते सन्ते जलके उष्णपणारूप संयुक्तपणा भूतार्थ है सत्यर्थ है। तौऊ एकान्ततैं शीतल जो जलका स्वभाव ताकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते उष्णसंयुक्तपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है। तैसैं आत्माकै कर्म है निमित्त जाकूं ऐसा मोहसमाहितपणारूप अवस्था तिसकरि अनुभवन करते सन्ते संयुक्तपणा भूतार्थ है सत्यार्थ। तोऊ

एकान्ततैं आपबोधका बीजरूपस्वभाव जो चैतन्यभावरूप ताकूं लेकरि अनुभवन करते सन्ते संयुक्तपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है।

भावार्थ—आत्मा पांचप्रकारकरि अनेकरूप दीखे है प्रथम। तौ अनादिहीतैं कर्मपुद्गलके सम्बन्धतैं बंध्या कर्मपुद्गलसूं स्पर्शरूप दीखे है। बहुरि कर्मके निमित्ततैं भये जे नरनारकादिपर्याय तिनिमैं औरऔररूप दीखे है। बहुरि शक्तिके अविभागप्रतिच्छेद घटे हैं वधे हैं यह वस्तुस्वभाव है तातैं नित्यनियत एकरूप नाहीं दीखे है। बहुरि दर्शनज्ञान आदि अनेक गुणनिकरि विशेषरूप दीखे है। बहुरि कर्मके निमित्ततैं भये मोह, राग, द्वेषादिक परिणाम तिनिकरि सहित सुखदुःखरूप दीखे है। सो यह तौ सर्व अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप जो व्यवहारनय ताका विषय है, सो ताकी दृष्टिकरि देखीये तौ सर्वही सत्यार्थ है, परंतु आत्माका एक स्वभाव या नयकरि ग्रहण होय नाहीं, अर एक-स्वभाव जानेविना यथार्थ आत्माकूं कैसें जाने ? तातैं दूजा नय याकै प्रतिपक्षी जो शुद्ध द्रव्यार्थिक ताकूं ग्रहणकरि एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्माका भाव लेकरि सर्व परद्रव्यनितैं भिन्न सर्व पर्यायनिमैं एकाकार, हानिवृद्धितैं रहित, विशेषनितैं रहित नैमित्तिकभावनितैं रहित, शुद्धनयकी दृष्टिकरि देखिये तब सर्वही पांचभावनिकरि अनेकप्रकारपणा है सो अभूतार्थ है असत्यार्थ है।

इहां ऐसा जानना, जो वस्तुका स्वरूप अनंतधर्मात्मक है, सो स्याद्वादतैं यथार्थ सधे है। तहां आत्माभी अनंतधर्मा है। ताके केतेक धर्म तौ स्वभाविक हैं अर केतेकधर्म पुद्गलके संयोगतैं होय हैं। तहां कर्मके संयोगतैं होय तिनिकरि आत्माके संसारकी होय, तिससंबंधी सुखदुःखादिक होय हैं, तिनिकूं भोगवे है, सो याकै अनादि अज्ञानतैं पर्यायबुद्धि है। अनादि अनंत एक आत्माका ज्ञान नाहीं, ताका जनावनहारा सर्वज्ञका आगम है, तामैं शुद्धद्रव्यार्थिकनयकरि जनाया है जो आत्माका एक असाधारण चैतन्यभाव है सो अखंड है नित्य है अनादिनिधन है सो याकूं जाने पर्यायबुद्धिका पक्षपात कटे है। परद्रव्यनितैं तथा तिनिके भावनितैं तथा तिनिके निमित्ततैं भये अपने विभावनितैं आपाकूं भिन्न जानि याका अनुभवन करे तब परद्रव्यके सम्बन्धी भावनिरूपण

परिणमैं तब कर्म न बंधे, संसारतैं निवृत्ति होय, तातैं पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनयकूं गौणकरि अभूतार्थ असत्यार्थ कहिकरि शुद्धनिश्चयनयकूं सत्यार्थ कहि आलंबन पकडाया है, वस्तुस्वरूपकी प्राप्ति भयेपीछें याका आलंबन नाहीं है। ऐसा मति जानो, जो शुद्धनयकूं सत्यार्थ कह्या सो अशुद्धनय सर्वथा ही असत्यार्थ है। ऐसैं माने, वेदान्तमतवाले संसारकूं सर्वथा अवस्तु माने हैं तिनिकी सर्वथा एकान्तपक्ष आवै, तब मिथ्यात्व आवे है, तब इस शुद्धनयकाभी आलंबन तिनकीज्यों मिथ्यादृष्टि होय है। तातैं सर्वही नयनिकूं कथंचित्प्रकार सत्यार्थका श्रद्धान कीयेही सम्यग्दृष्टि होय है। ऐसैं स्याद्वादकूं समझि जिन्मतका सेवन करना मुख्य गौण कथन सुनि सर्वथा एकान्तपक्ष न पकडना। ऐसैंही इस गाथाका व्याख्यान टीकाकार कीया है। जो आत्मा व्यवहारनयकी दृष्टिमैं बद्ध स्पृष्ट आदिरूप दीखे है, सो इस दृष्टिमैं तो सत्यार्थही है। परंतु शुद्धनयकी दृष्टिमैं बद्ध स्पृष्ट आदिरूप असत्यार्थ है। इस कथनमैं स्याद्वाद जनाया है ऐसैं जानना।

बहुरि ऐसैं जानना, जो ए नय हैं ते श्रुतज्ञानप्रमाणके अंश हैं। सो श्रुतज्ञान है सो वस्तुकूं परोक्ष जनावै है, सो ए नयभी परोक्षही जनावै हैं। सो बद्धस्पृष्ट आदि पांच भावनितैं रहित आत्मा शुद्धद्रव्यार्थिकनयका विषय चैतन्यशक्तिमात्र है। सो शक्ति तौ परोक्ष है ही। बहुरि याकी व्यक्ती कर्मसंयोगतैं मतिश्रुति आदि ज्ञानरूप हैं ते कथंचित् अनुभवगोचर हैं ते प्रत्यक्षरूपभी कहिये हैं। अर संपूर्णज्ञान जो केवलज्ञान जो छद्मस्थकै प्रत्यक्ष नाहीं तथापि यह शुद्धनय है सो आत्माका केवलज्ञानरूप परोक्ष जनावे है। जेतैं इस नयकूं न जाणै तेतैं आत्माका पूर्णरूपका ज्ञान, श्रद्धान होय नाहीं, तातैं श्रीगुरु या शुद्धनयकूं प्रगटकरि दिखाया है। जो बद्ध स्पृष्ट आदि पांच भावनितैं रहित पूर्णज्ञानघनस्वभाव आत्माकूं जाणि श्रद्धान करना पर्यायबुद्धि न रहना यह उपदेश है। तहां कोई कहै—ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दीखै नाहीं अर विनादीखै श्रद्धान करना तौ झूठा श्रद्धान है। ताकूं कहिये दीखेहीका श्रद्धान करना यह तौ नास्तिकमत है। जिनमतमैं

तौ प्रमाण प्रत्यक्ष परोक्ष दोऊ मानिये हैं। सो आगमप्रमाण परोक्ष है, ताका भेद शुद्धनय है, सो इस शुद्धनयकी दृष्टिकरि शुद्धआत्माका श्रद्धान करना, केवल व्यवहार प्रत्यक्षहीकी एकान्त न करना। इहां इस शुद्धनयकूं मुख्य करि कलशरूप काव्य है।

मालिनीछन्दः

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्ताज्जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

अर्थ—टीकाकार उपदेश करेहैं, जो जगतके प्राणिसमूह सो तिस सम्यक्स्वभावकूं अनुभवन करौ। जाविषैं ए बद्ध स्पृष्ट आदि भाव हैं ते प्रगटपणैं इस स्वभावके उपरि तरते हैं, तौऊ प्रतिष्ठाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं, जातैं द्रव्यस्वभाव तौ नित्य है एकरूप है अर ए भाव अनित्य हैं अनेक रूप हैं। पर्याय है सो द्रव्यस्वभावमैं नाहीं प्रवेश करे है उपरि हि रहे है। कैसा यह शुद्ध स्वभाव? सर्व अवस्थामैं प्रकाशमान है। कैसैं होयकरि अनुभव करो? अपगतमोहीभूय कहिये दूरि भया है मोह जाका ऐसा होयकरि। जातैं मोहकर्मके उदयजनित मिथ्यात्वरूप अज्ञान जेतैं हैं तेतैं यह अनुभव यथार्थ नाहीं होय है।

भावार्थ—शुद्धनयका विषयस्वरूप आत्माका अनुभव करो यह उपदेश है। आगैं इसही अर्थके कलशरूप काव्य फेरि कहे हैं, जो ऐसा अनुभव कीये आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः।

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बन्धं सुधीर्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्माऽऽत्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं, नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

अर्थ—जो कोई सुबुद्धि, सम्यग्दृष्टि, भूत कहिये पहले भया अर भांत कहिये वर्तमानका अर अभूत कहिये आगामी होयगा ऐसा तीन कालसंबंधी कर्मका बन्धकूं अपने आत्मातैं तत्काल शीघ्र न्यारा करि, बहुरि तिस कर्मके उदयके निमित्ततैं भया जो मिथ्यात्वरूप अज्ञान ताकूं अपने

बलपुरुषार्थतैं न्यारा करि अंतरंगविषैं अभ्यास करै देखै तौ यह आत्मा अपने अनुभवही करि जाननेयोग्य है प्रगट महिमा जाको ऐसा व्यक्त अनुभवगोचर निश्चल शाश्वत नित्य कर्मकलंक-कर्दमतै रहित ऐसा आप स्तुति करनेयोग्य देव तिष्ठे है।

भावार्थ—शुद्धनयकी दृष्टिकरि देखीये तौ सर्वकर्मनितैं रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अंतरंगविषैं आप विराजे है। यह प्राणी पर्यायबुद्धि बहिरात्मा याकूं बाह्य हेरे है सो बडा अज्ञान है। आगें शुद्धनयका विषयभूत आत्माकी अनुभूति है सोही ज्ञानकी अनुभूति है ऐसा आगली गाथाकी सूचनिकाके अर्थरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछंद

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या, ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्पमेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥ १३ ॥

अर्थ—ऐसैं जो पूर्वोक्तशुद्धनयस्वरूप आत्माकी अनुभूति कहिये अनुभव है सोही यह ज्ञानकी अनुभूति है ऐसैं प्रगट जानिकरि, बहुरि आत्माविषैं आत्माकूं निश्चय स्थापिकरि, अर सदा सर्वतरफ एक ज्ञानघन आत्मा है ऐसा देखना।

भावार्थ—पहलैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधानकरि कह्या था अब ज्ञानकूं प्रधानकरि कहे हैं। जो यह शुद्धनयका विषयस्वरूप आत्माकी अनुभूति है सोही सम्यग्ज्ञान है। इस अर्थरूप गाथा कहे हैं गाथा—

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

यः पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषं।
अपदेशसूत्रमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वं ॥ १५ ॥

आत्मख्यातिः—येयमबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्य विशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः सा खल्वखिलस्य जिनशासनस्यानुभूतिः श्रुतज्ञानस्य स्वयमात्मत्वात्ततो ज्ञानानुभूतिः रेवात्मानुभूतिः किंतु तदानीं सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यामनुभूयमानमपि ज्ञानमबुद्धलुब्धानां न स्वदते। तथाहि—यथा विचित्रव्यंजनसंयोगोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावाभ्यामनुभूयमानं लवणं लोकानामबुद्धानां व्यंजनलुब्धानां स्वदते न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजातसामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यां। अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं लवणं तदेव सामान्याविर्भावेनापि तथा विचित्रज्ञेयाकारकरंबितत्वोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावाभ्यामनुभूयमानं ज्ञानमबुद्धानां ज्ञेयलुब्धानां स्वदते न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजातसामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यां। अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं ज्ञानं तदेव सामान्याविर्भावेनाप्यलुब्धबुद्धानां यथा सैंधवखिल्योऽन्यद्रव्यसंयोगव्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमानः सर्वतोऽप्येकलवणरसत्वाल्लवणत्वेन स्वदते तथात्मापि परद्रव्यसंयोगव्यवच्छेदेन केवलएवानुभूयमानः सर्वतोऽप्येकविज्ञानघनत्वात् ज्ञानत्वेन स्वदते।

अर्थ—जो पुरुष आत्माकूं अबद्धस्पृष्ट अनन्य अविशेष इहां उपलक्षणतैं पूर्वोक्त नियत असंयुक्त ए दोऊ विशेषणभी लेना ऐसा देखे है, सो सर्वजिनशासनकूं देखे है। कैसा है जिनशासन? अपदेश कहिये बाह्यद्रव्य श्रुत बहुरि सान्त कहिये ज्ञानरूप अभ्यन्तर भावश्रुत ए दोऊ हैं मध्य जाके ऐसा है।

टीका—जो यह अबद्धस्पृष्ट अनन्य नियत अविशेष असंयुक्त ऐसैं पांचभावस्वरूप आत्माकी अनुभूति सोही निश्चयकरि समस्त जिनसासनकी अनुभूति है। जातैं श्रुतज्ञान है सो आप आत्माही है, तातैं यह आपा जो आत्माकी अनुभूति है सोही ज्ञानकी अनुभूति है। इहां यह विशेष है, जो, सामान्यज्ञानका तौ आविर्भाव कहिये प्रगटपणा अर विशेष ज्ञेयाकारज्ञानका तिरोभाव कहिये आच्छादितताकरि ज्ञानमात्रही जब अनुभवकरिये तब ज्ञान प्रगट अनुभवमैं आवे है। तोऊ जे अज्ञानी हैं अर ज्ञेयनिविषैं लुब्ध कहिये आसक्त हैं तिनिकूं स्वादरूप न होय है, सोही प्रगट दृष्टांतकरि दिखावै। जैसैं अनेकप्रकारके व्यञ्जन कहिये तरकारी आदि भोजन, तिनिके संयोगकरि उपजा सामान्य लूणका तौ तिरोभाव अर विशेष लूणका आविर्भाव, ताकरि अनुभवमैं आवता जो सामान्यलूणका तिरोभाव लूण, सोही जे अज्ञानी अर व्यञ्जनविषैं लुब्ध ऐसैं

मनुष्य, तिनिकूं लूणका विशेषभावरूप जे व्यञ्जन तिनिकाही स्वाद आवे है। बहुरि अन्यके संयोग रहितपणातैं उपजा सामान्यका तौ जामैं आविर्भाव अर विशेषका जामैं तिरोभाव ऐसा भावकरि एकाकार अभेदरूप लूणका स्वाद नाहीं आवे है। बहुरि परमार्थकरि देखिये तब जो विशेषका आविर्भावकरि अनुभवमैं आवता क्षाररसरूप लूण है सो ही सामान्यका आविर्भावकरि अनुभवमैं आवता क्षाररसरूप लूण है। तैसैं ही अनेकाकार ज्ञेयनिका आकारकरि करंबित कहिये मिश्ररूप सारिखापणाकरि सामान्यका तौ जामैं तिरोभाव अर विशेषका जामैं आविर्भाव ऐसा भावकरि अनुभवमैं आवता जो ज्ञान, सो, जे अज्ञानी हैं अर ज्ञेयनिविषैं लुब्ध हैं आसक्त हैं, तिनिकूं विशेष भावरूप भेद अनेकाकाररूप स्वादमैं आवे है। बहुरि अन्यज्ञेयाकारके संयोगतैं रहितपणातैं उपजा सामान्यका जामैं आविर्भाव अर विशेषका जामैं तिरोभाव ऐसा एकाकार अभेदरूप ज्ञानमात्र सो अनुभवमैं स्वादरूप नाहीं आवे है। अर परमार्थ विचारिए तब जो विशेषके आविर्भावकरि ज्ञान अनुभवमैं आवे है, सोही सामान्यका आविर्भावकरि ज्ञेयविषैं आसक्त नाहीं है अर ज्ञानी हैं तिनिके अनुभवमें आवे है। बहुरि जैसैं लूणकी डली अन्यद्रव्यके संयोगका अभावकरि केवल एक लूणमात्र अनुभवन करते सन्ते एक लूणरस क्षारपणाकरि लूणपणाकरि स्वादमैं आवे है। तैसैं आत्माभी परद्रव्यके संयोगतैं न्यारा भावकरि एक भावकरि अनुभवन करते सन्ते सर्वतरफतैं विज्ञानघन स्वभावतैं ज्ञानपणाकरि स्वादमैं आवे है।

भावार्थ—यहां आत्माकी अनुभूति सोही ज्ञानकी अनुभूति कही, तहां अज्ञानीजन हैं ते ज्ञेय जे इन्द्रियज्ञानके विषय तिनहिविषैं लुब्ध हैं, सो तिनितैं अनेक आकाररूप भया ज्ञान, ताकूं ही ज्ञेयमात्र आस्वादे हैं,। बहुरि ज्ञेयनितैं भिन्न ज्ञानमात्रका आस्वाद नाहीं ले हैं। यातैं जे ज्ञानी हैं अर ज्ञेयनितैं लुब्ध नाहीं हैं ते एकाकार ज्ञेयनितैं न्यारा ज्ञानहीका आस्वाद करे हैं। जैसैं व्यञ्जननितैं न्यारी लूणकी डलीका क्षारमात्र स्वाद आवे तैसैं आस्वादे हैं। यातैं जो ज्ञान है सोही आत्मा है अर आत्मा है सोही ज्ञान है। ऐसैं गुणीगुणकी अभेददृष्टिमैं आया, जो सर्व

परद्रव्यतैं न्यारा अपने पर्यायनिविषैं एकरूप निश्चल अपने गुणनिविषैं एकरूप परनिमित्ततैं भये भावनितैं भिन्न अपना स्वरूपकी अनुभवन है सोही ज्ञानका अनुभवन है। अर यह अनुभवन है सो भावश्रुतज्ञानरूप जो जिनशासन ताका अनुभवन है। शुद्धनयकरि यामैं किछू भेद नाहीं है। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

पृथ्वीछन्दः

अखंडितमनाकुलं ज्वलदनन्तमंतर्बहिर्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ॥१४॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं, जो तत् कहिये सो परम उत्कृष्ट मह कहिये तेज प्रकाशरूप हमारे होऊ, जो सदाकाल चैतन्यका उच्छलन कहिये परिणमन ताकरि भर्या जैसैं लूणकी डली एक क्षाररसकी लीलाकूं आलम्बन करे है, तैसैं एक ज्ञानसस्वरूपकूं आलंबन करे है। बहुरि सो तेज कैसा है? अखंडित है, जामैं ज्ञेयनिका आकाररूप नाहीं खंडते है। बहुरि कैसा है? अनाकुल है, जामैं कर्मके निमित्ततैं भये रागादिक तिनिकरि भई जो आकुलता सो नाहीं है। बहुरि कैसा है? 'अन्तर्बहिरनन्तं ज्वलत्' कहिये अंतरहित अविनाशी जैसें होय तैसैं। अंतरंग तौ चैतन्यभावकरि दैदीप्यमान अनुभवमें आवे है अर बाह्य वचनकायकी क्रियाकरि प्रगट दैदीप्यमान हो है, जान्या जाय है। बहुरि सहज कहिये स्वभावकरि भया है, काहूने रच्या नाहीं है बहुरि 'सदा उद्विलासं' कहिये निरंतर उदयरूपहै विलास जाका एकरूप प्रतिभासन है।

भावार्थ—आचार्यने प्रार्थना करी है, जो यह स्वरूप ज्योतिर्ज्ञानानन्दमय एकाकार हमारे सदा प्राप्त रहो, ऐसा जानना। आगैं आगिली गाथाकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुपछन्दः

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मसिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥ १५ ॥

अर्थ—यह पूर्वोक्त ज्ञानस्वरूप नित्य आत्मा है, सो सिद्धि जो स्वरूपका प्राप्ति ताके इच्छक-पुरुषनिकरि साध्यसाधकभावके भेदकरि दोय प्रकारकरि एकही सेवनेयोग्य है, सो सेवो।

भावार्थ—आत्मा तौ ज्ञानस्वरूप एकही है, परंतु याका पूर्णरूप साध्यभाव है अर अपूर्णरूप साधकभाव है, ऐसें भावभेदकरि दोय प्रकारकरि एकही सेवना। तहां दर्शनज्ञानचारित्ररूप साधकभाव है, सोही गाथामें कह्या है। गाथा—

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छापी है।

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥

आत्मा स्फुटं मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चारित्रे च।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे॥

तात्पर्यवृत्तिः—आदा शुद्धात्मा खु स्फुटं मज्झ मम भवति क्व विषये णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रप्रत्याख्यानसंवरयोगभावनाविषये। योगे कोऽर्थः निर्विकल्पसमाधौ परमसामायिके परमध्याने चैत्येको भावः भोगाकांक्षानिदानबंधशल्यादिभावरहिते शुद्धात्मनि ध्याते सर्वं सम्यग्ज्ञानादिकं लभ्यत इत्यर्थः एवं शुद्धनयव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रमथस्थले गाथात्रयं गतं। इत ऊर्ध्वं भेदाभेदरत्नत्रयमुख्यत्वेन गाथात्रयं कथ्यते—तद्यथा—प्रथम गाथायां पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामपरार्द्धेन चाभेदरत्नत्रयभावनां कथयति।

भाषा—अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र प्रत्याख्यान संवर योग भावना में मेरे शुद्ध आत्मा हो जाती है अर्थात् भोगाकांक्षा निदान बंध शल्य आदि रहित शुद्ध आत्माका ध्यान करनेसे सम्यग्दर्शन आदिकी उत्पत्ति हो जाती है।

दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवितव्यानि साधुना नित्यं ।
तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यप्यात्मानमेव निश्चयतः ॥ १६ ॥

आत्मख्यातिः—येनैव हि भावेनात्मा साध्यं साधनं च स्यात्तेनैवायं नित्यमुपास्य इति स्वयमाकूय परेषां व्यवहारेण साधुना दर्शनज्ञानचारित्राणि नित्यमुपास्यानीति प्रतिपाद्यते। तानि पुनस्त्रीण्यपि परमार्थेनात्मैक एव वस्त्वंतराभावात् यथा देवदत्तस्य कस्यचित् ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं च देवदत्तस्य स्वभावानतिक्रमाद्देवदत्त एव न वस्त्वंतरं तथात्मन्यप्यात्मनो ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं चात्मस्वभावानतिक्रमादात्मैव न वस्त्वंतरं तत आत्मा एक एवोपास्य इति स्वयमेव प्रद्योतते स किल।

अर्थ—साधुपुरुषकरि दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते निरंतर सेवने योग्य हैं, बहुरि तीन हैं तौऊ निश्चयनयतैं एक आत्माही जानूं।

टीका—यहु आत्मा जिसभावकरि साध्य तथा साधन होय, तिसही भावकरि नित्य उपासन करने योग्य हैं सेवने योग्य है। ऐसैं आप विचारि बहुरि परनिकूं व्यवहारकरि प्रतिपादन करे हैं, जो साधुपुरुषनिकरि दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते सदा सेवनेयोग्य हैं। बहुरि परमार्थकरि देखिये तब ए तीनो हि एकआत्माही है, जातैं ए अन्य वस्तु नाहीं है आत्माहीके पर्याय हैं। जैसैं कोई देवदत्तनाम पुरुषका ज्ञान, श्रद्धान, आचरण है, ते तिसके स्वभावकूं नाहीं उल्लंघते वर्ते हैं। तातैं ते देवदत्त पुरुषही है अन्य वस्तु नाहीं है। तैसैं आत्माविषैंभी आत्माका ज्ञान, श्रद्धान, आचरण हैं ते आत्माके स्वभावकूं नाहीं उल्लंघि वर्ते है। तातैं आत्माही है अन्यवस्तु नाहीं है। तातैं यह सिद्ध भया, जो एक आत्माही सेवन करनेयोग्य है। यह आपै आपही प्रकाशमान हो है।

भावार्थ—दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन कहे ते आत्माहीके पर्याय हैं किछू न्यारे वस्तु नाहीं हैं। तातै साधुपुरुषनिकूं एक आत्माहीका सेवन करना यह निश्चय है। बहुरि व्यवहारकरि अन्यकूं यह ही उपदेश करना। आगैं इसही अर्थका कलशरूप श्लोक कहे हैं।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयं।
मेचको मेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अर्थ—यहू आत्मा प्रमाणदृष्टिकरि देखीये तव एकैकाल मेचक कहिये अनेक अवस्थारूप भी है अर अमेचक कहिये एक अवस्थारूप भी है। जातैं याकै दर्शन-ज्ञान-चारित्रकरि तौ तीनपणा है। वहुरि आपकरि आपकै एकपणा है।

भावार्थ—प्रमाणदृष्टिमैं त्रिकालात्मक वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखिये है, तातैं आत्मका भी युगपत् एकानेकस्वरूप देखना। आगैं नयविवक्षा कहे हैं।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वात्‌व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

अर्थ—व्यवहारदृष्टिकरि देखिये तव आत्मा एक है, तौऊ तीन स्वभावपणाकरि मेचक कहिये अनेकाकाररूप है। जातैं दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन भावनिकरि परिणमे है।

भावार्थ—शुद्धद्रव्यार्थिकनयकरि आत्मा एक है इस नयकूं प्रधानकरि कहिये तव नय गौण भया, सो एककूं तीनरूप परिणमता कहना सोही व्यवहार भया, असत्यार्थ भी भया, ऐसैं व्यवहारनयकरि दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामकरि मेचक कह्या है। अव परमार्थनयकरि कहे हैं।

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः।
सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

अर्थ—परमार्थ जो शुद्धनिश्चयनय ताकरि देखिये तव प्रगट ज्ञायकज्योतिर्मात्रकरि आत्मा एक स्वरूप है। जातैं याका शुद्धद्रव्यार्थिकनयकरि सर्वही अन्यद्रव्यके स्वभाव तथा अन्य निमित्ततैं भये विभाव, तिनिका दूरि करनेरूप स्वभाव है, यातैं अमेचक है, शुद्ध एकाकार है।

भावार्थ—भेददृष्टिकूं गौण कहि अभेददृष्टिकरि देखीये तव आत्मा एकाकार ही है, सो ही अमेचक है। आगैं प्रमाणनयकरि मेचक अमेचक कह्या सो इस चिंताकूं मेटि जैसैं साध्यकी सिद्धि होय तैसैं करना यह कहे हैं।

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥ १९ ॥

अर्थ—यह आत्मा मेचक है, भेदरूप अनेकाकार है, तथा अमेचक है, अभेदरूप एकाकार है। ऐसी चिंताकरि तो पूरि पडो, साध्य आत्माकी तौ सिद्धि है सो दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनि भावनिकरि ही है, अन्यप्रकार नाहीं है यह नियम है।

भावार्थ—आत्माकी शुद्धद्रव्यार्थिकनयकरि सिद्धि भई ऐसा शुद्धस्वभाव साध्य है, सो पर्यायार्थिकस्वरूप व्यवहारनयहीकरि साधिये है, तातैं ऐसैं कह्या है, जो भेदाभेदकी कथनी करि, कहा? जैसैं साध्यकी सिद्धि होय तैसैं करना व्यवहारी जन पर्यायहीमैं समझे हैं तातैं दर्शनज्ञानचारित्र तीन परिणाम हैं सोही आत्मा है। ऐसैं भेदप्रधानकरि अभेदकी सिद्धि करनी कही। आगैं इसही प्रयोजनकूं गाथा दोयमैं दृष्टांतकरि कहे हैं। गाथा—

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥१७॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहे दव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥१८॥

यथानाम कोपि पुरुषो राजानं ज्ञात्वा श्रद्दधाति।
ततस्तमनुचरति पुनरर्थार्थिकः प्रयत्नेन ॥१७॥
एवं हि जीवराजो ज्ञातव्यस्तथैव श्रद्धातव्यः।
अनुचरितव्यश्च पुनः स चैव तु मोक्षकामेन ॥१८॥

आत्मख्यातिः—यथा हि कश्चित्पुरुषोऽर्थार्थी प्रयत्नेन प्रथममेव राजानं जानीते ततस्तमेव श्रद्धत्ते ततस्तमेवानुचरति। तथात्मना मोक्षार्थिना प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः तत स एव श्रद्धातव्यः ततः स एवानुचरितव्यश्च साध्यसिद्धेस्तथान्यथोपपत्त्यनुपपत्तिभ्यां। तत्र यदात्मनोनुभूयमानानेकभावसंकरेपि परमविवेककौशलेनायमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानेन संगच्छमानमेव तथेतिप्रत्ययलक्षणं श्रद्धानं चरणमुत्प्लवमानमात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धेस्तथोपपत्तेः यदात्वाबालगोपालमेव

सकलकालमेव स्वयमेवानुभूयमानेपि भगवत्यनुभूत्यात्मन्यनादिबंधवशात् परैः सममेकत्वाध्यवसायेन विमूढ़स्यायमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानं नोत्प्लवते तदभावादज्ञानखरशृंगश्रद्धानसमानत्वाच्छ्रद्धानमपि नोत्प्लवते तदा समस्तभावांतरविवेकेन निःशंकमेव स्थातुमशक्यत्वादात्मानुचरणमनुत्प्लवमानं नात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धेरन्यथानुपपत्तिः।

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष धनका अर्थी राजाकूं जाणिकरि श्रद्धान करै, तापीछैं ताकूं बहुत यत्नकरि अनुचरै, ताकी नीकै सेवा करै। ऐसैं ही मोक्षका अर्थी पुरुषकरि जीवनामा राजाकूं जानना, पीछैं तैसैं ही ताका श्रद्धान करना, पीछैं ताका अनुचरण करना, अनुभवकरि तन्मय होना।

टीका—निश्चयकरि जैसैं कोई धनका अर्थी पुरुष बडा उद्यमकरि प्रथम तो राजाकूं जानै, जो यह राजा है। पीछैं तिसहीका श्रद्धान करै, जो यह अवश्य राजा ही है, याका सेवन कीये अवश्य धनकी प्राप्ति होयगी। पीछैं तिसहीका अनुचरण करै, सेवन करै, आज्ञामैं प्रवर्तैं, वाकूं प्रसन्न करै। तैसैं ही मोक्षका अर्थी पुरुषकरि प्रथम तौ आत्माकूं जानना, पीछैं तिसका श्रद्धान करना, जो यहही आत्मा है, याका आचरण कीयें अवश्य कर्मनितैं छूटियेगा, पीछैं तिसहीका अनुचरण, करना, अनुभवकरि तामैं लीन होना। जातैं साध्य जो निष्कर्मावस्थारूप अभेदशुद्धरूप, ताकी ऐसैंही सिद्धि हैं अन्यथा अनुपपत्ति है। तहां जिसकाल आत्माके अनुभवमैं आवते जे अनेक पर्यायरूप भेदभाव, तिनिकरि संकर कहिये मिश्रितपणा होते भी, परमविवेक कहिये सर्वप्रकार भेदज्ञान, प्रवीणपणाकरि यह अनुभूति है, सो ही मैं हूं। ऐसा आत्मज्ञानकरि प्राप्त होता यह आत्मा जैसैं जाण्या तैसा ही है, ऐसी प्रतीति है लक्षण जाका ऐसा श्रद्धान उदय होय है। तिस ही काल समस्त अन्यभावका भेद होनेकरि निःशंक ठहरनेकूं समर्थ होनेतैं आत्माका आचरण उदय होता संता आत्माकूं साधे हैं। ऐसैं तौ साध्य आत्माकी सिद्धि की, तथा उपपत्ति है तैसैं ही होय ताकूं तथा उपपत्ति कहिये। बहुरि जिस काल ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान् आत्मा बाल (गोपाल) तांई सदाकाल आपही अनुभवमैं आवतैं संतैं भी अनादि बंधके वशतैं परद्रव्यनिसहित एकपणाके अध्यवसाय कहिये निश्चयकरि मूढ जो अज्ञानी ताकै यह अनु-

भूति है। सो मैं हूं ऐसा आत्मज्ञान नाहीं उदय होय है। ताके अभावतैं विना जाणेका श्रद्धान गधाके सिंगसारिखे होय है। ऐसैं श्रद्धान भी नाहीं उदय होय है। तिस काल समस्त अन्यभावनिका भेद न होनेकरि निःशंक आत्माविषैं तिष्ठनेका असमर्थपणातैं आत्माका आचरण न होता संता आत्माकूं नाहीं साधे है ऐसैं साध्यआत्माकी सिद्धिकी अन्यथा अनुपपत्ति है। और प्रकारकरि न होय ताकूं अन्यथानुपपत्ति कहिये।

भावार्थ—साध्य आत्माकी सिद्धि दर्शनज्ञानचारित्रहीकरि है, अन्यप्रकार नाहीं है जातैं पहलै तौ आत्माकूं जाणै, जो यह जाननहारा अनुभवमें आवे है सो मैं हूं पीछैं याकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होय विनाजाणे श्रद्धान काहेका? बहुरि पीछैं समस्त अन्यभावनितैं भेदकरि आपविषैं थिर होय ऐसी सिद्धि है। बहुरि जब जाणै नाहीं तब थिरता कौनमैं करै? तातैं अन्यप्रकार सिद्धि नाहीं है, ऐसा निश्चय है। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥ २० ॥

ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मात्मानं नित्यमुपास्त एव कुतस्तदुपास्यत्वेनानुशास्यत इति चेन्न यतो न खल्वात्मा ज्ञानतादात्म्येऽपि क्षणमपि ज्ञानमुपास्ते स्वयं बुद्धबोधितबुद्धत्वकारणपूर्वकत्वेन ज्ञानस्योत्पत्तेः। तर्हि तत्कारणात्पूर्वमज्ञानएवात्मा नित्यमेवाप्रतिबुद्धत्वादेवमेतत्। तर्हि कियंतकालमयमप्रतिबुद्धो भवतीत्यभिधीयतां।

अर्थ—आचार्य कहे हैं, जो यह आत्मज्योति है, ताहि हम निरंतर अनुभवे हैं। कैसा है? अनंत अविनश्वर जो चैतन्य सो है चिह्न जाका, काहेते अनुभवे हैं? जातैं याके अनुभवविना अन्यप्रकार साध्य आत्माकी सिद्धि नाहीं है। कैसा है यह आत्मज्योति? कथंचित्प्रकार अंगीकार किया है तीनपणा जानें, तौऊ एकपणातैं च्युत न भया है। बहुरि कैसा है? निर्मल जैसैं होय तैसैं उदयकूं प्राप्त होता है।

भावार्थ—आचार्य कहे हैं, कोईप्रकार पर्यायदृष्टिकरि जाकै तीनपणा प्राप्त है, तौऊ शुद्धद्रव्य दृष्टिकरि जो एकपणातैं नाहीं च्युत भया है, ऐसा आत्मज्योति अनंत चैतन्यस्वरूप निर्मल उदयकूं प्राप्त होता, ताहि हम निरंतर अनुभवे हैं। ऐसैं कहनेतैं ऐसा भी आशय जानिये, जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं, ते ऐसैं ही अनुभव करौ, जैसैं हम अनुभवे हैं ऐसैं जानना। आगैं कोऊ तर्क करे है, जो आत्मा तो ज्ञानतैं तादात्म्यस्वरूप है, जुदा नाहीं, तातैं ज्ञानको नित्य सेवै ही है। ज्ञानका उपासनेयोग्यपणाकरि याकूं काहेतैं शिक्षा दीजिये है ? तहां आचार्य कहे हैं, जो—यह ऐसैं नाहीं है, तातैं आत्मा ज्ञानकरि तादात्म्यरूप है, तौऊ एक क्षणमात्र भी ज्ञानकूं नाहीं सेवै है। जातैं स्वयंबुद्धत्व कहिये आपहीकरि जाननेतैं तथा बोधितबुद्धत्व कहिये परके जनावनेकरि याकै ज्ञानकी उत्पत्ति होय है। कै तौ काललब्धि आवै तब आप ही जाणि ले, कै कोई उपदेश देनेवाला मिलै तब जाणै, जैसैं सूता पुरुष कै तो आप ही जागै कै कोई जगावै तब जगेगा ? ऐसैं इहां फेरि पूछैं हैं, जो ऐसैं है, तो, जाननेका कारण पहली आत्मा अज्ञानी ही है। जातैं सदा ही याकै अप्रतिबुद्धपणा है। तहां आचार्य कहे हैं, यहू ऐसैं ही है, अज्ञानी ही है। बहुरि फेरि पूछैं हैं, जो यह आत्मा कैतै एककाल अप्रतिबुद्ध है सौ कहौ। तहां आचार्य कहे हैं। गाथा—

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥१९॥

कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म।
यावदेषा खलु बुद्धिरप्रतिबुद्धो भवति तावत् ॥१९॥

तात्पर्यवृत्तिः—कम्मे कर्मणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि रागादिभावकर्मणि च णोकम्मह्मि य शरीरादिनोकर्मणि च अहमिदि अहमिति प्रतीतिः अहकं च कम्म णोकम्मं अहकं च कर्म नोकर्मेति प्रतीतिः यथा घटे वर्णादयो गुणा घटाकारपरिणतपुद्गलस्कंधाश्च वर्णादिषु घट इत्यभेदेन जा यावंतं कालं एसा एषा प्रत्यक्षीभूता खलु स्फुटं बुद्धी कर्मनोकर्मणा सह शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजपरमात्मवस्तुनः एका बुद्धिः अप्पडिबुद्धो अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यो बहिरात्मा हवदि भवति

तात्र तावत्कालमिति। अत्र भेदविज्ञानमूलं शुद्धात्मानुभूतिः स्वतः स्वयंबुद्धापेक्षया परतो वा बोधितबुद्धापेक्षया य लभंते ते पुरुषाः शुभाशुभवहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरुंदवदविकरा भवंतीति भावार्थः। अथ शुद्धजीवे यदा रागादिरहित-परिणामस्तदा मोक्षो भवति। अजीवे देहादौ यदा रागादिपरिणामस्तदा बंधो भवतीत्याख्याति।

आत्मख्यातिः—यथा स्पर्शरसगंधवर्णादिभावेषु पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कंधेषु घटोयमिति घटे च स्पर्शरस-गंधवर्णादिभावाः पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कंधाश्चामी इति वस्त्वभेदेनानुभूतिस्तथा कर्मणि मोहादिष्वंतरंगेषु, नोकर्मणि शरीरादिषु बहिरंगेषु चात्मतिरस्कारिषु पुद्गलपरिणामेष्वहमित्यात्मनि च कर्ममोहादयोऽतरंगा नोकर्मशरीरा-दयो बहिरंगाश्चात्मतिरस्कारिणः पुद्गलपरिणामा अमी इति वस्त्वभेदेन यावंतं कालमनुभूतिस्तावंतंकालमात्मा भवत्य-प्रतिबुद्धः। यदा कदाचिद्यथारूपिणो दर्पणस्य स्वपराकारावभासिनी स्वच्छतैव वन्हेरौष्ण्यं ज्वाला च तथा नीरूपस्यात्मनः स्वपराकारावभासिनी ज्ञातृतैव पुद्गलानां कर्मनोकर्म चेति स्वतःपरतो वा भेदविज्ञानमूलानुभूतिरुत्पत्स्यति तदैव प्रतिबुद्धो भविष्यति।

अर्थ—जेतैं या आत्माकै कर्म जे ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भावकर्म बहुरि नोकर्म जे शरीरा-दिक तिनिविषैं यह कर्म नोकर्म हैं, ते मैं हूं अर ए कर्मनोकर्म हैं ते मेरे हैं ऐसी बुद्धि है, तेतैं यह आत्मा अप्रतिबुद्ध है—अज्ञानी है।

टीका—जैसैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भावनिमैं अर पृथु कहिये चौडा अर बुध्न कहिये नीचैं अवगाहरूप ऐसा उदर आदिका आकाररूप परिणये जो पुद्गलके स्कंध, तिनिविषैं यह घट है अर घट-विषैं स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि भाव हैं अर पृथुबुध्नोदरादिके आकार परिणये पुद्गलस्कंध हैं, ऐसैं वस्तु अभेदकरिअनुभूति है। तैसैं कर्म जे मोह आदि अंतरंगपरिणाम अर नोकर्म शरीर आदि बाह्यवस्तु, ते कैसैं हैं? पुद्गलके परिणाम हैं अर आत्माके तिरस्कार करनेवाले हैं। तिनिविषैं यह कर्मनोकर्म मैं हूं, बहुरि मोहादिक अंतरंगकर्म अर शरीरादि बहिरंग, ते आत्माके तिरस्कार करनेवाले पुद्गलपरिणाम हैं ते ए आत्माविषैं हैं। ऐसैं वस्तु अभेदकरि जेतैं काल अनुभूति है, तेतैं काल आत्मा अप्रतिबुद्ध है अज्ञानी है, बहुरि जिस कोई कालविषैं जैसैं रूपी दर्पणकी स्वपरके आकारका प्रतिभास करने-वाली स्वच्छता ही है, अर उष्णता अर ज्वाला अग्निकी है, तैसैं अरूपी जो आत्मा ताकी तो

आपपरके जाननहारी ज्ञातृता ही है ज्ञातापणा ही है अर कर्मनोकर्मपुद्गलके ही है ऐसी आपहीतैं तथा परके उपदेशादिकतैं भेदविज्ञान है मूल जाका ऐसी अनुभूति उपजसी तिसही काल प्रतिवुद्ध होसी ज्ञानी होसी ।

भावार्थ—यहु आत्मा जबतांई ऐसैं जाने है, जो—स्पर्श आदिक तौ पुद्गलमें है अर पुद्गल स्पर्शादिमय है । तैसें ही जीवमैं तो कर्मनोकर्म है, अर कर्मनोकर्ममय जीव है तवतांई तौ अज्ञानी है । अर जब यह जानै, जो आत्मा तो ज्ञाताही है अर कर्मनोकर्मपुद्गलकेही है तवही ज्ञानी होय है । जैसें आरसेमैं अग्निकी ज्वाला दीखै तहां ऐसा जानिये, जो—ज्वाला तौ अग्निविषें ही है । आरसामैं पैठी नाहीं । अर आरसामैं दीखै है, सो आरसाकी स्वच्छता ही है । ऐसैं कर्मनोकर्म आपमैं पैठे नाहीं । आत्माकी ज्ञानस्वच्छता ऐसैं ही है, जामैं ज्ञेयका प्रतिबिंब दीखै, ऐसैं कर्मनोकर्म ज्ञेय हैं ते प्रतिभासे हैं, ऐसा अनुभव आत्माकै भेदज्ञानरूप कै तो स्वयमेव होय कै उपदेशतैं होय, तिसही काल ज्ञानी होय है । अब याही अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीछन्द:

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूलामचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।
प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावैर्मुकुरवदविकारा सततं स्युस्त एव ॥२१॥

ननु कथमयमप्रतिबुद्धो लक्ष्येत—

अर्थ—ये पुरुष आपहीतैं तथा परके उपदेशतैं कोईप्रकारकरि भेदविज्ञान है मूल उपत्तिकारण जाका ऐसी अविचल निश्चल अपने आत्माविषैं अनुभूतिकूं पावै हैं, तेही पुरुष आरसेकी ज्यों आपमैं प्रतिबिंबित भये जे अनंतभावनिके स्वभाव तिनिकरि निरंतर विकाररहित होय हैं, ज्ञानमैं ज्ञेयनिके आकार प्रतिभासैं तिनिकरि रागादिविकारकूं नाहीं प्राप्त होय है ।

आगैं शिष्य प्रश्न करै है, जो यह अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कैसें लखिये ताके चिन्ह कहो । ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं । गाथा—

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा ॥२०॥

नीचे लिखी दो गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छापी है।

जीवेव अजीवे वा संपदिसमयह्मि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंधमोक्खो होदि समासेण णिद्दिट्ठो ॥

जीवे वा अजीवे वा संप्रतिसमये यत्रोपयुक्तः।
तत्रैव बंधः मोक्षो भवति समासेन निर्दिष्टः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—जीवेव स्वशुद्धजीवे वा अजीवे वा देहादौ वा संपदिसमयह्मि वर्त्तमानकाले जत्थ उवजुत्तो यत्रोपयुक्तः तन्मयत्वेनोपादेयबुद्ध्या परिणतः तत्थेव तत्रैव अजीवे जीवे वा बंधमोक्खो अजीवदेहादौ बंधो, जीवे शुद्धात्मनि मोक्षः हवदि भवति समासेण णिद्दिट्ठो संक्षेपेण सर्वज्ञैर्निर्दिष्ट इति। अत्रैव ज्ञात्वा सहजानंदैकस्वभावनिजात्मनि रतिः कर्त्तव्या। तद्विलक्षणे परद्रव्ये विरतिरित्यभिप्रायः। अथाशुद्धनिश्चयेनात्मा रागादिभावकर्मणां कर्त्ता अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्यकर्मणामित्यावेदयति।

अर्थ—जब यह आत्मा देहादि परद्रव्यमें लीन होता है तब इसके कर्मोंका बंध होता है और जब शुद्धात्मस्वरूपमें लीन होता है उस समय कर्मोंसे मुक्त होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तारं ॥

यं करोति भावं आत्मा कर्त्ता स भवति तस्य भावस्य।
निश्चयतः व्यवहारनयात् पुद्गलकर्मणां कर्त्ता ॥

तात्पर्यवृत्तिः—जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स—यं करोति रागादि भावमात्मा स तस्य भावस्य

आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि ।
होहिदि पुणोवि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ॥२१॥
एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥२२॥

अहमेतदेतदहमेतस्यास्मि ममैतत् ।
अन्यद्यत्परद्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रं वा ॥२०॥
आसीन्मम पूर्वमेतदेतत् अहमिदं च पूर्वकाले ।
भविष्यति पुनरपि मम अहमिदं चैव पुनर्भविष्यामि ॥२१॥
एतत्त्वसद्भूतमात्मविकल्पं करोति संमूढः ।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसंमूढः ॥२२॥

परिणामस्य कर्त्ता भवति । णिच्छयदो-अशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धभावानां शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावानां कर्त्तेति भावानां परिणमनमेव कर्तृत्वं । ववहारा-अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयात्, पोग्गलकम्माण-पुद्गलद्रव्यकर्मादीनां, कत्तारं कर्त्तेति । कर्तारं इति कर्मपदं कर्त्तेति कथं भवतीति चेत् प्राकृते क्वापि कारकव्यभिचारोलिंगव्यभिचारश्च । अत्र रागादीनां जीवः कर्त्तेति भणितं ते च संसारकारणं ततः संसारभयभीतेन मोक्षार्थिना समस्तरागादिविभावरहिते शुद्धद्रव्यगुणपर्याये स्वरूपे निज परमात्मनि भावना कर्त्तव्येत्यभिप्रायः । एवं स्वतंत्रव्याख्यानमुखत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतं । अथ यथा-कोप्यप्रतिबुद्धः अग्निरिंधनं भवति इंधनमग्निर्भवति अग्निरिंधनमासीत् इंधनमग्निरासीत् अग्निरिंधनं भविष्यति इंधनमग्निर्भविष्यतीति वदति तथा यः कालत्रयेपि देहरागादिपरद्रव्यमात्मनि योजयति सोऽप्रतिबुद्धो बहिरात्मा मिथ्याज्ञानी भवतीति प्ररूपयति ।

अर्थ—यह आत्मा निश्चयनयसे जिन भावोंको करता है उनका कर्त्ता होता है और व्यवहार-नयसे पुद्गलकर्मोंका कर्त्ता होता है।

आत्मख्यातिः—यथाग्निरिंधनमस्तींधनमग्निरस्त्यग्नेरिंधनमस्तींधनस्याग्निरस्त्यग्नेरिंधनं पूर्वमासीदिंधनस्याग्निः पूर्वमासीदग्नेरिंधनं पुनर्भविष्यतींधनस्याग्निः पुनर्भविष्यतीतींधन एवासद्भूताग्निविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धः कश्चिल्लक्ष्येत तथाहमेतदस्म्येतदहमस्मि ममैतदस्त्येतस्याहमस्मि ममैतत्पूर्वमासीदेतस्याहं पूर्वमासं ममैतत्पुनर्भविष्यत्येतस्याहं पुनर्भविष्यामीति परद्रव्यएवासद्भूतात्मविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धो लक्ष्येतात्मा । नाग्निरिंधनमस्ति नेंधनमग्निरस्त्यग्निरग्निरस्तींधनमिंधनमस्ति । नाग्नेरिंधनमस्ति नेंधनस्याग्निरस्त्यग्नेरग्निरस्तींधनस्येंधनमस्ति । नाग्नेरिंधनं पूर्वमासीन्नेंधनस्याग्निः पूर्वमासीदग्नेरग्निः पूर्वमासीदिंधनस्येंधनं पूर्वमासीन्नाग्नेरिंधनं पुनर्भविष्यति नेंधनस्याग्निः पुनर्भविष्यत्यग्नेरग्निः पुनर्भविष्यतींधनस्येंधनं पुनर्भविष्यतीति कस्यचिदग्नावेव सद्भूताग्निविकल्पवन्नाहमेतदस्मि नैतदहमस्त्यहमहस्म्येतदेतदस्ति न ममैतदस्ति नैतस्याहमस्मि ममाहमस्म्येतस्यैतदस्ति न ममैतत्पूर्वमासीन्नैतस्याहं पूर्वमासं ममाहंपूर्वमासमेतस्यैतत्पूर्वमासीन्न ममैतत्पुनर्भविष्यति नैतस्याहं पुनर्भविष्यामि ममाहं पुनर्भविष्याम्येतस्यैतत्पुनर्भविष्यतीति स्वद्रव्य एव सद्भूतात्मविकल्पस्य प्रतिबुद्धलक्षणस्य भावात् ।

अर्थ—जो पुरुष आपतें अन्य जे परद्रव्य–सचित्त कहिये स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त कहिये धनधान्यादिक, मिश्र कहिये दोऊ जामें ऐसें ग्रामनगरादिक, तिनिकूं ऐसें जाने कीं,—मैं ए हूं, तथा मैं इनिका हूं, तथा ए मेरे हैं, तथा ए मेरे पूर्वे थे, तथा इनिका मैं पूर्वे था, तथा ए मेरे आगामी होयगे, तथा मैं भी इनिका आगामी होऊंगा । ऐसा झूठा असत्यार्थ आत्मविकल्प करे है, सो पुरुष मूढ है, मोही है, अज्ञानी है । बहुरि जो पुरुष भूतार्थ जो परमार्थ वस्तुस्वरूप ताकूं जाणता संता है, सो ऐसा झूठा विकल्प नाहीं करे है, सो मूढ नाहीं है, ज्ञानी है ।

टीका—पहले दृष्टांत कहे हैं, जैसें कोई पुरुष इंधन अग्निकूं मिल्या देखि ऐसा झूठा विकल्प करे, जो अग्नि है सो इंधन है, तथा इंधन है सो अग्नि है, तथा अग्निका इंधन पूर्वे था, इंधनका अग्नि पूर्वे था । तथा अग्निका इंधन आगामी होयगा अर इंधनका अग्नि आगामी होयगा । ऐसें इंधनके विषें ही अग्निका विकल्प करे सो झूठा है, तिसकरि अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कोई लख्या जाय है । तैसें ही दार्ष्टांत है, जैसें जो कोई परद्रव्यविषें असत्यार्थ आत्मविकल्प करे जो मैं यह परद्रव्य हूं । अर यह परद्रव्य है सो मै हूं । तथा यह मेरा परद्रव्य है । इस परद्रव्यका

मै हूं तथा मेरा यह पूर्वै था । मै इसका पूर्वै था । तथा मेरा यह आगामी होयगा । मै इसका आगामी हूंगा । ऐसैं झूठै विकल्पकरि अप्रतिवुद्ध अज्ञानी लख्या जाय है । बहुरि अग्नि है सो इंधन नाहीं है । अग्नि है सो अग्नि ही है, इंधन है सो इंधन ही है । तथा अग्निका इंधन नाहीं है, इंधनका अग्नि नाहीं है । अग्निका ही अग्नि है, इंधनका इंधन है । तथा अग्निका इंधन पूर्वैं भया नाहीं, इंधनका अग्नि पूर्वै भया नाहीं । अग्निका अग्नि पूर्वै भया, इंधनका इंधन पूर्वै भया । तथा अग्निका इंधन आगामी नाहीं होयगा, इंधनका अग्नि आगामी नाहीं होयगा । अग्निका ही अग्नि आगामी होयगा, इंधनका इंधन आगामी होयगा । ऐसें कोईकै अग्निविषैं ही सत्यार्थ अग्निका विकल्प जैसैं होय, तैसैं हो, मं यह परद्रव्य नाहीं है, सो परद्रव्यका परद्रव्य ही है । तथा यह परद्रव्य मोस्वरूप नाहीं है । मै तो मै ही हूं, परद्रव्य है सो परद्रव्य ही है । तथा मेरा यह परद्रव्य नाहीं इस परद्रव्यका मै नाहीं हूं । मेरा ही मै हूं, परद्रव्यका परद्रव्य हैं । तथा यां परद्रव्यका मै पूर्वै नाहीं भया, यह परद्रव्य मेरा पूर्वै नाहीं भया । मेरा मै ही पूर्वै भया, परद्रव्यका परद्रव्य पूर्वै भया । तथा यह परद्रव्य मेरा आगामी न होयगा, वाका मै आगामी नाही होंगा । मेरा मै ही आगामी होंगा, याका यह आगामी होयगा । ऐसैं स्वद्रव्य हीविषैं सत्यार्थ आत्म विकल्प होय है । यातैं यह ही प्रतिवुद्धज्ञानीका लक्षण है, याहीतें ज्ञानी लक्ष्या जाय है ।

भावार्थ—जो परद्रव्यविषैं आत्माका विकल्प करे है, सो तो अज्ञानी है । बहुरि अपने आत्माविषैं ही आपा माने है सो ज्ञानी है । ऐसा अग्नि इंधनका दृष्टांतकरि दृढ किया है । आगैं याही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीछन्दः

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं, रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।

इह कथमपि नात्मा नात्मना साकमेकः, किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

जथाप्रतिबुद्धबोधनाय व्यवसायः—

अर्थ—जगत् कहिये लोक है सो अनादिसंसारतैं लेकरि आस्वाद्या अनुभूया जो मोह, ताही आवतो छोडो । बहुरि रसिकजनको रुचनेवाला उदय होता जो ज्ञान, ताही आस्वादो, जातैं इस लोकविषैं आत्मा है सो अनात्मा जो परद्रव्य, ताकरि सहित काहूही कालविषैं प्रगटकरि नाहीं प्राप्त होय है, जातैं, आत्मा एक है, सो, अनात्मा जो दूजा अन्यद्रव्य, ताकरि एकतारूप नाहीं होय है ।

भावार्थ—आत्मा परद्रव्यतैं काहू प्रकार कोई कालविषैं एकताका भावकूं नाहीं प्राप्त होय है। तातैं आचार्यनैं ऐसी प्रेरणा करी है, जो, अनादितैं लग्या जो परद्रव्यतैं मोह, ताका भेदज्ञान बताया है, सो या एकपणारूप मोहकूं अबही छोडो, अर ज्ञानकूं आस्वादो, मोह है सो वृथा है, झूठा है, दुःखकारण है । आगैं अप्रतिबुद्धके प्रतिबोधनेके अर्थी व्यवसाय कहिये व्यापार उपाय कहे हैं । गाथा—

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं ।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥२३॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।
किह सो पुग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥२४॥
जदि सो पुग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सत्ता वुत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥२५॥

अज्ञानमोहितमतिर्ममेदं भणति पुद्गलद्रव्यं ।
बद्धमबद्धं च तथा जीवो बहुभावसंयुक्तः ॥२३॥

सर्वज्ञज्ञानदृष्टो जीव उपयोगलक्षणो नित्यं।
कथं स पुद्गलद्रव्यीभूतो यद्भणसि ममेदं ॥२४॥
यदि स पुद्गलद्रव्यीभूतो जीवत्वमागतमितरत् ।
तच्छक्तो वक्तुं यन्ममेदं पुद्गलं द्रव्यं ॥२५॥

आत्मख्यातिः—युगपदनेकविधस्य बंधनोपाधेः सन्निधानेन प्रधावितानामस्वभावभावानां संयोगवशाद्विचित्राश्रयोपरक्तः स्फटिकोपल इवात्यंततिरोहितस्वभावभावतया अस्तमितसमस्तविवेकज्योतिर्महता स्वयमज्ञानेन विमोहितहृदयो भेदमकृत्वा तानेवास्वभावभावान् स्वीकुर्वाणः पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवति किलाप्रतिबुद्धो जीवः । अथायमेव प्रतिबोध्यते रे दुरात्मन् ! आत्मपंसन् । जहीहि जहीहि परमाविवेकघस्मरसतृणाभ्यवहारित्वं । दूरनिरस्तसमस्तसंदेहविपर्यासानध्यवसायेन विश्वैकज्योतिषा सर्वज्ञज्ञानेन स्फुटीकृतं किल नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं । तत्कथं पुद्गलद्रव्यीभूतं येन पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवसि यतो यदि कथंचनापि जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभूतं स्यात्, पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभूतं स्यात् तदैव लवणस्योदकमिव ममेदंपुद्गलद्रव्यमित्यनुभूतिः किल घटेत तत्तु न कथंचनापि स्यात् तथा हि—यथा क्षारत्वलक्षणं लवणमुदकीभवत् द्रव्यत्वलक्षण मुदकं च लवणीभवत् क्षारत्वद्रवत्वसहवृत्त्यविरोधादनुभूयते न तथा नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभवत् नित्यानुपयोगलक्षणं पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभवत् उपयोगानुपयोगयोः प्रकाशतमसोरिव सहवृत्तिविरोधादनुभूयते । तत्सर्वथा प्रसीद विबुध्य स्वद्रव्यं ममेदमित्यनुभव ।

अर्थ—अज्ञानकरि मोहित है मति जाकी ऐसा जीव है सो ऐसैं कहे है–जो यहु बद्ध कहिये शरीरादि, अवद्ध कहिये वाह्य धनधान्यादि परद्रव्य है सो मेरा है। कैसा है जीव ? वहुभाव कहिये मोह राग द्वेषादि वहुतभाव, तिनिकरि संयुक्त है । आचार्य कहे हैं–सर्वज्ञके ज्ञानकरि देख्या जो नित्य उपयोग है लक्षण जाका ऐसा जीव है सो पुद्गलद्रव्यरूप कैसैं होय ? जो तूं कहे है यह पुद्गलद्रव्य मेरा है । वहुरि जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप होय जाय, तौ पुद्गलद्रव्य भी जीवपणाकूं प्राप्त होय ऐसा आया । जो ऐसैं होय, तो यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसैं कहनेकूं तुम भी समर्थ होऊ, सो ऐसैं है नाहीं ।

टीका–अप्रतिबुद्ध कहिये अज्ञानी जीव है, सो पुद्गलद्रव्य है ताही यह मेरा है ऐसा अनुभवे

है । कैसा है अज्ञानी जीव ? अत्यंत आच्छादित भया जो अपना स्वभावभाव तिसपणाकरि अस्त भया है समस्त विवेक कहिये भेदज्ञानरूप ज्योति जाका । बहुरि कैसा है ? बडे अज्ञानकरि आपहीकरि विमोहित है हृदय जाका । बहुरि कैसा है ? भेदज्ञानविना अपना अर परका भेद नाहीं करी अर जे अपने स्वभाव नाहीं ऐसैं विभाव, तिनिकूं अपने करता है । जातैं जे अपने स्वभाव नाहीं ऐसैं जे परभाव, तिनिके संयोगके वशतैं अपना स्वभाव अत्यंत तिरोहित भया है छिप्या है । कैसे हैं परभाव ? एककाल अनेकप्रकारका जो बंधनका उपाधि, तिसके सन्निधान कहिये अतिनिकटता ताकरि प्राप्त भये हैं । जैसैं स्फटिकपाषाणकै अनेकप्रकारके वर्णकी निकटताकरि अनेकवर्णरूपपणा दीखै, स्फटिकका निजश्वेतनिर्मलभाव दीखै नाहीं, तैसैं ही कर्मका उपाधिकरि शुद्धस्वभाव आत्माका आच्छादित होय रह्या है, सो दीखै नाहीं, इस प्रकारकरि पुद्गलद्रव्यकूं अपना करी माने है । ऐसैं अज्ञानीकूं प्रतिबोधिये हैं । रे दुरात्मन् आत्माका घात करनहारा तूं परम अविवेककरि जैसैं तृणसहित सुंदर आहारकूं हस्ती आदि पशु खाय, तैसैं खानेका स्वभावपणाकूं छोडि छोडि । जो सर्वज्ञज्ञानकरि प्रगट कीया नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य, सो कैसैं पुद्गलरूप भया ? जाकरि तूं यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसा अनुभवे है । कैसा है सर्वज्ञका ज्ञान ? दूरि किये हैं समस्त संदेह विपर्यय अनध्यवसाय जानैं । बहुरि कैसा है ? विश्व कहिये समस्तवस्तु ताकै प्रकाशनेको एक अद्वितीय ज्योति है । ऐसैं ज्ञानकरि दिखाया है । बहुरि जो कदाचित् कोई प्रकार जैसैं लूण तौ जलरूप होय जाय है, जल लूणरूप होय जाय है । तैसैं जीवद्रव्य तौ, पुद्गलद्रव्यरूप होय, अर पुद्गलद्रव्य जीवरूप होय, तौ तेरी "पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसी" अनुभूति बनै सो तौ कोई प्रकार भी द्रव्यस्वभाव पलटै नाहीं । सो ही दृष्टांतकूं स्पष्ट करे हैं । जैसैं क्षारपणा है लक्षण जाका ऐसा लूण है सो तौ जलरूप होता देखिये है । बहुरि द्रवत्व है लक्षण जाका ऐसा जल है सो लूणरूप होता देखिये है । जातैं लूणका क्षारपणाकै अर जलका द्रवपणाकै सहवृत्तिका अविरोध है । यह होना विरोधरूप नाहीं है । तैसैं नित्य उप-

योगलक्षण तौ जीवद्रव्य है, सो तो पुद्‌गलद्रव्य होता न देखिये है। बहुरि नित्य अनुपयोग जड-लक्षण पुद्‌गलद्रव्य है, सो जीवद्रव्यरूप होता न देखिये है। जातैं प्रकाशतमकी ज्यौं उपयोग अनुपयोगकै सहवृत्तिका विरोध है। जड चेतन कदाचित् भी एक होय नाहीं। तातैं तूं सर्वप्रकार करि प्रसन्न होऊ, तेरा चित्त उज्ज्वल करी सवाधान होऊ। अपने ही द्रव्यकूं अपना अनुभवरूप करी। ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है।

भावार्थ—यह अज्ञानी जीव पुद्‌गलद्रव्यकूं अपना माने है, ताकूं उपदेश करी सावधान किया है। जो सर्वज्ञने ऐसा देख्या है–जो जड चेतनद्रव्य सर्वथा न्यारे न्यारे हैं कदाचित् कोई प्रकार भी एकरूप होय नाहीं। तातैं हे अज्ञानी तूं परद्रव्यकूं एकपणाकरि मानना छोडि वृथा मानि करि पूरि पडौ। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्, अनुभव भवमूर्त्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन, त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥ २३॥

अर्थ—अयि ऐसा कोमल आमन्त्रण संबोधन अर्थमैं अव्यय है, ताकरि कहे हैं, भाई! तूं कथमपि कहिये कोई ही प्रकारकरि बडा कष्टकरि तथा मरिहूकरि तत्त्वनिका कौतूहली हुवा संता, इस शरीरादि मूर्तद्रव्यका एक मुहूर्त दोय घडी पाडोसी होऊ, अर आत्माका अनुभव करी। जाकरि अपने आत्माकूं विलासरूप सर्व परद्रव्यतैं न्यारा देखिकरि इस शरीरादिमूर्तिक पुद्गलद्रव्य-करि सहित एकपणाका मोहकूं शीघ्रही छोडैगा।

भावार्थ–जो यह आत्मा दोय घडी पुद्गलद्रव्यतैं भिन्न अपना शुद्धस्वरूपकूं अनुभवै तामैं लीन होय परीषह आये चिगै नाहीं, तौ घातिकर्मका नाशकरि केवलज्ञान उपजाय मोक्षकूं प्राप्त होय। आत्मानुभवका ऐसा माहात्म्य है तो मिथ्यात्वका नाशकरि सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना तौ सुगम है। तातैं श्रीगुरुनिनैं यह ही प्रधानकरि उपदेश कीया है। आगैं अप्रतिबुद्ध जो अज्ञानी जीव, सो कहे है, ताका वचनकी पहली गाथा है। गाथा—

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चैव ।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥२६॥

यदि जीवो न शरीरं तीर्थंकराचार्यसंस्तुतिश्चैव ।
सर्वापि भवति मिथ्या तेन तु आत्मा भवति देहः ॥२६॥

आत्मख्यातिः—यदि य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यं न भवेत्तदा ।

अर्थ—अप्रतिबुद्ध कहे हैं, जो जीव है सो शरीर नाहीं है, तौ तीर्थंकर अर आचार्य इनिकी स्तुति करी है सो सर्वही मिथ्या होय है झूठी होय है । तिस कारणकरि हम जाने है आत्मा यह देहही है ।

टीका—जो ही आत्मा है सोही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है । ऐसैं नाहीं होय तौ तीर्थंकर आचार्यनिकी ऐसी स्तुति करी है सो सारी मिथ्या होय । सो स्तुति कैसी है ताका काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये ।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥

इत्यादिका तीर्थंकराचार्यस्तुतिः समस्तापि मिथ्या स्यात् ततो य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यमिति ममैकांतिकी प्रतिपत्तिः नैवं नयविभागानभिज्ञोसि ।

अर्थ—ते तीर्थंकर आचार्य वंदिवे योग्य हैं । कैसैं हैं ते ? अपनी देहकी कांतिकरि तौ दशदिशानिकूं स्नपन करे हैं, धोवे हैं, निर्मल करे हैं । बहुरि अपने तेजकरि तेजतैं उत्कृष्ट जो सूर्यादिक तेजस्वी तिनिका तेजकूं रोके हैं । बहुरि ते रूपकरि लोकनिके मनकूं हरे हैं । बहुरि दिव्यध्वनिवाणीकरि कानन्विषैं साक्षात् सुख अमृत वर्षावे हैं । बहुरि एक हजार आठ लक्षणनिको धारे हैं ऐसैं हैं । इत्यादिक तीर्थंकर आचार्यनिकी स्तुति है । सो सर्वही मिथ्या ठहरे है । तातैं हमारै तौ यह ही एकांतकरी निश्चयप्रतिपत्ति है, जो आत्मा है सोही शरीर है पुद्गलद्रव्य है, ऐसा

अप्रतिबुद्धने कह्या । तहां आचार्य कहे हैं, जो ऐसैं नाहीं है । तूं नयविभागका जाननेवाला नाहीं है । नयविभाग ऐसा है, सोही गाथामैं कहै हैं । गाथा—

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥२७॥

व्यवहारनयो भाषते जीवो देहश्च भवति खल्वेकः ।
न तु निश्चयस्य जीवो देहश्च कदाप्येकार्थः ॥२७॥

आतमख्यातिः—इह खलु परस्परावगाढावस्थायामातमशरीरयोः समवर्त्तितावस्थायां कनककलधौतयोरेकस्कंधव्यवहारवद्व्यवहारमात्रेणैवैकत्वं न पुनर्निश्चयतः । निश्चयतो ह्यातमशरीरयोरुपयोगानुपयोगस्वभावयोः कनकलधौतयोः पीतपांडुरत्वादिस्वभावयोरिवात्यंतव्यतिरिक्तत्वेनैकार्थत्वानुपपत्तेः नानात्वमेव हि किल नयविभागः । ततो व्यवहारनयेनैव शरीरस्तवनेनातमस्तवनमुपपन्नं । तथाहि—

अर्थ—व्यवहारनय है सो तो, जीव अर देह एकही है ऐसा कहे है । वहुरि निश्चयनयके जीव अर देह कदाचित् भी एकपदार्थ नाहीं हैं ।

टीका—जैसैं इस लोकविषैं सुवर्ण अर रूपाकूं गालि एक कीये एकपिंडका व्यवहार होय है, तैसैं आत्माकै अर शरीरकै परस्पर एकक्षेत्रावगाहकी अवस्था होतैं एकपणाका व्यवहार है, ऐसैं व्यवहारमात्रहीकरि आत्मा अर शरीरका एकपणा है । वहुरि निश्चयतैं एकपणा नाहीं है, जातैं पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रूपा हैं, तिनिकैं जैसैं निश्चय विचारिये तब अत्यंत भिन्नपणाकरि एकपदार्थपणाकी अनुपपत्ति है, तातैं नानापणा ही है । तैसैं ही आत्मा अर शरीर उपयोग अनुपयोग स्वभाव हैं । तिनिकैं अत्यंतभिन्नपणातैं एकपदार्थपणाकी प्राप्ति नाहीं तातैं नानापणा ही है । ऐसा यह प्रगट नयविभाग है । तातैं व्यवहारनयही करि शरीरके स्तवनकरि आत्माका स्तवन बने है ।

भावार्थ—व्यवहारनय तो आत्मा अर शरीरकूं एक कहे है अर निश्चयनय भिन्न कहे है, तातैं व्यवहारनयकरि शरीरका स्तवन करी आत्माका स्तवन मानिये है। सोही आगैं गाथामैं कहे हैं। गाथा—

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं॥२८॥

इदमन्यत् जीवाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः।
मन्यते खलु संस्तुतो वन्दितो मया केवली भगवान् ॥२८॥

आत्मख्यातिः—यथा कलधौतगुणस्य पांडुरत्वस्य व्यपदेशेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि कार्तस्वरस्य व्यवहारमात्रेणैव पांडुरं कार्तस्वरमित्यस्ति व्यपदेशः। तथा शरीरगुणस्य शुक्ललोहितत्वादेः स्तवनेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि तीर्थंकरकेवलिपुरुषस्य व्यवहारमात्रेणैव शुक्ललोहितस्तीर्थंकरकेवलिपुरुष इत्यस्ति स्तवनं। निश्चयनयेन तु शरीरस्तवेननात्मस्तवनमनुपपन्नमेव तथाहि—

अर्थ—मुनि है सो यह जीवतैं अन्य पुद्गलमय देह ताकी स्तुति करी अर यह माने है, जो, मैं केवली भगवानकी स्तुती करी वंदना करी।

टीका—जैसैं रूपाका गुण जो पांडुरपणा, ताका नामकरि सुवर्णकूं पांडुर ऐसा नामकरि कहिये सो व्यवहारमात्रकरि कहिये है। परमार्थ विचारिये तब सुवर्णका स्वभाव पांडुर नाहीं है, पीत है। तैसैं ही शुक्लरक्तपणा आदिक शरीरके गुण हैं, जाके स्तवनकरि, तीर्थंकर केवलीपुरुषकूं कहिये शुक्ल हैं रक्त हैं ऐसा स्तवन करीये हैं, सो यह स्तवन व्यवहारमात्रकरि है। परमार्थ विचारिये तब शुक्लरक्तपणा तीर्थंकर केवली पुरुषका स्वभाव है नाहीं। तातैं निश्चयनयकरि शरीरका स्तवन करि आत्माका स्तवन नाहीं बने है सोही गाथाकरि कहे हैं। इहां कोई पूछे, जो, व्यवहारनय तो असत्यार्थ कह्या है अर शरीर जड है, सो व्यवहारके आश्रय जडकी स्तुतीका कहा फल? ताका उत्तर—जो, व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नाहीं है, निश्चयकूं

प्रधानकरि असत्यार्थ कह्या है अर छद्मस्थकूं आपापरका आत्मा साक्षात् दीखै नाहीं अर शरीर दीखै, ताकी मुद्रा शांतरूपकूं देखि अपने भी शांतभाव होय । ऐसा उपकार जानि शरीरकै आश्रय भी स्तुति करे है, तथा शांतमुद्रा देखि अंतरंग वीतरागभावका निश्चय होय है यह भी उपकार है । गाथा--

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥ २९ ॥

तन्निश्चयेन युज्यते न शरीरगुणा हि भवन्ति केवलिनः ।
केवलिगुणान् स्तौति यः स तत्त्वं केवलिनं स्तौति ॥२९॥

आत्मख्याति—यथा कार्तस्वरस्य कलधौतगुणस्य पांडुरत्वस्याभावान्न निश्चयतस्तद्व्यपदेशेन व्यपदेशः । कार्तस्वरगुणस्य व्यपदेशेनैव कार्तस्वरस्य व्यपदेशात् तथा तीर्थंकरकेवलिपुरुषस्य शरीरगुणस्य शुक्लोहितत्वादेरभावान्न निश्चयतस्तत्स्तवनेन स्तवनं तीर्थंकरकेवलिपुरुषगुणस्य स्तवनेनैव तीर्थंकरकेवलि पुरुषस्य स्तवनात् । कथं शरीरस्तवनेन तदधिष्ठातृत्वादात्मनो निश्चयेन स्तवनं न युज्यते इति चेत्—

अर्थ—सो स्तवन निश्चयविषैं युक्त नाहीं है जातैं शरीरके गुण हैं ते केवलीके नाहीं हैं । जो केवलीके गुणनिकूं स्तवे है सो ही परमार्थकरि केवलिकूं स्तवे है ।

टीका—सुवर्णकै रूपेका गुण पांडुरपणा ताका अभाव है, तातैं पांडुरपणा नाककरि सुवर्णका नाम नाहीं बने है, सुवर्णके गुण जे पीतपणा आदि, तिसहीके नामकरि सुवर्णका नाम होय है । तैसैंही तीर्थंकर केवली पुरूषके शरीरके गुण जे शुक्लरक्तपणा आदि, तिनिका अभाव है, तातैं निश्चयतैं शरीरके गुणके स्तवनकरि तीर्थंकर केवलीपुरुषका स्तवन नाहीं होय है, तीर्थंकर केवली पुरुषके गुणके स्तवनकरि ही ताका स्तवन होय है । आगैं शिष्यका प्रश्न है, जो, आत्मा तौ शरीरहीकै आधार है, तातैं शरीरके स्तवनकरि आत्माका स्तवन निश्चयकरि कैसैं नाहीं युक्त है ? ऐसा प्रश्नका उत्तररूप दृष्टांतसहित गाथा कहे हैं । गाथा—

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥३०॥

नगरे वर्णिते यथा नापि राज्ञो वर्णना कृता भवति ।
देहगुणे स्तूयमाने न केवलिगुणाः स्तुता भवन्ति ॥३०॥

आत्मख्यातिः—तथाहि—

अर्थ—जैसें नगरका वर्णन करते संते राजाका वर्णन नाहीं किया होय है, तैसा देहका गुणकूं स्तवते संते केवलीके गुण नाहीं स्तवनरूप कीये होय हैं । इसही अर्थका टीकाविषैं प्रथम काव्य है ।

आर्याछन्दः

प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम् ।
पिवतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ॥१॥

इति नगरे वर्णितेपि राज्ञः तदधिष्ठातृत्वेपि प्राकारोपवनपरिखादिमत्वाभावाद्वर्णनं न स्यात् तथैव—

अर्थ—यह नगर है सो कैसा है ? प्राकार कहिये कोट, ताकरि तो ग्रस्या है आकाश जानैं ऐसा है । भावार्थ--कोट ऊंचा बहुत है. बहुरि उपवन कहिये बाग, तिनिकी राजी कहिये पंक्ति, तिनिकरि निगल्या है भूमितल जानैं ऐसा है । भावार्थ---सर्वतरफ बागनितें पृथ्वी छाय रही है. बहुरि कैसा है ? कोटके चौगिरद खाईका वलयकरि मानूं पातालकूं पीवै ही है, ऐसा है । भावार्थ---खाई ऊंडी बहुत है । ऐसैं नगरका वर्णन करते संते राजा याकै आधार है तौऊ, कोट बाग खाई आदि सहित राजा नाहीं है । तातैं राजाका वर्णन याकरि नाहीं होय है । तैसैंही तीर्थंकरका स्तवन शरीरका स्तवन कीये नाहीं होय है, ताका भी काव्य है ।

नित्यमविकारसुस्थितसर्वाङ्गमपूर्वसहजलावण्यम् ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ॥२॥

इति शरीरे स्तूयमानेपि तीर्थंकरकेवलिपुरुषस्य तदधिष्ठातृत्वेपि सुस्थितसर्वांगत्वलावण्यादिगुणाभावात्स्तवनं न स्यात्। अथ निश्चयस्तुतिमाह तत्र ज्ञेयज्ञायकसंकरदोषपरिहारेण तावत्—

अर्थ—जिनेंद्रका रूप है सो उत्कृष्ट जैसा होय तैसैं जयवंत वर्तै है। कैसा है? नित्य ही अविकार अर भलैंप्रकार सुखरूप तिष्ठया है सर्वांग जामैं। बहुरि कैसा है? अपूर्व स्वाभाविक है अर जन्महीतैं लेकरि उपजा है लावण्य जामैं। भावार्थ—सर्वकूं प्रिय लागे है, बहुरि कैसा है? समुद्रकी ज्यों क्षोभ रहित है, चलाचल नाहीं है। ऐसैं शरीरका स्तवन करते भी तीर्थंकर केवली पुरुषके शरीरका अधिष्टातापणा है, तौऊ सुस्थित सर्वांगपणा अर लावण्यपणा आत्माका गुण नाहीं। तातैं तीर्थंकर केवलीपुरुषके इनि गुणनिका अभावतैं याका स्तवन न होय। अब जैसैं तीर्थंकर केवलीकी निश्चयस्तुति होय तैसैं कहे हैं। तहां प्रथम ही ज्ञेयज्ञायककै संकरदोष आवे ताका परिहार करि स्तुति कहे हैं। गाथा—

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥३१॥

यः इन्द्रियाणि जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं खलु जितेन्द्रियं ते भणन्ति ये निश्चिताः साधवः ॥३१॥

आत्मख्यातिः—यः खलु निरवधिबंधपर्यायवशेन प्रत्यस्तमितसमस्तस्वपरविभागानि निर्मलभेदाभ्यासकौशलोपलब्धांतःस्फुटातिसूक्ष्मचित्स्वभावावष्टंभबलेन शरीरपरिणामापन्नानि द्रव्येंद्रियाणि प्रतिविशिष्टस्वस्वविषयव्यवसायितया खंडशः आकर्षति प्रतीयमानाखंडैकचिच्छक्तितया भावेंद्रियाणि ग्राह्यग्राहकलक्षणसंबंधप्रत्यासत्तिवशेन सह संविदा परस्परमेकीभूतानि च चिच्छक्तेः स्वयमेवानुभूयमानासंगतया भावेंद्रियावगृह्यमाणान् स्पर्शादीनिंद्रियार्थांश्च सर्वथा स्वतः पृथक्करणेन विजित्योपरतसमस्तज्ञेयज्ञायकसंकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णे विश्वस्याप्युपर्युपरि तरता प्रत्यक्षोद्योततया नित्यमेवांतःप्रकाशमानेनानपायिना स्वतःसिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन सर्वेभ्यो द्रव्यांतरेभ्यः परमार्थतोतिरिक्तमात्मानं संचेतयते स खलु जितेंद्रियो जिन इत्येका निश्चयस्तुतिः। अथ भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण—

अर्थ—जो इंद्रियनिकूं जीतिकरि ज्ञानस्वभावकरि अन्यद्रव्यतैं अधिका आत्माकूं जाने है ताकूं जितेंद्रिय ऐसा; जे निश्चयनयविषैं तिष्ठैं साधु हैं, ते कहे हैं।

टीका—जो मुनि द्रव्येंद्रिय तथा भावेंद्रिय तथा इंद्रियनिके विषयनिके पदार्थ इनि तीनीहीकूं आपतैं न्याराकरि अर समस्त अन्यद्रव्यनितैं भिन्न आत्माकूं अनुभवे है, सो निश्चयकरि जितेंद्रिय है। कैसैं हैं द्रव्येंद्रिय ? अनादि अमर्यादरूप जो बन्धपर्याय, ताके वशकरि, अस्त भया है समस्त स्वपरका विभाग जिनिकरि। बहुरि कैसैं हैं ? शरीरपरिणामकूं प्राप्त भये हैं। भावार्थ—आत्मातैं ऐसैं एक होय रहे हैं, जो भेद नाहीं दीखै है। तिनिकूं तो निर्मल जो भेदका अभ्यासका प्रवीणपणा, ताकरि पाया जो अंतरंगविषैं प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव, ताका अवलंबन, ताके बलकरि आपतैं न्यारे किये है, यह ही जीतना। बहुरि कैसैं हैं भावेंद्रिय ? न्यारे न्यारे विशेषनिकूं लिए जे अपने विषय तिनिविषैं व्यापारपणाकरि विषयनिकूं खंड-खंड ग्रहण करते हैं। भावार्थ—ज्ञानकूं खंड-खंडरूप जणावे हैं। तिनिकूं प्रतीतिमैं आवती जो अखंड एक चैतन्यशक्ति, ताकरि आपतैं न्यारे जाने हैं, इनिका एही जीतना। बहुरि कैसैं हैं इंद्रियनिके विषयभूत पदार्थ ? ग्राह्यग्राहकलक्षण जो संबंधी ताकी निकटताके वशकरि अपने संवेदन अनुभवकरि सहित परस्पर एकसे होय दीखे हैं, तिनिकूं अपनी चैतन्यशक्तिके आपही अनुभवमैं आवता जो असंगपणा असिलमिलाप ताकरि भावेंद्रियनिकरि ग्रहे हुये जे स्पर्शादिकपदार्थ, तिनिकूं आपतैं न्यारे किये हैं, इनिका एही जीतना। ऐसैं इंद्रियज्ञानकै अर विषयभूत पदार्थनिकैं ज्ञेयज्ञायकका संकरनामा दोष आवै था, ताके दूरि होनेकरि आत्मा एकपणाविषैं टंकोत्कीर्ण ठहर्या। जैसैं टाकीकरि उकीरी पाषाणविषैं मूर्ति एकाकार जैसीकी तैसी ठहरै, तैसैं ठहरया। सो यह काहे करि ऐसा जान्या ? समस्तपदार्थनिके तो उपरि तरता जानता संता भी तिनिरूप नाहीं होता अर प्रत्यक्ष उद्योतपणाकरि नित्य ही अंतरंगविषैं प्रकाशमान अर अनपायी अविनश्वर अर आपहीतैं सिद्ध भया अर परमार्थरूप ऐसा भगवान् जो ज्ञानस्वभाव ताकरि सर्व अन्यद्रव्यतैं परमार्थतैं जुदा जान्या, जातैं

ऐसा ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतनद्रव्यनिमें नाहीं, तातें सर्वतें अधिक न्यारा ही है। ऐसें आत्माकूं जाणे। सो जितेंद्रिय जिन है। ऐसें एक तो यह निश्चयस्तुति भई। इहां ज्ञेय तौ इंद्रियनिके विषयभूत पदार्थ अर ज्ञायक आप आत्मा, इनि दोऊनिके विषयनिकी आसक्तताकरि अनुभवन एकसा होय था, सो भेदज्ञानकरि भिन्नपणा जान्या, तब ज्ञेयज्ञायक संकरदोष दूरि भया ऐसें जानना। आगें भाव्यभावक संकरदोष परिहार करि स्तुति कहे हैं। गाथा—

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥३२॥

यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका विंदन्ति ॥३२॥

आत्मख्यातिः—यो हि नाम फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकत्वेन भवंतमपि दूरत एव तदनु वृत्तेरात्मनो भावस्य व्यावर्त्तनेन हठान्मोहं न्यक्कृत्योपरतसमस्तभाव्यभावकसंकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्याप्यस्योपरितरता प्रत्यक्षोद्योतितया नित्यमेवांतः प्रकाशमानेनानपायिना स्वतः सिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन द्रव्यांतरस्वभावभाविभ्यः सर्वेभ्यो भावांतरेभ्यः परमार्थतोतिरिक्तमात्मानं संचेतयते स खलु जितमोहो जिन इति द्वितीया निश्चयस्तुतिः। एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायसूत्राण्येकादश पंचानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिंद्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्यातत्वाद्व्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि। अथ भाव्यभावकभावाभावेन।

अर्थ—जो मुनि मोहकूं जीतिकरि अपने आत्माकूं ज्ञानस्वभावकरि अन्यद्रव्यभावनितें अधिका जानै तिस मुनीकूं परमार्थके जाननेवाले जितमोह ऐसा जाने हैं, कहे हैं।

टीका—जो मुनि है सो फल देनेकी सामर्थ्यकरि प्रगट उदयरूप होय अर भावकपणाकरि प्रगट होता जो मोहकर्म, ताही, तिसके अनुसार है प्रवृत्ति जाकी, ऐसा जो अपना आत्मा भाव्य, ताकूं भेदज्ञानके बलतें दूरिहीतें न्यारा करनेकरि मोहकूं न्यारा करि, अर तिरस्कार करनेतें दूरि भया है समस्त भाव्यभावक संकरदोष जामें, तिसपणाकरि एकपणा होते, टंकोत्कीर्ण निश्चल

एक अपने आत्माकूं अनुभवे है। सो जीत्या है मोह जानें ऐसा जिन है। कैसा है आत्मा? समस्तलोकके उपरि तरता अर प्रत्यक्ष उद्योतपणाकरि नित्यहि अंतरंगविषैं प्रकाशमान अविनाशी अर आपहीतैं सिद्ध भया परमार्थरूप भगवान् ऐसा जो ज्ञानस्वभाव ताकरि, अन्यद्रव्यके स्वभावकरि होनेवाले जे सर्व ही अन्यभाव, तिनितैं परमार्थकरि अतिरिक्त कहिये अधिका है, न्यारा है। ऐसा ज्ञानस्वभाव अन्यभावनिमैं नाहीं है ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्माकूं अनुभवे है।

भावार्थ—ऐसैं अपना आत्मा, भावक जो मोह, ताके अनुसार प्रवृत्तितैं भाव्यरूप होय, ताकूं भेदज्ञानके बलतैं न्यारा अनुभवे सो जितमोह जिन है। ऐसैं भाव्यभावकभावके संकरदोषपरिहार करि, दूसरी निश्चयस्तुति है। इहां आशय ऐसा--जो, श्रेणी चढतैं मोहका उदय अनुभवमैं न रहै, अपने बलतैं उपशमादि करि आत्माकूं अनुभवे है, ताकूं जितमोह कह्या है। इहां मोहकूं जीत्या है ताका नाश न भया। इहां गाथामैं एक मोहहीका नाम लिया, तातैं मोहका पद पलटिकरि, ताकी जायगा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय ए ग्यारह तो इस सूत्रकरि, अर श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए पांच इंद्रियसूत्रकरि, ऐसैं सोलह पद पलटनेतैं, सोलह सूत्र न्यारे न्यारे व्याख्यानरूप करने, अर इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारणे। आगैं भाव्यभावकभावके अभावकरि निश्चयस्तुति कहे हैं। गाथा—

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥३३॥

जितमोहस्य तु यदा क्षीणो मोहो भवेत्साधोः।
तदा खलु क्षीणमोहो भण्यते स निश्चयविद्भिः ॥३३॥

आत्मख्यातिः—इह खलु पूर्वप्रक्रान्तेन विधानेनात्मनो मोहं न्यक्कृत्य यथोदितज्ञानस्वभावानतिरिक्तात्मसंचेतनेन जितमोहस्य सतो यदा स्वभावभावभावनासौष्ठवावष्टंभात्तत्संतानात्यंतविनाशेन पुनरप्रादुर्भावाय भावकः क्षीणो मोहः स्यात्तदा स एव भाव्यभावकभावाभावेनैकत्वे टंकोत्कीर्णपरमात्मानमवाप्तः क्षीणमोहो जिन इति तृतीया निश्चयस्तुतिः।

एवमेव च मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि।

अर्थ—जीत्या है मोह ज्यानें ऐसें साधुके, जिसकाल मोह है सो क्षीण होय सत्तामैंसूं नाश होय, तिसकाल, जे निश्चयनयके जाननेवाले हैं, ते निश्चयकरि तिस साधूकूं क्षीणमोह ऐसा नाम कहे हैं।

टीका—इस निश्चयस्तुतिविषैं जो पूर्वोक्तविधानकरि मोहकूं तिरस्कार करि, जैसा कह्या तैसा ज्ञानस्वभावकरि, अन्यद्रव्यतैं अधिक आत्माका अनुभव करनेकरि, जितमोह भया, ताकै जिसकाल अपने स्वभावभावकी भावनाका भलैप्रकार अवलम्बन करनेतैं मोहका सन्तानका अत्यंत विनाश ऐसा होय, 'जो फेरि ताका उदय नाहीं होय है' ऐसा भावकरूप मोह, जिसकाल क्षीण होय, तिसकाल भावकमोहका क्षय होतैं, आत्माके विभावरूप भाव्यभावका भी अभाव होय। ऐसें भाव्यभावकभावका अभाव करि एकपणा होतैं, टंकोत्कीर्ण निश्चल परमात्माकूं प्राप्त हुवा संता 'क्षीणमोह जिन' ऐसा कहिये। यह तीसरी निश्चयस्तुति है।

भावार्थ—जिसकाल साधु पहले अपने वलतैं उपशमभावकरि मोहकूं जीत्या पीछैं जिसकाल अपनी वडी सामर्थ्यतैं मोहका सत्तामैंसूं नाशकरि, ज्ञानस्वरूप परमात्माकूं प्राप्त होय, तब क्षीणमोह जिन कहिये। इहां भी पूर्वे कहे तैसैं ही मोक्षपदकूं पलटिकरि, तहां राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ये पद स्थापि सोलहसूत्र पढ़ने अर व्याख्यान करना अर इसही प्रकार उपदेश करि अन्य भी विचारणे। अब इहां इस निश्चयव्यवहाररूपस्तुतीके अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चयान्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवेन्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥२७॥

अर्थ—कायकै अर आत्माकै व्यवहारनयकरि एकपणा है। वहुरि निश्चयनयकरि एकपणा

नाहीं है। याहीतैं शरीरके स्तवनतैं आत्मापुरुषका स्तवन व्यवहारनयकरि भया कहिये, अर निश्चयतैं न कहिये। निश्चयतैं तौ चैतन्यके स्तवनतैं ही चैतन्यका स्तवन होय है। सो चैतन्यका स्तवन इहाँ जितेंद्रिय, जितमोह, क्षीणमोह ऐसैं कह्या तैसैं होय है। तातैं यह सिद्ध भया—जो अज्ञानितैं तीर्थंकरके स्तवनका प्रश्न कीया था ताका यह नय विभागकरि उत्तर दिया, ताके बलतैं आत्माकै अर शरीरकै एकपणा निश्चयतैं नाहीं है। फेरि याही अर्थके जाननेकरि भेदज्ञानकी सिद्धि होय है ऐसैं अर्थरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछंदः

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां नयविभजनयुक्त्यात्यंतमुच्छादितायां।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्यकस्य स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥२८॥

अर्थ—ऐसैं परिचयरूप कीया है वस्तुका यथार्थस्वरूप जिन्निैं ऐसैं मुनीनैं आत्मा अर शरीरके एकपणाकूं नयके विभागके युक्तिकरि अत्यंत उच्छादन किया निषेध्या है। याकै होतैं, तत्कालज्ञान है सो यथार्थपणाकूं कौन पुरुषकै अवतार न धरै ? अवश्य अवतार धरै ही धरै। कैसा होयकरी ? अपना निजरसका वेगकरि खेंच्या हूवा प्रगट होता एकस्वरूप होयकरि।

भावार्थ—निश्चयव्यवहारनयके विभाग करि आत्माका अर परका अत्यंत भेद दिखाया, सो याकूं जानिकरि, ऐसा कौन पुरुष है ? जाकै भेदज्ञान न होय ! होय ही होय। जातैं ज्ञान है सो अपना स्वरसकरि आप अपना स्वरूप जानै, तब अवश्य आप न्यारा ही अपने आत्माकूं जनावै है। इहां कोई दीर्घसंसारी ही होय तो ताका कछू कहना है नाहीं। ऐसैं अप्रतिबुद्धने कह्या था, जो "हमारै तो यह निश्चय है, जो देह है सोही आत्मा है" ताका निराकरण किया।

आगैं कहै हैं, जो, ऐसैं यहू अप्रतिबुद्ध अज्ञानी जीव अनादिके मोहके संतानकरि निरूपण किया जो आत्माका अर शरीरका एकपणा, ताका संस्कारपणाकरि अत्यंत अप्रतिबुद्ध था, सो अब प्रगट उदय भया है तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति जाकै "जैसैं कोई पुरुषके नेत्रमैं विकार था, तब

वर्णादिक अन्यथा दीखे थे, अर जब विकार मिटे, तब जैसाका तैसा दीख्या तैसैं प्रगट उघड्या है" पटलस्थानीय आवरणकर्म जाका, ऐसा भया संता प्रतिबुद्ध भया, तब साक्षात् देखनेवाला आपकूं आप ही करि जानि अर श्रद्धान करि अर तिसकूं आचरण करनेका इच्छक भया संता पूछै है, जो इस आत्मारामके अन्यद्रव्यनिका प्रत्याख्यान कहिये त्यागना, सो कहा होय ? ऐसैं पूछते संते आचार्य कहै हैं। जो ऐसैं कहना। गाथा—

णाणं सव्वे भावे पच्चक्खादि परेत्ति णादूण।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥३४॥

ज्ञानं सर्वान् भावान् यस्मात्प्रत्याख्याति च परानिति ज्ञात्वा।
तस्मात्प्रत्याख्यानं ज्ञानं नियमात् ज्ञातव्यम् ॥३४॥

आत्मख्यातिः—यतो हि द्रव्यांतरस्वभावभाविनोऽन्यानाखिलानपि भावान् भगवज्ज्ञातृद्रव्यं स्वस्वभावभावान्याप्यतया परत्वेन ज्ञात्वा प्रत्याचष्टे ततो य एव पूर्वं जानाति स एव पश्चात्प्रत्याचष्टे न पुनरन्य इत्यात्मनि निश्चित्य प्रत्याख्यानसमये प्रत्याख्येयोपाधिमात्रप्रवर्त्तितकर्तृत्वव्यपदेशत्वेपि परमार्थेनाव्यपदेश्य ज्ञानस्वभावादप्रच्यवनात्प्रत्याख्यानं ज्ञानमेवेत्यनुभवनीयं। अथ ज्ञातुः प्रत्याख्याने को दृष्टांत इत्यत आह।

अर्थ—जाकारणतैं सर्वही जे भाव कहिये पदार्थ आपसिवाय हैं, ते पर हैं, ऐसैं जानिकरि प्रत्याख्यान करे हैं, त्यागे हैं। तातैं जो पर है यह जानना है सोही प्रत्याख्यान है। यह नियमतैं जानना। अपने ज्ञानमैं त्यागरूप अवस्था सोही प्रत्याख्यान है। अन्य किछू नाहीं है।

टीका—जातैं यह ज्ञाताद्रव्य आत्मा भगवान् है, सो अन्यद्रव्यके स्वभावतैं भये ऐसैं जे अन्य समस्त परभाव, तिनिकूं अपने स्वभावभावकरि नाहीं व्यापनेकरि परपणाकरि जानि अर त्यागे है। तातैं जो पहलै जानैं जान्या है सोही पीछैं त्यागे है। अन्य तौ कोई त्यागनेवाला नाहीं है। ऐसैं त्यागभाव आत्माही विषैं निश्चय करि अर त्यागके समये प्रत्याख्यान करनेयोग्य जे परभाव, तिनिकी उपाधिमात्र प्रवर्त्या जो त्यागका कर्तापणाका नाम ताके होतैं भी परमार्थकरि

देखिये, तब परभावका त्याग कर्तापणाका नाम आपको नाहीं है। आप तौ या नामतैं रहित है, ज्ञानस्वभावतैं छूट्या नाहीं है, तातैं प्रत्याख्यान ज्ञानही है ऐसा अनुभवन करना।

भावार्थ—आत्माकै परभावका त्यागका कर्तापणा है सो नाममात्र है। आप तो ज्ञानस्वभाव है, परद्रव्यकूं पर जान्या फेरि परभावका ग्रहण नाहीं, सोही त्याग है, ऐसैं यह जाननाही प्रत्याख्यान है। ज्ञानसिवाय किछू अन्यभाव नाहीं है। आगैं पूछे है, जो "ज्ञाताके प्रत्याख्यान ज्ञानही कह्या" याविषैं दृष्टांत कहा है? ताका उत्तररूप दृष्टांतदार्ष्टांतकी गाथा कहे हैं। गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी ॥३५॥

यथानाम कोपि पुरुषः परद्रव्यमिति ज्ञात्वा त्यजति।
तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुंचति ज्ञानी ॥३५॥

आत्मख्यातिः—यथाहि कश्चित्पुरुषः संभ्रांत्या रजकात्परकीयं चीवरमादायात्मीयप्रतिपत्त्या परिधाय शयानः स्वयमज्ञानी सन्नन्येन तदंचलमालंब्य वलान्नग्नीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वार्पय परिवर्तित मेतद्वस्त्रं मामकमित्यसकृद्वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिन्हैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेतत्परकीयमिति ज्ञात्वा ज्ञानी सन्मुंचति तच्चीवरमचिरात् तथा ज्ञातापि संभ्रांत्या परकीयान्भावानादायात्मीयप्रतिपत्त्यात्मन्यध्यास्य शयानः स्वयमज्ञानी सन् गुरुणा परभावविवेकं कृत्वैकीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वैकः खल्वयमात्मेत्यसकृच्छ्रौतं वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिन्हैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेते परभावा इति ज्ञात्वा ज्ञानी सन् मुंचति सर्वान्भावानचिरात्।

अर्थ—जैसैं लोकमैं कोई पुरुष परवस्तूकूं ऐसैं जानै, जो यह परवस्तु है, तब ऐसैं जानि परवस्तूकूं त्यागे है। तैसैंही ज्ञानी है सो सर्वही परद्रव्यनिके भावनिकूं ए परभाव हैं ऐसा जानि तिनकूं त्यागे है।

टीका—जैसैं कोई पुरुष धोबीकेसुं पैलेका वस्त्र ल्याय, तिसकूं भ्रमकरि अपना जानि ओढि-

करि सूता, आप ऐसें न जान्या "जो यह पैलेका है," पीछें पैलेनें तिस वस्त्रका पल्ला पकडि खेंच्किरि उघाडि नागा किया, अर कही, "जो शीघ्र जागी, सावधान होऊ, मेरा वस्त्र बदले आया है सो मेरा मोकूं देऊ," ऐसा वारंवार वचन कह्या सो सुणता संता, तिस वस्त्रके चिह्न समस्त देखि परीक्षा करि ऐसा जान्या, 'जो यह वस्त्र तौ पैलेका ही है' ऐसा जानिकरि ज्ञानी भया संता तिस परके वस्त्रकूं शीघ्र ही त्यागे है। तैसें ज्ञानी भी भ्रमकरि परद्रव्यके भावनिकूं ग्रहण करि अपने जानि, आत्माविषें एकरूपकरि सूता है, बेखबरी हुवा थका आपहीतें अज्ञानी होय रह्या है। जब गुरु याकूं सावधान करै, परभावका भेदज्ञान कराय, एक आत्मभावरूप करै, कहै, जो "तूं शीघ्र जागी, सावधान होऊ, यह तेरा आत्मा है तौ एक ज्ञानमात्र है, अन्य सर्व परद्रव्यके भाव है" तब वारंवार यह आगमके वाक्य सुणता संता समस्त अपने परके चिह्निकरि भलेप्रकार परीक्षा करि, ऐसा निश्चय करै, जो मैं एक ज्ञानमात्र हूं, अन्य सर्व परभाव हैं, ऐसें ज्ञानी होयकरि सर्व परभावनिकूं तत्काल छोडे है।

भावार्थ—जेतैं परवस्तूकूं भूलिकरि अपनी जाने, तेतैं ही ममत्व रहै अर परकूं परकी जाने यथार्थज्ञान होय, तब पैलेकी वस्तुसूं काहेंका ममत्व रहै ? अर्थात् न रहै यह प्रसिद्ध है। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यंतवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२६॥

अर्थ—यह परभावके त्यागके दृष्टांतकी दृष्टि है सो "पुरानी न पडे ऐसें जैसें होय तैसें" अत्यंत वेगतैं जेतैं प्रवृत्तिकूं नाहीं प्राप्त होय है तापहलै ही तत्काल सकल अन्यभावनिकरि रहित आपही यह अनुभूति तौ प्रगट होती भई।

भावार्थ—यह परभावका त्यागका दृष्टांत कह्या, तापरि दृष्टि पडे ते पहलै समस्त अन्यभावनितैं

रहित अपना स्वरूपका अनुभवन तौ तत्काल होय गया, जातैं यह प्रसिद्ध है–जो वस्तूकूं परकी जाने पीछैं ममत्व रहै नाहीं। आगैं या अनुभूतितैं परभावका भेदज्ञान कौन प्रकार भया? ऐसी आशंका करि, प्रथम तौ भावक जो मोहकर्मका उदयरूप भाव ताका भेदज्ञानका प्रकार कहे हैं। गाथा–

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोह णिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३६॥

नास्ति मम कोपि मोहो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।
तं मोहनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायकाः विंदंति ॥३६॥

आत्मख्यातिः—इह खलु फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकेन सता पुद्गलद्रव्येणाभिनिर्वर्त्यमानष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावभावस्य परमार्थतः परभावेन भावयितुमशक्यत्वात्कतमोपि न नाम मम मोहोस्ति किंचैतत्स्वयमेव च विश्वप्रकाशचंचुरविकस्वरानवरतप्रतापसंपदा चिच्छक्तिमात्रेण स्वभावभावेन भगवानात्मैवावबुध्यते। यत्किलाहं खल्वेकः ततः समस्तद्रव्याणां परस्परसाधारणावगाहस्य निवारयितुमशक्यत्वान्मज्जितावस्थायामपि दधिखंडावस्थायामिव परिस्फुटस्वदमानस्वादभेदतया मोहं प्रति निर्ममत्वोस्मि। सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समयस्यैवमेव स्थितत्वात् इतीत्थं भावकभावविवेको भूतः।

अर्थ—जो ऐसा जानना होय, जो यह मोह है सो मेरा कछू भी सम्बन्धी नाहीं है, मैं ऐसा जानू हूं, जो एक उपयोग है सोही मैं हूं, ऐसैं जाननेकूं मोहतैं निर्ममत्वपणा सिद्धांतके तथा अपने परके स्वरूपरूप समयके जाननेवाले जाने हैं कहे हैं।

टीका—नाम ऐसा सत्यार्थ मैं अव्यय है। तहां कहे हैं, मैं सत्यार्थपणें ऐसा जानूं हूं, जो यह मोह है, सो मेरा कछू भी लागता नाहीं। कैसा है यह? इस मेरे अनुभवनमैं फल देनेकी सामर्थ्यकरि प्रगट होय, भावकरूप होता जो पुद्गलद्रव्य, ताकरि रच्या हुवा है, सो मेरा नाहीं

है। जातैं मैं तौ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव हूं। यह जड है, सो परमार्थतैं परके भावको परका भावकरि भावनेका असमर्थपणा है, तो इहां कहां जाणिये है? जो स्वयमेव समस्त वस्तूका प्रकाशनेविषैं चतुर विकासरूप भई अर निरंतर शाश्वती प्रतापसंपदा जामैं पाईये ऐसी चैतन्यशक्ति, तिसमात्र स्वभावभावकरि भगवान् आत्माहीकूं जाणीये है--जो मैं हूं सो पारमार्थकरि एक चिच्छक्तिमात्र हूं। तातैं समस्तद्रव्यनिकै परस्पर साधारण एकक्षेत्रावगाहका निवारण करनेका असमर्थपणातैं "जैसैं दही अर खांड मिली शिखरणी होय, तब दही खांड एकसे होय रहे हैं तौऊ प्रगट खाटा मीठा स्वादके भेदतैं न्यारे न्यारे जाने जाय हैं, तैसैं" द्रव्यनिके लक्षणभेदतैं जड चेतनका न्यारा न्यारा स्वादतैं प्रगट जान्या है। जो मोहकर्मका उदयका स्वाद रागादिक है, सो चैतन्यके निजस्वभावके स्वादतैं न्यारे ही हैं, तातैं मोहप्रती मैं निर्मम ही हूं। जातैं यह आत्मा, सदाकाल ही आपणैं एकरूपपणाकूं प्राप्त हुवा अपना स्वभावरूप समय, सोही भया महल, ताविषैं तिष्ठे है। ऐसैं भावकभाव जो मोहका उदय, तातैं भेदज्ञान भया।

भावार्थ--यह मोहकर्म है सो जड पुद्गलद्रव्य है, याका उदय कलुष मलिनभावरूप है, सो याका भाव है सो भी पुद्गलविकार है। सो यह भावकका भाव है, सो जब यह चैतन्यके उपयोगके अनुभवमैं आवै, तब उपयोग भी विकारी होय रागादिरूप मलिन दीखै। सो जब याका भेदज्ञान होय, जो चैतन्यकी शक्तिकी व्यक्ति तो ज्ञानदर्शनोपयोगमात्र है अर यह कलुषता रागद्वेषमोहरूप है, सो तिस द्रव्यकर्मरूप जडपुद्गलद्रव्यकी है। ऐसा भेदज्ञान होय तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोहके भाव, तिनितैं भेदभाव क्यों न होय? होय ही होय। आत्मा अपने चैतन्यके अनुभवनरूप ठहरै ही ठहरै, ऐसा जानना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

स्वागताछन्दः

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०॥

एवमेव मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घाणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि । अथ ज्ञेयभावविवेकप्रकारमाह ।

अर्थ—मैं इस लोकमें आपहीकरि अपने एक आत्मस्वरूपकूं अनुभवूं हूं । कैसा मेरा स्वरूप ? 'सर्वतः' कहिये सर्वांगकरि अपने निजरस जो चैतन्यका परिणमन, ताकरि पूर्ण भरया ऐसा है भाव जामैं, याहीतैं यह मोह है सो मेरा किछू भी लागता नाहीं है, याके अर मेरे किछू भी नाता नाहीं है । मैं तो शुद्ध चैतन्यका 'घन' कहिये समूहरूप तेजःपुंजका निधि हूं । भावक-भावका भेदकरि ऐसैं अनुभवन करे । ऐसैं ही गाथामैं मोहपद है ताकूं पलटिकरि राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए सोलह पद न्यारे न्यारे सोलह गाथासूत्रकरि व्याख्यान करना अर इसही उपदेशकरि अन्य भी विचारने । आगैं ज्ञेयभावतैं भेदज्ञान करनेका प्रकार कहे हैं । गाथा—

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३७॥

नास्ति मम धर्मादिर्बुध्यते उपयोग एवाहमेकः ।
तं धर्मनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञापका विन्दन्ति ॥३७॥

आत्मख्यातिः—असूनि हि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवांतराणि स्वरसविजृंभितानिवारितप्रसरविश्वघस्मरप्रचंडचिन्मात्रशक्तिकवलिततयात्यंतमंतर्मग्नानीवात्मनि प्रकाशमानानि टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावत्वेन तत्त्वतोंतस्तत्त्वस्य तदतिरिक्तस्वभावतया तत्त्वतो बहिस्तत्त्वरूपतां परित्यक्तुमशक्यत्वान्न नाम मम संति । किंचैतत्स्वयमेव च नित्यमेवोपयुक्तस्तत्त्वत एवैकमनाकुलमात्मानं कलयन् भगवानात्मैवावबुध्यते यत्किलाहं खल्वेकः ततः संवेद्यसंवेदकभावमात्रोपजातेतरेतरसंवलनेपि परिस्फुटस्वदमानस्वभावभेदतया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवांतराणि प्रति निर्ममत्वोस्मि । सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समयस्यैवमेव स्थितत्वात् इतीत्थं ज्ञेयभावविवेकोभूतः ।

अर्थ—जो ऐसा जानना होय—जो ए धर्म आदिक द्रव्य हैं ते मेरे किछू भी लागते नाहीं

है । मैं ऐसा जानूं हूं, जो एक उपयोग है सोही मैं हूं । ऐसैं जाननेकूं धर्मद्रव्यतैं निर्ममत्वपणा समय सिद्धांत तथा अपना परका स्वरूपरूप समयके जाननेवाले पुरुष हैं ते जाने हैं, कहे हैं ।

टीका—ए धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्य जीव ऐसैं सर्वही परद्रव्य हैं, ते आत्माविपें प्रकाशमान हैं । कैसैं सो कहे हैं—अपने निजरसकरि प्रगट भया अर निवारचा न जाय ऐसा है फैलना जाका, अर समस्त पदार्थसमूहके ग्रसनेका है स्वभाव जाका, ऐसी जो प्रचंड चिन्मात्रशक्ति, ताकरि ग्रासीभूत करनेकरि मानू अत्यंत निमग्न होय रह्या है, ज्ञानमैं तदाकार होय डूवी रहे है ऐसें । तौऊ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावपणाकरि परमार्थतैं अंतरंगतत्त्व सो तौ मैं हूं अर ते परद्रव्य, तिस मेरे स्वभावतैं भिन्नपणाकरि परमार्थतैं वाह्यतत्त्वपणाकूं छोडनेकूं असमर्थ हैं, धर्म आदि मेरे संवंधी नाहीं हैं । इहां ऐसा जानिये-जो यह आत्मा चैतन्यतैं आप ही उपयुक्त हुवा संता, परमार्थतैं अनाकुल जैसैं होय तैसैं, सर्व आकुलतासूं रहित होयकरि, एक आत्माहीका अभ्यास करता संता है, सो आत्माकरि आत्मा ही जानिये है, जो मैं प्रगट निश्चयकरि एक ही हूं, तातैं ज्ञेयज्ञायकभावमात्रतैं उपज्या जो परद्रव्यनितैं परस्पर मिलना, ताके होते भी, प्रगट स्वादमैं आवता जो स्वभावका भेद, तिसपणाकरि धर्म. अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्यजीव, तिनिप्रति मैं निर्मम हौं । जातैं सदा ही काल आपविषैं एकपणाकरि प्राप्त होनेकरि समय कहिये पदार्थनिकी याही व्यवस्था है, अपने स्वभावकूं कोई छोडता नाहीं है, ऐसैं अनुभव करनेतैं ज्ञेयभावनितैं भेदज्ञान भया कहिये । इहां इस ही अर्थका कलशरूप काव्य है ।

मालिनीछन्दः

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके स्वसमयमुपयोगो विभ्रदात्मानमेकं ।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणितिरात्माराम एव प्रवृत्तः ॥ ३१ ॥

अथैवं दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतस्यात्मनः कीदृक् स्वरूपसंचेतनं भवतीत्यावेदयन्नुपसंहरति ।

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार भावकभाव अर ज्ञेयभावनितैं भेदज्ञान होतैं, सर्वही जे अन्यभाव

तिनितैं भिन्नता भई, तब यह उपयोग है सो, आपही अपने एक आत्माहीकूं धारता संता प्रगट भया है परमार्थ जिनिका, ऐसैं जे दर्शनज्ञानचारित्र तिनिकरि करी है परिणति जाने, ऐसाहूवा संता, अपना आत्माराम जो आत्मारूपी बाग क्रीडावन, ताहिविषैं प्रवर्ते है, अन्य जायगा न जाय है।

भावार्थ—सर्वपरद्रव्य तथा तिनितैं भये जे भाव तिनितैं भेद जान्या तब उपयोगकूं रमनेकूं आत्मा ही रह्या, अन्य ठिकाणा नाहीं रह्या। ऐसैं दर्शनज्ञानचारित्रतैं एकरूप भया आत्माहीविषैं रमे है ऐसा जानना। आगैं ऐसैं दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप परिणया जो आत्मा ताके स्वरूपका संचेतन कैसा होय है? ऐसैं कहता संता आचार्य इस कथनकूं संकोचे है समेटे है। गाथा—

अहमिक्को खलु सुद्धो दंशणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिव अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥३८॥

अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदारूपी।
नाप्यस्ति मम किंचिदप्यन्यत्परमाणुमात्रमपि ॥३८॥

आत्मख्यातिः—यो हि नामानादिमोहोन्मत्ततयात्यंतमप्रतिबुद्धः सन् निर्विण्णेन गुरुणानवरतं प्रतिबोध्यमानः कथंचनापि प्रतिबुध्य निजकरतलविन्यस्तविस्मृतचामीकरावलोकनन्यायेन परमेश्वरमात्मानं ज्ञात्वा श्रद्धायानुचर्य च सम्यगेकात्मारामो भूतः स खल्वहमात्मात्मप्रत्यक्षं चिन्मात्रं ज्योतिः। समस्तक्रमाक्रमप्रवर्त्तमानव्यावहारिकभावैश्चिन्मात्राकारेणाभिद्यमानत्वादेको नारकादिजीवविशेषाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षलक्षणव्यावहारिकनवतत्त्वेभ्यष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावभावेनात्यंतविविक्तत्वाच्छुद्धः। चिन्मात्रतया सामान्यविशेषोपयोगात्मकतानतिक्रमाणादर्शनज्ञानमयः स्पर्शरसगंधवर्णनिमित्तसंवेदनपरिणतत्वेपि स्पर्शादिरूपेण स्वयमपरिणमनात्परमार्थतः सदैवारूपीति प्रत्यगयं स्वरूपं संचेतयमानः प्रतपामि। एवं प्रत्ययतश्च मम बहिर्विचित्रस्वरूपसंपदा विश्वे परिस्फुरत्यपि न किंचनाप्यन्यत्परमाणुमात्रमप्यात्मीयत्वेन प्रतिभाति। यद्भावकत्वेन ज्ञेयत्वेन चैकीभूय भूयो मोहमुद्भावयति स्वरसतएवापुनःप्रादुर्भावाय समूलंमोहमुन्मूल्य महतो ज्ञानोद्योतस्य प्रस्फुरितत्वात्।

अर्थ—जो दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणया आत्मा, सो ऐसा जाने है, जो मैं एक हूं, शुद्ध हूं,

दर्शनज्ञानमय हूं, अरूपी हूं, निश्चयकरि सदाकाल ऐसा हूं, अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा किछू नाहीं है यह निश्चय है ।

टीका—नाम कहिये सत्यार्थपणे निश्चयकरि ऐसा है। जो यह आत्मा अनादि मोहरूप अज्ञानतैं उन्मत्तपणाकरि अत्यंत अप्रतिबुद्ध अज्ञानी था, सो यापरि अनुरागी जो गुरु ताकरि निरंतर प्रतिबोध्या हुवा, कोई प्रकार बडा भाग्यतैं समझ्या सावधान भया, तब "जैसैं काहूके हातविषैं मुठीमैं धरया हुआ सुवर्ण था सो भूलि गया फेरि यादिकरि देखे" तिस न्यायकरी अपना परमेश्वर सर्वसामर्थ्यका धरानेवाला आत्माकूं भूलि रह्या था, सो जाणिकरि, ताका श्रद्धानकरि, अर ताहीका आचरणरूप तिसतैं तन्मय होयकरि भलैप्रकार आत्माराम हूवा, तब ऐसैं जान्या—जो मैं चैतन्यमात्र ज्योतीरूप आत्मा हूं, सो मेरे ही अनुभवकरि प्रत्यक्ष जानूं हूं, जो समस्त क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तते जे व्यावहारिक भाव तिनिकरि चिन्मात्र आकारकरि तौ भेदरूप न भया हूं तातैं मैं एक हूं। बहुरि नर नारक आदि जीवके विशेष अर अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्षलक्षण जे व्यावहारिक नवतत्त्व, तिनितैं टंकोत्कीर्ण जो एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव, ताकरि अत्यंत जुदापणातैं मैं शुद्ध हूं। बहुरि चिन्मात्रपणातैं सामान्य विशेष जो उपयोग, ताकूं नाहीं उल्लंघनेतैं, मैं दर्शनज्ञानमय हूं। बहुरि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं निमित्त जाकूं ऐसा जो संवेदन, तिसरूप परिणम्या हूं। तौऊ स्पर्श आदि रूप सदा आपही परिणमनेतैं परमार्थतैं सदा ही अरूपी हूं। ऐसैं सर्वतैं न्यारा ऐसा स्वरूपकूं अनुभवता संता मैं प्रतापसहित हूं। ऐसैं प्रतापरूप होतैके मेरे वाह्य अनेकप्रकार स्वरूपकी संपदाकरि समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं। तौऊ मोकूं परद्रव्य परमाणुमात्र भी किछू अपने भावकरि नाहीं प्रतिभासे हैं, जो मेरे भावकपणाकरि तथा ज्ञेयपणाकरि मोतैं एक होयकरि फेरि मोह उपजावैं। जातैं मेरे निजरसतैं ही ऐसा महान् ज्ञान प्रगट भया है, जानैं मोहकूं मूलतैं उपाडिकरि दूरि किया है, जो फेरि जाका अंकुर नाहीं उपजै ऐसा नाश किया है।

भावार्थ--आत्मा अनादितैं मोहके उदयतैं अज्ञानी था, सो श्रीगुरुनिके उपदेशतैं अर अपनी काललब्धीतैं ज्ञानी भया, अपना स्वरूपकूं परमार्थतैं जान्या--जो मैं एक हूं शुद्ध हूं अरूपी हूं दर्शनज्ञानमय हूं ऐसैं जाननेतैं मोहका समूहतैं नाश भया भावकभाव अर ज्ञेयभाव तिनितैं ज्ञेय-ज्ञान भया, अपनी स्वरूपसंपदा अनुभवमें आई, अब फेरि काहेकूं मोह उपजेगा ? नाहीं उपजेगा। अब ऐसा आत्माका अनुभव भया ताका आचार्य महिमा कही प्रेरणारूप काव्य कहे हैं--जो ऐसैं ज्ञानस्वरूप आत्मामैं समस्तलोक मग्न होऊ।

वसन्ततिलकाछन्दः

मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ताः।

आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीभरेण प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधुः ॥३२॥

इति श्रीसमयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ पूर्वरंगः समाप्तः।

अर्थ--यह ज्ञानसमुद्र भगवान् आत्मा है सो विभ्रमरूप आडी चादर थी ताकूं समूलतैं डबोय-करि दूरि करि, आप सर्वांग प्रगट भया है। सो अब समस्त लोक हैं ते याके शांतरसविषैं एकैकाल ही अतिशयकरि मग्न होऊ। कैसा है शांतरस ? समस्तलोकताईं उछल्या है।

भावार्थ--जैसैं समुद्रके आडा किछू आवै तब जल दीखै नाहीं, अर जब आड दूरी होय तब प्रगट होय, तब लोककूं प्रेरणा योग्य होय, जो या जलविषैं सर्व लोक स्नान करो। तैसैं यह आत्मा विभ्रमकरि आच्छादित था, तब याका रूप न दीखे था, अब विभ्रम दूरि भया तब यथा-स्वरूप प्रगट भया, अब याके वीतराग विज्ञानरूप शान्तरसविषैं एकाकाल सर्व लोक मग्न होऊ। ऐसें आचार्य प्रेरणा करी है। अथवा ऐसा भी अर्थ है, जो आत्माका अज्ञान दूरि होय तब केवलज्ञान प्रगट होय है, तब समस्त लोकमें तिष्ठते पदार्थ एकैकाल ज्ञानविषैं आय झलके हैं ताको देखो। ऐसैं इस समयप्राभृतग्रंथविषैं पहला जीवाजीवाधिकारविषैं टीकाकार पूर्वरंगस्थल कह्या।

इहां टीकाकारका आशय ऐसो—जो इस ग्रंथकूं अलंकारकरि नाटकरूप वर्णन किया है, सो नाटकविषैं पहलैं रंगभूमि आखाडा रचिये हैं। तहां देखनेवाला नायक तथा सभा होय है, अर नृत्य करनेवाले होय हैं ते अनेकस्वांग धरे हैं। तथा शृंगारादिक आठ रसका रूप दिखावे हैं। तहां शृंगार, हास्य, रौद्र, करुणा, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत ए आठ रस हैं ते लौकिकरस हैं। नाटकमें इनिहीका अधिकार है। नवमा शांतरस है सो आलौकिक है। सो नृत्यमें ताका अधिकार नाहीं है। इनि रसनिके स्थायीभाव, सात्त्विकभाव, अनुभाविभाव व्यभिचारिभाव तथा इनिकी दृष्टि आदिका वर्णन रसग्रंथनिमें है सो तो तहांतैं जान्या जाय। अर सामान्यपणें रसका यह स्वरूप है—जो ज्ञानमें जो ज्ञेय आया, तिसतैं ज्ञान तदाकार भया, तातैं पुरुषका भाव लीन होय जाय, अन्य ज्ञेयकी इच्छा न रहै सो रस है। सो आठ रसका रूप नृत्यमें नृत्य करनेवाले दिखावे हैं। अर इनिका कवीश्वर वर्णन करै जब अन्य रसकूं अन्यरसके समान करी भी वर्णन करै तब अन्यरसका अन्यरस अंगभूत होनेतैं, तथा रसनिके भाव अन्यभाव अंग होनेतैं, रसवत् आदि अलंकारकरि नृत्यका रूप करि वर्णन किया है।

तहां प्रथम ही रंगभूमिस्थल किया, तहां देखनेवाला तो सम्यग्दृष्टि पुरुष है, तथा अन्य मिथ्यादृष्टि पुरुष हैं तिनिकी सभा है, तिनिकूं दिखावे है। अर नृत्य करनेवाले जीव अजीव पदार्थ हैं। अर दोऊका एकपणा तथा कर्तृकर्मपणा आदि तिनिके स्वांग हैं। तिनिमैं परस्पर अनेकरूप होय हैं। ते आठ रसरूप होय परिणमे हैं। सो नृत्य है। तहां सम्यग्दृष्टि देखनेवाला जीव अजीवका भिन्नस्वरूपकूं जाणे है। सो तो इनि सर्व स्वांगनिकूं कर्मकृत जाणि शांतरसहीमैं मग्न है, अर मिथ्यादृष्टि जीवाजीवका भेद न जाणे हैं। यातैं इनि स्वांगनिहीकूं सांचे जाणि इनिविषैं लीन होय हैं। तिनिकूं सम्यग्दृष्टि यथार्थ दिखाय तिनिका भ्रम मेटि शांतरसमें तिनिकूं लीन करी सम्यग्दृष्टि करे है ताकी सूचनारूप रंगभूमिके अंत आचार्यने "मज्जन्तु निर्भर० इत्यादि यह काव्य रचा है। सो आगैं जीव अजीवका स्वांग वर्णन करी, सो

ताकी सूचनारूप यह काव्य है ऐसा आशय सूचे है । सो इहांतांइ तो रंगभूमिका वर्णन भया ।

दोहा—नृत्य कुतूहलतत्त्वको मरियविदेखो धाय ।
निजानंदरसमें छको आन सवे छिटकाय ॥१॥

इति जीवाजीवाधिकारे पूर्वरङ्गः ।

आगें जीवद्रव्य अर अजीवद्रव्य ए दोऊ एक होय करी रंगभूमीमें प्रवेश करे हैं । तहां आदिविषैं मंगलका आशय लेकरि आचार्य ज्ञानकी महिमा करे हैं । जो सर्ववस्तुका जाननहारा यह ज्ञान है सो जीव अजीवके सर्वस्वांगनिको नीके पहिचाने है, ऐसा सम्यग्ज्ञान प्रगट होय है, इस अर्थरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छंदः

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदानासंसारनिबद्धबंधनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्मारामममनंतधामसहसाध्यक्षेण नित्योदितं धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत् ॥१॥

अर्थ—ज्ञान है सो मनकूं आनंदरूप करता संता प्रगट होय है । कैसा है ? 'पार्षद' कहिये जीवाजीवके स्वांगकूं देखनेवाले महंत पुरुष तिनिकूं, जीव अजीवका भेद देखनेवाली जो बडी उज्वल निर्दोष दृष्टि, ताकरि भिन्नद्रव्यकी प्रतीति उपजावता संता है । बहुरि अनादिसंसारतैं दृढ बंध्या है बंधन जाका ऐसा जो ज्ञानावरण आदि कर्म, ताके नाशतैं विशुद्ध भया है, स्फुट भया है । जैसैं फूलकी कली फूलै तैसैं विकासरूप है । बहुरि कैसा है ? आत्मा ही है आराम कहिये रमनेका क्रीडावन जाकै, अनंतज्ञेयनिके आकार जानि झलके हैं, तौऊ आप अपने स्वरूपहीमें रमे है । बहुरि अनंत है धाम कहिये प्रकाश जाका । बहुरि प्रत्यक्ष तेजकरि नित्य उदयरूप है । बहुरि कैसा है ? धीर है, उदात्त कहिये उत्कट है, याहीतैं अनाकुल है सर्ववांछातैं

रहित निराकुल है। इहां धीर उदात्त अनाकुल विशेषण हैं, सो ए शांतरूप नृत्यके आभूषण जानने, ऐसा ज्ञान विलास करे है।

भावार्थ—यह ज्ञानकी महिमा करि, सो जीव अजीव एक होय रंगभूमिमें प्रवेश करें हैं तिनिकूं यह ज्ञान ही भिन्न जाने है। जैसैं कोई नृत्यमें स्वांग आवै ताकूं यथार्थ जाने ताकूं स्वांग करनेवाला नमस्कार करी, अपना रूप जैसाका तैसा करी ले, तैसैं इहां भी जानना। ऐसा ज्ञान सम्यग्दृष्टि पुरुषनिके होय है, मिथ्यादृष्टि यह भेद जाने नाहीं। आगैं जीव अजीवका एकरूप वर्णन करे हैं। ताकी गाथा—

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति ॥३९॥
अवरे अज्झवसाणे सुतिव्वमंदाणुभावगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥४०॥
कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्ताण गुणेहिं जो सो हवदि जीवो वा ॥४१॥
जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥४२॥
एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा ॥४३॥

आत्मानमजानंतो मूढास्तु परात्मवादिनः केचित् ।
जीवमध्यवसानं कर्म च तथा प्ररूपयंति ॥३९॥
अपरेऽध्यवसानेषु तीव्रमंदानुभागगं जीवं ।
मन्यंते तथाऽपरे नोकर्म चापि जीव इति ॥४०॥
कर्मण उदयं जीवमपरे कर्मानुभागमिच्छंति ।
तीव्रत्वमंदत्वगुणाभ्यां यः स भवति जीवः ॥४१॥
जीवकर्मोभयं द्वे अपि खलु केचिज्जीवमिच्छंति ।
अपरे संयोगेन तु कर्मणां जीवमिच्छंति ॥४२॥
एवंविधा बहुविधाः परमात्मानं वदंति दुर्मेधसः ।
ते न परात्मवादिनः निश्चयवादिभिर्निर्दिष्टाः ॥४३॥

आत्मख्यातिः—इह खलु तदसाधारणलक्षणाकलनात्क्लीवत्वेनात्यंतविमूढाः संतस्तात्त्विकमात्मानमजानंतो बहवो बहुधा परमप्यात्मानमिति प्रलपंति । नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्यवसानमेव जीवस्तथाविधाध्यवसानात् अंगारस्येव कार्ष्ण्यादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । अनाद्यनंतपूर्वापरीभूतावयवैकसंसरणक्रियारूपेण क्रीडत्कर्मैव जीवः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । तीव्रमंदानुभवविद्यमानदुरंतरागरसनिर्भराध्यवसानसंतान एव जीवस्ततोतिरिक्तस्यान्यस्यानुपभ्यमानत्वादिति केचित् । नवपुराणावस्थादिभावेन प्रवर्त्तमानं नोकर्मैव जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामन् कर्मविपाक एव जीवः शुभाशुभभावादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । सातासातरूपेणाभिव्याप्तसमस्ततीव्रमंदत्वगुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभव एव जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्सानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । मज्जितावदुभयात्मकत्वादात्मकर्मोभयमेव जीवः कार्त्स्न्यतः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । अर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोग एव जीवः कर्मसंयोगात्खट्वाया इवाष्टकाष्ठसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । एवमेवंप्रकारा इतरेपि बहुप्रकारा परमात्मेति व्यपदिशंति दुर्मेधसः किंतु न ते परमार्थवादिभिः परमार्थवादिनः इति निर्दिश्यंते । कुतः—

अर्थ—जे आत्माकूं न जानते परकूं आत्मा कहते मूढ मोही अज्ञानी हैं, ते केई तौ अध्यवसा-

यनिकूं जीव कहे हैं। बहुरि केई कर्मकूं जीव कहे हैं। बहुरि अन्य केई अध्यवसाननिविषैं तीव्र मंद अनुभागगतकूं जीव माने हैं। बहुरि अन्य केई नोकर्मकूं जीव माने हैं। बहुरि और केई कर्मका उदयकूं जीव माने हैं। बहुरि और केई कर्मके अनुभागकूं जीव इष्ट करे हैं। कैसा है अनुभाग? तीव्रमंदपणारूप गुणकरि जो भेदकूं प्राप्त होता है। बहुरि केई जीव अर कर्म दोऊ मिले ही जीव है ऐसैं इष्ट करे हैं। बहुरि अन्य केई कर्मनिका संयोगकरि ही जीव माने हैं। या प्रकार तथा और भी बहुतप्रकार दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि परकूं आत्मा कहे हैं, ते परमार्थ सत्यार्थवादी नाहीं हैं। ऐसैं निश्चयवादी जे सत्यार्थवादी तिनिकरि कहे हैं।

टीका—या जगतविषैं तिस आत्माके असाधारण लक्षण नाहीं जाननेतैं नपुंसकपणाकरि अत्यंतविमूढ भये संते, अज्ञानी जन हैं ते, तात्त्विक परमार्थभूत आत्माकूं नाहीं जानते संते, बहुत हैं। ते बहुतप्रकार परहीकूं आत्मा ऐसा प्रलाप बके हैं। तहां केई तौ स्वाभाविक स्वयमेव भया ऐसा रागद्वेषकरि मैला जो अध्यवसान कहिये आशयरूप विभावपरिणाम सोही जीव है ऐसैं कहे हैं। याका हेतु कहे हैं, जो जैसैं अंगारके कालिमा है तैसैं अध्यवसानतैं अन्य कोई जीव दीखै नाहीं, ऐसैं हेतुतैं साधे हैं ॥१॥ बहुरि केई कहे हैं, जो पूर्वै तौ अनादितैं लेकरि अर आगामी अनंतकालतांई ऐसा है अवयव जाका ऐसा जो एक संसरण कहिये भ्रमणरूप क्रिया, तिसरूपकरि क्रीडा करता जो कर्म, सोही जीव है। जातैं इस कर्मतैं अन्य न्यारा किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं ऐसैं माने हैं ॥२॥ बहुरि केई कहे हैं, जो जीव मंद अनुभवकरि भेदरूप भया अर दूरि है अंत जाका ऐसा रागरूप रसकरि भरया जो अध्यवसानका संतान परिपाटी सोही जीव है। जातैं इसतैं अन्य कोई न्यारा ही जीव देखनेमैं आया नाहीं, ऐसैं माने हैं ॥३॥ बहुरि केई कहे हैं, जो, नवीन अर पुरातन जो अवस्था इत्यादि भावकरि प्रवर्तमान जो नोकर्म सोही जीव है। जातैं इस शरीरतैं अन्य न्यारा ही किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं ऐसैं माने हैं ॥४॥

बहुरि केई ऐसैं कहे हैं, जो समस्तलोककूं पुण्यपापरूपकरि व्यापता कर्मका विपाक है सोही

जीव है। जातैं शुभाशुभभावतैं अन्य न्यारा ही किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं, ऐसैं माने हैं।५। बहुरि केई कहे हैं, जो साता असाताका रूपकरि व्याप्त जो समस्त तीव्रमंदपणागुण, ताकरि भेदरूप भया जो कर्मका अनुभव, सोही जीव है। जातैं सुखदुःखतैं अन्य न्यारा ही किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं।६। बहुरि केई कहे हैं, जो सिखरिणीकी ज्यों दोयरूप मिल्या जो आत्मा अर कर्म, ते दोऊ मिले ही जीव है। जातैं समस्तपणाकरि कर्मतैं न्यारा किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं, ऐसैं माने हैं ॥७॥ बहुरि केई कहे हैं, जो कर्मका संयोगरूप अर्थक्रियाविषैं समर्थ होय है सोही जीव है। जातैं कर्मके संयोगतैं अन्य न्यारा किछू जीव देखनेमैं आया नाहीं, जैसैं आठ काठ मिली खाट भया तब अर्थक्रियाविषैं समर्थ भया ऐसैं माने हैं ॥८॥ ऐसैं आठप्रकार तौ ए कहैं। बहुरि और भी अनेकप्रकार ऐसैं ही परकूं आत्मा कहे हैं, ते दुर्बुद्धि हैं। तिनिकूं परमार्थके जाननेवाले हैं ते सत्यार्थवादी नाहीं कहे हैं।

भावार्थ—जीव अजीव दोऊ अनादितैं एकक्षेत्रावगाहसंयोगरूप मिलि रहे हैं अर अनादिहीतैं जीवके पुद्गलके सँयोगतैं अनेकविकारसहित अवस्था होय है। अर परमार्थदृष्टिकरि देखिये तब जीव तौ अपना चेतन्यपणा आदि भावकूं नाहीं छोडे है। अर पुद्गल अपना मूर्तिक जडपणा आदिकूं नाहीं छोडे है। परंतु जे परमार्थकूं नाहीं जाने हैं, ते संयोगतैं भये भावनिहोकूं जीव कहे हैं। जातैं परमार्थजीवका रूप पुद्गलतैं भिन्न सर्वज्ञकूं दीखै तथा सर्वज्ञकी परंपराके आगमतैं जान्या जाय, सो जिनिके मतमैं सर्वज्ञ नाहीं, ते अपनी बुद्धितैं अनेककल्पना करि कहे हैं। ते वेदांती, मीमांसक, सांख्य, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, चार्वाक आदि मतनिके आशय ले, आठ तौ प्रगट कहैं। और अपनी अपनी बुद्धितैं अनेक कल्पना करि कहे हैं, सो कहांताई कहै। ऐसैं कहनेवाले सत्यार्थवादी नाहीं हैं, सो काहेतैं? सो ही कहे हैं। गाथा—

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पणा।
केवलिजिणेहिं भणिदा कह ते जीवो त्ति उच्चंति ॥४४॥

एते सर्वे भावाः पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्नाः।
केवलिजिनैर्भणिताः कथं ते जीव इत्युच्यंते ॥४४॥

आत्मख्यातिः—यतः एतेऽध्यवसानादयः समस्ता एव भावा भगवद्भिर्विश्वसाक्षिभिरर्हद्भिः पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वेन प्रज्ञप्ताः संतश्चैतन्यशून्यात्पुद्गलद्रव्यादतिरिक्तत्वेन प्रज्ञाप्यमानं चैतन्यस्वभावं जीवद्रव्यं भवितुं नोत्सहंते ततो न खल्वागमयुक्तिस्वानुभवैर्बाधितपक्षत्वात् तदात्मवादिनः परमार्थवादिनः एतदेव सर्वज्ञवचनं तावदागमः। इयं तु स्वानुभवगर्भिता युक्तिः न खलु नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्यवसानं जीवस्तथाविधाध्यवसानात्कार्तस्वरस्येव श्यामिकाया अतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खल्वनाद्यनंतपूर्वापरीभूतावयवैकसंसरणलक्षणक्रियारूपेण क्रीडत्कर्मैव जीवः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु तीव्रमंदानुभवभिद्यमानदुरंतरागरसनिर्भराध्यवसानसंतानो जीवस्ततोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु नवपुराणवस्थादिभेदेन प्रवर्तमानं नोकर्म जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामत्कर्मविपाको जीवः शुभाशुभभावादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु सातासातरूपेणाभिव्याप्तसमस्ततीव्रमंदत्वगुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभावो जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु मज्जितावदुभयात्मकत्वादात्मकर्मोभयं जीवः कात्स्न्यर्तः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खल्वर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोगो जीवः कर्मसंयोगात्खट्वाशायिनः पुरुषस्येवाष्टकष्ठसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वादिति। इह खलु पुद्गलभिन्नात्मोपलब्धिं प्रति विप्रतिपन्नः साम्नैवैवमनुशास्यः।

अर्थ—ए पूर्वैं कहिए अध्यवसानादिकभाव, ते सर्व ही पुद्गलके परिणामकरि निपजे हैं। ते केवली सर्वज्ञ जिनदेवने कहे हैं। तिनिकूं जीव ऐसा कैसैं कहिये?

टीका—जातैं ए अध्यवसानादिक भाव हैं, ते सर्व ही, सर्व पदार्थनिकूं साक्षात् देखनेवाले

भगवान् वीतराग सर्वज्ञ अरिहंतदेव, तिनहि पुद्गलद्रव्यके परिणाममयपणाकरि कहे हैं। तातैं चैतन्यभावकरि शून्य जो पुद्गलद्रव्य, तातैं भिन्नपणाकरि कह्या जो चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य, सो होनेकूं नाहीं समर्थ है। तातैं निश्चयतैं आगम अर युक्ति अर स्वानुभव इनि तीननिकरि बाधितपक्षपणातैं जे इनि अध्यवसानादिककूं जीव कहे हैं, ते परमार्थवादी सत्यार्थवादी नाहीं है। तहां यह ही सर्वज्ञका वचन है, जो ए जीव नाहीं सो तो आगम है। बहुरि यह स्वानुभवगर्भित युक्ति है सो कहे हैं। जो नैसर्गिक कहिये स्वयमेव उपज्या ऐसा रागद्वेषकरि कल्माषित कहिये मलित अध्यवसान है सो जीव नाहीं है। जातैं ऐसैं अध्यवसानतैं न्यारा जैसैं सुवर्ण कालिमातैं न्यारा है तैसैं चित्स्वभावरूप जीवभेद ज्ञानीनिकरि पाइए है, ते प्रत्यक्ष चैतन्यभावकूं न्यारा अनुभवे हैं। बहुरि अनाद्यनंत पूर्वापरीभूत एक संसरणक्रियारूप क्रीडा करता कर्म है सो भी जीव नाहीं है। जातैं कर्मतैं न्यारा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि प्राप्यमानपणा है ते प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥२॥ बहुरि तीव्र मंद अनुभवकरि भेदरूप भया दुरंत रागरसकरि भरया अध्यवसानका संतान भी जीव नाहीं है। जातैं तिस संतानतैं अन्य न्यारा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि प्राप्यमानपणा है ते प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥३॥ बहुरि नई पुरानी अवस्थादिकका भेदकरि प्रवर्तता जो नोकर्म, सोभी जीव नाहीं है। जातैं शरीरतैं अन्य न्यारा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि स्वयमेव प्राप्यमानपणा है ते आप प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥४॥ बहुरि समस्त जगतकूं पुण्यपापरूपकरि व्यापता कर्मका विपाक है, सो भी जीव नाहीं है। जातैं शुभाशुभभावतैं अन्य न्यारा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि प्राप्यमानपणा है ते आप प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥५॥ बहुरि साता असाता रूपकरि व्याप्त जे समस्त तीव्रमंदपणारूप गुण, तिनिकरि भेदरूप होता जो कर्मका अनुभव, सोभी जीव नाहीं है। जातैं सुखदुःखतैं न्यारा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि स्वयं प्राप्यमानपणा है ते आप प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥६॥ बहुरि सिखरिणीकी ज्यौं दोय स्वरूपपणाकरि मिले आत्मा अर कर्म दोऊही जीव नाहीं

है। जातैं समस्तपणैं कर्मतैं न्यारा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि स्वयं प्राप्यमानपणा है ते प्रत्यक्ष आप अनुभवे हैं ॥७॥ बहुरि अर्थक्रियाविषैं समर्थ कर्मका संयोग भी जीव नाहीं है। जातैं कर्मसंयोगतैं न्यारा "जैसैं आठ काठरूप खाटतैं खाटका सोवनेवाला पुरुष अन्य है, तैसैं" अन्य चैतन्यस्वभारूप जीवका भेद ज्ञानीनिकरि स्वयं प्राप्यमानपणा है ते आप प्रत्यक्ष अनुभवे हैं ॥८॥ ऐसे ही अन्य कोई और प्रकार कहैं, तहां भी यह ही युक्ति जाननी।

भावार्थ—चैतन्यस्वभवरूप जीव सर्व परभावनितैं न्यारा भेदज्ञानीनिकै अनुभवगोचर है, तातैं अज्ञानी मानै हैं तैसैं नाहीं है। अब इहां पुद्गलतैं भिन्न जो आत्माकी उपलब्धी, ताप्रति विप्रतिपन्न कहिये अन्यथा ग्रहण करनेवाला पुद्गलहीकूं आत्मा जानता जो पुरुष, ताकूं साम कहिये ताके हितरूप मिलापकी वार्ता कहिकरि, समभावहीतैं उपदेश कहना सोही काव्यमें कहे हैं।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः ॥२॥

कथंचिदन्वयप्रतिभासेऽप्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावा इति चेत्।

अर्थ—हे भव्य! तेरे अन्य जे विनाकार्य निकम्मा कोलाहलकरि कहा साध्य है? तिस कोलाहलतैं तू विरक्त होऊ अर एक चैतन्यमात्र वस्तुकूं आप निश्चल लीन होय देखि। ऐसैं छह महिना अभ्यास करि। ऐसैं कीये, अपना हृदयसरोवरविषैं पुद्गलतैं भिन्न है तेज प्रताप प्रकाश जाका ऐसा जो पुरुष आत्मा, ताकी कहा प्राप्ति न होय है? ऐसा नियम है, जो प्राप्ति होय ही होय।

भावार्थ—जो अपने स्वरूपका अभ्यास करै, तो ताकी प्राप्ति होय ही होय। जो परवस्तु होय, तो ताकी तौ प्राप्ति न होय। अपना स्वरूप तौ विद्यमान है, भूलि रह्या है सो चेतकरि देखे तो पासिही है। इहां छह महिना अभ्यास कह्या सो ऐसा न जानना, जो एतेहीमें होय, याका होना तो मुहूर्तमात्रमें ही है। परंतु शिष्यकूं बहुत कठिन भासे तौ ताका निषेध है, जो

वहुतकाल समझतैं लागेगा, तौ छह महिना सिवाय न लागेगा। तातैं अन्य निष्प्रयोजन कोलाहल छोडि यामैं लागै शीघ्र रूपकी प्राप्ति होयगी ऐसा उपदेश है। आगैं शिष्य पूछे है, जो ए अध्यवसानादिकभाव जीव न बताये, अन्य चैतन्यस्वभावजीव बताया, सो ए भाव भी तौ चैतन्यहीतैं अन्वयी प्रतिभासे हैं, चैतन्यविना जडकै तौ दीखै नाहीं, इनिकूं पुद्गलके स्वभाव कैसैं ? ऐसैं पूछैं उत्तरका सूत्र कहे हैं। गाथा—

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्य ॥४५॥

अष्टविधमपि च कर्म सर्वं पुद्गलमयं जिना विंदंति।
यस्य फलं तदुच्यते दुःखमिति विपच्यमानस्य ॥४५॥

आत्मख्यातिः—अध्यवसानादिभावनिर्वर्त्तकमष्टविधमपि च कर्म समस्तमेव पुद्गलमयमिति किल सकलज्ञज्ञप्तिः। तस्य तु यद्विपाककाष्ठामधिरूढस्य फलत्वेनाभिलप्यते। तदनाकुलत्वलक्षणसौख्याख्यात्मस्वभावविलक्षणत्वात्किल दुःखं तदंतःपातिन एव किलाकुलत्वलक्षणा अध्यवसानादिभावाः। ततो न ते चिदन्वयविभ्रमेप्यात्मस्वभावाः किंतु पुद्गलस्वभावाः। यद्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावास्तदा कथं जीवत्वेन सूचिता इति चेत।

अर्थ—आठप्रकार कर्म ज्ञानावरणादिक हैं, ते सर्व ही पुद्गलमय हैं यह जिनभगवान् सर्वज्ञदेव कहे हैं। बहुरि याका फल है सो दुःख है। यह कर्म पचिकरि उदय आवे है, सो दुःख है।

टीका—जाकारणतैं ए अध्यवसान आदि समस्त भाव हैं तिनिका उपजावनेवाला आठप्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म है, सो समस्तही पुद्गलमय है, ऐसैं सर्वज्ञका वचन है। तिस कर्मका उदय हदकूं पहुंचे ताका फल है सो यह अनाकुलस्वरूप जो सुखनामा आत्माका स्वभाव, तातैं विलक्षण है, आकुलतामय है, तातैं दुःख है। तिस दुःखके मांही आप पडे जे अनाकुलतास्वरूप अध्यवसान आदिक भाव, ते भी दुःखही हैं। तातैं ते चैतन्यतैं अन्वयका विभ्रम उपजावै हैं, तौऊ ते आत्माके स्वभाव नाहीं हैं, पुद्गलस्वभाव ही हैं।

भावार्थ—यह आत्मा कर्मका उदय आवै तब दुःखरूप परिणमे है अर दुःखरूप भाव है सो अध्यवसान है। तातैं दुःखरूप भावविषैं चेतनताका भ्रम उपजे है, परमार्थतैं दुःखरूपभाव चेतन नाहीं है, कर्मजन्य है, यातैं जड ही है। आगैं पूछे है, जो ए अध्यवसानादिभाव हैं ते पुद्गलस्वभाव हैं तौ सर्वज्ञके आगममें इनिकूं जीवभावकरि कैसें कहे हैं? ऐसें पूछे याका उत्तरका सूत्र कहे हैं। गाथा—

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा: ॥४६॥

व्यवहारस्य दर्शनमुपदेशो वर्णितो जिनवरैः।
जीवा एते सर्वेऽध्यवसानादयो भावाः ॥४६॥

आत्मख्यातिः—सर्वे एवैतेऽध्यवसानादयोभावाः जीवा इति यद्भगवद्भिः सकलज्ञैः प्रज्ञप्तं तदभूतार्थस्यापि व्यवहारस्यापि दर्शनं। व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छभाषेव म्लेच्छानां परमार्थप्रतिपादकत्वादपरमार्थोपि तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव। तमंतरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशंकमुपमर्दनेन हिंसाभावाद् भवत्येव बंधस्याभावः। तथारक्तद्विष्टविमूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेषमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः। अथ केन दृष्टांतेन प्रवृत्तो व्यवहार इति चेत्—

अर्थ—जो ए अध्यवसानादिक भाव हैं ते जीव हैं ऐसें जिनवरदेवने उपदेश वर्णन किया है, सो यह व्यवहारनयका दर्शन है, मत है।

टीका—सर्व ही ए अध्यवसानादिक भाव हैं ते जीव हैं, ऐसें जो भगवान् सर्वज्ञदेव कह्या, सो अभूतार्थ असत्यार्थरूप जो व्यवहारनय, ताका दर्शन कहिये मत है। जातैं व्यवहार है सो व्यवहारी जीवनिकूं परमार्थका कहनहारा है। जैसें म्लेछकी भाषा है सो म्लेच्छनिकूं वस्तुस्वरूप जनावे है तैसें है। तातैं अपरमार्थभूत है तौऊ धर्मतीर्थप्रवृत्ति करनेकूं व्यवहारनयका वर्णन न्याय्य है। तातैं तिस व्यवहारकूं कहे विना परमार्थ तौ जीवकूं शरीरतैं भिन्न कहे है। सो याका एकांत

करिये तौ, त्रसस्थावरजीवनिका घात निःशंकपणें करना ठहरचा। जैसें भस्मके मर्दन करनेमें हिंसाका अभाव है, तैसें तिनिके घातनेमें भी हिंसा न ठहरै अर हिंसाका अभाव ठहरे तब तिनिके घाततैं बंधका भी अभाव ठहरै। तैसें ही रागी द्वेषी मोही जीव कर्मतैं बंधे है ताकूं छूडावना, ऐसैं कह्या है सो परमार्थतैं राग द्वेष मोहतैं जीव जीवकूं भिन्न दिखावनेकरि मोक्षका उपाय करनेका अभाव होय तब मोक्षका भी अभाव ठहरै, ऐसैं व्यवहारनय कहिये, तब बंधमोक्षका अभाव ठहरै है।

भावार्थ—परमार्थनय तौ जीवकूं शरीर अर राग द्वेष मोहतैं भिन्न कहे हैं। सो याहीका एकांत करिये तब शरीर तथा राग द्वेष मोह पुद्गलमय ठहरै, तब पुद्गलके घातनेतैं हिंसा नाहीं अर राग द्वेष मोहतैं बंध नाहीं। ऐसैं परमार्थतैं संसारमोक्ष दोऊका अभाव कहे हैं, सो यह ठहरै, सो ऐसा एकांतस्वरूप वस्तुका स्वरूप नाहीं, अवस्तुका श्रद्धान ज्ञान आचरण मिथ्या अवस्तुरूप ही है। तातैं व्यवहारका उपदेश न्यायप्राप्त है। ऐसैं स्याद्वादकरि दोऊ नयनिका विरोध मेटि श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। आगैं पूछे है, जो यहे व्यवहारनय कौन दृष्टांतकरि प्रवर्त्या है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

राया हु णिग्गदो त्तिय एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया ॥४७॥
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छिदो जीवो ॥४८॥

राजा खलु निर्गत इत्येष बलसमुदयस्यादेशः।
व्यवहारेण तूच्यते तत्रैको निर्गतो राजा ॥४७॥
एवमेव च व्यवहारोध्यवसानाद्यन्यभावानां।
जीव इति कृतः सूत्रे तत्रैको निश्चितो जीवः ॥४८॥

आत्मख्यातिः—यथैव राजा पंच योजनान्यभिव्याप्य निष्क्रामतीत्येकस्य पंचयोजनान्यभिव्याप्तुमशक्यत्वाद् व्यवहारिणां बलसमुदाये राजेति व्यवहारः। परमार्थतस्त्वेक एव राजा। तथैव जीवः समग्रं रागग्राममभिव्याप्य प्रवर्तित इत्येकस्य समग्रं रागग्राममभिव्याप्तुमशक्यत्वाद् व्यवहारिणामध्यवसानादिष्वन्यभावेषु जीव इति व्यवहारः। परमार्थतस्त्वेक एव जीवः। यद्येवं तर्हि किं लक्षणोसावेकष्टंकोत्कीर्णः परमार्थजीव इति पृष्टः प्राह—

अर्थ—जैसैं कोई राजा सेनासहित निसर्या तहां व्यवहारकरि सेनाके समुदायकूं ऐसा कहिये है, जो यह राजा निसर्या, तहां निश्चयतैं विचारिये तब सेनाविषैं राजा तौ एक ही है। तैसैं ही यह अध्यवसान आदि अन्यभाव हैं तिनिकूं जीव है ऐसा सूत्रविषैं कह्या है, सो व्यवहारनयका वचन है। निश्चयतैं विचारिये तो तिनिविषैं जीव तौ एक ही है।

टीका—जैसैं कहिये हैं, जो यह राजा पांच योजनमैं व्यापिकरि नीसरे है, तहां निश्चयकरि विचारिये तौ एक राजाके पांच योजन व्यापनेका असमर्थपणा है, तौऊ व्यवहारी लोकनिका सेनाका समुदायविषैं राजा ऐसा कहनेका व्यवहार है। परमार्थतैं तो राजा एक ही है, सेना राजा नाहीं। तैसैं ही यह जीव समस्त जे रागका ठिकाना हैं तिनिकूं व्यापिकरि प्रवर्ते है, निश्चयकरि विचारिये तब एकके समस्त रागके ठिकानेकूं व्यापनेका असमर्थपणा है। तौऊ व्यवहारी लोकनिके अध्यवसानादिक अन्यभावनिविषैं ए जीव हैं ऐसा व्यवहार प्रवर्ते है। परमार्थतैं तो जीव एक ही है। अध्यवसानादिभाव हैं ते जीव नाहीं हैं। आगें पूछे है, जो ए अध्यवसानादिक भाव हैं ते जीव नाहीं हैं, तौ जीव एक टंकोत्कीर्ण परमार्थस्वरूप कैसाक है? याका लक्षण कहा है? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥४९॥

अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दं।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥४९॥

आत्मख्यातिः—यः खलु पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानरसगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमरसगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनारसनात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद् भावेंद्रियावलंवेनारसनात्, सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलरसवेदनापरिणामापन्नत्वेनारसनात्, सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद्रसपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयंरसरूपेणापरिणमनाच्चारसः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानरूपगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमरूपगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनारूपणात्, स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद् भावेंद्रियावलंवेनारूपणात्सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलरूपवेदनापरिणामापन्नत्वेनारूपणात्, सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद्रूपपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं रूपरूपेणापरिणमनाच्चारूपः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानगंधगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमगंधगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावाद् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनागंधनात्, स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद् भावेंद्रियावलंवेनागंधनात् सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलगंधवेदनापरिणामापन्नत्वेनागंधनात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद् गंधपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं गंधरूपेणापरिणमनाच्चागंधः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानस्पर्शगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमस्पर्शगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावाद् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनास्पर्शनात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावात् भावेंद्रियावलंबनास्पर्शनात्सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात् केवलस्पर्शवेदनापरिणामापन्नत्वेनास्पर्शनात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधात् स्पर्शपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं स्पर्शस्वरूपेणापरिणमनाच्चास्पर्शः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानशब्दपर्यायत्वात् पुद्गलद्रव्यपर्यायेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमशब्दपर्यायत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेन शब्दाश्रवणात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद् भावेंद्रियावलंवेन शब्दाश्रवणात् सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात् केवलशब्दवेदनापरिणामापन्नत्वेन शब्दाश्रवणात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाच्छब्दपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं शब्दरूपेणापरिणमनाच्चाशब्दः। द्रव्यांतरारब्धशरीरसंस्थानेनैव संस्थान इति निर्देष्टुमशक्यत्वात् नियतस्वभावेनानियतसंस्थानानंतशरीरवर्तित्वात्संस्थाननामकर्मविपाकस्य पुद्गलेषु निर्दिश्यमानत्वात् प्रतिविशिष्टसंस्थानपरिणतसमस्तवस्तुतत्त्वसंवलितसहजसंवेदनशक्तित्वेपि स्वयमखिललोकसंवलनशून्योपजायमाननिर्मलानुभूतितयात्यंतमसंस्थानत्वाच्चानिर्दिष्टसंस्थानः। षट्द्रव्यात्मकलोकाद् ज्ञेयाद्व्यक्तादन्यत्वात्कषायचक्राद् भावकाद्व्यक्तादन्यत्वाच्चित्सामान्यनिमग्नसमस्तव्यक्तित्वात् क्षणिकव्यक्तिमात्राभावात् व्यक्ताव्यक्तविमिश्रप्रतिभासेपि व्यक्तास्पर्शत्वात् स्वयमेव हि वहिरंतः स्फुटमनुभूयमानत्वेपि व्यक्तोपेक्षणेन प्रद्योतमानत्वाच्चाव्यक्तः। रसरूपगंधस्पर्श-

शब्दसंस्थानव्यक्तत्वाभावेपि स्वसंवेदनबलेन नित्यमात्मप्रत्यक्षत्वे सत्यनुमेयमात्रत्वाभावादलिंगग्रहणः । समस्तविप्रतिपत्तिप्रमाथिनी विवेचकजनसमर्पितसर्वस्वेन सकलमपि लोकालोकं कवलीकृत्यात्यंतसौहित्यमंथरेणेव सकलकालमेव मनागप्यविचलितानन्यसाधारणतया स्वभावभूतेन स्वयमनुभूयमानेन चेतनागुणेन नित्यमेवांतःप्रकाशमानत्वात् चेतनागुणश्च स खलु भगवानमलालोक इहैकष्टंकोत्कीर्णः प्रत्यग्ज्योतिर्जीवः ।

अर्थ—हे भव्य ! तू जीव ऐसा जानि । अरस कहिये रसरहित है, अरूप कहिये रूपरहित है, अगंध कहिये गंधरहित है, अव्यक्त कहिये इंद्रियनिके गोचर व्यक्त नाहीं है, बहुरि चेतना है गुण जाकै, बहुरि अशब्द कहिये शब्दरहित है. बहुरि अलिंगग्रहण कहिये काहू चिन्हकरिही जाका ग्रहण नाहीं होय है, बहुरि अनिर्दिष्टसंस्थान कहिये जाका आकार किछू कह्या जाता नहीं, ऐसा जीव जानो ।

टीका—जो जीव है सो निश्चयकरि पुद्गलद्रव्यतैं अन्य है, तातैं यामैं रसगुण विद्यमान नाहीं, तातैं अरस है ॥१॥ बहुरि पुद्गलद्रव्यका गुणनितैं भी भिन्न है, यातैं आप भी रसगुण नाहीं है, तातैं भी अरस कहिये ॥२॥ बहुरि परमार्थतैं पुद्गलद्रव्यका स्वामीपणा भी याकै नाहीं है, तातैं द्रव्येंद्रियका अवलंबन करि आप रसरूप नाहीं परिणमे है, तातैं भी अरस कहिये ॥३॥ बहुरि अपने स्वभावकी दृष्टिकरि देखिये तब क्षायोपशमिक भावका भी याकै अभाव है, यातैं भावेंद्रियके अवलंबनकरि भी याके रसरूप परिणामका अभाव कहिये, तातैं भी अरस कहिये ॥४॥ बहुरि याका संवेदनपरिणाम तौ एक ही है सो सकलविषयनिके विशेषनिमैं साधारण है, तिस स्वभावतैं केवल एकरससंवेदनापरिणामकी प्राप्तिरूप ही न कहिये, तातैं भी अरस कहिये ॥५॥ बहुरि याके समस्तही ज्ञेयका ज्ञान होय है; परन्तु ज्ञेयज्ञायककै तादात्म्य कहिये एकरूप होनेका निषेध ही है, यातैं रसका ज्ञानरूप परिणमे है, तौऊ आप तौ रसरूप परिणमै नाहीं, तातैं भी अरस कहिये ॥६॥ ऐसैं छह प्रकारकरि रसका निषेधतैं अरस है । ऐसैं ही अरूप, अगंध, अस्पर्श, अशब्द चारों विषयनिका छह छह हेतुकरि निषेध है, सो कहे तैसैं ही जानलेने ।

बहुरि अनिर्दिष्टसंस्थानकूं कहे हैं। द्रव्यांतर कहिये पुद्गलद्रव्य, ताकरि रचा जो शरीर, ताके संस्थान जो आकार तिनिकरि कह्या न जाय है, याका ऐसा आकार है ॥१॥ बहुरि आपका नियतस्वभाव है ताकरि अनियतसंस्थानरूप जे अनंत शरीर तिनिमैं वर्तें है, यातैं भी आकार कह्या जाता नाहीं ॥२॥ बहुरि संस्थान नामकर्मका विपाक है सोभी पुद्गलद्रव्यही विषैं कहिये है, ताके निमित्ततैं आकार न कहिये ॥३॥ बहुरि न्यारे न्यारे आकाररूप परिणमते जे समस्तवस्तु, तिनिके स्वरूपतैं तदाकार भया जो अपना स्वभावरूप संवेदन, तिस शक्तिरूपपणा याकै होते भी आप तौ समस्त लोकके मिलापकरि शून्य होती जो अपनी निर्मल ज्ञानमात्र अनुभूति तिसपणा-करि किछू भी आकाररूप नाहीं है, तातैं अनिर्दिष्टसंस्थान है ॥४॥ ऐसै चारि हेतुतैं संस्थानका-कहना निषेध्या।

बहुरि अव्यक्तविशेषणकूं साधे हैं। तहां षड्द्रव्यस्वरूप लोक है सो ज्ञेय है, व्यक्त है, ऐसैं व्यक्तरूपतैं जीव अन्य है, तातैं अव्यक्त है ॥१॥ बहुरि कषायका समूह जो भावकभाव सो व्यक्त है, तातैं भी जीव अन्य है, तातैं अव्यक्त है ॥२॥ बहुरि चित्सामान्यविषैं चैतन्यकी व्यक्ति है ते सर्व अंतर्भूत है, तातैं अव्यक्त है ॥३॥ बहुरि क्षणिकव्यक्तिमात्रही नाहीं है, तातैं भी अव्यक्त कहिये ॥४॥ बहुरि व्यक्त अर अव्यक्त अर दोऊ भाव मिले हुये मिश्ररूप याके प्रतिभासमें आवे है, तौऊ व्यक्तभावही केवल नाहीं स्पर्शे है, तातैं भी अव्यक्त कहिये ॥५॥ बहुरि आपही बाह्य आभ्यन्तर प्रगट अनुभूयमान है तौऊ व्यक्तभावतैं उदासीन दूर वर्ति प्रद्योतमान है, तातैं भी अव्यक्त कहिये ॥६॥ ऐसै छह हेतुकरि अव्यक्तभाव साध्या।

बहुरि ऐसैं रस, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, संस्थान व्यक्तपणाका अभावस्वरूप होतैं भी स्वसंवे-वेदन केवलकरि आप प्रत्यक्षगोचर होतैं अनुमानगोचरमात्रपणाका अभावतैं अलिंगग्रहण कहिये। बहुरि आपके अनुभवनमें आवे ऐसा चेतनागुणकरि सदा अंतरंगविषैं प्रकाशमान है, तातैं चेतना-गुण है। कैसा है चेतनागुण? समस्त जे विप्रतिपत्ति कहिये जीवकूं अन्य प्रकार मानना ताका

तौ निराकरण करनहारा है। बहुरि भेदज्ञानी जीवनिकूं सोप्या है अपना सर्वस्व जानैं ऐसा है। बहुरि समस्त ही लोकालोककूं ग्राही (सी) भूतकरि अर अत्यंत सुखिया मंथर होय, तैसैं सर्व कालमैं किंचिन्मात्र भी चलायमान नाहीं होता है। बहुरि अन्य द्रव्यनितैं साधारण नाहीं है, तातैं असाधारण स्वभावभूत है। ऐसा चैतन्यरूप परमार्थस्वरूप जीव है, सो यह भगवान् निर्मल है प्रकाश जाका ऐसा इस लोकमें टंकोत्कीर्ण भिन्न ज्योतीरूप विराजमान है। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहि याके अनुभवनकी प्रेरणा करे हैं।

मालिनीछन्दः

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं।
इममुपरि चरंतं चारुविश्वस्य साक्षात् कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतं ॥३॥

अर्थ—भव्य आत्मा है सो अपने एक केवल आत्माकूं आत्माही विषैं अभ्यास करो, अनुभव करो। कैसा आत्माका अनुभव करो? जो सकल ही चिच्छक्तितैं रीते रहित अन्यभाव हैं तिनिकूं सर्वहीकूं मूलतैं छोडिकरि अर प्रगटपणे अपने चिच्छक्तिमात्र भावकूं अवगाहन करि अर यह समस्त पदार्थसमूह जो लोक ताकै उपरि प्रवर्तता संता है, ताका साक्षात् अनुभव करो। कैसा है यह? अनंत है, अविनाशी है।

भावार्थ—यह आत्मा परमार्थतैं समस्त अन्यभावनितैं रहित चैतन्यशक्तिमात्र है, ताका अनुभवका अभ्यास करौ, ऐसा उपदेश है। आगैं चिच्छक्तितैं अन्य जे भाव हैं, ते सर्व पुद्गलद्रव्यसंबंधी हैं। ऐसी अगिली गाथाकी सूचनिकारूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं। अतोतिरिक्ताः सर्वेपि भावाः पौद्गलिकाअमी ॥४॥

अर्थ—यह जीव है सो चैतन्यशक्तिकरि व्याप्त है सर्वस्वसार जाका ऐसा एतावन्मात्र है, इस चिच्छक्तितैं रीते जे भाव हैं ते सर्वही पुद्गलजन्य हैं ते पुद्गलके ही हैं। ऐसैं तिनिभावनिका व्याख्यान छह गाथामें करे। गाथा—

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥५०॥
जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥५१॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२॥
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णो व य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥ ५३ ॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥ ५४ ॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥ ५५ ॥

जीवस्य नास्ति वर्णो नापि गंधो नापि रसो नापि च स्पर्शः ।
नापि रूपं न शरीरं नापि संस्थानं न संहननं ॥५०॥
जीवस्य नास्ति रागो नापि द्वेषो नैव विद्यते मोहः ।
नो प्रत्यया न कर्म नोकर्म चापि तस्य नास्ति ॥५१॥
जीवस्य नास्ति वर्गो न वर्गणा नैव स्पर्द्धकानि कानिचित् ।
नो अध्यात्मस्थानानि नैव चानुभागस्थानानि ॥५२॥

जीवस्य न संति कानिचिद्योगस्थानानि न बंधस्थानानि वा ।
नैव चोदयस्थानानि न मार्गणास्थानानि कानिचित् ॥५३॥
नो स्थितिबंधस्थानानि जीवस्य न संक्लेशस्थानानि वा ।
नैव विशुद्धस्थानानि नो संयमलब्धिस्थानानि वा ॥५४॥
नैव च जीवस्थानानि न गुणस्थानानि वा संति जीवस्य ।
येन त्वेते सर्वे पुद्गलद्रव्यस्य परिणामाः ॥५५॥

आत्मख्यातिः—यः कृष्णो हरितः पीतो रक्तः श्वेतो वर्णः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः सुरभिर्दुरभिर्वा गंधः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः कटुकः कषायः तिक्तोऽम्लो मधुरो वा रसः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः स्निग्धो रूक्षः शीतः उष्णो गुरुर्लघुर्मृदुः कठिनो वा स्पर्शः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यत्स्पर्शादिसामान्यपरिणाममात्रं रूपं तन्नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यदौदारिकं वैक्रियकमाहारकं तैजसं कार्मणं वा शरीरं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यत्समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमंडलं स्वाति कुब्जं वामनं हुण्डं वा संस्थानं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यद्वज्रर्षभनाराचं वज्रनाराचं नाराचमर्द्धनाराचं कीलिका असंप्राप्तासृपाटिका वा संहननं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः प्रीतिरूपो रागः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । योऽप्रीतिरूपो द्वेषः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यस्तत्त्वाप्रतिपत्तिरूपो मोहः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । ये मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणाः प्रत्ययास्ते सर्वेपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यद् ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायरूपं कर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात । यत्षट्पर्याप्तित्रिशरीरयोग्यवस्तुरूपं नोकर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः शक्तिसमूहलक्षणो वर्गः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । या वर्गसमूहलक्षणा वर्गणा सा सर्वापि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरि-

णाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि मंदतीव्ररसकर्मदलविशिष्टन्यासलक्षणानि स्पर्द्धकानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि स्वपरैकत्वाध्यासे सति विशुद्धचित्परिणामातिरिक्तत्वलक्षणान्यध्यात्मस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिरसपरिणामलक्षणान्यनुभागस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कायवाङ्मनोवर्गणापरिस्पंदलक्षणानि योगस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिपरिणामलक्षणानि बंधस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि स्वफलसंपादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणान्युदयस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि गतींद्रियकाययोगवेदकषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वसंज्ञाहारलक्षणानि मार्गणास्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिकालांतरसहत्वलक्षणानि स्थितिबंधस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कषायविपाकोद्रेकलक्षणानि संक्लेशस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कषायविपाकानुद्रेकलक्षणानि विशुद्धस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि चारित्रमोहविपाकक्रमनिवृत्तिलक्षणानि संयमलब्धिस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रियलक्षणानि जीवस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिअसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयतापूर्वकरणोपशमकक्षपकानिवृत्तिबादरसांपरायोपशमकक्षपकसूक्ष्मसांपरायोपशमकक्षपकोपशांत कषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिलक्षणानि गुणस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् ।

अर्थ—जीवकै वर्ण नाहीं है, गंध भी नाहीं है, रस भी नाहीं है, बहुरि स्पर्श भी नाहीं है, रूप भी नाहीं है, शरीर भी नाहीं है, संस्थान भी नाहीं है, संहनन भी नाहीं है, बहुरि जीवकै राग भी नाहीं है, द्वेष भी नाहीं विद्यमान है, मोह भी नाहीं है, प्रत्यय कहिये आस्रव भी नाहीं हैं, कर्म भी नाहीं है, नोकर्म भी ताकै नाहीं है, बहुरि जीवकै वर्ग नाहीं है, वर्गणा

नाहीं है, केई स्पर्द्धक भी नाहीं है, अध्यात्मस्थान भी नाहीं है, बहुरि अनुभागस्थान भी नाहीं है, बहुरि केई योगस्थान हैं ते भी जीवके नाहीं हैं, अथवा बंधस्थान भी नाहीं है, बहुरि उदयस्थान भी नाहीं है, बहुरि केई मार्गणास्थान हैं ते भी नाहीं हैं, बहुरि जीवकै स्थितिबंधस्थान हैं ते भी नाहीं हैं, अथवा संक्लेशस्थान भी नाहीं है, विशुद्धिस्थान भी नाहीं है, अथवा संयमस्थान भी नाहीं है, बहुरि जीवकै जीवस्थान भी नाहीं है, अथवा गुणस्थान भी नाहीं है। जा कारणकरि ए सर्वही पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं।

टीका—जो कृष्ण, हरित, पीत, रक्त, श्वेत, वर्ण हैं सो सर्व ही जीवके नाहीं हैं। जातैं पुद्गलद्रव्यका परिणाममयपणाकूं होतैं अपनी अनुभूतितैं ए वर्ण भिन्न हैं ॥१॥ बहुरि जो सुरभि दुरभि गंध है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥२॥ बहुरि जो कटु, कषाय, तिक्त. आम्ल, मधुर रस हैं सो सर्वही जीवकै नाहीं हैं। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न है ॥३॥ बहुरि जो स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, मृदु, कठिन, स्पर्श हैं ते सर्वही जीवकै नाहीं हैं। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपने अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥४॥ बहुरि जो स्पर्शादि सामान्यपरिणाममात्ररूप है सो जीवकै नाहीं है। जातैं यह पुद्गलपरिणाममय है, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न है ॥५॥ बहुरि जो औदारिक वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, शरीर है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥६॥ बहुरि जो समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक, संस्थान हैं सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥७॥ बहुरि जो वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तास्टपाटिका, संहनन, हैं ते सर्वही जीवकै नाहीं हैं। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥८॥

बहुरि—जो प्रीतिरूप राग है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं यह पुद्गलपरिणाममय है, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न है ॥९॥ बहुरि जो अप्रीतिरूप द्वेष है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं यह पुद्गलपरिणाममय है, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न है ॥१०॥ बहुरि जो यथार्थतत्त्वकी अप्रातिरूप मोह है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं यह पुद्गलपरिणाममय है, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न है ॥११॥ बहुरि जे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग है लक्षण जिनिका ऐसैं प्रत्यय हैं ते सर्वही जीवकै नाहीं हैं। जातैं ए पुद्गलपरिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥१२॥ बहुरि जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतरायरूप कर्म है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं० ॥१३॥ बहुरि जो छह पर्याप्ति तीन शरीरयोग्य वस्तुरूप पुद्गलस्कंध नोकर्म है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं० ॥१४॥ बहुरि जो कर्मके रसकी शक्तिके अविभागप्रतिच्छेदका समूहरूप वर्ग है सो सर्वही जीवकै नाहीं है। जातैं० ॥१५॥ बहुरि जो वर्गनिका समूहरूप वर्गणा है सो सर्व ही जीवकै नाहीं है। जातैं०। ।१६॥ बहुरि जे मंद, तीव्र रसरूपकर्मका समूहकरि विशिष्टवर्ग तिनिका वर्गणाका स्थापन, सो है लक्षण जिनिका ऐसे स्पर्द्धक हैं ते सर्व ही जीवकै नाहीं हैं। जातैं० ॥१७॥ बहुरि जे स्वपरका एकपणाका निश्चय आशय होतैं विशुद्ध चैतन्यपरिणामतैं न्यारापणा है लक्षण जिनिका ऐसे योगस्थान, ते सर्व जीवकै नाहीं है। जातैं० ॥१८॥ बहुरि जे न्यारे न्यारे विशेषरूप प्रकृतिनिके रसरूपपरिणाम है लक्षण जिनिका ऐसे अनुभागस्थान हैं ते सर्वही० ॥१९॥ बहुरि जो काय, वचन मनोरूप वर्गणाका चलना सो है लक्षण जिनिका ऐसे योगस्थान ते सर्व० ॥२०॥ बहुरि जे न्यारे न्यारे विशेषकूं लिये प्रकृतिनिके परिणाम है लक्षण जिनिका ऐसैं बंधस्थान हैं ते सर्व० ॥२१॥ बहुरि जे अपने फलके उपजावनेविषैं समर्थ कर्मकी अवस्था सो है लक्षण जिनिका ऐसैं उदयस्थान हैं ते सर्व० ।२२॥

बहुरि जे गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व,

संज्ञा, आहार है लक्षण जिनिका ऐसे मार्गणास्थान हैं ते सर्वं० ॥२३॥ बहुरि जे न्यारे न्यारे विशेषनिकूं लिये प्रकृतिनिके कालांतरविषैं साथि रहना है लक्षण जिनिका ऐसे स्थितिबंधके स्थान हैं ते सर्वही जीवकै नाहीं हैं। जातैं ए पुद्गलद्रव्यके परिणाममय हैं, ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥२४॥ बहुरि जे कषायका विपाकका उत्कृष्टपणा है लक्षण जिनिका ऐसे संक्लेशस्थान हैं ते सर्व० ॥२५॥ बहुरि जे कषायके विपाकका मंदपणा है लक्षण जिनिका ऐसैं विशुद्धिस्थान हैं ते सर्व० ॥२६॥ बहुरि जे चारित्रमोहका उदयकी अनुक्रमतैं निवृत्ति है लक्षण जिनका ऐसे संयमलब्धिस्थान हैं ते सर्व० ॥२७॥ बहुरि जे पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय संज्ञी असंज्ञी पंचेंद्रिय है लक्षण जिनिका ऐसे जीवस्थान हैं ते सर्व० ॥२८॥ बहुरि जे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली ए है लक्षण जिनिके ऐसे गुणस्थान हैं ते सर्वही जीवकै नाहीं हैं, जातैं ए पुद्गलद्रव्यपरिणाममय हैं। ऐसैं होतैं अपनी अनुभूतितैं भिन्न हैं ॥२९॥ ऐसैं ए सर्वही पुद्गलद्रव्यके परिणाममय भाव हैं ते सर्वही जीवके नाहीं हैं। जीव तौ परमार्थ-चैतन्यशक्तिमात्र है। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥

ननु वर्णादयो यद्यमी न संति जीवस्य तदा तत्रांतरे कथं संतीति प्रज्ञाप्यंते इति चेत्—

अर्थ—वर्णादिक अथवा रागमोहादिक सर्वही भाव कहे ते सर्वही या पुरुषके भिन्न हैं। तिसही कारणकरि अंतर्दृष्टिकरि देखनेकूं ए सर्वही नाहीं दीखे। केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप पुरुषही दीख्या।

भावार्थ–परमार्थनय अभेद ही है, तातैं तिसदृष्टिकरि देखतैं भेद नाहीं दीखे है, तिसनयकी दृष्टिमैं चैतन्यमात्रही पुरुष दीखै है। तातैं ते सर्वही वर्णादिक तथा रागादिक पुरुषके भिन्नही हैं। अर इनि वर्णकूं आदि लेकरि गुणस्थानपर्यंत भाव हैं, तिनिका स्वरूप विशेषकरि जान्या चाहै, सो गोम्मटसार आदि ग्रंथनितैं जाणियो। आगैं पूछे है, जो वर्णादिक भाव ए कहे ते जीवके नाहीं हैं, तौ अन्यसिद्धांतविषैं ए जीवकै हैं ऐसैं कैसा कह्या है? ताका उत्तर गाथामैं कह्या है। गाथा–

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंताभावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥

व्यवहारेण त्वेते जीवस्य भवंति वर्णाद्याः।
गुणस्थानांता भावा न तु केचिन्निश्चयनयस्य ॥५६॥

आत्मख्यातिः—इह हि व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वाज्जीवस्य पुद्गलसंयोगवशादनादिप्रसिद्धबंधपर्यायस्य कुसुंभरक्तस्य कार्पासिकवासस इवौपाधिकं भावमवलंब्योत्प्लवमानः परभावं परस्य विदधाति। निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्केवलस्य जीवस्य स्वाभाविकं भावमवलंब्योत्प्लवमानः परभावं परस्य सर्वमेव प्रतिषेधयति। ततो व्यवहारेण वर्णादयो गुणस्थानांता भावा जीवस्य संति निश्चयेन तु न संतीति युक्ता प्रज्ञप्तिः। कुतो जीवस्य वर्णादयो निश्चयेन न संतीति चेत्।

अर्थ–ए वर्ण आदि गुणस्थान अंत जे भाव कहे ते जीवकै व्यवहारनयकरि होय हैं, तातैं सूत्रमैं कहे हैं। बहुरि निश्चयनयके मतमैं तौ इनिमैंका केई जीवके नाहीं हैं।

टीका–इहां व्यवहारनय है सो पर्यायाश्रित है, सो पुद्गलके संयोगके वशतैं अनादितैं प्रसिद्ध है बंधपर्याय जाके ऐसा जीवकै "जैसैं कपासके श्वेतवस्त्रके कुसुंभाका लालरंग औपाधिक होय है तैसैं" औपाधिकभाव जीवकै वर्णादिक होय हैं। तिनिकूं आलंबनकरि व्यवहारनय प्रवर्तै है,

सो परके भावकूं परके कहे हैं। बहुरि निश्चयनय है सो द्रव्यके आश्रय है, सो केवल एक जीवका स्वाभाविक भावकूं अवलंबन करि प्रवर्ते है, सो सर्व ही परभावकूं परके नाहीं कहे है, प्रतिषेध करे है, तातें वर्णकूं आदि लेकरि गुणस्थान तांई जे भाव हैं, ते जीवके हैं ऐसें व्यवहारकरि कहिये है। बहुरि निश्चयनयकरि जीवके ए नाहीं हैं ऐसें कहिये है। ऐसें भगवानकी कथनी स्याद्वादकरि युक्त है। आगें फेरि पूछे है, जो ए वर्णादिक जीवके निश्चयकरि काहेतें नाहीं हैं? ताका हेतु कहो। ऐसें पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
णय हुंति तस्स ताणि दु उवओग गुणाधिगो जम्हा ॥५७॥

एतैश्च संबंधो यथैव क्षीरोदकं ज्ञातव्यः।
न च भवंति तस्य तानि तूपयोगगुणाधिको यस्मात् ॥५७॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु सलिलमिश्रितस्य क्षीरस्य सलिलेन सह परस्परावगाहलक्षणे संबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतक्षीरत्वगुणव्याप्यतया सलिलादधिकत्वेन प्रतीयमानत्वादग्नेरुष्णगुणेनेव सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावान्न निश्चयेन सलिलमस्ति। तथा वर्णादिपुद्गलद्रव्यपरिणाममिश्रितस्यास्यात्मनः पुद्गलद्रव्येण सह परस्परावगाहलक्षणे संबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतोपयोगगुणव्याप्यतया सर्वद्रव्येभ्योधिकत्वेन प्रतीयमानत्वात् अग्नेरुष्णगुणेनेव सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावान्न निश्चयेन वर्णादिपुद्गलपरिणामाः संति। कथं तर्हि व्यवहारो विरोधक इति चेत्।

अर्थ—इनि वर्णादि भावनिकरि जीवके जैसा जलके अर दूधके एकक्षेत्रावगाह संयोग संबंध है तैसा संबंध जानना। बहुरि ते तिस जीवके नाहीं है। तातें जीव इनितें उपयोग गुणकरि अधिक है, इस उपयोग गुणकरि न्यारा जाणिये है।

टीका—जैसें जलकरि मिश्रित जो दूध ताकै जलकरि सहित परस्पर अवगाह है लक्षण जाका ऐसा संबंध होतें भी दूध अपना स्वलक्षणभूत दूधपणा गुण है व्याप्य जाके तिसपणाकरि जलतें अधिकपणाकरि प्रतीयमान है। तिसके अर दूधके तादात्म्यस्वरूपसंबंधका अभाव है। जैसें

अग्निका अर उष्णपणाका तादात्म्यसंबंध है तैसैं इनिका नाहीं है, तातैं निश्चयकरि दूधकै जल नाहीं है, तैसे ही वर्णादिक पुद्गलद्रव्यके परिणामनिकरि मिश्रित जो आत्मा ताके पुद्गलद्रव्य सहित परस्पर अवगाहलक्षण संबंध होतैं भी अपना लक्षणभुत उपयोग गुण सो है, व्याप्य जाकै, तिसपणाकरि सर्वद्रव्यनितैं अधिकपणाकरि प्रतीयमान है। सो जैसैं अग्नीका अर उष्णपणाका तादात्म्यस्वरूप है, तैसैं आत्माका अर वर्णादिकनिका तादात्म्यसंबंध नाहीं है। तातैं निश्चयनयकरि वर्णादिक पुद्गलके परिणाम हैं ते जीवके नाहीं हैं। आगैं फेरि पूछै है, जो, ऐसैं तो व्यवहारनयका अर निश्चयनयका विरोध आया, अविरोध कैसैं कहिये? ताका उत्तर दृष्टांतकरि गाथा तीनमें कहे हैं। गाथा—

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो णय पंथो मुस्सदे कोई ॥५८॥
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ॥५९॥
एवं रसगंधफासा संठाणादीय जे समुद्दिट्ठा।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥६०॥

पथि मुष्यमाणं दृष्ट्वा लोका भणंति व्यवहारिणः।
मुष्यते एष पंथा न च पंथा मुष्यते कश्चित् ॥५८॥
तथा जीवे कर्मणां नोकर्मणां च दृष्ट्वा वर्णं।
जीवस्यैष वर्णो जिनैर्व्यवहारत उक्तः ॥५९॥

एवं गंधरसस्पर्शरूपाणि देहः संस्थानादयो ये च ।
सर्वे व्यवहारस्य च निश्चयद्दष्टारो व्युपदिशन्ति ॥६०॥

आत्मख्यातिः—यथा पथि प्रस्थितं कंचित्सार्थं मुष्यमाणमवलोक्य तात्स्थ्यात्तदुपचारेण मुष्यत एष पंथा इति व्यवहारिणां व्यपदेशेपि न निश्चयतो विशिष्टाकाशदेशलक्षणः कश्चिदपि पंथा मुष्येत । तथा जीवे बंधपर्यायेणावस्थितकर्मणो नोकर्मणो वर्णमुत्प्रेक्ष्य तात्स्थ्यात्तदुपचारेण जीवस्यैष वर्ण इति व्यवहारतोर्हद्देवानां प्रज्ञापनेपि न निश्चयतो नित्यमेवामूर्तस्वभावस्योपयोगगुणाधिकस्य जीवस्य कश्चिदपि वर्णोस्ति । एवं गंधरसस्पर्शरूपशरीरसंस्थानसंहननरागद्वेषमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मवर्गवर्गणास्पर्द्धकाध्यात्मस्थानानुभागस्थानयोगस्थानबंधस्थानोदयस्थानमार्गणास्थानस्थितिबंधस्थानसंक्लेशस्थानविशुद्धिस्थानसंयमलब्धिस्थानजीवस्थानगुणस्थानान्यपि व्यवहारतोर्हद्देवानां प्रज्ञापनेपि निश्चयतो नित्यमेवामूर्तस्वभावस्योपयोगगुणेनाधिकस्य जीवस्य सर्वाण्यपि न संति तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावात् । कुतो जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधो नास्तीति चेत् ।

अर्थ—जैसैं मार्गविषैं चालतेकूं लूटता देखि, व्यवहारी लोक कहैं, यह मार्ग लुटै है । तहां परमार्थ विचारिये तब, कोई मार्ग तो नाहीं लुटै है, चालते लोक ही लुटै हैं । तैसैं जीवविषैं कर्मनिका तथा नोकर्मनिका वर्णकूं देखिकरि जिनदेव व्यवहारतैं कह्या है, जो यह वर्ण जीवका है । ऐसैं ही गंध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदिक जे सर्वही हैं ते व्यवहारका उपदेश है । ऐसैं निश्चयनयके देखनेवाले कहे हैं ।

टीका—जैसैं मार्गविषैं चालता साथकूं लूटता देखि अर कोई कहे, जो यह मार्ग लुटै है । तहां तिस मार्गविषैं लुटनेतैं मार्ग लुटनेका उपचारकरि कहे हैं । ऐसा व्यवहारी लोकनिका कहना होतैं भी, निश्चयतैं देखिये तब, मार्ग आकाशके प्रदेशका विशेष है, सो मार्ग तौ कोई लुटै है नाहीं । तैसैं जीवविषैं बंधपर्यायकरि अवस्थित जो कर्मका अर नोकर्मका वर्ण, ताहि देखिकरि जीवविषैं तिष्ठनेकरि तिसका उपचार करि जीवका यहै वर्ण है, ऐसैं व्यवहारतैं भगवान् अरहंतदेव प्रज्ञापन करे है, जनावे है, तौऊ निश्चयतैं जीव है सो नित्यही अमूर्तस्वभाव है, अर उपयोग गुणकरि अन्य द्रव्यतैं अधिक है, भिन्न है, तातैं ताकै कोई वर्ण नाहीं है । ऐसैं ही गंध, रस, स्पर्श, रूप, संस्थान, संहनन,

राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय, कर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्मस्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बंधस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, संयमलब्धिस्थान, जीवस्थान, गुणस्थान ए सर्व ही व्यवहारतैं जीवकै अरिहंतदेव कहे हैं। तौऊ निश्चयतैं जीव है, सो नित्य ही अमूर्तस्वभाव है। अर उपयोग गुणकरि अन्यतैं अधिक है, भिन्न है, तातैं ताकै ए सर्वही नाहीं हैं जातैं इनि वर्णादिक भावनिकै अर जीवकै तादात्म्यलक्षण सम्बन्धका अभाव है।

भावार्थ—ए वर्णतैं लगाय गुणस्थानपर्यंत भाव कहे, ते सिद्धान्तमें जीवके कहे हैं, ते व्यवहारनयकरि कहे हैं। निश्चयनयकरि जीवकै नाहीं हैं जातैं जीव तौ परमार्थकरि उपयोगस्वरूप है बहुरि इहां ऐसा जानना—जो पहलै व्यवहारनयकूं असत्यार्थ कह्या है, तहां ऐसा तौ नाहीं, जो सर्वथा ही असत्यार्थ है; कथंचित् असत्यार्थ जानना। जातैं जहां एक द्रव्यकूं न्यारा पर्यायनितैं अभेद असाधारण गुणमात्रकूं प्रधानकरि कहिये, तब परस्परद्रव्यनिका निमित्तनैमित्तिकभाव तथा निमित्ततैं भये पर्याय, ते सर्व गौण भये, तिस एक अभेदद्रव्यकी दृष्टिमैं तिनिका प्रतिभास नाहीं। तातैं ते सर्व तिसद्रव्यमैं नाहीं हैं। ऐसैं कथंचित् निषेध करिये। बहुरि तिस द्रव्यमैं कहिये तब व्यवहारनयकरि कहिये, ऐसा नयविभाग है। सो इहां शुद्धद्रव्यकी दृष्टिकरि कथन है। तातैं तिनि सर्वहीकूं जीवकै व्यवहारनयकरि कह्या है, ऐसैं सिद्ध किया है। अर निमित्तनैमित्तिकभावकी दृष्टिकरि देखिये तब कथंचित् सत्यार्थ भी कहिये। सर्वथा असत्यार्थ ही कहिये, तो सर्व व्यवहारका लोप होय। तब परमार्थकाभी लोप होय। तातैं जिनदेवकी देशना स्याद्वाद रूप ही समझै सम्यग्ज्ञान है, सर्वथैकांत मिथ्यात्व है। आगैं पूछे है, जो वर्णादिककरि जीवकै तादात्म्यसम्बन्ध काहेते नाहीं? ऐसैं पूछै, उत्तर कहे हैं। गाथा—

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि दु वण्णादओ केई ॥६१॥

तत्र भवे जीवानां संसारस्थानां भवंति वर्णादयः ।
संसारप्रमुक्तानां न संति खलु वर्णादयः केचित् ॥६१॥

आत्मख्यातिः—यत्किल सर्वास्वप्यवस्थासु यदात्मकत्वेन व्याप्तं भवति तदात्मकत्वव्याप्तिशून्यं न भवति तस्य तैः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधः स्यात् । ततः सर्वास्वप्यवस्थासु वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्याभवतश्च पुद्गलस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधः स्यात् । संसारावस्थायां कथंचिद्वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्याभवतश्चापि मोक्षावस्थायां सर्वथा वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्याभवतश्च जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधो न कथंचनापि स्यात् । जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुरभिनिवेशे दोपश्चायं ।

अर्थ—वर्णादिक हैं ते, जे जीव संसारविषें तिष्ठे हैं, तिनिके तिस संसारविषें तो होय हैं। बहुरि जे संसारतें छुटे हैं मुक्त भये हैं, तिनिके वर्णादिक निश्चयकरि कोई भी नाहीं हैं। यातें तादात्म्यसंबंध नाहीं है ।

टीका—जो निश्चयकरि सर्व ही अवस्थाविषें तत्स्वरूपकरि व्याप्त होय अर तिस स्वरूपकी व्याप्तिकरि रहित न होय, तिसवस्तुके तिनिभावनिकरि सहित तादात्म्यसंबंध होय, तातें सर्व ही अवस्थाविषें वर्णादि स्वरूपपणाकरि व्याप्त होता, बहुरि वर्णादिककी व्याप्तिकरि शून्य न होता, जो पुद्गलद्रव्य ताके वर्णादिकभावनिकरिसहित तादात्म्यलक्षण संबंध होय है। बहुरि संसार अवस्थाविषें कथंचित् वर्णादि स्वरूपपणाकरि होता, अर वर्णादिस्वरूपपणाकी व्याप्तिकरि शून्य न होता जो जीव ताके मोक्ष अवस्थाविषें सर्व प्रकारकरि वर्णादि स्वरूपपणाकी व्याप्तिकरि शून्य होताके अर वर्णादिस्वरूपपणाकरि व्याप्त न होताके वर्णादिभावनिकरि तादात्म्यलक्षण कोई प्रकार भी नाहीं है ।

भावार्थ—जो वस्तु जिनि भावनिकरि सर्व अवस्थामें व्यापे ताकै तिनिभावनिकरि तादात्म्य संबंध कहिये, सो वर्णादिकतें पुद्गल तौ सर्व अवस्थामें व्यापक है । अर जीवकै संसारावस्थामें तौ

वर्णादिक कोई प्रकार कहिये । अर मोक्षावस्थामैं सर्वथा ही नाहीं । तातैं जीवकै वर्णादिककरि तादात्म्यसंबंध नाहीं है ऐसा न्याय है । आगैं जीवकै वर्णादिककरि तादात्म्य है ऐसा कोई मिथ्या अभिप्राय करै, तौ तामैं यह दोष है सो कहे हैं । गाथा—

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावत्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो हि दे कोई ॥६२॥

जीवश्चैव ह्येते सर्वे भावा इति मन्यसे यदि हि ।
जीवस्याजीवस्य च नास्ति विशेषस्तु ते कश्चित् ॥६२॥

आत्मख्यातिः—यथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिः पुद्गलद्रव्यमनुगच्छंतः पुद्गलस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंति तथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिर्जीवमनुगच्छंतो जीवस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंतीति यस्याभिनिवेशः तस्य शेषद्रव्यासाधारणस्य वर्णाद्यात्मकत्वस्य पुद्गललक्षणस्य जीवेन स्वीकरणाज्जीवपुद्गलयोरविशेषप्रसक्तौ सत्यां पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्याभावाद् भवत्येव जीवाभावः । संसारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यमित्यभिनिवेशेप्ययमेव दोषः ।

अर्थ—वर्णादिकतैं जीवकै तादात्म्य माननेवालाकूं कहे हैं । हे मिथ्या अभिप्रायी जो तू, ऐसैं माने है, जो ए वर्णादिकभाव सर्व ही जीव हैं, तौ तेरे मतमैं जीवकै अर अजीवकै किछू विशेष नाहीं है ।

टीका—जैसैं वर्णादिकभाव हैं ते अनुक्रमतैं भया है आविर्भाव कहिये प्रगट होना उपजना अर तिरोभाव कहिये छिपना नाश होना, ज्यां ऐसी जेतैते व्यक्ति कहिये पर्याय तिनिकरि पुद्गलद्रव्यहीकूं अन्वयरूप प्राप्त होते पुद्गलद्रव्यहीकै तादात्म्यस्वरूपकूं विस्तारे हैं । तैसैं हि ए वर्णादिकभाव क्रमकरि भया है आविर्भाव तिरोभाव ज्यां ऐसैं जेतैते पर्याय अवस्था तिनिकरि जीवकूं अन्वयरूप प्राप्त होते जीवकै वर्णादिकतैं तादात्म्य स्वरूपकूं विस्तारे हैं, ऐसा जाका अभिप्राय है ताकै अन्य बाकी द्रव्यतैं असाधारण वर्णादि स्वरूपपणा होऊ । जो पुद्गलद्रव्यका लक्षण ताका

जीवकरि अंगीकार करनेतैं जीव पुद्गलकै अविशेषका प्रसंग होतैं पुद्गलनितैं न्यारा जीवद्रव्यका अभाव होनेतैं जीवका अभाव होयही है।

भावार्थ—जैसैं वर्णादि पुद्गल द्रव्यसूं तादात्म्यस्वरूप है, तैसैं जो जीवसूं भी तादात्म्य स्वरूप होय तौ जीव पुद्गलमैं भेद न ठहरै, तव जीवका अभाव होय ही, यह वडा दोष आवै। आगैं संसारावस्थाविषैं ही जीवकै वर्णादिकतैं तादात्म्य है, ऐसा अभिप्राय होतैं भी यह ही दोष आवै है, ऐसैं कहे हैं। गाथा—

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तह्मा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा॥६३॥
एवं पुग्गलदव्वं जीवो तह लक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो॥६४॥

अथ संसारस्थानां जीवानां तव भवन्ति वर्णादयः।
तस्मात्संसारस्था जीवा रूपित्वमापन्नाः॥६३॥
एवं पुद्गलद्रव्यं जीवस्तथालक्षणेन मूढमते।
निर्वाणमुपगतोपि च जीवत्वं पुद्गलः प्राप्तः॥६४॥

आत्मख्यातिः—यस्य तु संसारावस्थायां जीवस्य वर्णादितादात्म्यमस्तीत्यभिनिवेशस्तस्य तदानीं स जीवो रूपित्वमवश्यमवाप्नोति। रूपित्वं च शेषद्रव्यासाधारणं कस्यचिद् द्रव्यस्य लक्षणमस्ति। ततो रूपित्वेन लक्ष्यमाणं यत्किंचिद्भवति स जीवो भवति। रूपित्वेन लक्ष्यमाणं पुद्गलद्रव्यमेव भवति। एवं पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति न पुनरितरः कतरोपि। तथा च सति मोक्षावस्थायामपि नित्यस्वलक्षणलक्षितस्य द्रव्यस्य सर्वास्वप्यवस्थास्वनपायित्वादनादिनिधनत्वेन पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति न पुनरितरः कतरोपि। तथा च सति तस्यापि पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्याभावात् भवत्येव जीवाभावः। एवमेतत् स्थितं यद्वर्णादयो भावा न जीव इति।

अर्थ—अथ संसारविषैं तिष्ठे जीवनिकै तेरे मतमें वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप हैं, तौ इस ही हेतूतैं संसारविषैं तिष्ठे जीव रूपीपणाकूं प्राप्त भये। ऐसैं होतें पुद्गलद्रव्य ही जीव ठहरया। जातें पुद्गलका लक्षण सोही जीवका लक्षण भया। ऐसैं तो हे मूढबुद्धि, निर्वाणकूं प्राप्तभया भी जीव पुद्गल ही है। सो पुद्गल ही जीवपणाकूं प्राप्त भया।

टीका—जाके मतमैं संसारावस्थाविषैं जीवके वर्णादि भावनिकरि सहित तादात्म्यसंबंध है ऐसा अभिप्राय है, ताके तिस संसारावस्थाके कालविषैं सो जीव रूपीपणाकूं अवश्य प्राप्त होय है। बहुरि रूपीपणा है सो काहू द्रव्यका असाधारण अन्यद्रव्यनितैं न्यारा लक्षण है, तातैं रूपीपणाकरि लक्षणमात्र जो कछू है सो ही जीव है, सो रूपीपणाकरि लक्ष्यमाण पुद्गलद्रव्य ही है, ऐसैं पुद्गलद्रव्य ही आप जीव है अन्य कोई नाहीं है, ऐसैं होतैं मोक्षावस्थाविषैं भी पुद्गल द्रव्य ही आप जीव होय है, जातैं जो द्रव्य है सो नित्य अपना लक्षणकरि लक्षित है, सो सर्व ही अवस्थाविषैं अविनाश स्वभाव है, यातैं अनादिनिधन है, तातैं पुद्गल ही जीव है अन्य कोई न्यारा ही नाहीं है। बहुरि तेसै होतैं पुद्गलनितैं भिन्न जीवद्रव्यका अभावतैं जीवका अभाव भया ही। ऐसैं यह निश्चय भया जो वर्णादिकभाव हैं ते जीव नाहीं हैं।

भावार्थ—जो कोई वर्णादि भावनिकरि जीवकै संसारावस्थामैं भी तादात्म्यसंबंध माने है, ताकै भी जीवका अभावही आवे है, जातैं वर्णादिक मूर्तिकद्रव्यके लक्षण हैं, ऐसा मूर्तिकपुद्गलद्रव्य है सो वर्णादिकरूप जीव ठहरै, तब जीव भी पुद्गल ही ठहरै। जब जीव मोक्ष होय तब तहां भी पुद्गल ही ठहरै, तब पुद्गलतैं न्यारा तौ जीव न ठहरै। ऐसैं जीवका अभाव आवै, तातैं वर्णादिक जीवकै नाहीं हैं, ऐसा निश्चय है। आगैं इसही अर्थका विशेष कहे हैं। गाथा—

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा।
वादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस ॥६५॥

एदेहिय णिव्वत्ता जीवट्ठाणा दु करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पुग्गलमईहिं ताहिं कह भण्णदे जीवो ॥६६॥

एकं वा द्वे त्रीणि च चत्वारि च पंचेंद्रियाणि जीवाः ।
वादरपर्याप्तेतराः प्रकृतयो नामकर्मणः ॥६५॥
एताभिश्च निर्वृत्तानि जीवस्थानानि करणभूताभिः ।
प्रकृतिभिः पुद्गलमयीभिस्ताभिः कथं भण्यते जीवः ॥६६॥

आत्मख्यातिः—निश्चयतः कर्मकरणयोरभिन्नत्वात् यद्येन क्रियते तत्तदेवेति कृत्वा यथा कनकपत्रं कनकेन क्रियमाणं कनकमेव न त्वन्यत् । तथा जीवस्थानानि वादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ताभिधानाभिः पुद्गलमयीभिः नामकर्मप्रकृतिभिः क्रियमाणानि पुद्गल एव नतु जीवः । नामकर्मप्रकृतीनां पुद्गलमयत्वं चागमप्रसिद्धं दृश्यमानशरीराकारादिमूर्त्तकार्यानुमेयं च । एवं गंधरसस्पर्शरूपशरीरसंस्थानसंहननान्यपि पुद्गलमयनामकर्मप्रकृतिनिर्वृत्तत्वे सति तदव्यतिरेकाज्जीवस्थानैरेवोक्तानि । ततो न वर्णादयो जीव इति निश्चयसिद्धांतः ।

अर्थ—एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय जीव हैं, वहुरि वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ए जीव हैं, ते नामकर्मकी प्रकृति हैं। इनि प्रकृतिनिकरि करणस्वरूप होयकरि जीवस्थान कहिये जीवसमास रचे हैं, ते ए प्रकृति पुद्‌लमय हैं, सो इनिकरि रचेकूं जीव कैसैं कहिये ।

टीका—निश्चयनयकरि कर्म अर करण अभेदभाव है, इस न्यायकरि जो जांकरि कीजिये सो वह वही है । ऐसैं करते जैसा सुवर्णका पत्र सुवर्णकरि किया सो वह पत्र सुवर्ण ही है, अन्य तो किछू नाहीं । तैसैं ए जीवस्थान हैं ते वादर, सूक्ष्म, एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय ते सर्व पर्याप्त अपर्याप्त हैं, ते सर्वही है नाम जिनिका ऐसी पुद्गलमयी नामकर्मकी प्रकृति है, ते करणरूप हैं, तिनिकरि किये हैं, तातैं पुद्गल ही हैं, ते जोव नाहीं हैं। वहुरि

नामकर्मकी प्रकृतिनिके पुद्गलमयपणा आगमविषैं प्रसिद्ध है। अर प्रत्यक्ष देखनेमें आवै जे शरीर आदि मूर्तिकभाव, ते पुद्गलकर्म प्रकृतिनिके कार्य हैं, तिन्किरि अनुमान प्रमाणकरि प्रसिद्ध है। ऐसैं ही गंध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर, संस्थान, संहनन एभी नामकर्मकी प्रकृतिनिकरि किये हैं, तातैं तिस पुद्गलतैं अभेदरूप है, तातैं जीवस्थान पुद्गलमय कहने तेही कहे जानने। तातैं ए वर्णादिक जीव नाहीं हैं ऐसा निश्चयनयका सिद्धांत है। इहां इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

उपजातिच्छन्दः

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेव तत्स्यान्न कथं च नान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यंति रुक्मं न कथं च नासिं ॥६॥

अर्थ—जिस वस्तुकरि जो कियो भाव वणै सो वह भाव वस्तु ही है, किछु अन्य वस्तु नाहीं है। जैसैं रूपे सोनेकरि खड्गका कोश बन्या, ताही लोक रूपा सोना ही देखे हैं, तिसकूं खड्ग तौ कोई प्रकार भी नाहीं देखे है।

भावार्थ—वर्णादिक पुद्गलतैं बने हैं, ते पुद्गल ही हैं, ते जीव नाहीं हैं। पुनः—

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोन्यः ॥७॥

शेषमन्यद् व्यवहारमात्रं—

अर्थ—अहो ज्ञानी जन हो! ए वर्णादिक गुणस्थानपर्यंत भाव हैं, ते समस्तही एक पुद्गलके रचे तुम जाणूं, तातैं ए पुद्गल ही होहू, आत्मा मति होहू, जातैं आत्मा तौ विज्ञानघन है, ज्ञानका पुंज है। तातैं इनि वर्णादिकतैं अन्यही है। आगैं कहे हैं जो इस ज्ञानघन आत्मा सिवाय अन्य किछू हैं, तिन्किूं जीव कहना सो सर्वही व्यवहारमात्र है। गाथा—

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥६७॥ १३७

पर्याप्तापर्याप्ता ये सूक्ष्मा वादराश्च ये चैव ।
देहस्य जीवसंज्ञाः सूत्रे व्यवहारतः उक्ताः ॥६७॥

आत्मख्यातिः—यत्किल वादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ता इति शरीरस्य संज्ञाः सूत्रे जीसंज्ञत्वेनोक्ताः अप्रयोजनार्थः परप्रसिद्ध्या घृतघटवद् व्यवहारः । यथा हि कस्यचिदाजन्मप्रसिद्धैकघृतकुंभस्य तदितरकुंभानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योयं घृतकुंभः स मृन्मयो न घृतस्य इति तत्प्रसिद्ध्या कुंभे घृतकुंभव्यवहारः तथास्याज्ञानिनो लोकस्य संसारप्रसिद्ध्याशुद्धजीवस्य शुद्धजीवानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योयं वर्णादिमान् जीवः स ज्ञानमयो न वर्णादिमयः इति तत्प्रसिद्ध्या जीवे वर्णादिमद् व्यवहारः ।

अर्थ—जे सूक्ष्म वादर वहुरि पर्याप्त अपर्याप्त आदि जेती देहकूं जीसंज्ञा कही है, ते सर्व ही सूत्रविषैं व्यवहारनयकरि कही है ।

टीका—निश्चयकरि यह जानूं, वादर, सूक्ष्म, एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त, ऐसैं शरीरकूं सूत्रविषैं जीव संज्ञापणाकरि कहे हैं तहां परकी प्रसिद्धिकरि घृतके घटकी ज्यौं व्यवहार है । सो यहु व्यवहार जामैं प्रयोजनभूत वस्तु है सो नाहीं ऐसा है, सो स्पष्ट कहे हैं, जैसैं कोई पुरुष ऐसा जो जानै जन्मतैं लगाय घृतका ही घट देख्या, घृततैं रीता न्यारा घट देख्या नाहीं, ताकै समझावनेके अर्थि ऐसैं कहिये, जो यहं घृतका घट है सो मांटीमय है घृतमय नाहीं है, ऐसैं तिस पुरुषकै घृतहीका घट प्रसिद्ध है, ताकरि समझावनेवाला भी घृतका घट कहे है, ऐसा व्यवहार है । तैसैं ही इस अज्ञानी लोककै अनादि संसारतैं लगाय अशुद्ध जीव ही प्रसिद्ध है शुद्धजीवकूं नाहीं जाने है, ताकै शुद्धजीवका ज्ञान करवानेके अर्थि ऐसें सूत्रमें कहे हैं, जो यह वर्णादिमान् जीव कहिए है सो ज्ञानमय है, वर्णादिमय नाहीं है । ऐसैं तिस अज्ञानी लोककैं वर्णादिमान् प्रसिद्ध है, तिस प्रसिद्धकरि जीवविषैं वर्णादिमान्पणाका व्यवहार सूत्रमें किया है । अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

अनुष्टुपछन्दः
घृतकुंभाभिधानेपि कुंभो घृतमयो न चेत । जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेपि न तन्मयः ॥८॥

एतदपि स्थितमेव यद्रागादयो भावा न जीवा इति ।

अर्थ—जो घृतका कुंभ है ऐसैं कहते भी, कुंभ है सो घृतमय नाहीं है, मृत्तिका हीका है। तौ तैसैं जीव है सो वर्णादिमान् है ऐसैं कहते भी, वर्णादिमान् नाहीं, ज्ञानघन ही है।

भावार्थ–जो पहले घटहीकूं मृत्तिकाका जाण्या नाहीं अर घृतके भरे घटकूं लोक घृतका घट कहते सुणैं, तहां यह ही जाण्या जो घट घृतहीका कहिये है, ताकूं समझावनेकूं मृत्तिकाका घट जाननेवाला भी घृतका घट कह करि समझावे है। तैसैं ज्ञानस्वरूप आत्माकूं जानैं जान्या नाहीं, अर वर्णादिकके संबंधरूप ही जीवकूं जानै, ताकै समझावनेकूं सूत्रमैं भी कह्या है–जो यह वर्णादिमान् है सो जीव है ऐसा व्यवहार है, निश्चयतैं वर्णादिमान् पुद्गल है, जीव है नाहीं, जीव तो ज्ञानघन है ऐसा जानना। आगैं कहे हैं, जो वर्णादिकभाव जीव नाहीं है, तैसैं ही यह भी ठहरा ही, जो रागादिक भाव हैं ते भी जीव नाहीं हैं। गाथा–

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा ते णिच्चमचेदणा उत्ता ॥६८॥

मोहनकर्मण उदयात्तु वर्णितानि यानीमानि गुणस्थानानि ।
तानि कथं भवंति जीवा यानि नित्यमचेतनान्युक्तानि ॥६८॥

आत्मख्यातिः—मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि हि पौद्गलिकमोहकर्मप्रकृतिविपाकपूर्वकत्वे सति नित्यमचेतनत्वात् कारणानुविधायीनि कार्याणीति कृत्वा यवपूर्वका यवा यवा एवेति न्यायेन पुद्गल एव न तु जीवः। गुणस्थानानां नित्यमचेतनत्वं चागमाच्चैतन्यस्वभावव्याप्तस्यात्मनोतिरिक्तत्वेन विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वाच्च प्रसाध्यं। एवं रागद्वेषमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मवर्गवर्गणास्पर्द्धकाध्यात्मस्थानानुभागस्थानयोगस्थानबंधस्थानोदयस्थानमार्गणास्थानस्थितिबंधस्थानसंक्लेशस्थानविशुद्धिस्थानसंयमलब्धिस्थानान्यपि पुद्गलपूर्वकत्वे सति नित्यमचेतनत्वात्पुद्गल एव न तु जीव इति स्वयमायातं। ततो रागादयो भावा न जीव इति सिद्धं। तर्हि को जीव इति चेत्?

१३६

अर्थ—जे ए गुणस्थान हैं ते मोहकर्मके उदयतैं होय हैं, ऐसैं सर्वज्ञके आगममें वर्णन किये हैं, ते जीव कैसैं होय ? नाहीं होय, जातैं ए नित्य अचेतन कहे हैं।

टीका—जे ए मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान हैं ते पुद्गलरूप जो मोहकर्मकी प्रकृति ताका उदय-पूर्वक होतैं संतैं नित्य ही अचेतन हैं जातैं जैसा कारण होय ताहीका अनुसारी कार्य होय, जैसैं यवपूर्वक यव होय हैं, ते यव ही हैं। इस न्यायकरि ते पुद्गल ही हैं, जीव नाहीं हैं। इहां गुणस्थाननिके नित्य अचेतनपणा आगमतैं सिद्ध है अर चैतन्य स्वभावकरि व्याप्त जो आत्मा तातैं भिन्नपणाकरि भेद ज्ञानी पुरुषनिकरि स्वयं प्राप्य है, इस हेतुतैं साधना। चैतन्यमात्र आत्माके अनुभवतैं ए बाह्य हैं, तातैं अचेतन ही हैं। ऐसैं ही राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय, कर्म, नोकर्म, वर्गवर्गणा, स्पर्द्धक, अध्यात्मस्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बंधस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबंधस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, संयमलब्धिस्थान ए सर्व ही पुद्गलकर्मपूर्वक होते संते नित्य अचेतनपणातैं पुद्गल ही हैं, जीव नाहीं है। ऐसा स्वयं आपै आप आया, तातैं रागादिकभाव हैं ते जीव नाहीं हैं ऐसा सिद्ध भया।

भावार्थ—पुद्गलकर्मके उदयके निमित्ततैं चैतन्यके विकार भये ते भी पुद्गल ही हैं, जातैं शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमैं तौ चैतन्य अभेद है अर याके परिणाम भी स्वाभाविक शुद्धज्ञानदर्शन हैं, तातैं जे परनिमित्ततैं विकार भये ते तौ चैतन्य सारिखे दीखे हैं, तौऊ चैतन्यकी सर्व अवस्थामैं व्यापक नाहीं, तातैं चैतन्यशून्य जड हैं, ऐसैं जड है सो पुद्गल है ऐसा निश्चय है। आगैं पूछे है, जो वर्णादिक अर रागादिक जीव नाहीं तौ जीव कौन है ? ताका उत्तररूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्। जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥६॥

अर्थ—जीव है सो यह चैतन्य है, सो यह आपै आप अतिशयकरि चमत्काररूप प्रकाशमान है। कैसा है ? अनादि है, काहू कालविषैं नवीन नाहीं उपजा है। बहुरि अनंत है, जाका काहू काल-

विषैं विनाश नाहीं है। अचल है, चैतन्यपणातैं अन्यरूप चलाचल कबहू न होय है। बहुरि स्वसंवेद्य है, आपहीकरि जान्या जाय है। बहुरि स्फुट कहिये प्रगट है, छिप्या नाहीं है। आगैं दूसरा लक्षणका अव्याप्ति अतिव्याप्ति दूषण दूरि करनेकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा व्यक्तं व्यंजितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालंब्यतां ॥१०॥

अर्थ–जो जीवका लक्षण अमूर्तिकपणा कहिये, तो अजीव पदार्थ दोय प्रकार है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ए तौ वर्णादिकभावरहित हैं, अर पुद्गल है सो वर्णादिसहित है। तातैं अमूर्तिकपणाकूं ग्रहणकरि लोक जीवका यथार्थ स्वरूपकूं नाहीं देखे, यामैं अतिव्याप्तिदूषण आवै। बहुरि वर्णादिकमैं रागादिक भी आय गये, ते रागादिक जीवका लक्षण कहिये, तौ तिनिकी व्याप्ति पुद्गलहीतैं है, जीवकी सर्व अवस्थामैं व्याप्ति नाहीं। तातैं अव्याप्तिदूषण आवै। ऐसैं भेदज्ञानीपुरुष आलोचना करि परीक्षा करि अतिव्याप्ति अव्याप्ति दूषणतैं रहित चेतनपणा लक्षण कह्या है, सो भलैप्रकार योग्य है। प्रगट जीवका यथार्थस्वरूप जानैं व्यक्त किया है। बहुरि कैसा है? जीवतैं कबहू चलाचल नाहीं है, सदा विद्यमान रहे है। सो जगत इसही लक्षणकूं अवलंबो, याहीतैं यथार्थ जीवका ग्रहण होय है। आगैं जो ऐसा लक्षणकरि जीव प्रगट है, सो तौऊ अज्ञानी लोककै याका अज्ञान कैसा रहे है? ताका आचार्य आश्चर्य तथा खेद सहित वचन कहे हैं।

वसन्ततिलकं छन्दः

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं ज्ञानी जनोनुभवति स्वयमुल्लसन्तम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोयं मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ॥११॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्तलक्षणतैं जीवतैं अजीव भिन्न है, सो ज्ञानीजन है सो याकूं आपै आप

प्रगट उघडता अनुभवन करे है। तौऊ अज्ञानीजनकै यह अमर्यादरूप मोह अज्ञान प्रगट फैलता संता कैसैं अतिशयकरि नृत्य करे है ! हमारै वडा आश्चर्य है तथा खेद है !! फेरि याका प्रतिषेध करे है। जो मोह नृत्य करे है, तौ करौ तथापि ऐसा है—

वसन्ततिलकच्छन्द:

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः ।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥१२॥

अर्थ—यह अनादिकालका वडा अविवेकका नृत्य है तिसविषैं वर्णादिमान् पुद्गल ही नृत्य करे है, अन्य कोई नाहीं है। अभेदज्ञानमैं पुद्गल ही अनेकप्रकार दीखे है, किछू जीव तौ अनेकप्रकार है नाहीं। यह जीव है सो तौ रागादिक जे पुद्गलतैं भये विकार तिनितैं विरुद्ध विलक्षण शुद्ध चैतन्य धातुमय मूर्ति है।

भावार्थ—रागादि चिद्विकारकूं देखि ऐसा भ्रम न करना, जो एभी चैतन्य ही हैं, जातैं चैतन्यकी सर्व अवस्थामैं व्यापै, तौ चैतन्यके कहिये। सो ऐसैं हैं नाहीं, मोक्ष अवस्थामैं इनिका अभाव है। तथा इनिका अनुभव भी आकुलतामय दुःखरूप है। चैतन्यका अनुभव निराकुल है, सोही जीवका स्वभाव है ऐसैं जानना। आगैं भेदज्ञानकी प्रवृत्तिपूर्वक यह ज्ञाताद्रव्य आप प्रगट होय है, ऐसैं महिमा करि अधिकार पूरण करे हैं, ताका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्द:

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकशद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या ज्ञातृद्रव्यं स्वमतिरभसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥१३॥

इति जीवाजीवौ पृथग्भूत्वा निष्क्रांतौ—

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ प्रथमोंकः ।

अर्थ—याप्रकार ज्ञानरूप करोतकी कलनाका पाटन कहिये बारंवार अभ्यास करना, ताकूं

न्चायकरि जीव अर अजीव दोऊ प्रगटपणैं जेते न्यारे न भये, तेतैं यह ज्ञातृद्रव्य आत्मा है सो समस्त पदार्थनिविषैं व्याप्यकरि अर प्रगट विकासरूप व्यक्त होती जो चैतन्यमात्र शक्ति ताकरि आपैआप अतिवेगतैं अतिशयकरि प्रगट होता भया।

भावार्थ—जीव अजीव दोऊ अनादितैं संयोगरूप हैं। सो अज्ञानतैं एकसे दीखे हैं। तहां भेदज्ञानके अभ्यासकरि जेते प्रगट न्यारे न भये, जीव कर्मनितैं छूटि मोक्ष प्राप्त न भया, तेतैं यह जीव ज्ञातृद्रव्य है, सो अपनी ज्ञानशक्तिकरि समस्त वस्तूकूं जानिकरि अतिवेगतैं आप प्रगट भया। इहां तात्पर्य यहै, जो सम्यग्दृष्टि भये पीछैं जेतैं केवलज्ञान न उपजे है, तेतैं तौ सर्वज्ञके आगमतैं भया श्रुतज्ञान ताकरि, समस्त वस्तूका संक्षेप तथा विस्तारकरि परोक्षज्ञान हो है, तिस ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव होय है, सोही याका प्रगट होना है। बहुरि जब घातिकर्मका नाशतैं केवलज्ञान उपजे है, तब समस्त वस्तूकूं साक्षात् प्रत्यक्ष जाने है। ऐसैं ज्ञानस्वरूप आत्माकूं साक्षात् अनुभवे है, सोही याका प्रगट होना है। ऐसैं मोक्ष भये पहलेही आत्मा प्रकाशमान होहै, यह भी जीव अजीवका न्यारा होनेका प्रकार है। ऐसैं जीव अजीवका पहला अधिकार पूर्ण भया।

तहां टीकाकार पहलै रंगभूमिका स्थल न्यारा कहि पीछै कही थी, जो नृत्यके अखाडेमे जीव अजीव दोऊ एक प्रवेश करे हैं, दोऊ एकपणाका स्वांग रचा है। तहां भेदज्ञानी सम्यग्दृष्टिपुरुष अपने सम्यग्ज्ञानतैं दोऊकूं लक्षणभेदतैं परीक्षाकरि दोय जाणि लिये, तब स्वांग होय चुक्या, दोऊ न्यारे न्यारे होय अखाडामैंसूं बाहिर भये, ऐसा अलंकारकरि वर्णन किया।

ऐसैं इस समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं पहला जीवाजीवाधिकार पूर्ण भया।

जीव अजीव अनादि संयोग मिलै लखि मूढ न आतम पावैं।
सम्यक् भेद विग्यान भये भिन्न गहै निजभाव सुदावैं ॥
श्रीगुरुके उपदेश सुनै रु भलै दिन पाय अग्यान गमावैं।
ते जगमांहि महंत कहाय वसैं शिव जाय सुखी निति थावैं ॥१॥

अथ कर्तृकर्माधिकारः।

दोहा—कर्ताकर्मविभावकूं मेटि ज्ञानमय होय।
कर्म नाशि शिवमें वने तिन्हें नमूं मद खोय ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ जीवाजीवावेव कर्तृकर्मवेषेण प्रविशतः।

अब टीकाकारके वचन हैं—जो जीव अजीव दोऊ एक कर्ताकर्मका वेष करी प्रवेश करै हैं। जेसैं दोय पुरुष आपसमें किछू एक स्वांग करी, नृत्यके आखाडामें प्रवेश करैं, तैसें इहां अलंकार जानना। तहां प्रथम ही तिस स्वांगकूं ज्ञान है सो यथार्थ जानी ले है, ताकी महिमा करता संता काव्य पढे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिम्।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं साक्षात्कुर्वन्निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वम् ॥१॥

अर्थ—ज्ञान ज्योति है सो प्रगट स्फुरायमान हो है। कहा करता संता? अज्ञानी जीवनिके ऐसी कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है, जो इस लोकविषें मैं चेतन्यस्वरूप आत्मा हूं सो तौ एक कर्ता हूं वहुरि ए क्रोधादिक भाव हैं ते मेरे कर्म हैं, सो ऐसा कर्ता कर्मकी प्रवृत्तिकूं साक्षात् यह ज्ञान शमन करता संता है मेटता है। कैसा है ज्ञानज्योति? उत्कृष्ट, उदात्त है काहूके आधीन नाहीं है। वहुरि कैसा है? अत्यंत धीर है, काहू प्रकारकरि आकुलतारूप नाहीं है। वहुरि कैसा है? विना परके सहाय न्यारे न्यारे द्रव्यकूं प्रतिभासनेका जाका स्वभाव है, याहीतें समस्त लोकालोककूं साक्षात् प्रत्यक्ष करता है जानता है।

भावार्थ—ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा है सो परद्रव्यका अर परभावनिका कर्ताकर्मपणाका अज्ञानकूं दूरि करि आप प्रगट प्रकाशमान हो है। आगें कहे हैं—जो यह जीव जेतें आस्रवके अर

आत्माके विशेषकूं नाहीं जानै, तेतैं अज्ञानी हुवा आस्रवनिकेविषैं आप लीन हुवा कर्मनिका बंध करे है। गाथा—

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्णंपि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥१॥
कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं ॥२॥

यावन्न वेत्ति विशेषांतरं त्वात्मास्रवयोर्द्वयोरपि ।
अज्ञानी तावत्स क्रोधादिषु वर्त्तते जीवः ॥१॥
क्रोधादिसु वर्त्तमानस्य तस्य कर्मणः संचयो भवति ।
जीवस्यैवं बंधो भणितः खलु सर्वदर्शिभिः ॥२॥

आत्मख्यातिः—यथायमात्मा तादात्म्यसिद्धसंबंधयोरात्मज्ञानयोरविशेषाद्भेदमपश्यन्नविशंकमात्मतया ज्ञाने वर्त्तते तत्र वर्त्तमानश्च ज्ञानक्रियायाः स्वभावभूतत्वेनाप्रतिषिद्धत्वाज्जानाति तथा संयोगसिद्धसंबंधयोरप्यात्मक्रोधाद्यास्रवयोः स्वयमज्ञानेन विशेषमजानन् यावद् भेदं न पश्यति तावदशंकमात्मतया क्रोधादौ वर्त्तते। तत्र वर्तमानश्च क्रोधादिक्रियाणां परभावभूतत्वात्प्रतिषिद्धत्वेपि स्वभावभूतत्वाध्यासात्क्रुध्यति रज्यते मुह्यति चेति। तदत्र योयमात्मा स्वयमज्ञानभवने ज्ञानभवनमात्रसहजोदासीनावस्थात्यागेन व्याप्रियमाणः प्रतिभाति स कर्त्ता। यत्तु ज्ञानभवनव्याप्रियमाणत्वेभ्यो भिन्नं क्रियमाणत्वेनांतरुत्प्लवमानं प्रतिभाति क्रोधादि तत्कर्म। एवमियमनादिरज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिः। एवमस्यात्मनः स्वयमज्ञानात्कर्तृकर्मभावेन क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तमेव क्रोधादिनिवृत्तिरूपं परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य स्वयमेव परिणममानं पौद्गलिकं कर्म संचयमुपयाति। एवं जीवपुद्गलयोः परस्परावगाहलक्षणसंबंधात्मा बंधः सिद्ध्येत्। स चानेकात्मकैकसंतानत्वेन निरस्तेतरेतराश्रयदोषः कर्तृकर्मप्रवृत्तिनिमित्तस्याज्ञानस्य निमित्तं। कदास्याः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तिरिति चेत्।

अर्थ—यह जीव जेतैं आत्माके अर आस्रवके विशेष अंतर कहिये दोऊनिका भिन्न लक्षण

नहीं जाने है, तातैं अज्ञानी भया संता क्रोधादिक आस्रवनिविषैं प्रवर्तें है। बहुरि क्रोधादिकविषैं वर्ततेकै ताकै कर्मनिका संचय होय है। ऐसैं या जीवकै सर्वज्ञदेवनिकरि कर्मका बन्ध कह्या है।

टीका—यह आत्मा है, सो आपके अर ज्ञानके तादात्म्य सिद्ध संबंध है, यातैं आपविषैं अर ज्ञानविषैं विशेष नाहीं, यातैं भेद नाहीं देखता संता निःशंक ज्ञानहीविषैं आत्मपणाकरि प्रवर्तें है। तहां प्रवर्तता संताकै ज्ञानकी क्रियारूप प्रवृत्तिकै स्वभावभूतपणा है, परनिमित्ततैं न भई है, तातैं याका प्रतिषेध नाहीं। तातैं तिस ज्ञानक्रियातैं जाने है, यह विभावपरिणति नाहीं है। सो जैसैं ज्ञानक्रियारूप परिणमे है तैसैं ही संयोगसिद्ध सम्बन्धरूप जे आत्मा अर क्रोधादिक आस्रव, तिनिविषैं भी अपने अज्ञानभावकरि विशेष नाहीं जानता संता, जेतै भेद नाहीं देखै, तेतैं निःशंकपणे क्रोधादिविषैं आत्मपणाकरि प्रवर्तें है। तहां वर्तता संताकै क्रोधादि क्रिया है सो परभावतैं भई है तातैं ते प्रतिषेध स्वरूप हैं तोऊ तिनि विषैं स्वभावतैं भईका याकै निश्चय है, तातैं आप क्रोधरूप परिणमे है, रागरूप परिणमे है, मोहरूप परिणमे है। सो इहां जो यह आत्मा अपने अज्ञानभावकरि ज्ञानभवनमात्र जो स्वभावतैं भई उदासीन ज्ञाता द्रष्टा मात्र अवस्था ताका त्याग करि क्रोधादि व्यापाररूप होय परिणमता संता प्रतिभासे है, प्रवर्तें है, सो कर्मनिका कर्ता होय है। बहुरि जो ज्ञानभवन व्यापाररूप प्रवर्तनेतैं भिन्न किया हुआ अंतरंगविषैं उपजता क्रोधादिक प्रतिभासमें आवे हैं, सो तिस कर्ताके कर्म हैं। ऐसैं यह अनादिकालतैं भई या आत्माकी कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है। ऐसैं अपने अज्ञानभावतैं कर्ताकर्मभावकरि क्रोधादिकविषैं वर्तमान जो यह आत्मा, ताकै तिस क्रोधादिककी प्रवृत्तिरूप परिणामकूं निमित्तमात्र करि अर आप अपने भावनिकरि परिणमता जो पुद्गलमय कर्म, सो संचयकूं प्राप्त होय है। ऐसैं जीवकै अर पुद्गलकै परस्पर अवगाहलक्षण संबंधस्वरूप बंध सिद्ध होय है। सोही बंध अनेक वस्तुका एकरूप होय सन्तान चल्या, तिस सन्तानपणाकरि दूरि भया है इतरेतराश्रय दोष जामैं ऐसा है, सोही बंध कर्ता कर्मकी प्रवृत्तिका निमित्त जो अज्ञान ताका निमित्त है।

भावार्थ—यह आत्मा जैसैं अपना ज्ञानस्वभावरूप परिणमै, तैसैं क्रोधादिरूप परिणमै, ज्ञानमैं अर क्रोधादिकमैं भेद न जानै तेतैं याकै कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है। क्रोधादिरूप परिणमता तौ आप कर्ता है, अर ते क्रोधादिक याके कर्म हैं। बहुरि अनादि अज्ञानतैं तौ कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है। अर कर्ताकर्मकी प्रवृत्तितैं बंध है। अर तिस बंधका संतानतैं अज्ञान है ऐसा अनादि सन्तान है। ऐसैं यामैं इतरेतराश्रय दोष भी नाहीं है। ऐसैं जेतैं आत्मा क्रोधादिक कर्मका कर्ता होय परिणमै है, तेतैं कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है, तेतैं ही कर्मका बंध होय है। आगैं पूछे है—याकै तिस कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिका अभाव कोन कालमैं होय है? ऐसै पूछैं उत्तर कहे हैं। गाथा—

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥३॥

यदाऽनेन जीवेनात्मनः आस्रवाणां च तथैव।
ज्ञातं भवति विशेषांतरं तु तदा न बंधस्तस्य ॥३॥

आत्मख्यातिः—इह किल स्वभावमात्रं वस्तु, स्वस्य भवनं तु स्वभावः। तेन ज्ञानस्य भवनं खल्वात्मा। क्रोधादेर्भवनं क्रोधादिः। अथ ज्ञानस्य यद्भवनं तत्र न क्रोधादेरपि भवनं यतो यथा ज्ञानभवने ज्ञानं भवद्विभाव्यते न तथा क्रोधादिरपि। यत्तु क्रोधादेर्भवनं तत्र न ज्ञानस्यापि भवनं यतो क्रोधादिभवने क्रोधादयो भवंतो विभाव्यंते न तथा ज्ञानमपि इत्यात्मनः क्रोधादीनां च न खल्वेकवस्तुत्वं इत्येवमात्मात्मास्रवयोर्विशेषदर्शनेन यदा भेदं जानाति तदास्यानादिरप्यज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिर्निवर्त्तते तन्निवृत्तावज्ञाननिमित्तं पुद्गलद्रव्यकर्मबंधोपि निवर्त्तते। तथा सति ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोधः सिद्ध्येत्। कथं ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोध इति चेत्।

अर्थ—जिसकाल इस जीवकरि आत्माका अर आस्रवनिका विशेषांतर कहिये भिन्न लक्षणपणा जाण्या होय, तिसही काल इसकै बंध नाहीं है।

टीका—इस लोकविषैं वस्तु है सो अपने स्वभावमात्र है। बहुरि अपना भावका होना सो स्वभाव कहिये। तिस कारणकरि यह निश्चय है, जो ज्ञानका होना परिणमना सो आत्मा है।

बहुरि क्रोधादिकका होना परिणमना सो क्रोधादिक है। ऐसैं होते जो ज्ञानका परिणमना है सो क्रोधादिकका परिणमना नाहीं है। जातैं जैसैं ज्ञान होतैं ज्ञान ही होता भाइये है, तैसैं क्रोधादिक नाहीं भाइये हैं। बहुरि जो क्रोधादिकका होना परिणमना है सो ज्ञानका परिणमना नाहीं है। जातै जैसें क्रोधादिक होतें क्रोधादिक होतैं ही भाइये हैं, तैसैं ज्ञान भी होता नाहीं भाइये है। ऐसैं क्रोधादिकके अर ज्ञानके निश्चयतैं एक वस्तुपणा नाहीं है। ऐसैं या प्रकार आत्माके अर आस्रवके विशेष देखनेकरि जिसकाल भेद जानै है, तिस काल इस आत्माके अनादि कालतैं भई जो परविषैं कर्त्ताकर्मकी प्रवृत्ति सो निवृत्त होय है। बहुरि तिसकी निवृत्ति होतैं अज्ञानके निमित्ततैं होता जो पुद्गल द्रव्यकर्मका बंध सो भी निवृत्त होय है। तैसैं होतैं ज्ञानमात्रतैंहि बंधका निरोध सिद्ध होय है।

भावार्थ–क्रोधादिक अर ज्ञान न्यारे न्यारे वस्तु हैं, ज्ञानमैं क्रोधादिक नाहीं, क्रोधादिकमैं ज्ञान नाहीं। ऐसा इनिका भेदज्ञान होय तब एकपणाका अज्ञान मिटै। तब कर्म का बंध भी न होय। ऐसैं ज्ञानहीतैं बंधका निरोध होय है। आगैं पूछे है, ज्ञानमात्रहीतैं बंधका निरोध कैसैं है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा–

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥४॥

ज्ञात्वा आस्रवाणामशुचित्वं च विपरीतभावं च।
दुःखस्य कारणानीति च ततो निवृत्तिं करोति जीवः ॥४॥

आत्मख्यातिः—जले जंबालवत्कलुषत्वेनोपलभ्यमानत्वादशुचयः खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेवातिनिर्मलचिन्मात्रत्वेनोपलंभकत्वादत्यंतं शुचिरेव। जडस्वभावत्वे सति परचेत्यत्वादन्यस्वभावाः खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेव विज्ञानघनस्वभावत्वे सति स्वयं चेतकत्वादनन्यस्वभाव एव। आकुलत्वोत्पादकत्वाद् दुःखस्य कारणानि खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेवानाकुलत्वस्वभावेनाकार्यकारणत्वाद् दुःखस्याकारणमेव। इत्येवं विशेषदर्शनेन यदै-

वायमात्मास्रवयोर्भेदं जानाति तदैव क्रोधादिभ्य आस्रवेभ्यो निवर्त्तते। तेभ्योऽनिवर्त्तमानस्य पारमार्थिकतद्भेदज्ञानासिद्धेः। ततः क्रोधाद्यास्रवनिवृत्त्यविनाभाविनो ज्ञानमात्रादेवाज्ञानजस्य पौद्गलिकस्य कर्मणो बंधनिरोधः सिद्ध्येत्। किं च यदिदमात्मास्रवयोर्भेदज्ञानं तत्किमज्ञानं किं वा ज्ञानं ? यद्यज्ञानं तदा तदभेदज्ञानान्न तस्य विशेषः। ज्ञानं चेत् किमास्रवेषु प्रवृत्तं किंवास्रवेभ्यो निवृत्तं। आस्रवेषु प्रवृत्तं चेत्तदपि तदभेदज्ञानान्न तस्य विशेषः। आस्रवेषु निवृत्तं चेत्तर्हि कथं न ज्ञानादेव बंधनिरोधः इति निरस्तो ज्ञानांशः क्रियानयः। यत्त्वात्मास्रवयोर्भेदज्ञानमपि नास्रवेभ्यो निवृत्तं भवति तज्ज्ञानमेव न भवतीति ज्ञानांशो ज्ञाननयोपि निरस्तः।

अर्थ—आस्रवनिका अशुचिपणा बहुरि विपरीतपणा बहुरि ए दुःखके कारण हैं ऐसैं जानि करि यह जीव तिनितैं निवृत्ति करे हैं।

टीका—ए आस्रव हैं ते अशुचि मलिन हैं, जातैं जैसैं जलविषैं जंबाल कहिये सेवाल है सो मलिन है, जलकूं मलिन दिखावे है। तेसैं ए आस्रव भी कलुषपणा जो मलिनपणा ताकरि प्राप्यमाण हैं, आप मलिन हैं, आत्माकूं मलिन अनुभवन करावे हैं। बहुरि आत्मा है सो भगवान् है ज्ञानवान् है, सो सदा अतिनिर्मल जो चैतन्य भाव ताकरि ताका ज्ञायक है। तातैं अत्यंत शुचि है पवित्र है उज्वल है। बहुरि आस्रव हैं ते आत्मातैं अन्य स्वभाव हैं, ज्ञेय हैं, जातैं जडस्वभावपणाके होतैं परकरि जानने योग्य हैं। जड होय ते आपकूं न जाने तिनिकूं पैलाही जानै। अर आत्मा है सो सदा ही विज्ञान घन स्वभाव है तातैं आप चेतक है, ज्ञाता है, आस्रवनितैं अन्यस्वभाव है, आपकूं अर परकूं जानै है। बहुरि आस्रव हैं ते दुःखके कारण हैं, तातैं ए आत्माके आकुलताके उपजावनहारे हैं। बहुरि भगवान् आत्मा है सो सदाही निराकुलस्वभाव है, तातैं काहूका कार्य नाहीं है तथा काहूका कारण भी नाहीं है, तातैं दुःखका कारण नाहीं है। ऐसे आत्माके अर आस्रवके तीन विशेषणनिकरि भेद देखनेकरि जिसकाल भेद जान्या तिसही काल क्रोधादिक आस्रवनितैं निवृत्त होय हैं। बहुरि तिनि आस्रवनितैं निवर्तमान न होय ताकै पारमार्थिक सांची भेदज्ञानकी सिद्धि न होय है। तातैं ऐसैं है जो क्रोधादिक आस्रवनिकी निवृत्तितैं अविनाभावी जो ज्ञान तिसमात्रतैं ही अज्ञानतैं भया जो पौद्गलिककर्मका बंध, ताका निरोध सिद्ध होय है। इहां

अहमेकः खलु शुद्धश्च निर्ममतः ज्ञानदर्शनसमग्रः ।
तस्मिन् स्थितस्तच्चित्तः सर्वानेतान् क्षयं नयामि ॥५॥

आत्मख्यातिः—अहमयमात्मा प्रत्यक्षमक्षुण्णमनंतं चिन्मात्रं ज्योतिरनाद्यनंतनित्योदितविज्ञानघनस्वभावभावत्वादेकः । सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः । पुद्गलस्वामिकस्य क्रोधादिभाववैश्वरूपस्य स्वस्य स्वामित्वेन नित्यमेवापरिणमनान्निर्ममतः चिन्मात्रस्य महसो वस्तुस्वभावत एव सामान्यविशेषाभ्यां सकलत्वाद् ज्ञानदर्शनसमग्रः । गगनादिवत्पारमार्थिको वस्तुविशेषोस्मि तदहमधुनास्मिन्नेवात्मनि निखिलपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्या निश्चलमवतिष्ठमानः सकलपरद्रव्यनिमित्तकविशेषचेतनचंचलकल्लोलनिरोधेनेममेव चेतयमानः स्वाज्ञानेनात्मन्युत्प्लवमानानेतान् भावानखिलानेव क्षपयामीत्यात्मनि निश्चित्य चिरसंगृहीतमुक्तपोतपात्रः समुद्रावर्त्त इव झगित्येवोद्वांतसमस्तविकल्पोऽकल्पितमचलितममलमात्मानमालंबमानो विज्ञानघनभूतः खल्वयमात्मास्रवेभ्यो निवर्त्तते । कथं ज्ञानास्रवनिवृत्त्योः समकालत्वमिति चेत् ?

अर्थ—ज्ञानी विचारे है, जो मैं निश्चयतैं एक हूं, शुद्ध हूं, निर्ममत हूं, ज्ञानदर्शनकरि पूर्ण हूं । ऐसें स्वभावमें तिष्ठ्या तिस ही चैतन्य अनुभवमें लीन भया । ए क्रोधादिक आस्रव हैं तिनि सर्वनिकूं क्षयकूं प्राप्त करूं हूं ।

टीका—यह मैं आत्मा हौं, सो प्रत्यक्ष अखंड अनंत चैतन्यमात्र ज्योति हौं । कैसा हौं ? अनादि अनंत नित्य उदयरूप विज्ञान घनस्वभाव भावपणातैं तौ एक हौं । बहुरि समस्त कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वरूप जो कारकनिका समूह, ताकी प्रक्रिया, ताकरि पार उतर्‌या दूरिवर्ति निर्मल चैतन्य अनुभूतिमात्रपणातैं शुद्ध हौं । बहुरि पुद्गलद्रव्य है स्वामी जिनिका ऐसा जो क्रोधादिभाव, तिनिका विश्वरूपपणा समस्तपणा ताका स्वामीपणाकरि सदा ही आपकै नाहीं परिणमनेतैं तिनितैं निर्ममत हौं । बहुरि वस्तुका स्वभाव सामान्य विशेषस्वरूप है । तातैं चैतन्यमात्र तेजःपुंज है । सो भी वस्तु है । तातैं सामान्य विशेषस्वरूप जो ज्ञानदर्शन तिनिकरि पूर्ण हौं । ऐसा आकाशादि द्रव्यकी ज्यौं परमार्थस्वरूप वस्तु विशेष हौं । तातैं मैं इस ही आत्म-

स्वभावविषैं समस्त परद्रव्यतैं निवृत्तिकरि, निश्चल तिष्ठता संता समस्त परद्रव्यके निमित्ततैं होती जे विशेषरूप चैतन्यविषैं चंचल कल्लोल, तिसके निरोधकरि, इस चैतन्यस्वरूपकूं ही अनुभवता संता अपने ही अज्ञानकरि आत्माविषैं उपजते जे ए क्रोधादिक भाव, तिनि समस्तनिकूं क्षयकूं प्राप्त करूं हौं । ऐसा आत्माविषैं निश्चय करि । अर जैसैं घणे कालका ग्रह्या था जो जिहाज, सो अब छोड्या जानैं ऐसा समुद्रका आवर्तकी ज्यौं शीघ्र ही उद्भ्रांत कहिये दूरि डारे है समस्त विकल्प जानैं, ऐसा निर्विकल्प अचलित निर्मल आत्माकूं अवलम्बन करता संता, विज्ञानघन भया, यहु आत्मा आस्रवनितैं निवृत्त होय है ।

भावार्थ--शुद्धनयकरि ज्ञानी आत्माका ऐसा निश्चय किया, जो मैं एक हौं, शुद्ध हौं, परद्रव्यतैं निर्ममत हौं, ज्ञानदर्शनकरि पूर्ण वस्तु हौं । सो जब ऐसा अपना स्वरूपविषैं तिष्ठैं तिस ही का अनुभवनरूप होय, तब क्रोधादिक आश्रव क्षय होय जाय । जैसैं समुद्रका आवर्त बहुत कालतैं जिहाजकूं पकडि राख्या, पीछैं कोई कालमैं आवर्त पलटै, तब जिहाजकूं छोडै, तैसैं आत्मा आश्रवनिकूं छोडे है । आगैं पूछे है--ज्ञान होनेकै अर आस्रवनिकी निवृत्तिके समकाल कैसा है? ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं ।

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफलाणि य णादूण णिवत्तदे तेसु ॥६॥

जीवनिबद्धा एते अध्रुवा अनित्यास्तथा अशरणाश्च ।
दुःखानि दुःखफलानि च ज्ञात्वा निवर्तते तेभ्यः ॥६॥

आत्मख्यातिः—जतुपादपवद्वध्यघातकस्वभावत्वाज्जीवनिबद्धाः खल्वास्रवाः, न पुनरविरुद्धस्वभावत्वाभावाज्जीव एव। अपस्माररयवद्वर्द्धमानहीयमानत्वादध्रुवाः खल्वास्रवाः ध्रुवश्चिन्मात्रो जीव एव । शीतदाहज्वरावेशवत् क्रमेणोज्जृंभमाणत्वादनित्याः खल्वास्रवाः, नित्यो विज्ञानघनस्वभावो जीव एव। बीजनिर्मोक्षक्षणक्षीयमाणदारुणस्मरसंस्कारवत् त्रातुमशक्यत्वादशरणाः खल्वास्रवाः, सशरणः स्वयं गुप्तः सहजचिच्छक्तिर्जीव एव। नित्यमेवाकुलस्वभावत्वाद् दुःखानि

खल्वास्रवाः, अदुःखं नित्यमेवानाकुलस्वभावो जीव एव। आयत्यामाकुलत्वोत्पादकस्य पुद्गलपरिणामस्य हेतुत्वाद् दुःखफलाः खल्वास्रवाः, अदुःखफलः सकलस्यापि पुद्गलपरिणामस्याहेतुत्वाज्जीव एव। इति विकल्पानंतरमेव शिथिलितकर्मविपाको विघटितघनौघघटनो दिगाभोग इव निरर्गलप्रसरः सहजविजृंभमाणचिच्छक्तितया यथा यथा विज्ञानघनस्वभावो भवति तथा तथास्रवेभ्यो निवर्त्तते। यथा यथास्रवेभ्यश्च निवर्त्तते तथा तथा विज्ञानघनस्वभावो भवतीति। तावद्विज्ञानघनस्वभावो भवति यावत्सम्यगास्रवेभ्यो निवर्त्तते। तावदास्रवेभ्यश्च निवर्त्तते यावत्सम्यग्विज्ञानघनस्वभावो भवतीति ज्ञानास्रवनिवृत्योः समकालत्वं।

अर्थ--ए आस्रव हैं ते जीवकरि सहित निबद्ध हैं, अध्रुव हैं, अनित्य हैं तथा अशरण हैं, बहुरि दुःखरूप हैं दुःख ही जिनिका फल है ऐसैं ज्ञानी जानिकरि तिनितैं निवृत्ति करे है।

टीका---ए आस्रव हैं ते लाक्षवृक्षकी ज्यौं वध्यघातक स्वभाव हैं। जैसैं पीपल आदि वृक्षकै लाख उपजे है, ताकरि वृक्ष बंधें पीछे तिसके निमित्ततैं वृक्षका घात होय, ऐसैं वध्यघातकस्वभावरूप जीवसहित निबद्ध हैं बंधे हैं अर विरुद्धस्वभाव हैं, तातैं जीव ही नाहीं हैं। बहुरि आस्रव हैं ते मृगीका रोगके वेगकी ज्यौं वधता जाय फेरि घटता जाय ऐसैं अध्रुव हैं। बहुरि जीव है सो चैतन्यभावमात्र है, सो ध्रुव है। बहुरि आस्रव हैं ते शीतदाह ज्वरका स्वभावकी ज्यौं अनुक्रमतैं उपजते हैं तातैं अनित्य हैं। बहुरि जीव है सो विज्ञानघन स्वभाव है तातैं नित्य है। बहुरि आस्रव हैं ते अशरण हैं, जातैं जैसैं काम सेवनमैं वीर्यका बंध छूटै तिस ही काल दारुण कामका संस्कार है, सो क्षीण होय, काहूतैं राख्या न जाय, तैसैं उदयकाल आये पीछैं, आस्रव क्षरि ही जाय राखे न जाय हैं, तातैं शरणरहित हैं। बहुरि जीव है सो अपनी स्वाभाविक चिच्छक्तिरूप आप ही करि रक्षारूप है, तातैं शरणसहित है। बहुरि आस्रव हैं ते सदा ही आकुलता स्वभावलिये हैं, तातैं दुःखरूप हैं। बहुरि जीव है सो सदा ही निराकुलस्वभावरूप है, तातैं सुखरूप है। बहुरि आस्रव हैं ते आगामी कालमैं आकुलताका उपजावनहारा पुद्गलपरिणामके कारण हैं, तातैं ते दुःखफल स्वरूप हैं। बहुरि जीव है सो समस्त पुद्गलपरिणामका कारण नाहीं है तातैं दुःख फल-

स्वरूप नाहीं है । ऐसा आश्रवका अर जीवका भेदज्ञान भया तिसतैं लगता ही शिथिल भया है कर्मका उदय जाका अर जैसैं दिशाका मध्य वादलेकी रचनाका अभाव होय तब निर्मल होय जाय तैसैं अमर्याद फैलावरूप हुवा संता स्वभाव ही करि उदयमान भई जो चिच्छक्ति तिसपणाकरि जैसैं जैसैं विज्ञानघन स्वभाव होय है तैसैं तैसैं आस्रवनितैं निवृत्त होय है । बहुरि जैसैं जैसैं आस्रवनितैं निवृत्त होता जाय तैसैं तैसैं विज्ञानघन स्वभाव होता जाय ऐसैं तहां ताईं विज्ञानघन स्वभाव होय है—जेतैं सम्यक्प्रकार आस्रवनितैं निवृत्त होय है । बहुरि तहां ताईं आस्रवनितैं निवृत्त होय है—जहां ताईं सम्यग्विज्ञानघन स्वभाव होय है । ऐसैं ज्ञानकी अर आस्रवनिकी निवृत्तिकै समकालपणा है ।

भावार्थ—आस्रवनिका अर आत्माका कह्या तिस प्रकार भेद जानतैं ही जेता अंश जिस जिस प्रकार आस्रवनितैं निवृत्त होय है, तिस तिस प्रकार तेता अंश विज्ञानघन स्वभाव होता जाय । जब समस्त आस्रवनितैं निवृत्त होय तब संपूर्ण ज्ञानघनस्वभाव आत्मा होय है । ऐसैं आस्रवकी निवृत्तिकै अर ज्ञानकै एककाल होना जानना । इस आस्रवका अभाव अर संवरका होना गुणस्थाननिकी परिपाटीरूप तत्वार्थसूत्रकी टीका आदि सिद्धांतनिमैं वर्णन है तहांतैं जानना । इहां सामान्य प्रकरण है तातैं सामान्यकरि कह्या है । अर इहां विज्ञानघन स्वभाव होना कह्या, सो जहां ताईं मिथ्यात्व है तहां ताईं तौ ज्ञानकूं अज्ञान कहिये अर मिथ्यात्व गये पीछैं अज्ञानसंज्ञा नाहीं, विज्ञानसंज्ञा है । सो कर्मका क्षय तथा उपशमकी अपेक्षा ज्ञान हीनाधिक होय है । सो ज्यौं ज्यौं आस्रवकी निवृत्ति होय, त्यौं त्यौं ज्ञान वधता जाय ताकूं विज्ञान नाम कहिये हैं, थोरे ज्ञानकूं मिथ्यात्वविना अज्ञान न कहिये ऐसैं जानना । अब इसही अर्थका कलशरूप तथा अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परं ।

अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ॥३॥
कथमात्मा ज्ञानीभूतो लक्ष्यत इति चेत् ।

अर्थ—इहांतैं आगैं पुराणपुरुष जो आत्मा सो जगतका साक्षी भूत, ज्ञाता, द्रष्टा आपही ज्ञानी भया संता प्रकाशमान होय है। सो पूर्वैं कहाकरि कैसा भया संता सो कहे हैं। ऐसैं पहलै कह्या तिस विधानकरि, परद्रव्यतैं उत्कृष्ट सर्वप्रकार निवृत्तिकरि, अर विज्ञानघन स्वभावरूप जो केवल अपना आत्मा, ताही निःशंक आस्तिक्य भावरूप स्थिरीभूत करता संता, अज्ञानतैं भई थी जो कर्ता कर्मकी प्रवृत्ति, ताका अभ्यासतैं भया था जो क्लेश, तिसतैं निवृत्त भया संता प्रकाशमान होय है। आगैं पूछे हैं—ऐसा आत्मा ज्ञानी भया कैसैं लखिये पहचानिये ? ताके चिन्ह कहे चाहिये। ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं। गाथा—

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ।
ण करेदि एदमादा जो जाणादि सो हवदि णाणी ॥७॥

कर्मणश्च परिणामं नोकर्मणश्च तथैव परिणामं ।
न करोत्येनमात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥७॥

आत्मख्यातिः—यः खलु मोहरागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणांतरुत्प्लवमानं कर्मणः परिणामं स्पर्शरसगंधवर्णशब्दबंधसंस्थानस्थौल्यसौक्ष्म्यादिरूपेण वहिरुत्प्लवमानं नोकर्मणः परिणामं च समस्तमपि परमार्थतः पुद्गलपरिणामपुद्गलयोरेव घटमृत्तिकयोरिव व्याप्यव्यापकभावसद्भावात्पुद्गलद्रव्येण कर्त्रा स्वतंत्रव्यापकेन स्वयं व्याप्यमानत्वात्कर्मत्वेन क्रियमाणं पुद्गलपरिणामात्मनोर्घटकुंभकारयोरिव व्याप्यव्यापकभावाभावात् कर्तृकर्मत्वासिद्धौ न नाम करोत्यात्मा। किं तु परमार्थतः पुद्गलपरिणामज्ञानपुद्गलयोर्घटकुंभकारवद्व्याप्यव्यापकभावाभावात् कर्तृकर्मत्वासिद्धावात्मपरिणामात्मनोर्घटमृत्तिकयोरिव व्याप्यव्यापकभावसद्भावादात्मद्रव्येण कर्त्रा स्वतंत्रव्यापकेन स्वयं व्याप्यमानत्वात्पुद्गलपरिणामज्ञानं कर्मत्वेन कुर्वंतमात्मानं जानाति सोऽत्यंतविविक्तज्ञानीभूतो ज्ञानी स्यात्। न चैवं ज्ञातुः पुद्गलपरिणामो व्याप्यः पुद्गलात्मनोर्ज्ञेयज्ञायकसंबंधव्यवहारमात्रे सत्यपि पुद्गलपरिणामनिमित्तकस्य ज्ञानस्यैव ज्ञातुर्व्याप्यत्वात्।

अर्थ---जो इस कर्मके परिणामकूं बहुरि तैसैं ही नोकर्मके परिणामकूं आत्मा न करे है जातैं जो तिनि परिणामनिकूं जाने है सो ज्ञानी होय है।

टीका---जो निश्चयकरि मोह, राग, द्वेष, सुख, दुःख आदि रूपकरि अंतरंगविषैं उपजता, सो तो कर्मका परिणाम है। बहुरि, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, बंध, संस्थान, स्थौल्य, सूक्ष्म आदि रूपकरि बाहरि उपजता, सो नोकर्मका परिणाम है। सो ए समस्त ही परमार्थतैं पुद्गल-परिणामके अर पुद्गलके "जैसैं घटके अर मृत्तिकाके व्याप्यव्यापक भावके सद्भावतैं कर्ताकर्मपणा है" तैसैं पुद्गलद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होय कर्ता होयकरि किये हैं। अर ते आप अंतरंग व्याप्यरूप होय व्यापे हैं, तातैं पुद्गलके कर्म हैं। अर पुद्गलपरिणामकै अर आत्माकै "घटकुंभकारकै जैसा व्याप्यव्यापकभाव नाहीं है तैसा" व्याप्यव्यापकपणाका अभाव है, तातैं कर्ताकर्मपणाकी असिद्धि है, तातैं कर्मनोकर्मपरिणामकूं आत्मा नाहीं करे है। तहां यह विशेष है---जो परमार्थ तैं पुद्गलपरिणामका ज्ञानकै अर पुद्गलकै घट अर कुंभकारकी ज्यौं व्याप्यव्यापक भावका अभावतैं कर्त्ताकर्मपणाकी सिद्ध न होतैं, आत्मपरिणामकै अर आत्माकै घटमृत्तिकाकी ज्यौं व्याप्यव्यापक भावके सद्भावतैं आत्मद्रव्य जो कर्त्ता, ताकरि आप स्वतंत्र व्यापक होय करि, ज्ञान-नामा कर्म किया है। तातैं सो ज्ञान आपही आत्मातैं व्याप्यरूप होय कर्मरूप भया है। तातैं पुद्गलपरिणामकौ ज्ञानकूं कर्मपणाकरि कर्ता जो आत्मा ताहि आप जाने है। सो आत्मा पुद्गल-परिणामरूप कर्मनोकर्मतैं अत्यंत भिन्न ज्ञानी भया संता ज्ञानीही होय है, कर्त्ता न होय है। बहुरि ऐसैं होतैं ज्ञातापुरुषकै पुद्गलपरिणाम व्याप्यस्वरूप नाहीं है। जातैं पुद्गलकै अर आत्माकै ज्ञेयज्ञायक संबंध व्यवहारमात्रकरि होता संता भी पुद्गलपरिणाम है निमित्त जाकूं ऐसा पुद्गलपरिणामका ज्ञान सो ही ज्ञाताकै व्याप्य है, तातैं सो ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म है। अब इस ही अर्थका समर्थनका कलशरूपकाव्य है सो कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः ।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिंदंस्तमो ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥४॥

पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत् ।

अर्थ—व्याप्यव्यापकपणा है सो तदात्मा कहिये तत्स्वरूप ही होय ताकै होय, अतत्स्वरूपविषैं नाहीं होय है । बहुरि व्याप्यव्यापक भावका सम्भवविना कर्ताकर्मकी स्थिति कोन सी कुछ भी नाहीं ऐसा उदार विवेकरूप अर घस्मर कहिये समस्तकूं ग्रासीभूत करनेका जाका स्वभाव ऐसा जो ज्ञानस्वरूप तेज प्रकाश, ताका भारकरि अज्ञानरूप अंधकारकूं भेदता संता यह आत्मा ज्ञानी होय, तिस काल कर्तापणाकरि रहित भया सोभे है ।

भावार्थ—जो सर्व अवस्थामैं व्यापै सो तौ व्यापक, अर जे अवस्थाके विशेष ते व्याप्य । ऐसै होतैं द्रव्य तौ व्यापक हैं, अर पर्याय व्याप्य हैं । सो द्रव्यपर्याय अभेदरूप ही हैं । जो द्रव्यका आत्मा सो ही पर्यायका आत्मा, सो ऐसा व्याप्यव्यापकभाव तत्स्वरूपविषैं ही होय, अतत्स्वरूपविषैं नाहीं होय । तहां ऐसा सिद्ध होय है जो व्याप्यव्यापकभाव विना कर्ताकर्मभाव न होय ऐसैं जो जानै सो पुद्गलकै अर आत्माकै कर्ताकर्मभाव नाहीं जानै, तब ज्ञानी होय, कर्ताकर्मभावकरि रहित होय, ज्ञाता, द्रष्टा, जगतका साक्षीभूत होय है । आगैं पूछे हैं, जो जीव पुद्गलकूं जानै ताकै पुद्गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव होय है, कि नाहीं होय है ? ऐसैं पूछैं उत्तर कहे हैं । गाथा—

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई । तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छापी है ।

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण ।
धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उपज्जदि ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥८॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये ।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मानेकविधं ॥८॥

आत्मख्यातिः—यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं पुद्गलपरिणामं कर्म पुद्गलद्रव्येण स्वयमंतर्व्यापकत्वेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तं गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते च । ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य पुद्गलकर्म जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृकर्मभावः । स्वपरिणामं जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवति इति चेत् ।

कर्त्ता आत्मा भणितः न च कर्त्ता केन स उपायेन ।
धर्मादीन् परिणामान् यः जानाति स भवति ज्ञानी ॥

तात्पर्यवृत्तिः—कत्ता आदा भणिदो कर्त्तात्मा भणितः ण य कत्ता सो न च कर्त्ता भवति स आत्मा केण उवायेण केनाप्युपायेन नयविभागेन । केन नयविभागेनेति चेत् निश्चयेन अकर्त्ता व्यवहारेण कर्त्तेति । कान् धम्मादी परिणामे पुण्यपापादिकर्मजनितोपाधिपरिणामान् जो जाणदि सो हवदि णाणी ख्यातिपूजालाभादिसमस्तरागादिविकल्पोपाधिरहित समाधौ स्थित्वा यो जानाति स ज्ञानी भवति । इति निश्चयनयव्यवहाराभ्यामकर्तृत्वकथनरूपेण गाथा गता । अथ पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन स तादात्म्यसंबंधो नास्तीति निरूपयति ।

अर्थ—आत्माको कर्त्ता और अकर्ता दोनों कहा है जो इस नय विभागको जानता है सो ही ज्ञानी है अर्थात् आत्मा पुण्यपापादिका व्यवहारनयसे कर्ता है, करनेवाला है और निश्चयनयसे अकर्ता है नहीं करनेवाला है जो इस प्रकार जानकर ख्याति पूजा लाभादि रहित हो आत्माका अनुभव करता है वह ज्ञानी है ।

अर्थ—ज्ञानी है सो अनेक प्रकार पुद्गल द्रव्यके पर्यायरूप ताके कर्म हैं तिनिकूं जानता संता है तौऊ निश्चयकरि परद्रव्यके पर्यायनिविषैं तिनिस्वरूप परिणमे नाहीं है, वहुरि तिनीकूं ग्रहण नाहीं करे है, वहुरि तिनिविषैं नाहीं उपजे है।

टीका—जातैं यह ज्ञानी है सो पुद्गलका परिणामस्वरूप जो कर्म ताकूं जानता संता भी है। कैसा है पुद्गलकर्म ? सामान्यपणें कर्मका स्वरूप तीन प्रकार है। प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य। तहां प्राप्य कहिये जाकूं सिद्ध भयेकूं ग्रहण करिये सो वहुरि विकार्य कहिये वस्तूकी अवस्था पलटना विकाररूप होना सो। वहुरि निर्वर्त्य कहिये जो अवस्था पहले न थी सो उपजै सो। ऐसा कर्मका स्वरूप है सो पुद्गलका परिणाम तीनूं ही स्वरूपकरि पुद्गलद्रव्यके व्यापने योग्य है। सो पुद्गल-द्रव्य आप अंतर्व्यापक होय "आदि मध्य अंत" तीनूं भावनिविषैं व्याप्यकरि ताकूं ग्रहण करता है, वहुरि तिसरूप परिणमता है, तिसस्वरूपकरि उपजे है। ऐसैं सो परिणाम पुद्गलद्रव्य ही करि क्रियमाण है ऐसैंकूं ज्ञानी जानता है। तौऊ आप तिसविषैं अंतर्व्यापक होयकरि, वाह्य तिष्ठया जो परद्रव्य ताका परिणामकूं आदि मध्य अंतविषैं व्याप्यकरि तिसरूप परिणमे नाहीं है। तिसकूं आप ग्रहण नाहीं करे हैं। तिसविषैं उपजे नाहीं है। जैसैं मृत्तिका घटरूप होय है, ताकूं ग्रहण करे है, ताकूं उपजावे है, तैसैं नाहीं है। तातैं यहै सिद्ध भया जो प्राप्यविकार्यनिर्वर्त्यस्वरूप व्याप्यलक्षण परद्रव्यका परिणामस्वरूप कर्म, ताहि नाहीं करता संता, अर ताकूं जानता संता जो ज्ञानी, ताकै पुद्गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

भावार्थ—पुद्गलकर्मकूं जीव जानता संता है, तौऊ ताकै पुद्गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है। जातैं कर्म तीन प्रकारकरि कहिये है। कै तौ तिस परिणामरूप आप परिणमै, सो परिणाम। कै आप काहूकूं ग्रहण करै सो वस्तु। कै काहूकूं आप उपजावै सो वस्तु। सो ऐसैं तीनूं ही प्रकारकरि जीव है सो आपतैं न्यारा जो पुद्गलद्रव्य, तिसरूप परमार्थतैं परिणमे नाहीं। जातैं आप चेतन है, पुद्गल जड है, चेतन जडरूप परिणमे नाहीं। वहुरि पुद्गलकूं ग्रहण

भी परमार्थतैं नाहीं करे है जातैं पुद्गल मूर्तिक है, आप अमूर्तिक है। अमूर्तिकका ग्रहण योग्य नाहीं। बहुरि पुद्गलकूं आप परमार्थतैं उपजावे भी नाहीं है। जातैं चेतन जडकूं कैसैं उपजावे? ऐसैं पुद्गल है सो जीवका कर्म नाहीं, जीव याका कर्ता नाहीं। जीवका स्वभाव ज्ञाता है, सो अपना ज्ञानरूप परिणमता संता ताकूं जाने है। ऐसैं जानताके परकरि सहित कर्तृकर्मभाव काहेकूं होय? आगैं पूछे हैं, अपने परिणामनिकूं जानता संता जीवके पुद्गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव है कि नाहीं है? ऐसैं पूछैं उत्तर कहे हैं। गाथा—

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥९॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु स्वकपरिणाममनेकविधं ॥९॥

आत्मख्यातिः—यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणमात्मपरिणामं कर्म आत्मना स्वयमंतर्व्यापकेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तं गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते च। ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य स्वपरिणामं जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृकर्मभावः। पुद्गलकर्मफलं जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत्।

अर्थ—ज्ञानी है सो अपने परिणाम अनेकप्रकारनिकूं जानता संता प्रवर्तै है तौऊ परद्रव्यके पर्यायविषैं परिणये नाहीं है, ताकूं ग्रहण नाहीं करे है, ताविषैं उपजै नाहीं है, तातैं ताकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

टीका—जातैं ज्ञानी है सो --प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ऐसैं व्याप्य है लक्षण जाका ऐसा तीनप्रकार कर्म, सो आत्माकै अपना परिणाम ही है, ताही आपै आप आपकरि अंतर्व्यापक होयकरि आदि

मध्य अंतविषैं व्याप्यकरि तिसहीकूं ग्रहण करे है, तिसहीरूप परिणमे है, तैसैं ही उपजे है। याप्रकार तिसही अपना परिणामरूप कर्मकूं करता संता है। तिसकूं आप जानता संता भी बाह्य तिष्ठ्या जो परद्रव्यका परिणाम ताकूं "जैसें मृत्तिका कलशकूं व्याप्यकरि करे है तैसैं" आप तिस परद्रव्यके परिणामविषैं आदि मध्य अंतविषैं व्याप्यकरि न तो ताहि ग्रहण करे है, न तिसरूप परिणमे है, न तैसैं उपजे है। तातैं प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य तीन प्रकार व्याप्यलक्षण परद्रव्यका परिणामरूप कर्म, ताहि न करता जो यहु ज्ञानी, सो अपने परिणामकूं जानता संता प्रवर्तें है। ताकै पुद्‌गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

भावार्थ—पहली गाथामैं कह्या सो ही जानना। विशेष इतना--जो इहां अपना परिणामकूं जानता संता ज्ञानी कह्या है। आगें पूछे है, जो "पुद्‌गलकर्मके फलकूं जानता संता जीवकै पुद्‌गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव है कि नाहीं ?" ऐसैं पूछें उत्तर कहे हैं। गाथा—

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥१०॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्‌गलकर्मफलमनंतं ॥१०॥

आत्मख्यातिः—यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं सुखदुःखादिरूपं पुद्‌गलकर्मफलं कर्म पुद्‌लद्रव्येण स्वयमंतर्व्यापकेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तद्‌गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा वहिःस्थस्य परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते च। ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य सुखदुःखादिरूपं पुद्‌गलकर्मफलं जानतोपि ज्ञानिनः पुद्‌गलेन सह न कर्तृकर्मभावः। जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाजानतः पुद्‌गलद्रव्यस्य सह जीवेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत्—

अर्थ—ज्ञानी है सो पुद्गलकर्मके फल अनंत हैं तिनिकूं जानता संता प्रवर्तें है, तौऊ परमार्थतैं परद्रव्यके पर्याय विषैं नाहीं परिणमे है। तथा ताविषैं कछू नाहीं ग्रहे है। तथा ताविषैं उपजे नाहीं है। ऐसैं ताविषैं याकै कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

टीका—जातैं प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य ऐसैं व्याप्य है लक्षण जाका ऐसा तीनप्रकारका सुखदुःखादिरूप पुद्गलकर्मका फल, सो पुद्गलद्रव्य अंतर्व्यापक होयकरि आदि, मध्य, अंतविषैं व्याप्यकरि ताकूं ग्रहण करता तथा तैसैं परिणमता तथा तैसैं ही उपजताकरि किया है, ताही जानता संता जो यह ज्ञानी, सो आप अंतर्व्यापक होय करि बाह्य तिष्ठता परद्रव्यका परिणामकूं "मृत्तिकाकलशकी ज्यों" आदि, मध्य, अंत विषैं व्याप्यकरि नाहीं ग्रहण करे है तथा तैसैं परिणमे नाहीं है तथा तैसैं उपजे नाहीं है। तौ कहा है? प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्यलक्षण अपना स्वभावरूप कर्म है, ताहि आप अंतर्व्यापक होयकरि, आदि, मध्य, अंतविषैं व्याप्य, तिसहीकूं ग्रहण करे है, तैसैं ही परिणमे है, तैसैं ही उपजे है। तातैं प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्यलक्षण परद्रव्यका परिणामरूप कर्मकूं न करता संता सुखदुःखरूप पुद्गलकर्मका फलकूं जानता संता है तौऊ ज्ञानीकै पुद्गलकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

भावार्थ—पहली गाथामैं कह्या सो ही जानना। आगैं पूछे है, जो जीवके परिणामकूं तथा अपने परिणामकूं तथा अपने परिणामके फलकूं नाहीं जानता ऐसा जो पुद्गलद्रव्य, ताकै जीवकरि सहित कर्तृकर्मभाव है कि नाहीं है? ऐसैं पूछै उत्तर कहे हैं। गाथा—

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥११॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
पुद्गलद्रव्यमपि तथा परिणमति स्वकैर्भावैः ॥११॥

आत्मख्यातिः—यतो जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाप्यजानन् पुद्‌गलद्रव्यं स्वयमंतर्व्यापकं भूत्वा परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते। किं तु प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं स्वभावं कर्म स्वयमंतर्व्यापकं भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तमेव गृह्णाति तथैव परिणमति तथैवोत्पद्यते च। ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाजानतः पुद्‌गलद्रव्यस्य जीवेन सह न कर्तृकर्मभावः।

अर्थ—पुद्‌गलद्रव्य है सो भी परद्रव्यके पर्यायविषैं तैसैं नाहीं परिणमे है तथा तैसैं ही (ताही) ग्रहण नाहीं करे है तथा तैसैं उपजे नाहीं है, जातैं अपने ही भावनिकरि परिणमे है।

टीका—जातैं पुद्‌गलद्रव्य है सो जीवके परिणामकूं बहुरि अपने परिणामकूं तथा अपने परिणामके फलकूं नाहीं जानता संता वर्ते है। परद्रव्यके परिणामरूप कर्मकूं मृत्तिकाकलशाकी ज्यौं आप अंतर्व्यापक होयकरि आदिमध्यांतविषैं व्याप्यकरि नाहीं ग्रहण करे है। तथा तैसैं परिणमे नाहीं है तथा तैसैं उपजे नाहीं है। तौ कहा है? प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्य लक्षण अपना स्वभावरूप कर्मकूं अंतर्व्यापक होयकरि आदिमध्यांतविषैं व्याप्य तिसहीकूं ग्रहण करे है, तैसैं ही परिणमे है तैसैं ही उपजे है। तातैं प्राप्यविकार्यनिर्वर्त्यरूप व्याप्यलक्षण परद्रव्यका परिणामस्वरूप कर्मकूं न करता जो पुद्‌गलद्रव्य, सो जीवके परिणामकूं तथा अपने परिणामकूं तथा अपने परिणामका फलकूं नाहीं जानता है। ताकै जीवकरि सहित कर्तृकर्मभाव नाहीं है।

भावार्थ—कोऊ जानैगा, जो पुद्‌गल जड है, सो काहूकूं जानै नाहीं, ताकै जीवकरि सहित कर्तृकर्मभाव होगा। सो यह भी नाहीं है। परमार्थतैं परद्रव्यकैं साथी काहूहीकै कर्तृकर्मभाव नाहीं है। अब इसही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

स्रग्धराछन्दः

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्‌गलश्चाप्यजानन् व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहौ नित्यमत्यंतभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत् विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः॥५॥

जीवपुद्गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि न तयोः कर्तृकर्मभाव इत्याह—

अर्थ—ज्ञानी है सो तो अपनी अर परकी दोऊकी परिणतिकूं जानता संता प्रवर्तै है । बहुरि पुद्गल है सो अपनी अर परकी दोऊ ही परिणतिकूं नाहीं जानता संता प्रवर्तै है । तौऊ ते दोऊ परस्पर अंतरंग व्याप्यव्यापकभावकूं प्राप्त होनेकूं असमर्थ हैं । जातैं दोऊ भिन्नद्रव्य हैं । सो सदाकाल तिनिकै अत्यंत भेद है । सो ऐसैं होतैं, इनिकै कर्तृकर्मभाव मानना भ्रमबुद्धि है । सो यहु जेतैं इनि दोऊनिकै करोतकी ज्यौं निर्दय होय तत्काल भेदकूं उपजाय भेदज्ञान है ज्वाला प्रकाश जाकै ऐसा ज्ञान प्रकाश न होय तेतैं ही है ।

भावार्थ—भेदज्ञान भये पीछे पुद्गलकै अर जीवकै कर्तृकर्मभावकी बुद्धि न रहै । जातैं जेतैं भेदज्ञान नाहीं होय तेतैं ही अज्ञानतैं कर्तृकर्मभावकी बुद्धि है । आगैं कहे हैं, जो जीवके परिणामके अर पुद्गलके परिणामके परस्पर निमित्तमात्रपणा है, तौऊ तिनि दोऊनिकै कर्तृकर्मभाव तौ नाहीं है । गाथा—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥१२॥
णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोह्णंपि ॥१३॥
एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥१४॥

जीवपरिणामहेतुं कर्मत्वं पुद्गलाः परिणमंति ।
पुद्गलकर्मनिमित्तं तथैव जीवोपि परिणमति ॥१२॥

नापि करोति कर्मगुणान् जीवः कर्म तथैव जीवगुणान् ।
अन्योन्यनिमित्तेन तु परिणामं जानीहि द्वयोरपि ॥१३॥
एतेन कारणेन तु कर्त्ता आत्मा स्वकेन भावेन ।
पुद्गलकर्मकृतानां न तु कर्त्ता सर्वभावानां ॥१४॥

आत्मख्यातिः—यतो जीवपरिणामं निमित्तीकृत्य पुद्गलाः कर्मत्वेन परिणमंति पुद्गलकर्मनिमित्तीकृत्य जीवोपि परिणमतीति जीवपुद्गलपरिणामयोरितरेतरहेतुत्वोपन्यासेपि जीवपुद्गलयोः परस्परं व्याप्यव्यापकभावाभावाज्जीवस्य पुद्गलपरिणामानां पुद्गलकर्मणोपि जीवपरिणामानां कर्तृकर्मत्वासिद्धौ निमित्तनैमित्तिकभावमात्रस्याप्रतिषिद्धत्वादितरेतरनिमित्तमात्रीभवनेनैव द्वयोरपि परिणामः । ततः कारणान्मृत्तिकया कलशस्येव स्वेन भावेन स्वस्य भावस्य करणाज्जीवः स्वभावस्य कर्त्ता कदाचित्स्यात् । मृत्तिकया वसनस्येव स्वेन भावेन परभावस्य कर्तुमशक्यत्वात्पुद्गलभावानां तु कर्ता न कदाचिदपि स्यादिति निश्चयः । ततः स्थितमेतज्जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्च ।

अर्थ—पुद्गल हैं ते जीवके परिणाम हैं निमित्त जाकूं ऐसा कर्मपणारूप परिणमे हैं । तैसैं ही जीव है सो भी पुद्गलकर्म है निमित्त जाकूं ऐसा कर्मपणारूप परिणमे है । बहुरि जीव है सो तौ कर्मके गुणनिकूं नाहीं करे है । बहुरि तैसैं ही कर्म है सो जीवके गुणनिकूं नाहीं करे है । इनि दोऊनिकै परस्पर निमित्तकरि परिणाम जानूं । इस कारणकरि आत्माकूं कर्त्ता कहिये है सो अपने ही भावकरि है । बहुरि पुद्गलकर्मकरि किये भाव हैं तिनिका तौ सर्व ही का कर्त्ता नाहीं है ।

टीका—जातैं जीवपरिणामकूं निमित्तमात्रकरि पुद्गल है सो कर्मभावकरि परिणमे है । बहुरि पुद्गलकर्मकूं निमित्तमात्रकरि जीव भी परिणमे है । ऐसें जीवके परिणामकै अर पुद्गलके परिणामकै परस्पर हेतुपणाका स्थापन होतें भी जीवकै अर पुद्गलकै परस्पर व्याप्य व्यापकभावके अभावतैं जीवकै तौ पुद्गलपरिणामनिका अर पुद्गलकर्मकै जीवके परिणामनिका कर्ताकर्मपणाकी असिद्धि होतैं निमित्तनैमित्तिक भावमात्रका प्रतिषेध नाहीं है । यातैं परस्पर निमित्तमात्र होनेही करि दोऊनिका परिणाम है, तिसकारणतैं मृत्तिकाकैं कलशकी ज्यौं अपने भावकरि अपने

भावके करणेतैं जीव है सो अपने भावका कर्ता सदाकाल होय है। बहुरि मृत्तिका जैसैं कपडाका कर्त्ता नाहीं तैसैं अपने भावकरि परके भावका करनेका असमर्थपणातैं पुद्गलके भावनिका तौ कर्त्ता कदाचित् भी नाहीं है ऐसा निश्चय है।

भावार्थ—जीव पुद्गल परिणामनिकैं परस्पर निमित्तमात्रपणा है, तौऊ परस्पर कर्तृकर्मभाव तौ नाहीं है। परके निमित्ततैं अपने भाव भये तिनिका तौ अज्ञानदशामैं कदाचित् कर्ता कहिये भी अर परभावका तौ कर्त्ता कदाचित् भी नाहीं है। आगैं कहे हैं, जो इस हेतुतैं यह ठहरी—जीवकै अपने परिणामनि ही करि सहित कर्तृकर्मभाव अर भोक्तृभोग्यभाव है। गाथा—

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥१५॥

निश्चयनयस्यैवमात्मात्मानमेव हि करोति।
वेदयते पुनस्तं चैव जानीहि आत्मा त्वात्मानं ॥१५॥

आत्मख्यातिः—यथोत्तरंगनिस्तरंगावस्थयोः समीरसंचरणासंचरणनिमित्तयोरपि समीरपारावारयोर्व्याप्यव्यापकभावाभावात्कर्तृकर्मत्वासिद्धौ पारावार एव स्वयमंतर्व्यापको भूत्वादिमध्यांतेषूत्तरंगनिस्तरंगावस्थे व्याप्योत्तरंगं निस्तरंगं त्वात्मानं कुर्वन्नात्मानमेकमेव कुर्वन् प्रतिभाति न पुनरन्यत्। यथा स एव च भाव्यभावकभावाभावात्परभावस्य परेणानुभवितुमशक्यत्वादुत्तरंगं निस्तरंगं त्वात्मानमनुभवन्नात्मानमेकमेवानुभवन् प्रतिभाति न पुनरन्यत्। तथा संसारनिःसंसारावस्थयोः पुद्गलकर्मविपाकसंभवासंभवनिमित्तयोरपि पुद्गलकर्मजीवयोर्व्याप्यव्यापकभावाभावात्कर्तृकर्मत्वासिद्धौ जीव एव स्वयमंतर्व्यापको भूत्वादिमध्यांतेषु ससंसारनिःसंसारावस्थे व्याप्य ससंसारं निःसंसारं वात्मानं कुर्वन्नात्मानमेकमेव कुर्वन् प्रतिभातु मा पुनरन्यत्। तथायमेव च भाव्यभावकभावाभावात् परभावस्य परेणानुभवितुमशक्यत्वात्ससंसारं निःसंसारं वात्मानमनुभवन्नात्मानमेकमेवानुभवन्प्रतिभातु मा पुनरन्यत्। अथ व्यवहारं दर्शयति।

अर्थ—निश्चयनयका यह मत है, जो आत्मा है सो आपहीकूं करे है बहुरि आपहीकूं वेदे है भोगवे है, हे शिष्य, तूं ऐसैं जानि।

टीका—तहां प्रथम दृष्टांत—जैसैं पवनका चालना न चालना है निमित्त जिनिकूं ऐसी जो "समुद्रके विषैं तरंगका उठना अर विलय होना रूप" दोऊ अवस्था तिनिकै पवनकै अर समुद्रकै व्याप्यव्यापकभावके अभावतैं कर्ताकर्मपणाकी असिद्धि होतैं, समुद्र है सोही आप तिनि अवस्थानिविषैं अंतर्व्यापक होयकरि आदिमध्यांतविषैं तिनि अवस्थानिमैं व्याप्यकरि उत्तरंग निस्तरंगरूप आपहीकूं करता संता आपहीकूं एककूं करता संता प्रतिभासे है। कोई औरकूं तौ नाहीं करता है तैसैं ही सोही समुद्र तिस पवनकै अर समुद्रकै भाव्यभावक भावका अभावतैं परभावकै परकरि अनुभवन करनेका असमर्थपणातैं उत्तरंगनिस्तरंगस्वरूप आपहीकूं अनुभवता संता प्रतिभासे है और कोईकूं अनुभवै नाहीं है। तैसैंही दार्ष्टांत है—जो पुद्गलकर्मका उदयका संभव असंभव है निमित्त जाकूं ऐसी जो ससंसार अर निःसंसार ए दोऊ अवस्था ताका पुद्गलकर्मकैं अर जीवकैं व्याप्यव्यापकपणाका अभावतैं कर्ताकर्मपणाकी असिद्धि है। यातैं जीव है सो आप अंतर्व्यापक होयकरि आदिमध्यांतविषैं ससंसारनिःसंसार अवस्थामैं व्याप्यकरि ससंसारनिःसंसाररूप आत्माकूं करता संता आपहीकूं करता प्रतिभासो, अन्यकूं करता मति प्रतिभासो। तैसैं ही यहही जीव भाव्यभावकभावके अभावतैं परभावकैं परकरि अनुभवन करनेका असमर्थपणा है, तातैं ससंसारनिःसंसाररूप आत्माहीकूं अनुभवता संता आपहीकूं अनुभवन करता प्रतिभासो, अन्यकूं करता मति प्रतिभासो।

भावार्थ—आत्माकैं ससंसारनिःसंसार अवस्था है सो परद्रव्यपुद्गलकर्मके निमित्ततैं है। तहां तिनि अवस्थारूप आपही परिणमे है। तातैं आपहीका कर्ता भोक्ता है, निमित्तमात्र पुद्गलकर्म है, ताका तौ कर्त्ता भोक्ता नाहीं है। आगैं व्यवहारकूं दिखावे हैं। गाथा—

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि अणेयविहं।
तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥१६॥

व्यवहारस्य त्वात्मा पुद्गलकर्म करोति नैकविधं ।
तच्चेव पुनर्वेदयते पुद्गलकर्मानेकविधं ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यथांतर्व्याप्यव्यापकभावेन मृत्तिकया कलशे क्रियमाणे भाव्यभावकभावेन मृत्तिकयैवानुभूयमाने च बहिर्व्याप्यव्यापकभावेन कलशसंभवानुकूलं व्यापारं कुर्वाणः कलशकृततोयोपयोगजां तृप्तिं भाव्यभावकभावेनानुभवंश्च कुलालः कलशं करोत्यनुभवति चेति लोकानामनादिरूढोऽस्ति तावद् व्यवहारः, तथांतर्व्याप्यव्यापकभावेन पुद्गलद्रव्येण कर्मणि क्रियमाणे भाव्यभावकभावेन पुद्गलद्रव्येणैवानुभूयमाने च बहिर्व्याप्यव्यापकभावेनाज्ञानात्पुद्गलकर्मसंभवानुकूलं परिणामं कुर्वाणः पुद्गलकर्मविपाकसंपादितविषयसन्निधिप्रधावितां सुखदुःखपरिणतिं भाव्यभावकभावेनानुभवंश्च जीवः पुद्गलकर्मकरोत्यनुभवति चेत्यज्ञानिनामासंसारप्रसिद्धोऽस्ति तावद्व्यवहारः । अथैनं दूषयति ।

अर्थ—व्यवहारनयका यह मत है, जो आत्मा अनेक प्रकार पुद्गलकर्मकूं करे है । बहुरि तिसही अनेक प्रकार पुद्गलकर्मकूं वेदे है भोगवे है ।

टीका—तहां प्रथम दृष्टांत कहे हैं—जैसैं मृत्तिका कलशकूं करे है अर भोगवे है सो अंतर्व्याप्यव्यापकभावकरि करे है, तथा भाव्यभावक भावकरि भोगवे है । तौऊ बाह्य व्याप्यव्यापक भावकरि कलश होनेविषैं संभवै तिसकै अनुकूलव्यापारकूं अपने हस्तादिककरि करता अर कलशकरि किया जो जलका उपयोगतैं भया तृतिभाव ताकूं भाव्यभावकभावकरि अनुभवन करता भोगवता जो कुंभकार ताकूं लोक कहे हैं, जो इस कलशकूं कुंभकार करे है तथा भोगवे है, ऐसा लोकनिका अनादितैं प्रसिद्ध भया व्यवहार प्रवर्तें है । तैसैं ही दार्ष्टांत है—जो पुद्गलकर्मकूं अंतर्व्याप्यव्यापकभावकरि पुद्गलद्रव्य करे है अर भाव्यभावकभावकरि पुद्गलद्रव्य ही अनुभवे है भोगवे हैं । तौऊ बाह्य व्याप्यव्यापकभावकरि अज्ञानतैं पुद्गलकर्मके होनेके अनुकूल अपना रागादि परिणामकूं करता अर पुद्गलकर्मके उदयकरि निपजाई जो विषयनिकी समीपता तातैं दोडी जो अपनी सुखदुःखरूप परिणति ताकूं भाव्यभावक भावकरि अनुभवता भोगवता जो जीव सो पुद्गलकर्म करे है भोगवै है । ऐसैं अज्ञानी लोकनिका अनादि संसारतैं लेकरि प्रसिद्ध भया व्यवहार प्रवर्तें है । १६४

भावार्थ—पुद्‌गलकर्मकूं परमार्थतैं पुद्गलद्रव्य ही करे है, अर पुद्गलकर्मके होनेके अनुकूल अपना रागादि परिणामकूं जीव करे है, तिसका निमित्त नैमित्तिभावकूं देखिकरि अज्ञानीकै यह भ्रम है, जो पुद्‌गलकर्मकूं जीव ही करे है सो अनादि अज्ञानतैं प्रसिद्ध व्यवहार है। जीवपुद्‌गलका भेदज्ञान नाहीं है, तेतैं दोऊकी प्रवृत्ति एककीसी ही दीखे है। तातैं जेतैं भेदज्ञान न होय जेतैं दीखे सो कहै, श्रीगुरु भेदज्ञान कराय परमार्थजीवका स्वरूप दिखाय अज्ञानीकै प्रतिभासकूं व्यवहार कहै हैं। आगैं इस व्यवहारकूं दूषण दे हैं। गाथा—

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दो किरियावादित्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥१७॥

यदि पुद्‌गलकर्मेदं करोति तच्चैव वेदयते आत्मा।
द्विक्रियाव्यतिरिक्तः प्रसजति स जिनावमतं ॥१७॥

आत्मख्यातिः—इह खलु क्रिया हि तावदखिलापि परिणामलक्षणतया न नाम न परिणामतोस्ति भिन्ना, परिणामोपि परिणामपरिणामिनोरभिन्नवस्तुत्वात्परिणामिनो न भिन्नस्ततो या काचन क्रिया किल सकलापि सा क्रियावतो न भिन्नेति क्रियाकर्त्रोरव्यतिरिक्ततायां वस्तुस्थित्या प्रतपत्यां यथा व्याप्यव्यापकभावेन स्वपरिणामं करोति, भाव्यभावकभावेन तमेवानुभवतिश्च जीवस्तथा व्याप्यव्यापकभावेन पुद्‌गलकर्मापि यदि कुर्यात् भाव्यभावकभावेन तदेवानुभवेच्च ततो यं स्वपरसमवेतक्रियाद्वयाव्यतिरिक्ततायां प्रसजंत्यां स्वपरयोः परस्परविभागप्रत्यस्तमनादनेकात्मकमेकमात्मानमनुभवन्मिथ्यादृष्टितया सर्वज्ञावमतः स्यात्। कुतो द्विक्रियानुभावी मिथ्यादृष्टिरिति चेत्।

अर्थ—जो आत्मा इस पुद्‌गलकर्मकूं करे है वहुरि तिसहीकूं वेदे है भोगवे है, तौ सो आत्मा दोय क्रियातैं अभिन्न ठहरै ऐसा प्रसंग आवे है सो यह जिनदेवका मत नाहीं।

टीका—इस लोकविषैं जो क्रिया है सो प्रथम तौ समस्त ही परिणामस्वरूप है, तातैं परिणाम ही है, किछू भिन्न वस्तू नाहीं। वहुरि परिणाम है सो भी परिणाम अर परिणामी द्रव्य दोऊ

अभिन्न वस्तु हैं; न्यारे न्यारे दोय वस्तु नाहीं । तातैं परिणाम परिणामीतैं भिन्न नाहीं । तातैं यह ठहर्‍या, जो किछू क्रिया है सो क्रियावान् द्रव्यतैं भिन्न नाहीं है । ऐसैं क्रियाका अर क्रियावानूका अभेदपणा है । ऐसी वस्तूकी मर्यादा होती संती, जैसा जीव व्याप्यव्यापक भावकरि, अपने परिणामकूं करे है, अर भाव्यभावकभावकरि तिसही अपने परिणामकूं अनुभवे है, भोगवे है, तैसैं ही व्याप्यव्यापकभावकरि पुद्गलकर्मकूं भी करै तथा भाव्यभावकभावकरि तिसहीकूं अनुभवै भोगवे, तौ अपनी अर परकी मिली जो दोय क्रिया, तिनिका अभिन्नपणा ठहर्‍या । ऐसा प्रसंग होतैं, अपना अर परका विभागका अभाव भया । तब ऐसैं अनेक द्रव्यस्वरूप एक आत्माकूं अनुभवता संता, मिथ्यादृष्टि होय है, जातैं ऐसा वस्तुस्वरूप जिनदेव कह्या नाहीं, तातैं जिनके मतके बाह्य है।

भावार्थ—दोय द्रव्यकी क्रिया भिन्न ही है । जडकी क्रिया चेतन करे नाहीं, चेतनकी क्रिया जड करे नाहीं । जो पुरुष दोऊ क्रियाकूं एकद्रव्य करता माने, सो मिथ्यादृष्टि है, जातैं दोय द्रव्यकी क्रिया एक द्रव्यकै मानना यहु जिनका मत नाहीं । आगैं फेरि पूछे है, जो एकपुरुष दोय क्रियाका अनुभवन करनेवाला मिथ्यादृष्टि कैसैं ? ताका समाधान करे हैं । गाथा—

जह्मा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति ॥१८॥

तस्मात्त्वात्मभावं पुद्गलभावं च द्वावपि कुर्वंति ।
तेन तु मिथ्यादृष्टयो द्विक्रियावादिनो भवंति ॥१८॥

आत्मख्यातिः—यतः किलात्मपरिणामं पुद्गलपरिणामं च कुर्वंतमात्मानं मन्यंते द्विक्रियावादिनस्ततस्ते मिथ्यादृष्टय एवेति सिद्धांतः । भावैकद्रव्येण द्रव्यद्वयपरिणामः क्रियमाणः प्रतिभातु । यथा किल कुलालः कलशसंभवानुकूलमात्मन्यापारपरिणाममात्मनो व्यतिरिक्तमात्मनोऽव्यतिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभाति न पुनः

कलशकारणाहंकारनिर्भरोपि स्वव्यापारानुरूपं मृत्तिकायाः कलशपरिणामं मृत्तिकायाः अव्यतिरिक्तमृत्तिकायाः अव्यतिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभाति। तथात्मापि पुद्गलकर्मपरिणामानुकूलमज्ञानादात्मपरिणाममात्मनोऽव्यतिरिक्तमात्मनो व्यतिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभातु मा पुनः पुद्गलपरिणामकरणाहंकारनिर्भरोपि स्वपरिणामानुरूपं पुद्गलस्य परिणामं पुद्गलादव्यतिरिक्तं पुद्गलादव्यतिरिक्तया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभातु।

अर्थ—जातैं आत्माके भावकूं अर पुद्गलके भावकूं दोऊहीकूं आत्मा करे है ऐसैं कहे हैं, तिस कारणतैं दोय क्रिया एकहीकै कहनेवाले मिथ्यादृष्टि ही हैं।

टीका—जातैं निश्चयतैं आत्माके परिणामकूं अर पुद्गलके परिणामकूं करता आत्माकूं जे माने हैं, ते दोऊ क्रिया एकहीके कहनेवाले हैं ते मिथ्यादृष्टि ही हैं, ऐसा सिद्धांत है। सो एकद्रव्यकरि दोय परिणाम किये हुये मति प्रतिभासो। जैसैं कुंभकार है सो कलशके होनेके अनुकूल अपना व्यापाररूप हस्तादिक क्रिया तथा इच्छारूप परिणाम आपतैं अभिन्न तथा आपतैं अभिन्न परिणतिमात्र क्रियाकरि किया हुवाकूं करता संता प्रतिभासे है, बहुरि कलश करनेके अहंकार करि सहित है, तौऊ मृत्तिकाका मृत्तिकाके व्यापारके अनुरूप कलशपरिणाम मृत्तिकातैं अभेदरूप तथा मृत्तिकातैं अभिन्न मृत्तिकापरिणतिमात्र क्रियाकरि किया हुवा ताकूं करता संता नाहीं प्रतिभासे है। तैसैं ही आत्मा भी अज्ञानतैं पुद्गलकर्मके परिणामकै अनुकूल अपने परिणाम आपतैं अभिन्नकूं, आपतैं अभिन्न जो अपनी परिणतिमात्र क्रिया, ताकरि किया हुवाकूं करता संता प्रतिभासो। बहुरि पुद्गलके परिणामका करनेका अहंकारकरि सहित है तौऊ पुद्गलके परिणामके अनुरूप पुद्गलतैं अभिन्न जो पुद्गलका परिणाम, पुद्गलहीतैं अभिन्न जो पुद्गलकी परिणतिमात्र क्रिया, तिसकरि किया हुवा ताकूं करता संता मति प्रतिभासो।

भावार्थ—आत्मा अपने ही परिणामकूं करता संता प्रतिभासो। पुद्गलके परिणामकूं तौ करता मति प्रतिभासो। याहीतैं आत्माकी अर पुद्गलकी दोऊ क्रियाकूं एक आत्माहीकी

माननेवालाकूं मिथ्यादृष्टि कह्या है। जड चेतनकी एक क्रिया होय तौ सर्वद्रव्य पलटतैं सर्वका लोप होय है, यह बडा दोष उपजै। अब इसही अर्थके समर्थनकूं कलशरूप काव्य कहे हैं।

आर्याछन्दः

य: परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म। या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥६॥

अर्थ--जो परिणमे है सो कर्ता है, बहुरि जो परिणम्या ताका परिणाम है सो कर्म है, बहुरि जो परिणति है सो क्रिया है ए तीनू ही वस्तुपणाकरि भिन्न नाहीं हैं।

भावार्थ—द्रव्यदृष्टिकरि परिणाम अर परिणामीका अभेद है अर पर्यायदृष्टिकरि भेद है। तहां भेददृष्टिकरि तौ कर्ता, कर्म, क्रिया तीन कहिये हैं। अर इहां अभेददृष्टिकरि परमार्थ कह्या है, जो कर्ता, कर्म, क्रिया तीनू ही एक द्रव्यकी अवस्था है प्रदेशभेदरूप न्यारे वस्तु नाहीं है। फेरि कहे हैं।

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य। एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥७॥

अर्थ—वस्तु एक ही सदा परिणमे है, बहुरि एकहीकै सदा परिणाम उपजे है, अवस्थासूं अन्य अवस्था होय है। बहुरि एकहीकै परिणति क्रिया होय है। जातैं अनेकरूप भया तौऊ एक ही वस्तु है भेद नाहीं है।

भावार्थ—एक वस्तुके अनेकपर्याय होय हैं, तिनिकूं परिणाम भी कहिये अवस्था भी कहिये। ते संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनादिक करि न्यारे न्यारे प्रतिभासरूप हैं तौऊ एक वस्तु ही है, न्यारे नाहीं है, ऐसा ही भेदाभेद स्वरूप वस्तूका स्वभाव है। फेरि कहे हैं।

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत। उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥८॥

अर्थ—दोय द्रव्य हैं सो एक होय परिणमे नाहीं है बहुरि दोय द्रव्यका एक परिणाम नाहीं होय है बहुरि दोय द्रव्यकी परिणतिक्रिया एक नाहीं होय है। जातैं जो अनेक द्रव्य है सो अनेक ही है, पलटिकरि एक नाहीं होय है।

भावार्थ—दोय वस्तू हैं ते सर्वथा भिन्न ही हैं प्रदेशभेदरूप ही हैं, दोऊ एक होय परिणमै नाहीं, एक परिणामकूं उपजावै नाहीं, क्रिया एक होय नाहीं। ऐसा नियम है, जो दोय द्रव्य एक होय परिणमै तो सर्व द्रव्यनिका लोप हो जाय। फेरि इस ही अर्थकूं दृढ करे हैं।

आर्याछन्दः

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य। नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥९॥

अर्थ—एक द्रव्यका दोय कर्ता न होय, बहुरि एक द्रव्यका दोय कर्म न होय, बहुरि एक द्रव्यकी दोय क्रिया न होय। जातैं एक द्रव्य है सो अनेक द्रव्य होय नाहीं।

भावार्थ—यह निश्चयनयकरि नियम है सो शुद्धद्रव्यार्थिकनय करि कह्या जानना। अब कहे हैं, जो आत्माकै अनादितैं परद्रव्यका कर्ताकर्मपणाका अज्ञान है सो जो यह परमार्थनयका ग्रहणकरि एक वार भी विलय होय तौ फेरि न आवै।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकैः दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत् तत्किं ज्ञानघनस्य बंधनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥१०॥

अर्थ—इस जगतविषैं मोही अज्ञानी जीवनिका "यह मैं परद्रव्यकूं करूं हूं" ऐसा परद्रव्यका कर्तृत्वका अहंकाररूप अज्ञानांधकार अनादि संसारतैं लगाय चल्या आवै है। कैसा है? अतिशयकरि दुर्वार है निवारया न जाय है। सो आचार्य कहे हैं, जो शुद्धद्रव्यार्थिक अभेदनय परमार्थ है सत्यार्थ है, ताका ग्रहणकरिकै जो एक वार भी नाश हो जाय तौ यह जीव ज्ञानघन है सो यथार्थज्ञान भये पीछैं कहां ज्ञान जाता रहै? नाहीं जाय, अर ज्ञान न जाय तब कहां फेरि अज्ञानतैं बंध होय? कदाचित् नाहीं होय।

भावार्थ—इहां तात्पर्य ऐसा, जो अज्ञान तौ अनादि ही का है, परन्तु दर्शनमोहका नाशकरि एक बार यथार्थज्ञान होयकरि क्षायिकसम्यक्त्व उपजे तौ फेरि मिथ्यात्व नाहीं आवै तब

मिथ्यात्वका बंध न होय अर मिथ्यात्व गये पीछैं संसारका बन्धन काहेकूं रहै ? मोक्ष ही पावै ऐसा जानना। फेरि विशेषकरि कहे हैं।

अनुष्टुप छन्दः

आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः। आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥११॥

अर्थ—आत्मा है सो तौ अपने भावनिकूं करे है बहुरि परद्रव्य है सो परके भावनिकूं करे है। जातैं अपने भाव हैं ते तौ आप ही हैं बहुरि परभाव हैं ते पर ही हैं यह नियम है। आगैं परद्रव्यका कर्त्ताकर्मपणाकै माननेकूं अज्ञान कह करि कह्या, जो ऐसैं माने सो मिथ्यादृष्टि है, तहां आशंका उपजे है, जो यह मिथ्यात्वादि भाव कहा वस्तु है ? जो जीवके परिणाम कहिये तो पूर्वैं रागादिभावनिकूं पुद्गलके परिणाम कहे हैं तातैं विरोध आवे है बहुरि पुद्गलके परिणाम कहिये तौ जीवका प्रयोजन नाहीं, याका फल जीव काहेकूं पावै ? ऐसी आशंका दूर करनेकूं कहे हैं। गाथा—

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं॥

पुद्गलकर्मनिमित्तं यथात्मा करोति आत्मनः भावं।
पुद्गलकर्मनिमित्तं तथा वेदयति आत्मनो भावं॥

तात्पर्यवृत्तिः—पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं—उदयागतं द्रव्यकर्मनिमित्तं कृत्वा यथात्मा निर्विकारस्वसंवित्तिपरिणामशून्यः सन्करोत्यात्मनः संबंधिनं सुखदुःखादिभावं परिणामं, पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं-तथैवोदयागतद्रव्यकर्मनिमित्तं लब्ध्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थवास्तवसुखास्वादमवेदयन्सन् तमेव कर्मोदयजनि-

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोधादीया इमे भावा ॥१९॥

मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवोऽजीवस्तथैवाज्ञानं ।
अविरतियोगो मोहः क्रोधाद्या इमे भावाः ॥१९॥

आत्मख्यातिः—मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादयो हि भावाः ते तु प्रत्येकं मयूरमुकुरंदवज्जीवाजीवाभ्यां भाव्यमानत्वाज्जीवाजीवौ । तथाहि—यथा नीलकृष्णहरितपीतादयो भावाः स्वद्रव्यस्वभावत्वेन मयूरेण भाव्यमानाः मयूर एव । यथा च नीलहरितपीतादयो भावाः स्वच्छताविकारमात्रेण मुकुरंदेन भाव्यमाना मुकुरंद एव । तथा मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादयो भावाः स्वद्रव्यस्वभावत्वेनाजीवेन भाव्यमाना अजीव एव । तथैव च मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादयो भावाश्चैतन्यविकारमात्रेण जीवेन भाव्यमाना जीव एव । काविह जीवाजीवाविति चेत् ।

अर्थ—पहली गाथामैं दोय क्रियावादी मिथ्यादृष्टी कह्या था । ताका जोडकूं पुनः शब्द है सो कहे हैं । मिथ्यात्व कह्या सो दोय प्रकार है, एक जीव मिथ्यात्व, एक अजीव मिथ्यात्व । वहुरि तैसैं ही अज्ञान भी दोय प्रकार, जीव अजीव । वहुरि तैसैं ही अविरति, योग, मोह, क्रोधादि कषाय जीव अजीवके भेदकरि दोय दोय प्रकार ए सर्व ही भाव हैं ।

टीका—मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति, इत्यादिक जो भाव हैं ते प्रत्येक न्यारे न्यारे मयूर अर दर्पणकी ज्यौं जीव अजीव करि भाये हुए हैं । तातैं जीव भी हैं अजीव भी हैं । सो ही कहे हैं

तस्वकीयरागादिभावं वेदयत्यनुभवति । न च द्रव्यकर्मरूपपरभावमित्यभिप्रायः । अथ चिद्रूपानात्मभावानात्मा करोति तथैवाचिद्रूपान् द्रव्यकर्मादिपरभावान् परः पुद्गलः करोतीत्याख्याति ।

अर्थ—पुद्गल कर्मोंके निमित्तसे आत्मा जिस प्रकार भाव करता है उसी प्रकार पुद्गल कर्मोंके निमित्त उसके फलको भोगता है ।

जैसैं मयूरके नील, कृष्ण, हरित, पीत आदि वर्ण रूप भाव हैं ते मयूर निजस्वभावकरि भाये हुये मयूर ही हैं। बहुरि जैसैं दर्पणविषैं तिनि वर्णनिका प्रतिबिम्ब दीखे है ते दर्पणकी स्वच्छता निर्मलताका विकारमात्रकरि भाये हुये ते दर्पण ही हैं। मयूरकी अर आरसाकी अत्यन्त भिन्नता है। तैसैं ही मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इत्यादिक भाव हैं ते अपने अजीवके द्रव्यस्वभावकरि अजीवपणेकरि भाये हुये ते अजीव ही हैं। बहुरि ते मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति आदि भाव चैतन्यके विकारमात्रकरि जीवकरि भाये हुये जीव ही हैं।

भावार्थ—कर्मके निमित्ततैं जीव विभावरूप परिणमे हैं ते तौ चेतनके विकार हैं, ते जीव हैं। बहुरि जे पुद्गल मिथ्यात्वादि कर्मरूप परिणमे हैं ते पुद्गलके परमाणु हैं, तथा तिनिका विपाक उदय रूप होय स्वादरूप होय हैं ते मिथ्यात्वादि अजीव हैं। ऐसैं मिथ्यात्वादिभाव जीवाजीव भेदकरि दोय प्रकार हैं। इहां ऐसा जानना, जो मिथ्यात्वादि कर्मकी प्रकृति हैं ते पुद्गलद्रव्यके परमाणू हैं। तिनिका उदय होय तब जीव उपयोग स्वरूप है, सो याके उपयोगकी ऐसी स्वच्छता है जो जिसका उदयका स्वाद आवै तब तिसकै आकार उपयोग होय तब अज्ञानतैं तिसका भेदज्ञान होय नाहीं, तिस स्वादकूं ही अपना भाव जाने है। सो याका भेदज्ञान होना जो जीव भावकूं जीव जानै, अजीवभावकूं अजीव जानै तब मिथ्यात्वके अभाव होय, सम्यग्ज्ञान होय है। आगैं पूछे है, जो ए मिथ्यात्वादिक जीव अजीव कहे ते कौन हैं? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छत्त जीवो दु ॥२०॥

पुद्गलकर्म मिथ्यात्वं योगोऽविरतिरज्ञानमजीवः।
उपयोगोऽज्ञानमविरतिर्मिथ्यात्वं च जीवस्तु ॥२१

आत्मख्यातिः—यः खलु मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादिरजीवस्तदमूर्त्ताच्चैतन्यपरिणामादन्यत् मूर्त्तं पुद्गलकर्म,

यस्तु मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादि जीवः स मूर्तात्पुद्गलकर्मणोऽन्यश्चैतन्यपरिणामस्य विकारः। मिथ्यादर्शनादि-चैतन्यपरिणामस्य विकारः कुत इति चेत्—

अर्थ—जे मिथ्यात्व, योग, अविरति, अज्ञान ए अजीव हैं, ते तौ पुद्गलकर्म हैं, बहुरि अज्ञान, अविरति, मिथ्यात्व ए जीव हैं ते उपयोग हैं।

टीका—जो निश्चयकरि मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इत्यादि अजीव है सो तौ अमूर्तिक जो चैतन्यका परिणाम तातैं अन्य है मूर्तिक है सो तौ पुद्गलकर्म है। बहुरि जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इत्यादि जीव है सो मूर्तिक जो पुद्गलकर्म तातैं अन्य है चैतन्यपरिणामका विकार है। फेरि पूछे है, जो जीवमिथ्यात्वादि चैतन्य तातैं अन्य है चैतन्यपरिणामका विकार है। फेरि पूछे है, जो जीवमिथ्यात्वादि चैतन्यपरिणामका विकार कौन हेतुतैं है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥२१॥

उपयोगस्यानादयः परिणामास्त्रयो मोहयुक्तस्य।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्च ज्ञातव्यः ॥२२॥

आत्मख्यातिः—उपयोगस्य हि स्वरसत एव समस्तवस्तुस्वभावभूतस्वरूपपरिणामसमर्थत्वे सत्यनादिवस्त्वंतरभूत-मोहयुक्तत्वान्मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरिति त्रिविधः परिणामविकारः स तु तस्य स्फटिकस्वच्छताया इव परतोपि प्रभवन् दृष्टः। यथाहि स्फटिकस्वच्छतायाः स्वरूपपरिणामसमर्थत्वे सति कदाचिन्नीलहरितपीततमालकदलीकांचनपात्रोपाश्रय-युक्तत्वान्नीलो हरितः पीत इति त्रिविधः परिणामविकारो दृष्टस्तथोपयोगस्यानादिमिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिस्वभाववस्त्वं-तरभूतमोहयुक्तत्वान्मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरिति त्रिविधः परिणामविकारो दृष्टव्यः। अथात्मनस्त्रिविधपरिणामविकारस्य कर्तृत्वं दर्शयति।

अर्थ--उपयोगके अनादितैं लेकरि तीन परिणाम हैं, जातैं यह अनादिहीतैं मोहयुक्त है, ताके निमित्ततैं होय हैं । तहां मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरतिभाव ए तीन जानने ।

टीका—निश्चयकरि समस्त वस्तुनिके अपने स्वरसपरिणमनतैं स्वभावभूत स्वरूपपरिणाम विषैं समर्थपणा होतैं भी आत्माके उपयोगके अनादिहीतैं अन्यवस्तुभूत जो मोह तिसकरि युक्तपणातैं मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति ऐसैं तीन प्रकार परिणामके विकार है । सो यह जैसैं स्फटिकमणीकी स्वच्छताके परके ढंकतैं परिणामविकार होता देखिये है तैसैं ही है, सोही प्रगटकरि कहे हैं । जैसैं स्फटिककी स्वच्छताकै अपना स्वरूप जो उज्वलता तिस रूप परिणामकी समर्थता होतैं भी कदाचित् कालविषैं काला, हरया, पीला जो तमाल कदली कंचनका पात्र ताका उपाश्रय समीप युक्तपणातैं नीला, हरया, पीला ऐसा तीन प्रकार परिणामका विकार दीखे हैं, तैसैं ही आत्माके उपयोगके अनादि मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरतिस्वभाव जो अन्य वस्तुभूत मोह, ताकरि युक्तपणातैं मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति ऐसैं तीन प्रकार परिणाम विकार देखना।

भावार्थ---आत्माके उपयोगमें ए तीन प्रकारके परिणामविकार अनादिकर्मके निमित्ततैं हैं । ऐसा नाहीं, जो पहलै शुद्ध ही था यह नवीन भया है । ऐसैं होय तौ सिद्धनिकै भी नवीन भया चाहिये, सो यह है नाहीं ऐसैं जानना । आगै आत्माके इस तीन प्रकारके परिणाम विकारका कर्त्तापणा दिखावे हैं । गाथा–

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥२२॥

एतेषु चोपयोगस्त्रिविधः शुद्धो निरंजनो भावः ।
यं स करोति भावमुपयोगस्तस्य स कर्त्ता ॥२२॥

आत्मख्यातिः—अथैवमयमनादिवस्त्वंतरभूतमोहयुक्तत्वादात्मन्युत्प्लवमानेषु मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिभावेषु परिणामविकारेषु त्रिष्वेतेषु निमित्तभूतेषु परमार्थतः शुद्धनिरंजनानादिनिधनवस्तुसर्वस्वभूतचिन्मात्रभावत्वेनैकविधोप्यशुद्धसांजनानेकभावत्वमापद्यमानस्त्रिविधो भूत्वा स्वयमज्ञानीभूतः कर्तृत्वमुपढौकमानो विकारेण परिणम्य यं यं भावमात्मनः करोति तस्य तस्य किलोपयोगः कर्ता स्यात् । अथात्मनस्त्रिविधपरिणामविकारकर्तृत्वे सति पुद्गलद्रव्यं स्वत एव कर्मत्वेन परिणमतीत्याह—

अर्थ--मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति इनि तीननिका अनादितैं निमित्त होतैं आत्माका उपयोग शुद्धनयकरि एक है, शुद्ध है, निरंजन हैं। तौऊ याकै मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति ऐसैं तीन प्रकार परिणाम हैं सो इनिमैं जिस भावकूं आप करे है ताका कर्त्ता होय हैं ।

टीका—पहली गाथामैं कहे जे तीन प्रकारके उपयोगके परिणाम ते अब पूर्वोक्त प्रकार अनादि अन्यवस्तुभूत जो मोह ताकरि युक्तपणातैं आत्माविषैं उपजते जे मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरतिभावरूप तीन परिणामविकार तिनिकूं निमित्तभूत होतैं आत्माका स्वभाव परमार्थतैं देखिये तौ शुद्ध निरंजन एक अनादिनिधन वस्तूका सर्वस्वभूत चैतन्यमात्र भावपणाकरि एक प्रकार है। तौऊ अशुद्ध सांजन अनेक भावपणाकूं प्राप्त हुवा संता तीन प्रकार होय करि आप अज्ञानी हुवा संता कर्तापणाकूं प्राप्त होता संता विकाररूप परिणामकरि जिस जिस भावकूं आपकै करे है, तिस तिस भावका उपयोग प्रगटपणैं निश्चयकरि कर्ता होय है ।

भावार्थ—पूर्वे कह्या है, जो परिणमै सो कर्ता है । सो इहां अज्ञानरूप होय उपयोग परिणम्या जिसरूप परिणम्या तिसका कर्ता कह्या, शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकरि आत्मा कर्ता है नाहीं, इहां उपयोगकूं कर्ता जानना । बहुरि उपयोग अर आत्मा एक ही वस्तु है तातैं आत्माहीकूं कर्ता कहिये । आगैं आत्माकै तीन प्रकार परिणाम विकारका कर्तापणा होतैं संतैं पुद्गलद्रव्य है सो आपही कर्मपणारूप होय परिणमै है। ऐसैं कहे हैं । गाथा—

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं ॥२३॥

यं करोति भावमात्मा कर्त्ता स भवति तस्य भावस्य ।
कर्मत्वं परिणमते तस्मिन् स्वयं पुद्गलद्रव्यं ॥२३॥

आत्मख्यातिः—आत्मा ह्यात्मना तथापरिणमनेन यं भावं किल करोति तस्यायं कर्त्ता स्यात्साधकवत् तस्मिन्निमित्ते सति पुद्गलद्रव्यं कर्मत्वेन स्वयमेव परिणमते । तथाहि—यथा साधकः किल तथाविधध्यानभावेनात्मना परिणममानो ध्यानस्य कर्त्ता स्यात् । तस्मिंस्तु ध्यानभावे सकलसाध्यभावानुकूलतया निमित्तमात्रीभूते सति साधकं कर्त्तारमंतरेणापि स्वयमेव बाध्यंते विषव्याधयो, विडंब्यंते योषितो, ध्वंस्यंते बंधास्तथायमज्ञानादात्मा मिथ्यादर्शनादिभावेनात्मनो परिणममाने मिथ्यादर्शनादिभावस्य कर्ता स्यात् । तस्मिंस्तु मिथ्यादर्शनादौ भावे स्वानुकूलतया निमित्तमात्रीभूते सत्यात्मानं कर्तारमंतरेणापि पुद्गलद्रव्यं मोहनीयादिकर्मत्वेन स्वयमेव परिणमते । अज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति तात्पर्यमाह ।

अर्थ—आत्मा है सो जिस भावकूं करे है ताका कर्त्ता आप होय है । बहुरि तिसकूं कर्त्ता होतैं पुद्गलद्रव्य है सो आपै आप कर्मपणारूप परिणमे है ।

टीका—आत्मा है सो निश्चयकरि आपही करि तैसैं परिणमने करि प्रगटपणें जिस भावकूं करे है, ताका यह कर्ता होय है, साधक कहिये मंत्र साधनेवालेकीज्यौं । बहुरि तिस आत्माकूं तैसें निमित्त होतैं पुद्गलद्रव्य है सो कर्मभावरूप आपही परिणमे है । सो ही प्रगटकरि कहे हैं, जैसैं साधक जो मंत्र साधनेवाला पुरुष सो तिस प्रकारका ध्यानरूप भावकरि आपहीकरि परिणमता संता तिस ध्यानका कर्त्ता होय है । बहुरि समस्त जो तिस साधकके साधने योग्य वस्तु तिसका अनुकूलपणाकरि तिस ध्यानभावकूं निमित्तमात्र होतैं संतैं, तिस साधकविना ही, अन्यसर्पादिककी विषकी व्याधि ते स्वयमेव मिटि जाय हैं, तथा स्त्रीजन हैं ते विडंबनारूप होय जाय हैं । बहुरि बंधन हैं ते खुलि जाय हैं । इत्यादि कार्य मंत्रके ध्यानकी सामर्थ्यतैं होय जाय हैं ।

तैसैं ही यह आत्मा अज्ञानतैं मिथ्यादर्शनादि भावकरि परिणमता संता, मिथ्यादर्शनादि भावका कर्ता होय, तब तिस मिथ्यादर्शनादिभावकूं अपने करनेके अनुकूलपणे करि निमित्तमात्र होतैं संतैं, आत्मा जो कर्ता, तिस विना ही पुद्गलद्रव्य आपही मोहनीयादि कर्मभावकरि परिणमे है।

भावार्थ—आत्मा तौ अज्ञानरूप परिणमे है, काहुंसूं ममत्व करे है, काहुंसूं राग करे है, काहूंसूं द्वेष करे है, तिनि भावनिका आप कर्ता होय है। बहुरि तिसकूं निमित्तमात्र होतैं पुद्गलद्रव्य आप अपने भावकरि कर्मरूप होय परिणमे है। परस्पर निमित्तनैमित्तिकभाव है। कर्ता दोऊ अपने अपने भावके हैं यह निश्चय है। आगैं कर्म होय है सो अज्ञानहीतैं होय है यह तात्पर्य कहे हैं। गाथा—

परमप्पाणं कुव्वदि अप्पाणं पि य परं करंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥२४॥

परमात्मानं कुर्वन्नात्मानमपि च परं कुर्वन् सः।
अज्ञानमयो जीवः कर्मणां कारको भवति ॥२४॥

आतमख्यातिः—अयं किलाज्ञानेनात्मा परात्मनोः परस्परविशेषानिर्ज्ञाने सति परमात्मानं कुर्वन्नात्मानं च परं कुर्वन्स्वयमज्ञानमयीभूतः कर्मणां कर्ता प्रतिभाति। तथाहि—तथाविधानुभवसंपादनसमर्थायाः रागद्वेषसुखदुःखादिरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायाः शीतोष्णानुभवसंपादनसमर्थायाः शीतोष्णायाः पुद्गलपरिणामावस्थाया इव पुद्गलादभिन्नत्वेनात्मनो नित्यमेवान्यंतभिन्नायास्तन्निमित्तं तथाविधानुभवस्य चात्मनो भिन्नत्वेन पुद्गलान्नित्यमेवात्यंतभिन्नस्याज्ञानात्परस्परविशेषानिर्ज्ञाने सत्येकत्वाध्यासात् शीतोष्णरूपेणैवात्मना परिणमितुमशक्येन रागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणाज्ञानात्मना परिणममानो ज्ञानस्याज्ञानत्वं प्रकटीकुर्वन्स्वयमज्ञानमयीभूत एषोहं रज्ये इत्यादिविधिना रागादेः कर्मणः कर्ता प्रतिभाति। ज्ञानात्तु न कर्म प्रभवतीत्याह।

अर्थ—जीव है सो आप अज्ञानमयी भया संता परकूं आप करे है, बहुरि आपकूं पर करे है, ऐसैं कर्मनिका कर्ता होय है।

टीका—यह आत्मा प्रगट अज्ञानकरि परकै अर आपकै विशेषका भेदज्ञान न करते संतें परकूं तौ आप करै है बहुरि आपकूं पर करै। ऐसैं आप अज्ञानमयी भया संता कर्मनिका कर्ता होय है, सोही प्रगटकरि कहे हैं। जैसैं शीतउष्णका अनुभव करावनेविषैं समर्थ जो पुद्गलपरिणामकी शीत उष्ण अवस्था है, सो पुद्गलतैं अभिन्नपणाकरि आत्मातैं नित्यही अत्यंत भिन्न है। तैसैंही तिस प्रकारका अनुभव करावनेविषैं समर्थ जो रागद्वेषसुखदुःखादिरूप पुद्गलपरिणामकी अवस्था, सो पुद्गलतैं अभिन्नपणाकरि आत्मातैं नित्यही अत्यंत भिन्न है। बहुरि तिसनिमित्ततैं भये तिस प्रकारका रागद्वेषादिकका अनुभवकै आत्मातैं अभिन्नपणाकरि अर पुद्गलतैं नित्यही अत्यंत भिन्नपणा है। तौऊ तिसरागद्वेषादिकका अर तिसका अनुभवका अज्ञानतैं परस्पर भेदज्ञान नाहीं होतैं एकपणाका निश्चयतैं जैसैं शीत उष्णरूपकरि आत्माकै परिणमनको असमर्थपणा है, तैसैं रागद्वेष सुखदुःखादिरूप भी आपही करि परणमनेका असमर्थपणा है, तौऊ रागद्वेषादिक पुद्गलपरिणामकी अवस्थाकूं तिसके अनुभवका निमित्तमात्र होतैं अज्ञानस्वरूप रागद्वेषादिरूप परिणमता संता अपने ज्ञानके अज्ञानपणाकूं प्रगट करता संता आप अज्ञानमयी भया संता, यह मैं रागी हूं इत्यादि विधानकरि रागादिक कर्मका कर्ता प्रतिभासे है।

भावार्थ—रागद्वेष सुखदुःखादि अवस्था पुद्गलकर्मके उदयका स्वाद है सो यह पुद्गलकर्मतैं अभिन्न है, आत्मातैं अत्यंत भिन्न है, जैसैं शीत उष्णपणा है तैसैं। सो आत्माके अज्ञानतैं याका भेदज्ञान नाहीं। यातैं ऐसा जाने है, जो यह स्वाद मेरा ही है, जातैं ज्ञानकी स्वच्छता ऐसी ही है, जो रागद्वेषादिकका स्वाद शीत उष्णकी ज्यौं ज्ञानमैं प्रतिबिंबित होय, तब ऐसा प्रतिभासै, जानूं की ए ज्ञान ही है, तातैं ऐसैं अज्ञानतैं या अज्ञानी जीवकैं इनिका कर्तापणा भी आया, जातैं याकै ऐसी मान्य भई, जो मैं रागी हौं, द्वेषी हौं, क्रोधी हौं, मानी हौं इत्यादि, ऐसैं कर्ता होय है। आगैं कहे हैं, जो ज्ञानतैं कर्म नाहीं उपजे है। गाथा—

परमप्पाणमकुव्वी अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ॥२५॥

परमात्मानमकुर्वन्नात्मानमपि च परमकुर्वन् ।
स ज्ञानमयो जीवः कर्मणामकारको भवति ॥२५॥

आत्मख्यातिः—अयं किल ज्ञानादात्मा परात्मनोः परस्परविशेषनिर्ज्ञाने सति परमात्मानमकुर्वन्नात्मानं च परमकुर्वन्स्वयं ज्ञानमयीभूतः कर्मणामकर्ता प्रतिभाति । तथाहि—तथाविधानुभवसंपादनसमर्थायाः रागद्वेषसुखदुःखादिरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायाः शीतोष्णानुभवसंपादनसमर्थायाः शीतोष्णायाः पुद्गलपरिणामावस्थाया इव पुद्गलादभिन्नत्वेनात्मनो नित्यमेवात्यंतभिन्नायास्तन्निमित्तं तथाविधानुभवस्य चात्मनो भिन्नत्वेन पुद्गलान्नित्यमेवात्यंतभिन्नस्य ज्ञानात्परस्परविशेषनिर्ज्ञाने सति नानात्वविवेकाच्छीतोष्णरूपेणेवात्मना परिणमितुमशक्येन रागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणाज्ञानात्मना मनागप्यपरिणममानो ज्ञानस्य ज्ञानत्वं प्रकटीकुर्वन् स्वयं ज्ञानमयीभूतः एषोऽहं जानाम्येव, रज्यते तु पुद्गल इत्यादिविधिना समग्रस्यापि रागादेः कर्मणो ज्ञानविरुद्धस्याकर्ता प्रतिभाति । कथमज्ञानात्कर्म प्रभवतीति चेत् ।

अर्थ—जो जीव आत्माकूं पर नाहीं करता है, बहुरि परकूं आत्मा नाहीं करता है, सो जीव ज्ञानमय है, कर्मनिका कारक नाहीं है ।

टीका—यह जीव ज्ञानतैं परका अर आपका परस्पर विशेषकरि भेदज्ञान होतैं परकूं आप नाहीं करता संता वर्ते है, बहुरि आपकूं पर नाहीं करता संता प्रवर्ते है, तब आप ज्ञानी भया संता कर्मनिका अकर्ता प्रतिभासे है । सो ही प्रगटकरि कहे हैं—जैसें शीत उष्ण स्वरूप पुद्गलपरिणामकी अवस्था है सो शीत उष्ण अनुभवन करावनेकूं समर्थ है, सो पुद्गलतैं अभिन्नपणाकरि आत्मातैं नित्य ही अत्यंत भिन्न है, तैसें ही राग द्वेष सुख दुःखादिरूप पुद्गल परिणामकी अवस्था है सो रागद्वेष सुखदुःखादिरूप अनुभवन करावने विषैं समर्थ है, ऐसी अवस्था है निमित्त जाकूं ऐसा बहुरि तिस प्रकारका अनुभव आत्मातैं अभिन्नपणा करि पुद्गलतैं अत्यंत सदा

ही भिन्नताका ज्ञानतैं परस्पर विशेषका भेद ज्ञान होतैं नानापणाका विवेकतैं, जैसैं शीत उष्ण रूप आत्मा आपकरि परिणमनेकूं असमर्थ है, तैसैं राग द्वेष सुख दुःखादिक तिनिरूपकरि नाहीं परिणमता संता ज्ञानके ज्ञानपणाकूं प्रगट करता संता ज्ञानमय भया। ऐसैं जाने है—यह मैं राग द्वेषादिककूं जानूं ही हूं अर ए रागरूप पुद्गल है इत्यादि विधानकरि समस्त ही जे ज्ञानतैं विरुद्ध रागादिक कर्म तिनिका कर्ता नाहीं प्रतिभासे है।

भावार्थ—जब राग द्वेष सुख दुःखावस्थाकूं ज्ञानतैं भिन्न जानै "जो जैसैं पुद्गलकी शीत उष्ण अवस्था है तैसैं राग द्वेषादिक भी हैं ऐसा भेदज्ञान होय" तब आपकूं ज्ञाता जानै रागादि-रूप पुद्गलकूं जानै, ऐसैं होतैं इनिका कर्ता आत्मा नाहीं होय है, ज्ञाता ही रहे है। आगैं पूछे है, जो अज्ञानतैं कर्म कैसैं निपजे है ? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोहं।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥२६॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति क्रोधोहं।
कर्त्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य ॥२६॥

आत्मख्यातिः—एष खलु सामान्येनाज्ञानरूपो मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिरूपस्त्रिविधः सविकारश्चैतन्यपरिणामः परात्मनोरविशेषदर्शनेनाविशेषज्ञानेनाविशेषविरत्या च समस्तं भेदमपह्नुत्य भाव्यभावकभावापन्नयोश्चेतनाचेतनयोः सामान्याधिकरण्येनानुभवनात्क्रोधोहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति। ततोयमात्मा क्रोधोहमिति भ्रांत्या सविकारेण चैतन्यपरिणामेन परिणमन् तस्य सविकारचैतन्यपरिणामरूपस्यात्मभावस्य कर्ता स्यात्। एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन मानमायालोभमोहरागद्वेषकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयान्यनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि।

अर्थ—यह उपयोग है सो तीन प्रकार स्वरूप आपकै विकल्प करे है। जो मैं क्रोधस्वरूप हूं ऐसैं। सो ऐसा अपना उपयोगभावका कर्ता होय है।

टीका—निश्चयकरि यह विकारसहित चैतन्यपरिणाम है सो सामान्यकरि अज्ञानरूप है। सो ही मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरतिरूप तीनप्रकार है। सो यह परिणाम परके अर आत्माके अविशेष अभेद देखनेकरि, अविशेष अभेद जाननेकरि, अविशेषरूप रतिकरि, समस्त भेदकूं छिपाय अर भाव्यभावक भावकूं प्राप्त भये जे चेतन अचेतन दोऊ तिनिका एक आधारकरि, अनुभवन करनेतैं, मैं क्रोध हूं ऐसा आत्माका विकल्प उपजावै है, क्रोध हीकूं आपा जाने है। तातैं यह आत्मा मैं क्रोध हूं ऐसी भ्रांति करि विकारसहित चैतन्यपरिणाम तिसकरि परिणमता संता तिस विकारसहित चैतन्यपरिणामरूप अपने भावका कर्ता होय है। ऐसैं ही जैसें क्रोध कह्या, तैसैं ही क्रोधकी जायगा मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए पद पलटिकरि सोला सूत्र व्याख्यान करना। वहुरि इसही उपदेशकरि अन्य भी विचारणे।

भावार्थ--मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति ऐसैं तीनप्रकार विकारसहित चैतन्यपरिणाम है, सो आपापरका भेद न जानिकरि ऐसैं माने है, जो मैं क्रोधी हूं मैं मानी हूं इत्यादि। सो ऐसा माननेतैं अपना विकार सहित चैतन्यपरिणाम है, ताका यहै अज्ञानी जीव कर्ता होय है। अर कर्ता भया तव ते अज्ञानभाव अपने कर्म भये। ऐसैं अज्ञानहीतैं कर्म होय है। आगें कहे हैं, जो ऐसैं ही धर्मद्रव्य आदि अन्य द्रव्यनिके विषैं आत्मविकल्प करे है। गाथा--

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादि।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥२७॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति धर्मादिकं।
कर्त्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य ॥२७॥

आत्मख्यातिः—एष खलु सामान्येनाज्ञानरूपो मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिरूपस्त्रिविधः सविकारश्चैतन्यपरिणामः

परस्परमविशेषदर्शनेनाविशेषज्ञानेनाविशेषविरत्या च समस्तं भेदमपह्नुत्य ज्ञेयज्ञायकभावापन्नयोः परात्मनोः सामान्याधिकरण्येनानुभवनाद्धर्मोहमधर्मोहमाकाशमहं कालोहं पुद्गलोहं जीवांतरमहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति । ततोयमात्मा धर्मोहमधर्मोहमाकाशमहं कालोहं पुद्गलोहं जीवांतरमहमिति भ्रांत्या सोपाधिना चैतन्यपरिणामेन 'परिणमन् तस्य सोपाधिचैतन्यपरिणामत्वरूपस्यात्मभावस्य कर्ता स्यात् । ततः स्थितं कर्तृत्वमूलमज्ञानं ।

अर्थ—यह उपयोग है सो तीन प्रकार भया संता धर्म आदिक द्रव्यरूप आत्मविकल्प करे है तिनिकूं आपा जाने है, सो तिस उपयोगरूप अपना भावका कर्ता होय है ।

टीका—यह सामान्यकरि अज्ञानरूप सविकार चैतन्यपरिणाम सो ही मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरतिरूप तीन प्रकार है, सो यह जीव परका अर आपका परस्पर विशेष नाहीं देखनेकरि तथा अविशेष अधर्म द्रव्य हूं मैं रतिकरि समस्त भेदनिकूं लोपकरि ज्ञेयज्ञायकभावकूं प्राप्त जे धर्म आदि द्रव्य तिनिकूं अपना अर तिनिका एक आधारके अनुभवन करनेतैं ऐसैं माने है—जो मैं धर्मद्रव्य हूं मैं अधर्म द्रव्य हूं मैं आकाशद्रव्य हूं मैं कालद्रव्य हूं मैं पुद्गलद्रव्य हूं मैं अन्य जीव भी हूं ऐसैं भ्रमकरि उपाधि सहित अपना भया जो चैतन्यपरिणाम, तिसकरि परिणमता संता, तिस उपाधिसहित चैतन्यपरिणामरूप जो अपना भाव, ताका कर्ता होय है ।

भावार्थ—यह आत्मा अज्ञानतैं धर्मादिद्रव्यविषैं भी आपा माने है, सो तिस अपना अज्ञानरूप चैतन्यपरिणामका आप कर्ता होय है। इहां कोई पूछै—पुद्गल अर अन्य जीव तौ प्रवृत्तिमैं दीखैं, तिनिविषैं तौ अज्ञानतैं आपा मानना समझौ । बहुरि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य तौ दृष्टिगोचर नाहीं, तिनिविषैं आपा मानना कह्या, सो कैसैं ? ताका समाधान—जो धर्मादिकका भी लक्षण अनुभवनमैं आवे है । तहां धर्म अधर्मका तौ गतिहेतुपणा स्थितिहेतुपणा है, तिनिकूं गमन करना तिष्ठना जातैं होय तिसविषैं ममत्वबुद्धि होय है । बहुरि आकाशका अवगाहरूप क्षेत्रविषैं ममत्व होय है । अर कालका समय मुहूर्त आदिमैं मरना जीवना आदि कार्य

होय तिस विषैं ममत्वबुद्धि होय है, ऐसैं जानना । आगे कहे हैं जो इस हेतुतैं कर्तापणाका मूल अज्ञान ठहरया । गाथा—

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण ॥२८॥

एवं पराणि द्रव्याणि आत्मानं करोति मंदबुद्धिस्तु ।
आत्मानमपि च परं करोति अज्ञानभावेन ॥२८॥

आत्मख्यातिः—यत्किल क्रोधोहमित्यादिवद्धर्मोहमित्यादिवच्च परद्रव्याण्यात्मीकरोत्यात्मानमपि परद्रव्यीकरोत्येवमात्मा, तदयमशेषवस्तुसंबंधविधुरनिरवधिविशुद्धचैतन्यधातुमयोप्यज्ञानादेव सविकारसोपाधीकृतचैतन्यपरिणामतया तथाविधस्यात्मभावस्य कर्ता प्रतिभातीत्यात्मनो भूताविष्टध्यानाविष्टस्येव प्रतिष्ठितं कर्तृत्वमूलमज्ञानं । तथाहि—यथा खलु भूताविष्टोऽज्ञानाद् भूतात्मानावेकीकुर्वन्नमानुषोचितविशिष्टचेष्टावष्टंभनिर्भरभयंकरारंभगंभीरामानुषव्यवहारतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । तथायमात्माप्यज्ञानादेव भाव्यभावकौ परात्मानावेकीकुर्वन्नविकारानुभूतिमात्रभावकानुचितविचित्रभाव्यक्रोधादिविकारकरंबितचैतन्यपरिणामविकारतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । यथा वा परीक्षकाचार्यादेशेन मुग्धः कश्चिन्महिषध्यानाविष्टोऽज्ञानान्महिषात्मानावेकीकुर्वन्नात्मन्यभ्रंकषविषाणमहामहिषत्वाध्यासात्प्रच्युतमानुषोचितापवरकद्वारविनिस्सरणतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । तथायमात्माप्यज्ञानाद् ज्ञेयज्ञायकौ परात्मानावेकीकुर्वन्नात्मनि परद्रव्याध्यासान्नोइंद्रियविषयीकृतधर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवांतरनिरुद्धचैतन्यधातुतया तथेंद्रियविषयीकृतरूपिपदार्थतिरोहितकेवलबोधतया मृतककलेवरमूर्च्छितपरमामृतविज्ञानघनतया च तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । ततः स्थितमेतद् ज्ञानान्नश्यति कर्तृत्वं ।

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार मंदबुद्धि अज्ञानी है सो अज्ञानभावकरि परद्रव्यनि कूं आपा करे है बहुरि आपकूं पर करे है ।

टीका—जो प्रगटपणैं यह आत्मा मैं क्रोध हूं इत्यादिवत् बहुरि मैं धर्मद्रव्य हूं इत्यादिवत् पूर्वोक्त प्रकार परद्रव्यनिकूं आपा करे है अर आत्माकूं परद्रव्यरूप करे है । सो यह आत्मा यद्यपि सम-

स्तवस्तूका संबंधसूं रहित अमर्यादरूप शुद्धचैतन्य धातुमय है तौऊ अज्ञानतैं सविकार सोपाधिरूप किया जो अपना चैतन्यपरिणाम, तिसपणाकरि तिसप्रकारका अपना परिणामका कर्ता प्रतिभासे है। ऐसैं आत्माकै भूताविष्टपुरुषकी ज्यौं तथा ध्यानाविष्टपुरुषकीज्यौं कर्तापणाका मूल अज्ञान प्रतिष्ठित भया, प्रगटपणैं ठहरया। सोही प्रगट दृष्टांतकरि दिखावे हैं--जैसैं कोई पुरुष भूताविष्ट भया अपना शरीरमैं भूत प्रवेश कीया, सो वह पुरुष अज्ञानतैं भूतकूं अर आपकूं एकरूप करता संता जैसी मनुष्यके योग्य चेष्टा न होय तैसी करने लगा, तिस चेष्टाका आलंबनरूप अतिभयकारी आरंभकरि भरया अमानुष व्यवहारपणाकरि तिसप्रकार चेष्टारूप भावका कर्ता प्रतिभासे है, तैसैं ही यह आत्मा भी अज्ञानहीतैं पर अर आत्माकूं भाव्यभावकरूप एक करता संता निर्विकार अनुभूतिमात्र भावकके अयोग्य अनेक प्रकार भाव्यरूप क्रोधादि विकारकरि मिल्या चैतन्यका विकारसहित परिणामपणाकरि तिसप्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासे है। बहुरि जैसैं कोई भोला पुरुष अपरीक्षक आचार्यका उपदेशकरि भैंसेका ध्यान करने लगा, सो अज्ञानतैं भैंसेकूं अर आपकूं एकरूप करता आपकेविषैं अभ्रंकष कहिये बादलकूं स्पर्शतैं भेदतैं सींग जाकै ऐसा महान् बड़ा भैंसापणाका अध्यासतैं मनुष्यके योग्य जो ओवराकुटीका द्वारतैं नीसरणा तिसतैं च्युत भया तिसप्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासे है। तैसैं ही यह आत्मा भी अज्ञानतैं ज्ञेयज्ञायक जे पर अर आत्मा तिनिकूं एकरूप करता आत्माकेविषैं परद्रव्यके अध्यास निश्चयतैं मनके विषयरूप किये धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, अन्य जीवद्रव्य, तिनिकरि रुकी जो शुद्धचैतन्यधातु तिसपणाकरि तथा इंद्रियनिके विषयरूप किये जे रूपी पदार्थ तिनिकरि तिरोहित किया ढक्या गया जो अपना केवल एकज्ञान तिसपणाकरि तथा मृतकशरीरविषैं मूर्छित भया परम अमृतरूप विज्ञानघन आत्मा तिसपणा करि तिसप्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासे है।

भावार्थ—यह आत्मा अज्ञानतैं क्रोधादिककूं तौ भाव्यभावकसंबंधतैं आपतैं एक रूप माने है। अर धर्मादि द्रव्य ज्ञेय रूप हैं, तिनिकूं आपतैं एक करि माने है। सो जैसा आपका भाव

होय है तिस भावका कर्ता होय है। तहां क्रोधादिकतैं एक माननेका तौ भूताविष्ट पुरुषका दृष्टांत है। बहुरि धर्मादि अन्य द्रव्यतैं एकता माननेका ध्यानाविष्ट पुरुषका दृष्टांत है। आगें कहे हैं, जो इस ही कारणतैं यह ठहरया जो ज्ञानतैं कर्तापणाका नाश होय है। गाथा—

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ॥२९॥

एतेन तु स कर्तात्मा निश्चयविद्भिः परिकथितः।
एवं खलु यो जानाति स मुंचति सर्वकर्तृत्वं ॥२९॥

आत्मख्यातिः—येनायमज्ञानात्परात्मनोरेकत्वविकल्पमात्मनः करोति तेनात्मा निश्चयतः कर्ता प्रतिभाति। यस्त्वेवं जानाति स समस्तं कर्तृत्वमुत्सृजति, ततः स खल्वकर्ता प्रतिभाति। तथाहि—इहायमात्मा किलाज्ञानी सन्नज्ञानादासंसारप्रसिद्धेन मिलितस्वादस्वादनेन मुद्रितभेदसंवेदनशक्तिरनादित एव स्यात् ततः परात्मानावेकत्वेन जानाति ततः क्रोधोहमित्यादिविकल्पमात्मनः करोति ततो निर्विकल्पादकृतकादेकस्माद्विज्ञानघनात्प्रभ्रष्टो वारंवारमनेकविकल्पैः परिणमन् कर्ता प्रतिभाति। ज्ञानी तु सन् ज्ञानात्तदादिप्रसिद्धया प्रत्येकस्वादस्वादनेनोन्मुद्रितभेदसंवेदनशक्तिः स्यात्। ततोऽनादिनिधनानवरतस्वदमाननिखिलरसांतरविविक्तात्यंतमधुरचैतन्यैकरसोयमात्मा भिन्नरसाः कषायास्तैः सह यदेकत्वविकल्पकरणं तदज्ञानादित्येवं नानात्वेन परात्मानौ जानाति। ततोऽकृतकमेकं ज्ञानमेवाहं न पुनः कृतकोऽनेकः क्रोधादिरपीति क्रोधोहमित्यादिविकल्पमात्मनो मनागपि न करोति ततः समस्तमपि कर्तृत्वमपास्यति। ततो नित्यमेवोदासीनावस्थो जानन् एवास्ते। ततो निर्विकल्पोऽकृतक एको विज्ञानघनो भूतोऽत्यंतमकर्ता प्रतिभाति।

अर्थ—इस पूर्वोक्त कारणतैं निश्चयनयके जाननेवाले ज्ञानी हैं तिनिनैं सो पूर्वोक्त प्रकार आत्माकूं कर्ता कह्या तिस प्रकारकूं जो जाने है सो ज्ञानी होय है, सो सर्व कर्तापणाकूं छोड़े है।

टीका—जा कारण करि यह आत्मा अज्ञानतैं परकै अर आत्माके एकपणाका विकल्प करे है, तिस कारण करि निश्चयतैं कर्त्ता प्रतिभासे है, ऐसैं जो जाने है सो समस्त कर्तापणाकूं छोडे है, तातैं सो अकर्ता प्रतिभासे है। सो ही प्रगट करि कहे हैं। इस जगत विषैं यह आत्मा प्रगट

अज्ञानी भया संता अज्ञानतैं अनादि संसारतैं लगाय पुद्‌गल कर्मका अर आपका भावका मिल्या हुआ आस्वादका स्वाद लेने करि मुद्रित भई है अपना जुदा अनुभवनकी शक्ति जाकी ऐसी अनादि ही तैं है। तातैं परकूं अर आपकूं एकपणाकरि जाने है। तातैं मैं क्रोध हौं इत्यादिक विकल्प आपकै करे है। तातैं निर्विकल्परूप अकृत्रिम एक जो अपना विज्ञानघन स्वभाव तातैं भ्रष्ट भया संता, बारंबार अनेक विकल्पनिकरि परिणमता संता कर्ता प्रतिभासे है। बहुरि ज्ञानी होय तब सम्यग्ज्ञानतैं तिस सम्यग्ज्ञानकूं आदि लगाय करि प्रसिद्ध भया जो पुद्‌गलकर्मके स्वादतैं अपना भिन्न स्वाद, तिसका आस्वादनकरि उघडी है भेदके अनुभवकी शक्ति जाकी ऐसा होय है, तब ऐसा जाने है, जो अनादिनिधन निरंतर स्वादमैं आवता समस्त अन्य रस स्वादनितैं विलक्षण भिन्न अत्यन्त मधुर मीठा जो एक चैतन्यस्वरूप रस तिस स्वरूप तौ यह आत्मा है। बहुरि कषाय यातैं भिन्न रस हैं, कषायले वे स्वाद हैं तिनि करि सहित जो एकपणाका विकल्प करना है सो अज्ञानतैं है। ऐसैं इस प्रकार परकूं अर आत्माकूं न्यारे न्यारे नानापणा करि जाने है। तातैं अकृत्रिम नित्य एक ज्ञान ही मैं हूं बहुरि कृत्रिम अनित्य अर अनेक जे ए क्रोधादिक ते मै नाहीं हौं ऐसैं जानै तब क्रोधादिक मैं हौं इत्यादिक विकल्प आपके किंचिन्मात्र भी नाहीं करे है, तातैं समस्त ही कर्तापणाकूं छोडे है, तातैं सदा ही उदासीन वीतराग अवस्था स्वरूप होय जानता संता ही तिष्ठे है, तातैं निर्विकल्पस्वरूप अकृत्रिम नित्य एक विज्ञानघन भया संता अत्यन्त अकर्ता प्रतिभासे है।

भावार्थ—जो पर द्रव्यका अर पर द्रव्यके भावनिका अपने कर्तापणाकूं अज्ञान जाने तब आप कर्ता काहेकूं बने? अज्ञानी रहना होय तौ पर द्रव्यका कर्ता बनै तातैं ज्ञान भये पीछै पर द्रव्यका कर्तापणा न रहै। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः ।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धया गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालं ॥१२॥

अर्थ--जो पुरुष आप निश्चयतैं ज्ञानस्वरूप होता संता भी अज्ञानतैं तृण सहित अन्नादिक सुन्दर आहारकूं मिल्या हुआ खानेवाला हस्ती आदि तिर्यंचकी ज्यौं होय प्रसन्न होय है, सो कहा करे है ताका दृष्टांत कहे हैं। जैसें कोई रसाल कहिये शिखरिणीकूं पीयकरि तिसके दही मीठेका मिल्या हुवा खाटा मीठा रस, तिसकी अति चाहि करि तिसका रस भेदकूं न जानि करि दूधके अर्थि गऊकूं दोहे है।

भावार्थ--कोई पुरुष शिखरिणी पीय करि ताके स्वादकी अति चाहितैं रसका ज्ञान विना ऐसा जान्या जो यह गऊका दूधमें स्वाद है। सो गऊकूं अति लुब्ध होय दोहे है, तैसें अज्ञानी पुरुष आपा परका भेद न जानि विषयनिमैं स्वाद जानि पुद्गल कर्मकूं अति लुब्ध होय ग्रहण करे है, अपना ज्ञानका अर पुद्गल कर्मका स्वाद भिन्न नाहीं अनुभवे है। तिर्यंचकी ज्यौं अन्नकूं घासमें मिल्या एक स्वाद ले है। फेरि कहे हैं, जो ऐसें अज्ञानतैं पुद्गल कर्मका कर्ता होय है।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावंति पातुं मृगा अज्ञानात्तमसि द्रवंति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः ।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिवत् शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवंत्याकुलाः ॥१३॥

अर्थ--ए लोकके जन हैं ते निश्चयकरि शुद्ध एक ज्ञानमय हैं, तौऊ आप अज्ञानतैं व्याकुल होय परद्रव्यका कर्तारूप होय हैं। जैसें पवनकरि कल्लोलनिसहित समुद्र होय है, तैसें विकल्पनिके समूह करै है यातैं कर्ता बने हैं। देखो--अज्ञानहीतैं मृग हैं ते भाडलीकूं जल जानि पीवनेकूं दौडे हैं, बहुरि अज्ञानहीतैं लोक अंधकारमें जेवडेविषैं सर्पका निश्चय करि भयकरि भागे हैं।

भावार्थ--अज्ञानतैं कहा कहा न होय? मृग तौ भाडलीकूं जल जानि पीवनेकूं दौडि खेदखिन्न

होय है। लोक अंधारे में जेवडेकूं सर्प मानि डरिकरि भागे हैं। ऐसैं ही यह आत्मा, जैसैं वातकरि समुद्र क्षोभरूप होय, तैसैं अज्ञानकरि अनेक विकल्पनितैं क्षोभरूप होय है। सो परमार्थतैं शुद्धज्ञानघन है, तौऊ अज्ञानतैं कर्ता होय है।

वसन्ततिलकाछन्दः

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो जानाति हंस इव वाःपयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो जानाति एव हि करोति न किंचनापि ॥१४॥

अर्थ- जो पुरुष ज्ञानतैं बहुरि विवेकी भेदज्ञानीपणातैं परका अर आत्माका विशेषकरि भेद जाने है "जैसैं हंस दूधजल मिले हुये हैं, तौऊ तिनिका भेदकरि ग्रहण करे है तैसैं" सो पुरुष चैतन्यधातु अचलकूं सदा आश्रय करता संता जाने ही है, ज्ञाता ही है, किछू भी नाहीं करे है।

भावार्थ-आपापरका भेद जाने है सो ज्ञाता ही है, कर्ता नाहीं है। आगैं कहे हैं, जो जानिये है सो ज्ञानहीतैं जानिये है।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिंदती कर्तृभावं ॥१५॥

अर्थ—अग्निकी अर जलकी उष्णपणाकी अर शीतपणाकी व्यवस्था है सो ज्ञानहीतैं जानिये है। बहुरि लवणका अर व्यंजनका स्वादका भेद है सो ज्ञानहीतैं जानिये है। बहुरि अपने रसकरि विकासरूप होता जो नित्य चैतन्यधातु, ताका अर क्रोधादिक भावका भेद है सो भी ज्ञानहीतैं जानिये है। कैसा है यह भेद? कर्तापणाका भाव है ताकूं भेदरूप करता संता प्रगट होय है। फेरि कहे हैं, जो आत्मा कर्ता होय है, तौऊ अपने ही भावका है।

अनुष्टुपछन्दः

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमंजसा। स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥१६॥

अर्थ--ऐसैं अज्ञानरूपभी तथा ज्ञान रूप भी आत्माहीकूं करता संता आत्मा प्रगटपणै अपने ही भावका कर्ता है, परभावका कर्ता तौ कहूं ही नाहीं है। आगैं अगली गाथाकी सूचनिकारूप श्लोक है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किं। परभावस्य कर्तात्मा मोहोयं व्यवहारिणां ॥१७॥

तथा हि—

अर्थ--आत्मा ज्ञानस्वरूप है, सो आप ज्ञान ही है, ज्ञानतैं अन्यकूं कौनकूं करै? काहूकूं न करै। बहुरि परभावका कर्ता आत्मा है यह मानना तथा कहना है सो व्यवहारी जिवनिका मोह है अज्ञान है। आगैं सो ही कहे हैं, जो व्यवहारी जीव ऐसैं कहे हैं। गाथा—

ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥३०॥

व्यवहारेण त्वात्मा करोति घटपटरथान् द्रव्याणि।
करणानि च कर्माणि च नोकर्माणीह विविधानि ॥३०॥

आत्मख्यातिः—व्यवहारिणां हि यतो यथायमात्मात्मविकल्पव्यापाराभ्यां घटादिपरद्रव्यात्मकं बहिःकर्म कुर्वन् प्रतिभाति ततस्तथा क्रोधादिपरद्रव्यात्मकं च समस्तमंतःकर्मापि करोत्यविशेषादित्यस्ति व्यामोहः। स न सन्।

अर्थ--आत्मा व्यवहारकरि घट पट रथ इनि वस्तूनिकूं करे है, बहुरि इंद्रियादिक करण पदार्थ हैं तिनिकूं करे है, बहुरि ज्ञानावरणादि तथा क्रोधादिक द्रव्यकर्म भावकर्मनिकूं करे है, बहुरि शरीर आदि अनेक प्रकारके नोकर्मनिकूं करे है।

टीका--जातैं व्यवहारी जीवनिकै यह आत्मा, जैसैं अपने विकल्प अर व्यापार इनि दोऊनिकरि घट आदि परद्रव्यस्वरूप बाह्यकर्म करता संता प्रतिभासे है, तातैं तैसैं ही क्रोधादिक

परद्रव्यस्वरूप समस्त ही अंतरंगकर्मकूं करे है। जातैं दोऊ परद्रव्यस्वरूप हैं, इनिके करनेमें विशेष नाहीं ऐसैं व्यवहारी जीवनिकै व्यामोह है, अज्ञान है।

भावार्थ–परद्रव्यनिका कर्ता आपकूं मानना यह व्यवहार है। सो परमार्थदृष्टिमें यह अज्ञान है। आगैं कहे हैं, यह व्यवहारका मानना परमार्थदृष्टिमें भला नाहीं, सत्यार्थ नाहीं। गाथा–

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥३१॥

यदि स परद्रव्याणि च कुर्यान्नियमेन तन्मयो भवेत्।
यस्मान्न तन्मयस्तेन स न तेषां भवति कर्ता ॥३१॥

आत्मख्यातिः—यदि खल्वयमात्मा परद्रव्यात्मकं कर्म कुर्यात् तदा परिणामपरिणामिभावान्यथानुपपत्तेर्नियमेन तन्मयः स्यात् न च द्रव्यांतरमयत्वे द्रव्योच्छेदापत्तेस्तन्मयोऽस्ति। ततो व्याप्यव्यापकभावेन न तस्य कर्तास्ति। निमित्त-नैमित्तकभावेनापि न कर्तास्ति।

अर्थ–जो आत्मा परद्रव्यनिकूं करै, तौ सो आत्मा तिनि परद्रव्यनितैं नियमकरि तन्मय होय जाय। बहुरि तन्मय नाहीं होय है, तिसकारणकरि तिनिका कर्ता नाहीं है।

टीका—जो निश्चयकरि यह आत्मा परद्रव्यस्वरूप कर्मकूं करे तौ, परिणामपरिणामि भाव की अन्यथा अप्राप्तितैं नियमकरि तन्मय होय। सो ऐसैं होय नाहीं। जो ऐसैं होय, तौ अन्य द्रव्यतैं अन्यद्रव्य तन्मय होने तैं, अन्यद्रव्यका उच्छेद होय, नाश होय। तातैं व्याप्यव्यापकभाव करि तौ, तिस परद्रव्यका कर्ता आत्मा नाहीं है।

भावार्थ–अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्य कर्ता होय, तौ न्यारे न्यारे द्रव्य काहेकूं रहै? अन्य द्रव्यका नाश होय। यह बड़ा दोष आवै। तातैं अन्यद्रव्यका कर्ता अन्यद्रव्यकूं कहना भला नाहीं। आगैं कोई जानेगा, कि व्याप्यव्यापकभावकरि तौ कर्ता नाहीं; तथापि निमित्तनैमित्तिक भावकरि तौ

कर्ता होगा । ताकूं निषेधै हैं—जो निमित्तनैमित्तिक भावकरि भी कर्ता नाहीं है । गाथा—

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगो उप्पादगा य सो तेसिं हवदि कत्ता ॥३२॥

जीवो न करोति घटं नैव पटं नैव शेषकानि द्रव्याणि ।
योगोपयोगावुत्पादकौ च तयोर्भवति कर्त्ता ॥३२॥

आत्मख्यातिः—यत्किल घटादि क्रोधादि वा परद्रव्यात्मकं कर्म तदयमात्मा तन्मयत्वानुषंगाद् व्याप्यव्यापकभावेन तावन्न करोति नित्यकर्तृत्वानुषंगान्निमित्तनैमित्तिकभावेनापि न तत्कुर्यात् । अनित्यौ योगोपयोगावेव तत्र निमित्तत्वेन कर्त्तारौ योगोपयोगयोस्त्वात्माविकल्पव्यापारयोः कदाचिदज्ञानेन करणादात्मापि कर्तास्तु तथापि न परद्रव्यात्मककर्मकर्ता स्यात् । ज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता स्यात् ।

अर्थ—जीव है सो घटकूं नाहीं करे है, वहुरि पटकूं नाहीं करे है, वहुरि शेष जे वाकी सर्वही द्रव्य हैं; तिनिकूं काहूहीकूं नाहीं करे है । जीवके योग अर उपयोग हैं, ते दोऊ तिनि घटादिकके उपजावनेके उत्पादक निमित्त हैं । अर जीव है सो तिनि उपयोगनिका कर्ता है ।

टीका—जो किछू घटादिक तथा क्रोधादिक परद्रव्यस्वरूप प्रगट कर्म देखिये हैं, तिनिकूं यह आत्मा व्याप्यव्यापकभावकरि तौ नाहीं करे है । जो ऐसैं करे तौ, तिनितैं तन्मयपणाका प्रसंग आवै वहुरि निमित्तनैमित्तिक भावकरि भी नाहीं करे है । जातैं ऐसैं करे तौ, सदा सर्व अवस्थामें कर्तापणाका प्रसंग आवै । तो इनि कर्मनिकूं कौन करे है सो कहे हैं। जो इस आत्माके योग, मन, वचनकायके निमित्ततैं प्रदेशनिका चलना, अर उपयोग जो ज्ञानका कषायनितैं उपयुक्त होना, ए दोऊ अनित्य हैं, सर्व अवस्थामें व्यापक नाहीं, ते तिनि घटादिककूं तथा क्रोधादिक परद्रव्यस्वरूपकर्मनिकूं निमित्तमात्रकरि कर्ता कहिये हैं । वहुरि ते योग उपयोग हैं । ते योग तौ आत्माके प्रदेशनिका चलनरूप व्यापार हैं अर उपयोग है सो आत्माका चैतन्यका रागादि विकाररूप परि-

णाम है, तिनि दोऊनिका कदाचित्काल अज्ञानतैं इनिकूं करनेतैं इनिका आत्माकूं भी कर्ता कहिये है। परंतु परद्रव्यस्वरूप कर्मका तौ कर्ता कदाचित् भी नाहीं है।

भावार्थ—आत्माके योग उपयोग तौ घटादि तथा क्रोधादिककूं निमित्त हैं। तिनिकूं तौ तिनिका निमित्तकर्ता कहिये। अर आत्माकूं तिनिका कर्ता न कहिये। अर आत्माकूं योगोपयोगका कर्ता संसारावस्थामैं अज्ञानतैं कहिये। इहां तात्पर्य ऐसा–जो द्रव्यदृष्टिकरि तौ कोई द्रव्य अन्य काहू द्रव्यका कर्ता नाहीं, बहुरि पर्यायदृष्टिकरि कोई द्रव्यका पर्याय कदाकाल काहू अन्य द्रव्यके पर्यायकूं निमित्त होय है सो इस अपेक्षा अन्यके परिणाम अन्यके परिणामका निमित्तकर्ता कहिये, बहुरि परमार्थतैं द्रव्य अपने परिणामका कर्ता है, अन्यके परिणामका अन्य द्रव्य कर्ता नाहीं है, ऐसा जानना। आगैं ऐसा कहे हैं, जो, ज्ञानी ज्ञानहीका कर्ता है। गाथा—

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥२३॥

ये पुद्गलद्रव्याणां परिणामा भवंति ज्ञानावरणानि।
न करोति तान्यात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥२३॥

आत्मख्यातिः—ये खलु पुद्गलद्रव्याणां परिणामा गोरसव्याप्तदधिदुग्धमधुराम्लपरिणामवत्पुद्गलद्रव्यव्याप्तत्वेन भवंतो ज्ञानावरणानि भवंति तानि तटस्थगोरसाध्यक्ष इव न नाम करोति ज्ञानी किंतु न यथा स गोरसाध्यक्षस्तद्दर्शनमात्मव्याप्तत्वेन प्रभवद्व्याप्य पश्यत्येव तथा पुद्गलद्रव्यपरिणामनिमित्तं ज्ञानमात्मव्याप्यत्वेन प्रभवद्व्याप्य जानात्येव ज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता स्यात्। एवमेव च ज्ञानावरणपदपरिवर्तनेन कर्मसूत्रस्य विभागेनोपन्यासाद्दर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायसूत्रैः सप्तभिः सह मोहरागद्वेषक्रोधमानमायालोभनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि। अज्ञानी चापि परभावस्य न कर्ता स्यात्।

अर्थ—जे ज्ञानावरणादिक पुद्गलद्रव्यनिके परिणाम हैं, तिनिकूं आत्मा नाहीं करे है। जो जाने है सो ज्ञानी है।

टीका—जे निश्चयनयकरि ज्ञानावरणरूप परिणाम हैं, ते "जैसैं गोरसमें व्याप्त दही, दूध, मीठा, खाटा परिणाम हैं" तैसैं पुद्गलद्रव्यतैं व्याप्तपणाकरि होते संते पुद्गलद्रव्यहीके परिणाम हैं। तिनिकूं जैसैं गोरसके निकट बैठा पुरुष तिसके परिणामकूं देखे जाने है, तैसैं आत्मा ज्ञानी तिनि पुद्गलके परिणामनिका ज्ञाता द्रष्टा है, कर्ता नाहीं है। तौ कहा है? जैसैं गोरसकूं गोरसके निकट बैठा पुरुष तिसकूं देखे है। तिस देखनेरूप अपने परिणामतैं व्याप्तपणेरूप होता संता तिसकूं व्याप्यकरि देखे ही है। तैसैं ही पुद्गलपरिणाम है निमित्त जाकूं ऐसा अपना ज्ञान, ताकूं आपतैं व्याप्यपणाकरि होता, ताकूं व्याप्यकरि जाने ही है। ऐसैं ज्ञानी ज्ञानहीका कर्ता होय है। ऐसैं ही ज्ञानावरणपदकूं पलटिकरि कर्म सूत्रका विभागकरि स्थापनेतैं, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय इनिके सूत्र सात करि, बहुरि तिनिकरि सहित मोह, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ए सोलह सूत्र व्याख्यानरूप करणे। बहुरि इसही रीतिकरि अन्य भी विचारणे। आगैं कहे हैं, जो अज्ञानी है, सो भी परद्रव्यके भावका कर्ता नाहीं है। गाथा—

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥३४॥

यं भावं शुभमशुभं करोत्यात्मा स तस्य खलु कर्ता।
तत्तस्य भवति कर्म स तस्य तु वेदक आत्मा ॥३४॥

आत्मख्यातिः—इह खल्वनादेरज्ञानात्परात्मनोरेकत्वाध्यासेन पुद्गलकर्मविपाकदशाभ्यां मंदतीव्रस्वादाभ्यामचलितविज्ञानघनैकस्वादस्याप्यात्मनः स्वादं भिंदानः शुभमशुभं वा योयं भावमज्ञानरूपमात्मा करोति स आत्मा तदा तन्मयत्वेन तस्य भावस्य भावकत्वाद्भवत्यनुभविता, स भावोपि च तदा तन्मयत्वेन तस्यात्मनो भाव्यत्वात् भवत्यनुभाव्यः। एवमज्ञानी चापि परभावस्य न कर्ता स्यात्। न च परभावः केनापि कर्तुं पार्येत।

अर्थ—आत्मा है सो जिस शुभाशुभ अपने भावकूं करे है, सो तिसभावका कर्ता निश्चयतैं होय है, बहुरि सो भाव तिसका कर्म होय है, बहुरि सो ही आत्मा तिस भावरूप कर्मका वेदक भोक्ता होय है।

टीका—इस लोकविषैं आत्मा है सो अनादि अज्ञानतैं परका अर आत्माका एकपणाका निश्चयकरि, तीव्र मंद स्वादरूप जे पुद्गलकर्मकी दोय दशा, तिनिकरि यद्यपि आप अचलित विज्ञानघनरूप एकस्वादस्वरूप है, तौऊ स्वादकूं भेदरूप करता संता शुभ तथा अशुभ जो अज्ञानरूप भाव ताकूं करे है सो आत्मा तिस काल तिस भावतैं तन्मयपणाकरि तिस भावका व्यापकपणाकरि तिस भावका कर्ता होय है। बहुरि सो वह भाव भी तिस काल तिस आत्माके तन्मयपणाकरि, तिस आत्माके व्याप्य होय है। तातैं ताका कर्म होय है। बहुरि सो ही आत्मा तिस काल तिस भावतैं तन्मयपणाकरि, तिस भावका भावक होय है, तातैं ताका अनुभवन करनेवाला भोक्ता होय है। बहुरि सो भाव भी तिस काल तिस आत्माके तन्मयपणाकरि, तिस आत्माके भावनेयोग्य होय है। तातैं अनुभवने योग्य होय है। ऐसैं अज्ञानी है। सो भी परभावका कर्ता नाहीं है।

भावार्थ—अज्ञानी भी अपना अज्ञानभावरूप शुभाशुभभावनिहीका कर्ता अज्ञानावस्थामैं है। परद्रव्यके भावका तौ कर्ता कदाचित् भी नाहीं है। आगैं कहे हैं, जो परभाव कोई ही करि करनेकूं समर्थ न हूजिये है यह न्याय है। गाथा—

जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्ण दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥३५॥

यो यस्मिन् गुणो द्रव्ये सोन्यस्मिंस्तु न संक्रामति द्रव्ये।
सोन्यदसंक्रांतः कथं तत्परिणामयति द्रव्यं ॥३५॥

आत्मख्यातिः—इह किल यो यावान् कश्चिद्वस्तुविशेषो यस्मिन् यावति कस्मिंश्चिच्चिदात्मन्यचिदात्मनि वा द्रव्ये गुणे च स्वरसत एवानादित एव वृत्तः स खल्वचलितस्य वस्तुस्थितिसीम्नो भेत्तुमशक्यत्वात्तस्मिन्नेव वर्तते न पुनः द्रव्यांतरं गुणांतरं वा संक्रामेत। द्रव्यांतरं गुणांतरं वाऽसंक्रामंश्च कथं त्वन्यं वस्तुविशेषं परिणामयेत्। अतः परभावः केनापि न कर्तुं पार्येत। अतः स्थितः खल्वात्मा पुद्गलकर्मणामकर्ता।

अर्थ—जो द्रव्य जिस अपने द्रव्यस्वभावविषैं तथा अपने जिसगुणविषैं वर्तै है, सो द्रव्य अन्य-द्रव्यविषैं तथा गुणविषैं संक्रमणरूप नाहीं होय है, पलटिकरि अन्यविषैं मिलै नाहीं है। सो अन्य-विषैं नाहीं मिलता संता तिस अन्य द्रव्यकूं कैसैं परिणमावै ? कदाचित् नाहीं परिणमावै।

टीका—इस लोक विषैं जो जेते वस्तुविशेष हैं सो जेतैं अपने चैतन्यस्वरूप तथा अचेतनस्वरूप द्रव्यविषैं तथा अपना गुणविषैं अपना निजरसते ही अनादितैं वर्तै हैं। सो निश्चयकरि अचलित जो अपनी वस्तुस्थितिकी मर्यादा ताकूं भेदनेकूं असमर्थ है। तातैं अपने स्वभाव ही में वर्तै है। द्रव्यांतर तथा गुणांतरसूं संक्रमणरूप नाहीं होय हैं, पलटै नाहीं हैं। ऐसैं अन्य द्रव्यरूप तथा अन्य गुणरूप न होता संता अन्य वस्तुविशेषकूं कैसैं परिणमावै ? कदाचित् नाहीं परिणमावै। यातैं परभाव है ताहि कोई भी नाहीं परिणमाय सके है।

भावार्थ—जो द्रव्यस्वभाव है, ताहि कोई भी नाहीं पलटाय सके है, यह वस्तुकी मर्यादा है। आगैं कहे हैं, जो इस कारणतैं आत्मा निश्चयकरि पुद्गलकर्मनिका अकर्त्ता है यह ठहरी। गाथा—

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि।
तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥३६॥

द्रव्यगुणस्य चात्मा न करोति पुद्गलमये कर्मणि।
तदुभयमकुर्वंस्तस्मिन्कथं तस्य स कर्ता ॥३६॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु मृन्मये कलशकर्मणि मृद्द्रव्यमृद्गुणयोः स्वरसत एव वर्तमाने द्रव्यगुणांतरसंक्रमस्य वस्तुस्थित्यैव निषिद्धत्वादात्मानमात्मगुणं वा नाधत्ते स कलशकारः द्रव्यांतरसंक्रममंतरेणान्यस्य वस्तुनः परिणमयितुमशक्यत्वात् तदुभयं तु तस्मिन्ननादधानो न तत्त्वतस्तस्य कर्ता प्रतिभाति । तथा पुद्गलमयज्ञानावरणादौ कर्मणि पुद्गलद्रव्यपुद्गलगुणयोः स्वरसत एव वर्तमाने द्रव्यगुणांतरसंक्रमस्य विधातुमशक्यत्वादात्मद्रव्यमात्मगुणं वात्मा न खल्वाधत्ते । द्रव्यांतरसंक्रममंतरेणान्यस्य वस्तुनः परिणमयितुमशक्यत्वात्तदुभयं तु तस्मिन्ननादधानः कथं तु तत्त्वतस्तस्य कर्ता प्रतिभायात् । ततः स्थितः खल्वात्मा पुद्गलकर्मणामकर्त्ता । अतोन्यस्तूपचारः ।

अर्थ—आत्मा है सो पुद्गलमय कर्म विषैं द्रव्यकूं तथा गुणकूं नाहीं करे है, तिस विषैं तिनि दोऊनिकूं नाहीं करता संता ताका कर्ता कैसैं होय ?

टीका—प्रथम ही दृष्टांत—जैसैं मृत्तिकामय कलशनामा कर्म मृत्तिका नामा द्रव्य अर मृत्तिकाका गुण, तिनि विषैं अपने निज रसकरि ही वर्तमान है ताविषैं कुम्भकार अपना द्रव्यस्वरूपकूं तथा अपना गुणकूं नाहीं मिलावै है । जातैं अन्य द्रव्यका अर अन्य गुणका अन्य द्रव्य गुणरूप पलटनेका वस्तुकी मर्यादा ही करि निषेधे है । बहुरि अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यरूप भये विना अन्य वस्तुकूं अन्यके परिणमावनेका असमर्थपणातैं तिनि द्रव्यकूं अर गुणकूं अन्य विषैं नाहीं धारता संता परमार्थतैं तिस मृत्तिकामय कलशनामा कमका निश्चयकरि कुम्भकार कर्ता नाहीं प्रतिभासे है । तैसैं पुद्गलमय ज्ञानावरणादि कर्म हैं ते पुद्गलद्रव्य अर पुद्गलके गुण तिनि विषैं अपने रसतैं ही वर्तमान हैं, तिनि विषैं आत्मा अपना द्रव्यस्वभावकूं अर अपना गुणकूं निश्चय करि नाहीं धारे है, जातैं अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्य विषैं तथा अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यके गुण विषैं संक्रमण होनेका असमर्थपणा है । ऐसैं अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्य विषैं संक्रमण विना अन्य वस्तूकूं परिणमावनेका असमर्थपणातैं, तिनि द्रव्य अर गुण दोऊनिकूं तिस अन्य विषैं नाहीं धारता आत्मा तिस अन्य पुद्गलद्रव्यका कैसैं कर्ता होय ? कदाचित् नाहीं होय । तातैं यह निश्चय ठहर्‍या, जो आत्मा पुद्गलकर्मनिका अकर्ता है । आगैं कहे हैं, जो इस सिवाय अन्य निमित्तनैमित्तिकादिभाव हैं, तिनिकूं देखि किछु और प्रकार कहना है सो उपचार है । गाथा—

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण ॥३७॥

जीवे हेतुभूते बंधस्य तु दृष्ट्वा परिणामं ।
जीवेन कृतं कर्म भण्यते उपचारमात्रेण ॥३७॥

आत्मख्यातिः—इह खलु पौद्गलिककर्मणः स्वभावादनिमित्तभूतेप्यात्मन्यनादेरज्ञानात्तन्निमित्तभूतेनाज्ञानभावेन परिणमनान्निमित्तीभूते सति संपद्यमानत्वात् पौद्गलिकं कर्मात्मनाकृतमिति निर्विकल्पविज्ञानघनभ्रष्टानां विकल्पपराणां परेषामस्ति विकल्पः । स तूपचारएव न तु परमार्थः । कथं इति चेत् ।

अर्थ—जीवकूं निमित्तिरूप होतैं कर्मबंधका परिणाम होय है, ताकूं देखिकरि कहिये है, जो जीवकरि कर्म किये है, सो उपचारमात्र करि कहिये ।

टीका—इस लोकमें आत्मा निश्चयकरि स्वभावतैं पुद्गलकर्मका निमित्तभूत नाहीं है, तौऊ अनादि अज्ञानतैं ताका निमित्तभूत भया जो अज्ञानभाव, ताकरि परिणमनेतैं पुद्गलकर्मका निमित्तभूत होतैं उपज्या जो पुद्गलकर्म, ताकूं आत्मानै किया ऐसा विकल्प होय है । सो जे निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभावतैं भ्रष्ट हैं अर विकल्पनिविषैं तत्पर हैं, तिनि अज्ञानीनिकै होय है । सो यह आत्मानै किया ऐसा कहना उपचार है परमार्थ नाहीं है ।

भावार्थ—कदाचित् भया निमित्तनैमित्तिक भावविषैं कर्तृकर्मभाव कहना यह उपचार है । आगैं यह उपचार कैसैं है सो दृष्टांतकरि कहे हैं । गाथा—

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥३८॥

योधैः कृते युद्धे राज्ञा कृतमिति जल्पते लोकः ।
व्यवहारेण तथा कृतं ज्ञानावरणादि जीवेन ॥३८॥

आत्मख्यातिः—यथा युद्धपरिणामेन स्वयं परिणममानैः योधैः कृते युद्धे युद्धपरिणामेन स्वयमपरिणममानस्य राज्ञो राज्ञा किल कृतं युद्धमित्युपचारो न परमार्थः। तथा ज्ञानावरणादिकर्मपरिणामेन स्वयं परिणममानेन पुद्गलद्रव्येण कृते ज्ञानावरणादिकर्मणि ज्ञानावरणादिकर्मपरिणामेन स्वयमपरिणममानस्यात्मनः किलात्मना कृतं ज्ञानावरणादि कर्मेत्युपचारो न परमार्थः। अत एतत्स्थितं।

अर्थ—जैसैं जोद्धा जुद्ध करे तहां लोक ऐसा कहे है, जो राजा युद्ध किया। सो यह व्यवहारकरि कहना है। तैसैं ही ज्ञानावरणादि कर्म जीवकरि किये हैं, ऐसा कहना व्यवहारकरि है।

टीका—जैसैं युद्धपरिणामनिकरि आप परिणमे जे जोद्धा, तिनकरि किया जो यह जुद्ध, ताकूं होतें जुद्धपरिणामनिकरि आप न परिणम्या जो राजा, ताकूं लोक कहे हैं, जो जुद्ध राजा कीया जो ऐसा उपचार परमार्थ नाहीं है। तैसैं ही ज्ञानावरणादिकर्म परिणामनिकरि आप परिणमता जो पुद्गलद्रव्य, ताकरि किये जे ज्ञानावरणादिकर्म ताकूं होतें ज्ञानावरणादि कर्मपरिणामकरि आप नाहीं परिणमता जो आत्मा, ताकूं कहिये, जो ज्ञानावरणादि कर्म आत्मा किये है। सो ऐसा उपचार है, सो परमार्थ नाहीं है।

भावार्थ—जैसैं जोद्धा जुद्ध करै तहां राजाका कीया उपचारकरि कहिये है, तैसैं पुद्गलकर्म जीवने किये ऐसैं उपचारकरि कहिये हैं। आगैं कहे हैं, जो इस हेतूतैं ऐसा निश्चय ठहरया। गाथा—

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥३९॥

उत्पादयति करोति च बध्नाति परिणमयति गृह्णाति च।
आत्मा पुद्गलद्रव्यं व्यवहारनयस्य वक्तव्यं ॥३९॥

आत्मख्यातिः—अयं खल्वात्मा न गृह्णाति न परिणमयति नोत्पादयति न करोति न वध्नाति व्याप्यव्यापकभावाभावात् । प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च पुद्गलद्रव्यात्मकं कर्म यत्तु व्याप्यव्यापकभावाभावेपि प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च पुद्गलद्रव्यात्मकं कर्म गृह्णाति परिणमयत्युत्पादयति करोति वध्नाति वात्मेति विकल्पः स किलोपचारः। कथमिति चेत् ।

अर्थ—आत्मा है सो पुद्गलद्रव्यकूं उपजावे है, बहुरि करे है, बहुरि वांधे है, बहुरि परिणमावे है, बहुरि ग्रहण करे है। ऐसा कहना है सो व्यवहार नयका वचन है।

टीका—यह आत्मा निश्चयकरि पुद्गलद्रव्यस्वरूपकर्मकूं व्याप्यव्यापकभावके अभावतें प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ए तीन प्रकारके कर्मकूं ग्रहण नाहीं करे है, परिणमावै नाहीं है, उपजावै नाहीं है, करै नाहीं है, बांधे नाहीं है। वहुरि व्याप्यव्यापकभावके अभाव होतें भी प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ऐसैं तीन प्रकारके पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मकूं यह आत्मा ग्रहण करे है, परिणमावे है, उपजावे है, करै है, बांधे है। ऐसा विकल्प होय है सो प्रगट उपचार है।

भावार्थ—व्याप्यव्यापकभावविना कर्मका कर्ता कहना सो उपचार है। आगै पूछे है, यह उपचार कैसैं है? ताका उत्तर दृष्टांत करि कहे हैं। गाथा—

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥४०॥

यथा राजा व्यवहाराद्दोषगुणोत्पादक इत्यालपितः ।
तथा जीवो व्यवहाराद् द्रव्यगुणोत्पादको भणितः ॥४०॥

आत्मख्यातिः—यथा लोकस्य व्याप्यव्यापकभावेन स्वभावत एवोत्पद्यमानेषु गुणदोषेषु व्याप्यव्यापकभावाभावेपि तदुत्पादको राजेत्युपचारः। तथा पुद्गलद्रव्यस्य व्याप्यव्यापकभावेन स्वभावत एवोत्पद्यमानेषु गुणदोषेषु व्याप्यव्यापकभावाभावेपि तदुत्पादको जीव इत्युपचारः।

अर्थ-जैसैं प्रजाविषैं राजा है सो दोष अर गुणका उपजावनहारा है ऐसा व्यवहारतैं कह्या, तैसैं जीवकूं भी व्यवहारतैं पुद्गलद्रव्यविषैं द्रव्यगुणका उत्पादक कह्या है।

टीका—जैसैं लोककै प्रजाकै व्याप्यव्यापकभावकरि स्वभावहीतैं उपजते जे गुण अर दोष तिनिविषैं राजाकै व्याप्यव्यापकभावका अभाव है, तौऊ लोक कहै, जो गुणदोषका उपजावनहारा राजा है ऐसा उपचार है। तैसैं पुद्गलद्रव्यके व्याप्यव्यापकभावकरि स्वभावहीतैं उपजते जे गुण अर दोष, तिनिविषैं जीवकै व्याप्यव्यापकभावका अभाव है तौऊ तिनि गुणदोषनिका उपजावनहारा जीव है ऐसा उपचार है।

भावार्थ—जैसैं लोकमैं कहिये है, जो, जैसा राजा है तैसी ही प्रजा है। ऐसैं कहिकरि गुणदोषका कर्ता राजाकूं कहे हैं। तैसैं ही पुद्गलद्रव्यके गुणदोषका कर्ता जीवकूं कहिये हैं। सो यह परमार्थदृष्टितैं विचारिये तब उपचार है। आगैं पूछे है, जो पुद्गलकर्मका कर्ता जीव नाहीं है, तौ कौन है? ऐसैं प्रश्नका काव्य है।

वसंततिलकाछंदः

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

अर्थ—जो पुद्गलकर्मकूं जीव नाहीं करे है, तौ तिस पुद्गलकर्मकूं कौन करे है? ऐसी आशंका करिकै अर इस कर्ताकर्मका तीव्रवेगरूप मोह अज्ञानके दूरि करनेकूं, पुद्गलकर्मका जो कर्ता है सो कहिये है। सो हे ज्ञानके इच्छुक पुरुष हो तुम सुणु। याकै उत्तरकी गाथा—

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो। २०५
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥४१॥

तेसिं पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥४२॥
एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा ।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा ॥४३॥
गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा ।
तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥४४॥

सामान्यप्रत्ययाः खलु चत्वारो भण्यंते बंधकर्त्तारः ।
मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ च बोद्धव्याः ॥४१॥
तेषां पुनरपि चायं भणितो भेदस्तु त्रयोदशविकल्पः ।
मिथ्यादृष्ट्यादिर्यावत्सयोगिनश्चरमांतः ॥४२॥
एते अचेतनाः खलु पुद्‌गलकर्मोदयसंभवा यस्मात् ।
ते यदि कुर्वंति कर्म नापि तेषां वेदक आत्मा ॥४३॥
गुणसंज्ञितास्तु एते कर्म कुर्वंति प्रत्यया यस्मात् ।
तस्माज्जीवो कर्त्ता गुणाश्च कुर्वंति कर्माणि ॥४४॥

आत्मख्यातिः—पुद्गलकर्मणः किल पुद्गलद्रव्यमेवैकं कर्तृ तद्विशेषाः मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा बंधस्य सामान्यहेतुतया चत्वारः कर्त्तारः तएव विकल्प्यमाना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यंतास्त्रयोदश कर्त्तारः । अथैते पुद्गलकर्मविपाकविकल्पत्वादत्यंतमचेतनाः संतस्त्रयोदशकर्तारः केवला एव यदि व्याप्यव्यापकभावेन किंचनापि पुद्गलकर्म कुर्युस्तदा कुर्युरेव किं जीवस्यात्रापतितं । अथायं तर्कः । पुद्गलमयमिथ्यात्वादीन् वेदयमानो जीवः स्वयमेव मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पुद्गलकर्म करोति स किलाविवेको यतो न खल्वात्मा भाव्यभावकभावाभावात् । पुद्गलद्रव्यमयमिथ्यात्वादिवेदकोपि कथं

पुनः पुद्गलकर्मणः कर्ता नाम। अथैतदायातं यतः पुद्गलद्रव्यमयानां चतुर्णां सामान्यप्रत्ययानां विकल्पास्त्रयोदश विशेषप्रत्यया गुणशब्दवाच्याः केवला एव कुर्वंति कर्माणि। ततः पुद्गलकर्मणामकर्ता जीवो गुणा एव तत्कर्तारस्ते तु पुद्गलद्रव्यमेव। ततः स्थितं पुद्गलकर्मणः पुद्गलद्रव्यमेवैकं कर्तृ। न च जीवप्रत्यययोरेकत्वं।

अर्थ—प्रत्यय कहिये कर्मबंधकूं कारण जे आस्रव, ते सामान्य तौ च्यारि हैं। ते बंधके कर्ता कहिये है। मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय, योग ऐसैं ते जानने। बहुरि तिनिका भेद तेरह भेदरूप कह्या है। सो मिथ्यादृष्टिकूं आदि लगाय सयोगकेवलीताईं हैं ते तेरह गुणस्थान जानने। ते ये निश्चयदृष्टिकरि जातैं पुद्गलकर्मके उदयतैं भये हैं तातैं अचेतन हैं। सो जो ये कर्मकूं करे हैं, तौ तिनिका वेदक कहिये भोक्ता आत्मा नाहीं होय है। बहुरि इनिकूं गुण ऐसी संज्ञा है। ते ए प्रत्यय गुण हैं। ते कर्मकूं करे हैं। तातैं जीव तौ कर्मका कर्ता नाहीं है। बहुरि ये गुण हैं ते कर्मकूं करे हैं।

टीका--निश्चयकरि पुद्गलकर्मका एक पुद्गलद्रव्य ही कर्ता है। तिस पुद्गलद्रव्यका विशेष मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ये च्यारि सामान्य हेतुपणाकरि बंधका च्यारि कर्ता हैं। बहुरि तेही भेदरूप भये संते मिथ्यादृष्टीकूं आदि लेकरि सयोगकेवली ताईं तेरह कर्ता हैं। सो ये पुद्गलकर्मके विपाकके भेद हैं, तातैं अत्यंत अचेतन हैं, जड हैं। ते अचेतन भये संते जो केवल तेही पुद्गलकर्मके कर्ता होयकरि व्याप्यव्यापकभावकरि किछू पुद्गलकर्मकूं करैं, तौ करौ। जीवका यामैं कहा आया? किछू भी न आया। अथवा इहां यह तर्क है—जो पुद्गलमयी मिथ्यात्वादिककूं वेदता संता जीव है सो आपही मिथ्यादृष्टि होयकरि पुद्गलकर्मकूं करे है। ताका यहु समाधान--जो यह अविवेक है अज्ञान है। जातैं आत्मा भाव्यभावकभावके अभावतैं पुद्गलकर्म जे मिथ्यात्वादिक तिनिका वेदक कहिये भोक्ता भी निश्चयकरि नाहीं है। तौ पुद्गलकर्मका कर्ता कैसैं होय? सो अब ऐसा आया—जो, जातैं पुद्गलद्रव्यमयी जे सामान्य च्यारि प्रत्यय, तिनिके विशेषभेदरूप प्रत्यय तेरह, ते गुणशब्द करि कहे तिनिके नाम गुणस्थान हैं, तेही केवल कर्मनिकूं

करे हैं। तातैं जीव है सो पुद्गलकर्मनिका अकर्त्ता है। अर ते गुण ही तिनि पुद्गलकर्मनिके कर्ता हैं। ते गुण पुद्गलद्रव्यमयी ही हैं। तातैं यह ठहर्‌या, जो पुद्गलकर्मका पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है।

भावार्थ—अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्य कर्ता नाहीं, इस न्यायतैं आत्मद्रव्य तौ पुद्गलद्रव्यकर्मका कर्ता नाहीं, अर बंधके कर्ता योगकषायादिकतैं भये गुणस्थान हैं, ते परमार्थकरि अचेतन पुद्गलमयी हैं, तातैं ते पुद्गलकर्मके कर्ता हैं, अर जीवकूं कर्ता मानना अज्ञान है। बहुरि कहे हैं, जो जीव कै अर तिनि प्रत्ययनिकै एकपणा भी नाहीं है। गाथा—

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोधो वि तह जदि अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥४५॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥४६॥
अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥४७॥

यथा जीवस्यानन्य उपयोगः क्रोधोपि तथा यद्यनन्यः।
जीवस्याजीवस्य चैवमनन्यत्वमापन्नं ॥४५॥
एवमिह यस्तु जीवः स चैव तु नियमस्तथाजीवः
अयमेकत्वे दोषः प्रत्ययनोकर्मकर्मणां ॥४६॥
अथ पुनः अन्यः क्रोधोऽन्यः उपयोगात्मको भवति चेतयिता।
यथा क्रोधस्तथा प्रत्ययाः कर्म नोकर्माप्यन्यत् ॥४७॥

आत्मख्यातिः—यदि यथा जीवस्य तन्मयत्वाज्जीवादन्य उपयोगस्तथा जडः क्रोधोप्यनन्य एवेति प्रतिपत्तिस्तद चिद्रूपजडयोरनन्यत्वाज्जीवस्योपयोगमयत्ववज्जडक्रोधमयत्वापत्तिः। तथा सति तु य एव जीवः स एवाजीव इति द्रव्यांतरलुप्तिः। एवं प्रत्ययनोकर्मकर्मणामपि जीवादनन्यत्वप्रतिपत्तावयमेव दोषः। अथैतद्दोषभयादन्यएवोपयोगात्मा जीवोन्य एव जडस्वभावः क्रोधः इत्यभ्युपगमः। तर्हि यथोपयोगात्मनो जीवादन्यो जडस्वभावः क्रोधः तथा प्रत्ययनोकर्मकर्माण्यप्यन्यान्येव जडस्वभावत्वाविशेषान्नास्ति जीवप्रत्यययोरेकत्वं। अथ पुद्गलद्रव्यस्य परिणामस्वभावत्वं साधयति सांख्यमतानुयायिशिष्यं प्रति।

अर्थ—जैसैं जीवके अनन्य कहिये एकरूप उपयोग है, तैसैं जो क्रोध भी एकरूप अनन्य होय, तौ ऐसैं जीवकै अर अजीवकैं अनन्यपणा एकरूपपणा आया। ऐसैं भये इस लोकमैं जो जीव है सो हीं नियमतैं तैसा हीं भया, अजीव भया। ऐसैं दोउके एकत्व होनेमें एक द्रव्यका लोप भया यह दोष आया। ऐसैं ही प्रत्यय नोकर्म कर्म इनिविषैं यह ही दोष जानना। अथवा इस दोषके भयतैं तेरे मतमें क्रोध तौ अन्य है अर उपयोगस्वरूप चेतयिता आत्मा है सो अन्य है ऐसैं कहे हैं। सो क्रोधकी की ज्यौं प्रत्यय नोकर्म कर्म एभी आत्मातैं अन्य ही हैं।

टीका--जो जैसैं जीवके तन्मयीपणातैं जीवतैं उपयोग अनन्य है, एकरूप है, तैसैं जड क्रोध भी अनन्य ही है, ऐसी प्रतिपत्ति है, तौ चिद्रूपकै अर जडकै अनन्यपणातैं जीवकी उपयोगमयीपणाकी ज्यौं जड क्रोधमयीपणाकी भी प्राप्ति आई। तैसैं होतैं जो ही जीव है सो ही अजीव है, ऐसैं होतैं न्यारा अन्य द्रव्यका लोप भया। ऐसैं ही प्रत्यय नोकर्म कर्मनिके भी जीवतैं अनन्यकी प्रतिपत्ति विषैं यह ही दोष आवे है। बहुरि इस दोषके भयतैं ऐसैं मानै जो उपयोगस्वरूप जीव है सो तौ अन्य ही है अर जडस्वरूप क्रोध है सो अन्य है, तौ जैसैं उपयोगस्वरूप जीवतैं जडस्वभाव क्रोध है सो अन्य है तैसैं ही प्रत्ययनोकर्म कर्म भी अन्य ही हैं, जातैं जैसैं जडस्वभाव क्रोध तैसैं ही प्रत्यय नोकर्म कर्म भी जड, इनिमैं विशेष नाहीं है, ऐसैं जीवकै अर प्रत्ययकै एकपणा नाहीं।

भावार्थ—मिथ्यात्वादि आस्रव तौ जड़स्वभाव हैं अर जीव चेतनस्वभाव है, सो जड चेतन एक होय तौ वडा दोष आवै, भिन्नद्रव्यका लोप होय, तातैं आस्रवके अर आत्माकै एकपणा नाहीं, यह निश्चयनयका सिद्धांत है। आगैं सांख्यमतका अनुसारी शिष्यप्रति पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वभावपणा साधे हैं। सांख्यमती प्रकृति पुरुषकूं अपरिणामी माने हैं, ताकूं समझावे हैं। गाथा—

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जदि पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥४८॥
कम्मइयवग्गणादि य अपरिणमतीहि कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥४९॥
जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।
तं सयमपरिणामंतं कह तु परिणामयदि णाणी ॥५०॥
अह सयमेव हि परिणामदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं।
जीवे परिणामयदे कम्मं कम्मत्त मिदि मिच्छा ॥५१॥
णियमा कम्मपरिणादं कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं।
तह तं णाणावरणाइ परिणादं मुणसु तच्चेव ॥५२॥ पंचकम्।

जीवे न स्वयं बद्धं न स्वयं परिणमते कर्मभावेन।
यदि पुद्गलद्रव्यमिदमपरिणामि तदा भवति ॥४८॥

कार्मणवर्गणासु चापरिणममाणासु कर्मभावेन ।
संसारस्याभावः प्रसजति सांख्यसमयो वा ॥४९॥
जीवः परिणामयति पुद्गलद्रव्याणि कर्मभावेन ।
तानि स्वयमपरिणममानानि कथं नु परिणामयति चेतयिता ॥५०॥
अथ स्वयमेव हि परिणमते कर्मभावेन पुद्गलद्रव्यं ।
जीवः परिणामयति कर्म कर्मत्वमिति मिथ्या ॥५१॥
नियमात्कर्मपरिणतं कर्म चैव भवति पुद्गलं द्रव्यं ।
तथा तद्ज्ञानावरणादिपरिणतं जानीत तच्चैव ॥५२॥ पंचकम् ।

आत्मख्यातिः—यदि पुद्गलद्रव्यं जीवे स्वयमबद्धं सत्कर्मभावेन स्वयमेव न परिणमेत तदा तदपरिणाम्येव स्यात् । तथा सति संसाराभावः । अथ जीवः पुद्गलद्रव्यं कर्मभावेन परिणमयति ततो न संसाराभावः इति तर्कः ? किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा जीवः पुद्गलद्रव्यं कर्मभावेन परिणामयेत् । न तावत्तत्स्वयमपरिणममानं परेण परिणमयितुं पार्येत । नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्येत । स्वयं परिणममानं तु न परं परिणमयितारमपेक्षेत । न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते । ततः पुद्गलद्रव्यं परिणामस्वभावं स्वयमेवास्तु । तथा सति कलशपरिणता मृत्तिका स्वयं कलश इव जडस्वभावज्ञानावरणादिकर्मपरिणतं तदेव स्वयं ज्ञानावरणादिकर्म स्यात् । इति सिद्धं पुद्गलद्रव्यस्य परिणामस्वभावत्वं ।

अर्थ—पुद्गलद्रव्य है सो जीवविषैं आप स्वयं न बंध्या है अर कर्मभावकरि आप नाहीं परिणमे है, ऐसैं मानिये तौ यह पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ठहरे है । अथवा कार्मणवर्गणा आप कर्मभावकरि नाहीं परिणमे है, ऐसैं मानिये तौ संसारका अभाव ठहरै । अथवा सांख्यमतका प्रसंग आवै है । बहुरि जीव है सो पुद्गलद्रव्यनिकूं कर्मभावनिकरि परिणमावे है, ऐसैं मानिये तौ ते पुद्गलद्रव्य आप नाहीं परिणमते संते हैं, तिनिकूं जीव चेतन कैसैं परिणमावै ? यह तर्क ठहरे । अथवा पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मभावकरि परिणमे है, ऐसैं मानिये तौ जीव है सो कर्मभावकरि पुद्गलद्रव्यकूं परिणमावे है, ऐसैं कहना मिथ्या ठहरै । तातैं यह ठहरया, जो पुद्गलद्रव्य है सो

कर्मरूप परिणया नियमतैं कर्मरूप होय है, ऐसैं होतैं सो पुद्‌गलद्रव्य ही ज्ञानावरणादिरूप परिणया जानूं ।

टीका—जो पुद्‌गलद्रव्य जीव विषैं आप नाहीं बंध्या संता स्वयमेव कर्मभावकरि नाहीं परिणमे है तौ पुद्‌गलद्रव्य अपरिणामी ही ठहरे हैं, ऐसैं होतैं संसारका अभाव होय है । कर्मरूप भये विना जीव कर्मरहित ठहरै तव संसार काहेका ? वहुरि जो इहां ऐसा तर्क करै, जो जीव है सो पुद्‌गलद्रव्यकूं कर्मभावकरि परिणमावै है, तातैं संसारका अभाव नाहीं होय है । ताका समाधानकूं दोयपक्षकरि पूछै हैं । जो जीव है सो पुद्‌गलकूं परिणमावै है सो स्वयं अपरिणमतेकूं परिणमावै है, कि स्वयं परिणमतेकूं परिणमावै है ? तहां प्रथम पक्ष लीजिये तो स्वयं अपरिणमतेकूं तौ नाहीं परिणमावे है, आप न परिणमतेकूं परके परिणमावनेकी सामर्थ्य नाहीं है, जातैं स्वतैं शक्ति नाहीं होय सो शक्ति परकरि करी न जाय है । वहुरि जो पुद्‌गलद्रव्यकूं स्वयं परिणमतेकूं जीव कर्मभावकरि परिणमावै है, यह दूजा पक्ष कहे तौ आप परिणमता होय तो अन्य परिणमावनेवालाकी अपेक्षा नाहीं चाहे है । जातैं वस्तुकी शक्ति है ते परकूं नाहीं अपेक्षारूप करै है । तातैं पुद्‌गलद्रव्य है सो परिणामस्वभाव स्वयमेव होऊ । तैसैं होतैं जैसें कलशरूप परिणई मृत्तिका आप सो कलश ही है, तैसैं जडस्वभाव ज्ञानावरणादिक कर्मरूप परिणया पुद्‌गलद्रव्य सो ही आप ज्ञानावरणादिकर्म ही है, ऐसैं पुद्‌गलद्रव्यके परिणामस्वभावपणा सिद्ध भया । अव इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं ।

उपजातिच्छन्दः

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्‌गलस्य स्वभावभूता परिणामशक्तिः ।

तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१६ ।

जीवस्य परिणामित्वं साधयति ।

अर्थ—ऐसैं उक्त प्रकार करि पुद्‌गलद्रव्यकी परिणामशक्ति स्वभावभूत निर्विघ्न सिद्ध भई

ठहरी। ताकूं ठहरते संते सो पुद्गलद्रव्य जिस भावकूं आपकै करे है, ताका सो पुद्गलद्रव्य ही कर्त्ता है।

भावार्थ—सर्व द्रव्यनिका परिणामस्वभावपणा सिद्ध है, तातैं जाका भावका जो ही कर्त्ता है। सो पुद्गलद्रव्य भी जिस भावकूं आपकै करे है, ताका सो ही कर्ता है। आगैं जीवद्रव्यका परिणामस्वभावपणा साधे हैं। गाथा—

ण सयं वद्धो कम्मे ण सयं परिणमादि कोहमादीहिं।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ॥५३॥
अपरिणमंते हि सयं जीवे कोहादिएहि भावेहिं।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमयओ वा ॥५४॥
पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं।
तं सयमपरिणमंतं कह परिणामएदि कोहत्तं ॥५५॥
अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी।
कोहो परिणामयदे जीवस्स कोहमिदि मिच्छा ॥५६॥
कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥५७॥ पंचकम्।

न स्वयं वद्धः कर्मणि न स्वयं परिणमते क्रोधादिभिः।
यद्येषः तव जीवोऽपरिणामी तदा भवति ॥५३॥

अपरिणममाने स्वयं जीवे क्रोधादिभिः भावैः ।
संसारस्याभावः प्रसजति सांख्यसमयो वा ॥५४॥
पुद्गलकर्मक्रोधो जीवं परिणामयति क्रोधत्वं ।
तं स्वयमपरिणममानं कथं तु परिणामयति क्रोधः ॥५५॥
अथ स्वयमात्मा परिणमते क्रोधभावेन एषा ते बुद्धिः ।
क्रोधः परिणामयति जीवं क्रोधत्वमिति मिथ्या ॥५६॥
क्रोधोपयुक्तः क्रोधो मानोपयुक्तश्च मान एवात्मा ।
मायोपयुक्तो माया लोभोपयुक्तो भवति लोभः ॥५७॥ पंचकम् ।

आत्मख्यातिः—यदि कर्मणि स्वयमबद्धः सन् जीवः क्रोधादिभावेन स्वयमेव न परिणमते तदा स किलापरिणाम्येव स्यात् । तथा सति संसाराभावः । अथ पुद्गलकर्मक्रोधादि जीवं क्रोधादिभावेन परिणामयति ततो न संसाराभाव इति तर्कः । किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा पुद्गलकर्म क्रोधादि जीवं क्रोधादिभावेन परिणामयेत् । न तावत्स्वयमपरिणममानः परेण परिणमयितुं पार्येत नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते । स्वयं परिणममानस्तु न परं परिणमयितारमपेक्षेत । नहि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते । ततो जीवः परिणामस्वभावः स्वयमेवास्तु तथा सति गरुडध्यानपरिणतः साधकः स्वयं गरुड इवाज्ञानस्वभावक्रोधादिपरिणतोपयोगः स एव स्वयं क्रोधादिः स्यादिति सिद्धं जीवस्य परिणामस्वभावत्वं ।

अर्थ—सांख्यमतके अनुसारि शिष्यप्रति आचार्य कहे हैं । जो हे भाई तेरी बुद्धि में यह जीव कर्मविषैं आप स्वयं न बंध्या है, अर क्रोधादिक भावनिकरि आप स्वयं न परिणमे है, तौ अपरिणामी होय है । सो ऐसे क्रोधादिक भावनिकरि जीवकूं आप स्वयं न परिणमते संते संसारका अभाव होय है, अर सांख्यमतका प्रसंग आवे है । वहुरि कहेगा जो पुद्गलकर्म क्रोध है सो क्रोधभावरूप जीवकूं परिणमावे है तो आप स्वयं नाहीं परणमता जो जीव ताहि क्रोध कैसें परिणमावै? यह तर्क है । अथवा तेरी ऐसी बुद्धि है, जो आत्मा आपे आप क्रोधभावकरि परिणमै है, तौ जीवकूं क्रोध है सो क्रोधभावरूप परिणमावे है, ऐसें कहना मिथ्या ठहरे है । तातैं यह सिद्धांत

है, जो, यह आत्मा क्रोधतैं उपयुक्त होय है, उपयोग क्रोधाकाररूप परिणमे है, तब तौ क्रोध ही है। बहुरि मानकरि उपयुक्त होय है, तब यह आत्मा मान ही है। बहुरि मायाकरि उपयुक्त होय है, तब माया ही है। बहुरि लोभकरि उपयुक्त होय है, तब लोभ ही है।

टीका—जो जीव है, सो कर्मविपैं आप स्वयं नाहीं बंध्या संता क्रोधादिक भावकरि आप नाहीं परिणमै हैं, तौ सो जीव अपरिणामी ही होय है, तैसैं होतैं संसारका अभाव आवे है। अथवा जो ऐसा तर्क करे है, जो पुद्‌गलकर्म क्रोधादिक हैं, सो जीवकूं क्रोधादिक भावकरि परिणमावे हैं। तातैं संसारका अभाव नाहीं होय है। तौ तहां दोय पक्ष पूछिये, जो पुद्गलकर्म क्रोधादिक हैं सो जीवकूं आपैं आप अपरिणमतेकूं परिणमावे है, कि परिणमतेकूं परिणमावे है? तहां प्रथम तौ आप नाहीं परिणमता होय ताकूं तौ परके परिणमावनेका असमर्थपणा है, जातैं आपमें जो शक्ति नाहीं, जो परकरि करी न जाय है। बहुरि स्वयं परिणमता होय सो परकूं परिणमावनेवालाकूं नाहीं चाहे है, जातैं वस्तुकी शक्ति है ते परकी अपेक्षा नाहीं करे है। अन्यमें अन्य कोई शक्ति नई निपजाय सके नाहीं। तातैं यह ठहरी, जो जीव है सो परिणामस्वभावरूप स्वयमेव होऊ। तैसैं होतैं जैसैं कोई मंत्रसाधक गरुडका ध्यान करता तिस गरुडभावरूप परिणया गरुड ही है, तैसैं यह जीवात्मा अज्ञानस्वभाव क्रोधादिरूप परिणया जो उपयोग तिसरूप आप स्वयमेव क्रोधादिक ही होय है। ऐसैं जीवका परिणाम स्वभावपणा सिद्ध भया।

भावार्थ—जीव भी परिणामस्वभाव है। जब अपना उपयोग क्रोधादिरूप परिणमे है, तब आप क्रोधादिक रूप ही होय है ऐसैं जानना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

स्थितेति जीवस्य निरंतराया स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥२०॥

तथा हि—

अर्थ—जीवकै अपने स्वभाव हीतैं भई ऐसी परिणामशक्ति है सो पूर्वोक्तप्रकार निर्विघ्न ठहरी। ताकूं ठहरते संते सो जीव जिस भावकूं आपके करे, ताहीका सो कर्ता होय है।

भावार्थ—जीव भी परिणामी है, सो आप जिस भावरूप परिणमै ताका कर्ता होय है। आगें इसही अर्थकूं लेकरि भावनिका विशेप करि कर्ता कहे हैं। गाथा—

नीचे लिखी तीन गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

जो संगं तु मुइत्ता जाणादि उवओगमप्पयं सुद्धं।
तं णिसंगं साहुं परमट्ठवियाणाया विंति॥

यः संगं तु मुक्त्वा जानाति उपयोगमयकं शुद्धं।
तं निस्संगं साधुं परमार्थविज्ञायका विदंति॥

तात्पर्यवृत्तिः—जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पयं सुद्धं यः परमसाधुर्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहं मुक्त्वा वीतराग-चारित्राविनाभूतभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति। कं कर्मतापन्नं आत्मानं। कथं भूतं विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावत्वादुपयोगत्वमुपयोगं ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं। पुनरपि कथं भूतं। शुद्धं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितं। तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति तं साधुं निस्संगं संगरहितं विदंति जानंति ब्रुवंति कथयंति वा। के ते परमार्थविज्ञायका गण-धरदेवादय इति।

अर्थ—जो साधु बाह्य अभ्यंतर परिग्रह छोड़कर वीतराग चारित्रके साथ होनेवाले भेदज्ञानसे ज्ञान दर्शनोपयोग लक्षणवाले शुद्ध आत्माको जानता है, अनुभवन करता है उसीको परमार्थ जाननेवाले गणधरादिक संगरहित साधु कहते हैं।

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणादि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परट्ठमवियाणाया विंति॥

जं कुणादि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स (कम्मस्स)।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥५८॥

यः मोहं तु मुक्त्वा ज्ञानस्वभावाधिकं मनुते आत्मानं।
तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका विदंति ।

तात्पर्यवृत्तिः—जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं यः परमसाधुः कर्ता समस्तचेतनाचेतनशुभाशुभपरद्रव्येषु मोहं मुक्त्वात्मशुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपयोगत्रयपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन मनुते जानाति कं कर्मतापन्नं आत्मानं, किं विशिष्टं ? निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनाधिकं परिणतं परिपूर्णं । तं जिदमोहं साहुं परमठ्ठवियाणया विंति तं साधुं कर्मतापन्नं जितमोहं निर्मोहं विदंति जानंति । के ते ? परमार्थविज्ञायकास्तीर्थकरपरमदेवादय इति । एवं मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायबुद्ध्युदयशुभाशुभपरिणामश्रोत्रचक्षुर्घ्राणजिह्वास्पर्शनसंज्ञानि विंशति सूत्राणि व्याख्येयानि । तेनैव प्रकारेण निर्मलपरमचिज्ज्योतिः परिणतेर्विलक्षणासंख्येयलोकमात्रविभावपरिणामा ज्ञातव्याः । अथ—

अर्थ—जो साधु मोहका त्यागकर ज्ञानस्वभाववाले आत्माको जानता है उसे तीर्थंकर प्रभृति विशिष्ट ज्ञानी मोहरहित–निर्मोही कहते हैं ।

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमय्यगं सुद्धं ।
तं धम्मसंगमुक्कं परमठ्ठवियाणया विंति ॥

यः धर्मं तु मुक्त्वा जानाति उपयोगमयकं शुद्धं ।
तं धर्मसंगमुक्तं परमार्थविज्ञायका विदंति ॥

तात्पर्यवृत्तिः—जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमय्यगं सुद्धं यः परमयोगींद्रः स्वसंवेदनज्ञाने स्थित्वा शुभोपयोगपरिणामरूपं धर्मं पुण्यसंगं त्यक्त्वा निजशुद्धात्मपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेनाभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति। कं कर्मता- २१७

यं करोति भावमात्मा कर्ता स भवति तस्य भावस्य (कर्मणः)।
ज्ञानिनः स ज्ञानमयोऽज्ञानमयोऽज्ञानिनः ॥५८॥

आत्मख्यातिः—एवमयमात्मा स्वयमेव परिणामस्वभावोपि यमेव भावमात्मनः करोति तस्यैव कर्मतामापद्यमानस्य कर्तृत्वमापद्यते। स तु ज्ञानिनः सम्यक्स्वपरविवेकेनात्यंतोदितविविक्तात्मख्यातित्वात् ज्ञानमय एव स्यात् अज्ञानेन तु सम्यक्स्वपरविवेकाभावेनात्यंतप्रत्यस्तमितविविक्तात्मख्यातित्वादज्ञानमय एव स्यात्। किं ज्ञानमयभावात्किमज्ञानमयाद्भवतीत्याह।

अर्थ--जो आत्मा जिसभावकूं करे है सोही तिस भावरूप कर्मका कर्ता होय है। तहां ज्ञानीके तौ सो भाव ज्ञानमय है, बहुरि अज्ञानीके सो भाव अज्ञानमय है।

टीका--ऐसैं पूर्वोक्त कथनकरि यह आत्मा आप स्वयमेव परिणाम स्वभाव हैं तौऊ जिस भावकूं आपकै करे है सो ही भाव कर्मके भावकूं प्राप्त होय है, ताका आप कर्तापणाकूं प्राप्त होय है। बहुरि सो भाव ज्ञानीके तौ ज्ञानमय ही है, जातैं ज्ञानीके सम्यक् प्रकार आपापरका भेदज्ञान भया है, ताकरि अत्यंत उदयकूं प्राप्त भई जो सर्वपरद्रव्य भावनितैं भिन्न आत्माकी ख्याति तिस

पन्नं आत्मानं। कथंभूतं विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणतं। पुनरपि कथंभूतं? शुद्धं शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितं। तं धम्मसंगमुक्कं परमठ्ठवियाणया विंति। तं परमतपोधनं निर्विकारस्वकीयशुद्धात्मोपलंभरूपनिश्चयधर्मविलक्षणभोगाकांक्षास्वरूपनिदानबंधादिपुण्यपरिग्रहरूपव्यवहारधर्मरहितं विदंति जानंति। के ते? परमार्थविज्ञायकाः प्रत्यक्षज्ञानिन इति। किं च कथंचित्परिणामित्वे सति जीवः शुद्धोपयोगेन परिणमति पश्चान्मोक्षं साधयति परिणामित्वाभावे बद्धो बद्ध एव शुद्धोपयोगरूपं परिणामांतरस्वरूपं न घटते ततश्च मोक्षाभाव इत्यभिप्रायः। एवं शुद्धोपयोगरूपज्ञानमयपरिणामगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं। तदनन्तरं यथा ज्ञानमयोऽज्ञानमयभावद्वयस्य कर्ता भवति तथा कथयति।

अर्थ—जो धर्म-पुण्यको छोडकर ज्ञान दर्शनोपयोगवाले शुद्ध आत्माको जानता है अनुभवन करता है उसे परमार्थके ज्ञाता—गणधरादिक धर्मसंग रहित साधु कहते हैं।

स्वरूपपणा है। बहुरि सो भाव अज्ञानीके अज्ञानमय ही है। जातैं अज्ञानीके भलै प्रकार स्वपर-का भेदज्ञानका अभावकरि भिन्न आत्माकी ख्याति कहिये प्रगटता सो अत्यंत अस्त भई है, भेदज्ञानका अभावतैं भिन्न आत्माकूं नाहीं जाने है।

भावार्थ—ज्ञानीकै तौ आपापरका भेदज्ञान भया है, तातैं अपना ज्ञानमय भाव हीका कर्ता-पणा है। बहुरि अज्ञानीकै आपापरका भेदज्ञान नाहीं है, तातैं अज्ञानमयभावहीका कर्तापणा है। आगैं कहे हैं, जो ज्ञानमयभावतैं तौ कहा होय है? अर अज्ञानमय भावतैं कहा होय है। गाथा—

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि ॥५९॥

अज्ञानमयो भावोऽज्ञानिनः करोति तेन कर्माणि।
ज्ञानमयो ज्ञानिनस्तु न करोति तस्मात्तु कर्माणि ॥५९॥

आत्मख्यातिः—अज्ञानिनो हि सम्यक्स्वपरविवेकाभावेनात्यंतप्रत्यस्तमितविविक्तात्मख्यातित्वाद्यस्मादज्ञानमय एव स्यात् तस्मिंस्तु सति स्वपरयोरेकत्वाध्यासेन ज्ञानमात्रात्स्वस्मात्प्रभ्रष्टः पराभ्यां रागद्वेषाभ्यां सममेकीभूय प्रवर्तिताहंकारः स्वयं किलैषोहं रज्ये रुष्यामीति रज्यते रुष्यति च तस्मादज्ञानमयभावादज्ञानी परौ रागद्वेषावात्मानं कुर्वन् करोति कर्माणि। ज्ञानिनस्तु सम्यक्स्वपरविवेकेनात्यंतोदितविविक्तात्मख्यातित्वाद्यस्माद् ज्ञानमय एव भावः स्यात् तस्मिंस्तु सति स्वपरयोर्नानात्वविज्ञानेन ज्ञानमात्रे स्वस्मिन्सुनिविष्टः पराभ्यां रागद्वेषाभ्यां पृथग्भूततया स्वरसतएव निवृत्ताहंकारः स्वयं किल केवलं जानात्येव न रज्यते न च रुष्यति तस्माद्ज्ञानमयाद् भावात् ज्ञानी परौ रागद्वेषावात्मानमकुर्वन्न करोति कर्माणि।

अर्थ—अज्ञानीकै अज्ञानमय भाव है, तिस कारणकरि अज्ञानी कर्मनिकूं करै है। बहुरि ज्ञानीकै ज्ञानमय भाव है, तातैं सो ज्ञानी कर्मनिकूं नाहीं करै है।

टीका—अज्ञानीकै निश्चयकरि भलेप्रकार स्वपरका भेदज्ञानका अभाव है, ताकरि अत्यंत

अस्त भया है भिन्न आत्माका प्रगटपणा जाके तिसपणेकरि अज्ञानमय ही भाव होय है, तिस अज्ञानमयभावके होतैं आत्माका अर परका एकपणाका निश्चय आशयकरि ज्ञानमात्र अपना आत्मस्वरूपतैं भ्रष्ट हुवा संता परद्रव्यस्वरूप जे रागद्वेष तिनिकरि सहित एक होयकरि प्रवर्त्या है अहंकार जाकै ऐसा भया संता अज्ञानी ऐसैं माने है—मैं रागी हूं, द्वेषी हूं, ऐसैं रागी होय है, द्वेषी होय है। तिस रागादिस्वरूप अज्ञानमय भावतैं अज्ञानी भया संता परद्रव्यस्वरूप जे रागद्वेष तिनिस्वरूप आपकूं करता संता कर्मनिकूं करे है। बहुरि ज्ञानीकै सम्यक् भलेप्रकार आपापरका भेदज्ञान भया है, ताकरि अत्यंत उदय भया है भिन्न आत्माका प्रगटपणा जाकै तिस भावकरि ज्ञानमय ही भाव होय है, ताके होतैं अपना अर परका भिन्नपणाका ज्ञानकरि ज्ञानमात्र अपना आत्मस्वरूप विषैं तिष्ठ्या संता ज्ञानी है सो परद्रव्यस्वरूप जे रागद्वेष तिनिकरि न्यारापणाकरि अपना रसहीतैं निवृत्त भया है परविषैं अहंकार जाकै ऐसा भया संता निश्चयकरि जानेही है, रागरूप नाहीं होय है, तथा द्वेषरूप नाहीं होय है। तातैं ज्ञानमय भावतैं ज्ञानी भया संता परद्रव्यस्वरूप जे रागद्वेष तिनिरूप आत्माकूं नाहीं करता संता कर्मनिकूं नाहीं करे है।

भावार्थ--या आत्माके क्रोधादिक मोहकी प्रकृतिका उदय आवे है, ताका अपने उपयोगमें रागद्वेषरूप कलुष मलिन स्वाद आवे है, ताका भेदज्ञानविना अज्ञानी भया संता ऐसा माने है—जो यह रागद्वेषमय मलिन उपयोग है सो ही मेरा स्वरूप है यह ही मैं हूं, ऐसा अज्ञानरूप अहंकारकरि युक्त भया संता कर्मनिकूं बांधे है। ऐसैं अज्ञानमय भावतैं कर्मबंध होय है। बहुरि जब ऐसैं जाने है—जो ज्ञानमात्र शुद्ध उपयोग है सो तौ मेरा स्वरूप है, सो मैं हूं, अर रागद्वेष है सो कर्मका रस है, मेरा स्वरूप नाहीं, ऐसा भेदज्ञान होय तब ज्ञानी होय है, तब आपकूं रागद्वेषभावरूप नाहीं करे है। केवल ज्ञाता ही होय है, तब कर्मकूं नाहीं करे है। आगैं अगिली गाथाका अर्थकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

आर्याछन्दः

ज्ञानमयएव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः । अज्ञानमयः सर्वः कुतोयमज्ञानिनो नान्यः ॥२१॥

अर्थ—इहां प्रश्न वचन है । जो ज्ञानीके तौ ज्ञानमय ही भाव होय हैं अर अन्य नाहीं होय हैं, सो यह तौ काहेतैं है ? बहुरि अज्ञानीके अज्ञानमय ही सर्व भाव होय हैं अर अन्य नाहीं होय हैं, सो यह काहेतैं होय हैं ? इस ही प्रश्नके उत्तररूप गाथा हैं । गाथा—

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया ॥६०॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥६१॥

ज्ञानमयाद्भावाद् ज्ञानमयश्चैव जायते भावः ।
यस्मात्तस्माज्ज्ञानिनः सर्वे भावाः खलु ज्ञानमयाः ॥६०॥
अज्ञानमयाद्भावादज्ञानश्चैव जायते भावः ।
यस्मात्तस्माद्भावादज्ञानमया अज्ञानिनः ॥६१॥

आत्मख्यातिः—यतो ह्यज्ञानमयाद् भावाद्यः कश्चनापि भावो भवति स सर्वोऽप्यज्ञानमयत्वमनतिवर्तमानोऽज्ञानमयएव स्यात् ततः सर्व एवाज्ञानमया अज्ञानिनो भावाः । यतश्च ज्ञानमयाद् भावाद्यः कश्चनापि भावो भवति स सर्वोपि ज्ञानमयत्वमनतिवर्तमानो ज्ञानमय एव स्यात् ततः सर्वे एव ज्ञानमया ज्ञानिनो भावाः ।

अर्थ—जातैं ज्ञानमय भावतैं ज्ञानमय ही भाव उपजे हैं, तातैं ज्ञानीके निश्चयतैं सर्व भाव ज्ञानमय ही उपजे हैं । बहुरि जातैं अज्ञानमय भावतैं अज्ञानमय ही भाव होय हैं तातैं अज्ञानीकै अज्ञानमय ही भाव उपजे हैं ।

टीका—जातैं निश्चयकरि अज्ञानमय भावतैं जो कुछ भाव होय है सो सर्व ही अज्ञानपणाकूं

नाहीं उल्लंघिकरि वर्तता संता अज्ञानमय ही होय है, तातैं अज्ञानीकै सर्व ही भाव अज्ञानमय हैं। बहुरि जातैं ज्ञानमय भावतैं जो कछु भाव होय है सो सर्व ही ज्ञानमयपणाकूं नाहीं उल्लंघि करि वर्तता संता ज्ञानमय ही होय है, तातैं ज्ञानीके सर्व ही भाव हैं ते ज्ञानमय हैं। भावार्थ सुगम है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवंति हि। सर्वेप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवंत्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२॥

अथैतदेव दृष्टांतेन समर्थयते।

अर्थ—ज्ञानीके सर्वही भाव हैं ते ज्ञानकरि निपजे हैं। बहुरि अज्ञानीके जे सर्व ही भाव हैं ते अज्ञानकरि निपजे हैं। आगे इस अर्थकूं दृष्टांतकरि दृढ करे हैं। गाथा—

कणयमयाभावादो जायंते कुंडलादयो भावा।
अयमययाभावादो जह जायंते तु कडयादी ॥६२॥
अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥६३॥

कनकमयाद्भावाज्जायंते कुंडलादयो भावाः।
अयोमयकाद्भावाद्यथा जायंते तु कटकादयः ॥६२॥
अज्ञानमयाद् भावादज्ञानिनो बहुविधा अपि जायंते।
ज्ञानिनस्तु ज्ञानमयाः सर्वे भावास्तथा भवंति ॥६३॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु पुद्गलस्य स्वयं परिणामस्वभावत्वे सत्यपि कारणानुविधायित्वात्कार्याणां जांबूनदमयाद् भावाज्जांबूनदजातिमनतिवर्तमानाज्जांबूनदकुंडलादय एव भावा भवेयुर्न पुनः कालायसवलयादयः। कालायसमयाद् भावाच्च कालायसजातिमनतिवर्तमानाः कालायसवलयादय एव भवेयुर्न पुनर्जांबूनदकुंडलादयः। तथा जीवस्य स्वयं परि-

णामस्वभावत्वे सत्यपि कारणानुविधायित्वादेव कार्याणां अज्ञानिनः स्वयमज्ञानमयाद् भावादज्ञानजातिमनतिवर्तमाना विविधा अप्यज्ञानमया एव भावा भवेयुर्न पुनर्ज्ञानमयाः ज्ञानिनश्च स्वयं ज्ञानमयाद् भावाद् ज्ञानजातिमनतिवर्तमानाः सर्वे ज्ञानमया एव भावा भवेयु र्न पुनरज्ञानमयाः ।

अर्थ—प्रथम दृष्टांत जैसैं सुवर्णमय भावतैं सुवर्णमय कुंडलादिक भाव होय हैं । बहुरि लोहमयभावतैं लोहमय कडा इत्यादिक भाव होय हैं । याका दृष्टांत—तैसैं अज्ञानीके अज्ञानमय भावतैं अनेक प्रकारके अज्ञानमय भाव होय हैं, बहुरि ज्ञानीकै सर्व ज्ञानमय भावतैं सर्व ही ज्ञानमय भाव होय हैं ।

टीका—जैसैं निश्चयकरि पुद्गलद्रव्यके स्वयं परिणाम स्वभावपणारूप होतैं भी जैसा पुद्गल कारण होय तिसका स्वरूप कार्य होय, यह प्रसिद्ध है । ऐसैं होतैं सुवर्णमय भावतैं सुवर्णजातीकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्तता सुवर्णमय ही कुंडल आदिक भाव होय हैं, सुवर्णतैं लोहमय कडा आदिक भाव न होय हैं । बहुरि लोहमयभावतैं लोहकी जातीकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्तते लोहमय कडा आदिक भाव होय हैं, बहुरि लोहतैं सुवर्णमय कुंडल आदिक भाव नाहीं होय हैं, तैसैं जीवके स्वयंपरिणाम भावरूप होते संते भी 'जैसा कारण होय तैसा ही कार्य होय' ऐसा न्याय है इस न्यायतैं अज्ञानीके स्वयमेव अज्ञानमय भावतैं अज्ञानकी जातीकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्तते अनेक प्रकारके अज्ञानमय ही भाव होय हैं ज्ञानमय नाहीं हो है । अर ज्ञानीके स्वयमेव ज्ञानमय भावतैं ज्ञानकी जातीकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्तते सर्व ज्ञानमय ही भाव होय हैं, अज्ञानमय नाहीं होय हैं ।

भावार्थ—जैसा कारण होय तैसा ही कार्य होय इस न्यायतैं जैसैं सुवर्णतैं तौ सुवर्णमय गहणे होय, लोहतैं लोहमय होय, तैसैं अज्ञानीके अज्ञानतैं अज्ञानमयभाव होय है, ज्ञानीके ज्ञानतैं ज्ञानमय ही भाव होय हैं । इहां ऐसा आशय जानना, जो अज्ञानभाव तौ क्रोधादिक हैं, ज्ञानभाव क्षमादिक हैं । यद्यपि अविरतसम्यग्दृष्टिके चारित्रमोहके उदयतैं क्रोधादिक भी प्रवर्तें हैं, तथापि

तिनिविषैं आत्मबुद्धि नाहीं है, परनिमित्ततैं भई उपाधि माने है, सो उदय देखि रहै । आगामी ऐसा बंध नाहीं करे है । जातैं संसारका भ्रमण वधै अर आप उद्यमी होय तिनिरूप परिणमे भी नाहीं है, उदयकी बरजोरीतैं परिणमे है । तातैं तहां भी ज्ञान ही विषैं अपना स्वामीपणा माननेतैं तिनि क्रोधादि भावका भी अन्य ज्ञेयकी ज्यों ज्ञाता ही है, कर्ता नाहीं है । ऐसैं तहां भी ज्ञानीपणाकरि ज्ञानभाव ही भया जानना । आगे अगिली गाथाकी सूचनिकाके अर्थरूप श्लोक है ।

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकां । द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुतां ॥२३॥

अर्थ—अज्ञानी है सो अज्ञानमय अपने भाव, तिनिकी भूमिकाकूं व्याप्यकरि आगामी द्रव्यकर्मकूं कारण जे अज्ञानादिक भाव, तिनिका हेतुपणाकूं प्राप्त होय है । सो ही अर्थ गाथा पांचकरि कहे हैं । गाथा—

मिच्छुत्तस्सदु उदयं जं जीवाणं दु अतच्चसद्दहणं ।
असंजमस्स दु उदओ जं जीवाणं आविरदत्तं ॥६४॥
अण्णाणस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥६५॥
तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरादिभावो वा ॥६६॥
एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु ।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥६७॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥६८॥

अज्ञानस्य स उदयो या जीवानामतत्त्वोपलब्धिः ।
मिथ्यात्वस्य तूदयो जीवस्याश्रद्दधानत्वं ॥६४॥
उदयोऽसंयमस्य तु यज्जीवानां भवेदविरमणं तु ।
यस्तु कलुषोपयोगो जीवानां स कषायोदयः ॥६५॥
तं जानीहि योगोदयं यो जीवानां तु चेष्टोत्साहः ।
शोभनोऽशोभनो वा कर्तव्यो विरतिभावो वा ॥६६॥
एतेषु हेतुभूतेषु कार्मणवर्गणागतं यत्तु ।
परिणमतेऽष्टविधं ज्ञानावरणादिभावैः ॥६७॥
तत्खलु जीवनिबद्धं कार्मणवर्गणागतं यदा ।
तदा तु भवति हेतुर्जीवः परिणामभावानां ॥६८॥

आत्मख्यातिः—अतत्त्वोपलब्धिरूपेण ज्ञाने स्वदमानो अज्ञानोदयः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगोदयाः कर्महेतवस्तन्मयाश्चत्वारो भावाः । तत्त्वाश्रद्धानरूपेण ज्ञाने स्वदमानो मिथ्यात्वोदयः अविरमणरूपेण ज्ञाने स्वदमानोऽसंयमोदयः कलुषोपयोगरूपेण ज्ञाने स्वदमानः कषायोदयः शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिव्यापाररूपेण ज्ञाने स्वदमानो योगोदयः । अथैतेषु पौद्गलिकेषु मिथ्यात्वाद्युदयेषु हेतुभूतेषु यत्पुद्गलद्रव्यं कर्मवर्गणागतं ज्ञानावरणादिभावैरष्टधा स्वयमेव परिणमते तत्खलु कर्मवर्गणागतं जीवनिबद्धं यदा स्यात्तदा जीवः स्वयमेवाज्ञानात्परात्मनोरेकत्वाध्यासेनाज्ञानमयानां तत्त्वाश्रद्धानादीनां स्वस्य परिणामभावानां हेतुर्भवति । पुद्गलद्रव्यात्पृथग्भूत एव जीवस्य परिणामः ।

अर्थ—जो जीवनिकै अतत्त्वकी उपलब्धि है अन्यथा स्वरूपका जानना है, सो तौ अज्ञानका उदय है । बहुरि जो जीवकै अतत्त्वका श्रद्धान है सो मिथ्यात्वका उदय है । बहुरि जो जीवनिकै अविरमण कहिये अत्यागभाव है सो असंयमका उदय है । बहुरि जो जीवनिकै कलुष कहिये

मलिन जाणपणाकी स्वच्छतातैं रहित उपयोग है सो कषायका उदय है। बहुरि जो जीवनिकै शुभरूप तथा अशुभरूप मनवचनकायकी चेष्टाका उत्साह करने योग्य तथा न करने योग्यका व्यापार है ताकूं योगका उदय जानूं। इनिकूं हेतुभूत होतैं जो कार्मणवर्गणारूप आय प्राप्त भया अष्ट प्रकार ज्ञानावरणादि भावनिकरि परिणमे है सो निश्चयतैं जिस काल कार्मणवर्गणा रूप आया संता जीवविषैं निबद्ध होय है, तिस काल तिनि अज्ञानादिक परिणाम भावनिका कारण जीव होय है।

टीका—अतत्त्व कहिये अयथार्थ वस्तुस्वरूपकी उपलब्धि करि ज्ञानविषैं स्वादमें आवै सो अज्ञानका उदय है। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योगादिक तिस अज्ञानमय चार भाव हैं। कैसैं हैं ते? ज्ञनावरणादि कर्मके कारण हैं। तहां तत्त्वके अश्रद्धानरूप करि ज्ञानमें आस्वाद आवै, सो तौ मिथ्यात्वका, उदय है। बहुरि अविरमण कहिये अत्यागभाव करि ज्ञानविषैं आस्वादरूप आवे है, सो असंयमका उदय है। बहुरि कलुष कहिये मलिन उपयोगरूपकरि ज्ञानविषैं आस्वादरूप आवे है, सो कषायका उदय है। बहुरि शुभाशुभ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप व्यापाररूपकरि ज्ञानविषैं स्वादस्वरूप होय है सो योगका उदय है। ए मिथ्यात्व आदिका उदयस्वरूप चारौं भाव पुद्गलके हैं ते आगामी कर्मबंधकूं कारण होय हैं। तिनिकूं कारणरूप होतैं जो पुद्गलद्रव्य कर्मवर्गणारूप आया हुवा ज्ञानावरण आदि भावनिकरि अष्टप्रकार स्वयमेव परिणमे है। सो यहु ज्ञानावरणादिकरूप कर्मवर्गणाकरि प्राप्त भया जब जीवविषैं निबद्ध होय, तब जीव है सो स्वयमेव अपने अज्ञानभावतैं परका अर आत्माका एकपणा निश्चयकरि अज्ञानमय जे अतत्त्वश्रद्धानादिक अपने परिणामस्वरूप भाव, तिनिका कारण होय है।

भावार्थ—अज्ञानभावके भेदरूप जे मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योगरूप परिणाम ते पुद्गलके परिणाम हैं। ते ज्ञानावरणादि आगामी कर्म बंधनेकूं कारण हैं। अर जीव तिनि मिथ्यात्वादि भावनिका उदय होतैं अपने अज्ञानभावतैं अतत्त्वश्रद्धानादि भावनिरूप परिणमे है। तिनि अपने

अज्ञानरूप भावनिका कारण होय है। आगैं कहे हैं, जो, जीवका परिणाम है सो पुद्गलद्रव्यतैं न्यारा ही है। गाथा—

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥६९॥
एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदयहेदू हि विणा जीवस्स परिणामो ॥७०॥

जीवस्य तु कर्मणा च सह परिणामाः खलु भवंति रागादयः।
एवं जीवः कर्म च द्वे अपि रागादित्वमापन्ने ॥६९॥
एकस्य तु परिणामो जायते जीवस्य रागादिभिः।
तत्कर्मोदयहेतुभिर्विना जीवस्य परिणामः ॥७०॥

आत्मख्यातिः—यदि जीवस्य तन्निमित्तभूतविपच्यमानपुद्गलकर्मणा सहैव रागाद्यज्ञानपरिणामो भवतीति वितर्कः तदा जीवपुद्गलकर्मणोः सहभूतसुधाहरिद्रयोरिव द्वयोरपि रागाद्यज्ञानपरिणामापत्तिः। अथ चैकस्यैव जीवस्य भवति रागाद्यज्ञानपरिणामः ततः पुद्गलकर्मविपाकाद्धेतोः पृथग्भूतो जीवस्य परिणामः। जीवात्पृथग्भूत एव पुद्गलद्रव्यस्य परिणामः।

अर्थ—जो ऐसैं मनिये, जो जीवके परिणाम रागादिक होय हैं, ते कर्मकरि सहित होय हैं, तौ जीव अर कर्म ए दोऊ ही रागादिपरिणामकूं प्राप्त होय, ऐसा आवै। तातैं यह सिद्ध होय है, जो रागादिकरि एक जीवहीका परिणाम उपजे है। सो इनि परिणामनिकूं कर्मका उदय निमित्त-कारण है। तिस निमित्तरूप कर्मपरिणामनितैं न्यारा परिणाम केवल एक जीवहीका है।

टीका—जो जीवका परिणाम रागादिरूप होय है, सो तिसकूं निमित्तभूत जो विपाकरूप

भया उदय आया जो पुद्गलकर्म तिसकरि सहितही होय है। ऐसा तर्क कीजिये तौ, जीवके अर पुद्गलकर्मके दोऊकै जैसैं साथि रंगमें डारे हलद अर फिटकडी तिनि दोऊनिकै रंगरूप परिणाम होय है तैसैं दोऊहीके कर्मपरिणामकी प्राप्ति आवै, सो ऐसैं है नाहीं। बहुरि जौ ऐसैं मानिये जो रागादि अज्ञानपरिणामकी प्राप्ति आवै केवल एक जीवहीकै होय है, तौ इस हेतूतैं ऐसा आया, जो पुद्गलकर्मका उदय जीवके रागादि अज्ञान परिणामनिकूं निमित्त है, तिस विना न्यारा ही जीवका परिणाम है।

भावार्थ—पुद्गलकर्मका उदयके लार ही जीवका परिणाम मानिये तौ जीवकै अर कर्मकै दोऊकै रागादिककी प्राप्ति आवै, सो ऐसैं नाहीं। तातैं पुद्गलकर्मका उदय जीवके अज्ञानरूप रागादिपरिणामनिकूं निमित्त है। तिस निमित्ततैं न्यारा ही जीवका परिणाम है। आगे कहै हैं—जो पुद्गलद्रव्यका परिणाम है सो जीवतैं न्यारा ही है। गाथा—

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पुग्गलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥७१॥
एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥७२॥

यदि जीवेन सहं चेव पुद्गलद्रव्यस्य कर्मपरिणामः।
एवं पुद्गलजीवौ खलु द्वावपि कर्मत्वमापन्नौ ॥७१॥
एकस्य तु परिणामः पुद्गलद्रव्यस्य कर्मभावेन।
तज्जीवभावहेतुभिर्विना कर्मणः परिणामः ॥७२॥

आत्मख्यातिः—यदि पुद्गलद्रव्यस्य तन्निमित्तभूतरागाद्यज्ञानपरिणामपरिणतजीवेन सहैव कर्मपरिणामो भवतीति वितर्कः तदा पुद्गलद्रव्यजीवयोः सहभूतहरिद्रासुधयोरिव द्वयोरपि कर्मपरिणामापत्तिः अथ चैकस्यैव पुद्गलद्रव्यस्य

भवति कर्मत्वपरिणामः ततो रागादिजीवाज्ञानपरिणामाद्धेतोः पृथग्भूत एव पुद्गलकर्मणः परिणामः । किमात्मनिवद्धस्पृष्टं किमवद्धस्पृष्टं कर्मेति नयविभागेनाह ।

अर्थ—जो जीवकरि सहित ही पुद्गलद्रव्यका कर्मरूप परिणाम होय है ऐसैं मानिये तौ ऐसे तौ जीव अर पुद्गल दोऊहीकै कर्मभावकूं प्राप्त होना आया । तातैं जीवभाव निमित्तकारण हैं, तिनि विना न्यारा ही कर्मका परिणाम है, सो एक पुद्गलद्रव्यहीका कर्मभावकरि परिणाम है ।

टीका—जो पुद्गलद्रव्यका कर्मपरिणाम है, सो तिसकूं निमित्तभूत जो जीवका रागादि अज्ञान-परिणाम, तिसरूप परिणया जो जीव, तिसकरि सहित ही होय है । ऐसा तर्क कीजिये तौ पुद्गल-द्रव्यकै अर जीवकै दोऊकै जैसैं हलदकै अर फिटकडीकै दोऊकै साथी ही रंगका परिणाम होय है, तैसैं दोऊहीके कर्मपरिणामकी प्राप्ति आवे है । सो ऐसैं है नाहीं । तातैं ऐसा सिद्ध होय है, जो कर्मपरिणाम है सो एक पुद्गलद्रव्य हीका है । तातैं जीवका रागादिस्वरूप अज्ञानपरिणाम जो कर्मकूं निमित्तकारण हैं, तिनितैं न्याराही पुद्गलकर्मका परिणाम है ।

भावार्थ—जो पुद्गलद्रव्यका कर्मपरिणाम होना जीवकी साथिही मानिये, तौ दोऊके कर्मपरि-णाम ठहरै । तातैं जीवका अज्ञानरूप रागादिपरिणाम कर्मकूं निमित्त है । तिसतैं पुद्गलकर्मपरि-णाम पुद्गलद्रव्यके जीवतैं न्यारा ही है । आगैं पूछे है, जो आत्माविषैं कर्म है, सो बद्धस्पृष्ट है, कि अवद्धस्पृष्ट है ? ऐसैं पूछे नयविभाग करि उत्तर कहे है । गाथा—

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥७३॥

जीवे कर्म बद्धं स्पृष्टं चेति व्यवहारनयभणितं ।
शुद्धनयस्य तु जीवे अबद्धस्पृष्टं भवति कर्म ॥७३॥

आत्मख्यातिः—जीवपुद्गलकर्मणोरेकबंधपर्यायत्वेन तदतिव्यतिरेकाभावाज्जीवे बद्धस्पृष्टं कर्मेति व्यवहारनयपक्षः । जीवपुद्गलकर्मणोरनेकद्रव्यत्वेनात्यंतव्यतिरेकाज्जीवेऽबद्धस्पृष्टं कर्मेति निश्चयपक्षः । ततः किं—

अर्थ—जीवविषैं कर्म है सो बद्ध है जीवकै प्रदेशनितैं बंधे है, तथा स्पृष्ट कहिये स्पर्शे है, ऐसा तौ व्यवहारनयका वचन है। बहुरि जीवविषैं कर्म बंधे भी नाहीं है, स्पर्शे भी नाहीं है, ऐसा शुद्ध नयका वचन है।

टीका—जीवकै अर पुद्गलकर्मकै एकबंध पर्यायपणा करि देखिये तौ तिस काल व्यतिरेक कहिये भिन्नताका अभाव है। तहां जीवविषैं कर्म बद्धस्पृष्ट है बंधे भी है स्पर्शे भी है, ऐसा कहिये सो तौ व्यवहारनयका पक्ष है। बहुरि जीवकै अर पुद्गलकर्मके अनेक द्रव्यपणा है, तिसकरि देखिये तब अत्यंत भिन्नपणा है, तातैं जीवविषैं कर्म बद्धस्पृष्ट नाहीं है, ऐसा कहिये सो निश्चयनयका पक्ष है। आगैं कहे हैं, जो ए दोऊ नयपक्ष हैं तिनितैं कहा होय है? गाथा—

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥७४॥

कर्म बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जानीहि नयपक्षं।
पक्षातिक्रांतः पुनर्भण्यते यः स समयसारः ॥७४॥

आत्मख्यातिः—यः किल जीवे बद्धं कर्मेति यश्च जीवेऽबद्धं कर्मेति विकल्पः स द्वितयोपि हि नयपक्षः। य एवैनमतिक्रामति स एव सकलविकल्पातिक्रांतः स्वयं निर्विकल्पैकविज्ञानघनस्वभावो भूत्वा साक्षात्समयसारः संभवति। तत्र यस्तावज्जीवे बद्धं कर्मेति विकल्पयति स जीवेऽबद्धं कर्मेति एकं पक्षमतिक्रामन्नपि न विकल्पमतिक्रामति। यस्तु जीवेऽबद्धं कर्मेति विकल्पयति सोपि जीवे बद्धं कर्मेत्येकं पक्षमतिक्रामन्नपि न विकल्पमतिक्रामति। यः पुनर्जीवे बद्धमबद्धं च कर्मेति विकल्पयति स तु तं द्वितयमपि पक्षमनतिक्रामन्न विकल्पमतिक्रामति। ततो य एव समस्तनयपक्षमतिक्रामति स एव समस्तं विकल्पमतिक्रामति। य एव समस्तं विकल्पमतिक्रामति स एव समयसारं विंदति। यद्येवं तर्हि को हि नाम पक्षसंन्यासभावना न नाटयति।

अर्थ—जीवविषैं कर्म बंधे है अथवा नाहीं बंधे है या प्रकार ए दोऊ नयपक्ष हैं। बहुरि जो पक्षतैं अतिक्रांत है दूरिवर्ती है ऐसा कहिये सो समयसार है निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व हैं।

टीका—जो प्रगटकरि जीवविषैं कर्म बंधे है ऐसैं कहना, बहुरि जीवविषैं कर्म नाहीं बंधे है ऐसैं कहना, ऐसैं ए दोऊ विकल्प हैं ते दोऊ ही नयपक्ष हैं। तहां जो इस नयपक्षके विकल्पकूं उलंघ्य वर्तै है छोडे है सो ही समस्त विकल्पनितैं दूरवर्ती होय है, सो आप निर्विकल्प एक विज्ञानघन स्वभावरूप होयकरि, सो साक्षात् समयसार भलेप्रकार होय है। तहाँ, प्रथम तौ जो जीवविषैं कर्म बंध्या है ऐसा विकल्प करे है, सो जीवविषैं कर्म नाहीं बंध्या है, ऐसा एकपक्षकूं छोडता संता भी विकल्पकूं नाहीं छोडे है। बहुरि जो जीवविषैं कर्म नाहीं बंध्या है ऐसा विकल्प करे है सोभी जीवविषैं कर्म बंध्या है, ऐसा विकल्परूप पक्षकूं छोडता संता भी विकल्पकूं नाहीं छोडे हैं। बहुरि जो जीवविषैं कर्म बंध्या भी है अर नाहीं भी बंध्या है ऐसा विकल्प करे है सो तिनि दोऊ ही पक्षकूं नाहीं छोडता संता विकल्पकूं नाहीं छोडे है। तातैं जो समस्त ही नयपक्षकूं छोडे है, सो ही समस्तविकल्पकूं छोडे है, बहुरि सो ही समयसारकूं अनुभवे है।

भावार्थ—जीव कर्मनिसूं बंध्या है तथा नाहीं बंध्या है, ए दोऊ नयपक्ष हैं। तिनिमैं काहूने बंधपक्ष पकडी सो विकल्प ही पकड्या। काहूने अबंधपक्ष पकडी सो भी विकल्प ही पकड्या। काहूने दोऊ पक्ष लही सो भी पक्षहीका विकल्प लिया, ऐसैं विकल्पकूं छोडि जो किछू भी पक्ष नाहीं पकडे सो शुद्ध पदार्थका स्वरूप जानि तिसरूप समयसार शुद्धात्मकूं पावे है। नयनिका पक्ष पकडना राग है, सो समस्त नयपक्ष छोडि वीतराग समयसार होय है। इहां पूछै है, जो ऐसैं है तौ नयपक्षका त्यागकी भावनाकूं कोन नृत्य करावे है? ताका उत्तररूप काव्य कहे हैं।

उपेन्द्रवज्राछन्दः

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशांतचित्तास्तएव साक्षादमृतं पिबंति ॥२४॥

अर्थ—जे पुरुष नयका पक्षपातकूं छोडि अपने स्वरूपविषैं गुप्त होय निरंतर वसे हैं, तेही

पुरुष विकल्पके जालतैं रहित शांत भया है चित्त जिनिका ऐसे भये संते साक्षात् अमृतकूं पीवे हैं।

टीका—जेतैं कछू पक्षपात रहे तेतैं चित्तका क्षोभ मिटै नाहीं, जब सर्वनयका पक्षपात मिटि जाय, तब वीतरागदशा होय स्वरूपकी श्रद्धा निर्विकल्प होय अर स्वरूपविषैं प्रवृत्ति होय है। अब नयपक्षकूं प्रगटकरि कहे हैं, अर तिसकूं छोडे है सो तत्त्वज्ञानी है स्वरूपकूं पावे है, ऐसा अर्थके कलशरूप वीस काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२५॥

अर्थ—यहू चिन्मात्र जीव है सो एकनयका तौ कर्मकरि बंध्या है ऐसा पक्ष है। बहुरि दूसरे नयका कर्मकरि नाहीं बंध्या है ऐसा पक्ष है। ऐसे दोऊ ही नयके दोऊ पक्ष हैं। सो ऐसैं दोऊ नयका जाकै पक्षपात है सो तौ तत्त्ववेदी नाहीं है। बहुरि जो तत्त्ववेदी है, तत्त्वका स्वरूप जाननेवाला है, सो पक्षपातरहित है। तिस पुरुषका जो चिन्मात्र आत्मा है सो चिन्मात्र ही है। यामैं पक्षपातकरि कल्पना नाहीं करे है।

टीका—इहां शुद्धनयकूं प्रधानकरि कथन है। तहां जीवनामा पदार्थकूं शुद्ध नित्य अभेद चैतन्यमात्र स्थापि अर कहे हैं, जो इस शुद्धनयका भी जो पक्षपात करेगा, सो भी तिस स्वरूपका स्वादकूं नाहीं पावेगा। अशुद्धपक्षकूं तौ गौणकरि कहतेहि आवे है। अर कोई शुद्धनयका भी जो पक्षपात करेगा, तौ पक्षका राग न मिटेगा। तब वीतरागता नाहीं होयगी। तातैं पक्षपातकूं छोडि चिन्मात्रस्वरूपविषैं लीन भये समयसार पावे है। अर चैतन्यके परिणाम परनिमित्ततैं अनेक होय हैं। तिनि सर्वनिकूं गौण कहते ही आवे है। तातैं सर्वपक्ष छोडि शुद्धस्वरूपका श्रद्धान करि पीछे स्वरूपविषैं प्रवृत्तिरूप चारित्र भये वीतरागदशा करना योग्य है। अब जैसैं बद्ध अबद्धपक्ष छुडाई तैसैं ही अन्यपक्षकूं प्रगटकरि कहि छुडावे हैं।

एकस्य मूढ़ो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६॥

अर्थ—एक नयके तौ जीव मूढ है मोही है, बहुरि दूसरे नयके मूढ नाहीं है यह पक्ष है। ऐसे ये दोऊ ही चैतन्यविषैं पक्षपात हैं। बहुरि जो तत्त्ववेदी है सो पक्षपातरहित है, ताका चित् है सो चित् ही है, मोही अमोही नाहीं है।

एकस्य रक्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२७॥

अर्थ—एकनयके तौ यह जीव रक्त कहिये रागी है ऐसा पक्ष है, बहुरि दूसरे नयके रक्त नाहीं है ऐसा पक्षपात है। सो ए दोऊ ही चैतन्यविषैं नयके पक्षपात हैं। बहुरि जो तत्त्ववेदी है सो पक्षपातरहित है, ताकै पक्षपात नाहीं है, ताकै जो चित् है सो चित् ही है।

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८॥
एकस्य कर्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२९॥
एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३०॥
एकस्य जीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३१॥
एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३२॥
एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३३॥

एकस्य काय न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३४॥
एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३५॥
एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३६॥
एकस्य सांतो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३७॥
एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८॥
एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३९॥
एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४०॥
एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४१॥
एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४२॥
एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४३॥
एकस्य भातो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४४॥

अर्थ—एक नयके तो दुष्ट कहिये द्वेषी है, बहुरि दूसरे नयके दुष्ट नाहीं है । ऐसैं ए चैतन्य-

विषैं दोऊ नयके दोय पक्षपात हैं। एक नयके कर्ता है, दूसरे नयके कर्ता नाहीं है। ए ऐसे चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भोक्ता है, दूसरे नयके भोक्ता नाहीं है। ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके जीव है, दूसरे नयके जीव नाहीं है। ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके सूक्ष्म है, दूसरे नयके सूक्ष्म नाहीं है। ऐसे ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके हेतु है, दूसरे नयके हेतु नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके कार्य है, दूसरे नयके कार्य नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भावरूप है, दूसरे नयके अभावरूप है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके एक है दूसरे नयके अनेक है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके सांत कहिये अंतसहित है, दूसरे नयके अंतसहित नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके नित्य है, दूसरे नयके अनित्य है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके वाच्य कहिये वचनकरि कहनेमें आवे है, दूसरे नयके वचनगोचर नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके नाना रूप है, दूसरेके नानारूप नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके चेत्य कहिये जानने योग्य है, दूसरेके चितवने योग्य नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके दृश्य कहिये देखने योग्य है, दूसरेके देखनेमें नाहीं आवे है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके वेद्य कहिये वेदनेयोग्य है, दूसरेके वेदनेमें न आवे है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भात कहिये वर्तमान प्रत्यक्ष है, दूसरेके नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। ऐसे चैतन्य सामान्यविषैं ए सर्व पक्षपात हैं। बहुरि तत्त्ववेदी है सो स्वरूपकूं यथार्थ अनुभवन करनेवाला है। ताका चिन्मात्रभाव है सो चिन्मात्र ही है, पक्षपातसूं रहित है।

भावार्थ—जीवके परनिमित्ततैं अनेक परिणाम हैं, तथा यामैं साधारण अनेक धर्म हैं। तथापि

असाधारण धर्म चित्स्वभाव है, सो ही सामान्यभावकरि शुद्धनयका विषय है, तिस ही कूं प्रधान करि कथन है, सो याके साक्षात् अनुभवके अर्थि ऐसा कह्या है, जो यामैं नयनिके अनेक पक्षपात उपजे हैं। बद्ध अबद्ध, मूढ अमूढ, रागी विरागी, द्वेषी अद्वेषी, कर्ता अकर्ता, भोक्ता अभोक्ता, जीव अजीव, सूक्ष्म स्थूल, कारण अकारण, कार्य अकार्य, भाव अभाव, एक अनेक, सान्त असान्त, नित्य अनित्य, वाच्य अवाच्य, नाना अनाना, चेत्य अचेत्य, दृश्य अदृश्य, वेद्य अवेद्य, भात अभात इत्यादि नयनिके पक्षपात हैं। सो तत्त्वका अनुभवन करनेवाला पक्षपात नाहीं करे है। नयनिकूं तौ यथायोग्य विवक्षातैं साधे है। अर चैतन्यकूं चेतनमात्र ही अनुभवन करे है। इस ही अर्थका संक्षेपकरि काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां।
अंतर्वहिःसमरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रं ॥४५॥

अर्थ—जो तत्त्वका जाननेवाला पुरुष है सो पूर्वोक्त प्रकार आपै आप उठते हैं वहुतविकल्पनिके जाल जामैं, ऐसी जो वडी नयपक्षरूप वन ताकूं उल्लंघ्यकरि अर समरस जो वीतराग भाव सो ही है एकरस जामैं ऐसा है स्वभाव जाका ऐसा जो आत्माका भाव अपना स्वरूप अनुभूतिमात्र, ताकूं प्राप्त होय है। फेरि कहे हैं—

रथोद्धताछन्दः

इंद्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६॥

पक्षातिक्रांतस्य किं स्वरूपमिति चेत्?

अर्थ—तत्त्ववेदी ऐसा अनुभवन करे है जो मैं चिन्मात्र मह तेजका पुंज हूं। जाका स्फुरायमान होना ही वड़ी वड़ी पुष्ट उठती चंचल जे विकल्परूप लहरी, तिनि करि उछलता इनि नयनिके प्रवर्तनरूप इंद्रजाल, ताही तत्काल समस्तनिकूं दूरी करे है।

भावार्थ—चैतन्यका अनुभवन ऐसा है, जो याकै होतैं समस्त नयनिका विकल्परूप इंद्रजाल है सो तत्काल विलय जाय है। आगे पूछे है जो पक्षतैं अतिक्रांत है दूरवर्ती है तिसका कहा स्वरूप है॥ ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं। गाथा—

दोराहवि रायाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिवद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥७५॥

द्वयोरपि नययोर्भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिबद्धः।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥७५॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु भगवान्केवली श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः विश्वसाक्षितया केवलं स्वरूपमेव जानाति न तु सततमुल्लसितसहजविमलसकलकेवलज्ञानतया नित्यं स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वाच्छ्रुतज्ञानभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहदूरीभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति तथा किल यः श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः क्षयोपशमविजृंभितश्रुतज्ञानात्मकविकल्पप्रत्युद्गमनेपि परपरिग्रहप्रतिनिवृत्तौत्सुक्यतया स्वरूपमेव केवलं जानाति न तु खरतरदृष्टिगृहीतसुनिस्तुषनित्योदितचिन्मयसमयप्रतिबद्धतया तदात्वे स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वात् श्रुतज्ञानात्मकसमस्तांतर्बहिर्जल्परूपविकल्पभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति स खलु निखिलविकल्पेभ्यः परतरः परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्योतिरात्मख्यातिरूपोनुभूतिमात्रः समयसारः।

अर्थ—जो पुरुष समय कहिये अपना शुद्धात्मा तिसतैं प्रतिबद्ध है आत्माकूं जाने है, सो दोऊ ही नयका कह्याकूं केवल जाने ही है। बहुरि नयपक्षकूं किछू भी नाहीं ग्रहण करे है। कैसा है वह पुरुष? नयके पक्षकरि रहित है।

टीका—इहां प्रथम दृष्टांत कहे हैं, जैसे केवली भगवान् सर्वज्ञ वीतराग समस्त वस्तूका साक्षीभूत है, ज्ञाता द्रष्टा है, सो श्रुतज्ञानके अवयवभूत जे व्यवहार निश्चयनयके पक्षरूप दोय नय तिनिका केवल स्वरूपकूं जाने ही है। बहुरि काहू ही नयके पक्षकूं नाही ग्रहण करै है। जातैं

केवली भगवान् निरंतर उदय स्वाभाविक निर्मल केवल ज्ञानस्वभाव है, तातैं नित्य ही स्वयमेव विज्ञानघनस्वरूप है, याहीतैं श्रुतज्ञानकी भूमिकातैं अतिक्रांतपणाकरि समस्त नय पक्षका परिग्रहतैं दूरीवर्ती है। तैसे ही जो मति श्रुतज्ञानी है सो भी श्रुतज्ञानके अवयवभूत जे व्यवहार निश्चय दोऊ नय तिनिका पक्षका स्वरूपकूं ही केवल जाने है, जातैं याकै क्षायोपशमिक ज्ञान है, ताकरि उपजे जे श्रुतज्ञानस्वरूप विकल्प तिनिका फेरि उपजना होय है, तौऊ पर जे ज्ञेय तिनिका ग्रहणप्रति उत्साहकी निवृत्ति है, ताकरि नयनिका स्वरूपका ज्ञाता ही है। बहुरि काहूहि नयको पक्षकूं नाही ग्रहण करे है, जातैं तीक्ष्ण ज्ञानदृष्टिकरि ग्रह्या जो निर्मल नित्य जाका उदय ऐसा चिन्मय समय कहिये चैतन्यस्वरूप अपना शुद्ध आत्मा, तिसतैं याकै प्रतिबद्धपणा है, ताकरि तिस स्वरूपके अनुभवनके काल स्वयमेव केवलीकी ज्यौं विज्ञानघनरूप भया है। याहीतैं श्रुतज्ञान स्वरूप जे समस्त अंतरंग अर बाह्य जल्प कहिये अक्षरस्वरूप विकल्प ताको भूमिकातैं अतिक्रांत है, तिसपणे करि केवलीकी ज्यौं समस्त नयपक्षका ग्रहणतैं दूरीभूत है। सो ऐसा मतिश्रुतज्ञानी भी है। सो निश्चयकरि समस्त विकल्पनितैं दूरवर्ती परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्योति आत्मख्यातिरूप अनुभूतिमात्र समयसार है।

भावार्थ—जैसैं केवली भगवान् सदा नयनिकी पक्षका ज्ञाता द्रष्टा है तैसैं ही श्रुतज्ञानी भी जिस काल समस्त नयपक्षतैं रहित होय शुद्ध चैतन्यमात्र भावका अनुभवन करे है तब नयपक्षका ज्ञाता ही है। एकनयकी सर्वथा पक्ष ग्रहण करे तौ मिथ्यात्वसूं मील्यो पक्षको राग होय। बहुरि प्रयोजनके वशतैं एकनयकूं प्रधानकरि ग्रहण करै, तौ मिथ्यात्व विना चारित्रमोहका पक्षसूं राग रहै। अर जब नयपक्ष छोडी वस्तुस्वरूपकूं केवल जाने ही, तब तिस काल श्रुतज्ञानी भी केवलीकी ज्यौं वीतरागसारिखा ही होय है ऐसा जानना। इस अर्थकूं मनमें धारि तत्त्ववेदी ऐसा अनुभव करै ऐसे अर्थरूप काव्य कहे हैं।

स्वागताछन्दः

चित्स्वभावभरभावितभावाऽभावभावपरमार्थतयैकं ।

बंधपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारं ॥४७॥

पक्षातिक्रांत एव समयसार इत्यवतिष्ठते ।

अर्थ—मैं जू हौं तत्त्वका जाननेवाला सो समयसार जो परमात्मा ताही अनभवूं हूं । कैसा है समयसार ? चैतन्यस्वभावका भर कहिये पुंज, ताकरि भया है भाव अभावस्वरूप जो एकभावरूप परमार्थ तिसपणाकरि एक है ।

टीका—परमार्थकरि विधिप्रतिषेधका विकल्प जामैं नाहीं है। बहुरि पहले कहा करि अनुभवूं हूं ? समस्त ही जो बंधकी पद्धति कहिये परिपाटी, ताकूं दूरि करिकै ।

भावार्थ—परद्रव्यके कर्ताकर्म भावकरि बंधकी परिपाटी चाले थी, ताकूं पहले दूरी करि समयसारकूं अनुभवूं हौं । बहुरि कैसा है ? अपार है, जाके केवलज्ञानादि गुणका पार नाहीं है । आगे ऐसा नियमकरि ठहरावे है, जो पक्षतैं अतिक्रांत दूरवर्ती ही समयसार है । गाथा—

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं ।

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥७६॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेतल्लभत इति केवलं व्यपदेशं ।

सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥७६॥

आत्मख्यातिः—अयमेक एव केवलं सम्यग्दर्शनज्ञानव्यपदेशं किल लभते । यः खल्वखिलनयपक्षाक्षुण्णतया विश्रांतसमस्तविकल्पव्यापारः स समयसारः । यतः प्रथमतः श्रुतज्ञानावष्टंभेन ज्ञानस्वभावमात्मानं निश्चित्य ततः खल्वात्मख्यातये परख्यातिहेतूनखिला एवेंद्रियानिंद्रियबुद्धीरवधार्य आत्माभिमुखीकृतमतिज्ञानतत्त्वः, तथा नानाविधपक्षालंबनेनानेकविकल्पैराकुलयंतीः श्रुतज्ञानबुद्धीरप्यवधार्य श्रुतज्ञानतत्त्वमप्यात्माभिमुखीकुर्वन्नत्यंतमविकल्पो भूत्वा झगित्येव स्वरसत

एव न्कीभवंतमादिमध्यांतविमुक्तमनाकुलमेकं केवलमखिलस्यापि विश्वस्योपरितरंतमिवाखंडप्रतिभासमयमनंतं विज्ञानघनं परमात्मानं समयसारं विंदन्नेवात्मा सम्यग्दृश्यते ज्ञायते च ततः सम्यग्दर्शनं ज्ञानं च समयसार एव ।

अर्थ—जो सर्व नयपक्षतैं रहित है सो ही समयसार ऐसा कह्या है बहुरि यह समयसार है सो ही केवल सम्यग्दर्शनज्ञान ऐसा नामकूं पावे है यह नाम वाहीके है, वस्तु दोय नाहीं है। जो निश्चयतैं समस्त नयपक्षतैं भेदरूप न किया जाय ऐसा चिन्मात्रभाव, तिसकरि विलय भये हैं समस्त विकल्पनिके व्यापार जामैं ऐसा समयसार शुद्धस्वरूप है। सो यह ही एक केवल सम्यग्ज्ञान ऐसा नामकूं पावे है। परमार्थतैं एकही है। जातैं आत्मा प्रथम ही श्रुतज्ञानके अवलंबन करि ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चयकरि, तापीछे निश्चयतैं आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि होनेके अर्थि परख्याति जो आत्मातैं परपदार्थकी ख्याति कहिये प्रगट होना, ताकूं कारण जो इंद्रिय अर मनके द्वारैं प्रवृत्तिरूप बुद्धि, ताकूं गौण करी आत्माके सन्मुख किया है मतिज्ञानका स्वरूप जानैं ऐसा होय है। बहुरि तैसे ही नानाप्रकारके नयनिके पक्ष, तिनिका अवलंबन करी अनेक विकल्पनिकरि आकुलता उपजावती जो श्रुतज्ञानकी बुद्धि ताकूं भी गौण करी, अर श्रुतज्ञान है ताकूं भी आत्मतत्त्व स्वरूपविषैं सम्मुख करता संता अत्यंत निर्विकल्परूप होय, अर तत्काल ही अपने निजरसहीकरि व्यक्त प्रगट होता आदि मध्य अंतके भेदकरि रहित, अनाकुल एक केवल समस्त पदार्थसमूह जो लोक, ताके उपरि तरता जैसैं होय तैसैं अखंडप्रतिभासमय अविनाशी अनंतविज्ञानघन स्वभावरूप परमात्मा जो समयसार, ताही अनुभवता संता सम्यक्प्रकार देखिये है श्रद्धिये है, सम्यक्प्रकार जानिये है। तातैं यह ही सम्यग्दर्शन है, यह ही सम्यग्ज्ञान है ऐसैं यह ही समयसार है। २४०

भावार्थ—आत्माकूं पहले आगमज्ञानतैं ज्ञानस्वरूप निश्चयकरि, पीछे इंद्रियबुद्धिरूप मतिज्ञानकूं भी ज्ञानमात्रहीमैं मिलाय, श्रुतज्ञानरूप नयनिके विकल्प मीटि, अर श्रुतज्ञानकूं भी निर्विकल्प

करि एक ज्ञानमात्र अखंड प्रतिभासका अनुभवन करना । यह ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान नाम पावे है किछु न्यारा ही है नाहीं । अब याही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान् ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोप्ययं ॥४८॥

अर्थ—जो नयनिका पक्षविना निर्विकल्पभावकूं प्राप्त होता, निश्चल जैसें होय तैसें समय कहिये आगम अथवा आत्मा, ताका सार है सो सोभे है । सो कैसा है ? जे निश्चितपुरुष हैं तिनि करि स्वयं आस्वाद्यमान है, तिनिनैं अनुभवतैं जाणि लिया है । सो ही यह भगवान् विज्ञान ही है एकरस जाका ऐसा है, सो पवित्र पुराणपुरुष है, याकूं ज्ञान कहौ अथवा दर्शन कहौ अथवा किछू और नामकरि कहौ, जो कछू है सो यह एक ही है, नाना नाम कहावे है । अब कहे हैं, जो यह आत्मा ज्ञानतैं च्युत भया था सो ज्ञानहीसूं आय मिले है ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मनमात्मा हरन् आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥४९॥

अर्थ—यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभावतैं च्युत भया संता, प्रचुर विकल्पनिके जालके गहनवनमें अतिशयकरि भ्रमण करे था, तिस भ्रमतेकूं विवेकरूप नीचे मार्गके गमनकरि जलकी ज्यौं अपना विज्ञानघन स्वभावविषैं दूरतैं आणि मिलाया । कैसा है ? जे विज्ञानका रस ही के एक रसीले हैं, तिनिकूं एक विज्ञानरस स्वरूप ही है । सो ऐसा आत्मा अपने आत्मस्वभाव ही कूं आप ही विषैं समेटता संता जैसैं बाह्या गया था, तैसैं ही अपने स्वभावविषैं आय प्राप्त होय है ।

भावार्थ—इहां जलका दृष्टांत है । जैसैं जल है सो जलके निवासमेंसं कोई मार्गकरि बाह्य निसरै सो वनमें अनेक जायगा भ्रमे, फेरि कोई नीचा मार्गकरि ज्यौंका त्यौं अपना जलके

निवासमें आय मिलै। तैसैं आत्मा भी अनेक विकल्पनिके मार्गकरि स्वभावतैं च्युत भया भ्रमण करता संता कोई विवेक भेदज्ञानरूप नीचा मार्गकरि आप ही आपकूं खेचता संता, अपने स्वभाव विज्ञानघनविषैं आय मिले है।

अब कर्ता कर्म अधिकारकूं पूर्ण किया है, सो कर्ता कर्मका संक्षेप अर्थके कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्। न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥५०॥

अर्थ–विकल्प करनेवाला तौ केवल कर्त्ता है। बहुरि विकल्प है सो केवल कर्म है। अन्य किछू कर्ता कर्म नाहीं है। यातैं जो विकल्पसहित है, ताका कर्ता कर्मपणा कदाचित् भी नष्ट नाहीं होय है।

भावार्थ—जहां तांई विकल्पभाव है, तहां तांई कर्ताकर्मभाव है। जिस काल विकल्पका अभाव होय, तिस काल कर्ताकर्मभावका भी अभाव होय है। अब कहे हैं, जो करे है सो करे ही है, जाने है सो जाने ही है।

रथोद्धताछन्दः

यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम्।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१॥

अर्थ–जो करे है, सो केवल करे ही है। बहुरि जो जाने है, सो केवल जाने ही है। बहुरि जो करे, है, सो कछू ही नाहीं जाने है। अर जो जाने है, सो कछू ही नाहीं करे है।

भावार्थ–कर्ता है सो ज्ञाता नाहीं, अर ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं। अब कहे हैं, ऐसैं ही करनेरूप क्रिया अर जाननेरूप क्रिया दोऊ भिन्न हैं।

इन्द्रवज्राछन्दः

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥५२॥

अर्थ--जाननेरूप क्रिया है, सो तौ करनेरूप क्रियाविषैं अंतरंगमैं नाहीं भासे है। बहुरि करनेरूप क्रिया है, सो जाननेरूप क्रियाविषैं अंतरंगमें नाहीं भासे है। तातैं ज्ञप्ति क्रिया अर करोति क्रिया दोऊ भिन्न हैं। तातैं यह ठहरी जो ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं है।

भावार्थ--जिस काल ऐसे परिणमे है, जो मैं परद्रव्यकूं करूं हौं, तिस काल तौ तिस परिणमन क्रियाका कर्ता ही है। बहुरि जिस काल ऐसै परिणमे है, जो मैं परद्रव्यकूं जानूं हौं, तिस काल जानन क्रियारूप ज्ञाता ही है। इहां कोई पूछे है, अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके जेतैं चारित्रमोहका उदय है, तेतैं कषायरूप परिणमे है। तहां कर्ता कहिये कि नाहीं ? ताका समाधान—जो अविरत सम्यग्दृष्टयादिके श्रद्धान ज्ञानमय परद्रव्यके स्वामीपणारूप कर्तापणाका अभिप्राय नाहीं, अर कषायरूप परिणमन है सो उदयकी बरजोरीसूं है, ताका यहु ज्ञाता है। तातैं अज्ञानसंबंधी कर्तापणा याकै नाहीं है। अर निमित्तकी बरजोरीका परिणमनका फल किंचित् होय है। सो संसारका कारण नाहीं है। जैसैं वृक्षकी जड कटे पीछै किंचित्काल रहै या न रहै तैसैं है। फेरि दृढ करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि द्वन्द्वं विप्रतिपिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिनिर्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥५३॥

अथवा नानाट्यतां तथापि—

अर्थ—कर्ता है सो तौ कर्मविषैं निश्चयकरि नाहीं है। बहुरि कर्म है सो भी कर्ताविषैं निश्चयकरि नाहीं है। ऐसैं दोऊ ही परस्पर विशेषकरि प्रतिषेधिये, तब कर्ताकर्मकी कहा स्थिति होय ? नाहीं होय। तब वस्तुकी मर्यादा प्रगट व्यक्तरूप यह ठहरी, जो ज्ञाता तौ सदा ज्ञानविषैं ही है। अर कर्म है सो सदा कर्मविषैं ही है। तौऊ यह मोहै अज्ञान है, सो नेपथ्यविषैं कैसैं नाचे है ? सो यह बडा खेद है। नेपथ्य कहिये शांत ललित उदात्त धीर इनि च्यारि

आभरणनि सहित जो यह तत्त्वनिका नृत्य, ताविषैं यह मोह कैसैं नाचे है ? कर्ताकर्मभाव तौ नेपथ्यस्वरूप नृत्यका आभूषण नाहीं, ऐसैं खेदसहित वचन आचार्य नें कह्या है।

भावार्थ—कर्म तौ पुद्गल है, ताका कर्ता जीवकूं कहिये, तौ तिनि दोऊनिकौ तौ वडा भेद है, जीव तौ पुद्गलमें नाहीं अर पुद्गल जीवमें नाहीं तब इनिके कर्तृकर्मभाव कैसा वनै ? तातैं जीव तौ ज्ञाता है, सो ज्ञाता ही है, पुद्गलका कर्ता नाहीं। वहुरि पुद्गलकर्म है सो कर्म ही है। तहां आचार्य खेदकरि कह्या है—जो ऐसें प्रगट भिन्नद्रव्य हैं, तौऊ अज्ञानीका ए मोह कैसैं नाचे है ? जो मैं तो कर्ता हूं अर यह पुद्गल मेरा कर्म है, यह वडा अज्ञान है। फेरि कहे हैं, जो ऐसें मोह नाचे है, तो नाचो, वस्तुस्वरूप तो जैसा है तेसा ही तिष्ठै है।

मन्दाक्रांताछन्दः

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चैर्निश्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४॥

इति जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रांतौ।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ द्वितीयोऽङ्कः।

अर्थ—यहू ज्ञानज्योति है सो अंतरंगविषैं अतिशयकरि अपनी चेतन्यशक्तीके समूहके भारतैं अत्यंत गंभीर, जाका थाह नाहीं, सो ऐसैं निश्चल व्यक्तरूप प्रगट भया। जैसैं अज्ञानविषैं आत्मा कर्ता था, सो तौ अब कर्ता न होय, अर याके अज्ञानतैं पुद्गलकर्मरूप होय था, सो अब कर्मरूप न होय, वहुरि जैसैं ज्ञान तो ज्ञानरूप ही होय अर पुद्गल है सो पुद्गलरूप ही रहै, ऐसैं प्रगट भया।

भावार्थ—आत्मा ज्ञानी होय तब ज्ञान तौ ज्ञानरूप ही परिणमै, पुद्गलकर्मका कर्ता न वनै, वहुरि पुद्गल है सो पुद्गलरूप ही रहै, कर्मरूप न परिणमै, ऐसैं आत्माकै ज्ञान यथार्थ भये दोऊ द्रव्यके परिणामके निमित्तनैमित्तिकभाव नाहीं होय है, ऐसा सम्यग्दृष्टीकै ज्ञान होय है। ऐसैं

जीव अर अजीव दोऊ कर्ता कर्मके वेषकरि एक होय नृत्यके अखाडेमैं प्रवेश किया था, सो सम्यग्दृष्टीका ज्ञान यथार्थ देखनेवाला है, सो दोऊकूं न्यारे न्यारे लक्षणतैं दोय जानि लीये, तब वेष दूरि करी, रंगभूमितैं बाह्य नीसरी गये। बहुरूपीका वेषका यह ही प्रवर्तन है--जो देखनेवाला जेतैं पहिचाने नाहीं, तेतैं चेष्टा किया करै, अर यथार्थ पहिचानि ले तब निजरूप प्रगट करि चेष्टा न करता बैठि रहै, तैसैं जानना। ऐसैं कर्ताकर्म नामा दूसरा अधिकार पूर्ण भया।

सवैया तेईसा

जीव अनादि अज्ञान वसाय विकार उपाय वणै करता सौ,
ताकरि बंधन आन तणूं फल ले सुख दुःख भवाश्रमवासो।
ज्ञान भये करता न वणे तव बंध न होय खुलै परपासो,
आतममोहि सदा सुविलास करै सिव पाय रहै निति थासो ॥१॥

याकी गाथा ७६। कलसा ५४। अर पहिला अधिकारकी गाथा ६८। कलसा ४५।
सब मिलि गाथा तौ १४४ भई अर कलसा ९९ भये।

ऐसैं इस समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं दूसरा कर्ताकर्मनामा अधिकार पूर्ण भया ॥२॥



अथ पुण्यपापाधिकारः।

दोहा—पुण्य पाप दोऊ करम बंधरूप दुर मानि। शुद्ध आतमा जिन लह्यो नमूं चरन हित जानि ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथैकमेव कर्म द्विपात्रीभूय पुण्यपापरूपेण प्रविशति—

अब टीकाकारके वचन हैं। तहां कर्म एक ही प्रकार है, सो दोय जो पुण्यपापरूप तिनिकरि प्रवेश करे है। जैसैं नृत्यके अखाडे में एक ही पुरुष अपने दोय रूप दिखाय नाचै, ताकूं यथार्थ

ज्ञानी पहिचाने, तब एक ही जानै। तैसैं सम्यग्दृष्टीका ज्ञान यथार्थ है सो यद्यपि कर्म एक ही है, सो पुण्यपाप भेदकरि दोय प्रकार रूप करि नाचे है, ताकूं एकरूप पहिचानि ले। तिस ज्ञानकी महिमारूप इस अधिकारके आदिविषैं काव्य कहे हैं।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्। ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१॥

अर्थ—अथ कहिये कर्ताकर्म अधिकारके अनंतर, यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर सम्यग्ज्ञानरूप चंद्रमा है, सो स्वयं आपैआप उदयकूं प्राप्त होय है। कैसा है? तत् कहिये सो प्रसिद्ध कर्म है सो कर्म सामान्यकरि एक ही प्रकार है। सो शुभ अर अशुभके भेदतैं दोयरूपपणाकूं प्राप्त भया है। ताकूं एकपणाकूं प्राप्त करता संता, उदय होय है।

भावार्थ—अज्ञानतैं एक कर्म दोय प्रकार देखे था, सो ज्ञान एक प्रकार दिखाय दिया। वहुरि कैसा है ज्ञान? दूरी किया है अतिशयरूप मोहमय रज जानैं। भावार्थ—ज्ञानविषैं मोहरूप रज लागि रह्या था, सो दूरी किया, तब यथार्थ ज्ञान भया। जैसैं चंद्रमाकै बादला तथा पालाका पटल आडा आवै, तब यथार्थप्रकाश होय नाहीं, आवरण दूरी भये यथार्थ प्रकासै, तैसैं जानना। आगैं पुण्यपापका स्वरूपका दृष्टांतरूप काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमानादन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२॥

अर्थ—काहू शूद्री स्त्रीके उदरतैं युगपत् एक ही काल दोय पुत्र निसरे जन्मे, तिनिमैं एक तो ब्राह्मणके घर पल्या, ताकै ब्राह्मणपनाका अभिमान भया, जो मैं ब्राह्मण हौं सो तिस अभिमानतैं मदिराकूं दूरीहीतैं छोडे है, स्पर्शे भी नाहीं है। वहुरि दूजा शूद्रहीके घर रह्यो, सो मैं आप शूद्र हौं ऐसैं मानि तिस मदिराकरि नित्य सौच करे है, शुचि माने है सो याका परमार्थ

विचारिये तब दोऊ ही शूद्रीके पुत्र हैं, जातैं दोऊ ही शूद्रीके उदरतैं जन्मे हैं, सो साक्षात् शूद्र हैं। ते जाति भेदके भ्रमकरि प्रवर्ते हैं, आचरण करे हैं। ऐसैं पुण्यपाप कर्म जानने, विभावपरिणतीतैं उपचे, दोऊ ही बंधरूप हैं, प्रवृत्तिभेदकरि दोय दीखे हैं, परमार्थदृष्टि कर्म एक ही जाने हैं। आगे शुभाशुभ कर्मके स्वभावका वर्णन कहे हैं। गाथा—

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाण सुहसीलं।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १ ॥

कर्माशुभं कुशीलं शुभकर्म चापि जानीत सुशीलं।
कथं तद् भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति ॥ १ ॥

आत्मख्यातिः—शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तत्वे सति कारणभेदात् शुभाशुभपुद्गलपरिणाममयत्वे सति स्वभावभेदात् शुभाशुभफलपाकत्वे सत्यनुभवभेदात् शुभाशुभमोक्षबंधमार्गाश्रितत्वे सत्याश्रयभेदात् चैकमपि कर्म किंचिच्छुभं किंचिदशुभमिति केषांचित्किल पक्षः, स तु प्रतिपक्षः। तथाहि शुभोऽशुभो वा जीवपरिणामः केवलाज्ञानत्वादेकस्तदेकत्वे सति कारणाभेदात् एकं कर्म। शुभोऽशुभो वा पुद्गलपरिणामः केवलपुद्गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सति स्वभावाभेदादेकं कर्म। शुभोऽशुभो वा फलपाकः केवलपुद्गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सत्यनुभवाभेदादेकं कर्मः। शुभाशुभौ मोक्षबंधमार्गौ तु प्रत्येकं केवलजीवपुद्गलमयत्वादनेकौ तदनेकत्वे सत्यपि केवलपुद्गलमयबंधमार्गाश्रितत्वेनाश्रयाभेदादेकं कर्म।

अर्थ—अशुभकर्म तौ कुशील है, पापस्वभाव है, बुरा है। बहुरि शुभकर्म है सो सुशील है, पुण्यस्वभाव है, भला है। ऐसैं जगत् जाने है। तहां परमार्थदृष्टि कहे हैं, जो कर्म तौ शुभ होऊ, तथा अशुभ होऊ, प्राणीकूं संसारमें प्रवेश करावे है सो सुशील कैसैं होय? नाहीं होय।

टीका—केईकनिका ऐसा पक्ष है, कर्म एक है तौ शुभ अशुभके भेदतैं दोय भेदरूप है। जातैं अर अशुभ जे जीवके परिणाम ते जाकूं निमित्त हैं तिस पणेकरि कारणके भेदतैं भेद है।

बहुरि शुभ अर अशुभ जे पुद्गलके परिणाम, तिनिमय होते संते, स्वभावके भेदतैं भेद है। बहुरि कर्मका फल जो शुभ अर अशुभ, तिसका पाक जो रस, तिसपणाकूं होतैं, अनुभव कहिये स्वादका भेदतैं भेद है। बहुरि शुभ अर अशुभ जो मोहका अर बंधका मार्ग, ताकूं आश्रितपणा होतैं, आश्रयका भेदतैं भेद है। ऐसैं इनि चारि हेतूनितैं किछू कोई कर्म शुभ है, कोई कर्म अशुभ है, ऐसा कोईका पक्ष है, सो सप्रतिपक्ष है—याका निषेध करनेवाला दूसरा पक्ष है सो ही कहे है। जो शुभ अथवा अशुभ जीवका परिणाम है, सो केवल अज्ञानमयपणातैं एक ही है, ताकूं एक होतैं कारणका अभेद है, तातैं कारणका अभेदतैं कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ पुद्गलका परिणाम है सो केवल पुद्गलमय है। तातैं एक ही है। ताके एक होते स्वभावका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ जो कर्मका फलका रस, सो केवल पुद्गलमय ही है। ताके एक होतैं अनुभव कहिये आस्वादके अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ मोक्षका अर बंधका मार्ग ए दोऊ न्यारे हैं। केवल जीवमय तौ मोक्षका मार्ग है अर केवल पुद्गलमय बंधका मार्ग है, ते अनेक हैं एक नाहीं हैं। तिनिकूं एक न होतै भी केवल पुद्गलमय जो बंधमार्ग ताका आश्रितपणाकरि आश्रयका अभेदतैं कर्म एक ही है।

भावार्थ—कर्मके विषैं शुभ अशुभका भेदकी पक्ष चार हेतुतैं कही। तहां शुभका हेतु तौ जीवका शुभपरिणाम है, सो अरहंतादिविषैं भक्तोका अनुराग, बहुरि जीवनिविषैं अनुकंपापरिणाम, बहुरि मंदकषायतैं चित्तकी उज्ज्वलता इत्यादि हैं। बहुरि अशुभकूं जीवके अशुभपरिणाम तीव्र क्रोधादिक अशुभलेश्या, निर्दयपणा, विषयासक्तपणा, देवगुरु आदि पूज्यपुरुषनितैं विनयरूप न प्रवर्तना इत्यादिक हैं। तातैं इनि हेतूनिके भेदतैं कर्म शुभाशुभरूप दोय प्रकार है। बहुरि शुभ अशुभ पुद्गलके परिणामका भेदतैं स्वभावका भेद है। शुभ तौ द्रव्यकर्म तौ सातावेदनीय शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र ए हैं। अर अशुभ चारी घातिया अर असातावेदनीय, अशुभ

आयु, अशुभनाम, अशुभगोत्र ए हैं। बहुरि इनिके उदयतैं प्राणीकूं इष्ट अनिष्ट भली बुरी सामग्री मिले सो है, सो ए पुद्गलके स्वभाव हैं, सो इनिका भेदतैं कर्मविषैं स्वभावका भेद है अर शुभ अशुभ अनुभवका भेदतैं भेद है। शुभका अनुभव तौ सुखरूप स्वाद है अर अशुभका दुःखरूप स्वाद है। बहुरि शुभाशुभ आश्रयका भेदतैं भेद है। शुभका तौ आश्रय मोक्षमार्ग है अर अशुभका आश्रय बंधमार्ग है ऐसा तो भेदपक्ष है। अब याका निषेधपक्ष कहे हैं। जो शुभ अर अशुभ दोऊ जीवके परिणाम अज्ञानमय हैं, तातैं दोऊका एक अज्ञान ही हेतु है। तातैं हेतूका भेदतैं कर्ममें भेद नाहीं है। बहुरि शुभ अशुभ दोऊ पुद्गलके परिणाम हैं। तातैं पुद्गल-परिणामरूप स्वभाव भी दोऊका एक ही है, तातैं स्वभावका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभाशुभ फल सुखदुःखरूप स्वाद भी पुद्गलमय ही है, तातैं स्वादका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अशुभ मोक्षबंधमार्ग कहे, ते मोक्षमार्ग तौ केवल एक जीवहीका परिणाम है अर बंधमार्ग केवल एक पुद्गलहीका परिणाम है, आश्रय न्यारे न्यारे हैं, तातैं बंधमार्गके आश्रयतैं भी कर्म एक ही है। ऐसैं इहां कर्मके शुभाशुभ भेदका पक्षकूं गौण करि निषेध किया, जातैं इहां अभेदपक्ष प्रधान है, सो अभेदपक्ष करि देखिये तब कर्म एक ही है, दोय नाहीं है। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेदः।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥३॥

अथोभयं कर्माविशेषेण बंधहेतुं साधयति—

अर्थ—हेतु स्वभाव अनुभव आश्रय इनि च्यारीनिके सदा ही अभेदतैं कर्मविषैं भेद नाहीं है। तातैं बंधका मार्गकूं आश्रय करि कर्म एक ही इष्ट किया है, मान्या है। जातैं शुभरूप तथा

अशुभरूप दोऊ ही आप स्वयं निश्चयतैं बंध हीका कारण हैं। आगैं शुभ अशुभ दोऊ ही कर्मकूं अविशेष करि बंधका कारण साधे हैं। गाथा—

सौवणिणयह्मि णियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ २ ॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि च यथा पुरुषं।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ २ ॥

आत्मख्यातिः—शुभमशुभं च कर्मविशेषणैव पुरुषं बध्नाति बंधत्वाविशेषात् कंचनकालायसनिगलवत् अथोभयं कर्म प्रतिषेधयति—

अर्थ—जैसैं सुवर्णकी बेडी पुरुषकूं बाधे है अर लोहेकी बेडी भी पुरुषकूं बांधे है, तैसैं शुभ तथा अशुभ किये हुये कर्म है सो जीवकूं बांधे ही है।

टीका—शुभ अर अशुभ कर्म है सो अविशेष करि पुरुष जो आत्मा ताकूं बांधे ही है, जातैं दोऊ बंधपणा करि विशेष रहित हैं। जैसैं सुवर्णकी बेडी अर लोहकी बेडीमें बंध अपेक्षा भेद नाहीं। तैसैं कर्ममें भी बंध अपेक्षा भेद नाहीं है। आगे शुभ अशुभ जे दोऊ कर्म तिनिकूं निषेधे हैं। गाथा—

तह्मादु कुसीलेहिय रायं माकाहि माव संसग्गं।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ ३ ॥

तस्मात्तु कुशीलैरागं मा कुरु मा वा संसर्गं।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागाभ्याम् ॥३॥

आत्मख्यातिः—कुशीलशुभाशुभकर्मभ्यां सह रागसंसर्गौ प्रतिषिद्धौ बंधहेतुत्वात् कुशीलमनोरमाऽमनोरमकरेणुकुट्टिनीरागसंसर्गवत्। अथोभयं कर्म प्रतिषेध्यं स्वयं दृष्टांतेन समर्थयते—

अर्थ—भो मुनिजन हो, पूर्वोक्त शुभ अशुभ कर्म हैं ते कुशील हैं, निंद्य स्वभाव हैं। तातैं तिनि दोऊ कुशीलनितैं राग प्रीति मति करो अथवा तिनिका संसर्ग भी मति करो। जातैं कुशीलके संसर्गतैं अर रागतैं अपना स्वाधीनका ही विनाश है, आपका घात आप हीतैं होय है।

टीका—कुशील जे शुभ अशुभ कर्म तिनि करि सहित राग अर संसर्ग दोऊ प्रतिषेधे हैं। जातैं ये दोऊ ही कर्मबंधके कारण हैं। जैसैं कुशील जो मनको रमावनेवाली अर मनको नाहीं रमावनेवाली हथनीरूपी कुट्टनी, ताका राग अर संसर्ग करनेवाला हस्तीका स्वाधीन विनाश होय है, तैसैं स्वाधीन विनाश है। आगै दोऊ कर्मका प्रतिषेधकूं आप दृष्टांत करि दृढ करे हैं। गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥ ४ ॥
एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादु।
वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गं सहावरदा ॥ ५ ॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषः कुत्सितशीलं जणं विज्ञाय।
वर्जयति तेन समकं संसर्गं रागकरणं च ॥ ४ ॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा।
वर्जयंति परिहरंति च तत्संसर्गं स्वभावरताः ॥ ५ ॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु कुशलः कश्चिद्वनहस्ती स्वस्य बंधाय उपसर्प्पन्तीं चटुलमुखीं मनोरमाममनोरमां वा करेणुकुट्टिनीं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति। तथा किलात्माऽरागो ज्ञानी स्वस्य बंधाय उपसर्प्पंतीं मनोरमाममनोरमां वा सर्वामपि कर्मप्रकृतिं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति।

अथोभयकर्महेतुं प्रतिषेध्यं चागमेन साधयति—

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष कुत्सित कहिये निंदनेयोग्य बुरा जाका स्वभाव ऐसा काहूं लोककूं

जानि, तिसकी साथी संसर्ग करना अर राग करना वर्जे है, ऐसे ही कर्मप्रकृतीका शीलस्वभाव कूत्सित निंदने योग्य खोटा जानि, ताका संसर्ग वर्जे है, छोडे है अर ताका राग छोडे हैं। अपने स्वभावमैं रत होय हैं, स्वभावमैं लीन होय हैं।

टीका—जैसे कोई प्रवीण वनका हस्ती आपके बंधके अर्थी समीपवर्तती चंचल मुखकूं लीलारूप करती मनको रमावनेवाली सुन्दर तथा असुन्दर जे हथणीरूपी कुट्टिनी ताकूं कुत्सितशील बुरी जाणि, तिस करि सहित राग अर संसर्ग समीप जाना, दोऊ प्रतिपेधे हैं, नाहीं करे है। तैसे ही आत्मा राग रहित ज्ञानी भया संता अपने बंधके अर्थी समीप उदय आवती मनोरमा अमनोरमा कहिये शुभरूप तथा अशुभरूप जो समस्त ही कर्मप्रकृति, ताही परमार्थतैं कुत्सितशील कहिये बुरी जाणि, तिस करि सहित राग अर संसर्ग प्रतिपेधे है।

भावार्थ—जैसें हस्तीकै पकडनेकूं कपटकी हथिणी दिखावे तब हस्ती कामांध भया तिससूं राग संसर्ग करि खंदकमें पडी पराधीन होय, दुख भोगवै अर प्रवीण हस्ती होय तौ तासूं राग संसर्ग न करे। तैसैं कर्मप्रकृतीकूं भली जाणि अज्ञानी तासूं राग करै संसर्ग करै, तब बंधमें पडी संसारके दुःख भोगवे, ज्ञानी होय सो तासूं संसर्ग राग नाहीं करे। आगें शुभ अशुभ दोऊ कर्म हैं ते बंधके कारण हैं अर प्रतिपेधने योग्य हैं यह आगम करि साधे हैं। गाथा—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मारज्ज॥ ६॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते जीवो विरागसम्पन्नः।
एष जिनोपदेशः तस्मात् कर्मसु मारज्यस्व॥ ६॥

आत्मख्यातिः—यः खलु रक्तोऽवश्यमेव कर्म बध्नीयात् विरक्त एव मुच्येतेत्ययमागमः स सामान्येन रक्तत्वनिमित्तत्वाच्छुभमशुभमुभयकर्माविशेषेण बंधहेतुं साधयति तदुभयमपि कर्मप्रतिपेधयति।

अर्थ—रागी जीव है सो तौ कर्मकूं बांधे है, बहुरि वैराग्यकूं प्राप्त है सो जीव कर्मसूं छूटे है, यहू जिनभगवानका उपदेश है। तातैं भो भव्यजीव! तूं कर्मनिविषैं राग प्रीति मति करौ, रागी मति होहू।

टीका—जो रागी है सो अवश्य कर्मकूं बांधे ही है। बहुरि विरक्त है सो ही कर्मतैं छूटे है। ऐसा यह आगमका वचन है। सो यह वचन है सो सामान्य करि कर्म रागीपणाका निमित्तपणा करि शुभ तथा अशुभ ए दोऊ हैं, तिनिकूं अविशेष करि बंधका कारण साधे है, तातैं तिनि दोऊ ही कर्मनिकूं निषेधे है। इस अर्थका कळशरूप काव्य है।

स्वागताछन्दः

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बंधसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥४॥

अर्थ—सर्वज्ञदेव हैं, ते सर्व ही कर्म, शुभ तथा अशुभकूं अविशेषतैं बंधका कारण कहे हैं, तिस ही कारण करि सर्व ही कर्म प्रतिषेध्या है। मोक्षका कारण तौ एक ज्ञान हीकूं कह्या है। अब कहे हैं, जो कर्म सर्व ही प्रतिषेध्या है, तौ मुनि हैं ते कौनके शरणै आश्रय मुनिपद पालैंगे? याके निर्वाहकूं काव्य कहे हैं।

शिखरिणीछन्दः

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥५॥

अथ ज्ञानहेतुं साधयति—

अर्थ—सुकृत कहिये शुभ आचरणरूप कर्म, बहुरि दुरित कहिये अशुभ आचरणरूप कर्म, ऐसा सर्व ही कर्मका निषेध करते संते, बहुरि नैष्कर्म्य कहिये कर्म रहित निवृत्ति अवस्थाकूं प्रवर्तते संते मुनि हैं ते अशरण नाहीं हैं। इहां ऐसी नाहीं आशंका करनी—जो ए मुनिपद काहेके आश्रय

पालैंगे। जिस काल निवृत्ति अवस्था प्रवृत्तै, तिस काल इनि मुनिनिके ज्ञानविषैं ज्ञानहीकूं आचरणा यह शरण है। ते मुनि तिस ज्ञानविषैं लीन भये संते परम उत्कृष्ट अमृतकूं आप स्वयं भोगवे हैं।

भावार्थ—सर्व कर्मका त्याग भये ज्ञानका वडा शरण है। तिस ज्ञानमें लीन भये सर्व आकुलता रहित परमानंदका भोगना होय है, याका स्वाद ज्ञानी ही जाने है। अज्ञानी कषायी जीव कर्महीकूं सर्वस्व जानि तामैं लीन है, ज्ञानानंदका स्वाद नाहीं जाने है। आगे ज्ञानकूं मोक्षका कारण साधे हैं। गाथा—

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तह्मिट्ठिदो सभावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ ७ ॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्ज्ञानी।
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनियः प्राप्नुवंति निर्वाणं ॥७॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानं मोक्षहेतुः, ज्ञानस्य शुभाशुभकर्मणोरबंधहेतुत्वे सति मोक्षहेतुत्वस्य तथोपपत्तेः तत्तु सकलकर्मादिजात्यंतरविविक्तचिज्जातिमात्रः परमार्थ आत्मेति यावत् स तु युगपदेकीभावप्रवृत्तज्ञानगमनतया समयः। सकलनयपक्षासंकीर्णैकज्ञानतया शुद्धः। केवलचिन्मात्रवस्तुतया केवली। मननमात्रभावमात्रतया मुनिः स्वयमेवज्ञानतया ज्ञानी। स्वस्य भवनमात्रतया स्वस्वभावः स्वतश्चितो भवनमात्रतया सद्भावो वेति शब्दभेदेऽपि न च वस्तुभेदः।

अथ ज्ञानं विध्यापयति—

अर्थ—निश्चय करि परमार्थरूप समय कहिये जीवनामा पदार्थका यह स्वरूप है, जो शुद्ध है, केवली है, मुनि है, ज्ञानी है ए जाके नाम हैं। तिस स्वभावविषें जे मुनि तिष्ठे हैं ते मुनि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं।

टीका—ज्ञान ही मोक्षका हेतु कहिये कारण है, जातैं अज्ञान शुभ अशुभ कर्मरूप है, ताकै

बंधका कारणपणा होतैं संतैं मोक्षका कारणपणाकी तैसीहि उपपत्ति है, मोक्षका हेतुपणा ज्ञान हीकै बने है। सो यह ज्ञान है सो ही परमार्थ है, आत्मा है ऐसा कहिये है, जातैं समस्त कर्मकूं आदि लेकरि अन्य पदार्थनितैं भिन्न जात्यंतर चिज्जातिमात्र है। सो ही परमार्थ स्वरूप आत्मा है, जड जातितैं भिन्न है। सो याहीकूं समय कहिये। जातैं समय शब्दका ऐसा अर्थ पूर्वैं कह्या है— सम् ऐसा तो उपसर्ग है, ताका अर्थ तौ एकैकाल एकरूप प्रवर्तना है, बहुरि अय ऐसा शब्दका अर्थ ज्ञान भी है, अर गमन भी सो दोऊ क्रियारूप एकै काल होय प्रवर्तै, ताकूं समय कहिये। सो ऐसा प्रवर्तन जीव नाम पदार्थका है, सो ही आत्मा है। बहुरि तिस हीकूं शुद्ध ऐसा नाम कहिये, जातैं समस्त धर्म तथा धर्मीके ग्रहण करनेवाले जे नय तिनिका पक्ष तिनितैं असंकीर्ण कहिये मिलै नाहीं, न्यारा ही एक ज्ञानपणा है, यह असाधारण धर्म है सो अन्यधर्मनितैं न्यारा ही प्रकाशरूप है, अन्यतैं न मिलै, सो एककूं शुद्ध कहिये। बहुरि याहीकूं केवली कहिये, जातैं केवल एक चैतन्यमात्र वस्तुपणा याकै है, केवलशब्दका अर्थ एक है। बहुरि याहीकूं मुनि कहिये, जातैं मननमात्र कहिये ज्ञानमात्र तिसभावमात्र यह है, तिसपणाकरि मुनि भी यह ही है। बहुरि आप स्वयमेव ज्ञानी है ही, तिसपणाकरि ज्ञानी भी याकूं कहिये है। बहुरि अपना जो ज्ञानस्वरूप, ताका भवन कहिये होना सत्तारूप प्रवर्तना, तिसपणाकरि स्वभाव भी याकूं कहिये। तथा अपना चेतनाका भवनमात्रपणा कहिये सत्तारूप होना, ताकरि सद्भाव ऐसा भी याहीका नाम है। ऐसे शब्दनिके भेदतैं नाम भेद होतैं भी वस्तु भेद नाहीं है।

भावार्थ—मोक्षका अपादान तौ आत्मा ही है, सो आत्माका परमार्थकरि ज्ञान स्वभाव है, सो ज्ञान है सो आत्मा ही है, तथा आत्मा है सो ज्ञान ही है। तातैं ज्ञानहीकूं मोक्षका कारण कहना युक्त है। आगे, कोई जानेगा की, बाह्य तपश्चरणादि करे है, सो ही ज्ञान है, ताकूं ज्ञान-की विधि बतावे हैं। गाथा—

परमट्ठम्मिय अठिदो जो कुणादि तवं वदं च धारयादि ।
तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वह्णु ॥ ८ ॥

परमार्थे चास्थितः करोति तपो व्रतं च धारयति ।
तत्सर्वं वालतपो वालव्रतं विदंति सर्वज्ञाः ॥ ८ ॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानमेव मोक्षस्य कारणं विहितं परमार्थभूतज्ञानशून्यस्याज्ञानकृतयोर्व्रततपः कर्मणोः बंधहेतुत्वाद्वालव्यपदेशेन प्रतिषिद्धत्वे सति तस्यैव मोक्षहेतुत्वात् ।

अथ ज्ञानाज्ञानमोक्षबंधहेतू नियमयति—

अर्थ—जो परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं तौ नाहीं तिष्ठ्या है अर तप करे है बहुरि व्रतकूं धारे है सो सर्व ही तप व्रतकूं सर्वज्ञदेव हैं ते बालतप कहिये अज्ञानतप अर बालव्रत कहिये अज्ञानव्रत जाने हैं कहे हैं ।

टीका—मोक्षका कारण ज्ञान ही है यह विधि है । जातैं परमार्थभूत जो ज्ञान ताकरि शून्य कहिये रहित जो अज्ञानतैं किये तप अर व्रतरूप कर्म, तिनि दोऊनिकै बंधका कारणपणा है । तातैं बालतप बालव्रत ऐसा नाम कहैकरि सर्वज्ञदेवने प्रतिषेधे है । तातैं तिस पूर्वोक्त ज्ञान हीकै मोक्षका कारणपणा है ।

भावार्थ—ज्ञानविना तप व्रत करना है, सो बालतप बालव्रत कह्या है । तातैं मोक्षका कारण ज्ञान ही है । आगैं ज्ञान है सो तौ मोक्षका हेतु है अर अज्ञान है सो बंधका हेतु है, ऐसा नियम-करि कहे हैं । गाथा—

वदणियमाणिधरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी ॥ ९ ॥

व्रतनियमान् धारयंतः शीलानि तथा तपश्च कुर्वाणाः ।
परमार्थबाह्या येन तेन ते भवन्त्यज्ञानिनः ।। ९ ।।

आत्मख्यातिः—ज्ञानमेव मोक्षहेतुस्तदभावे स्वयमज्ञानभूतानामज्ञानिनामन्तर्व्रतनियमशीलतपः प्रभृतिशुभकर्मसद्भावेऽपि मोक्षाभावात् । अज्ञानमेव बंधहेतुः, तदभावे स्वयं ज्ञानभूतानां ज्ञानिनां बहिर्व्रतनियमशीलतपः प्रभृतिशुभकर्मासद्भावेऽपि मोक्षसद्भावात् ।

अर्थ—ये केई व्रत अर नियम इनिकूं धारे हैं तैसैं ही शील बहुरि तप तिनिकूं करे हैं अर परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मातैं बाह्य हैं ताका स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान जिनिकै नाहीं है ते निर्वाणकूं नाहीं अनुभवे हैं, नाहीं पावे हैं ।

टीका—ज्ञान ही मोक्षका हेतु है । जातैं ज्ञानके अभावकूं होते आप अज्ञानरूप भये जे अज्ञानी तिनिके अंतरंगविषैं व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्मका सद्भाव होते भी मोक्षका अभाव है । ज्ञानविना शुभकर्मरूप व्रत नियम शील तपोरूप प्रवृत्ति होते भी मोक्ष नाहीं होय है । बहुरि अज्ञान है सो ही बंधका हेतु है । जातैं अज्ञानका अभाव होतैं आप ज्ञानरूप भये जे ज्ञानी, तिनिके बाह्य व्रत नियम शील तप आदि शुभकर्मका असद्भाव होतैं भी मोक्षका सद्भाव है ।

भावार्थ—ज्ञान होतैं ज्ञानीके व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्म बाह्य न होते भी मोक्ष होय है । इहां ऐसा जानना, जो व्रत आदिकी प्रवृत्ति शुभकर्म है, सो प्रवृत्तिका अभाव भये—निवृत्ति अवस्था भये व्रत नियम शील तपका बाह्यप्रवृत्तिरूपका अभाव है, तौऊ मोक्ष होय है, यह नियम जानना । इस अर्थका कलशरूप काव्य है ।

शिखरिणीछन्दः

यदेतद्ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बंधस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत् ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम् ।।६।।

अर्थ—जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुव है सो जब निश्चल अपने ज्ञानस्वरूप होता सोहे है,

सो ही यह मोक्षका कारण है। जातैं आप स्वयमेवहि मोक्षस्वरूप है। बहुरि यासिवाय अन्य है सो बंधका कारण है। जातैं सो आप स्वयमेव बंधस्वरूप है, तातैं ज्ञानस्वरूप अपना होना सो ही अनुभूति है, ऐसैं निश्चयतैं बंधमोक्षका हेतूका विधान किया है। आगे, फेरि भी पुण्यकर्मका पक्षपात करै, ताका प्रतिबोधनेके अर्थि उत्तर कहे हैं। गाथा—

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं विमोक्खहेदुं अयाणंता ॥ १० ॥

परमार्थबाह्या ये ते अज्ञानेन पुण्यमिच्छंति।
संसारगमनहेतुं विमोक्षहेतुमजानंतः ॥१०॥

आत्मख्यातिः—इह खलु केचिन्निखिलकर्मपक्षक्षयसंभावितात्मलाभं मोक्षमभिलषंतोऽपि तद्धेतुभूतं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावपरमार्थभूतज्ञानभवनमात्रमैकाग्र्यलक्षणं समयसारभूतं सामायिकं प्रतिज्ञायापि दुरंतकर्मचक्रोत्तरणक्लीवतया परमार्थभूतज्ञानानुभवनमात्रसामायिकमात्मस्वभावमलभमानाः प्रतिनिवृत्तस्थूलतमसंक्लेशपरिणामकर्मतया प्रवृत्तमानस्थूलतमविशुद्धिपरिणामकर्माणः कर्मानुभवगुरुलाघवप्रतिपत्तिमात्रसंतुष्टचेतसः स्थूललक्ष्यतया सकलं कर्मकांडमनुन्मूलयंतः स्वयमज्ञानादशुभकर्म केवलं बंधहेतुमध्यास्य एवं व्रतनियमशीलतपःप्रभृतिशुभकर्मबंधहेतुमप्यजानंतो मोक्षहेतुमभ्युपगच्छंति।

अथ परमार्थमोक्षहेतुस्तेषां दर्शयति—

अर्थ—जे जीव परमार्थतैं बाह्य हैं, परमार्थभूतज्ञानस्वरूप आत्माकूं नाहीं अनुभवे हैं, ते जीव अज्ञानकरि पुण्यकूं इष्ट करे हैं, भला मानि चाहे हैं। कैसा है पुण्य? संसारके गमनकूं कारण है, तौऊ बहुरि ते जीव कैसे हैं? मोक्षका कारण ज्ञानस्वरूप आत्माकूं नाही जानते संते पुण्यहीकूं मोक्षका कारण माने हैं।

टीका—या लोकविषैं निश्चयकरि केईक जीव ऐसे हैं, जे समस्तकर्मके पक्षका नाशकरि उपजे है आत्मलाभ कहिये निजस्वरूपका लाभ जामैं ऐसा मोक्षकूं चाहते भी हैं, तौऊ तिस

मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभाव परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र एकाग्रतालक्षण समयसारभूत सामायिक चारित्र, ताकी प्रतिज्ञा लेकरिभी दुरन्तकर्मका समूहके पार होनेविषैं सयर्थपणाका अभावकरि परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र जो सामायिक चारित्रस्वरूप आत्माका स्वभाव ताकूं नाही पावते संते, अतिशयकरि मोठा स्थूल संक्लेशपरिणामस्वरूप कर्मतें तौ निवृत्त भये हैं, बहुरि अतिशयकरि स्थूल मोठा विशुद्धरूप परिणामरूप कर्मकरि प्रवर्तें हैं, ते कर्मका अनुभवका गुरुपणा अर लघुपणाकी प्राप्तिमात्रकरि ही संतुष्ट है चित्त जिनिका, बहुरि स्थूललक्ष्यतारूप जो मोठा अनुभवगोचर संक्लेशरूप कर्मकांड ताकूं तौ छोडे हैं, परंतु समस्तकर्मकांडकूं मूलतें नाहीं उन्मूल करते हैं, ते आप ही अपने अज्ञानतैं अशुभकर्महीकूं केवल बंधका कारण निश्चयकरि व्रत नियम शील तप आदिक शुभकर्मबंधका कारण है तौऊ याकूं बंधका कारण नाहीं जानते याकूं मोक्षका कारण माने हैं अंगीकार करे हैं, ते परमार्थतैं बाह्य हैं।

भावार्थ—केई जीव अतिसंक्लेशपरिणामरूप कर्मकूं तौ बंधका कारण जानि छोडे हैं अर अतिविशुद्धतारूप परिणामरूप कर्मसहित वर्तें हैं, कर्मका घणा थोडामात्र ही बंधमोक्षका कारण जाने हैं, अर सकलकर्मतैं रहित अपना स्वरूप मोक्षका कारण नाहीं जाने हैं, ते अशुभकर्मकूं छोडि व्रत नियम शीलतपरूप शुभकर्म हीकूं मोक्षका कारण मानि अंगीकार करे हैं। ते व्रत आदिकूं पालते भी अज्ञानी ही हैं—परमार्थकूं नाही जाने हैं। आगैं, ऐसै जीवनिकूं परमार्थ-स्वरूप मोक्षका कारण दिखावे हैं। गाथा—

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादी परिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥११॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं तेषामधिगमो ज्ञानं।
रागादिपरिहरणं चारित्रं एष तु मोक्षपथः ॥११॥

आत्मख्यातिः—मोक्षहेतुः किल सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रं। तत्र सम्यक्दर्शनं तु जीवादिश्रद्धानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं। जीवादिज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं ज्ञानं। रागादिपरिहरणस्वभावेन ज्ञानस्य भवनमापातं। ततो ज्ञानमेव परमार्थमोक्षहेतुः।

अथपरमार्थमोक्षतोतुरन्यत् कर्म प्रतिषेधयति—

अर्थ—जीवादिक पदार्थनिका श्रद्धान, सो तौ सम्यक्त्व है। बहुरि तिनि जीवादिपदार्थनिका अधिगम, सो ज्ञान है। बहुरि रागादिकका परिहरण त्याग सो चारित्र है। यहू मोक्षका मार्ग है।

टीका—मोक्षके कारण प्रगटपणे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है। तहां जीवादि पदार्थनिका सम्यग्दर्शन कहिये सम्यक्प्रकार यथार्थश्रधान, तिस श्रद्धानस्वभावकरि ज्ञानका भवन कहिये होना परिणमना सो तौ सम्यग्दर्शन है। बहुरि तैसे जीवादिपदार्थनिका ज्ञान, तिस स्वभाव करि ज्ञानका होंना सो सम्यग्ज्ञान है। बहुरि रागादिकका परिहरण कहिये त्यागना, तिस स्वभावकरि ज्ञानका होना सो सम्यक्चारित्र है सो ऐसे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ए तीनू ही ज्ञानके परिणमन मैं आय गये। तातैं ज्ञान ही परमार्थरूप मोक्षका कारण भया।

भावार्थ—आत्माका असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है। अर इस प्रकरण में ज्ञानहीकूं प्रधान करि व्याख्यान है। तातैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ए तीनू ज्ञानहीका परिणमन हैं, ऐसे कहि ज्ञानहीकूं मोक्षका कारण कह्या है। ज्ञान है सो अभेदविवक्षामें आत्मा ही है। सो कहनेमें किछू विरोध नाहीं। आगे, परमार्थरूप मोक्षका कारणतैं अन्य जो कर्म, ताकूं प्रतिषेधे हैं। गाथा—

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारे ण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि ॥१२॥

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारे न विद्वांसः प्रवर्तंते।
परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो भवति ॥१२॥

आत्मख्यातिः—युः खलु परमार्थमोक्षहेतोरतिरिक्तो व्रततपःप्रभृतिशुभकर्मा केषांचिन्मोक्षहेतुः सर्वोऽपि प्रतिषिद्धस्तस्य द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्याभवनात्। परमार्थमोक्षहेतोरेवैकद्रव्यस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्य भवनात्।

अर्थ—निश्चयनयका विषयकूं छोडिकरि पंडित जन व्यवहारकरि प्रवर्तें हैं, परंतु ये यतीश्वर परमार्थभूत आत्मस्वरूपकूं आश्रित हैं, तिनिके कर्मका नाश कह्या है। व्यवहारहीमें प्रवर्तनेवालेका कर्मक्षय नाहीं होय है।

टीका—केईकनिकै ऐसा मोक्षका हेतु कारण है, जो परमार्थभूत मोक्षका कारण, तातैं तौ रहित अर व्रत तप आदिक शुभकर्मस्वरूपहीतैं मोक्ष है। सो ऐसा मोक्षका हेतु मानना सर्व ही प्रतिषेध्या है। जातैं ऐसे मोक्षके कारणके अन्यद्रव्यका स्वभावपणा है, तिस स्वभावकरि ज्ञानके परिणमनके न होना है। ज्ञानका परिणमन परमार्थतैं शुभाशुभरूप नाहीं। परमार्थभूत जो मोक्षका कारण, ताहीके एकद्रव्यका स्वभावपणा है। तिस स्वभावकरिही ज्ञानके परिणमनका होना है।

भावार्थ—मोक्ष आत्माकै होय है, सो ताका कारण भी आत्माका स्वभाव ही चाहिये, जो अन्यद्रव्यका स्वभाव होय ताकरि आत्माकै मोक्ष कैसे होय? यह निश्चयनयका मत है। यातैं शुभकर्म पुद्गलद्रव्यका स्वभाव है, सो आत्माकै मोक्षका कारण नाहीं। ज्ञान आत्माका स्वभाव है, सो ही आत्माकै परमार्थभूत मोक्षका कारण है। अब इस ही अर्थके कलशरूप दोय श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्॥ ७॥
वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि द्रव्यांतरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्॥ ८॥

अर्थ—जो ज्ञानस्वभावकरि वर्तना ज्ञानका होना है, सो ही मोक्षका कारण है। जातैं ज्ञानकै

एक आत्मद्रव्यका स्वभावपणा है। बहुरि जो कर्मस्वभावकरि वर्तना है, सो ज्ञानका होना नाहीं, सो कर्मका वर्तना मोक्षका कारण नाहीं। जातैं कर्मकै अन्यद्रव्यका स्वभावपणा है।

भावार्थ–मोक्ष आत्माकै होय है, सो आत्माका स्वभाव ही मोक्षका कारण होय, तातैं ज्ञान आत्माका स्वभाव है, सो ही मोक्षका कारण है। बहुरि कर्म है सो अन्यद्रव्य जो पुद्गलद्रव्य ताका स्वभाव है, सो आत्माकै मोक्षका कारण नाहीं होय है, यह निश्चय है आगे अगिली कथनकी सूचनिकाका श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बंधत्वात्स्वयमेव च मोक्षहेतुतिरोधायि भावत्वात्तन्निषिध्यते ॥ ६ ॥

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधानकरणं साधयति–

अर्थ---कर्म है सो मोक्षके कारणका तिरोधान है--आच्छादन करने वाला है। अर आप स्वयमेव बन्धस्वरूप है। बहुरि मोक्षका कारणका तिरोधायीभावपणा याकै है। ऐसैं तीन हेतूतैं सो कर्म निषेधिये है। सो ही अर्थ आगे गाथाकरि साधे हैं। तहां प्रथम ही कर्मकै मोक्षका कारण जो दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिका तिरोधान करना आच्छादना ताकूं साधे हैं। गाथा--

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं ॥१३॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं ॥१४॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
तह दु कसायाच्छण्णं चारित्तं होदि णादव्वं ॥१५॥

वस्त्रस्य-श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
मिथ्यात्वमलावच्छन्नं तथा च सम्यक्त्वं खलु ज्ञातव्यं ॥१३॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
अज्ञानमलावच्छन्नं तथा ज्ञानं भवति ज्ञातव्यं ॥१४॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
कषायमलावच्छन्नं तथा चारित्रमपि ज्ञातव्यं ॥१५॥

आत्मख्यातिः--ज्ञानस्य सम्यक्त्वं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेन मिथ्यत्वनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात् तिरोधीयते। परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत्। ज्ञानस्य ज्ञानं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेनाज्ञाननाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते। परभावभूतमलावच्छन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत्। ज्ञानस्य चारित्रं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेन कषायनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते। परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतवस्त्रस्वभाववत्। अतो मोक्षहेतुतिरोधानकरणात् कर्म प्रतिषिद्धं। अथ कर्मणः स्वयं बंधत्वं साधयति--

अर्थ--जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है--तिरोभूत होय है, तैसा मिथ्यात्वमलकरि व्याप्त भया आत्माका सम्यक्त्वगुण आच्छादित होय है, ऐसें जानना। बहुरि जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है, तैसा अज्ञानमलकरि व्याप्त हुवा आत्मा का ज्ञानभाव आच्छादित होय है, ऐसें जानना। बहुरि जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है, तैसा कषायमलकरि व्याप्त भया संता आत्माका चारित्रभाव आच्छादित होय है, ऐसें जानना।

भावार्थ--ज्ञानके सम्यक्त्व है सो मोक्षका कारणरूप स्वभाव है सो यह सम्यक्त्व परभावस्वरूप जो मिथ्यात्वनामा कर्म सो ही भया मल, तिसकरि व्याप्तपणातैं तिरोधानरूप होय है, आच्छादित होय है। जैसैं परभावभूत जो मल रंग, ताकरि अवच्छन्न जो श्वेतवस्त्र, ताका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित होय है तैसैं। बहुरि ज्ञानके ज्ञान है सो मोक्षका कारणरूप

स्वभाव है । सो परभाव जो अज्ञान नामा कर्म, सो ही भया मल, ताकरि व्याप्तपणातैं तिरोधान कीजिये है-- आच्छादिये है । जैसें परभावरूप जो मल रंग, ताकरि व्याप्त भया श्वेतवस्त्रका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित होय है तैसें । बहुरि ज्ञानके चारित्र है सो मोक्षका कारणरूप स्वभाव है । सो परभावस्वरूप जो कषायनामा कर्म सो ही भया मल, ताकरि व्याप्तपणातैं तिरोधान कीजिये है—आच्छादिये है । जैसें परभावरूप जो मल रंग, ताकरि व्याप्त भया श्वेतवस्त्रका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित कीजिये है तैसें । यातैं मोक्षके कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र तिनिका आच्छादन करनेतैं कर्मकूं प्रतिषेध्या है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप ज्ञानके परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गके प्रतिबंधक मिथ्यात्व अज्ञान कषायरूप कर्म है, सो ए कर्म तिस मोक्षके कारणभावकूं आच्छादित करे है । यातैं कर्मका निषेध है । आगे कर्मका स्वयमेव बंधपणा साधे हैं । गाथा—

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेण उच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं ॥१६॥

स सर्वज्ञानदर्शी कर्मरजसा निजेनावच्छिन्नः ।
संसारसमापन्नो न विजानाति सर्वतः सर्वं ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यतः यमेव ज्ञानतया विश्वसामान्यविशेषज्ञानशीलमपि ज्ञानमनादिस्वपुरुषापराधप्रवर्तमानकर्ममलावच्छन्नत्वादेव बंधावस्थायां सर्वतः सर्वमप्यात्मानमविजानदज्ञानभावेनैवेदमेवमवतिष्ठते । ततो नियतं स्वयमेव कर्मैव बंधः । अतः स्वयं बंधत्वात्कर्म प्रतिषिद्धं ।

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वं दर्शयति—

अर्थ—सो आत्मा स्वभावकरि सर्वका जाननहारा देखनहारा है तौऊ अपना कर्मरूप रजकरि आच्छादित व्याप्त भया संता संसारकूं प्राप्त है ऐसा भया संता सर्वप्रकार सर्व वस्तूकूं न जाने है ।

टीका—जातैं यह ज्ञानरूप आत्मा है, सो आप स्वयमेव ज्ञानपणाकरि विश्व कहिये सर्वपदार्थ, तिनिकूं सामान्यविशेषकरि जाननेका ज्ञानस्वभावरूप है, तौऊ अनादिकालतैं अपना पुरुषार्थकरि किया जो अपराध, ताकरि प्रवर्त्या जो कर्म, सो ही भया मल, ताकरि अवच्छन्न कहिये आच्छादित है-व्याप्त है—मलिन है। तिस भावकरि बंधावस्थाविषैं सर्वप्रकार सर्वज्ञेयाकाररूप जो अपना स्वरूप, ताकूं नाहीं जानता संता अज्ञानभावकरिही यह आप इस प्रकार तिष्ठै है। तातैं यह निश्चय भया—जो कर्म है, सो स्वयमेव आप ही बंधस्वरूप है। यातैं कर्म स्वयमेव आप ही बंधपणारूप जानि प्रतिषेध्या है।

भावार्थ—इहां ज्ञानशब्दकरि आत्माहीका ग्रहण कीया है। सो यह ज्ञानस्वभावकरि तौ सर्वका देखनजाननहारा है। परंतु अनादितैं आप अपराधी है, तातैं कर्म बंधे है, ताकरि आच्छादित है सो अपना संपूर्णरूपकूं न जानता संता अज्ञानरूप भया संता आप तिष्ठै है। ताकै कर्म आप ही बंधे है, कर्मकूं आप तौ लेकरि नाहीं बांधे है, आप तौ अपने अज्ञानभावरूप परिणमै है, अर कर्म आप स्वयमेव बंधरूप होय है, तातैं कर्मका प्रतिषेध है। आगै, कर्मके मोक्षका कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, तिनिका तिरोधायिभावपणा दिखावे हैं। इनिकूं प्रगट न होने देना यह तिरोधायिभावपणा है। गाथा—

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहिदं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णादव्वो ॥१७॥
णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरे हि परिकहिदं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो ॥१८॥

चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो ॥१९॥

सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं मिथ्यात्वं जिनवरैः परिकथितं ।
तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ १७ ॥
ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं अज्ञानं जिनवरैः परिकथितं ।
तस्योदयेन जीवोऽज्ञानी भवति ज्ञातव्यः ॥१८॥
चारित्रप्रतिनिबद्धं कषायो जिनवरैः प्रज्ञप्तः ।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

आत्मख्यातिः—सम्यक्त्वस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकं किल मिथ्यात्वं, तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्य मिथ्यादृष्टित्वं । ज्ञानस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकमज्ञानं तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याज्ञानत्वं । चारित्रस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकः किल कषायः, स तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याचारित्रत्वं । अतः स्वयं मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्कर्म प्रतिषिद्धं ।

अर्थ—सम्यक्त्वका प्रतिबंधक रोकनेवाला मिथ्यात्व है, सो जिनवर देव कह्या है, ताका उदय करि जीव मिथ्यादृष्टि होय है ऐसा जानना । ज्ञानका प्रतिबंधक रोकनेवाला अज्ञान है, यह जिनवर देव कह्या है, ताके उदयकरि जीव अज्ञानी होय है ऐसा जानना । चारित्रका प्रतिबंधक कषाय है ऐसे जिनवर देव कह्या है, ताके उदयकरि जीव अचारित्री होय है ऐसा जानना ।

टीका—सम्यक्त्वके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक रोकनेवाला मिथ्यात्व है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयते ही ज्ञानकै मिथ्यादृष्टिपणा है । बहुरि ज्ञानके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक रोकनेवाला प्रगट अज्ञान है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयतेही ज्ञानकै अज्ञानीपणा है । चारित्रके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक प्रगट

कषाय है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयहीतैं ज्ञानकै अचारित्रपणा है। यातैं कर्मकै, स्वयमेव मोक्षका कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, तिनिका तिरोधायिभावपणा है, तातैं कर्म प्रतिषेध्या है।

भावार्थ—ज्ञानके मोक्षका कारणपणा स्वभाव सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र हैं, तिनि तीनीनिका प्रतिपक्षी कर्म मिथ्यात्व अज्ञान कषाय हैं, ते तीनूंनिकूं प्रगट न होने देय हैं। तातैं कर्मकै मोक्षका कारणका तिरोधायिभावपणा है। तातैं कर्मका प्रतिषेध है। अशुभकर्मकै तौ मोक्षका कारण कहा? बाधकपणा प्रसिद्ध ही है। परंतु शुभकर्म भी बंधरूप ही है। तातैं यह भी कर्मसामान्यमें प्रतिषेधरूप ही जानना। आगे इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥१०॥

अर्थ--मोक्षके अर्थि पुरुषकूं यह समस्तकर्म ही त्यागने योग्य है, ऐसे तिस समस्त ही कर्मकूं छोडे संते पुण्य अथवा पापकी कहा कथा है? कर्मसामान्यमें दोऊ आय गये। ऐसे समस्तकर्मका त्याग भये ज्ञान है सो सम्यक्त्व आदिक जो अपना स्वभाव, तिसरूप होनेतैं मोक्षका कारण होता संता कर्मरहित अवस्थातैं प्रतिबद्ध उद्धत है रस जाका ऐसा आपैआप दवड्या आवै है।

भावार्थ--कर्मकौ पटके ज्ञान आपैआप अपना मोक्षका कारणस्वभावरूप भया संता प्रगटे है, फेरि कौन रोके? आगै आशंका उपजे है, जो अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके जेतैं कर्मका उदय रहै, तेतैं ज्ञान मोक्षका कारण कैसैं? कर्म अर ज्ञान दोऊ लार कैसे रहै? ताका समाधानकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्मबन्धाय तन्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥११॥

अर्थ—जेतैं कर्मका उदय है अर ज्ञानकी सम्यक् विरति नाहीं है तेतैं कर्मका अर ज्ञानका समुच्चय कहिये एकठापणा भी कह्या है, तेतैं यामैं किछू हानि नाहीं है। इहां विशेष ऐसा—जो इस आत्माविषैं जो कर्मके उदयकी वरजोरीतैं आत्माके वश विना कर्म उदय होय है, सो तौ बंधके ही अर्थि है। बहुरि मोक्षके अर्थि तौ एक परमज्ञान है, सो ही है। कैसा है ज्ञान ? कर्मतैं आपहीतैं रहित है, कर्मके करनेविषैं आपका स्वामीपणारूप कर्तापणाका भाव नाहीं है।

भावार्थ-जेतैं कर्म उदय है तेतैं कर्म तौ अपना कार्य करे है, अर तहां ही ज्ञान है, सो अपना कार्य करे है, एक ही आत्मामैं ज्ञान अर कर्म दोऊ एकठो रहनेमें भी विरोध नाहीं है। मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानकै जैसे विरोध है, तैसे कर्मसामान्यकै अर ज्ञानकै विरोध नाहीं है। आगै कर्मका अर ज्ञानका नयविभाग दिखावे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि सततं स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥१२॥

अर्थ—जे केई कर्मनयके अवलंबनविषैं तत्पर हैं, ताके पक्षपाती हैं, ते डुवे जाते, जे ज्ञानकूं जाने ही नाहीं बहुरि जे ज्ञाननयके इच्छक हैं पक्षपाती हैं, ते भी डुवे जाते, जे क्रियाकांडको छोडी स्वच्छंद होई प्रमादी होय स्वरूपविषैं मंद उद्यमी हैं बहुरि जे आप निरंतर ज्ञानरूप होते कर्मकूं तौ नाही करे हैं अर प्रमादके वश नाहीं होय हैं, स्वरूपमें उत्साहवान हैं ते सर्व लोकके उपरि तरे हैं।

भावार्थ—इहां सर्वथा एकांत अभिप्रायका निषेध कीया है, जातैं सर्वथा एकांतका अभिप्राय है, सोही मिथ्यादृष्टि है। तहां जे परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माकूं तौ नाहीं जाने हैं अर व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्ररूप क्रियाकांडके आडंबरहीकूं मोक्षका कारण जाणि, तिसहीविषैं तत्पर रहे हैं, ताका पक्षपात करे हैं, यह कर्मनय है। याके पक्षपाती ज्ञानकूं तौ जाने नाहीं अर इस कर्मनय ही

विषैं खेदखिन्न हैं ते संसारसमुद्रमें डुबे हैं। बहुरि जे परमार्थभूत आत्मस्वरूपकूं यथार्थ तो जान्या नाहीं अर मिथ्यादृष्टि सर्वथा एकान्तिनिके उपदेशकरि तथा स्वयमेव हि किछू अंतरंगविषैं ज्ञानका स्वरूप मिथ्या कलिप तिसविषैं पक्षपात करे हैं अर व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्रका क्रियाकांडकूं निरर्थक जानि छोडे हैं, ज्ञाननयके पक्षपाती हैं ते भी संसारसमुद्रमें डुबे हैं। जातैं बाह्यक्रियाकांडकूं छोडि स्वेच्छाचारी रहे हैं स्वरूपविषैं मंद उद्यमी रहे हैं तातैं। जे पक्षपातका अभिप्राय छोडि निरंतर ज्ञानरूप होतैं कर्मकांडकूं छोडै हैं, अर निरंतर ज्ञानस्वरूपविषैं "जेतैं न थंव्या जाय तेतैं" अशुभकर्मकूं छोडि स्वरूपका साधनरूप शुभकर्मकांडविषैं प्रवर्तै हैं ते कर्मका नाश करि, संसारतैं निवृत्त होय हैं, ते सर्व लोकके उपरि वर्तैं हैं, ऐसा जानना। आगे इस पुण्यपापाधिकारकूं संपूर्ण करि अर ज्ञानकी महिमा करे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जिजृम्भे भरेण ॥१३॥

इति पुण्यपापरूपेण द्विपात्रीभूतमेकपात्रीभूय कर्म निष्क्रांतं

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ तृतीयोंकः।

अर्थ—ज्ञानज्योति है सो अतिशयकरि उदयकूं प्राप्त होत भया—सर्वत्र फैल्या। कैसा है? लीलामात्रकरि उघडी जो अपनी परमकला केवलज्ञान, तिससहित आरंभी है क्रीडा जाने, इहां भावार्थ ऐसा, जो जेतैं सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ है तेतैं तौ ताका ज्ञान परमकला जो केवलज्ञान, तिस-सहित शुद्धनयके बलतैं परोक्ष क्रीडा करे है बहुरि केवलज्ञान उपजे तब साक्षात् है। बहुरि कैसा है? भासीभूत किया है दूरी किया है अज्ञानरूप अंधकार जाने। सो यह ऐसा ज्ञानज्योति पहलें कहा करि प्रगट भया है? पूर्वोक्त शुभ अशुभरूप समस्तकर्म, ताकूं अपना बल जो वीर्य शक्ति,

ताकरि मूलतैं उन्मूल कहिये उपाडिकरि? कैसा है यह कर्म? पीया है मोह जाने। याहीतैं भ्रमके रसके भारतैं शुभ अशुभका भेदरूप उन्मादकूं नचावता संता है।

भावार्थ—ज्ञानज्योति है सो अपना प्रतिबंधक कर्म था सो भेदरूप होय नृत्यकरे था, ज्ञानकूं भुलावा दे था, ताकूं अपनी शक्तिकरि बिगाडि आप अपना संपूर्ण रूपसहित प्रकाशरूप भया। इहां आशय ऐसा जानना, कर्म सामान्यकरि एक ही है, तथापि शुभ अशुभ दोय भेदरूप स्वांग करी रंगभूमीमैं प्रवेश कीया था, ताकूं ज्ञान यथार्थ एक जानि लिया, तब कर्म रंगभूमीतैं निकसी गया, ज्ञान अपनी शक्तिकरि यथार्थप्रकाशरूप भया, ऐसैं जानना। ऐसैं कर्म है सो नृत्यके अखाडेमैं पुण्यपापरूपकरि दोय नृत्यकारिणी बनी नाचे था, सौ ज्ञान यथार्थ जानी लिया-जो, कर्म एकही है, तब एकरूपकरि निकसि गया, नृत्य करता रह गया।

सवैया तेईसा

आश्रवकारण रूप सवादसुं भेद विचारि गिने दोऊ न्यारे।
पुण्य अरु पाप शुभाशुभभावनि बंध भये सुखदुःखकरा रे॥
ज्ञान भये दोऊ एक लपै बुध आश्रय आदि समान विचारे।
बंधके कारण हैं दोऊ रूप इन्हैं तजि श्रीजिनमुनि मोक्ष पधारे॥१॥

ऐसैं इस समयसार ग्रंथकी आत्मख्यातिनाम टीकाकी वचनिकाविषैं तीसरा पुण्यपाप नामा अधिकार पूर्ण भया। इहांताई गाथा १६३ भई। कलसा ११२ भये।



अथ आस्रवाधिकारः ।

दोहा—द्रव्यास्रवतैं भिन्न है भावास्रव करि नास । भये सिद्ध परमात्मा नमूं तिनहि सुखआस॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशत्यास्रवः ।

अब इहां आस्रव प्रवेश करे है । जैसैं नृत्यके अखाडेमैं नाचनेवाला स्वांग करी प्रवेश करै, तैसैं इहां आस्रवका स्वांग है । तहां इस स्वांगकूं यथार्थ जाननेवाला सम्यग्ज्ञान है । ताकी महिमारूप मंगल करे है ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

अथ महामदनिर्भरमन्थरं समररङ्गपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥१॥

अर्थ—अथशब्द तौ मंगल तथा प्रारंभवाची है । सो इहांतैं आगे कहे है । जो काहूकरि जीत्या न जाय ऐसा यह अनुभवगोचरज्ञानरूप सुभट धनुष्यधारी है, सो आस्रव है ताही जीते है । कैसा है ज्ञानरूप सुभट ? उदार कहिये अमर्यादरूप फैलता अर गंभीर कहिये जाका छद्मस्थ थाह न पावे ऐसा है महान् उदय जाका । बहुरि आस्रव कैसा है ? महान् जो मद ताकरि अतिशयकरि भरया मंथर है उन्मत्त है । बहुरि कैसा है ? समररंग कहिये संग्रामभूमि ताविषैं आया है ।

भावार्थ—इहां नृत्यके अखाडेमैं आस्रव प्रवेश किया, सो नृत्यमें अनेकरस वर्णन होय है, तातैं रसवत् अलंकारकरि शांतरसमैं वीररस प्रधानकरि वर्णन कीया है । जो ज्ञानरूप धनुष्यधारी आस्रवकूं जीते है, सो आस्रव सर्वजगतकूं जीति मदोन्मत्त भया संग्रामकी रंगभूमिमैं आय खडा रह्या, तब ज्ञान यासूं भी बलवान् सुभट है, सो तत्काल जीते है, अंतर्मुहूर्तमैं कर्मका नाश करि केवलज्ञान उपजावे है । ऐसा ज्ञानका सामर्थ्य है । आगै आस्रवका स्वरूपकूं कहे हैं । गाथा—

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णादु ।
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥१॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिंपि होदि जीवो रागदोसादिभावकरो ॥ २ ॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ च संज्ञासंज्ञास्तु ।
बहुविधभेदा जीवे तस्यैवानन्यपरिणामाः ॥ १ ॥
ज्ञानावरणाद्यस्य ते तु कर्मणः कारणं भवंति ।
तेषामपि भवति जीवः रागद्वेषादिभावकरः ॥ २ ॥

आत्मख्यातिः—रागद्वेषमोहा आस्रवाः, इह हि जीवे स्वपरिणामनिमित्ताः, अजडत्वे सति चिदाभासाः, मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः पुद्गलपरिणामाः, ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मास्रवणनिमित्तत्वात्किलास्रवाः । तेषां तु तदास्रवणनिमित्तत्वनिमित्तं, अज्ञानमया आत्मपरिणामा रागद्वेषमोहाः ? तत आस्रवणनिमित्तत्वनिमित्तत्वात् रागद्वेषमोहा एवास्रवाः, ते चाज्ञानिन एव भवंतीति, अर्थादेवापद्यते ।

अथ ज्ञानिनस्तदभावं दर्शयति—

अर्थ—मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग ये च्यारी आस्रवके भेद हैं, ते संज्ञा कहिये चेतनाके विकार अर असंज्ञा कहिये जड पुद्गलके विकार ऐसे भेदकरि न्यारे न्यारे दोय दोय प्रकार हैं। तहां चेतनके विकार हैं ते जीवविषैं बहुत भेद लीये हैं। ते तिस जीवके परिणाम हैं, ते जीवतैं अन्य नाहीं हैं, अभेदरूपही हैं। जे मिथ्यात्व आदि पुद्गलके विकार हैं ते ज्ञानावरण आदि कर्म बंधनेकूं कारण होय हैं। बहुरि तिनि मिथ्यात्व आदि भावनिकूं रागद्वेष आदि भावनिका करनेवाला जीव कारण होय है।

टीका—इस जीवविषै राग, द्वेष, मोह हैं ते आस्रव हैं। जातैं कैसे हैं ते ? अपना परिणाम है

निमित्त जिनिकूं। याहीतैं ते जड नाहीं हैं। ऐसे होते ते चिदाभास हैं। जिनिमें चैतन्यकी आभासा है। जातैं मिथ्यात्व अविरत कषाय योग हैं ते पुद्गलके परिणाम हैं ते ज्ञानावरण आदि पुद्गलकर्मनिके आस्रवण कहिये आवनेकूं निमित्त हैं, तिसपणेकरि ते प्रगट आस्रव हैं। बहुरि तिनि मिथ्यात्वादिकनिके ज्ञानावरणादिके आगमनकूं निमित्तपणाके निमित्त अज्ञानमय आत्माके परिणाम राग द्वेष मोह हैं। तातैं मिथ्यात्व आदिके कर्मके आस्रवके निमित्तपणाके निमित्तपणातैं राग द्वेष मोह ही आस्रव हैं ते अज्ञानीके ही होय हैं, ऐसा अर्थतैं ही आय प्राप्त होय है, सूत्रमें विना कह्या भी अर्थतैं आवे है।

भावार्थ—ज्ञानावरणादिकर्मनिके आवनेकूं तो कारण मिथ्यात्वादिकर्मका उदयरूप पुद्गलके परिणाम हैं। बहुरि तिनिके कर्मके आवनेकूं निमित्त होनेका निमित्त जीवके रागद्वेषमोहरूप परिणाम हैं, तिनिकूं चिद्विकार कहिये। ते जीवके अज्ञान अवस्थामें होय हैं। सम्यग्दृष्टीकै अज्ञान अवस्था नाहीं, जातैं मिथ्यात्वसहित ज्ञानकूं अज्ञान कहिये। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भया, तातैं से ज्ञान अवस्थामें नाहीं। बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयतैं रागादिक होय हैं, तिनिका याके स्वामीपणा नाहीं है, उदयकी बरजोरीतैं है, तिनिकूं रोगवत् जानि मेट्या चाहै है, इस अपेक्षा इनितैं राग नाहीं। तातैं मिथ्यात्वसहित रागादिक होय, तेही अज्ञानमय रागद्वेषमोह हैं, ते सम्यग्दृष्टिके नाहीं हैं ऐसा जानना। आगै, ज्ञानीके तिनि आस्रवनिका अभाव दिखावै हैं गाथा—

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो॥ ३॥

नास्ति त्वास्रवबंधः सम्यग्दृष्टेरास्रवनिरोधः।
संति पूर्वनिबद्धानि जानाति स तान्यबध्नन् ॥३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि ज्ञानिनोऽज्ञानमयैर्भावैरज्ञानमया भावाः, अवश्यमेव निरुध्यंते। ततोऽज्ञानमयानां भावानां, रागद्वेषमोहानां आस्रवभूतानां निरोधात् ज्ञानिनो भवत्येव आस्रवनिरोधः। अतो ज्ञानी नास्रवनिमित्तानि पुद्गलकर्माणि बध्नाति, नित्यमेवाकर्तृत्वान्नवानि न बध्नन् सदवस्थानि पूर्वबद्धानि ज्ञानस्वभावत्वात्केवलमेव जानाति।

अथ रागद्वेषमोहानामास्रवत्वं नियमयति—

अर्थ—सम्यग्दृष्टिके आस्रवबंध नाहीं है। वहुरि आस्रवका निरोध है। वहुरि पूर्वें बांधे थे ते सत्तारूप हैं, तिनिकूं जानै हैं। आगामी नाहीं बांधता संता जाने है।

टीका—जातैं निश्चयकरि ज्ञानीके अज्ञानमय भाव हैं, ते अवश्य निरोधरूप होय हैं—अभाव होय हैं। जातैं ज्ञानमय भावनिकरि अज्ञानमय भाव हैं ते रुके हैं। जातैं ते परस्पर विरोधी हैं, विरोधीनिका एक जायगा रहना होय नाहीं, तातैं रागद्वेषमोहभाव हैं ते अज्ञानमय हैं, ते आस्रवस्वरूप हैं, तिनिका ज्ञानीके निरोधतैं आस्रवका निरोध होय ही है। यातैं ज्ञानी आस्रव हैं निमित्त जिनकूं ऐसे जे ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म, तिनिकूं नाही बांधे है, जातैं सदा तिनि कर्मनिका अकर्ता है तातैं तिनि कर्मनिकूं नवीनकूं नाहीं बांधता संता पहली बंधे थे ते सत्तारूप अवस्थित हैं, तिनिकूं केवल जाने ही है, जातैं ज्ञानीका ज्ञान ही स्वभाव है, कर्ता स्वभाव नाहीं है, कर्ता होय तौ बांधे।

भावार्थ--ज्ञानी भये पीछे अज्ञानरूप रागद्वेषमोहभावनिका निरोध है। वहुरि रागद्वेषमोहका निरोध भये मिथ्यात्व आदि आस्रवभावका निरोध है। वहुरि आस्रवका निरोधतैं नवीन बंधका निरोध है। वहुरि पूर्वें बंधे थे ते सत्तामें तिष्ठे हैं, तिनिका ज्ञाता ही रहे है, कर्ता नाहीं होय है, जातैं नाहीं भया तब ज्ञानीका तौ ज्ञान ही स्वभाव है। यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि आदिकै चारित्रमोहका उदय है ताकूं ऐसा जानिये है, जो यह उदयकी वरजोरी है सो अपनी शक्त्यनुसाररूप तिनिकूं रोग जानि काटे ही है, तातैं छते ही अणछते कहिये। आगामी सामान्यसंसारका बंधरूप ते नाहीं हैं, अल्पस्थित्यनुभागरूप बंध करे हैं, ते अज्ञानकी पक्ष में गिणे है, अज्ञानकी

पक्षमें तौ मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके निमित्ततैं बंधे हैं, सो गिणिये है। ऐसै ज्ञानके आस्रव बंध नाही गिण्या। आगे, राग द्वेष मोहनिके ही आस्रवपणाका नियम करे हैं। गाथा—

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥४॥

भावो रागादियुतः जीवेन कृतस्तु बंधको भवति।
रागादिविप्रमुक्तोऽबंधको ज्ञायको नवरि ॥ ४ ॥

आत्मख्यातिः—इह खलु रागद्वेषमोहसंपर्कजोऽज्ञानमय एव भावः, अयस्कांतोपलसंपर्कज इव कालायससूचीं, कर्म कर्तुमात्मानं चोदयति। तद्विवेकजस्तु ज्ञानमयः, अयस्कांतोपलविवेकज इव कालायससूचीं, अकर्मकरणौत्सुक्यमात्मानं स्वभावेनैव स्थापयति। ततो रागादिसंकीर्णोऽज्ञानमय एव कर्तृत्वे चोदकत्वाद्बंधकः। तदसंकीर्णस्तु स्वभावोद्भासकत्वात्केवलं ज्ञायक एव; न मनागपि बंधकः।

अथ रागाद्यसंकीर्णभावसंभवं दर्शयति—

अर्थ—जो रागादिकरि युक्त भाव जीवकरि कीया होय, सो नवीन कर्मका बंध करनेवाला कह्या है। बहुरि जो भाव रागादिकभावनिकरि रहित है, सो बंध करनेवाला नाहीं है। केवल जाननेवाला ही है।

टीका—इस आत्माविषैं निश्चयकरि जो रागद्वेषमोहका मिलापतैं उपज्या भाव होय, सो अज्ञानमय ही है, सो जैसैं चुंबकपाषाण के संपर्कतैं उपज्या भाव लोहकी सूईकूं प्रेरे है, चलावे है, तैसैं आत्माकूं कर्मके करनेकूं प्रेरै है। बहुरि तिनि रागादिकके भेदज्ञानतैं उपज्या भाव है; सो ज्ञानमय है। सो जैसैं चुंबकपाषाणका संसर्गविना सूईका स्वभाव है सो चलनेरूप नाही है, तैसैं आत्माकूं कर्मके करनेविषैं उत्साहरूप नाहीं ऐसे स्वभावकरि स्थापे है। तातैं रागादिकतैं मिल्या अज्ञानमय भाव है सोही कर्मका कर्तापणाविषैं प्रेरक है, तातैं नवीन बंधका करनेवाला

है। बहुरि रागादिकतैं नाही मिल्या भाव है सो अपने स्वभावका प्रगट करनेवाला है। सो केवल जाननेवाला ही है। सो नवीनकर्मका किंचिन्मात्र भी बंध करनेवाला नाही है।

भावार्थ—रागादिकके मिलापतैं भया अज्ञानमय भाव है सो ही बंध करनेवाला है। बहुरि रागादिकतैं नाहीं मिल्या ऐसा ज्ञानमय भाव है, सो बंधका करनेवाला नाहीं है, यह नियम है। आगे रागादिकतैं मिल्या नाही ऐसा ज्ञानमय भावका संभवना दिखावे हैं। गाथा—

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं वज्झदे पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि ॥५॥

पके फले पतिते यथा न फलं बध्यते पुनर्वृन्ते।
जीवस्य कर्मभावे पतिते न पुनरुदयमुपैति ॥५॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु पक्वं फलं वृन्तात्सकृद्विश्लिष्टं सत्, न पुनर्वृन्तसंबंधमुपैति तथा कर्मोदयजो भावो जीवभावात्सकृद्विश्लिष्टः सन्, न पुनर्जीवभावमुपैति। एवं ज्ञानमयो रागाद्यसंकीर्णो भावः संभवति।

अर्थ—जैसैं वृक्ष तथा वेलिके फल पकी करि पडे वीटसूं क्षरि जाय सो वह फल फेरि वीटसूं बंधे नाहीं, तैसैं जीवविषैं पुद्गलकर्म भावरूप था, सौ पचिकरि छडि गया, निर्जरा होय गई, सो कर्म फेरि नाहीं उदय होय है।

टीका—जैसैं निश्चयकरि यह प्रगट है, जो वीटसूं पाका फल एक वार क्षरि पड्या सो वह फल फेरि वीटसूं संबंधरूप नाहीं होय है। तैसैं कर्मका उदयसूं निपज्या जो जीवका भाव सो एकवार जीवभावसूं भिन्न भया संता फेरि जीवभावकूं नाहीं प्राप्त होय है। ऐसे ज्ञानमय भाव रागादिकरि असंकीर्ण संभवे है।

भावार्थ—कर्मकी निर्जरा भये पीछे वह कर्म फेरि उदय नाही आवे, तब ज्ञानमय ही भाव रह्या। ऐसें जब जीवका मिथ्यात्वकर्म अनंतानुबंधीसहित सत्त्वमेंसूं क्षय होय जाय, तब फेरि

उदय आवे नाहीं, तब ज्ञानी भया संता फेरि कर्मका कर्ता नाहीं। मिथ्यात्वकी लार लगि प्रकृति तौ बंधे नाहीं अर अन्यप्रकृति सामान्य संसारका कारण नाहीं। मूलतैं कटे वृक्षके हरे पानवत् हैं, ते हैं, ते शीघ्र सूकने योग्य हैं। ऐसैं ज्ञानीका रागादिकतैं नाहीं मिल्या ऐसा ज्ञानमय भाव संभवे है। चारित्रमोहका उदयका राग अज्ञानमय न गिणिये है। जातैं सम्यग्दृष्टीकै ताका स्वामीपणा नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शालिनी छन्दः

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव।
रुंधन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान् एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणां ॥२॥

अथ ज्ञानिनो द्रव्यास्रवाभावं दर्शयति—

अर्थ—जो जीवका रागद्वेषमोह विना भाव होय है, सो भाव ज्ञान ही करि रचा हुवा है, सो यह भाव है सो सर्व द्रव्यास्रवनिकूं रोकता संता है, तातैं सर्व ही भावास्रवनिका अभाव कहिये।

भावार्थ—पूर्वोक्त ही जानना। इहां सर्व भावास्रवनिका अभाव कह्या। सो संसारका कारण मिथ्यात्व ही है। तिस संबंधी रागादिकका अभाव भया, सो सर्व ही भावास्रवका अभाव भया। आगै ज्ञानीके द्रव्यास्रवका अभाव दिखावे हैं। गाथा—

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥६॥

पृथ्वीपिंडसमानाः पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययास्तस्य।
कर्मशरीरेण तु ते बद्धाः सर्वेऽपि ज्ञानिनः ॥६॥

आत्मख्यातिः—ये खलु पूर्वं, अज्ञानेनैव बद्धा मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा द्रव्यास्रवभूताः प्रत्ययाः, ते ज्ञानिनो द्रव्यांतरभूताः, चेतनपुद्गलपरिणामत्वात् पृथ्वीपिंडसमानाः। ते तु सर्वेऽपि स्वभावत एव कार्माणशरीरेणैव संबद्धा न तु जीवेन, अतः स्वभावसिद्ध एव द्रव्यास्रवाभावो ज्ञानिनः। २७७

अर्थ—तिस पूर्वोक्त ज्ञानीकै पहले अज्ञान अवस्थामैं कर्म बंधे हैं, ते प्रत्ययसंज्ञा करि कहिये हैं, ते कार्माणशरीरकरि सहित बंधे हैं, ते जीवकै रागादिभाव भये विना पृथ्वीके पिंडसमान हैं। जैसैं मृत्तिका आदि अन्य पुद्गलस्कन्ध हैं, तैसे ते भी हैं।

टीका—जे प्रगटपणे पहलैं अज्ञानकरि बांधे जे मिथ्यात्व अविरति कषाय योगरूप द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय, ते ज्ञानीकै अन्यद्रव्यभूत अचेतन पुद्गलद्रव्यके परिणामपणातैं पृथिवीके पिंडसमान हैं, ते सर्व ही अपने पुद्गलस्वभावतैं ही कार्माण शरीर ही करि एक होय बंधे हैं, बहुरि जीवकरि नाहीं बंधे हैं। यातैं ज्ञानीकै द्रव्यास्रवका अभाव स्वभाव ही करि सिद्ध है।

भावार्थ—आत्मा ज्ञानी भया तवतैं ज्ञानीकै भावास्रवका तौ अभाव भया ही। अर द्रव्यास्रव है सो मिथ्यात्वादि पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, ते कार्मण शरीरतैं स्वयमेव बंधि रहे हैं, ते अन्यमृत्तिकाका पिंड हैं, तैसे ते भी हैं, भावास्रवविना कछू आगामी कर्मबंधकूं कारण नाहीं, अर पुद्गलमय हैं, तातैं अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप जीवतैं स्वयमेव ही भिन्न हैं, ऐसा ज्ञानी जाने। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३॥

कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्—

अर्थ—यह ज्ञानी है सो भावास्रवके अभावकूं तौ प्राप्त भया है। बहुरि द्रव्यास्रवनितैं स्वयमेव ही भिन्न है। जातैं ज्ञानी है, सो सदा ज्ञानमय ही है केवल एक भाव जाका ऐसा है, यातैं निरास्रव ही है, एक ज्ञायक ही है।

भावार्थ—भावास्रव जे राग द्वेष मोह, तिनिका तौ ज्ञानीकै अभाव भया। अर द्रव्यास्रव हैं ते

पुद्गल परिणाम हैं, तिनितैं सदा ही स्वयमेव ही भिन्न है। तातैं ज्ञानी निरास्रव ही है। आगै पूछे हैं, जो, ज्ञानी निरास्रव कैसा है ? ताका उत्तरकी गाथा कहे हैं। गाथा—

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु ॥७॥

चतुर्विधा अनेकभेदं बध्नंति ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां ।
समये समये यस्मात् तेनाबंध इति ज्ञानी तु ॥७॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि तावदास्रवभावनाभिप्रायाभावान्निरास्रव एव। यत्तु तस्यापि द्रव्यप्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्गलकर्म बध्नंति तत्र ज्ञानगुणपरिणामहेतुः ।

कथं ज्ञानगुणपरिणामो बंधहेतुरिति चेत्—

अर्थ—जातैं च्यारि प्रकार आस्रव कहे जे–मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग, सो ए दर्शनज्ञानगुणनिकरि समय समय अनेक भेद लिये कर्मनिकूं बांधे हैं, तातैं ज्ञानी तौ अबंधरूप ही है।

टीका—प्रथम ही ज्ञानी है सो तौ आस्रव भावकी भावनाका अभिप्रायका अभावतैं निरास्रव ही है। बहुरि तिस ज्ञानीकै भी द्रव्यास्रव समय समयप्रति अनेक प्रकार पुद्गल कर्मकूं बांधे हैं। तिसविषैं ज्ञानगुणका परिणमन है सो कारण है। आगे फेरि पूछे है, ज्ञानगुणका परिणाम बंधका कारण कैसा है ? ताका उत्तरकी गाथा—

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥८॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते ।
अन्यत्वं ज्ञानगुणः तेन तु स बंधको भणितः ॥८॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानगुणस्य हि यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यांतर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयास्ति परिणामः । स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात्, बंधहेतुरेव स्यात् ।

एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत् ।

अर्थ—जातैं ज्ञानगुण है सो जघन्यज्ञानगुणतैं फेरि भी अन्यपणारूप परिणमे है तिस कारण करि सो ज्ञानगुण कर्मका बंध करनेवाला कह्या है ।

टीका—ज्ञानगुणका जेतैं जघन्यभाव है—क्षयोपशमरूप भाव है, तेतैं अंतर्मुहूर्त विपरिणामी है, ज्ञानभावरूप अंतर्मुहूर्त ही रहे है, पीछे अन्यप्रकार परिणमे है । तातैं अन्यपणारूप भी याका परिणाम है, सो यथाख्यातचारित्र अवस्थाके नीचे अवश्यंभावी रागपरिणामका सद्भाव है, तातैं बंधका कारण ही है ।

भावार्थ—क्षयोपशमज्ञानका एक ज्ञेय परिथंवना अंतर्मुहूर्त ही है, पीछे अवश्य अन्य ज्ञेयकूं अवलंबे है । तातैं स्वरूपविषैं भी अंतर्मुहूर्त ही थंभना होय है । तातैं ऐसा अनुमान है—जो यथाख्यातचारित्र अवस्थाके नीचे अवश्य रागपरिणामका सद्भाव है, तिस रागके सद्भावतैं बंध भी होय है । तातैं ज्ञानगुणका जघन्यभाव बंधका कारण कह्या है । आगे फेरि पूछे है, जो ऐसा है, ज्ञानगुणका जघन्यभाव अन्यपणारूप परिणाम बंधका कारण है, तौ ज्ञानी निरास्रव है, ऐसैं कैसैं कह्या ? ताका उत्तरकी गाथा—

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥९॥

दर्शनज्ञानचारित्रं यत्परिणमते जघन्यभावेन ।
ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥९॥

आत्मख्यातिः—यो हि ज्ञानी स बुद्धिपूर्वकरागद्वेषमोहास्रवभावाभावात्, निरास्रव एव किंतु सोऽपि यावद् ज्ञानं

सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाऽबुद्धिपूर्वककलंकविपाकसद्भावात् पुद्गलकर्मबंधः स्यात् । अतस्तावद्ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावद् ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात्।

अर्थ—दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते जो जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तिस कारणकरि ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गलकर्म करि बंधे है ।

टीका—जो निश्चयकरि ज्ञानी है सो बुद्धिपूर्वक रागद्वेष मोहरूप आस्रवभावके अभावतैं निरास्रव ही है । तहां यह विशेष है—सो ही ज्ञानी जेतैं ज्ञानकूं सर्वोत्कृष्टभावकरि देखनेकूं जाननेकूं आचरनेकूं असमर्थ है, अर जघन्यभाव ही करि ज्ञानकूं देखे है, जाने है, आचरे है, तेतैं तिस ज्ञानीके भी ज्ञानके जघन्यभावकी अन्यथा अप्राप्तिकरि अनुमानरूप कीया अबुद्धिपूर्वक कर्ममलकलंकका सद्भाव है । यातैं पुद्गलकर्मका बंध होय है । यातैं यह उपदेश है—जो, तेतैं ज्ञानकूं देखना जानना आचरण करना, जेतैं ज्ञानका पूर्णभाव जेता है तेता देख्या जान्या आचर्या भले प्रकार होय । तापीछे साक्षात् ज्ञानी भया संता सर्वथा निरास्रव ही होय है ।

भावार्थ—ज्ञानीकूं निरास्रव ऐसा कह्या है, जो, जेतैं याकै क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं तौ बुद्धिपूर्वक अज्ञानमय राग द्वेष मोहका अभाव है, तातैं निरास्रव कह्या है । अर जेतैं क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं दर्शन ज्ञान चारित्र जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तेतैं संपूर्णज्ञानकूं देख्या जान्या आचर्या जाय नाहीं है । सो इस जघन्यभाव ही करि ऐसा जानिये है—जो, याकै अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक विद्यमान है ताकरि बंध भी होय है, सो चारित्रमोहका उदयकरि है, अज्ञानमय भाव नाहीं है । तातैं ऐसा उपदेश है—जो, जेतैं ज्ञान संपूर्ण न होय--केवलज्ञान न उपजै, तेतैं ज्ञानहीका ध्यान निरंतर करना, ज्ञानहीकूं देखना, ज्ञानहीकूं जानना, ज्ञानहीकूं आचरना, इस हो मार्ग चारित्रमोहका नाश होय है, अर केवलज्ञान उपजे है । तब सर्वप्रकारकरि साक्षात् निरास्रव होय है, यह

विवक्षाका विचित्रपणा है। बुद्धिपूर्वक रागादिकका अभावकी अपेक्षा तौ अबुद्धिपूर्वक रागादिक छेतैंते भी निरासृव कह्या, अर अबुद्धिपूर्वकका अभाव भये केवलज्ञान ही उपजैगा, तब साक्षात् निरासृव होयहीगा ऐसैं जानना। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छदः

सन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिदन् परिवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्नात्मा नित्यनिरासृवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा॥

अर्थ--यहे आत्मा जब ज्ञानी होय है, तब अपने बुद्धिपूर्वक रागकूं तौ समस्तकूं आप दूरी करता संता निरंतर प्रवर्ते है, बहुरि अबुद्धिपूर्वक रागकूं भी जीतनेकूं बारंबार अपनी ज्ञानानुभवनरूप शक्तीकूं स्पर्शता संता प्रवर्ते है, बहुरि ज्ञानकी पलटनी है ताकूं समस्तहीकूं दूरि करता संता ज्ञानकूं स्वरूपविषैं थांभता पूर्ण होता संता प्रवर्ते है। ऐसा ज्ञानी होय तब शाश्वता निरासृव होय है।

भावार्थ--तौ सुगम है। जब समस्तरागकूं हेय जान्या तब ताका मेटनेहीका उद्यमी भया प्रवर्ते है, तब सदा निरासृव ही कहिये। जातैं आसृवके भावनिकी भावनाका अभिप्रायका याकै अभाव है। बहुरि यहां बुद्धिपूर्वक अबुद्धिपूर्वककी दोय सूचना है। एक तौ जो आप कीया न चाहै अर परनिमित्ततैं जबरीतैं होय ताकूं आप जाणै भी तौऊ ताकूं अबुद्धिपूर्वक कहिये। बहुरि दूजा जो अपने ज्ञानगोचर ही नाहीं प्रत्यक्षज्ञानी जाने है। तथा ताकै अविनाभाविचिन्हकरि अनुमानतैं जानिये, सो अबुद्धिपूर्वक है ऐसैं जानना। आगै पूछे है, जो सर्व ही द्रव्यासृवकी संततीकूं जीवतैं ज्ञानी निरासृव कैसे? ऐसे प्रश्नका श्लोक है।

अनुष्टुप् छन्दः

सर्वस्यामेव जीवत्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ। कुतो निरासृवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः॥५॥

अर्थ--ज्ञानीकै सर्व ही द्रव्यासृवकी संततीकूं जीवतैं संतैं ज्ञानी नित्य ही निरासृव है, ऐसा

काहेतैं कह्या ? जो शिष्यकी ऐसी आशंकारूप बुद्धि है, ताका उत्तरकी गाथा कहे हैं।

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥ १० ॥
संतीव णिरुवभोज्जा वाला इच्छी जहेव पुरुसस्स।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इच्छी जह णरस्स ॥११॥
हेदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥ १२ ॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥१३॥

सर्वे पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययाः संति सम्यग्दृष्टेः ।
उपयोगप्रयोग्यं बध्नंति कर्मभावेन ॥१०॥

संति तु निरुपभोग्यानि वाला स्त्री यथेह पुरुषस्य ।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा पुरुषस्य ॥११॥

भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवंत्युपभोग्यानि ।
सप्ताष्टविधानि भूतानि ज्ञानावरणादिभावैः ॥१२॥

एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टिरबंधको भणितः ।
आस्रवभावाभावे न प्रत्यया बंधका भणिताः ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यतः सदवस्थायां तदात्वपरिणीतवालस्त्रीवत् पूर्वमनुपभोग्यत्वेऽपि विपाकावस्थायां प्राप्तयौवनपूर्व-

परिणीतस्त्रीवत् उपभोग्यप्रायोग्यं पुद्गलकर्मद्रव्यप्रत्ययाः संतोऽपि कर्मोदयकार्यजीवभावसद्भावादेव बध्नंति। ततो ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्वबद्धाः संति। संतु। तथापि स तु निरास्रव एव कर्मोदयकार्यस्य रागद्वेषमोहरूपस्यास्रवभावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानामबंधहेतुत्वात्।

अर्थ--सम्यग्दृष्टिके सर्व ही पूर्वैं अज्ञान अवस्थामैं वांधे मिथ्यात्वादि प्रत्यय कहिये आस्रव ते सत्तारूप विद्यमान हैं, ते उपयोगके प्रायोग्य कहिये प्रयोग्ग करनेरूप जैसे होय तैसे तिसके अनुसार कर्मभावकरि आगामी वंधकूं योग करनेरूप जैसे होय तैसैं तिसके अनुसार कर्मभाव करि आगामी वंधकूं प्राप्त होय हैं। वहुरि ते पूर्व वंधे प्रत्यय उदय आये विना निरुपभोग्य कहिये भोगने योग्यपणातैं रहित होयकरि तिष्ठे हैं, ते फेरि आगामी तैसे वंधे हैं—जैसे सात आठ प्रकार ज्ञानावरणादिभावकरि फेरि भोगने योग्य होय। वहुरि ते पूर्व वंधे प्रत्यय सत्तामें ऐसे हैं—जैसे पुरुषके वालस्त्री भोगने योग्य नाहीं है वहुरि ते ही उपभोग्य कहिये भोगनेयोग्य होय तव पुरुषकूं वांधे है। जैसे सा ही वाला स्त्री तरुणी होय तव पुरुषकूं वांधै है। पुरुप ताकै आधीन होय यह ही वंधना। इस कारणकरि सम्यग्दृष्टि अवंधक कह्या है। जातैं आस्रवभाव जे राग द्वेष मोह तिनिका अभाव होतैं प्रत्यय मिथ्यात्वादिक हैं, ते सत्तामें छतै भी आगामी कर्मवंधके करनेवाले नाहीं हैं।

टीका—जातैं ऐसे हैं जो जैसे तत्कालकी परिणी वालस्त्री पहलै वालक अवस्थामैं पुरुषके भोगनेयोग्य नाहीं है, फेरि सो ही स्त्री जव तरुणी होय तव जौवन अवस्थामैं भोगनेयोग्य होय है, तव पुरुष ताकै आधीन होय है। तैसे पहलै वांधे कर्म सत्ता अवस्थामैं है तेतैं भोगनेयोग्य नाहीं हैं। वहुरि ते ही जव विपाक अवस्थाकूं प्राप्त होय, तव तिस उदय अवस्थामैं भोगनेयोग्य होय है, तव जैसा आत्माका उपयोग विकारसहित होय तिस ही योग्यताके अनुसार पुद्गलकर्मरूप द्रव्य प्रत्ययसत्तारूप होतै संते भी कर्मका उदयानुसार जीवके भावनिके सद्भावहीतैं वंधकूं प्राप्त होय है। तातैं ज्ञानीके जो द्रव्यकर्मरूप प्रत्यय आस्रवसत्तामैं विद्यमान हैं तो होऊ, तथापि

सो ज्ञानी तौ निरासूव ही है। जातैं कर्मका उदयका कार्य जो जीवका भाव रागद्वेषमोहरूप आसूवभाव ताका अभावकूं होतैं द्रव्यासूवनिके बंधका कारणपणा नाहीं है।

भावार्थ—सत्तामैं मिथ्यात्वादि द्रव्यासूव विद्यमान हैं, तौऊ ते आगामी बंधके करनेवाले नाहीं हैं, जातैं बंधके करनेवाले तौ जीवके भाव रागद्वेषमोहरूप होय हैं ते हैं। सो मिथ्यात्वादि द्रव्यासूवके उदयके अर जीवके भावनिके कारणकार्यभाव निमित्तनैमित्तिकरूप है। सो जब मिथ्यात्वादिका उदय आवैं, तब जीवका रागद्वेषमोहरूप जैसा भाव होय तिस जीवभावके अनुसार आगामी बंध होय है,। अर जब सम्यग्दृष्टि होय, तब मिथ्यात्व सत्तामैंसूं नाश होय, तब तौ तिसकी लारकी अंनतानुबंधी कषाय तथा तिस संबंधी अविरमण अर योगभाव भी नष्ट होय, तब तिस सम्बन्धी जीवके रागद्वेषमोहभाव भी नाहीं होय हैं, तब तिस मिथ्यात्व अंनतानुबंधी संबंधी बंध भी न होय था, तिनि प्रकृतिनिका आगामी बंध भी नाहीं होय। अर जो मिथ्यात्वका उपशम ही होय तब सत्तामैं रहे, तब सत्ताका द्रव्य उदय विना बंधका कारण ही नाहीं है। बहुरि जेते अविरतसम्यग्दृष्टि आदिक गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं चारित्रमोहके उदय संबंधी बंध कह्या है, सो इहां संसारसामान्यकी अपेक्षा तौ बंधमें गिण्या नाहीं है। जातैं ज्ञानी अज्ञानीका विशेष है। जेतैं कर्मका उदतमें कर्मका स्वामीपणा राखी परिणमे है तेतैं ही कर्मका कर्ता कह्या है। परके निमित्ततैं परिणमे, ताका ज्ञाता द्रष्टा होय तब ज्ञानी है, ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं। ऐसी अपेक्षातैं सम्यक्दृष्टि भये पीछे चारित्रमोहका उदयरूप परिणाम होते भी ज्ञानी ही कह्या है। मिथ्यात्वका उदय है जेतैं तिस संबंधी रागद्वेषमोहभावरूप परिणमनेतैं अज्ञानी कह्या है। ऐसे ज्ञानी अज्ञानी कहनेका विशेष जानना। ऐसा बंध अबंधका विशेष है। बहुरि शुद्धस्वरूपमैं लीन रहनेका अभ्यासतैं साक्षात् संपूर्णज्ञानी केवलज्ञान प्रकट भये होय है। तब सर्वथा निरासूव होय है। ऐसें पहलैं कह ही आये हैं। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनी छन्दः

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासादवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥६॥

अर्थ—यद्यपि पूर्वैं अज्ञान अवस्थामैं बंधरूप भये थे, ते द्रव्यरूप प्रत्यय कहिये द्रव्यास्रव, ते सत्तामैं विद्यमान हैं । जातैं तिनिका उदय अपनी स्थितीके अनुसार है, तातैं जेतै उदयका समयमाही आवे तेतैं सत्ताहीमें रहै, ऐसैं द्रव्यास्रव सत्तामैं रहैं, ते अपनी सत्ताकूं नाहीं छोडे हैं । तौऊ ज्ञानीके समस्त रागद्वेषमोहका अभावतैं नवीन कर्मका बंध कदाचित् ही अवतार नाहीं धरे है ।

भावार्थ—रागद्वेषमोहभाव विना सत्ताका द्रव्यास्रव बंधका कारण नाहीं है । इहां सकल रागद्वेषमोहका अभाव बुद्धिपूर्वक अपेक्षा जानना । आगे इस ही अर्थकै दृढ करनेरूप गाथा है । ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुप् छन्दः

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः । तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥७॥

अर्थ—जातैं ज्ञानीकै रागद्वेषमोहका असंभव है, ताहीतैं ज्ञानीकै बंध नाहीं है । जातैं राग द्वेष मोह हैं ते ही बंधके कारण हैं । आगे इस अर्थका समर्थनकी गाथा—

रागो दोषो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१४॥
हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं होदि ।
तेसिं पिय रागादी तेसिमभावेण वज्झंति ॥१५॥

रागो द्वेषो मोहश्चास्रवा न सन्ति सम्यग्दृष्टेः ।
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवन्ति ॥१४॥
हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भवति ।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावेन बध्यन्ते ॥१५॥

आत्मख्यातिः—रागद्वेषमोहा न संति सम्यग्दृष्टेः सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेः । तदभावे न तस्य द्रव्यप्रत्ययाः पुद्गलकर्महेतुत्वं बिभ्रति द्रव्यप्रत्ययानां पुद्गलकर्महेतुत्वस्य रागाद्यहेतुत्वात् । ततो हेत्वभावे हेतुमदभावस्य प्रसिद्धत्वात् ज्ञानिनो नास्ति बंधः ।

अर्थ—राग द्वेष मोह ए आस्रव हैं, ते सम्यग्दृष्टीकै नाहीं हैं । तातैं आस्रवभावविना द्रव्यप्रत्यय हैं ते कर्म बन्धनेकूं कारण नाहीं हैं । मिथ्यात्वादि च्यारि प्रकार हेतु हैं सो अष्टप्रकार कर्मके बन्धनेकूं कारण हैं । बहुरि तिनि च्यारी प्रकारके हेतूकूं भी जीवके रागादिकभाव कारण हैं । सोसम्यग्दृष्टीकै तिनि रागादिक भावनिका अभाव है । तातैं सम्यग्दृष्टीकै बन्ध नाहीं है ।

टीका—सम्यग्दृष्टीकै राग द्वेष मोह नाहीं हैं । जातैं राग द्वेष मोहका अभावविना सम्यग्दृष्टिपणा बनैं नाहीं । बहुरि तिनि रागद्वेषमोहके अभावतैं तिस सम्यग्दृष्टीके द्रव्यास्रव हैं, ते पुद्गलकर्मके बन्धनेकूं कारणपणा नाहीं धारे हैं । जातैं द्रव्यास्रवनिकै पुद्गलकर्म बन्धनेका कारणपणाका रागादिकहीकै कारणपणा है । तातैं कारणके कारणका अभाव होतैं कार्यका अभावका भलेप्रकार प्रसिद्धपणा है । तातैं ज्ञानीकै बन्ध नाहीं है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि रागद्वेषमोहका अभाव विना होय नाहीं, ऐसा अविनाभाव नियम कह्या सो यह मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकका अभाव जानना । तिनहीकूं रागादिक गणे है । सम्यग्दृष्टि भये पीछे किछू चारित्रमोहसंबंधी राग रहे सो इहां न गणिये है, ते गौण हैं । तातैं तिनि भावास्रवनिविना द्रव्याशव बंधके कारण नाहीं, कारणका कारण न होय, तब भी कार्यका अभाव है यह प्रसिद्ध है । तातैं सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है, याकै बन्ध नाहीं है । इहां सम्यग्दृष्टीकूं ज्ञानी कहनेकी

अपेक्षा ऐसी जाननी—जो प्रथम तौ ज्ञान जाकै होय सो ज्ञानी कहिये । सो सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा तौ सर्व ही जीव ज्ञानी हैं । बहुरि सम्यग्ज्ञानमिथ्याज्ञानकी अपेक्षा लीजिये तब सम्यग्दृष्टी कै सम्यग्ज्ञान है ताकी अपेक्षा ज्ञानी है । मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है । बहुरि संपूर्ण ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञानी कहिये, तब केवली भगवान् ज्ञानी है । जातैं सर्वज्ञ न होय, तेतैं पंचभावनिकी कथनीमैं अज्ञानभाव बारमा गुणस्थानताईं सिद्धांतमें कह्या है । ऐसे अनेकांततैं विधिनिषेध सर्व अपेक्षा निर्बाध सिद्ध होय है । सर्वथा एकांततैं किछू भी नाहीं सधे है । ऐसे ज्ञानी होय बंध नाहीं करे है, सो यह शुद्धनयका माहात्म्य है, तातैं शुद्धनयका महिमाकरि कहे हैं ।

वसन्ततिलका छन्दः

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः पश्यति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ॥८॥

अर्थ—जे पुरुष शुध्दनयकूं अंगीकार करि निरंतर एकाग्रपणाका अभ्यास करे हैं—कैसा है शुध्दनय ? उध्दतबोध कहिये काहूका दाब्या न दवै ऐसा उज्वलज्ञान सो है चिन्ह जाका—सो इसका अवलंबन करनेवाले पुरुष रागादिककरि रहित है मन जिनिका, ऐसे निरंतर होते संते बंधकरि रहित जो समयसार–अपना शुद्ध आत्मस्वरूप, ताहि अवलोकन करे हैं ।

भावार्थ—इहां शुद्धनयकरि एकाग्र होना कह्या, सो साक्षात् शुद्धनयका होना तो केवलज्ञान भये होय है । अर शुध्दनय है सो श्रुतज्ञानका अंश है । सो इसके द्वारे शुद्धस्वरूपका श्रद्धान करना तथा ध्यानकरि एकाग्र होना है सो यह परोक्ष अनुभव है । एकदेश शुद्धकी अपेक्षा व्यवहारकरि प्रत्यक्ष भी कहिये है । फेरि कहे हैं, जे यातैं चिगे हैं ते कर्म बांधे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

प्रच्युत्य शुध्दनयतः पुनरेव ये तु रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९॥

अर्थ—बहुरि जे पुरुष शुद्धनयतैं छूटिकरि फेरि रागादिके योग कहिये संबंधकूं प्राप्त होय हैं, ते छोडया है ज्ञान जिनिनै ऐसे भये संते कर्मबंधकूं धारे हैं। कैसा कर्मबंधकूं धारे हैं ? पूर्वै बंधे जे द्रव्यास्रव तिनिकरि कीया है विचित्र अनेकप्रकार विकल्पनिका जाल जानै।

भावार्थ—फेरि शुद्धनयतैं चिगे तौ रागादिकके संबंधतैं द्रव्यास्रवके अनुसार अनेक भेद लिये कर्मनिकूं बांधे है। नयतैं चिगना यह जो फेरि मिथ्यात्वका उदय आय जाय तब बंध होने लगि जाय। जातैं इहां मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकतैं बंध होनेकी प्रधानताकरि है अर उपयोगकी अपेक्षा गौण है। शुद्धोपयोगरूप रहनेका काल अल्प है। तातैं ताका छूटनेकी अपेक्षा इहां नाहीं। अन्य ज्ञेयतैं ज्ञान उपयुक्त होय तौऊ मिथ्यात्वविना रागका अंश है, सो ज्ञानीके अभिप्रायपूर्वक नाहीं। तातैं अल्पबंध संसारका कारण नाहीं। अथवा उपयोगकी अपेक्षा लीजिये तब शुद्धस्वरूपतैं चिगे सम्यक्त्वतैं न छूटै। तब चारित्रमोहका रागतैं किछू बंध होय है, सो अज्ञानकी पक्षमैं नाहीं गिनिये, अर बंध है ही। ताकूं मेटनेकूं शुद्धनयतैं न छूटनेका अर शुद्धोपयोगमें लीन होनेका सम्यग्दृष्टि ज्ञानीकूं उपदेश है, ऐसैं जानना। आगे इस ही अर्थके समर्थनकूं दृष्टांतकरि दिखावे हैं। गाथा—

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो॥ १६॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा॥१७॥

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम्।
मांसवसारुधिरादीन्भावानुदराग्निसंयुक्तः॥१६॥

तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम् ।
बध्नन्ति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः ॥१७॥ युगलम् ॥

आत्मख्यातिः—यदा तु शुद्धनयात् परिहीणो भवति ज्ञानी तदा तस्य रागादिसद्भावात् पूर्वबद्धाः द्रव्यप्रत्ययाः स्वस्य हेतुत्वहेतुसद्भावे हेतुमद्भावस्यानिवार्यत्वात् ज्ञानावरणादिभावैः पुद्गलकर्मबंधं परिणमयंति न चैतदप्रसिद्धं पुरुषगृहीताहारस्योदराग्निना रसरुधिरमांसादिभावैः परिणामकारणस्य दर्शनात् ।

अर्थ–जैसें पुरुषने आहार ग्रहण कीया सो आहार उदराग्निकरि युक्त भया अनेकप्रकार मांस वसा रुधिरादि भावनिरूप परिणमे है, तैसें ज्ञानीके पूर्वें बंधे जे द्रव्यास्रव, ते बहुत भेद लीये कर्मनिकूं बांधे हैं। बहुरि जिनिके ए कर्म बंधे हैं ते जीव कैसे हैं ? नयकरि हीन भये हैं, शुद्ध-नयतैं छूटि गये हैं, रागादि अवस्थाकूं प्राप्त भये हैं ।

टीका–जिसकाल ज्ञानी शुद्धनयतैं परिहीन होय है, छूटे है, तिसकाल ताके रागादिभावनिका सद्भावतैं पूर्वें बांधे थे जे प्रत्यय कहिये द्रव्यास्रव, ते अपनाहेतु पणाका हेतुका सद्भाव होतैं हेतु-मत् कहिये कार्य, ताका भावका अनिर्वारण है अवश्य होय है, तातैं ज्ञानावरणादिभावनिकरि पुद्गलकर्मकूं बंधरूप परिणमावे हैं। सो यहू अप्रसिद्ध नाहीं है। दृष्टांतकरि प्रसिद्ध है। जैसें पुरुषकरि ग्रह्या जो आहार ताका उदराग्निकरि रस रुधिर मांसादि भावनिकरि परिणाम करनेका प्रत्यक्ष दर्शन है देखिये है तैसें जानना ।

भावार्थ–ज्ञानी शुद्धनयतैं छूटे तब रागादिभावनिका सद्भाव होय, तब रागादिरूप भया संता कर्मनिकूं बांधे है। जातैं रागादिभाव हैं ते द्रव्यास्रवकूं निमित्त होय, तब ते आस्रव अवश्य कर्मबंधकूं कारण होय हैं। इहां इस अर्थका तात्पर्यरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि। नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि ॥१०॥

अर्थ–इहां पहले कथनविषैं यह तात्पर्य है, जो शुद्धनय है सो त्यागनेयोग्य नाहीं है यह उप-

देश है। जातैं तिस शुद्धनयके अत्यागतैं तौ कर्मका बंध नाहीं होय है। बहुरि तिसके त्यागतैं कर्मका बंध होय ही है। फेरि तिस शुद्धनयहीके ग्रहणकूं दृढ करते संते काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम्।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥११॥

अर्थ--पुण्यवान् महंतपुरुषनिकरि शुद्धनय है सो कदाचित् भी छोडनेयोग्य नाहीं है। कैसा है शुद्धनय? ज्ञानविषैं थिरताकूं अतिशयकरि बांधता संता है। कैसा ज्ञानविषैं थिरता बांधे है? धीर कहिये चलाचलपणेतैं रहित अर उदार कहिये सर्वपदार्थनिमें आप विस्तरता है महिमा जाकी। बहुरि कैसा है ज्ञान? अनादिनिधन है—जाका आदि अंत नाहीं है। बहुरि कैसा है शुद्धनय? कर्मनिका सर्वंकष कहिये मूलतैं नाश करनहारा है। ऐसे शुद्धनयके विषैं जे तिष्ठे हैं, ते पुरुष अपनी ज्ञानकी मरीचि कहिये व्यक्तिविशेष, तिनिकूं तत्काल समेटिकरि कर्मके पटलतैं बाह्य निसरता अर संपूर्णज्ञानघनका समूहस्वरूप निश्चल जो शांतरूप मह कहिये ज्ञानमय तेज प्रतापका पुंज, ताहि अवलोकन करे हैं।

भावार्थ—शुद्धनय है सो आत्माकूं एक ज्ञानमय तेज प्रतापका पुंज ताहि एक चैतन्यमात्र समस्तज्ञानके विशेषनिकूं गौणकरि, अर समस्त परनिमित्ततैं भये भावनिकूं गौणकरि, शुद्ध नित्य अभेदरूप एककूं ग्रहण करे है। सो ऐसे शुद्धका विषयस्वरूप अपना आत्माकूं जे अनुभवे हैं—एकाग्र होय तिष्ठे हैं, ते समस्त कर्मका समूहतैं न्यारा संपूर्ण ज्ञान जो केवलज्ञानस्वरूप अमूर्तिक पुरुषाकार वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप अपना आत्मा, ताहि अवलोकन करे हैं। या शुद्ध-नयके विषैं अंतर्मूहूर्त तिष्ठे शुक्लध्यानकी प्रवृत्ति होयकरि केवलज्ञान उपजे है ऐसा याका माहात्म्य है। सो याकूं अवलंबन करि फेरि जेतैं केवलज्ञान न उपजै तेतैं यातैं चिगना नाहीं, ऐसा श्री-गुरुनिका उपदेश है। ऐसैं आस्रवका अधिकार पूर्ण कीया। अब रंगभूमिमैं आस्रवका स्वांग प्रवेश

भया था, ताकूं ज्ञान यथार्थ जाणि स्वांग दूरि कराय आप प्रगट भया, ऐसैं ज्ञानकी महिमाके अर्थरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ता छन्दः

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२॥

अर्थ—रागादिक आस्रवनिका तत्काल क्षणमात्रमें सर्वप्रकार दूरि होनेतैं नित्य उद्योतरूप किछू परम वस्तूकूं अंतरंगविषैं अवलोकन करनेवाला पुरुषके यहु ज्ञान है सो उन्मग्न कहिये उदयरूप प्रगट भया । कैसा प्रगट भया ? अतिविस्ताररूप फैलते जे अपने निजरसके प्रवाह, तिनिकरि सर्वलोकपर्यंत अन्यभाव, तिनिकूं अंतमग्न करता संता । बहुरि कैसा है ? अचल है—जैसेके तैसे सर्वपदार्थ जामैं सदा प्रतिभासे हैं, चले नाहीं है । बहुरि कैसा है ? अतुल है, जाकी बराबरी और नाहीं है ।

भावार्थ—शुद्धनयकूं अवलंबन करि जो पुरुष अंतरंग विषैं चैतन्यमात्र परमवस्तूकूं एकाग्र अनुभवे है, ताके सर्व रागादिक आस्रवभाव दूरि होय, अर सर्वपदार्थनिकूं जाननेवाला निश्चल अतुल्य केवलज्ञान प्रगट होय है । सो यह ज्ञान सर्वतैं महान् है । ऐसे आस्रवका स्वांग रंगभूमीमें प्रवेश भया था, ताकूं ज्ञान यथार्थरूप जानि लिया, तब निसरि गया ।

सवैया तेईसा

योग कषाय मिथ्यात्व असंयम आस्रव द्रव्य ते आगम गाये ।
राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भावि तजाये ॥
जे मुनिराज करैं इनि पाल सुरिद्धि समाज लये सिव थाये ।
काय नवाय नमूं चित लाय कहूं जय पाय लहूं मन भाये ॥१॥

ऐसैं इस समयसार ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीकाकी वचनिकाविषैं आस्रव नामा चौथा अधिकार पूर्ण भया ॥४॥ इहांताई गाथा १८० भई । कलसा १२४ भये ॥

अथ संवराधिकारः ।

दोहा—मोहरागरुष दूरि करि समिति गुप्ति व्रत पारि । संवरमय आतम कीयो नमूं ताहि मन धारि ॥१॥

अब रंगभूमिमैं संवर प्रवेश करे है । तहां प्रथम ही टीकाकार मंगलके अर्थि, सर्व स्वांगका जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान, ताकी महिमारूप मंगल करे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक्स्वरूपे स्फुरज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१॥

तत्रादावेव सकलकर्मसंवरणस्य परमोपायभेदविज्ञानमभिनंदति ।

अर्थ—चैतन्यस्वरूपमय स्फुरायमान प्रकाशरूप ज्योति है सो उदयरूप होय फैले है । कैसा है ? अनादिसंसारतैं लगाय अपना विरोधी जो संवर, ताकी जीतिकरि एकांतपणे मदकूं प्राप्त भया जो आस्रव ताका तिरस्कारतैं पाया है नित्य विजय जानैं ऐसा संवरकूं निपजावता संता है । बहुरि परद्रव्य तथा परद्रव्यके निमित्ततैं भये भाव, तिनितैं भिन्न है । बहुरि कैसा है ? अपना सम्यक् कहिये यथार्थस्वरूप, ताविषैं निश्चित है । बहुरि कैसा है ? उज्वल है, निराबाध निर्मल दैदीप्यमान प्रकाशरूप है । बहुरि कैसा है ? अपना रस जो ज्ञानरूप प्रवाह, ताका है प्राग्भार जाकै—अपना रसका बोझकूं लीये है, अन्य बोझ उतारि धर्या है ।

भावार्थ—अनादितैं आस्रवका विरोधी संवर है । ताकूं आस्रव जीतिकरि मदकरि गर्वित तथा ताका तिरस्कार करि जीतिकूं प्राप्त भया जो संवर, ताकूं प्राप्त करता, अर समस्त पररूपतैं न्यारा होय, अपना रूपविषैं निश्चल होय, यह चैतन्यप्रकाश है, सो अपना ज्ञानरसरूप भारकूं लीये निर्मल उदयरूप होय है । आगे, संवरकी प्रवेशकी आदिहीविषैं समस्तकर्मका संवर होनेका उत्कृष्ट उपाय भेदज्ञान है, ताकूं प्रशंसारूप कहे हैं । गाथा—

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवयोगो ।
कोहो कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मिय कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥२॥
एदं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥३॥

उपयोगे उपयोगः क्रोधादिषु नास्ति कोप्युपयोगः ।
क्रोधः क्रोधे चैव हि उपयोगे नास्ति खलु क्रोधः ॥१॥
अष्टविकल्पे कर्मणि नोकर्मणि चापि नास्त्युपयोगः ।
उपयोगेऽपि च कर्म नोकर्म चापि नो अस्ति ॥२॥
एतत्त्वविपरीतं ज्ञानं यदा भवति जीवस्य ।
न किंचित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा ॥३॥

आत्मख्यातिः—न खल्वेकस्य द्वितीयमस्ति द्वयोर्भिन्नप्रदेशत्वेनैकसत्तानुपपत्तेस्तदसत्वे च तेन सहाधारधेयसंबंधोऽपि नास्त्येव ततः स्वरूपप्रतिष्ठत्वलक्षण, एवाधाराधेयसंबंधोऽवतिष्ठते तेन ज्ञानं जानतायां स्वरूपे प्रतिष्ठितं। जानताया ज्ञानादपृथग्भूतत्वात् ज्ञाने एव स्यात् । क्रोधादीनि क्रुध्यतादौ स्वरूपे प्रतिष्ठितानि क्रुध्यतादेः क्रोधादेः पृथग्भूतत्वात्क्रोधादिष्वेव स्युः, न पुनः क्रोधादिषु कर्मणि नोकर्मणि वा ज्ञानमस्ति। नच ज्ञाने क्रोधादयः कर्म नोकर्म वा संति परस्परमत्यंतस्वरूपवैपरीत्येन परमार्थाधाराधेयसंबंधशून्यत्वात् । नच ज्ञानस्य जानतास्वरूपं तथा क्रुध्यतादिरपि क्रोधादीनां च यथा क्रुध्यतादिस्वरूपं तथा जानतापि कथंचनापि व्यवस्थापयितुं शक्येत जानतायाः क्रुध्यतादेश्च भावभेदेनोद्भासमानत्वात् स्वभावभेदाच्च वस्तुभेद एवेति नास्ति ज्ञानाज्ञानयोराधाराधेयत्वं । किं च यदा किलैकमेवा-

काशं स्वबुद्धिमधिरोप्याधाराधेयभावो विभाव्यते तदा शेषद्रव्यांतराधिरोपनिरोधादेव बुद्धेर्न भिन्नाधिकरणापेक्षा प्रभवति। तद्प्रभवे चैकमाकाशमेवैकस्मिन्नाकाश एव प्रतिष्ठितं विधायतो न पराधारधेयत्वं प्रतिभाति ततो ज्ञानमेव ज्ञाने एवं क्रोधादय एव क्रोधादिष्वेवेति, साधु सिद्धं भेदविज्ञानं।

अर्थ--उपयोगविषैं उपयोग है। क्रोधादिकविषैं निश्चयकरि कोऊ उपयोग नाहीं है। बहुरि क्रोधविषैंही क्रोध है। उपयोगविषैं निश्चयकरि क्रोध नाहीं है। बहुरि अष्टप्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म अर शरीरादिक नोकर्म, ताविषैं भी उपयोग नाहीं है। बहुरि उपयोगविषैं कर्म नोकर्म भी नाहीं है। बहुरि सत्यार्थज्ञान जिसकाल जीवकै होय है, तिसकाल किछू भी उपयोगसिवाय अन्यभाव नाहीं करे है। केवल उपयोगस्वरूप शुद्ध आत्मा है।

टीका--निश्चयकरि एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य किछू संबंधी नाहीं है। जातैं द्रव्य है सो भिन्नभिन्न प्रदेशरूप है। तातैं एकसत्ताकी अप्राप्ति है। द्रव्यद्रव्यकी सत्ता न्यारी न्यारी है। बहुरि सत्ता एक न होते अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्यकरि आधाराधेयसंबंध भी नाहीं है। तातैं द्रव्यके अपने स्वरूपहीविषैं प्रतिष्ठारूप आधाराधेयसंबंध तिष्ठे है। तिसकारणकरि ज्ञान आधेय, सो तौ जाणपणारूप अपना स्वरूप आधार, ताविषैं प्रतिष्ठित है। जातैं जाणपणा है सो ज्ञानतैं अभिन्नभाव है—भिन्नप्रदेशरूप नाहीं है। तातैं जाननक्रियारूप ज्ञान है सो ज्ञानही विषैं है। बहुरि क्रोधादिक हैं ते क्रोधरूप क्रिया क्रोधपणा अपना स्वरूप ताहीविषैं प्रतिष्ठित हैं। जातैं क्रोधपणारूप क्रिया क्रोधादिकतैं अपृथग्भूत है, अभिन्नप्रदेश है। तातैं क्रोधरूप क्रिया क्रोधादिविषैंही होय है। बहुरि क्रोधादिकविषैं अथवा कर्म नोकर्मविषैं ज्ञान नाहीं है। बहुरि ज्ञानविषैं क्रोधादिक अथवा कर्म नोकर्म नाहीं है। जातैं ज्ञानके अर क्रोधादिकके अर कर्म नोकर्मके परस्पर स्वरूपका अत्यंत विपरीतपणा है। तिनिका स्वरूपका अत्यंत विपरीतपणा है। तिन्िका स्वरूप एक होय नाहीं, तातैं परमार्थरूप आधाराधेय संबंधका शून्यपणा है। बहुरि जैसे ज्ञानका जाननक्रियारूप जाणपणास्वरूप है, तैसे क्रोधरूप क्रियापणास्वरूप नाहीं है। बहुरि जैसे क्रोधादिकका क्रोधपणा आदिक क्रिया-

पणा स्वरूप है, तैसे जाननक्रियारूप स्वरूप नाहीं है। कोई ही प्रकारकरि ज्ञानकूं क्रोधादिक्रियारूप परिणामस्वरूप स्थाप्या न जाय है। जातैं जाननक्रियाके अर क्रोधरूप क्रियाके स्वभावका भेदकरि प्रगट प्रतिभासमानपणा है। बहुरि स्वभावके भेदतैंहि वस्तूका भेद है, यह नियम है। तातैं ज्ञानकै अर अज्ञानस्वरूप क्रोधादिककै आधाराधेयभाव नाहीं है।

इहां दृष्टांतकरि विशेष कहे हैं—जैसा आकाशद्रव्य एक ही है, ताहि अपने बुद्धिविषैं स्थापि अर आधाराधेयभाव कल्पिये, तब आकाशसिवाय अन्य द्रव्य तिनिका तौ अधिकाररूप आरोपणाका निरोध भया। याहीतैं बुद्धिकै भिन्न आधारकी अपेक्षा तौ न रही। अर जब भिन्न आधारकी अपेक्षा नाहीं रही, तब बुद्धीमैं यह ही ठहरी, जो आकाश है सो एक ही है। सो एक आकाशहीविषैं प्रतिष्ठित है। आकाशका आधार अन्य द्रव्य नाहीं। आप आपहीकै आधार है। ऐसी भावना करनेवालेके अन्यका अन्यके आधाराधेयभाव नाहीं प्रतिभासे है। ऐसे ही जब एक ही ज्ञानकूं अपनी बुद्धिविषैं स्थापि आधाराधेयभाव कल्पिये, तब अवशेष अन्य द्रव्यनिका अधिरोप करनेका निरोध भया। यातैं बद्धीकै भिन्न आधारकी अपेक्षा नाहीं रहे है। अर भिन्न आधारकी अपेक्षा ही बुद्धिमैं न रही, तब एकज्ञानही एक ज्ञानविषैं प्रतिष्ठित ठहरया। ऐसी भावना करनेवालेके अन्यका अन्यके आधाराधेयभाव नाहीं प्रतिभासे है। तातैं ज्ञान ही है सो तौ ज्ञान ही विषैं है। अर क्रोधादिक हैं ते क्रोधादिकविषैं ही है। ऐसैं ज्ञानके अर क्रोधादिकके अर कर्मनोकर्मके भेदका ज्ञान है सो भलैप्रकार सिद्ध भया।

भावार्थ—उपयोग है सो तौ चेतनाका परिणमन ज्ञानस्वरूप है। अर क्रोधादिक भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादिक नोकर्म, यह सर्व ही पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, ते जड हैं, इनिके अर ज्ञानके प्रदेशभेद है, तातैं अत्यंत भेद है। तातैं उपयोग विषैं तौ क्रोधादिक तथा कर्म नोकर्म नाहीं है। बहुरि क्रोधादिक कर्मनोकर्मविषैं उपयोग नाहीं है। ऐसे इनिके परमार्थस्वरूप आधारआधेयभाव नाहीं है। अपना अपना आधाराधेयभाव आपआपविषैं है। ऐसे इनिके परस्पर



परमार्थतैं अत्यंत भेद है। ऐसे भेद जाने सो भेदविज्ञान है, सो भलैप्रकार सिद्ध होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयोरन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।

भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥२॥

अर्थ—यह निर्मल भेदज्ञान है सो उदयकूं प्राप्त होय है। सो याका निश्चय करनेवाले सत्पुरुषनिकूं संबोधन करि कहे हैं। जो सत्पुरुषहो! तुम याकूं पायकरि, अर अवर द्वितीय जो रागादिक भाव, तिनितैं रहित भये संते, एक शुद्धज्ञानघनका समूहकूं आश्रय करि, तिसमें लीन भये संते बडा आनंद मानूं। जातैं यह कहा करि उदय होय है? चैतन्यरूप ताकूं धारता संता तौ ज्ञान अर जडरूपताकूं धरता राग, तिनि दोऊनिके अज्ञानदशामैं एकपणासा दीखे हैं। तिनिका अंतरंगविषैं अनुभवके अभ्यासरूप बलकरि उत्कृष्ट विदारणकरि सर्वप्रकार विभागकरि उदय होय है।

भावार्थ—ज्ञान तौ चेतनास्वरूप है अर रागादि पुद्गलविकार जड है। सो अज्ञानतैं एक जडरूप भासे है। सो भेदविज्ञान जब प्रगट होय है, तब ज्ञानका अर रागादिकका भिन्नपणाका अंतरंग अनुभवके अभ्यासतैं प्रगट होय है। तब ऐसैं जाने है, जो ज्ञानका स्वभाव तौ जाननेमात्र ही है अर ज्ञानमें रागादिककी कलुषता मलिनता आकुलतारूप संकल्प विकल्प भासे हैं, सो ए सर्व पुद्गलके विकार हैं जड हैं। ऐसा ज्ञानका अर रागादिकका भेदका आस्वाद आवे है। सो यह भेदविज्ञान सर्व विभावभाव मेटनेकूं कारण होय है, अर आत्माकूं परमसंवरभावकूं प्राप्त करे है। तातैं सत्पुरुषनिकूं कहे हैं, जो याकूं पायकरि रागादिकतैं च्युत होय शुद्ध ज्ञानघन आत्माका आश्रय ले आनंदकूं प्राप्त होऊ। अब कहे हैं—जो ऐसैं यह भेदविज्ञान जिस काल ज्ञानके रागादि विकाररूप विपरीतपणाकी कणिकाकूं न प्राप्त करता अविचलित है, तिसकाल

ज्ञान है सो शुद्धोपयोग स्वरूपपणाकरि ज्ञानहीरूप केवल भया संता किंचिन्मात्र भी रागद्वेषमोह-भावकूं नाहीं प्राप्त होय है। तातैं यह ठहरी, जो भेदविज्ञानतैं शुद्धात्माकी प्राप्ति होय है। बहुरि शुद्धात्माकी प्राप्तीतैं राग द्वेष मोह जे आस्रवभाव तिनिका अभाव है लक्षण जाका ऐसा संवर होय है। आगे पूछे है, जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्धात्माकी प्राप्ति कैसी होय है? ताका उत्तर गाथामैं कहे हैं। गाथा—

जह कणय मग्गितवियं कणयसहावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥४॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥ ५ ॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तत्परित्यजति।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वम् ॥४॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी जानाति रागमेवात्मानम्।
अज्ञानतमोऽवच्छन्न आत्मस्वभावमजानन् ॥५॥ युग्मम् ॥

आत्मख्यातिः—यतो यस्यैव यथोदितभेदविज्ञानमस्ति स एव तत्सद्भावात् ज्ञानी सन्नेवं जानाति। यथा प्रचंडपावकप्रतप्तमपि सुवर्णं न सुवर्णत्वमपोहति तथा प्रचंडविपाकोपष्टब्धमपि ज्ञानं न ज्ञानत्वमपोहति, कारणसहस्रेणापि स्वभावस्यापोढुमशक्यत्वात्। तदपोहे तन्मात्रस्य वस्तुन एवोच्छेदात्। नचास्ति वस्तूच्छेदः सतो नाशासंभवात्। एवं जानंश्च कर्माक्रांतोऽपि न रज्यते न द्वेष्टि न मुह्यति किं तु शुद्धमात्मानमुपलभते। यस्य तु यथोदितं भेदविज्ञानं नास्ति स तदभावादज्ञानी सन्नज्ञानतमसाच्छन्नतया चैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावमजानन् रागमेवात्मानं मन्यमानो रज्यते द्वेष्टि मुह्यते च न जातु शुद्धमात्मानमुपलभते। ततो भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभः।

कथं शुद्धात्मोपलंभादेव संवरः? इति चेत्—

अर्थ—जैसें सुवर्ण अग्निकरि तप्त भया संता भी अपना तिस सुवर्णभावकूं नाहीं छोडे है, तैसें ज्ञानी कर्मके उदयकरि तप्तायमान भया भी अपना ज्ञानीपणा स्वभावकूं नाहीं छोडे है, ऐसें ज्ञानी जाने है। बहुरि अज्ञानी है सो रागहीकूं आत्मा जाने है। जातें अज्ञानी अज्ञानरूप अंधकारतें अवच्छन्न है, व्याप्त है। तातें आत्माका स्वभावकूं नाहीं जानता संता प्रवर्ते है।

टीका—जातैं जाकै जैसा कह्या तैसा भेदविज्ञान है, सो ही तिस भेदविज्ञानके सद्भावतैं ज्ञानी भया संता ऐसें जाने है—जैसें प्रचंड अग्निकरि तपाया भी सुवर्ण अपने सुवर्णपणा स्वभावकूं नाहीं छोडै, तैसें प्रचंड तीव्रकर्मका उदयकरि युक्त भया संता भी ज्ञानी है सो अपना ज्ञानपणाकूं नाहीं छोडे है। जातैं जो जाका स्वभाव है, सो हजारा कारण मिले तौऊ सो ताका स्वभावकूं छोडेनेकूं असमर्थ है। जो स्वभावकूं छोडै, तौ तिस छोडनेकरि तिस स्वभावमात्र जो वस्तु ताका ही अभाव होय; सो वस्तुका अभाव होय नाहीं, जातैं सत्ताका नाशका असंभव है। ऐसें जानता संता ज्ञानी है सो कर्मकरि व्याप्त है तौऊ रागरूप नाहीं होय है, द्वेषरूप नाहीं होय है, मोहरूप नाहीं होय है। तौ कैसा होय है? एक शुद्ध आत्माहीकूं पावे है। बहुरि जाकै जैसा कह्या तैसा भेदविज्ञान नाहीं है, सो तिस भेदविज्ञानके अभावतैं अज्ञानी भया संता अज्ञान-रूप अंधकारकरि आच्छादितपणाकरि चैतन्यचमत्कारमात्र आत्माका स्वभावकूं नाहीं जानता संता रागस्वरूप ही आत्माकूं मानता संता रागी होय है, द्वेषी होय है, मोही होय है, शुद्ध आत्माकूं कदाचित् भी नाहीं पावे है। तातैं यह ठहरया—जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्ध आत्माका पावना है।

भावार्थ—भेदविज्ञानतैं आत्मा ज्ञानी होय है, तब कर्मका उदय आवै ताकरि तप्तायमान होय तौऊ अपना ज्ञानस्वभावतैं छूटे नाहीं है। जातैं जो जाका स्वभाव है, सो, चाहो जेते कारण मिलो, स्वभावतैं छूटे नाहीं, जो स्वभावतैं छूटे तौ वस्तुका नाश होय, यह न्याय है। तातैं कर्मके उदयमें ज्ञानी रागी द्वेषी मोही नाहीं होय है। बहुरि जाकै भेदविज्ञान नाहीं है, सो अज्ञानी भया संता रागी द्वेषी मोही होय है। तातैं यह निश्चित है, जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्ध आत्माकी

प्राप्ति होय है। आगे पूछे है, जो शुद्ध आत्माकी प्राप्तिहीतैं संवर कैसा होय है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥६॥

शुद्धं तु विजानन् शुद्धमेवात्मानं लभते जीवः।
जानंस्त्वशुद्धमशुद्धमेवात्मानं लभते ॥६॥

आत्मख्यातिः—यो हि नित्यमेवाच्छिन्नधारावाहिना ज्ञानेन शुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते स ज्ञानमयाद् भावात् ज्ञानमय एव भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यग्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्य निरोधाच्छुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति। यो हि नित्यमेवाज्ञानेनाशुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते सोऽज्ञानमयाद्भावादज्ञानमयो भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यक्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्यानिरोधादशुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति। अतः शुद्धात्मोपलंभादेव संवरः।

अर्थ—शुद्ध आत्माकू जानता संता जीव है सो तौ शुद्ध ही आत्माकूं पावे है। बहुरि आत्माकूं अशुद्ध जानता संता जीव अशुद्ध ही आत्माकूं पावे है।

टीका—जो पुरुष तिस ही अविच्छेदरूप धारावाही ज्ञानकरि शुद्ध आत्माकूं पावता संता तिष्ठे है, सो पुरुष "ज्ञानमयभावतैं ज्ञानमय ही भाव होय है" ऐसा न्यायकरि आगामी कर्मका आस्रवणका निमित्त जे राग द्वेष मोह, तिनिका संतान परिपाटीरूप उत्पत्तीका निरोधतैं शुद्ध ही आत्माकूं पावे है। बहुरि जो जीव नित्य ही अज्ञानकरि अशुद्ध आत्माकूं पावता संता तिष्ठे है, सो जीव "अज्ञानमयभावतैं अज्ञानमय ही भाव होय है" ऐसा न्यायकरि आगामी कर्मका आस्रवणकूं निमित्त जे राग द्वेष मोह, तिनिका संतानरूप उत्पत्तीका निरोध न होनेतैं अशुद्ध ही आत्माकूं पावे है। यातैं शुद्ध आत्माका उपलंभहीतैं संवर होय है।

भावार्थ—आत्माकूं शुद्ध अनुभवता संता तौ शुद्धहीकूं पावे है, ताके आस्रव रुकि संवर होय

है । अर आपाकूं अशुद्ध अनुभवता संता अशुद्धहीकूं पावे है, ताके आस्रव रुके नाहीं है, संवर नाहीं होय है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीछन्दः

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयमात्मारामसात्मानमात्मा परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

केन प्रकारेण संवरो भवतीति चेत्—

अर्थ—जो आत्मा कोई प्रकार बडे भाग्यतैं धारावाही ज्ञानकरि निश्चल शुद्ध आत्माकूं प्राप्त होता संता तिष्ठे है, तो यहू आत्मा, उदय होता है आत्मारूप क्रीडावन जाकै, ऐसा अपना आत्माकूं परपरिणति जे राग द्वेष मोह, तिनिका निरोधतैं शुद्धहीकूं पावे है । ऐसे शुद्ध आत्माकी प्राप्तीतैं संवर होय है । इहां धारावाही ज्ञान कह्या, ताका अर्थ—यहू जो एक प्रवाहरूप ज्ञान होय, सो धारावाही है । सो याकी दोय रीति है । एक तौ मिथ्याज्ञान वीचिमैं न आवै ऐसा सम्यग्ज्ञान सो धारावाही है । बहुरि दूजा उपयोगका ज्ञेयके उपयुक्त होनेकी अपेक्षा है, सो जहां-तांई एकज्ञेयसूं उपयोग उपयुक्त होय रहै तहां तांई धारावाही कहिये । सो याकी स्थिति अंत-मुहूर्त ही है । पीछै विच्छेद होय है । सो जहां जैसी विवक्षा होय, तहां तैसा जानना । श्रेणी चढे तब शुद्ध आत्मासूं उपयुक्त होय धारावाही होय है । आगे पूछे है, जो, कौन प्रकारकरि संवर होय है ? ताका उत्तर कहे हैं । गाथा—

अप्पाणमप्पणोरुंभिदूण दो (सु) पुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणह्मिठिदो इच्छाविरदो य अण्णह्मि ॥७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ ८ ॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमइओ अणण्णमणो ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मणिम्मुक्कं ॥९॥

आत्मानमात्मना रुन्ध्वा द्विपुण्यपापयोगयोः ।
दर्शनज्ञाने स्थितः इच्छाविरतश्चान्यस्मिन् ॥७॥

यः सर्वसङ्गमुक्तो ध्यायत्यात्मानमात्मनात्मा ।
नापि कर्म नोकर्म चेतयिता चिन्तयत्येकत्वम् ॥८॥

आत्मानं ध्यायन्दर्शनज्ञानमयोऽनन्यमनाः ।
लभतेऽचिरेणात्मानमेव स कर्मनिर्मुक्तम् ॥९॥ त्रिकलम् ॥

आत्मख्यातिः—यो हि नाम रागद्वेषमोहमूले शुभाशुभयोगे वर्तमानः, दृढतरभेदविज्ञानावष्टंभेन, आत्मानं, आत्मनैवात्यंतं रुध्वा, शुद्धदर्शनज्ञानात्मद्रव्ये सुष्ठु प्रतिष्ठितं कृत्वा समस्तपरद्रव्येच्छापरिहारेण समग्रसंगविमुक्तो भूत्वा नित्यमेवातिनिष्प्रकंपः सन्, मनागपि कर्मनोकर्मणोरसंस्पर्शेण, आत्मीयमात्मानमेवात्मना ध्यायन् स्वयं सहजचेतयितृत्वादेकत्वमेव चेतयते । स खल्वेकत्वचेतनेनात्यंतविविक्तं चैतन्यचमत्कारमात्मानं ध्यायन् शुद्धदर्शनज्ञानमयमात्मद्रव्यमवाप्तः शुद्धात्मोपलंभे सति समस्तपरद्रव्यमयत्वमतिक्रांतः सन्, अचिरेणैव सकलकर्मविमुक्तमात्मानमवाप्नोति, एष संवरप्रकारः ।

अर्थ—जो जीव अपने आत्माकूं आपहीकरि दोय जे पुण्यपापरूप शुभाशुभयोग तिनिते रोकिकरि अर दर्शनज्ञानविषैं तिष्ठ्या हुवा अन्य वस्तुविषैं इच्छातैं रहित हुवा संता, जो सर्वपरिग्रहतैं रहित हुवा आत्माही करि आत्माकूं ध्यावे है अर कर्म नोकर्मकूं नाहीं ध्यावे है अर आप चेतनारूप है तिस स्वरूपकूं एकपणाकूं अनुभवे है—विचारे है, सो जीव दर्शनज्ञानमय भया अन्यमय नाहीं भया संता आत्माकूं ध्यावता संता थोरे ही कालमें कर्मकरि रहित अपने आत्माकूं पावे है।

टीका—निश्चयकरि जो जीव राग द्वेष मोह है मूल जाका ऐसा जो शुभाशुभ योग तिस

विषैं वर्तमान जो अपना आत्मा, ताकूं दृढतर भेदविज्ञानका अवलंबन करि आपहीकरि अत्यंत रोकिकरि, बहुरि शुद्धज्ञानदर्शनरूप जो अपना आत्मद्रव्य, ताविषैं भलेप्रकार प्रतिष्ठितकरि ठहरायकरि, अर समस्त परद्रव्यकी इच्छाका परिग्रहसूं रहित होयकरि, नित्य ही अतिनिष्प्रकंप निश्चल हुवा संता, किंचिन्मात्र भी कर्मको स्पर्श नाहीं करि, अर अपने आत्माहीकूं आत्माकरि ध्यावता संता, आप स्वयंचेतनेवाला है, सो अपना चेतनारूपहीकूं एकत्वकूं चेते है—अनुभवे है ज्ञानचेतनामय होय है। सो जीव निश्चयकरि एकपणाका अनुभव करनेकरि परद्रव्यतैं अत्यंत भिन्न चैतन्यचमत्कार मात्र अपना आत्माकूं ध्यावता संता, शुद्ध दर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्यकूं प्राप्त भया संता, शुद्ध दर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्यकूं शुद्धात्माका उपलंभ होते संते, समस्तपरद्रव्यमयपणातैं दूरि भया संता थोरे ही कालमें समस्तकर्मतैं रहित आत्माकूं पावे है। यहू संवरका प्रकार है।

भावार्थ—जो जीव पहले तो राग द्वेष मोहसूं मिले शुभाशुभ मनवचनकायके योग, तिनितैं भेदज्ञानके बलतैं अपने आत्माकूं चलने न दे, पीछै शुद्धदर्शनज्ञानमैं अपनास्वरूपविषैं निश्चल करै, अर समस्त बाह्याभ्यंतरके परिग्रहतैं रहित होयकरि, कर्मनोकर्मतैं भिन्न अपना स्वरूपविषैं एकाग्र होय ध्यान करता संता तिष्ठे, सो थोरे ही कालमें समस्त कर्मका नाश करे है। यह संवरका प्रकार है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥४॥

केनक्रमेण संवरो भवतीति चेत्—

अर्थ—जे पुरुष भेदविज्ञानकी शक्तिकरी अपना स्वरूपकी महिमाविषैं लीन हैं, तिनिकै निनियमतैं शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होय है। बहुरि तिस शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होते संते जे निश्चल जैसैं होय तैसैं समस्त अन्यद्रव्यनितैं दूरि तिष्ठे हैं, तिनिकै कर्मका मोक्ष कहिये अभाव होय है, सो

अक्षय होय है–फेरि कर्मबंध नाहीं होय है, आगे पूछे हैं, जो संवर कोनसे अनुक्रमकरि होय है ? ताका उत्तर कहिये हैं । गाथा–

नीचे लिखी दो गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई । तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है ।

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि ।
भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठोय णादोय ॥

उपदेशेन परोक्षरूपं यथा दृष्टा जानाति ।
भण्यते तथैव ध्रियते जीवो दृष्टश्च ज्ञातश्च ॥

तात्पर्यवृत्तिः–उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि यथा लोके परोक्षमपि देवतारूपं परोपदेशाल्लिखितं दृष्ट्वा कश्चिद् वदन्तो जानाति । भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठोय णादो य । तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते । कोसौ ? जीवः, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेति मनसा संप्रधारयति । तथा चोक्तं ।

कोविदिदिच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं ।
पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं ॥

कोविदितार्थः साधुः संप्रतिकाले भणेत् रूपमिदं ।
प्रत्यक्षमेव दृष्टं परोक्षज्ञाने प्रवर्तमानं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—अथ मतं भणिज्ज रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं । योसौ प्रत्यक्षेणात्मानं दर्शयति तस्य पार्श्वे पृच्छामो वयं । नैवं (?) । कोविदिदिच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज कोविदितार्थ साधुः, संप्रतिकाले ब्रूयात् ? न कोपि । किं ब्रूयात, न कोऽपि । किंतु रूवमिणं पच्चक्खमेवदिट्ठं इदमात्मस्वरूपं प्रत्यक्षमेव मया दृष्टं । चतुर्थकाले केवलिज्ञानिवत् । अपि तु नैवं कथभूतमिदमात्मस्वरूपं । परोक्खणाणे पवट्ठंतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षे श्रुतज्ञाने प्रवर्तमानं, इति ।

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावोय जोगोय ॥१०॥
हेदु अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ॥११॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जायदि णिरोहो ।
णो कम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ॥१२॥

तेषां हेतवः भणिताः अध्यवसानानि सर्वदर्शिभिः ।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च ॥१०॥
हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणोऽपि निरोधः ॥११॥

किंच विस्तरः यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनरूपं भावश्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते । तथापि इन्द्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षं । तेन कारणेन, आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति । केवलज्ञानापेक्षया परोक्षोऽपि भवति । सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति । किन्तु चतुर्थकालेऽपि केवलिनः, किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति ? तेपि दिव्यध्वनिना भाणित्वा गच्छन्ति । तथापि श्रवणकाले श्रोतृणां परोक्ष एव पश्चात्परमसमाधिकाले प्रत्यक्षो भवति । तथा, इदानीं कालेऽपीति भावार्थः । एवं परोक्षस्यात्मनः कथं ध्यानं क्रियते, इति प्रश्ने परिहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ।

पृष्ठ ३०४ की टिप्पणीके पहिले श्लोककी तात्पर्यवृत्तिके नीचे 'तथा चोक्तं' इसके आगेवाला श्लोक छूट गया है वह निम्न प्रकार है—

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तः स्वपरांतरं । जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरंतरं । अथ—

कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः ।
नोकर्मनिरोधेन च संसारनिरोधनं भवति ॥१२॥ ॥त्रिकलम्॥

आत्मख्यातिः—संति तावज्जीवस्य, आत्मकर्मैकत्वाशयमूलानि मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगलक्षणानि, अध्यवसानानि । तानि रागद्वेषमोहलक्षणस्यास्रवभावस्य हेतवः । आस्रवभावः, कर्महेतुः, कर्म, नोकर्महेतुः, नोकर्म, संसारहेतुः इति । ततो नित्यमेवायमात्मा, आत्मकर्मणोरेकत्वाध्यासेन मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगमयमात्मानमध्यवस्यति । ततो रागद्वेषमोहरूपमास्रवभावं भावयति । ततः कर्म, आस्रवति । ततो नोकर्म भवति ततः संसारः प्रभवति । यदा तु, आत्मकर्मणोर्भेदविज्ञानेन शुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मानं, उपलभते । तदा मिथ्यात्वाविरतियोगलक्षणानां, अध्यसानानां, आस्रवभावहेतूनां, भवत्यभावः । तदभावे रागद्वेषमोहरूपास्रवभावस्य, भवत्यभावः । तदभावेऽपि भवति कर्माभावः । तदभावेऽपि भवति संसाराभावः । इत्येष संवरक्रमः ।

अर्थ—तेषां कहिये पूर्वैं कहे जे आस्रव, राग द्वेष मोह, तिनिका हेतु सर्वज्ञ देव अध्यवसान कहे हैं । ते मिथ्यात्व अज्ञान अविरतभाव योग ये च्यारि कहे हैं । सो ज्ञानीके इनिका अभाव होतैं, नियमतैं आस्रवका निरोध होय है । सो आस्रवभावविना कर्मका भी निरोध होय है । वहुरि कर्मका अभावकरि नोकर्मका भी निरोध होय है । वहुरि नोकर्मका निरोधकरि संसारका निरोध होय है ।

टीका--प्रथम ही जीवके आत्मा अर कर्मका एकपणाका निश्चयरूप आशय है मूल कारण जिनिका ऐसे मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसान विद्यमान हैं ते राग द्वेष मोह हैं लक्षण जाका ऐसे आस्रवका कारण हैं । वहुरि आस्रवभाव है सो कर्मका कारण है । वहुरि कर्म है सो नोकर्मका कारण है । वहुरि नोकर्म है सो संसारका कारण है । तातैं आत्मा है सो नित्य ही आत्मा अर कर्मका एकपणाका निश्चयरूप आशयतैं मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगमय आत्माकूं निश्चयकरि माने है, तिस निश्चयतैं राग द्वेष मोहरूप जो आस्रवभाव ताहि भावे है । वहुरि तातैं कर्मका आस्रव होय है, वहुरि कर्मतैं नोकर्म होय है, वहुरि नोकर्मतैं संसार प्रगट

प्रवर्ते है। बहुरि जिसकाल आत्मा, आत्माका अर कर्मका भेदविज्ञान करि शुद्ध चैतन्यचमत्कार मात्र आत्माकूं पावे है तिसकाल मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसान आस्रव भावके कारण हैं, तिनिका आत्माकै अभाव होय है। अर मिथ्यात्व आदिका अभाव होतैं राग द्वेष मोहरूप आस्रवभावका अभाव होय है, अर राग द्वेष मोहका अभाव होतैं नोकर्मका अभाव होय है, अर नोकर्मका अभाव होतैं संसारका अभाव होय है। ऐसा यह संवरका अनुक्रम है।

भावार्थ—जीवकै जेतै आत्माका अर कर्मका एकपणेका आशय है—भेदविज्ञान नाहीं, तेतैं मिथ्यात्व अज्ञान अविरत योगरूप अध्यवसान विद्यमान हैं। तिनितैं रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव होय है, आस्रवभावतैं कर्म बंधे है, कर्मतैं नोकर्म शरीरादिक प्रगट होय हैं, नोकर्मतैं संसार है। बहुरि जिसकाल आत्माका अर कर्मका भेदविज्ञान होय है, तब शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होय है, तब मिथ्यात्वादि अध्यवसानका अभाव होय है, अर अध्यवसानका अभाव भये राग द्वेष मोहरूप आस्रवका अभाव होय है, आस्रवके अभावतैं कर्म नाहीं बंधे है, अर कर्मके अभावतैं नोकर्म नाहीं प्रगटे है, नोकर्मके अभावतैं संसारका अभाव होय है, ऐसा संवरका अनुक्रम जानना। अब, इस संवरका कारण प्रथम ही भेदविज्ञान कह्या, ताकी भावनाका उपदेश करे हैं। ताका कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

सम्पद्यते संवर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥५॥

अर्थ—जातैं यह संवर है सो निश्चयतैं साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वका उपलंभ कहिये पावनेतैं होय है। बहुरि शुद्धात्मतत्त्वका उपलम्भ है, सो आत्मा अर कर्मका भेद विज्ञानतैं होय है—कर्मकूं अर आत्माकूं न्यारे जाने तब आत्माकूं अनुभवै। तातैं सो भेद विज्ञान अतिशय करि भावने योग्य है। फेरि कहे हैं; जो, भेद विज्ञान कहां तांई भावना?

अनुष्टुप्छन्दः

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया । तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥६॥

अर्थ—यह भेद विज्ञान है ताहि निरन्तर धाराप्रवाहरूप जामैं विच्छेद न पडै ऐसैं तेतैं भावै, जेतैं ज्ञान है सो परभावनितैं छूटि करि अपने स्वरूपज्ञानही विषैं प्रतिष्ठित होय ठहरी जाय ।

भावार्थ—इहां ज्ञानका ज्ञान विषैं ठहरना दोय प्रकार जानना । एक तौ मिथ्यात्वका अभाव होय सम्यग्ज्ञान होय, फेरि मिथ्यात्व न आवै । बहुरि दूजा यह जो शुद्धोपयोगरूप होय ठहरै, ज्ञान अन्य विकाररूप न परिणमै । सो दोऊ प्रकार न बनै तेतैं निरन्तर भेद विज्ञानकी भावना राखनी । फेरि भेद विज्ञानकी महिमा कहे हैं ।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥७॥

अर्थ—जे केई सिद्ध भये हैं, ते इस भेदविज्ञानतैं भये हैं । बहुरि जे कर्मतैं बंधे हैं, ते तिसही भेदविज्ञानके अभावतैं बंधे हैं ।

भावार्थ—संसार सो आत्मा अर कर्मके एकताकी माननेतैं है, सो अनादितैं जेतैं भेदविज्ञान नाहीं है, तेतैं कर्मतें बंधे ही है । तातैं कर्मबंधका मूल भेदविज्ञानका अभाव ही है। जे बंधे हैं ते याहीके अभावतैं बंधे हैं । बहुरि जे सिद्ध भये हैं, ते भेदविज्ञान भये हीं भये हैं । तातैं प्रथम भेदविज्ञान ही मोक्षका कारण है । यहां ऐसा भी जानना, जो विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध तथा वेदांती वस्तूकूं अद्वैत कहे हैं, ते अद्वैतका अनुभवहीतैं सिद्धि कहे हैं, तिनिका भी इस भेदविज्ञानतैं सिद्धि कहनेतैं निषेध भया । जातैं सर्वथा अद्वैत वस्तुका स्वरूप नाही, अर जे माने हैं, तिनिका भेद-विज्ञान कहना बने नाहीं । भेदविज्ञान तौ वस्तु द्वैत होय तब कहना बनै । सो जीव अजीव दोय वस्तु मानैं, अर दोयका संयोग मानै, तब भेदविज्ञान बनै, यातैं स्याद्वादनिकै सर्व निर्बाध सिद्धि होय है । आगै संवरका अधिकार पूर्ण भया, सो या संवरका भये ज्ञान कैसा है ऐसे ज्ञानकी महिमाका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भाद्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८॥

अर्थ—यह ज्ञान है सो ज्ञानहीविषैं निश्चल नियमरूप उदयकूं प्राप्त भया । कैसे अनुक्रमतैं उदय भया ? प्रथम तौ भेदज्ञानका उदय होना, ताका अभ्यास भया । बहुरि तिस भेदज्ञानके अभ्यासतैं शुद्धतत्त्वका उपलंभ भया । बहुरि तिस शुद्धतत्त्वके उपलंभतैं रागके समूहका प्रलय किया । बहुरि रागग्रामका प्रलय करनेतैं आस्रवके रुकनेतैं कर्मनिका संवर भया । बहुरि कर्मका संवर होने करि परम उत्कृष्ट संतोषकूं धारता संता, ज्ञान प्रगट भया । बहुरि कैसा है ज्ञान ? निर्मल है आलोक कहिये प्रकाश जाका, क्षयोपशमके दोषतैं मलिनता थी सो अब नाहीं है । बहुरि अम्लान है, रागादिकतैं कलुषता थी सो अब नाहीं है, तातैं निर्मल है । बहुरि कैसा है ? एक है, क्षयोपशम करि भेद थे, ते अब नाहीं है । बहुरि शाश्वता है उद्योत जाका, क्षयोपशमज्ञानमें क्रमतैं होना था, सो अब नाहीं है । ऐसा रंगभूमिमें संवरका स्वांग प्रवेश भया था ताकूं ज्ञान जानि लिया, सो नृत्य करि रंगभूमितैं निकसि गया ।

सवैया तेईसा

भेदविज्ञानकला प्रगटै तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही ।
राग द्वेष विमोह सबही गलि जाय इमै शठ कर्म रुका ही ॥
उज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहुतोष धरै परमातम माही ।
यो मुनिराज भली विधि धारत केवल पाय सुखी शिव जाही ॥१॥

ऐसे इस समयसार ग्रन्थकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं पांचमां संवर अधिकार पूर्ण भया ।

इहां तांई गाथा १९२ भई । कलश १३२ भये ।

अथ निर्जराधिकारः ।

दोहा—रागादिकक्‌ं मेटि करि नवे बंध हति संत । पूर्व उदयमें सम रहे नमूं निर्जरावंत ॥१॥

इहां निर्जरा प्रवेश करे है । भावार्थ—जैसे नृत्यके अखाडेमें नृत्य करनेवाला स्वांग बनाय प्रवेश करे है, तैसे इहां तत्त्वनिका नृत्य है । तहां रंगभूमिमें निर्जराका स्वांगका प्रवेश है, तहां प्रथम ही सर्व स्वांग देखि करि यथार्थ जाननेवाला सम्यग्ज्ञान है ताकूं टीकाकार मंगलरूप जानि प्रगट करे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्छति ॥१॥

अर्थ—प्रथम तौ उत्कृष्ट संवर है, सो रागादिक जे आस्रव तिनिकै रोकनेतें, अपनी धुरा जो सामर्थ्यकी हद, ताहि धारिकरि आगामी समस्त ही कर्म, ताकूं मूलतें दूरी ही रोकता संता तिष्ठया । अबै इस संवर भये पहलै बंधरूप भया था जो कर्म, ताहि दग्ध करनेकूं निर्जरारूप अग्नि फैले है, सो इस निर्जराके प्रगट होनेतैं, ज्ञानज्योति है सो आवरण रहित भया संता, फेरि रागादि भावनिकरि मूर्छित नाहीं होय है, सदा निरावरण रहे है ।

भावार्थ—संवर भये पीछे नवीन कर्म बंधे नाहीं, अर पूर्वे बंधे थे, ते निर्जरे, तव ज्ञानका आवरण दूरि होय, तव ज्ञान ऐसा है, सो फेरि रागादिरूप न परिणमे, सदा प्रकाशरूप रहे । आगे निर्जराका स्वरूप कहे हैं । गाथा–

उवभोजमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिठ्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥१॥

उपभोगमिन्द्रियैर्द्रव्याणामचेतनानामितरेषाम् ।
यत्करोति सम्यग्दृष्टिस्तत्सर्वं निर्जरानिमित्तम् ॥१॥

आत्मख्यातिः—विरागस्योपभोगो निर्जरायैव रागादिभावानां सद्भावेन मिथ्यादृष्टेरचेतनान्यद्रव्योपभोगो बंधनिमित्तं स्यात् । एतेन द्रव्यनिर्जरास्वरूपमावेदितं ।

अथ भावनिर्जरास्वरूपमावेदयति—

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव जो इन्द्रियनिकरि चेतन तथा अचेतन जे द्रव्य, तिनिका उपभोग करे है, तिनिकूं भौगवे है, सो सर्व ही निर्जराके निमित्त है ।

टीका–विरागीका उपभोग है सो निर्जराके अर्थी ही है । जातैं मिथ्यादृष्टिके रागादिभावनिके सद्भावतैं चेतन अचेतन द्रव्यका उपभोग है सो बंधनिमित्त ही होय है । इस कथनकरि द्रव्य–निर्जराका स्वरूप कह्या ।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टीकूं ज्ञानी कह्या है, सो ज्ञानीके राग द्वेष मोहका अभाव कह्या है । सो विरागीके इंद्रियनिकरि भोग होय है, सो तिस भोगकी सामग्रीकूं यह सम्यग्दृष्टि ऐसा जाने है-जो ये परद्रव्य हैं मेरा इनिका किछू नाता नाहीं, अर कर्मके उदयके निमित्तकरि इनिका मेरा संयोग-वियोग है, अर चारित्रमोहका उदय आय पीडा करे है । सो बलहीन है, जेतैं सही न जाय है । तातैं जैसे रोगी रोगकूं भला न जानै अर पीडा न सही जाय, तब ताका औषधि आदि करि इलाज करै, तैसे विषयरूप भोगोपभोगसामग्रीतैं इलाज करे है । अर कर्मके उदयतैं तथा भोगोपभोग सामग्रीतैं राग द्वेष मोह नाहीं है । तातैं सम्यग्दृष्टि ऐसे विरागी है, सो याके भोग उपभोग है, सो निर्जराहीके निमित्त है । कर्म उदय होय है, सो अपना रस दे क्षरि जाय है । उदय आये पीछे द्रव्यकर्मका सत्त्व रहै नाहीं, निर्जरै ही । अर सम्यग्दृष्टीकै तिस कर्मउदयसूं राग-द्वेष मोह नाहीं । उदय आयाकूं जानि ही ले है अर फलकूं भौगवे है । सो राग द्वेष मोह विना भोगवे है, तातैं कर्म आस्रवे नाहीं, आस्रवविना सम्यग्दृष्टि विरागीकै आगामी बंध नाहीं, ऐसैं

आगामी वंध न भया तब केवल निर्जरा ही भई। तातैं सम्यग्दृष्टि विरागीका भोगोपभोग निर्जराका ही निमित्त कह्या। अर पूर्वकर्म उदय आय ताका द्रव्य क्षरि गया सो द्रव्यनिर्जरा है। आगे भावनिर्जराका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

दव्वे उपभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च।
ते सुहदुःखमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥२॥

द्रव्ये, उपभुज्यमाने नियमाज्जायते सुखं च दुःखं च।
तत्सुखदुःखमुदीर्णं वेदयते अथ निर्जरां याति ॥२॥

आत्मख्यातिः—उपभुज्यमाने सति हि परद्रव्ये तन्निमित्तः सातासातविकल्पानतिक्रमणेन वेदनायाः सुखरूपो दुःखरूपो वा नियमादेव जीवस्य भाव उदेति। स तु यदा वेद्यते तदा मिथ्यादृष्टेः रागादिभावानां सद्भावेन बंधनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोप्यजीर्णः सन् बंध एव स्यात्। सम्यग्दृष्टेस्तु रागादिभावाभावेन बंधनिमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणो प्यजीर्णः सन्निर्जरैव स्यात्।

अर्थ—परद्रव्यकूं उपभोगमें आवते संते भोगतें संते सुख अथवा दुःख नियमतें उपजे है। तिस उदय आया सुखदुःखकूं वेदे है, अनुभवे है, भोगवे है, आस्वादमें आवे है। सो आस्वाद देकरि क्षरि जाय है, निर्जरा होय चुक्या गया, सो फेरि नाहीं आवे है।

टीका—परद्रव्य उपभोगमें आवता संता भोगवता संता जीवके सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियम थकी उदय होय है, उपजे है। कैसा है यह भाव? परद्रव्य है, निमित्त जाकूं ऐसा है। जातैं वेदनाके साता तथा असाता ऐसे दोय ही रूपपणो है, इनि दोऊ भावकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्ते है, सो इस भावकूं जिसकाल जीवकरि वेदिये है, तिसकाल मिथ्यादृष्टीके तौ तिसतैं रागादिभावनिका सद्भावकरि आगामी कर्मके बंधके निमित्त होयकरि निर्जरारूप होता भी निर्जरारूप नाहीं कहिये, आगामी बंधकरि निर्जरारूप भया, तातैं बंध ही कहिये। बहुरि सम्यग्दृष्टीके तिस

सुखदुःखकी वेदनातैं रागादिक भावनिका अभावकरि आगामी बंधकै निमित्त नाहीं होय करि केवल निर्जरै ही है, सो निर्जरारूप भया संता निर्जरा ही कहिये, बंध न कहिये।

भावार्थ--कर्मका उदय आये सुखदुःखभाव नियमकरि उपजे है। तिसकूं वेदते संते मिथ्यादृष्टीकै तौ रागादिकके निमित्ततै आगामी बंधकरि निर्जरै है। तातैं निर्जरै काहेकी ? बंध ही किया। बहुरि सम्यग्दृष्टीकै तिस वेदनासूं रागादिकभाव नाहीं हैं, तातै आगामी बंध न होय, तब केवल निर्जरा ही भई। ऐसैं भावरूप निर्जरा होय है। याका अर्थकी अगिले कथनकी सूचनिकारूप कलशरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

तद् ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्य च वा किल। यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥२॥

अथ ज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति—

अर्थ—जो कर्मकूं भोगवता संता भी कर्मकरि नाहीं बंधे है, सो यह कोई आश्चर्यरूप सामर्थ्य ज्ञानका ही है, अथवा विरागीका ही है। अज्ञानीकूं तौ आश्चर्यका उपजावनहारा है। ज्ञानी यथार्थ जाने है। आगे ज्ञानका सामर्थ्यकूं दिखावे हैं। गाथा—

जह विसमुवभुज्जंता विज्जापुरिसा ण मरणमुवयंति।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झदे णाणी ॥३॥

यथा विषमुपभुंजानाः विद्यापुरुषा न मरणमुपयांति।
पुद्गलकर्मण उदयं तथा भुंक्ते नैव बध्यते ज्ञानी ॥३॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चिद्विषवैद्यः परेषां मरणकारणं विषमुपभुञ्जानोऽपि, अमोघविद्यासामर्थ्येन निरुद्धतच्छक्तित्वान्न म्रियते, तथा अज्ञानिनां रागादिभावसद्भावेन बंधकारणं पुद्गलकर्मोदयमुपभुंजानोऽपि अमोघज्ञानसामर्थ्यात् रागादिभावानामभावे सति निरुद्धतच्छक्तित्वात् न बध्यते ज्ञानी।

अथ वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति—

अर्थ—जैसें वैद्यपुरुष है सो विषकूं उपभोगता संता भी मरणकूं नाहीं प्राप्त होय है, तैसें पुद्गलकर्मका उदयकूं ज्ञानी भोगवे है, तौऊ बंधे नाहीं है।

टीका—जैसें कोई विषवैद्य है, सो अन्यकूं मरणका कारण जो विष, ताकूं भोगवता भी अमोघविद्या कहिये अचूक सफल मंत्र यंत्र औषध आदिकी विद्याके सामर्थ्यतें रोकी है तिस विषकी मारणशक्ति जानें, तिसपणातैं मरणकूं नाहीं प्राप्त होय है। तैसें पुद्गलकर्मका उदय है सो अज्ञानीनिकै रागादिभावनिका सद्भावकरि बंधका कारण है, ताकूं ज्ञानी भोगवता संता भी अमोघ अचूक सत्यार्थज्ञानके सामर्थ्यतें रागादि भावनिका अभाव होते संते रोकी है तिस कर्मके उदयकी आगामी बंध करनेकी शक्ति जानै, तिसपणाकरि आगामी कर्मकरि नाहीं बंधे है।

भावार्थ—जैसें वैद्य अपनी विद्याकी सामर्थ्यकरि विषकी मारनेकी शक्तिका अभाव करे है, ताकूं खावै तौऊ तिसतैं मरे नाहीं। तैसें ज्ञानीके ज्ञानकी सामर्थ्य ऐसी है, जो कर्मका उदयकी बंध करनेकी शक्ति रोके है। तातैं तिसके कर्मका उदय भोगमें आवै तौऊ आगामी बंध नाहीं करे है। यह सम्यग्ज्ञानकी सामर्थ्य है। आगे वैराग्यका सामर्थ्य दिखावे हैं। गाथा—

जह मज्जं पिबमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणीवि ण वज्झदि तहेव ॥४॥

यथा मद्यं पिबन् अरतिभावेन माद्यति न पुरुषः।
द्रव्योपभोगे अरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव ॥४॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित्पुरुषो मैरेयं प्रति प्रवृत्ततीव्रारतिभावः सन् मैरेयं पिबन्नपि तीव्रारतिसामर्थ्यान्न माद्यति तथा रागादिभावानामभावेन सर्वद्रव्योपभोगं प्रति प्रवृत्ततीव्रविरागभावः सन् विषयानुपभुञ्जानोऽपि तीव्रविरागभावसामर्थ्यान्न बध्यते ज्ञानी।

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष मद्यकूं तीव्र अरतिभावकरि विनाप्रीति पीवता संता मद रूप न होय है--मतवाला न होय है, तैसैं ज्ञानी द्रव्यके उपभोगविषैं अरत कहिये तीव्र रागरहित भया संता कर्मनिकरि नाहीं बंधे है।

टीका—जैसैं कोई पुरुष मदिराप्रति प्रवर्त्या है तीव्र अरतिभाव जाका ऐसा भया संता मदिराकूं पीवता संता भी तीव्र अरतिभावकी सामर्थ्यतैं मतवाला नाहीं होय है, तैसैं ज्ञानी भी रागादिभावनिके अभावकरि सर्व द्रव्यका उपभोग प्रति प्रवर्त्या है तीव्र विरागभाव जाका ऐसा भया संता भी विषयनिकूं भोगता संता, तीव्र विरागभावके सामर्थ्यतैं कर्मनिकरि नाहीं बंधे है।

भावार्थ—यह वैराग्यका सामर्थ्य है, जो विषयनिकूं सेवता संता भी कर्मनिकरि नाहीं बंधे है। अब इस अर्थका कळशरूप काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यः स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात् सेवकोऽपि तदसावसेवकः॥ ३ ॥

अथैतदेव दर्शयति—

अर्थ—यह पुरुष है सो विषयनिकूं सेवते संते भी जो विषयसेवनेका निजफल है, ताको नाहीं पावे है। सो ज्ञानके विभवका अर विरागताका बलतैं यह विषयनिका सेवनहारा है, तौऊ सेवनहारा नाहीं है।

भावार्थ—ज्ञानका अर विरागताका कोई अचिंत्य सामर्थ्य ऐसा ही है, जो इंद्रियनिकरि विषयनिकूं सेवे है, तौऊ ताकूं सेवनहारा न कहिये। जातैं विषयसेवनका सामान्य निजफल संसार है। सो ज्ञानी वैरागीके मिथ्यात्वके अभावतैं संसारका भ्रमणरूप फल नाहीं होय है। आगै इस ही अर्थकूं प्रगट दृष्टांतकरि दिखावे है। गाथा—

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि ।
पगरणचेट्ठा कस्सवि णयपायरणोत्ति सो होदि ॥५॥

सेवमानोऽपि न सेवते, असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित् ।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति सा भवति ॥५॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित् प्रकरणे व्याप्रियमाणोपि प्रकरणस्वामित्वाभावात्, न प्राकरणिकः । अपरस्तु तत्राव्याप्रियमाणोऽपि तत्स्वामित्वात्प्राकरणिकः । तथा सम्यग्दृष्टिः पूर्वकर्मोदयसंपन्नान् विषयान् सेवमानोऽपि रागादिभावानामभावेन विषयसेवनफलस्वामित्वाभावादसेवक एव । मिथ्यादृष्टिस्तु विषयानसेवमानोऽपि रागादिभावानां सद्भावेन विषयसेवनफलस्वामित्वात्सेवकः ।

अर्थ—कोई तौ विषयनिकूं सेवता संता भी है, तौऊ भी न सेवे है, ऐसा कहिये है । बहुरि कोई नाहीं सेवता संता है, तौऊ सेवनहारा है, ऐसा कहिये है । जैसे कोई पुरुषके कोई कार्यसंबंधी प्रकरणकी चेष्टा तौ है, तिस प्रकरणसंबंधी सर्व क्रिया करे है, तौऊ किसीका कराया करे है, आप तिसका स्वामी नाहीं है, ताकूं प्राकरण कहिये कार्यका करनेवाला है, ऐसा न कहिये ।

टीका—जैसे कोई पुरुष किसी कार्यका प्रकरणक्रियाविषैं व्यापाररूप होय प्रवर्तें है, तिससंबंधी सर्व क्रिया करे है, तौऊ तिस कार्यका प्रकरणका स्वामी कोई और है, ताका कराया करे है । तातैं प्रकरणका स्वामीपणाका अभावतैं प्राकरणिक कहिये करणवाला नाहीं है । बहुरि अन्य कोई तिस प्रकरणविषैं व्यापाररूप प्रवर्तता नाहीं है, तिस कार्यसंबंधी क्रियाकूं नाहीं करे है, तौऊ तिसकार्यका स्वामीपणातैं प्राकरणिक कहिये तिस प्रकरणका करनेवाला कहिये है । तैसे ही सम्यग्दृष्टि है सो पूर्वैं साचे थे जे कर्म, तिनिका उदयकरि व्याप्त भये जे इंद्रियनिके विषय तिनिकूं सेवता संता है, तौऊ रागादिक भावनिके अभावकरि विषयसेवनका फलका स्वामीपणाका अभावतैं सेवनेवाला नाहीं है । बहुरि मिथ्यादृष्टि है सो विषयनिकूं नाहीं सेवता संता भी रागा-

दिक भावनिका सद्भावकरि विषय सेवनेका फलका स्वामीपणातैं विषयनिका सेवनेवाला ही कहिये है ।

भावार्थ—जैसैं कोई व्यापारी धनका धनी काहूकूं हाटीपरि चाकर राख्या, सो हाटीका काम व्यापार विणज देना लेना सर्व चाकर करे है, अर धनी अपने घर बैठा रहे है, हाटीसंबंधी कार्यकूं नाहीं करे है । तहां विचारिये इस हाटीके तोटे नफेका स्वामी कोन है ? तहां परमार्थ यह है–जो हाटीका कार्यसंबंधी तोटा नफाका स्वामी तौ वो धनका धनी है, जाकर व्यापारादिक क्रिया करे है, तौऊ स्वामीपणाका अभावतैं तिसका फलका भोक्ता नाहीं है । अर धनका धनी किछू व्यापारादिक नाहीं करे है, तौऊ तिसका स्वामीपणातैं तोटा नफाका फलका भोक्ता है । तैसैं संसारमें साहकी ज्यौं तौ मिथ्यादृष्टि जानना अर चाकरको ज्यौं सम्यग्दृष्टि जानना । अब इस अर्थका समर्थनरूप सम्यग्दृष्टीके भावनिकी प्रवृत्तिका कळशरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥६॥

सम्यग्दृष्टिः विशेषेण स्वपरावेवं तावज्जानाति—

अर्थ—सम्यग्दृष्टीकै नियमतैं ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति होय है । जातैं यह सम्यग्दृष्टि अपना वस्तुपणा यथार्थस्वरूप ताका अभ्यास करनेकूं अपना स्वरूपका ग्रहण अर परका त्यागका विधि करि, यह तौ अपना आत्मस्वरूप है अर यह परद्रव्य है ऐसा दोऊका भेद परमार्थकरि जानि, अर आपविषैं तौ तिष्ठे है, अर परद्रव्यतैं सर्व प्रकार रागके योगतैं विरक्त होय है । सो यह रीति ज्ञानवैराग्यकी शक्तोविना होय नाहीं । आगै इस काव्यका अर्थरूप गाथा है । तहां कहे हैं सम्यग्दृष्टि प्रथम ही आपकूं अर परकूं सामान्यकरि तौ ऐसैं जाने है । गाथा—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥६॥

उदयविपाको विविधः कर्मणां वर्णितो जिनवरैः ।
न तु ते मम स्वभावाः ज्ञायकभावस्त्वहमेकः ॥६॥

आत्मख्यातिः—ये कर्मोदयविपाकप्रभवा विविधा भावा न ते मम स्वभावाः । एष टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावोहं ।

कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत्—

अर्थ—कर्मनिका उदयका विपाक कहिये रस है सो अनेकप्रकार जिनेश्वर देव कह्या है । ते कर्मविपाकतैं भये भाव मेरा स्वभाव नाहीं है । मैं तौ एक ज्ञायक स्वभाव स्वरूप हौं ।

टीका—जे कर्मके उदयके रसतैं उपजे अनेक प्रकार भाव ते मेरा स्वभाव नाहीं हैं । मै तौ यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभाव हूं । ऐसैं सामान्यकरि सर्व ही कर्मजन्य भावनिकूं सम्यग्दृष्टि पर जाने है । आपकूं एक जाननेवाला ही जाने है, ऐसैं सामान्यकरि जानना भया । आगे कहे हैं, सम्यग्दृष्टि आप अर परकूं विशेषकरि ऐसैं जाने है । गाथा—

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झभावो जाणगभावो दु अहमिक्को ॥७॥

पुद्गलकर्म क्रोधस्तस्य विपाकोदयो भवति एषः ।
नत्वेष मम भावः, ज्ञायकभावः खल्वहमेकः ॥७॥

आत्मख्यातिः—अस्ति किल रागो नाम पुद्गलकर्म तदुदयविपाकप्रभवोयं रागरूपो भावः, न पुनर्मम स्वभावः । एष टङ्कोत्कीर्णज्ञायकस्वभावोहं । एवमेव च रागपदपरिवर्तनेन द्वेषमोहक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशा अन्यान्यप्यूह्यानि । एवं च सम्यग्दृष्टिः स्वं जानन् रागं मुंचंश्च नियमाज्ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति ।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि ऐसैं जाने है, जो राग है सो पुद्गलकर्म है, ताका विपाकका उदय है, मेरे अनुभवमें रागरूप प्रीतिरूप आस्वाद होय है, सो है, सो यह मेरा भाव नाहीं है। जातैं निश्चयकरि मैं तौ एक ज्ञायकभावस्वरूप हौं।

टीका—निश्चयकरि राग नामा पुद्गलकर्म है, तिस पुद्गलकर्मके उदयके विपाककरि निपज्या यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर रागरूप भाव है, सो यह मेरा स्वभाव नाहीं है, मैं तौ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वरूप हौं। ऐसैं सम्यग्दृष्टि विशेषकरि आपापरकूं जाने है। इहां गाथामैं परभावका

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो।
परदव्वाणुवओगो णदु देहो हवदि अण्णाणी॥

कथमेष तव न भवति विविधः कर्मोदयफलविपाकः।
परद्रव्याणामुपयोगो न तु देहो भवति अज्ञानी॥

तात्पर्यवृत्तिः—कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो कथमेष विविधकर्मोदयफलविपाकस्तवरूपं न भवतीति केनापि पृष्टः तत्रोत्तरं ददाति परदव्वाणुवओगो निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणस्वशुद्धात्मद्रव्यात्पृथग्भूतानि परद्रव्याणि यानि कर्माणि जीवे लग्नानि तिष्ठन्ति तेषामुपयोग उदयोयं, औपाधिकस्फटिकस्य परोपाधिवत्। न केवलं भावक्रोधादि ममस्वरूपं न भवति, इति णदु देहो हवदि अण्णाणी देहोऽपि मम स्वरूपं न भवति हु स्फुटं कस्मादिति चेत्, अज्ञानी जडस्वरूपो यतः कारणात्, अहं पुनः, अनन्तज्ञानादिगुणस्वरूप इति।

अर्थ—किसीने सम्यग्दृष्टीसे प्रश्न किया कि—यह जो नाना कर्मों के उदयसे फलविपाक होता है वह तेरा स्वरूप क्यों नहीं है तो उसका उत्तर यह है कि—निर्विकार परमाह्लाद स्वरूप शुद्ध आत्मद्रव्यसें वे कर्मविपाक भिन्न हैं इसलिये वे मेरे स्वरूप नही है। यह ही नहीं किंतु यह जो मेरा देह—शरीर है वह भी अज्ञानी होनेके कारण ज्ञानस्वरूपी मुझसे सर्वथा भिन्न है।

विशेष राग कह्या है, तैसें ही रागकी जायगां पद पलटनेकरि द्वेष मोह क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ए पद धरि सोलह सूत्र व्याख्यान करने। बहुरि इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारणे । याप्रकार सम्यग्दृष्टि आपकूं जानता संता, बहुरि रागकूं छोडता संता, नियमतैं ज्ञानवैराग्यकरि युक्त होय है। आगैं इस ही अर्थकूं सूचती गाथा कहे हैं। गाथा--

एवं सम्माइट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुअदि तच्चं वियाणंतो ॥८॥

एवं सम्यग्दृष्टिः आत्मानं जानाति ज्ञायकस्वभावं।
उदयं कर्मविपाकं च मुंचति तत्त्वं विजानन् ॥८॥

आत्मख्यातिः—एवं सम्यग्दृष्टिः सामान्येन विशेषेण च परस्वभावेभ्यो भावेभ्यो सर्वेभ्योऽपि विविच्य टंकोत्कीर्णैक-ज्ञायकस्वभावमात्मनस्तत्त्वं विजानाति। तथा तत्त्वं विजानंश्च स्वपरभावोपादानापोहननिष्पाद्यं स्वस्य वस्तुत्वं प्रथयन् कर्मोदयविपाकप्रभवान् भावान् सर्वानपि मुञ्चति। ततोयं नियमात् ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति।

अर्थ—ऐसैं सम्यग्दृष्टि आपकूं ज्ञायकस्वभाव जाने है अर कर्मका उदयकूं कर्मका विपाक जानि ताकूं छोडे है। कैसा भया संता ? तत्त्व कहिये वस्तूका यथार्थस्वरूप ताकूं जानता संता प्रवर्ते है।

टीका—याप्रकार सम्यग्दृष्टि है सो सामान्यकरि तथा विशेषकरि सर्व ही परभावनितैं भिन्न होयकरि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभाव स्वभावरूप आत्माका तत्त्वकूं नीके जाने है। बहुरि तिस प्रकार तत्त्वकूं नीके जानता संता स्वभावका ग्रहण अर परभावका त्यागकरि निपजने योग्य जो अपना वस्तुपणा, ताहि विस्तारता फैलावता संता कर्मका उदयके विपाककरि निपजे जे भाव, तिनि सर्वनिकूं छोडे है तातैं यह सम्यग्दृष्टि नियमतैं ज्ञानवैराग्यकरि संयुक्त होय है, यह सिद्ध भया।

भावार्थ—जब आपकूं तौ ज्ञायकभावस्वरूप सुखमय जाने, अर कर्मके उदयकरि भये भावनिकूं आकुलतारूप दुःख जाने तब ज्ञानरूप रहना, अर परभावनितैं विरागता होय ही होय, यह प्रगट अनुभवगोचर है, यह ही सम्यग्दृष्टिका चिन्ह है। आगे कहे हैं जो ऐसें न होय अर परद्रव्यनितैं आसक्ततारूप रागी होय, अर सम्यग्दृष्टिपणाका अभिमान करे है, सो काहेका सम्यग्दृष्टि ? वृथा सम्यग्दृष्टिपणाका अभिमान करे है ऐसें काव्यमें कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्यादित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥५॥

कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत्—

अर्थ—जे पर द्रव्यके विषैं रागद्वेषमोहभावकरि तौ संयुक्त हैं अर आपकूं ऐसें माने हैं, जो मैं सम्यग्दृष्टि हौं, मेरे कदाचित् कर्मका बन्ध नाहीं होय है, शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिकै बन्ध नाहीं कह्या है, ऐसैं मानिकरि उत्तान कहिये गर्वसहित उंचा किया है अर हर्ष सहित उत्पुलक कहिये रोमांचरूप भया हे मुख जिनिका ऐसे हैं, ते महाव्रतादि आचरण करो तथा समिति कहिये वचन विहार आहारकी क्रियाविषैं यत्नतैं प्रवर्तना, तिसकी परता कहिये उत्कृष्टता ताकूं भी आलम्बन करौ, ते ऐसे प्रवर्तते भी पापी मिथ्यादृष्टि ही हैं। जातैं आत्माका अनात्माका ज्ञानतैं रहित है, तातैं सम्यक्त्वतैं रीते हैं, तिनिकै सम्यक्त्व नाहीं है।

भावार्थ—जो आपकूं सम्यग्दृष्टि माने अर परद्रव्यतैं राग होय, तौ ताकै सम्यक्त्व काहेका ? व्रतसमिति पाले तौऊ आपापरका ज्ञान विना पापी ही है। अर आपकै बन्ध न होना मानि स्वच्छन्द प्रवर्तै, तौ काहेका सम्यग्दृष्टि ? तातैं चारित्रमोहका रागतैं बन्ध तौ यथाख्यातचारित्र जेते न होय तेते होय ही है। सो जेते राग रहै तेते सम्यग्दृष्टि अपनी निंदा गर्हा करता ही रहे है, ज्ञान होने मात्रतैं तौं बन्धतैं छूटना नाहीं, ज्ञान भये पीछे तिसहीमें लीनरूप शुद्धोपयोगरूप

चारित्रतैं बन्धन कटे है। तातैं राग छतै बन्ध न होना मानि स्वच्छन्द होना तो मिथ्यादृष्टि ही है। इहां कोई पूछै व्रतसमिति तौ शुभकार्य हैं, तिनिकूं पालतैं पापी क्यों कहै? ताका समाधान—जो सिद्धांतमें पाप मिथ्यात्वहीकूं कह्या है, जहां तांई मिथ्यात्व रहै, तहां तांई शुभ तथा अशुभ सर्वही क्रियाकूं अध्यात्मविषैं परमार्थकरि पाप ही कहिये, अर व्यवहारनयकी प्रधानतामें व्यवहारी जीवनिकूं अशुभ छुडाय शुभमें लगावनेकूं कथंचित् पुण्य भी कहिये हैं, स्याद्वादमतविषैं विरोध नाहीं।

बहुरि कोई पूछै परद्रव्यसूं राग रहै जेतै मिथ्यादृष्टि कहै, सो यामैं समझें नाहीं, अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकै चारित्रमोहका उदयतैं रागादिभाव होय हैं, ताकै सम्यक्त्व कैसे है? ताका समाधान---जो इहां मिथ्यात्वसहित अनन्तानुबन्धीका राग प्रधानकरि कह्या है। जातैं आपापरका ज्ञान श्रद्धानविना परद्रव्य तथा तिसके निमित्ततैं भये भाव, तिनिविषैं आत्मबुद्धि होय तथा प्रीति अप्रीति होय तब जानिये याकै भेदज्ञान भया नाहीं। जो मुनिपद लेकरि व्रतसमिति भी पाले हैं, तहां परजीवनिकी रक्षा तथा शरीर सम्बन्धी यत्नतैं प्रवर्तना अपने शुभभाव होना इत्यादि परद्रव्य सम्बन्धी भावनिकरि अपने मोक्ष होना मानै, अर परजीवनिका घात होना अयत्नाचार प्रवर्तना अपना अशुभभाव होना इत्यादि परद्रव्यनिकी क्रियाहीतैं अपने बन्ध मानै तेतै जानिये—याकै आपापरका ज्ञान नाहीं भया। बन्ध मोक्ष तौ अपना ही भावनितैं था परद्रव्य तौ निमित्तमात्र था, यामैं विपर्यय मान्या। तातैं ऐसैं परद्रव्यहीतैं भला बुरा मानि रागद्वेष करे हैं, जेतैं सम्यग्दृष्टि नाहीं है, अर जेतैं चारित्रमोह सम्बन्धी रागादिक रहे हैं। तिनिकूं तथा तिनिका प्रेर्या परद्रव्य सम्बन्धी शुभाशुभ क्रियामैं प्रवर्तै है तिस प्रवृत्तिनिकूं ऐसैं मानै---जो यह कर्मका जोर है, यातैं निवृत्त भये मेरा भला है, तिनिकूं रोगवत् जाने है, पीडा न सही जाय तब तिनिका इलाज करनेरूप प्रवर्तै है। तोऊ तिनितैं याकै राग न कहिये रोग मानै, तिनितैं काहेका राग? तिसका मेटनेहीका उपाय करै। सो मेटना भी अपने ही ज्ञानपरिणाम-

रूप परिणमनेतैं मानै। ऐसैं परमार्थ अध्यात्मदृष्टिकरि इहां व्याख्यान जानना।

मिथ्यात्व विना चारित्रमोहसम्बन्धी उदयका परिणामकूं इहां राग न कह्या है। जातैं सम्यग्दृष्टिकै ज्ञानवैराग्यशक्ति अवश्य होनो कह्या है। तहां मिथ्यात्व सहित ही रागकूं राग कहे हैं, सो सम्यग्दृष्टीकै है नाहीं, अर मिथ्यात्वसहित राग होय सो सम्यग्दृष्टि नाहीं, ऐसा विशेषकूं सम्यग्दृष्टि ही जाने है। मिथ्यादृष्टिका अध्यात्मशास्त्रमें प्रथम तौ प्रवेश नाहीं, अर जो प्रवेश करे, तौ विपर्यय समझे है, व्यवहारकूं सर्वथा छोडि भ्रष्ट होय है, अथवा निश्चयकूं नीके नाहीं जानि व्यवहारहीतैं मोक्ष माने है, परमार्थतत्त्वविषैं मूढ है। तातैं यथार्थ स्याद्वादन्यायकरि सत्यार्थ समझैं सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय है। आगे पूछे है कि, रागी सम्यग्दृष्टि कैसे न होय है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

परमाणुमित्तियं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पा णयं तु सव्वागमधरोवि ॥९॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चेव सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥१०॥ युग्मं॥

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य।
नापि स जानात्यात्मानं सर्वागमधरोऽपि ॥९॥
आत्मानमजानन् अनात्मानमपि सोऽजानन्।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन् ॥१०॥

आत्मख्यातिः—यस्य रागाद्यज्ञानभावानां लेशतोऽपि विद्यते सद्भावः, भवतु स श्रुतकेवलिसदृशोऽपि तथापि ज्ञानमयभावानामभावेन न जानात्यात्मानं। यस्त्वात्मानं न जानाति सोऽनात्मानमपि न जानाति स्वरूपपररूपसत्तासत्ता-

भ्यामेकस्य वस्तुनो निश्चीयमानत्वात्। ततो य आत्मानात्मानौ न जानाति स जीवाजीवौ न जानाति। यस्तु जीवाजीवौ न जानाति स सम्यग्दृष्टिरेव न भवति। ततो रागी ज्ञानाभावान्न भवति सम्यग्दृष्टिः।

अर्थ—निश्चयकरि जिस जीवकै रागादिकका परमाणुमात्र कहिये लेशमात्र अंशमात्र भी वर्ते है सो जीव सर्व आगमका धारी होय-सर्व शास्त्र पढ्या होय, तौऊ आत्माकूं नाहीं जाने है। बहुरि आत्माकूं नाहीं जानता संता अनात्मा जो पर, ताकूं भी नाहीं जाने है, बहुरि आत्मा अनात्माकूं नाहीं जानता संता जीव अजीव पदार्थकूं भी नाहीं जाने है, बहुरि जो जीवकूं नाहीं जाने सो सम्यग्दृष्टि कैसे होय ?

टीका—जिस जीवकै अज्ञानमय जे रागादिकभाव, तिनिका लेशमात्रका भी सद्भाव है सो जीव श्रुतकेवली सरीखा भी होय तौऊ ज्ञानमयभावका अभावतैं आत्माकूं नाहीं जाने है। बहुरि जो अपने आत्माकूं नाहीं जाने है सो अनात्माकूं भी नाहीं जाने है। जातैं अपना स्वरूप अर परका स्वरूपका सत्त्व अर असत्त्व दोऊ एक ही वस्तूका निश्चयमें आय जाय है, तातैं ऐसा है—जो आत्माकूं अर अनात्माकूं दोऊकूं नाहीं जाने है सो जीव अजीव वस्तूकूं ही नाहीं जाने है, जीव अजीवकूं नाहीं जाने है, सो सम्यग्दृष्टि नाहीं है। तातैं रागी है सो ज्ञानका अभावतैं सम्यग्दृष्टि नाहीं है।

भावार्थ—इहां रागी कहनेकरि अज्ञानमय राग द्वेष मोह भाव लिये तहां अज्ञानमय कहनेकरि मिथ्यात्व अनंतानुबंधीतैं भये रागादिक लेने। मिथ्यात्वविना चारित्रमोहका उदयका राग न लेना। जातैं अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयसंबंधी राग है, सो ज्ञानसहित है, ताकूं रोगवत् जाने है, तिस रागसूं याकै राग नाहीं है, कर्मोदयतैं राग भया है, ताकूं मेट्या चाहे है। बहुरि रागका लेशमात्र भी याको अभाव कह्या, सो ज्ञानीकै अशुभराग तौ अत्यंत गौण है। बहुरि शुभराग होय है, सो सर्वशास्त्र पढि जाय, मुनि होय, व्यवहारचारित्र भी पालै, अर तिस शुभरागकूं भला जानि लेशमात्र भी तिस रागसूं राग करै, तौ जानिये—यानै अपना

आत्माका परमार्थस्वरूप जान्या नाहीं। कर्मोदयजनित भावकूं भला जान्या। तिसतैं अपना मोक्ष होना मान्या। ऐसैं मानतैं अज्ञानी ही है। आपका परका परमार्थरूपकूं न जान्या। तब जानिये जीव अजीव पदार्थका भी परमार्थरूप न जान्या। तब जो जीव अजीवकूं ही न जान्या, तब काहेका सम्यग्दृष्टि ऐसैं जानना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं। तामैं जे रागी प्राणी अनादितैं रागादिककूं अपना पद जाने हैं, तिनिकूं उपदेश करे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्धि बुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥६॥

किं तत्पदम्?

अर्थ—संसारी भव्यप्राणीकूं श्रीगुरु संबोधे है। जो हे अंधे प्राणी हौ, ए रागी पुरुष हैं, ते अनादि संसारतैं लगाय जिस पदविषैं सोते हैं—निद्रामैं मग्न हैं, तिस पदकूं तुम अपद जानो अपद जानो, यह तुमारा ठिकाना नाहीं। इहां दोय वारंवार कहनेतैं अतिकरुणाभाव सूचे है। फेरि कहे हैं—जो तुमारा ठिकाना यह है यह है। जहां चैतन्य धातु शुद्ध है शुद्ध है। अपने स्वाभाविकरसके समूहतैं स्थायीभावपणाकूं प्राप्त है। इहां दोय शुद्धपद हैं, सो द्रव्य अर भाव दोऊकी शुद्धताके अर्थि हैं। सो सर्व अन्यद्रव्यनितैं न्यारा, सो तौ द्रव्यशुद्धता है। अर परनिमित्ततैं भये अपने भाव तिनितैं रहित भाव शुद्ध कहिये। सो इतः कहिये इस तरफ आवो इस तरफ आवो-इहां निवास करौ।

भावार्थ—ए प्राणी अनादि संसारतैं लगाय रागादिककूं भला जाणि, तिनिहीकूं अपना स्वभाव मानि, तिनिहीविषैं निश्चित तिष्ठे हैं—सोवे हैं। तिनिकूं श्री गुरु दयालु होय संबोधे है—जगावे है—सावधान करे है। जो हे अंधे प्राणी हौ, तुम जिस पदविषैं सोवौ हौ, सो तुमारा पद नाहीं है, तुमारा पद तौ चैतन्यस्वरूपमय है, तिसकूं प्राप्त होऊ, ऐसैं सावधान करे है।

जसे कोई महंत पुरुष मद पीयकरि मलिन जायगां सोता होय ताकूं कोई ही आय जगावै कहे है-तेरी जायगा तौ सुवर्णमय धातूकी अतिदृढ शुद्ध सुवर्णतैं रची अर बाह्य कजोडाकरि रहित शुद्ध करी ऐसी है। सो हम बतावे हैं, तहां आव, तहां शयनादि करि आनंदरूप होऊ। तैसे इहां भी श्रीगुरु उपदेश करि सावधान किया है, जो बाह्य तौ अन्य द्रव्यनिका मिलाप नाहीं अर अतंरंग विकार नाहीं ऐसा शुद्ध चैतन्यरूप अपना भावका आश्रय करौ। दोय दोय वार कहनेकरि अतिकरुणा अनुराग सूचे है। आगे पूछे है, जो हे श्रीगुरो, तुम बताओ सो पद कहा है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण गिराह तव गियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलंब्भंतं सहावेण ॥११॥

आत्मनि द्रव्यभावान्यस्थिराणि मुक्त्वा गृहाण तव नियतं।
स्थिरमेकमिमं भावं उपलभ्यमानं स्वभावेन ॥११॥

आत्मख्यातिः—इह खलु भगवत्यात्मनि बहूनां द्रव्यभावानां मध्ये ये किल, अतत्स्वभावेनोपलभ्यमानाः, अनियतत्वावस्थाः, अनेके, क्षणिकाः, व्यभिचारिणो भावाः, ते सर्वेऽपि स्वयमस्थायित्वेन स्थातुः स्थानं भवितुमशक्यत्वात्, अपदभूताः। यस्तु तत्स्वभावेनोपलभ्यमानः, नियतत्वावस्थः, एकः, नित्यः, अव्यभिचारी भावः, स एक एव स्वयं स्थायित्वेन स्थानं भवितुं शक्यत्वात् पदभूतः। ततः सर्वानेवास्थायिभावान् मुक्त्वा स्थायिभावभूतं, परमार्थरसतया स्वदमानं ज्ञानमेकमेवेदं स्वाद्यं।

अर्थ—आत्माविषैं बहुत भाव हैं, तिनिमैं परनिमित्ततैं भये ते आत्माके भाव नाहीं ते अपद हैं, तिनिकूं द्रव्यरूप अर भावरूपकूं सर्वहीकूं छोडिकरि जो निश्चित थिर एक अपने स्वभाव ही करि ग्रहण होता यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यमात्र भाव है, सो अपना पन है, ताहि भो भव्य तू जैसाका तैसा ग्रहण करि।

टीका—निश्चयकरि इस भगवान् आत्माविषैं द्रव्यभावस्वरूप बहुत भाव दीखेहैं। तिनिमें

केई तिस आत्माके स्वभावरहित हैं, ते अनियत कहिये अनिश्चित अवस्था रूप हैं, अनेक हैं, क्षणिक हैं, व्यभिचारी हैं, ऐसे भाव हैं ते सर्व ही आप अस्थायी हैं, ठहरनेका जिनिका स्वभाव नाहीं। तातैं तिष्ठनेवाला आत्मा, ताके तिष्ठनेका ठिकाना स्थान होनेकूं योग्य नाहीं तातैं ते अपदभूत हैं। बहुरि जो भाव आत्मस्वभावकरि तौ ग्रहणमें आवे है, बहुरि नियतावस्था है, सदा निश्चित रहे है, बहुरि एक है, बहुरि नित्य है, बहुरि अव्यभिचारी है ऐसा एक चैतन्यमात्र ज्ञानभाव है। सो आप स्थायीभावस्वरूप है, सदा विद्यमान पाइये है, सो तिष्ठनेवाला जो आत्मा ताका तिष्ठनेका स्थान होनेकूं योग्य है, तातैं यह भाव पदभूत है। तातैं सर्व ही जे अस्थायीभाव तिनिकूं छोडिकरि स्थायीभूत परमार्थ रसपणाकरि स्वादमें आवता यह ज्ञान है सो ही एक आस्वादने योग्य है।

भावार्थ-पूर्वैं वर्णादिक गुणस्थानान्त भाव कहे थे, ते तौ सर्व ही आत्माविषैं अनियत अनेक क्षणिक व्यभिचारी ऐसे भाव हैं, ते आत्माके पद नाहीं। बहुरि यह स्वसंवेदन स्वरूप ज्ञान है सो नियत है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है, स्थायीभाव है सो आत्माका पद है, सो ज्ञानीनिकरि यह ही एक स्वाद लेनेयोग्य है। अब इस अर्थका कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्। अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥८॥

अर्थ—सो ही एक पद आस्वादने योग्य है। कैसा है? विपद् जो आपदा तिनिका पद नाहीं है, जिस पदमें किछू भी आपदा प्रवेश नाहीं करे है। जाके आगे अन्य सर्व ही पद हैं ते अपद प्रतिभासे हैं।

भावार्थ—एक ज्ञान ही आत्माका पद है, यामैं किछू भी आपदा नाहीं, याके आगे अन्य सर्व ही पद आपदास्वरूप आकुलतामय अपद भासे हैं। फेरि कहे हैं, जो आत्मा ज्ञानका अनुभव करे है, तब ऐसे करे है—

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन् स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम् ॥८॥

अर्थ—यह आत्मा है सो ज्ञानके विशेषनिका उदयकूं गौण करता संता सामान्यज्ञानमात्रकूं अभ्यास करता संता समस्तज्ञानकूं एक भावकूं प्राप्त करे है। कैसा भया संता ? सो कहे हैं, एक ज्ञायकमात्र भावकरि भरचा जो ज्ञानका महास्वाद ताकूं लेता संता है। बहुरि कैसा है ? द्वंद्वमय जो वर्णादिक रागादिक तथा क्षायोपशमरूप ज्ञानके भेदरूप स्वाद, ताहि करनेकूं लेनेकूं असमर्थ है, ज्ञान ही में एकाग्र होय तब दूजा स्वाद नाहीं आवे। बहुरि कैसा है ? अपनो जो वस्तूकी प्रवृत्ति ताहि जानता है, आस्वाद करता है। जातैं कैसा है ? आत्माका जो अनुभव, आस्वाद, ताके प्रभाव करि विवश है, तिसही स्वादके आधीन है—तहांतैं चिगनेकूं असमर्थ है। अद्वितीय स्वाद लेता बाहरि काहेकूं आवै।

भावार्थ—इस एक स्वरूपज्ञानके रसीले स्वाद आगैं अन्य रस फीके हैं। अर भेदभाव सब मिटि जाय हैं। ज्ञानके विशेष ज्ञेयके निमित्ततैं हैं। सो जब ज्ञानसामान्यका स्वाद ले तब सर्व-ज्ञानके भेद भी गौण होय जाय हैं। एक ज्ञान ही ज्ञेयरूप होय है। इहां कोई पूछै, छद्मस्थकै पूर्णरूप केवलज्ञानका स्वाद कैसा आवै ? ताका उत्तर तौ पूर्वैं कथन शुद्धनयका किया तहां ही भया। जो शुद्धनय आत्माका शुद्ध पूर्णरूप जनावे है, सो इस नयके द्वारे पूर्णरूप केवलज्ञानका परोक्ष स्वाद आवे है ऐसैं जानना। आगैं इस ही अर्थरूप गाथा कहे हैं। जो कर्मके क्षयोपशमके निमित्ततैं ज्ञानमें भेद हैं। जब ज्ञानस्वरूप विचारिये, तब एक ही है॥ गाथा—

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥१२॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च तद्भवत्येकमेव पदं ।
स एव परमार्थः, यं लब्ध्वा निर्वृतिं याति ॥१२॥

आत्मख्यातिः—आत्मा किल परमार्थः तत्तु ज्ञानं, आत्मा च एक एव पदार्थः, ततो ज्ञानमप्येकमेव पदं यदेतत्तु ज्ञानं नामैकं पदं स एष परमार्थः साक्षान्मोक्षोपायः। न चाभिनिबोधिकादयो भेदा इदमेक पदमिह भिंदंति ? किं तु तेपीदमेवैकं पदमभिनंदंति। तथाहि--यथात्र सवितुर्घनपटलावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतः प्रकाशनातिशयभेदा न तस्य प्रकाशस्वभावं भिंदंति। तथा, आत्मनः कर्मपटलोदयावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतो ज्ञानातिशयभेदा न तस्य ज्ञानस्वभावं भिंद्युः। किं तु प्रत्युतमभिनंदेयुः। ततो निरस्तसमस्तभेदमात्मस्वभावभूतं ज्ञानमेवैकमालम्ब्यं तदालंबनादेव भवति पदप्राप्तिः। नश्यति भ्रांतिः। भवत्यात्मलाभः। सिद्ध्यत्यनात्मपरिहारः, न कर्म मूर्छति। न रागद्वेषमोहा उत्प्लवंते। न पुनः कर्म आस्रवति। न पुनः कर्म बध्यते। प्राग्बद्धं कर्म, उपभुक्तं निर्जीर्यते। कृत्स्नकर्माभावात् साक्षान्मोक्षो भवति।

अर्थ—आभिनिबोधिक कहिये मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान ए ज्ञानके भेद हैं ते एक ज्ञान ही पदकूं प्राप्त हैं—सर्व ही एक ज्ञान नाम है, सो यह परमार्थ है, शुद्धनयका विषयस्वरूप ज्ञानसामान्य है, तथा यह ही शुद्ध नय है, जिसकूं पायकरि आत्मा निर्वाण पदकूं प्राप्त होय है।

टीका—निश्चय करि आत्मा है सो परमपदार्थ है। सो आत्मा पूर्वोक्त ज्ञान है। बहुरि आत्मा है सो एक ही पदार्थ है। तातैं ज्ञान भी एक ही पदकूं प्राप्त है। बहुरि जो यह ज्ञान नामा एक पद है, सो परमार्थस्वरूप साक्षात् मोक्षका उपाय है। बहुरि मतिज्ञानादि ज्ञानके भेद हैं ते तिस ज्ञाननामा एक पदकूं भेदरूप नाहीं करे हैं—ज्ञानरूपके भेद नाहीं करे हैं, तौ एकट्ठा करे हैं, इस एक ज्ञान नामा पदहीकूं वृद्धिरूप प्रगट करि प्रकाशे हैं। सो ही कहे हैं—जैसे इस लोकमें बादलेकरि संकोचरूप आच्छादित जो सूर्य, ताकै तिस बादलेके विघटनेके अनुसार करि प्रगटपणा होय है, तिसके प्रगट होनेके प्रकाशके हीनाधिकके भेद हैं ते तिसके

प्रकाशरूप सामान्य स्वभावकूं भेदे नाहीं हैं ।:तैसे कर्मके पटलका उदयकरि संकोच्या आच्छादित जो आत्मा, ताकै तिस कर्मका विघटन जो क्षयोपशम, ताके अनुसार करि प्रगटपणाकूं प्राप्त होताकै ज्ञानकै हीनाधिकके भेद हैं, ते तिस आत्माके सामान्यज्ञान स्वभावकूं नाही भेदे हैं, तौ कहा करे है ? उलटा प्रकाशरूप प्रगट ही करे हैं। तातैं दूर भये हैं समस्त भेद जामैं ऐसा आत्माका स्वभावभूत जो ज्ञान, तिसहीकूं एककूं आलंवन करना। तिस ज्ञानके आलंवनहीतैं निजपदकी प्राप्ति होय है। बहुरि तिसहीतैं भ्रांतीका नाश होय है। बहुरि तिसहीतें आत्माका लाभ होय है। अनात्माका परिहारकी सिद्धि होय है। ऐसै होतैं कर्मका उदयकी मूर्च्छा नाहीं होय है, राग द्वेष मोह नाहीं उपजे हैं, राग द्वेष मोह विना फेरि कर्मका आस्रव नाहीं होय है, आस्रव न होय तव फेरि कर्मकूं नाहीं वंधे है, पूर्वे बांधे थे जे कर्म, ते भोगे हुये निर्जराकूं प्राप्त होय हैं समस्त कर्मका अभाव होय करि साक्षात् मोक्ष होय है। ऐसा ज्ञानके आलंवनका माहात्म्य है।

भावार्थ—ज्ञानमें कर्मके क्षयोपशमके अनुसार भेद भये हैं। ते किछू ज्ञानसामान्यकूं तौ अज्ञानरूप नाहीं करे है। उलटा ज्ञानकूं प्रगट ही करे हैं। तातैं भेदनिकूं गौण करि एक ज्ञान-सामान्यका आलंबन ले आत्माकूं ध्यावना, यातैं सर्वसिद्धि होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन् वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥९॥

अर्थ—जिस आत्माकी जो ए संवेदनकी व्यक्ति कहिये अनुभवमें आवत ज्ञानके भेद हैं, ते निर्मलतैं निर्मल आपै आप उछले हैं—प्रगट अनुभवमें आवे हैं। कैसी हैं ते ? निष्पीत कहिये पीया जो समस्तपदार्थनिका समूहरूप रस, ताका प्राग्भार कहिये वहुतभार ताकरि मानूं मांती

ही हैं। सो यह भगवान् चैतन्यरूप रत्नाकर समुद्र, सो उठती जे लहरी तिनिकरि आप अभिन्न है रस जाका ऐसा एक है। तौऊ अनेकरूप होता दोलायमान प्रवर्ते है। कैसा है? अद्भुत है निधि जाका।

भावार्थ—जैसा समुद्र है सो बहुत रत्ननिकरि भरया होय है, सो एक जलकरि भरया है, तौऊ तामैं निर्मल छोटी बडी अनेक लहरी उठे हैं, ते सर्व एक जलरूप ही हैं। तैसा यह आत्मा ज्ञानसमुद्र सो एक ही है, यामैं अनेक गुण हैं अर कर्मके निमित्ततैं ज्ञानके अनेक भेद आपैआप व्यक्तिरूप होय प्रगट होय हैं, ते व्यक्ति एकज्ञानरूप ही जाननी—खंडखंडरूप नाहीं अनुभव करनी। अब और विशेषकरि कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

किं च—क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१०॥

अर्थ—केई तो कठिन दुःखकरि करे जाय ऐसे मोक्षतैं पराङ्मुख कर्म तिनिकरि स्वयमेव जिनाज्ञाविना क्लेश करो, अर केई पर कहिये मोक्षके सन्मुख कथंचित् जिनाज्ञामैं कहे ऐसे महाव्रत तथा तपके भारकरि बहुतकालपर्यंत भग्न भये पीडित भये कर्मनिकरि क्लेश करो, तिनि कर्मनितैं तौ मोक्ष होय नाहीं। जातैं यह ज्ञान है, सो साक्षात् मोक्षस्वरूप है अर निरामय पद है—जामैं किछू रोगादिकका क्लेश नाहीं है अर आपही करि आप वेदनेयोग्य है। सो ऐसा ज्ञान तौ ज्ञानगुणविना कोई ही प्रकारके कष्टकरि पावनेकूं समर्थ न हूजिये है।

भावार्थ—ज्ञान है सो साक्षात् मोक्ष है, सो ज्ञानहीतैं पाइये है। अन्य किछू क्रियाकर्मकांडतैं न पाइये है। आगै इस अर्थरूप उपदेश करे हैं। गाथा—

णाणगुणेहिं विहीणा एदं तु पदं वहूवि ण लहंति।
तं गिण्ह सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥१३॥

ज्ञानगुणैर्विहीना एतत्तु पदं बहवोऽपि न लभंते ।
तद् गृहाण सुपदमिदं यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षं ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सकलेनापि कर्मणा कर्मणि ज्ञानस्याप्रकाशनात् ज्ञानस्यानुपलंभः । केवलेन ज्ञानेनैव ज्ञान एव ज्ञानस्य प्रकाशनाद् ज्ञानस्योपलंभः । ततो बहवोऽपि बहुनापि कर्मणा ज्ञानशून्या नेदमुपलभंते । इदमनुपलभमानाश्च कर्मभिर्विमुच्यंते ततः कर्ममोक्षार्थिना केवलज्ञानावष्टंभेन नियतमेवेदमेकं पदमुपलंभनीयं ।

अर्थ—हे भव्य ! जो तू कर्मका समस्तपणें मोक्ष किया चाहे है, तौ तिस ज्ञानकूं नियमकरि निश्चित ग्रहण करि । जातैं ज्ञानगुणकरि जे रहित हैं, ते बहुत भी हैं—बहुत प्रकार कर्म करे हैं, तौऊ इस ज्ञानस्वरूप पदकूं नाहीं प्राप्त होय हैं ।

टीका—जातैं समस्त ही कर्मके विषैं ज्ञानका प्रकाशना नाहीं है, तातैं ज्ञानका उपलंभ कहिये पावना, सो कर्मकरि नाहीं होय है । केवल एक ज्ञानही करि ज्ञानके विषैं ज्ञानका प्रकाशना है, तातैं ज्ञानही करि ज्ञानका पावना होय है । तातैं बहुत भी प्राणी ज्ञानकरि शून्य हैं, ते बहुत-प्रकार कर्मकरि यह ज्ञानका पद नाहीं पावे हैं बहुरि इस पदकूं नाहीं पावते संते कर्मनिकरि नाहीं छूटे हैं । तातैं जो कर्मके मोक्ष करनेका अर्थी है, ताकरि केवल एक ज्ञानहीका अवलंबन करि निश्चित इस ही एकपदकूं प्राप्त होना ।

भावार्थ–ज्ञानहीतैं मोक्ष है, कर्मतैं नाहीं है । तातैं मोक्षार्थीकूं ज्ञानहीका ध्यान करना यह उपदेश है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं सहजबोधकलासुलभं किल । तत इदं निजबोधकलाबलात्कलयितुं यततां सततं जगत् ॥११॥

अर्थ–अहो भव्यजीवहो; यह ज्ञानमय पद है सो कर्मकरि तौ दुष्प्राप्य है, बहुरि स्वाभाविक-ज्ञानकी कलाकरि सुलभ है, यह प्रगटकरि निश्चय जाणौ । तातैं अपने निजज्ञानकी कलाके बलतैं इस ज्ञानका अभ्यास करनेकूं समस्त जगत् अभ्यासका यत्न करौ ।

भावार्थ--सकलकर्मकूं छुडाय ज्ञानका अभ्यास करनेका उपदेश किया है। बहुरि ज्ञानकी कला कहनेकरि ऐसा सूचे है, जो जेतैं पूर्णकला प्रगट न होय, तेतैं ज्ञान है सो हीनकलास्वरूप है--मतिज्ञानादिरूप है। तिस ज्ञानकी कलाके अभ्यासतैं पूर्णकला जो केवलज्ञान संपूर्णकला सो प्रगट होय है। आगैं फेरि इस ही उपदेशकूं प्रगट विशेषकरि कहे हैं। गाथा--

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥१४॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तः तर्हि भविष्यति तवोत्तमं सौख्यं ॥१४॥

आत्मख्यातिः---एतावानेव सत्य आत्मा यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्र एव नित्यमेव रतिमुपैहि। एतावत्येव सत्याशीः, यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव संतोषमुपैहि। एतावदेव सत्यमनुभवनीयं यावदेव ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव तृप्तिमुपैहि। अथैवं तव तन्नित्यमेवात्मरतस्य, आत्मसंतुष्टस्य, आत्मतृप्तस्य च वाचामगोचरं सौख्यं भविष्यति। तत्तु तत्क्षण एव त्वमेव स्वयमेव द्रक्ष्यसि मा अन्यान् प्राक्षीः।

अर्थ---भो भव्य प्राणी! तू इस ज्ञानविषैं नित्य सदाकाल रत होउ--रुचिरूप लीन होऊ। बहुरि इसही विषैं नित्य संतुष्ट होऊ, अन्य किछू कल्याणकारी है नाहीं। बहुरि इसही विषैं तृप्त होऊ अन्य किछू चाहि रहे नाहीं ऐसा अनुभव करि। ऐसे किये तेरे उत्तम सुख होयगा।

टीका--हे भव्य! एतावन्मात्र ही सत्य परमार्थस्वरूप आत्मा है, जेता यह ज्ञान है। ऐसा निश्चय करिकै ज्ञानमात्र ही आत्माविषैं निरंतर रति प्रीति रुचिकूं प्राप्त होऊ। बहुरि एतावन्मात्र ही सत्यार्थ कल्याण है, जेता यह ज्ञान है। ऐसा निश्चय करिके ज्ञानमात्र ही आत्माकरि नित्य ही संतोषकूं प्राप्त होऊ, नित्य ही तृप्तिकूं प्राप्त होऊ। बहुरि एतावन्मात्र ही सत्यार्थ अनुभवन करने योग्य है, जेता यह ज्ञान है, ऐसा निश्चय करिकै ज्ञानमात्र ही आत्माकरि नित्य ही तृप्तिकूं

प्राप्त होऊ। ऐसे नित्य ही आत्माविषैं रत, आत्माविषैं संतुष्ट, आत्माविषैं तृप्त जो तू, ताकै ऐसे निरंतर होनेतैं लगता ही वचनके अगोचर नित्य उत्तम सुख होयगा। तिस सुखकूं तिस ही काल स्वयमेव ही देखेगा। अन्यकूं मति पूछै, यह सुख आपके अनुभवगोचर ही है, परकूं काहेकूं पूछै ?

भावार्थ—ज्ञानमात्र आत्माविषैं लीन होना याहीतैं संतुष्ट रहना याहीतैं तृप्त होना, यह परमध्यान है, याहीतैं वर्तमान आनन्दरूप होय है, अर लगता ही सम्पूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप केवलज्ञानकी प्राप्ति होय है। इस सुखकूं ऐसे करनेवाला ही जाने है। अन्यका यामैं प्रवेश नाहीं। अब इसकी महिमाकूं अगिले कथनकी सूचनारूप कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेव यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१२॥

कुतो ज्ञानी न परं गृह्णाति इति चेत्—

अर्थ—जातैं यह चैतन्यमात्र ही है चिन्तामणि जाकै ऐसा ज्ञानी है। सो स्वयमेव आप देव है। कैसा है ? अचिन्त्य कहिये काहूके चितवनमें न आवै ऐसी है शक्ति जामैं। सो ऐसा ज्ञानी सर्व प्रयोजन जाकै सिद्ध हैं। ऐसे स्वरूप भया अन्यके परिग्रह करि कहा करै ? किछू ही करना नहीं।

भावार्थ—यह ज्ञानमूर्ति आत्मा अनंतशक्तिका धारक वांछित कार्यकी सिद्धि करनेवाला आप ही देव है। तातैं सर्व प्रयोजनके सिद्धपणाकरि ज्ञानीके अन्य परिग्रहके सेवनेकरि कहा साध्य है ? यह निश्चयनयका उपदेश जानू। आगै पूछे हैं, जो ज्ञानी परकूं काहेतैं नाहीं परिग्रहण करे है ? ताका उत्तर कहे है। गाथा—

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं ममभिदं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥१५॥

को नाम भणेद् बुधः परद्रव्यं ममेदं भवति द्रव्यं ।
आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियतं विजानन् ॥१५॥

आत्मख्यातिः–यतो हि ज्ञानी योहि यस्य स्वो भावः स तस्य स्वः सतस्य स्वामीति खरतरतत्त्वदृष्ट्यवष्टंभात्, आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियमेन जानाति । ततो न ममेदं स्वं नाहमस्य स्वामी इति परद्रव्यं न परिगृण्हाति । अतोहमपि न तत्परिगृह्णामि ।

अर्थ–ज्ञानी पंडित है सो ऐसा कौन है ? जो यह परद्रव्य है सो मेरा द्रव्य है ऐसे कहे । ज्ञानी तौ न कहे । कैसा है ज्ञानी पंडित ? अपना आत्मा हीकूं नियमकरि अपना परिग्रह जानता संता प्रवर्तें है ।

टीका–जातैं जो ज्ञानी है सो नियमकरि ऐसे जाने है जो जाका स्वभाव है, सोही ताका स्व है, धन है, द्रव्य है । बहुरि तिसही स्वभावरूप द्रव्यका वह स्वामी है । ऐसैं सूक्ष्म तीक्ष्ण तत्त्वदृष्टिकरि अवलंबनेतैं, आत्माका परिग्रह अपना आत्मस्वभाव ही है ऐसैं जाने है । तातैं परद्रव्यकूं ऐसा जाने है–जो यह मेरा स्व नाहीं, मैं याका स्वामी नाहीं, यातैं परद्रव्यकूं अपना परिग्रह नाहीं करै । तातैं मैं भी ज्ञानी हौं । सो परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करो हौं ।

भावार्थ—लोकमें यह रीति है, जो समझवार स्याणा मनुष्य है, सो परकी वस्तूकूं अपनी नाहीं जाने, ताकूं ग्रहण करे नाहीं । तैसे ही परमार्थ ज्ञानी अपना स्वभावहीकूं अपना धन जाने, परका भावकूं अपना जाने नाही, ताकूं ग्रहण न करे है । ऐसा ज्ञानी है सो परका ग्रहण सेवन नाही करे है । आगे इसही अर्थकूं युक्तिकरि दृढ करे हैं । गाथा---

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीविदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥१६॥

मम परिग्रहो यदि ततोऽहमजीवतां तु गच्छेयं ।
ज्ञातैवाहं यस्मात्तस्मान्न परिग्रहो मम ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यदि परद्रव्यमहं परिगृह्णीयां तदावश्यमेवाजीवो ममासौ स्वः स्यात् । अहमप्यवश्यमेवाजीवस्यामुष्य स्वामी स्यां । अजीवस्य तु यः स्वामी स किलाजीवः । एवमवशेनापि ममाजीवत्वमापद्येत । मम तु एको ज्ञायक एव भावः, यः स्वः, अस्यैवाहं स्वामी, ततो माभून्ममाजीवत्वं ज्ञातैवाहं भविष्यामि, न परद्रव्यं परिगृह्णामि, अयं च मे निश्चयः ।

अर्थ—ज्ञानी ऐसे जाने है, जो मेरे परद्रव्य परिग्रह होय, तौ मैं भी अजीवपणाकूं प्राप्त होय जाऊं । जातैं मैं तो ज्ञाता ही हौं, तातैं मेरे किछू परिग्रह नाहीं है ।

टीका—जो अजीव परद्रव्यकूं मैं परिग्रहण करो, तौ अजीव मेरा अवश्य स्व होय । वहुरि मैं भी उस अजीवका अवश्य स्वामी ठहरौं । जातैं यह न्याय है जो अजीवका स्वामी निश्चय करि होय, सो अजीव ही होय । ऐसैं मेरा अजीवपणा अवश्य आय पडे है । तातैं मेरा तो एक ज्ञायक भाव ही है, सो मेरा जो स्व है, तिसहीका मैं स्वामी हौं । तातैं मेरे अजीवपणा मति होऊ, मैं तो ज्ञाता ही होऊंगा, परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करूंगा, मेरा यह निश्चय है ।

भावार्थ—निश्चयनयकरि यह सिद्धांत है, जो जीवका तौ भाव जीव ही है, तिनहीकरि जीवकै स्व-स्वामी संबंध है । बहुरि अजीवका भाव अजीव ही है, तिनही करि अजीवकै स्व-स्वामी संवन्ध है । सो जीवकै अजीवका परिग्रह मानिये तौ जीव अजीवताकूं प्राप्त होय । तातैं जीवकै अजीवका परमार्थतैं परिग्रह मानना मिथ्याबुद्धि है । तातैं ज्ञानीकै यह मिथ्याबुद्धि होय नाहीं । ज्ञानी तौ ऐसे मानैं है जो परद्रव्य मेरे परिग्रह नाहीं, मैं तो ज्ञाता हौं । आगे कहे हैं, जो ऐसैं मानते ज्ञानीकैं परद्रव्यके बिगडने सुधरनेविषैं समता है । गाथा ॥

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ॥१७॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां अथवा यातु विप्रलयं ।
यस्मात्तस्माद् गच्छतु तथापि न परिग्रहो मम ॥१७॥

आत्मख्यातिः—छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वा विप्रलयं यातु वा यतस्ततो गच्छतु वा तथापि न परद्रव्यं परिगृह्णामि। यतो न परद्रव्यं मम स्वं नाहं परद्रव्यस्य स्वामी। परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वं परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वामी। अहमेव मम स्वं अहमेव मम स्वामीति जानाति।

अर्थ—ज्ञानी ऐसे विचारे, जो परद्रव्य है, सो छिदि जावो अथवा भिदि जावो अथवा कोई ले जावो अथवा नष्ट हो जावो विनशि जावो जिस तिस कारणतैं जावो, तौऊ निश्चयकरि मेरा परद्रव्य परिग्रह नाहीं है।

टीका—परद्रव्य छिदो वा भिदो, वा कोई ल्यो, वा प्रलय हो जावो, वा जिस तिस कारणतैं जावो, तौऊ मैं परद्रव्यकूं परिग्रहण नाहीं करौ हौं। जातै परद्रव्य मेरा स्व नाहीं, मैं परद्रव्यका स्वामी नाहीं। परद्रव्य ही परद्रव्यका स्व है, परद्रव्य ही परद्रव्यका स्वामी है। मैं ही मेरा स्व हौं, मैं ही मेरा स्वामी हौं ऐसैं जानू हौं।

भावार्थ—ज्ञानीकै परद्रव्यका बिगडने सुधरनेका हर्षविषाद नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप तथा अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम्।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद् भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥ १३ ॥

अर्थ—याप्रकार परिग्रहकूं सामान्यकरि समस्तहीकूं छोडिकरि, अब आप अर परका अविवेकका

कारण अज्ञानकूं छोडनेका है मन जाका, ऐसा जो यह ज्ञानी, सो तिस परिग्रहकूं विशेषकरि न्यारा न्यारा परिहार करनेकूं फेरि प्रवर्तें है।

भावार्थ—जातैं स्वपरका एकरूप जाननेका कारण अज्ञान है, ताहीतैं परद्रव्यका परिग्रहण है। तातैं ज्ञानीकै पहिली गाथामैं तो परिग्रहका सामान्यकरि त्याग करना कह्या। अब आगे अज्ञानके छोडनेकूं विशेषकरि न्यारा न्यारा नाम लेकरि त्याग करना कह्या है। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणीय णिच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥१८॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति धर्म्मं।
अपरिग्रहस्तु धर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥१८॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो न भवति, ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति, ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावाद् धर्मं नेच्छति। तेन ज्ञानिनो धर्मपरिग्रहो नास्ति। ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावाद् धर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात्।

अर्थ—ज्ञानी है सो परिग्रह रहित है, जातैं अनिच्छ कहिये परिग्रहकी इच्छा रहित है, ऐसा कह्या है। तातैं धर्मकूं नाहीं इच्छे है। तातैं धर्मका अपरिग्रह ही है, तिस धर्मका ज्ञानी ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है, जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छे है सो अज्ञानमय भाव है. अज्ञानमय भाव है सो ज्ञानीकै नाहीं है, ज्ञानीकै तौ ज्ञानमय ही भाव है। तातैं ज्ञानी है, सो अज्ञानमयभाव जो इच्छा, ताके अभावतैं धर्मकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारण करि ज्ञानीकै धर्मपरिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव, ताके

सद्भावतैं धर्मका केवल ज्ञाता ही यह ज्ञानी है। आगे ऐसे ही ज्ञानीकै अधर्मपरिग्रह नाहीं है ऐसैं कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणीय णिच्छदि अहम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥१९॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यधर्मं।
अपरिग्रहोऽधर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥१९॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः। अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति। ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् अधर्मं नेच्छति, तेन ज्ञानिनः अधर्मपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादधर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात्। एवमेव चाधर्मपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशाऽन्यान्यप्यूह्यानि।

अर्थ—ज्ञानी इच्छारहित है, यातैं परिग्रह रहित कह्या है। याहीतैं ज्ञानी है सो अधर्मकूं नाहीं इच्छे है, तातैं अधर्मका परिग्रह याकै नाहीं है। तिस कारणकरि सो ज्ञानी तिस अधर्मका ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है। जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, अज्ञानमय भाव ज्ञानीकै नाहीं है, ज्ञानीकै तौ ज्ञानमय ही भाव है। तातैं ज्ञानी अज्ञानमय भाव जो इच्छा ताके अभावतैं अधर्मकूं नाहीं इच्छे है। तातैं ज्ञानीकै अधर्मका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव ताके सद्भावतैं यह ज्ञानी अधर्मका केवल ज्ञायक ही है। ऐसे ही गाथामैं अधर्मपद है, ताके पद पलटनेकरि अर अधर्मकी जायगां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ए सोलह पद धरि सोलह गाथासूत्र करि व्याख्यान करना। इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारने।

आगे ज्ञानीके आहार करना भी परिग्रह नाहीं है यह कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं तु णिच्छदे णाणी।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२०॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितोऽशनं च नेच्छति ज्ञानी।
अपरिग्रहस्त्वशनस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥२०॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति। ततो ज्ञानी, अज्ञानमस्य भावस्य इच्छाया अभावात्, अशनं नेच्छति तेन ज्ञानिनोऽशनपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादशनस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात्।

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नाहीं है इसलिये नाहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

धम्मच्छि अधम्मच्छी आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु।
संगं च तहा णेयं देवमणुअत्तिरियणेरइयं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—अपरिग्रहो भणितः कोऽसौ? अनिच्छः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु आकांक्षा नास्ति तेन कारणेन परतत्त्वज्ञानी चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं विहाय धर्माधर्माकाशाद्यंगपूर्वगतश्रुतवाह्याभ्यंतरपरिग्रहदेवमनुष्यतिर्यङ्नरकादिविभावपर्यायान्नेच्छति इति ज्ञेयं ज्ञातव्यं। ततः कारणात्तद्विषये निष्परिग्रहो भूत्वा तद्रूपेणापरिणमन् सन् दर्पणे विम्बस्येव ज्ञायक एव भवति।

अर्थ—जिसके इच्छा नहीं है उसके परिग्रह भी नहीं है इसलिये तत्त्वज्ञानी अपने चिदानन्द स्वभाववाले शुद्धात्माको छोडकर धर्म अधर्म आकाशादि परद्रव्य तथा अङ्गपूर्वगत श्रुत वाह्याभ्यंतर परिग्रह देव मनुष्य तिर्यंच नरक आदि विभाव पर्यायोंको नहीं चाहता है इसलिये वह उनका ज्ञाता ही है, परिग्रही नहीं।

अर्थ—इच्छा रहित होय सो परिग्रहरहित है ऐसें कह्या है। बहुरि ज्ञानी है सो अशन कहिये भोजन, ताकूं नाहीं इच्छे है। तातैं ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। तिस कारणकरि ज्ञानी अशनका ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है, सो जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, सो ज्ञानीकै अज्ञानमय भाव नाहीं है। जातैं ज्ञानीकै तौ ज्ञानमय ही भाव है, तातैं ज्ञानी है सो अज्ञानमयभाव जो इच्छा, ताके अभावतैं अशनकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारणकरि ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय ही भाव है, तातैं ज्ञानी है सो अज्ञानमय भाव जो इच्छा, ताके अभावतैं अशनकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारणकरि ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायक भाव, ताके सद्भावतैं यह ज्ञानी केवल अशनका ज्ञायक ही है।

भावार्थ—ज्ञानीकै आहारकी भी इच्छा नाहीं है, तातैं ज्ञानीकैं आहार करना भी परिग्रह नाहीं है। इहां प्रश्न—जो आहार तौ मुनी भी करै है, ताकै इच्छा है की नाहीं? विना इच्छा आहार कैसे करै? ताका समाधान—जो असातावेदनीय कर्मके उदयतैं तौ जठराग्निरूप क्षुधा उपजे है अर वीर्यांतरायके उदयकरि ताकी वेदना सही नाहीं जाय है अर चारित्रमोहके उदय-करि ग्रहणकी इच्छा उपजे है। सो इस इच्छाकूं कर्मका उदयका कार्य जाने है, तिस इच्छाकूं रोगवत् जानि मेटया चाहे हैं। इच्छातैं अनुरागरूप इच्छा नाहीं है, ऐसी इच्छा नाहीं है जो मेरी यह इच्छा सदा रहौ। तातैं अज्ञानमय इच्छाका अभाव है। परजन्य इच्छाका स्वामीपणा ज्ञानीकै नाहीं है। तातैं इच्छाका भी ज्ञानी ज्ञायक ही है। ऐसा शुद्धनयकूं प्रधानकरि कथन जानना। आगै पानका भी परिग्रह ज्ञानीकै नाहीं है ऐसें कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाणं च णिच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१॥

अपरिग्रहो अनिच्छो भणितः पानं च नेच्छति ज्ञानी ।
अपरिग्रहस्तु पानस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥२१॥

आत्मख्यातिः--इच्छा परिग्रहः, तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति । ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति । ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् पानं नेच्छति । तेन ज्ञानिनः पानपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावात् केवलं पानकस्य ज्ञायक एवायं स्यात् ।

अर्थ--इच्छा रहित है सो परिग्रहरहित कह्या है । बहुरि ज्ञानी है सो पान कहिये जल आदिक पीवना, ताकूं इच्छे नाहीं है । तातें पानका परिग्रह ज्ञानीके नाहीं है । तिस कारणकरि ज्ञानी पानका ज्ञायक ही है ।

टीका--इच्छा है सो परिग्रह है । जाके इच्छा नाहीं ताके परिग्रह भी नाहीं । बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, सो ज्ञानीके अज्ञानमय भाव नाहीं है, ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है तातैं ज्ञानी अज्ञानमय भाव जो इच्छा, ताके अभावतें पानकूं नाहीं इच्छे है । तिस कारण-करि ज्ञानीके पानका परिग्रह नाहीं है । ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव ताके सद्भावतें यह ज्ञानी पानका केवल ज्ञायक ही है ।

भावार्थ--आहारवत् जानना । आगे कहे हैं, जो ऐसे ही अन्य जे अनेक प्रकार परजन्य भाव, तिनिकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है । गाथा--

इच्चादु एदु विविहे सव्वे भावेय णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंवोय सव्वत्थ ॥२२॥

इत्यादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावान्नेच्छति ज्ञानी ।
ज्ञायकभावो नियतः निरालंबश्च सर्वत्र ॥२२॥

आत्मख्यातिः—एवमादयोऽन्येऽपि बहुप्रकाराः परद्रव्यस्य ये भावास्तान् सर्वानेव नेच्छति ज्ञानी तेन ज्ञानिनः सर्वेषामपि परद्रव्यभावानां परिग्रहो नास्ति इति सिद्धं ज्ञानिनोऽत्यंतनिष्परिग्रहत्वं । अथैवमयमशेषभावांतरपरिग्रहशून्यत्वात् उद्वांतसमस्ताज्ञानः सर्वत्राप्यत्यंतनिरालंबो भूत्वा प्रतिनियतटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावः सन् साक्षाद्विज्ञानघनमात्मानमनुभवति ।

अर्थ—इस प्रकारकूं आदि लेकरि अनेक प्रकारके जे सर्वभाव, तिनिकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है । जातैं नियमकरि आप ज्ञायकभाव है, तातै सर्वविषैं निरालंब है ।

टीका--याही पूर्वोक्त प्रकारकूं आदि लेकरि अन्य भी बहुत प्रकार परद्रव्यके जे स्वभाव हैं, तिनि सर्वहीकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है । तिस कारणकरि ज्ञानीकै सर्व ही परद्रव्यनिके भावनिका परिग्रह नाहीं है । ऐसैं ज्ञानीका अत्यंत निष्परिग्रहपणा सिद्ध भया । अब याप्रकार यह ज्ञानी समस्त अन्य भावनिका परिग्रहका परिग्रह करि शून्यपणातैं वम्या है उगल्या है समस्त अज्ञान जानैं ऐसा भया संता सर्वत्र अतिनिरालंबन स्वरूप होय करि न्यारा ही एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव भया संता साक्षात् विज्ञानघन आत्माकूं अनुभवे है ।

भावार्थ—पूर्वोक्त प्रकार आदि लेकरि सर्व ही अन्य भावनिका ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं है । जातैं सर्व ही परभावनिकूं हेय जानै, तब तिनकी प्राप्तिकी इच्छा नाहीं । उदय आयेकूं अनासक्त भया भोगवे है । संसार देह भोगनिसूं रागरूप इच्छा विना परिग्रहका अभाव कह्या है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

स्वागताछन्दः

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात् ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात् नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४॥

अर्थ—ज्ञानीकै जो पूर्वैं बंधे अपने कर्मका विपाक कहिये उदयतैं उपभोग होय है, सो होऊ। परंतु रागके वियोगतैं निश्चयतैं सो उपयोग परिग्रह भावकूं नाहीं प्राप्त होय है।

भावार्थ—पूर्वैं बांधे कर्मका उदय आवै तब उपभोग सामग्री प्राप्त होय, ताकूं अज्ञानमय रागभाव करि भोगवै, तब तौ सो परिग्रह भावकूं प्राप्त होय सो ज्ञानीकै अज्ञानमय रागभाव नाहीं है। उदय आया है, ताकूं भोगवे है। यह जाने है—जो पूर्वैं बांध्या था सो उदय आय गया, पिंड छूट्या, आगामी नाहीं वांछू हौं, ऐसैं तिनिसूं रागरूप इच्छा नाहीं तब ते परिग्रह भी नाहीं। आगै ज्ञानीकै तीनकालगत परिग्रह नाहीं है ऐसे कहे हैं। गाथा--

उप्पण्णोदयभोगे विओगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ॥२३॥

उत्पन्नोदयभोगे वियोगबुद्ध्या तस्य स नित्यं।
कांक्षामनागतस्य चोदयस्य न करोति ज्ञानी ॥२३॥

आत्मख्यातिः—कर्मोदयोपभोगस्तावत् अतीतः प्रत्युत्पन्नो नागतो वा स्यात्। तत्रातीतस्तावत् अतीतत्वादेव सन् परिगूहभावं विभर्ति। अनागतस्तु आकांक्ष्यमाण एव परिगूहभावं विभृयात्। प्रत्युत्पन्नस्तु स किल रागबुद्ध्या प्रवर्तमान एव तथा स्यात्। न च प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनो रागबुद्ध्या प्रवर्तमानो दृष्टः, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्य रागबुद्धेरभावात्। वियोगबुद्ध्यैव केवलं प्रवर्तमानस्तु स किल न परिगूहः स्यात्। ततः प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिगूहो न भवेत्। अनागतस्तु स किल ज्ञानिनो न कांक्षित एव, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्याकांक्षाया अभावात्। ततो नागतोऽपि कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिगूहो न भवेत्।

अर्थ—उत्पन्न भया वर्तमानकालका उदयका भोग, सो तौ तिस ज्ञानीकै निरंतर वियोगकी बुद्धिकरि वर्तें है। तातैं परिग्रह नाहीं है। बहुरि अनागत जो आगामी काल, तिसविषैं उदय होयगा, ताकी ज्ञानी वांछा नाहीं करे है, तातैं परिग्रह नाहीं है। बहुरि अतीतकालका वीति ही

गया सो यह विना कह्या सामर्थ्यतैं ही ज्ञानीयैं याकै परिग्रह नाहीं, गयेकी वांछा ज्ञानीकै कैसीं होय?

टीका—कर्मका उदयका उपभोगना तीन प्रकार है। अतीतकालका, प्रत्युत्पन्न कहिये वर्तमान कालका, अनागत कहिये आगामी कालका ऐसे। तहां अतीतकालका तौ वीति ही गया, सो गया सो गया। यातैं ज्ञानी परिग्रहभावकूं नाहीं धारै है। बहुरि अनागत जो आगामी कालमैं आवेगा, सो ताकी वांछा करै, तब परिग्रहभावकूं धारै, सो ज्ञानीकै आगामी वांछा नाहीं, तातैं परिग्रहभावकूं नाहीं धारै है। जिस कर्मकूं ज्ञानी अपनी अहित जान्या, ताके उदयके भोगकी आगामी वांछा काहेकूं करै? बहुरि प्रत्युत्पन्न कहिये वर्तमानका उपभोग है, सो रागबुद्धि करि प्रवर्तमान होय तौ परिग्रहभावकूं धारै। सो ज्ञानीकै वर्तमानका उपभोग रागबुद्धि करि प्रवर्तमान नाहीं दीखे है। जातैं ज्ञानीकै अज्ञानमयभाव जो रागबुद्धि ताका अभाव है। बहुरि केवल वियोगबुद्धि ही करि प्रवर्तमान होय, सो निश्चय करि परिग्रह नाहीं है। जातैं ज्ञानीकी यह बुद्धि है—जो जाका संयोग भया, ताका वियोग अवश्य होयगा। तातैं विनाशीकतै प्रीति न करनी। तातैं वर्तमान कर्मका उदयका उपभोग है, सो ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं है। बहुरि अनागत आगामी कर्मका उदयकूं नाहीं वांछता जो ज्ञानी ताकै सो अनागत उपभोग परिग्रह नाहीं है। जातैं ज्ञानीकै अज्ञानमयभावरूप जो वांछा, ताका अभाव है। तातैं अनागत भी कर्मका उदयका उपभोग ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं होय।

भावार्थ—अतीत तौ गया ही है, अनागतकी वांछा नाहीं, वर्तमानका विषैं राग नाहीं है ये जानै ताविषै राग कैसा होय? तातैं ज्ञानीकै तीनू ही काल सम्बन्धी कर्मका उदयका भोगना परिग्रह नाहीं। वर्तमानके कारण मिलावे है सो पीडा न सही जाय, ताका इलाज रोगवत् करे है। यह निबलाईका दोष है।

कुतोऽनागतं ज्ञानी नाकांक्षतीति चेत्—

आगे पूछे है, अनागत कालका कर्मका उदयकूं ज्ञानी काहेतें नाहीं वांछे है ? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयमवि ण कंखदि कयावि ॥२४॥

यो वेदयते वेद्यते समये समये विनश्यत्युभयं।
तद् ज्ञायकस्तु ज्ञानी, उभयमपि न कांक्षति कदाचित् ॥२४॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि तावद् ध्रुवत्वात् स्वभावभावस्य टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावो नित्यो भवति यौ तु वेद्यवेदकभावौ तौ तूत्पन्नप्रध्वंसित्वाद्विभावभावानां क्षणिकौ भवतः। तत्र यो भावि कांक्षमाणं वेद्यभावं वेदयते स यावद् भवति तावत्कांक्षमाणो भावो विनश्यति। तस्मिन् विनष्टे वेदको भावः किं वेदयते ? यदि कांक्षमाणवेद्यभावपृष्ठभाविनमन्यं भावं वेदयते तदा तद्भवनात्पूर्वं विनश्यति कस्तं वेदयते ? यदि वेदकभावपृष्ठभावी भावोन्यस्तं वेदयते तदा तद्भवनात्पूर्वं स विनश्यति। किं स वेदयते ? इति कांक्ष्यमाणभाववेदनानवस्था तां च विजानन् ज्ञानी न किंचिदेव कांक्षति।

अर्थ—जो अनुभव करनेवाला भाव, सो वेदकभाव कहिये। बहुरि जो अनुभवन करनेयोग्य भाव, सो वेद्यभाव कहिये। सो ऐसे वेदक अर वेद्य ये दोय भाव आत्माके होय हैं। सो अनुक्रम करि होय है, एककाल होय नाहीं, सो दोऊ ही समय समय विषैं विनशि जाय है, अर आत्मा दोऊ भावनिविषैं नित्य है। तातैं ज्ञानी आत्मा दोऊ भावनिका ज्ञायक है जाननेवाला ही है। इनि दोऊ ही भावनिकूं ज्ञानी कदाचित् भी नाहीं वांछे है।

टीका—ज्ञानी है सो तौ "अपना स्वभावभावकै ध्रुवपणा है" तातैं टंकोत्कीर्ण एकज्ञानस्वरूप नित्य है। बहुरि जो वेदना करनेवाला अर वेदने योग्य ऐसे दोय वेदक अर वेद्यभाव हैं ते उपजना अर विनसनारूप हैं। जातैं विभावभाव हैं, तिनिकै क्षणिकपणा है, तातैं दोऊ भाव

विनासीक क्षणिक हैं। तहां विचारिये है, जो वेदकभाव है सो आगामी वांछामैं लेनेयोग्य वेद्यभाव ताकूं अनुभवन करे। यहू जेतैं उपजे तेतैं वेद्यभाव नष्ट होय जाय—विनसि जाय। ताकूं विनाश होतैं वेदकभाव है सो कौनकूं वेदे–अनुभवन करै? बहुरि जो इहां ऐसे कहिये, जो वांछामैं आवता जो वेद्यभाव ताके पीछे होगा जो अन्य वेद्यभाव ताकूं वेदे है। तौ तिसके होनेके पहले ही सो वेदकभाव विनसि जाय, तब तिस वेद्यभावकूं कौन वेदे? बहुरि फेरि कहे, जो वेदकभावके पीछे होगा जो अन्य वेदकभाव सो तिस वेद्यभावकूं वेदेगा। तौ तिस वेदकभाव होनेके पहले सो वेद्यभाव विनसि जाय, तब सो वेदकभाव कौनसे भावकूं वेदे? ऐसे कांक्षमाणभाव जो वेदनाकी वांछामैं आवता भाव, ताकै अनवस्था है, कहूं ठहरना नाहीं। तिस अनवस्थाकूं जानता संता ज्ञानी किछू भी नाहीं वांछे है।

भावार्थ—वेदकभाव तो वेदनेवाला अर वेद्यभाव जाकूं वेदिए सो, इनि दोऊके कालभेद है। जब वेदकभाव होय तब वेद्यभाव होय नाहीं अर वेद्यभाव होय तब वेदकभाव होय नाहीं। ऐसैं होतैं वेदकभाव आवै तब वेद्यभाव विनसि जाय, तब वेदकभाव कोनकूं वेदे? अर वेद्यभाव आवे तब वेदकभाव विनसि जाय, तब वेदकभाव विना वेद्यकूं कौन वेदे? तातैं ज्ञानी दोऊकूं विनाशीक जाणि आप जाननेवाला ही रहे है। इहां प्रश्न—जो आत्मा तौ नित्य है, सो दोऊ भावनिकूं वेदनेवाला क्यौं न कहो? ताका समाधान–जे वेद्यवेदकभाव तौ विभाव हैं, आत्माका स्वभाव तौ हैं नाहीं, सो जाकी वांछा करी ऐसा वेद्यभाव जेतैं वेदकभाव आया तेतैं नष्ट होय गया। ऐसैं वांछितभोग तौ भया ही नाहीं। तातैं ज्ञानी निष्फल वांछा काहेकूं करे? मनोवांछित होय नाहीं, तब वांछा करना अज्ञान है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

स्वागताछन्दः

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्वेद्यते न खलु काङ्क्षितमेव।
तेन काङ्क्षति न किञ्चन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

तथाहि—

अर्थ—वेद्य वेदकभाव हैं ते कर्मके निमित्ततैं होय हैं। तातैं ते स्वभाव नाहीं, विभाव हैं, बहुरि चलायमान हैं, समयसमय विनसे हैं। तातैं वांछित भावकूं नाहीं वेदिये हैं। तिस कारणकरि विद्वान् ज्ञानी है सो किछू भी आगामी भोग नाहीं वांछे है। सर्वहीतैं अतिविरक्तभाव वैराग्यभावकूं प्राप्त है।

भावार्थ—अनुभवगोचर जो वेद्यवेदक विभाव तिनिहीके कालभेद है, तातैं मिलाप नाहीं, विधि मिले नाहीं तब आगामी बहुत कालसंबंधी वांछा ज्ञानी काहेकूं करे? आगे 'ऐसे सर्व ही उपभोगतैं ज्ञानीकै वैराग्य है' सो ही कहे हैं। गाथा—

बंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥२५॥

बंधोपभोगनिमित्तेषु अध्यवसानोदयेषु ज्ञानिनः।
संसारदेहविषयेषु नैवोत्पद्यते रागः ॥२५॥

आत्मख्यातिः—इह खल्वध्यवसानोदयाः कतरेऽपि संसारविषयाः, कतरेपि शरीरविषयाः। तत्र यतरे संसारविषयाः, ततरे बंधनिमित्ताः। यतरे शरीरविषयास्ततरे तूपभोगनिमित्ताः। यतरे बंधनिमित्तास्ततरे रागद्वेषमोहाद्याः यतरे तूपभोगनिमित्तास्ततरे सुखदुःखाद्याः। अथामीषु सर्वेष्वपि ज्ञानिनो नास्ति रागः। नानाद्रव्यस्वभावत्वेन टङ्कोत्कीर्णकज्ञायकभावस्वभावस्य तस्य तत्प्रतिषेधात्।

अर्थ—बंधके अर उपभोगके निमित्त जे अध्यवसानके उदय, ते संसारविषय अर देहविषय हैं, तिनिविषैं ज्ञानीकै राग नाहीं उपजे है।

टीका—इस लोकविषैं निश्चयकरि जे अध्यवसानके उदय हैं, ते केतेएक तौ संसारविषय हैं बहुरि केतेएक शरीरविषय हैं। तहां जेते संसारविषय हैं, तेते तौ बंधके निमित्त हैं, बहुरि जेते

शरीरविषय हैं, तेते उपभोगके निमित्त हैं। तहां जेते बंधके निमित्त हैं, तेते तौ राग द्वेष मोह आदिक हैं, बहुरि जेते उपभोगके निमित्त हैं, तेते सुखदुःखादिक हैं। अब कहे हैं, जो इनि सर्वहीविषैं ज्ञानीकैं राग नाहीं है। जातैं अध्यवसान है सो नानाद्रव्यका स्वभाव है। तिसपणाकरि तिस ज्ञानीके एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावकै तिनिका प्रतिषेध है।

भावार्थ—संसारदेहभोगसंबंधी राग द्वेष मोह सुखदुःखादिक अध्यवसानके उदय हैं, ते नानाद्रव्य जे पुद्गलद्रव्य तथा जीवद्रव्य ऐसे संयोगरूप भये तिनिके स्वभाव हैं। अर ज्ञानीका एक ज्ञायकस्वभाव है, तातैं ज्ञानीकै तिनिका प्रतिषेध है, तातैं ज्ञानीकै तिनिविषैं राग प्रीति नाहीं है। परद्रव्य परभाव संसारमैं भ्रमणके कारण हैं, तिनितैं प्रीति करे, तौ ज्ञानी काहेका ? इस अर्थका कलशरूप तथा अगिले कथनकी सूचनिकाके श्लोक हैं।

स्वागताछन्दः

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्म रागरसरिक्ततयैति
रागयुक्तिरकषायितवस्त्रे स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥१६॥

अर्थ—ज्ञानि तिनि परिग्रहभावनिकरि रिक्त है रहित है अर ज्ञानी रागरूपी रसकरि भी रिक्त है रहित है। तिसपणाकरि कर्म है सो परिग्रह भावकूं नाहीं प्राप्त होय है। जैसे लोद फिटकडी करि कसायला न किया जो वस्त्र ताविषैं रंगका लगना है, सो अंगीकार न भया संता बाह्य ही लुठे है, वस्त्रमाहि प्रवेश नाहीं करे है।

भावार्थ—जैसैं लोद फिटकडी लगाये विना वस्त्रकैं रंग चढै नाहीं, तैसे ज्ञानीकै रागभावविना कर्मका उदयका भोग नाहीं, सो परिग्रहपणाकूं नाहीं प्राप्त होय है। फेरि कहे हैं—

स्वागताछन्दः

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्सर्वरागरसवर्जनशीलः।
लिप्यते सकलकर्मभिरेष कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१७॥

अर्थ—जातैं ज्ञानवान् है सो अपने निजरसहीतैं सर्व रागरसकरि वर्जित स्वभाव है। तातैं कर्मके मध्य पडया है तौऊ समस्तकर्मकरि नाहीं लिपे है। आगे इस ही अर्थका व्याख्यान गाथामैं करे हैं। गाथा--

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥२६॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥२७॥

ज्ञानी रागप्रहायः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
नो लिप्यते कर्मरजसा तु कर्दममध्ये यथा कनकं ॥२६॥
अज्ञानी पुनारक्तः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
लिप्यते कर्मरजसा कर्दममध्ये यथा लोहं ॥२७॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु कनकं कर्दममध्यगतमपि कर्दमेन न लिप्यते तदलेपस्वभावत्वात् तथा किल ज्ञानी कर्ममध्यगतोऽपि कर्मणा न लिप्यते सर्वपरद्रव्यकृतरागत्यागशीलत्वे सति तदलेपस्वभावत्वात्। यथा लोहं कर्दममध्यगतं सत्कर्दमेन लिप्यते तल्लेपस्वभावत्वात् तथा किलाज्ञानी कर्ममध्यगतः सन् कर्मणा लिप्येत सर्वपरद्रव्यकृतरागोपादानशीलत्वे सति तल्लेपस्वभावत्वात्।

अर्थ—जो ज्ञानी है सो सर्वद्रव्यनिविषैं रागका छोडनेवाला है, सो कर्मके मध्यगत होय रह्या है, तौऊ कर्मरूप रजकरि नाहीं लिपे है, जैसैं कर्दम कहिये कीच, तामैं पडया सुवर्णकै काई न लागै तैसें। बहुरि अज्ञानी है सो सर्वद्रव्यनिविषैं रक्त है--रागी है, तातैं कर्मके मध्यगत भया संता कर्मरजकरि लिपे है। जैसैं कर्दम कोचमें पडया लोहकै काई लागै तैसें।

टीका—जैसैं निश्चयकरि सुवर्ण है सो कर्दमके वीचि पडया है तौऊ कर्दमकरि लिपे नाहीं,

सोनाकै काई लागै नाहीं, जातैं सुवर्णका स्वभाव कर्दमका लेप न लागनेस्वरूप ही है, तैसैं प्रगटपणैं ज्ञानी कर्मके वीचि पड्या है तौऊ कर्मकरि लिपै नाहीं, जातैं ज्ञानी सर्व परद्रव्यगत रागका त्यागका स्वभावपणाकूं होते संते कर्मका लेपरूप स्वभाव नाहीं हैं। बहुरि जैसैं लोह है सो कर्दममध्य पड्या हुवा कर्दमकरि लिपे है, जातैं लोहका स्वभाव कर्दमतैं लिपनेहीरूप है, तैसैं ही प्रगटपणैं अज्ञानी है सो कर्मके वीचि पड्या संता कर्मकरि लिपे है, जातैं अज्ञानी सर्वपरद्रव्य विषैं कीया जो राग ताका उपादानस्वभाव होते संते तिस कर्म लिपनेका स्वभावस्वरूप है।

भावार्थ—जैसे कादामें पड्या सुवर्णकै काई न लागै, अर लोहकै कोई लागै। तैसैं ज्ञानी कर्मके मध्यगत है, तौऊ ज्ञानी कर्मतैं लिपै नाहीं—बांधे नाहीं। अर अज्ञानी कर्मतैं लिपै है—बांधे है। यह ज्ञान अज्ञानका महिमा है। अब इस अर्थका तथा अगिले कथनकी सूचनिकाका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।
अज्ञानं न कथंचनापि हि भवेत् ज्ञानं भवत्सन्ततं ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ॥१८॥

अर्थ—जिस वस्तुका जैसा इस लोकमें जो स्वभाव है, ताका तैसा ही स्वाधीनपणा है, यह निश्चय है। सो तिस स्वभावकूं अन्य कोऊ अन्य सारिखा किया चाहै, तौ कदाचित् हू अन्यसारिखा करि सकै नाहीं। इस न्यायतैं ज्ञान है सो निरन्तर ज्ञानस्वरूप ही होय है। ज्ञानका अज्ञान कदाचित् भी होय नाहीं है, यह निश्चय है। तातैं हे ज्ञानी! तू कर्मके उदयजनित उपभोगकूं भोगि। तेरै परकै अपराध करि उपज्या ऐसा इस लोकमें बंध नाहीं है।

भावार्थ—वस्तु स्वभाव मेटनेकूं कोई समर्थ नाहीं, तातैं ज्ञान भये पीछे ताकूं अज्ञान करनेकूं कोई समर्थ नाहीं, यह निश्चयनय है। तातैं ज्ञानीकूं कह्या है, जो तेरे परके किये अपराधतैं तौ बंध नाहीं है, तौ तू उपभोगकूं भोगि। उपभोगनिके भोगनेकी शंका मति करै। शंका करेगा तौ

परद्रव्यतैं बुरा होना माननेका प्रसंग आवेगा। ऐसैं परद्रव्यतैं अपना बुरा होना माननेकी शंका मेटी है। ऐसा मति जानूं—जो भोग भोगनेकी प्रेरणा करि स्वच्छन्द किया है। स्वेच्छाचारी होना तौ अज्ञानभाव है, सो आगे कहेंगे। आगैं इसही अर्थकूं दृष्टान्त करि दृढ करे हैं।—गाथा—

नीचे लिखी तीन गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नाहीं है इसलिये नाहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण।
णागं होइ सुवण्णं धम्मं तं भच्छवाएण ॥

नागफण्या मूलं नागिनीतोयेन गर्भनागेन।
नागं भवति सुवर्णं धम्यमानं भस्त्रावायुना ॥

तात्पर्यवृत्तिः—नागफणी नामौषधी तस्या मूलं नागिनी हस्तिनी तस्यास्तोयं मूत्रं गर्भनागं सिन्दूरद्रव्यं नागं सीसकं। अनेन प्रकारेण पुण्योदये सति सुवर्णं भवति न च पुण्याभावे। कथंभूतः सन् भस्त्रया धम्यमानमिति दृष्टांत-गाथागता।

अथ दार्ष्टांतमाह—

कम्मं हवेइ किट्टं रागादी कालिया अह विभाओ।
सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि ॥

कर्म भवति किट्टं रागादयः कालिका अथ विभावाः।
सम्यक्त्वज्ञानदर्शनचारित्रं परमौषधमिति विजानीहि ॥

तात्पर्यवृत्तिः—द्रव्यकर्म किट्टसंज्ञं भवति रागादिविभावपरिणामाः कालिकासंज्ञा ज्ञातव्याः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-त्रयं भेदाभेदरूपं परमौषधं जानीहि इति।

भुंजतस्सवि दव्वे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये विविहे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्हगो कादुं ॥२८॥
तह णाणिस्स दु विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजत्तस्सवि णाणं णवि सक्कदि रागदो णेदुं ॥२९॥
जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥३०॥

झाणं हवेइ अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो ।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परमजोईहिं ॥

ध्यानं भवत्यग्निः तपश्चरणे भस्त्रा समाख्याते ।
जीवो भवति लोहं धमितव्यः परमयोगिभिः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपं ध्यानमग्निभवति । द्वादशविधतपश्चरणं भस्त्रा ज्ञातव्या । आसन्नभव्यजीवो लोहं भवति । स च भव्यजीवः पूर्वोक्तसम्यक्त्वाद्यौषधध्यानाग्निभ्यां संयोगं कृत्वा द्वादशविधतपश्चरणभस्त्रया परमयोगिभिः धमितव्यो ध्यातव्यः । इत्यनेन प्रकारेण यथा सुवर्णं भवति तथा मोक्षो भवतीति संदेहो न कर्तव्यो भट्टचार्वाकमतानुसारिभिरिति ।

अर्थ—जिस प्रकार पुण्यका बल हो तो नागफणी नामक औषधीकी जड, हथिनीका मूत्र, सिन्दूर द्रव्य और सीसा इनको भस्त्रा (धोंकनी) की पवनसे अग्निमें पकानेपर लोहा सोना

तह णाणी विय जइया णाणसहावत्तायं पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥३१॥ चउक्कं ॥

भुञ्जानस्यापि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
शंखस्य श्वेतभावो नापि शक्यते कृष्णकः कर्तुम् ॥२८॥
तथा ज्ञानिनोऽपि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
भुञ्जानस्यापि ज्ञानं नापि शक्यते रागतां नेतुम् ॥२९॥
यदा स एव शंखः श्वेतस्वभावं तकं प्रहाय ।
गच्छेत्कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥३०॥

बन जाता है उसी प्रकार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपी औषधिसे तपश्चरणरूपी भिस्त्रा द्वारा ध्यानाग्नि प्रज्वलित करनेपर कर्म कलंक मिटकर आत्मा शुद्ध बन जाता है ।

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई । तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है ।

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥

यथा शंखः पौद्गलिकः यदा शुक्लत्वं प्रहाय ।
गच्छेत् कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥

तात्पर्यवृत्तिः---तथैव च यथा निर्जीवशंखः कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अंतरंगोपादानपरिणामाधीनः सन् श्वेतस्वभावत्वं विहाय कृष्णभावं गच्छेत् तदा शुक्लत्वं त्यजति । इति निर्जीवशंखनिमित्तं द्वितीयान्वयदृष्टान्तगाथा गता ।

तथा ज्ञान्यपि यदि ज्ञानस्वभावं तकं प्रहाय ।
अज्ञानेन परिणतस्तदा अज्ञानतां गच्छेत् ॥३१॥ चतुष्कम् ॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु शंखस्य परद्रव्यमुपभुंजानस्यापि न परेण श्वेतभावः कृष्णीकर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः ।

तथा किल ज्ञानिनः परद्रव्यमुपभुञ्जानस्यापि न परेण ज्ञानमज्ञानं कर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः । ततो ज्ञानिनः परापराधनिमित्तो नास्ति बंधः ।

यथा च यदा स एव शंखः परद्रव्यमुपभुञ्जानोऽनुपभुञ्जानो वा श्वेतभावं प्रहाय स्वयमेव कृष्णभावेन परिणमते तदास्य श्वेतभावः स्वयंकृतः कृष्णभावः स्यात् ।

तथा यदा स एव ज्ञानी परद्रव्यमुपभुञ्जानोऽनुपभुञ्जानो वा ज्ञानं प्रहाय स्वयमेवाज्ञानेन परिणमेत तदास्य ज्ञानं स्वयंकृतमज्ञानं स्यात् । ततो ज्ञानिनो यदि (?) स्वापराधनिमित्तो बंधः ।

अर्थ—जैसा शंखोंका श्वेत स्वभाव है, सो शंख सचित्त अचित्त मिश्रित अनेक प्रकार द्रव्यनिकूं भक्षण करे है, तौऊ ताका श्वेत स्वभाव कृष्ण करनेकूं समर्थ नाहीं हूजिये है। तैसा ज्ञानी भी अनेक प्रकारके सचित्ताचित्तमिश्र द्रव्यनिकूं भोगवे है, तौऊ ताका ज्ञान अज्ञानपणाकूं प्राप्त करनेकूं समर्थ न हूजिये है। बहुरि जैसा सो ही शंख जिस काल अपने तिस श्वेतभावकूं छोडि कृष्णभावकूं प्राप्त होय, तब शुक्लपणाकूं छोडै तैसा ज्ञानी भी अपना तिस ज्ञान स्वभावकूं जिस काल छोडि अज्ञानकरि परिणमै, तिस काल अज्ञानताकूं प्राप्त होय।

टीका—जैसा शंख परद्रव्यकूं भक्षण करता रहे है, ताका श्वेतभावकूं परकरि कृष्णस्वभावस्वरूप करनेकूं समर्थ न हूजिये है। जातैं परकै परभावस्वरूप करनेका निमित्तपणाकी अप्राप्ति है तैसा परद्रव्यकूं भोगवता जो ज्ञानी, ताका ज्ञानकूं अज्ञानता स्वरूप करनेकूं निश्चय करि परकरि नाहीं समर्थ हूजिये है। जातैं परकै परभावस्वरूप करनेका निमित्तपणाकी अप्राप्ति है, तातैं ज्ञानीकै परकै परभावस्वरूपकरने किये अपराधके निमित्ततैं बंध नाहीं है। बहुरि जिस

काल सो ही शंख परद्रव्यकूं भोगता संता होऊ अथवा न भोगता संता होऊ अपना श्वेतभावकूं छोडि आपही कृष्णभावस्वरूप परिणमै, तिस काल तिस शंखका श्वेतभाव अपना ही किया कृष्णभावस्वरूप होय। तैसा ही सोही ज्ञानी परद्रव्यकूं भोगता संता होऊ तथा न भोगता संता होऊ जिस काल अपना ज्ञानकूं छोडि स्वयमेव आप ही अज्ञान करि परिणमै, तिस काल याका ज्ञान अपना ही किया निश्चय करि अज्ञानरूप होय है। तातैं ज्ञानीकै परका किया बंध नाहीं, आपही अज्ञानी होय तब अपना अपराधके निमित्ततैं बंध होय है।

भावार्थ—जैसा शंख श्वेत है, सो परके भक्षणेतैं तौ काला होय नाहीं। जब आप ही कालिमारूप परिणमै, तब काला होय। तैसा ही ज्ञानी उपभोग करता तौ अज्ञानी होय नाहीं। जब आपही अज्ञानरूप परिणमै तब अज्ञानी होय, तब बंध करे है। याका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

कर्त्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत् कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥२०॥

अर्थ—निश्चय करि यह जानूं—जो कर्म है सो अपने करनेवाले कर्ताकूं अपना फल करि बरजोरीतैं तौ नाहीं जोडे है। सो मेरा फलकूं तूं भोगि। जो कर्मकूं करता संता तिस फलका इच्छुक हुवा करे है, सोही तिस कर्मका फल पावे है। तातैं ज्ञानरूप हुवा संता कर्मविषैं दूरी भया है रागकी रचना जाकी ऐसा मुनि है, सो कर्मकूं करता संता भी, कर्मकरि नाहीं बंधे है। जातैं कैसा है यह मुनि? तिस कर्मके फलका परित्यागरूप ही एक स्वभाव जाका।

भावार्थ—कर्म तौ कर्ताकूं जबरीतैं अपना फलतैं जोडै नाहीं। अर जो कर्मकूं करता संता, ताका फलकी इच्छा करै, सोही ताका फल पावे है। तातैं जो ज्ञानी ज्ञानरूप हुवा प्रवर्तै अर कर्मके करने विषैं राग न करै अर तिसका फलकी आगामी इच्छा न करै, सो मुनि कर्मकरि बंधे नाहीं है। आगै इस अर्थकूं दृष्टांतकरि दृढ करे हैं। गाथा—

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं ।
तो सोवि देदि राया विविहे भोगे सुहप्पादे ॥३२॥
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोवि कम्मरायो देदि सुहप्पादगे भोगे ॥३३॥
जह पुण सो चैव णरो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं ।
तो सो ण देदि राया विविहसुहप्पादगे भोगे ॥३४॥
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्तं सेवदे ण कम्मरयं ।
तो सो ण देदि कम्मं विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥३५॥

पुरुषो यथा कोपीह वृत्तिनिमित्तं तु सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३२॥
एवमेव जीवपुरुषः कर्मरजः सेवते सुखनिमित्तं ।
तत्सोपि ददाति कर्मराजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३३॥
यथा पुनः स एव पुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि न ददाति राजा विविधान् सुखोत्पादकान् भोगान् ॥३४॥
एवमेव सम्यग्दृष्टिः विषयार्थं सेवते न कर्मरजः ।
तत्तन्न ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३५॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित्पुरुषो फलार्थं राजानं सेवते ततः स राजा तस्य फलं ददाति । तथा जीवः फलार्थं कर्म सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं ददाति । यथा च स एव पुरुषः फलार्थं राजानं न सेवते ततः स राजा तस्य फलं न ददाति । तथा सम्यग्दृष्टिः फलार्थं कर्म न सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं न ददातीति तात्पर्यं ।

अर्थ—जैसें इस लोकमें कोई पुरुष आजीविकानिमित्त राजाकूं सेवे, तौ सो राजा भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोगनिकूं दे है। ऐसें ही जीवनामा पुरुष सुखके निमित्त कर्मरूप रजकूं सेवे, तौ सो कर्म भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोगनिकूं दे है। बहुरि जैसें सो ही पुरुष आजीविकानिमित्त राजाकूं न सेवे, तौ सो राजा भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोग नाहीं दे है। ऐसें ही सम्यग्दृष्टि है सो कर्मरूप रजकूं विषयनिके अर्थि नाहीं सेवे है, तौ सो कर्म भी ताकूं सुखके उपजावनहारे नाना प्रकारके भोग नाहीं दे है।

टीका—जैसें कोई पुरुष फलके अर्थि राजाकूं सेवे है, तातें राजा ताकूं फल दे है। तैसें जीव है सो फलके अर्थि कर्मकूं सेवे है, तातें सो कर्म ताकूं फल दे है। बहुरि जैसें सो ही पुरुष फलके अर्थि राजाकूं नाहीं सेवे है, तातें सो राजा ताकूं फल नाहीं दे है। तैसें सम्यग्दृष्टि फलके अर्थि कर्मकूं नाहीं सेवे है, तातें सो कर्म ताकूं फल नाहीं दे है, ऐसा तात्पर्य है।

भावार्थ—फलकी वांछा करि कर्म करै, ताका फल पावै, वांछाविना कर्म करै, ताका फल न पावै। अब इहां आशंका उपजी है—जो फलकी वांछाविना कर्म काहेकूं करै? ऐसी आशंका दूरि करनेकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ॥२१॥

अर्थ—जानै कर्मका फल तौ छोड्या अर कर्मकूं करे है यह तौ हम नाहीं प्रतीतिरूप करे हैं, परन्तु यामैं किछू विशेष है—जो या ज्ञानीकै भी कोई कारणतैं किछू सो कर्म याके वशविना आय पडे है, ताकूं आय पडते संते भी यह ज्ञानी निश्चल परमज्ञानस्वभावकेविषैं तिष्ठ्या किछू कर्म करे है कि नाहीं करे है यह कौन जाने?

भावार्थ—ज्ञानीकै परवशतैं कर्म आय पडे है, ताविषैं भी ज्ञानी ज्ञानतैं चलायमान न होय

है। तहां यह ज्ञानी है सो न जानिये कर्म करे है कि नाहीं करे है, यह कौन जानैं ? ज्ञानीकी ज्ञानीही जाने। अज्ञानीका ज्ञानीके परिणामकूं जाननेकूं बल नाहीं, इहां ऐसा जानना, जो ज्ञानी कहनेतैं अविरत सम्यग्दृष्टीतैं लगाय ऊपरके सर्व ही ज्ञानी हैं, तहां अविरतसम्यग्दृष्टि तथा देशविरत तथा आहारविहार करते मुनि तिनिके बाह्यक्रियाकर्म प्रवर्तें हैं, तौऊ अन्तरङ्गमिथ्यात्वके अभावतैं तथा ते यथासंभव कषायके अभावतैं उज्वल हैं। तातैं तिनिकी उजलाईकूं तेही जाने हैं। मिथ्यादृष्टि तिनिकी उजलाईकूं जाने नाहीं। मिथ्यादृष्टि तौ बहिरात्मा है, बाह्यहोतैं भला बुरा माने हैं। अन्तरात्माकी गति मिथ्यादृष्टि कहा जानैं ? आगे इस ही अर्थका समर्थनरूप कहे हैं। जो ज्ञानीकै निःशंकित नामा गुण होय है, ताकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ॥२२॥

अर्थ—यह साहस केवल एक सम्यग्दृष्टि हैं तेही करनेकूं समर्थ हैं। जो भयकरि चलायमान भया जो तीन लोकका जन, तिनने छोड्या है अपना मार्ग ज्याकरि ऐसा वज्रपात पडते संते भी अपने ज्ञानतैं नाहीं चलायमान होय हैं। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि ? स्वभाव ही करि निर्भयपणातैं सर्व ही शंका छोडि करि अपना आत्माकूं ऐसा जाने हैं—जो नाहीं बाध्या जाय है ज्ञानरूप शरीर जाका, ऐसा आप ही करि जानते संते प्रवर्तें हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि निःशंकित गुण सहित होय है। सो ऐसा वज्रपात पडे, जो जाके भय करि तीन लोकके जन मार्ग छोडि दे तौऊ सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपकूं निर्बाध ज्ञानशरीर मानता ज्ञानतैं चलायमान न होय है। ऐसी शंका नाहीं ल्यावै है, जो इस वज्रपाततैं मेरा विनाश होयगा। पर्याय विनसे तौ याका विनाशीक स्वभाव ही है। आगे इस अर्थकूं गाथा करि कहे हैं।

गाथा—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥३६॥

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शङ्का भवन्ति निर्भयास्तेन ।
सप्तभयविप्रमुक्ता यस्मात्तस्मात्तु निश्शङ्का ॥३६॥

आत्मख्यातिः—येन नित्यमेव सम्यग्दृष्टयः सकलकर्मनिरभिलाषाः संतः, अत्यन्तकर्मनिरपेक्षतया वर्तते तेन नूनमेते, अत्यन्त निश्शङ्कदारुणाध्यवसायाः संतोऽत्यंतनिर्भयाः संभाव्यंते ।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव हैं ते निःशङ्क होय हैं, तिस कारण करि निर्भय होय हैं । जातैं सप्तभय करि रहित होय हैं, तातैं निःशंक होय हैं ।

टीका—जाकारण करि सम्यग्दृष्टि हैं ते नित्य ही समस्त कर्मके फलकी अभिलाषातैं रहित भये संते कर्मकी अपेक्षातैं सर्वथा रहितपणा करि वर्तें हैं, ताकारण करि निश्चयतें अत्यन्त निःशंक दारुण उत्कट तीव्र निश्चयरूप दृढ आशयरूप भये संते अत्यन्त निर्भय हैं । ऐसे संभावना कीजिये हैं । अब सप्त भयके कलशरूप काव्य कहे हैं । तहां इस लोकका अर परलोकका ए दोय भय है, ताकी एक काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मनः चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तवापरस्तव परस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो निश्शंकं सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२३॥

अर्थ—यह भिन्न आत्माका चैतन्यस्वरूप लोक है सो शाश्वत है, एक है, सकलजीवनिकैं प्रगट है, जाकूं यह ज्ञानी आत्मा ही स्वयमेव एकाकी केवल अवलोकन करे है । तहां ज्ञानी ऐसैं विचारे है, जो यह चैतन्यलोक है, सो तेरा है बहुरि तिसतैं अन्य लोक है सो परलोक है, तेरा नाहीं । ऐसा विचारता तिस ज्ञानीकै इस लोक अर परलोकका भय काहेतैं होय ? नाहीं होय । तातैं सो ज्ञानी है सो निःशंक भया संता निरंतर आपकूं स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप अनुभवे है ।

भावार्थ—जो इस भवमें लोकनिका डर होय, जो यह लोक मेरा न जानिये कहा बिगाड करेगा ! सो ऐसा तो इह लोकका भय है । बहुरि परभवमें न जानिये, कहा होयगा ? ऐसा भय रहे सो परलोकका भय है । सो ज्ञानी ऐसैं जाने—जो मेरा लोक तौ चैतन्यस्वरूपमात्र एक नित्य है, यह सर्वकै प्रगट है । बहुरि इस लोक सिवाय है सो परलोक है; सो मेरा लोक तौ काहूका बिगाड्या बिगडे नाहीं । ऐसैं विचारता ज्ञानी आपकूं स्वाभाविक ज्ञानरूप अनुभवै, ताकै इस लोकका भय काहेतैं होय ? कदाचित् न होय । अब वेदनाका भयका काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडितछंदः

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२४॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषनिकै याही एक वेदना है जो निराकुल होय करि अपना एक ज्ञानस्वरूपकूं आप अपना ज्ञानभावहीतैं वेदने योग्य है अर आपही वेदनेवाला ऐसा अभेदस्वरूप वेद्यवेदकभावके बलतैं निरन्तर निश्चल वेदिये है—अनुभवन कीजिये है । बहुरि ज्ञानीकै अन्यतैं आई ऐसी वेदना ही नाहीं है तातैं तिसकै तिस वेदनाका भय काहेतैं होय ? नाहीं होय । यातैं ज्ञानी निःशंक भया संता अपना स्वाभाविक ज्ञानभावकूं सदा निरन्तर अनुभवे है ।

भावार्थ—वेदना नाम सुखदुःखका भोगनेका है सो ज्ञानीकै एक अपना ज्ञानमात्रस्वरूपका भोगना ही है । यह अन्यकरि आईकूं वेदना ही नाहीं जाने है । तातैं अन्यागतवेदनाका भय नाहीं है । तातैं सदा निर्भय भया ज्ञानका अनुभवन करे है । अब अरक्षाका भयका काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यत्सन्नाशमुपैति यन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।२५।।

अर्थ—ज्ञानी ऐसैं विचारे है, जो सत्स्वरूप वस्तु है, सो नाशकूं प्राप्त नाहीं होय है, यह

नियमतैं वस्तूकी मर्यादा है। बहुरि ज्ञान है सो आप सत्स्वरूप वस्तु है, ताका निश्चयकरि अन्यकरि कहा राख्या? तातैं तिस ज्ञानकै अरक्षा करनेस्वरूप किछू भी नाहीं है। तातैं तिस अरक्षाका भय ज्ञानीकै काहेतैं होय? नाहीं होय है। ज्ञानी तौ अपना स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता सदा आप अनुभवै है।

भावार्थ—ज्ञानी ऐसैं जाने है, जो सत्तारूप वस्तूका कदाचित् नाश नाहीं अर ज्ञान आप सत्तास्वरूप है। सो याका किछू ऐसा नाहीं है—जाकी रक्षा किये रहे; नातरि नष्ट होय जाय। तातैं ज्ञानीकै अरक्षाका भय नाहीं, निःशंक भया संता आप स्वाभाविक अपना ज्ञानकूं सदा अनुभवै है। अब अगुप्तिभयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यच्छक्तः कोऽपि परप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२६॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे हैं, जो वस्तूका निजरूप है सो ही परमगुप्ति है। सो ताविषैं पर है सो कोई भी प्रवेश करनेकूं समर्थ नाहीं है। बहुरि ज्ञान है सो पुरुषका स्वरूप है सो अकृत्रिम है, यातैं याकै अगुप्ति किछू भी नाहीं है। तातैं तिन अगुप्तिका भय ज्ञानीकै नाहीं है। याहीतैं ज्ञानी निःशंक भया संता निरंतर आप स्वाभाविक अपना ज्ञानभावकूं सदा अनुभवे है।

भावार्थ—गुप्ति नाम जामैं काहूका प्रवेश नाहीं ऐसा गढ दुर्गादिकका है। तहां यह प्राणी निर्भय होय वसै। ऐसा गुप्त प्रदेश न होय चौडा होय ताकूं अगुप्ति कहिये। तहां बैठे प्राणीकै भय उपजे। तहां ज्ञानी ऐसा जाने है, जो वस्तूका निजस्वरूप है, तामैं परमार्थकरि दूजे वस्तूका प्रवेश नाहीं, यह ही परमगुप्ति है। सो पुरुषका स्वरूप ज्ञान है। तामैं काहूका प्रवेश नाहीं तातैं ज्ञानीका काहेतैं भय होय? स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरंतर अनुभवे है। अब मरणभयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नो छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२७॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे है, जो प्राणनिका उच्छेद होना, तिसकूं मरण कहे हैं। सो आत्माका ज्ञान है सो निश्चयकरि प्राण है सो ज्ञान है सो स्वयमेव शाश्वता है, यातैं याका कदाचित् भी उच्छेद नाहीं होय है। यातैं तिस आत्माकै मरण किछू भी नाहीं है सो ज्ञानीकै ऐसैं विचारतैं तिस मरणका भय काहेतैं होय? तातैं सो ज्ञानी निःशंक भया संता, निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञानभावकूं आप सदा अनुभवे है।

भावार्थ—इंद्रियादिक प्राण विनसैं ताकूं लोक मरण कहे हैं। सो आत्माकै इंद्रियादिक प्राण परमार्थस्वरूप नाहीं निश्चयकरि ज्ञान प्राण है, सो अविनाशी है, ताका विनाश नाहीं। तातैं आत्माकै मरण नाहीं यातैं ज्ञानीकै मरणका भय नाहीं। यातैं ज्ञानी अपना ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरंतर आप अनुभवे है। अब आकस्मिक भयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो नि.शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२८॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे है जो ज्ञान है सो एक है, अनादि है, अनंत है, अचल है, सो यह आपहीतैं सिद्ध है। सो जेतैं है तेतैं सदा सो ही है, याविषैं दूजेका उदय नाहीं है, तातैं याविषैं अकस्मात् नवा किछू उपजे ऐसा किछू भी नाहीं है। ऐसैं विचारतैं तिस अकस्मात् होनेका भय काहेतैं होय? नाहीं होय है। यातैं सो ज्ञानी निःशंक भया संता निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञानस्वभावकूं सदा अनुभवे है

भावार्थ—जो कबहु अनुभवमें न आया ऐसा किछू अकस्मात प्रगट हुवा भयानक पदार्थ,

ताकरि प्राणीकै भय उपजे, सो आकस्मिकभय है। सो आत्माका ज्ञान है सो अविनाशी अनादि अनंत अचल एक है। सो याविषैं दूजेका प्रवेश नाहीं, नवीन अकस्मात् कछू होय नाहीं, सो ऐसा ज्ञानी आपकूं जाने, ताकै अकस्मात भय काहेतैं होय?। तातैं ज्ञानी अपना ज्ञानभावकूं निःशंक निरंतर अनुभवे है। ऐसे सप्त भय ज्ञानीकै नाहीं हैं। इहां प्रश्न—जो अविरतसम्यग्दृष्टि आदिककूं भी ज्ञानी कहे हैं, अर तिनिकै भयप्रकृतिका उदय है, ताके निमित्ततैं भय भी देखिये है। सो ज्ञानी निर्भय कैसा है? ताका समाधान—जो भयप्रकृतिके उदयके निमित्ततैं भय उपजे है ताकी पीडा न सही जाय है। जातैं अंतरायके प्रबल उदयतैं निर्बल है, तातैं तिस भयका इलाज भी करे है। परंतु ऐसा भय नाहीं--जाकरि स्वरूपका ज्ञान श्रद्धानतैं चिगि जाय। बहुरि भय उपजे है सो मोहकर्मकी भयनामा प्रकृतिका उदयका दोष है, ताका आप स्वामी होय, कर्ता न बने है ज्ञाता ही है। आगे कहे हैं, सम्यग्दृष्टीकै निःशंकितादि चिन्ह हैं, ते कर्मकी निर्जरा करे हैं। शंकादिक करि किया बंध नाहीं होय है। ताकी सूचनिकाका काव्य है।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बन्धः पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥२६॥

अर्थ--जातैं सम्यग्दृष्टिके निःशंकित आदि चिन्ह हैं ते समस्तकर्मकूं हणै हैं--निर्जरा करे हैं। तातैं फेरि भी इसका उदय होतैं नवीन कर्मका किञ्चिन्मात्र भी बंध नाहीं होय है। तिस कर्मका पहलै बंध भया था, ताके उदयकूं भोगवता संताकै ताकी नियमकरि निर्जरा ही होय है। कैसा है सम्यग्दृष्टि? टंकोत्कीर्णवत् एक स्वभावरूप जो अपना निजरस, तिसकरि परिपूर्ण भया जो ज्ञान, ताका सर्वस्वका भोगनहारा है--आस्वादक है।

भावार्थ--सम्यग्दृष्टि पहलै भयादिप्रकृति बांधी थी ताका उदयकूं भोगवे है, तौऊ ताके निःशंकितादि गुण प्रवर्तें हैं, ते पूर्वकर्मकी निर्जरा करे हैं। अर शंकादिक करि कीया बंध नाहीं होय

है। अब इस कथनकूं गाथामें कहे हैं। तहां प्रथम ही निःशंकित अंगकी गाथा-

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्ममोहबाधकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३७॥

यश्चतुरोपि पादान् छिनत्ति तान् कर्ममोहबाधाकरान्।
स निश्शंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३७॥

आत्मख्यातिः---यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन कर्मबंधशंकाकरमिथ्यात्वादिभावाभावान्निश्शंकः, ततोऽस्य शंकाकृतो नास्ति बंधः। किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो आत्मा कर्मके बंधका कारण जो मोह, ताके करनेवाले मिथ्यात्वादि भावरूप च्यारि पाय, तिनिकूं निःशंक भया संता काटे है, सो आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमय है, तिस भावकरि कर्मबंधका कारण शंकाके करनेवाले ऐसे मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए च्यारि भाव, तिनिका याकै अभाव है, तातैं निःशंक है, तातैं याकै शंकाकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके कर्म उदय आवे है ताका आप स्वामीपणाका अभावतैं कर्ता न होय है। तातैं भयप्रकृतिका उदय आवतैं भी शंकाका अभावतैं स्वरूपतैं च्युत नाहीं होय है, निःशंक है। तातैं याकै शंकाकृत बंध नाहीं होय है, कर्म रस दे खिरि जाय है। आगैं निष्कांक्षित गुणकी गाथा है—

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३८॥

योन करोति तु कांक्षां कर्मफलेषु तथा च सर्वधर्मेषु ।
स निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३८॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि कर्मफलेषु सर्वेषु वस्तुधर्मेषु च कांक्षाभावान्निष्कांक्षस्ततोऽस्य कांक्षाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ—जो आत्मा कर्मके फलनिविषैं तथा सर्व धर्मनिविषैं वांछा नाहीं करे है, सो चेतयिता आत्मा निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही कर्मके फलनिविषैं तथा सर्व ही वस्तुके धर्मनिविषैं वांछाके अभावतैं निष्कांक्ष है—निर्वांछक है । तातैं याकै कांक्षाकरि किया हुवा बंध नाहीं है । तौ कहा है ? निर्जरा ही है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै कर्मका फलकेविषैं तथा सर्व धर्म कहिये कांच कंकणपणा आदि तथा निंदा प्रशंसा आदिके वचनरूप पुद्गलके परिणमन इत्यादि अथवा सर्वधर्म कहिये अन्यमतीनिकरि माने अनेक प्रकार सर्वथा एकांतरूप व्यवहार धर्मके भेद, तिनिविषैं वांछा नाहीं है । तातैं वांछाकरि होता जो बंध, सो याकै नाहीं है । वर्तमानकी पीडा नहीं सही जाय ताके मेटनेके इलाजकी वांछा चारित्रमोहके उदयतैं है यह ताका आप कर्ता न होय है, कर्मका उदय जाणि ताका ज्ञाता है, तातैं वांछाकरि किया बंध नाहीं है । आगै निर्विचिकित्सागुणकी गाथा है ।

जो ण करेदि दु गुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३९॥

यो न करोति जुगुप्सां सर्वेषामेव धर्माणां ।
स खलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३९॥

आत्मख्यातिः—यतोहि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन सर्वेष्वपि वस्तुधर्मेषु जुगुप्साऽभावान्निर्विचिकित्सः ततोऽस्य विचिकित्साकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ--जो जीव सर्व ही वस्तूके धर्मनिकी जुगुप्सा कहिये ग्लानि, ताहि न करे है, सो निश्चयकरि आत्मा निर्विचिकित्स कहिये विचिकित्सादोषरहित सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका--जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही वस्तुधर्मनिविषैं जुगुप्साके अभावतैं निर्विचिकित्स है, ग्लानितारहित है । तातैं याके विचिकित्साकरि किया बंध नाहीं होय है । तौ कहा है ? निर्जरा ही होय है ।

भावार्थ--सम्यग्दृष्टि वस्तूके धर्म जे क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदि भाव तथा विष्टा आदि मलिनद्रव्य, तिनिकेविषैं ग्लानि नाहीं करे हैं । जुगुप्सानामा कर्मप्रकृतिका उदय आवे ताका आप कर्ता न होय है । तातैं जुगुप्साकरि किया याकै बंध नाहीं है । प्रकृति रस दे खिरि जाय है । तातैं निर्जरा ही है । आगे अमूढदृष्टि अंगकी गाथा है ।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४०॥

यो भवति, असंमूढः चेतयिता सर्वेषु कर्मभावेषु ।
स खलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४०॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि भावेषु मोहाभावादमूढदृष्टिः ततोऽस्य मूढदृष्टिकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ--जो जीव सर्वभावनिविषैं असंमूढ कहिये मूढ नाहीं होय है, यथार्थवस्तुकूं जाने है, सो सम्यग्दृष्टि चेतयिता निश्चयकरि अमूढदृष्टि जानना ।

टीका--जातैं जो निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व-

भावनिविषैं मोहके अभावतैं अमूढदृष्टि है। तातैं याकै मूढदृष्टिकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि सर्वपदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जाने है. तिनिपरि राग द्वेष मोहके अभावतैं अयथार्थदृष्टि नाहीं पडे है, अर चारित्रमोहके उदयतैं इष्टानिष्टभाव उपजे, ताकूं उदयकी वरजोरी जानि तिनि भावनिका कर्ता न होय है। तातैं मूढदृष्टिकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है। प्रकृति रस दे खिरि जाय है। सो निर्जरा ही है। अब उपगूहनगुणकी गाथा है।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४१॥

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहनकस्तु सर्वधर्माणां।
स उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४१॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन समस्तात्मशक्तीनामुपबृंहणादुपबृंहकः, ततोऽस्य जीवस्य शक्तिदौर्बल्यकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव सिद्धनिकी भक्तिकरि संयुक्त होय अर अन्य वस्तुके सर्वधर्मनिका उपगूहक कहिये गोपनेवाला होय, सो उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावमयपणा करि आत्माकी समस्तशक्तिका उपबृंहण कहिये बधावनेतैं उपबृंहक होय है। तातैं याकै जीवकी शक्तीका दुर्बलपणाकरि किया बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही होय है।

भावार्थ--सम्यग्दृष्टि उपगूहनगुणकरि संयुक्त होय है। सो उपगूहन नाम छिपावनेका है। सो निश्चयनय प्रधानकरि ऐसा कह्या—जो अपना उपयोग सिद्धभक्तिमैं लगावे अर सर्वधर्मनिका

उपगूहक होय, सो सिद्धभक्तिमें उपयोग लगाया तब अन्य धर्मपरि दृष्टि ही न रही, तब सर्व ही छिपाये अर दूजा नाम उपगूहन कह्या। सो अपना उपयोग सिद्धनिके स्वरूपमें लगाया तब अपना आत्माकी सर्व शक्ति बधाई, आत्मा पुष्ट भया सो दुर्बलताकरि बंध होय था, सो न होय है, तब निर्जरा ही होय। बहुरि जेतैं अंतरायका उदय है, तेतैं निबलाई है। परंतु याके अभिप्रायमें निबलाई नाहीं है। कर्मके उदयकूं जीतनेका अपनी शक्तिसारू महान् उद्यम होय है। आगै स्थितीकरण गुणकी गाथा है।--

उम्मंगं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सोठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४२॥

उन्मार्गं गच्छंतं शिवमार्गे यः स्थापयत्यात्मानं।
स स्थितिकरणेन युक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४२॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन मार्गे एव स्थितिकरणात् स्थितिकारी ततोऽस्य मार्गच्यवनकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव अपने आत्माकूं भी उन्मार्ग चालतेकूं मार्गविषैं स्थापन करै, सो चेतयिता स्थितीकरणगुणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो निश्चयकरि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावमय है, तातैं जो अपना आत्मा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षका मार्ग, तातैं छूटै तौ ताकूं तिस ही मार्गविषैं स्थापै, सो स्थितिकारी है। तातैं मार्गतैं छूटनेकरि किया याकै बंध नाहीं होय। तौ कहा होय है ? निर्जरा ही होय है।

भावार्थ—जो अपना आत्मा अपने स्वरूपरूप मोक्षमार्गतैं चिगै, ताकूं तिस ही मार्गविषैं

स्थापै, सो स्थितीकरणगुणयुक्त है। ताकै मार्गतैं छूटनेकरि वंध होय सो वंध नाहीं होय। उदय आये कर्म रस देकरि खिरि जाय है, तातैं निर्जरा ही है। आगे वात्सल्यगुणकी गाथा है—

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्ह साधूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४३॥

यः करोति वत्सलत्वं त्रयाणां साधूनां मोक्षमार्गे।
स वात्सल्यभावयुक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां स्वस्मादभेदबुद्ध्या सम्यग्दर्शनान्मार्गवत्सलः, ततोऽस्य मार्गानुपलंभकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव तीन जे साधु कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अथवा आचार्य उपाध्याय साधुपदसहित आत्मा, तिनिका रूप जो मोक्षमार्ग, ताविषैं वात्सल्यभाव करै सो वत्सलभावकरि युक्त सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं आपतैं अभेदबुद्धि करि भलै प्रकार देखनेतैं मोक्षमार्गका वत्सल है अतिप्रीतियुक्त है तातैं याकै मार्गकी अप्राप्ति करि किया कर्मका वंध नाहीं है। तौं कहा है? निर्जरा है।

भावार्थ—वत्सलपणा नाम प्रीतिभावका है, सो मोक्षमार्गरूप अपना स्वरूपविषैं अनुरागयुक्त होय, ताकै मार्गकी अप्रीति करि किया कर्मका वंध नाहीं, कर्म रस देकरि खिरि जाय है, तातैं निर्जरा ही है। आगे प्रभावनागुणकी गाथा है—

विज्जारहमारुढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४४॥

विद्यारथमारूढः मनोरथरयान् हंति यश्चेतयिता ।
स जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४४॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञानभावमयत्वेन ज्ञानस्य समस्तशक्तिप्रबोधेन प्रभावजननात्प्रभावनकरः ततोस्य ज्ञानप्रभावनाप्रकर्षकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ—जो जीव विद्यारूप रथविषैं चढ्या मनरूप जो रथ चलनेका मार्ग, ताविषैं भ्रमे है, सो जिनेश्वरका ज्ञानका प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका—जातैं जो निश्चय करि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि ज्ञानकी समस्तशक्तिका फैलावने करि प्रभावके उपजावनेतैं प्रभावना करनेवाला है । तातैं याकै ज्ञानकी प्रभावनाका अप्रकर्ष कहिये वधावना नाहीं, ताकरि किया बंध नाहीं होय है । तौ कहा है ? निर्जरा ही है ।

भावार्थ—प्रभावना नाम उद्योत करना प्रगट करना इत्यादिकका है, सो जो अपना ज्ञानकूं निरंतर अभ्यास करि प्रगट करे वधावे, ताकै प्रभावना अंग होय है । ताकै अप्रभावनाकृत कर्मका बंध नाहीं है, कर्म रस दे खिरि जाय है । तातैं निर्जरा ही है । इहां गाथामैं ऐसैं कह्या—जो विद्यारूपी रथविषैं आत्माकूं थापि भ्रमे, सो ज्ञानकी प्रभावनायुक्त सम्यग्दृष्टि है । सो यह निश्चय प्रभावना है । जैसैं व्यवहार करि जिनबिम्बकूं रथविषैं स्थापि नगर वन आदि विषैं भ्रमाय प्रभावना करै, तैसैं जानना । ऐसैं सम्यग्दृष्टिज्ञानीकै निःशंकित आदिक आठ गुण कर्मकी निर्जराके कारण कहे । ऐसे ही और भी सम्यक्त्वके गुण निर्जराके कारण जानना ।

बहुरि इहां निश्चयनयप्रधान कथन है, तातैं आत्माहीके परिणाम निःशंकारूप आदिक करि कहे । ताका संक्षेप ऐसा—जो सम्यग्दृष्टि आत्मा अपना ज्ञानश्रद्धानविषैं निःशंक होय भयके निमित्ततैं स्वरूपतैं चिगै नाहीं अथवा सन्देहयुक्त न होय, ताकै निःशंकित गुण कहिये ॥१॥ बहुरि जो कर्मका फलकी वांछा न करैं तथा अन्य वस्तुके धर्मनिकी वांछा न करै, ताकै निष्कांक्षितगुण होय

॥५॥ वहुरि जो वस्तुके धर्मनिविषैं ग्लानि न करै, ताकै निर्विचिकित्सा गुण होय है ॥३॥ वहुरि जो स्वरूपविषैं मूढ न होय यथार्थ जानै; ताकै अमूढदृष्टिगुण होय है ॥४॥ वहुरि आत्माकूं स्वरूपतैं चिगताकूं स्थापै, ताकै स्थितीकरण गुण होय है ॥५॥ वहुरि जो आत्माकूं शुद्धस्वरूपमें लगावै आत्माकी शक्ति वधावै अन्य धर्मनिकूं गौण करै, ताकै उपगूहन गुण होय है ॥६॥ वहुरि जो अपना स्वरूपविषैं विशेष अनुराग राखै, ताकै वात्सल्य गुण होय है ॥७॥ वहुरि जो आत्माका ज्ञानगुणकूं प्रकाशरूप प्रगट करै, ताकै प्रभावना गुण होय है ॥८॥ सो ए सर्व ही गुण इनिके प्रतिपक्षी दोषनि करि कर्मका बंध होय था, ताकूं न होने दे हैं अर इनिकूं होतें चारित्रमोहका उदयरूप शंकादि प्रवर्तें तौ, तिनिकी निर्जरा ही होय है, वन्ध नाहीं है। जातें वन्ध तौ मिथ्यात्वसहित ही प्रधानता करि कह्या है।

जो चारित्रमोहके उदयनिमित्ततैं सम्यग्दृष्टीकै सिद्धान्तमें गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं वन्ध कह्या है, सो वह भी वन्ध निर्जरारूप ही जानना। जातैं सम्यग्दृष्टीकै जैसैं मिथ्यात्वके उदयमें वांध्या कर्म क्षरे है, तैसैं ही नवीन वन्ध्या भी क्षरे है, याकै तिसका स्वामीपणाका अभाव है। तातैं आगामी वन्धरूप नाहीं, निर्जरारूप ही है। जैसे कोई पुरुष पराया द्रव्य उधार ल्यावै तिसतैं आपकै ममत्वबुद्धि नाहीं, वर्तमानमें तिस द्रव्यतैं किछू कार्य करि लेना होय सो करि पैलेकूं करारकै करार दे है। जेतैं अपने घरमें भी पड्या रहै तौ तिसतैं ममत्व नाहीं। तातैं तिस पुरुषकै तिस द्रव्यका वन्धन नाहीं है। परकूं दिया वरावर ही है। तैसैं ही ज्ञानी कर्मद्रव्यकूं जाने है, तातैं ममत्व नाहीं है। सो छता भी निर्जरा सारिखा ही है ऐसैं जानना।

वहुरि ए निःशंकित आदिक आठ गुण व्यवहारनयकरि व्यवहार मोक्षमार्गपरि लगाय लेणे। तहां जिनवचनविषैं सन्देह नाहीं, भय आये व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्रतैं चिगना नाहीं, सो निःशंकितपणा है ॥१॥ वहुरि संसार देह भोगकी वांछाकरि तथा परमतकी वांछाकरि व्यवहारमोक्षमार्गतैं चिगै नाहीं, सो निष्कांक्षितपणा है ॥२॥ वहुरि अपवित्र दुर्गन्धादिक वस्तुकै निमित्ततैं

व्यवहारमोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमैं ग्लानि न करै, सो निर्विचिकित्सा है ॥३॥ बहुरि देव शास्त्र गुरु लोककी प्रवृत्ति अन्यमतादिक तत्त्वार्थका स्वरूपविषैं मूढता न राखै, यथार्थ जानि प्रवर्तें सो अमूढदृष्टि है ॥४॥ बहुरि धर्मात्मामैं कर्मके उदयतैं दोष उपजै, ताकूं गौण करै अर व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकूं बधावै सो उपगूहन तथा उपबृंहण है ॥५॥ बहुरि व्यवहारमोक्षमार्गतैं चिगतेकूं थिरता करै सो स्थितिकरण है ॥६॥ बहुरि व्यवहार मोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवालेतैं विशेष अनुराग होय, सो वात्सल्य है ॥७॥ बहुरि व्यवहारमोक्षमार्गका अनेक उपाय करि उद्योत करै, सो प्रभावना है ॥८॥ सो ए व्यवहारनय प्रधान करि कहे हैं। सो इहां निश्चयप्रधान कथनविषैं इनिकी गौणता है। सम्यग्ज्ञानरूप प्रमाणदृष्टीमैं दोऊ ही प्रधान हैं, स्याद्वादमतमें किछू विरोध नाहीं है। अब निर्जरा अधिकारकूं पूर्ण किया, सो निर्जराका स्वरूप यथार्थ जाननेवाला अर कर्मका नवीन बन्ध रोकि निर्जरा करनेवाला जो सम्यग्दृष्टि, ताकी महिमा करे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः।

रुन्धन् बन्धं नवमिति निजैः सङ्गतोऽष्टाभिरंगैः प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरङ्गं विगाह्य ॥३०॥

इति निर्जरा निष्क्रांता।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ षष्ठोऽङ्कः।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव है सो आप स्वयमेव अपने निजरसमें मस्त भया संता आदि मध्य अन्तकरि रहित सर्वव्यापक एकप्रवाहरूप धारावाहीज्ञानरूप होय करि अर आकाशका मध्यरूप जो रङ्गभूमि अतिनिर्मल ताविषैं अवगाहन करि नृत्य करे है। कैसा है सम्यग्दृष्टि? नवीन बंधकूं तौ पूर्वोक्त प्रकार रोकता संता है, बहुरि पहिली बांध्या था ताकूं अपने अष्ट अङ्गनिकरि सहित भया संता निर्जराके प्रगट होनेकरि नाशकूं प्राप्त करता संता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै शंकादिक करि किया नवीन बंध तौ होय नाहीं अर आठ अंगनि

करि सहित है, तातैं निर्जराका उदय होनेकरि पूर्वबंधका नाश होय है। सो एक प्रवाहरूप ज्ञानरूप रसका आप पान करि 'जैसे कोई मद पीयकरि मग्न भया नृत्यके अखाडेमैं नृत्य करे है' तैसैं निर्मल आकाशरूप रंगभूमिमैं नृत्य करे है।

इहां कोई कहे—सम्यग्दृष्टिकै निर्जरा होना तौ कहते आये अर वन्ध होना न कह्या। सो गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं सिद्धान्तमें अविरतसम्यग्दृष्टीतैं लगाय बंध कह्या है, अर घातिकर्मनिका कार्य आत्माका गुण घात करना है, सो दर्शन ज्ञान सुख वीर्य इनि गुणनिका घात भी विद्यमान है, सो चरित्रमोहका उदय नवीन वन्ध भी करे ही है, अर मोहके उदयमें भी वन्ध न मानिये तौ मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व अनन्तानुवन्धीका उदय होते भी बंधका न होना क्यों न मानिये? ताका समाधान—जो वन्ध होनेमें प्रधान मिथ्यात्व अनंतानुवंधीका उदय ही है अर सम्यग्दृष्टीकै तिनिका उदयका अभाव है, सो चारित्रमोहके उदयतें यद्यपि सुखगुणका घात है अर अल्प स्थिति अनुभाग लिये मिथ्यात्व अनंतानुवंधी विना तथा तिनिका लारकी अन्य प्रकृतिविना घातिकर्मकी प्रकृतिनिका तथा अघातिकर्मकी प्रकृतिनिका वन्ध भी होय है। तोऊ जैसा मिथ्यात्व अनंतानुवंधीसहित होय तैसा होय नाहीं। अनन्तसंसारका कारण तौ मिथ्यात्व अनंतानुवन्धी है, तिनिका अभाव भये पीछे तिनिका वन्ध होय नाहीं। अर आत्मा ज्ञानी भया तव अन्य बंधकी कौन गिनती करे? वृक्षकी जड कटै पीछे हरे पान रहनेका कहा अवधि? तातैं इस अध्यात्मशास्त्रविषैं तौ सामान्यपणै ज्ञानी अज्ञानी होनेहीका प्रधान कथन है। ज्ञानी भये पीछे किछू कर्म रहे हैं ते सहज ही मिटते जायगे। जैसे कोई पुरुष दरिद्री था, सो झोपडीमैं वसै था, ताकूं भाग्य उदयकरि वडा महलकी धनसहित प्राप्ति भई। तामैं वहुत दिनका कजोडा भरया था, सो या पुरुषने आय प्रवेश किया तिसही दिनतैं यह तौ महलका धनी सम्पदावान् वणि गया। अब कजोडा झाडना है, सो अनुक्रमतें अपना वलके अनुसार झाडे है। जव सब झाडि जायगा उज्वल होय जायगा, तव परमानन्द भोगेहीगा, ऐसें जानना। ऐसें रंगभूमिमैं

निर्जराका प्रवेश भया था सो अपना स्वरूप प्रगट दिखाय निकसि गया । इहां ताई गाथा २३६ भई कलश १६२ भये ।

ऐसैं समयसार नाम ग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी वचनिकाविषैं
छठा निर्जरा अधिकार पूर्ण भया ॥६॥

सवैया तेईसा

सम्यकवंत महंत सदा समभाव रहै दुख संकट आये ।
कर्म नवीन बंधे न तवै अर पूरव बंध झडे विन भाये ॥
पूरण अङ्ग सुदर्शनरूप धरै निति ज्ञान बढै निज पाये ।
यों शिवमारग साधि निरंतर आनंदरूप निजातम थाये ॥ १ ॥



अथ बंधाधिकारः ।

दोहा—रागादिकतैं कर्मको बंध जानि मुनिराय । तजै तिनहि समभाव करि नमूं सदा तिनि पाय ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशति बंधः ।

अब टीकाकारके वचन हैं, जो अब बंध प्रवेश करे है । जैसैं नृत्यके अखाडेमैं स्वांग प्रवेश करे है, तैसैं रंगभूमिमैं बंधतत्त्वका स्वांग प्रवेश करे है । तहां प्रथम ही सर्व तत्त्वका यथार्थ जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान, सो बंधकूं दूरि करता संता प्रगट होय है ऐसैं अर्थकूं ले मंगलरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ।

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत् क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाटचेन वन्धं धुनत् ।
आनन्दामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटं नाटयद्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥१॥

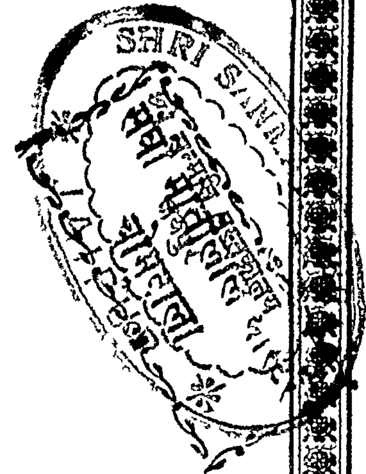
अर्थ—ज्ञान है सो उदय होय है। कहा करता संता उदय होय है ? बंध है ताहि उडावता संता उदय होय है। कैसा है बंध ? रागका उद्गार जो उगलना उदय होना सो ही भया महा-रस, ताकरि समस्त जगतकूं प्रमत्त—प्रमादी—मतवाला करिकै अर रसके भावकरि भर्या जो बडा नृत्य, ताकरि नाचता है, ऐसा बंधकूं उडावता है। बहुरि आप ज्ञान कैसा है ? आनंदरूप अमृतका नित्य भोजन करनेवाला है। बहुरि अपनी जाननक्रियारूप स्वाभाविक अवस्था ताकूं प्रगटरूप नचावता संता उदय होय है। बहुरि धीर है, उदार है, निश्चल है, बडा जाका विस्तार है। बहुरि अनाकुल है—जामैं किछू आकुलताका कारण नाहीं रहे है। बहुरि निरुपधि है—परिग्रहतैं रहित है--किछू परद्रव्यसंबंधी ग्रहणत्याग नाहीं है। ऐसा ज्ञान उदयकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—बंधतत्त्व रंगभूमामैं प्रवेश करे है, ताकूं ज्ञान उडायकरि आप प्रगट होय नृत्य करैगा, ताकी महिमा या काव्यमें प्रगट करी है। ऐसा ज्ञान अनंतस्वरूप आत्मा सदा प्रगट रहौ। आगै बंधतत्त्वका स्वरूप विचारे हैं। तहां प्रथम बंधका कारणकूं प्रगट कहे हैं। गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तोदु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूणय करेदि सत्थेहि वायामं ॥१॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकदलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥२॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जदु किं पच्चयगोदु तस्स रयबंधो ॥३॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥४॥

**एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चेट्ठासु ।
रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ॥५॥**

यथा नाम कोऽपि पुरुषः स्नेहाभ्यक्तस्तु रेणुबहुले ।
स्थाने स्थित्वा करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥१॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीफलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातं ॥२॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतश्चिंत्यतां किंप्रत्ययकस्तु तस्य रजोबन्धः ॥३॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबन्धः ।
निश्चयो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥४॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्वर्तमानो बहुविधासु चेष्टासु ।
रागादीनुपयोगे कुर्वाणो लिप्यते रजसा ॥५॥



आत्मख्यातिः—इह खलु यथा कश्चित् पुरुषः स्नेहाभ्यक्तः स्वभावत एव रजोबहुलायां भूमौ स्थितः शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणः, अनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् रजसा बध्यते । तस्य कतमो बन्धहेतुः ? न तावत्स्वभावत एव रजोबहुला भूमिः, स्नेहानभ्यक्तानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात् । न शस्त्रव्यायामकर्म, स्नेहानभ्यक्तानामपि तस्मात् तत्प्रसंगाद् । नानेकप्रकारकरणानि, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तैस्तत्प्रसंगात् । न सचित्ताचित्तवस्तूपघातः, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तस्मिंस्तत्प्रसंगात् । ततो न्यायबलेनैवैतदायातं यत्तस्मिन् पुरुषे स्नेहाभ्यंगकरणं सम्बन्धहेतुः । एवं मिथ्यादृष्टिः, आत्मनि रागादीन् कुर्वाणः स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणोऽनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा बध्यते । तस्य कतमो बन्धहेतुः ? न तावत्स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुलो लोकः, सिद्धानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात् । न कायवाङ्मनःकर्म, यथाख्यातसंयतानामपि तत्प्रसंगात् । नानेकप्रकार-

करणानि, केवलज्ञानिनामपि तत्प्रसंगात् । न सचित्ताचित्तवस्तूपघातः, समितितत्पराणामपि तत्प्रसंगात् । ततो न्यायबलेनैतदेवायातं यदुपयोगे रागादिकरणं संबंधहेतुः ।

अर्थ—नाम कहिये प्रगटकरि कहे हैं, जो जैसे कोई पुरुष अपने देहकै स्नेह कहिये तैलादिक लगायकरि, अर रज जहां बहुत ऐसे स्थानविषैं तिष्ठिकरि अर शस्त्रनिकरि व्यायाम करे है अभ्यास करे है । तहां तालवृक्षका पेड तथा केलीका पेड तथा वांसका पिंड इत्यादिकूं छेदे है भेदे है । बहुरि सचित्त अचित्त द्रव्यनिका उपघात करे है । ऐसे नानाप्रकारके करणनिकरि उपघात करता तिस पुरुषकै निश्चयतैं विचारो, ताकै रजका बंध लगे है, सो कौनसे कारणकरि लगे है ? तहां तिस नरका जो तैल आदिका सचिक्कणभाव है, तिसकरि ताका बंध लगे है, यह निश्चयतैं जानना । बहुरि वाकी कायकी चेष्टा हैं, तिनिकरि सो रजका बंध नाहीं है, यह निश्चय है । ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव बहुत प्रकारकी चेष्टाविषैं वर्तमान है । सो अपना उपयोगविषैं रागादिक भावनिकूं करता संता कर्मरूप रजकरि लिपे है, बंध करे है ।

टीका—इस लोकमें निश्चयकरि जैसे कोई पुरुष स्नेह तैल आदिक, ताकरि अभ्यक्त कहिये मर्दनयुक्त भया संता, जामैं अपने स्वभावतैं ही रज बहुत होय ऐसी भूमिविषैं तिष्ठ्या शस्त्रनिका व्यायाम कहिये अभ्यासरूप कार्यकूं करता संता अनेक प्रकारके कारणनिकरि सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं खापता संता, तिस भूमीकी रजकरि बंधे है, लिपे है, ताकैं विचारिये—जो बंधका कारण इनिमैं कौन है ? तहां प्रथम तौ स्वभावहोतैं जामैं रज बहुत ऐसी भूमि सो रजके बंधनेकूं कारण नाहीं है । जो भूमि ही कारण होय तौ जिनिकै तैल आदिक नाहीं लग्या अर तिस भूमीविषैं तिष्ठै तिनिकै भी तिस रजका बंध लग्या चाहिये, सो है नाहीं है । बहुरि शस्त्रनिका अभ्यास करना कर्म है, सो भी तिस रजके बंध लगनेकूं कारण नाहीं है । जो शस्त्रनिका अभ्यास बंधनेका कारण होय, तौ जिनिकै तैल आदि लग्या नाहीं, तिनिकै भी तिस शस्त्राभ्यास करनेतैं रजका बंध लागै । बहुरि अनेक प्रकार करण ते भी तिस रजके बंधनेकूं कारण नाहीं

है। जो ऐसे होय, तौ जिनिकै तैल आदि न लग्या होय, तिनिकै भी तिनि करणनिकरि रजका बंध लागै। बहुरि सचित्त अचित्त वस्तूनिका उपघात है, सो भी तिस रजके लगनेकूं कारण नाहीं है। जो ऐसैं होय तौ जिनिकैं तैल आदि लग्या नाहीं तिनिकै भी सचित्त अचित्तका घात करते संते रजका बंध लागै। तातैं न्यायका बलकरि ही यह आया, जो तिस पुरुषविषैं तैल आदि सचिक्कणका मर्दन करना है सो बंधका कारण है। ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव अपना आत्माविषैं राग आदि भावनिकूं करता संता स्वभावहीतैं कर्मके योग्य जे पुद्गल तिनिकरि भरचा जो लोक, ताविषैं काय वचन मनकी क्रियाकूं करता संता अनेक प्रकारके करणनिकरि सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं घातता संता, कर्मरूप रजकरि बंधे है। तहां विचारिये, बंधका कारण अतिशयवान् कौन है? तहां प्रथम तौ स्वभावहीतैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि बहुत भरया लोक बंधका कारण नाहीं है। जो तिनितैं बंध होय तौ लोकमें सिद्ध भी तिष्ठे हैं, तिनिका भी बंधका प्रसंग आवे है। बहुरि काय वचन मनका क्रियास्वरूप योग हैं, ते भी बंधके कारण नाहीं हैं। जो तिनितैं बंध होय यथाख्यातसंयमीनिकी काय वचन मनकी क्रिया हैं, तिनिके भी बंधका प्रसंग आवै है। बहुरि अनेक प्रकारके करण है, ते भी बंधके कारण नाहीं हैं। जो तिनितैं बंध होय, तौ केवलज्ञानीनिकै भी तिनिकरणनिकरि बंधका प्रसंग आवे है। बहुरि सचित्त अचित्त वस्तूनिका उपघात है, सो भी बंधका कारण नाहीं है। जो तातैं बंध होय, तौ जे साधु समिति-विषैं तत्पर हैं, यत्नरूप प्रवर्तें हैं, तिनिके भी सचित्त अचित्तके घाततैं बंधका प्रसंग आवै है, तातैं न्यायका बलकरि ही यह आया—जो उपयोगविषैं रागादिकका करना है, सो ही बंधका कारण है।

भावार्थ—इहां निश्चयनय प्रधान करि कथन है। सो जहां निर्बाध हेतुकरि सिद्ध होय, सो ही निश्चय, सो बंधका कारण विचारिये, सो निर्बाध यह ही सिद्ध भया—जो मिथ्यादृष्टि पुरुष राग द्वेष मोह भावनिकूं अपने उपयोगविषैं करे है सो ये रागादिक ही बंधके कारण हैं। अर अन्य

जो कर्मयोग्य पुद्गलनितैं भर्‍या लोक तथा मन वचन कायके योग तथा अनेक कारण तथा चेतन अचेतनका घात ये बंधके कारण नाहीं हैं। जो इनितैं बंध होय, तौ सिद्धनिके तथा यथाख्यातचारित्रवालेकै तथा केवलज्ञानीनिकै तथा समितिरूप प्रवर्तते मुनिनिकै बंधका प्रसंग आवै है, अर तिनिकै बंध है नाहीं, तातैं यह हेतुमैं व्यभिचार भया। तातैं बंधका कारण रागादिक ही हैं यह निश्चय है। इहां समितिरूप प्रवर्तनेवाले मुनिका नाम तौ लिया अर अविरत देशविरतका नाम न लिया। सो इनिके वाह्यसमितिरूप प्रवृत्ति नाहीं। तातैं चारित्रमोहसंबंधी रागतें किंचित् बंध होय है, तातैं सर्वथा बंधके अभावकी अपेक्षामैं इनिका नाम न लिया, सो अंतरंग अपेक्षा ये भी निर्बन्ध ही जानने। आगै इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

पृथ्वीछन्दः

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्मवाननेककरणानि वा न चिदचिद्वधो न बन्धकृत्।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥२॥

अर्थ—कर्मबंधका करनेवाला कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि बहुत भर्‍या जो जगत् कहिये लोक सो कारण नाहीं है। बहुरि चलनेस्वरूप जे कायवचनमनकी क्रिया कर्मरूप योग, ते भी कारण नाहीं हैं। बहुरि अनेक रीतिके करण, ते भी कारण नाहीं हैं। बहुरि चेतन अचेतनका वध कहिये घात सो भी कारण नाहीं है। तौ कहा है? जो उपयोगभू कहिये आत्मा, सो रागादिकनिकरि सहित एकताका भावकूं प्राप्त होय है, सो ही एक पुरुषनिकै बंधका कारण है।

भावार्थ—इहां निश्चयनयकरि एक रागादिकहीकूं बंधका कारण कह्या है। आगै सम्यग्दृष्टि उपयोगविषैं रागादिककूं नाहीं करे है, उपयोगके अर रागादिकके भेद जानि रागादिकका स्वामी नाहीं होय है, तातैं ताकै पूर्वोक्त चेष्टातैं बंध नाहीं होय है ऐसैं कहे हैं। गाथा—

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायामं ॥६॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकदलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥७॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो ण तस्स रयबंधो ॥८॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥९॥
एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागादी णेव बज्झदि रयेण ॥१०॥

यथा पुनः स चैव नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति ।
रेणुबहुले स्थाने करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥६॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीतलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातं ॥७॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतो विज्ञेयं किंप्रत्ययको न रजोबंधः ॥८॥
यः स, अस्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबंध ।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥९॥
एवं सम्यग्दृष्टिर्वर्तमानो बहुविधेषु योगेषु ।
अकुर्वन्नुपयोगे रागादीन्न न लिप्यते रजसा ॥१०॥

आत्मख्यातिः—यथा स एव पुरुषः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति तस्यामेव स्वभावात् एव रजोबहुलायां भूमौ तदेव शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणस्तैरेवानेकप्रकारकरणैस्तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् रजसा न बध्यते स्नेहाभ्यङ्गस्य बन्धहेतोरभावात्। तथा सम्यग्दृष्टिः, आत्मनि रागादीनकुर्वाणः सन् तस्मिन्नेव स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके तदेव कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणः, तैरेवानेकप्रकारकरणैः, तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा न बध्यते रागयोगस्य बंधहेतोरभावात्।

अर्थ—बहुरि सो ही नर जैसे तिस स्नेह तैलादिक सर्वकूं दूरि किये संते बहुत रजके स्थानविषैं शस्त्रनिको अभ्यास करे है, बहुरि तैसे ही तालवृक्षके तलकूं तथा केलीकूं तथा वांसका विडाकूं छेदे है, भेदे है, सचित्त अचित्त द्रव्यनिका उपघात करे है, तहां उपघात करतेके ताके नाना प्रकार करणनिकरि करताकै निश्चयतैं जानना, जो रजका बंधना कौन कारणतैं नाहीं होय है? तिस नरके जो सचिक्कणतासूं रहितपणा है सो ही निश्चयतैं वाकी कायसंबंधी अन्य चेष्टाविना रजका नाहीं बंधनेका कारण है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि बहुत प्रकार योगनिविषैं वर्तमान है, सो उपयोगविषैं रागादिककूं नाहीं करता संता वर्ते है, यातैं कर्मरजकरि नाहीं लिपे है।

टीका—जैसें सो ही पुरुष स्नेह कहिये तैलादिककी चिकणाई सर्व ही दूरि किये संते, स्वभावहीतैं जामैं रजकी बहुलता ऐसी तिस ही भूमिविषैं, तिनि ही शस्त्रनिका अभ्यासकूं करता संता, तिनि ही अनेक प्रकारके करणनिकरि, तिनि ही सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं हणता घात करता संता रजकरि नाहीं बंधे है। जातै याकै बंधका हेतु जो सचिक्कणपणाका मर्दन, ताका अभाव है। तैसें ही सम्यग्दृष्टि पुरुष है सो आत्माविषैं रागादिककूं नाहीं करता संता, स्वभावहीतैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि भरया ऐसा तिस ही लोकविषैं, तिस ही काय वचन मनकी क्रियाकूं करता संता, तिनि ही अनेक प्रकारके करणनिकरि, तिनि ही सचित्त अचित्त वस्तुनिका घात करता संता कर्मरूप रजकरि नाहीं बंधे है। जातैं याकै बंधका कारण जो रागका योग, ताका अभाव है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिकै पूर्वोक्त सर्व संबंध होते भी रागका संबंधका अभाव है, तातैं कर्मबंध नाहीं होय है। याका समर्थन पूर्वैं कह ही आये हैं अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु न परिस्पन्दात्मकं कर्म तत् तान्यस्मिन्करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत्।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन्केवलं बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवः ॥३॥

अर्थ—तिस कारणतैं सो कर्मनिकरि भरया पूर्वोक्त लोक है सो होहू, बहुरि सो मन वचन कायके चलनस्वरूप कर्मरूप योग है सो होहू, बहुरि ते पूर्वोक्त करण होहू, बहुरि सो पूर्वोक्त चैतन्य अचैतन्यका व्यापादान कहिये घात करना होहू, यह सम्यग्दृष्टि है सो रागादिककूं उपयोग-भूमिमैं नाहीं प्राप्त करता संता अर केवल एक ज्ञानरूप होता संता, तिनि पूर्वोक्त कोई ही कारणतैं बंधकूं प्राप्त नाहीं होय है, यह निश्चल सम्यग्दृष्टि है, अहो! देखो!! यह सम्यग्दर्शनकी अद्‌भुत महिमा है।

इहां सम्यग्दृष्टिका अद्भुत माहात्म्य कह्या है। अर लोक, योग, करण, चैतन्य अचैतन्यका घात ए बंधके कारण न कहे हैं। तहां ऐसा मति जानूं—जो परजीवकी हिंसातैं बंध न कह्या, तातैं स्वच्छंद होय हिंसा करना। इहां अबुद्धिपूर्वक कदाचित् परजीवका घात भी होय, तातैं बंध न होय है। अर जहां बुद्धिपूर्वक जीव मारनेके भाव होहिंगे तहां तौ अपने उपयोगतैं रागादिकका सद्‌भाव आवैगा, तहां हिंसातैं बंध होयहीगा। जहां जीवकूं जीवावनेका अभिप्राय होय, ताकूं भी निश्चयनयमें मिथ्यात्व कहे हैं, तौ मारनेका अभिप्राय मिथ्यात्व क्यों न होगा? तातैं कथ-नकूं नयविभागकरि यथार्थ समझि श्रद्धान करना। सर्वथा एकांत तौ मिथ्यात्व है। अब इस अर्थकूं दृढ करनेकूं व्यवहारनयकी प्रवृत्ति करावनेकूं काव्य कहे हैं।

पृथ्वीछन्दः

तथाऽपि न निरर्गलं चरितमीक्षते ज्ञानिनां तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥४॥

अर्थ—तथापि कहिये लोक आदि कारणनितैं बंध कह्या नाहीं अर रागादिकहीतैं बंध कह्या, तौऊ ज्ञानीनिकूं निरर्गल कहिये मर्यादरहित स्वच्छंद प्रवर्तना योग्य न कह्या है। जातैं निरर्गल प्रवर्तना है सो बंधका ही ठिकाना है, ज्ञानीनिकै विनावांछा कर्म कार्य होय है, सो बंधका कारण न कह्या है, जातैं जानै भी है अर कर्मकूं करै भी है, यह दोऊ क्रिया कहां विरोधरूप नाहीं है? करना अर जानना तौ निश्चयतैं विरोधरूप ही है।

भावार्थ—पहली काव्यमें लोक आदि बंधके कारण न कहे तहां ऐसें मति जानिये—जो बाह्यव्यवहारप्रवृत्ति बंधके कारणनिमें सर्वथा ही निपेधी है, जो ज्ञानीनिकै अबुद्धिपूर्वक वांछाविना प्रवृत्ति होय है, तातैं बंध न कह्या है। तातैं ज्ञानीनिकूं स्वच्छंद प्रवर्तना तौ न कह्या है, बेमर्याद प्रवर्तना तौ बंधका ही ठिकाना है। जाननेमें अर करनेमें तौ विरोध है, ज्ञाता रहैगा तौ बंध न होगा, कर्ता होगा तौ बंध होयहोगा। अब कहे हैं—जो जाने है सो करे नाहीं है अर जो करे है सो जाने नाहीं है, जो करे है सो कर्मका राग है अर राग है सो अज्ञान है अर अज्ञान है सो बंधका कारण है। ऐसैं काव्यमें कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहुर्मिथ्यादृशः स नियतं स हि बन्धहेतुः ॥५॥

अर्थ—जो जाने है, सो करे नाहीं है। वहुरि जो करे है, सो जाने नाहीं है। वहुरि जो करे है, सो निश्चयतैं यह कर्मराग है वहुरि जो राग है, ताकूं मुनि हैं ते अज्ञानमय अध्यवसाय कहे हैं। सो यह मिथ्यादृष्टीकै होय है, सो नियमतैं बंधका कारण है। अब मिथ्यादृष्टिका आशयकूं गाथामैं प्रगटकरि कहे हैं। गाथा—

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥११॥

यो मन्यते हिनस्मि हिंस्ये च परैः सत्वैः ।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥११॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं हिनस्मि परजीवैर्हिंस्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः । यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात्सम्यग्दृष्टिः ।

कथमयमध्यवसायोऽज्ञानं ? इति चेत्—

अर्थ—जो पुरुष ऐसैं माने है, मैं परजीवकूं हणूं हूं, मारूं हूं, बहुरि परजीवनिकरि मैं हण्या जाऊं हूं, पर मोकूं मारे है, सो पुरुष मूढ है, मोही है, अज्ञानी है । बहुरि ज्ञानी यातैं विपरीत है, ऐसैं नाहीं माने है ।

टीका—परजीवनिकूं मैं हणूं हूं । बहुरि परजीवनिकरि मैं हण्या जाऊं हूं । ऐसा अध्यवसाय कहिये निश्चयरूप जाका आशय है, सो निश्चयतैं अज्ञान है । सो ऐसा अध्यवसाय जाकै होय सो अज्ञानी है । इस अज्ञानीपणातैं मिथ्यादृष्टि है । बहुरि जाकै ऐसा आशयरूप अज्ञान नाहीं है सो ज्ञानीपणातैं सम्यग्दृष्टि है ।

भावार्थ—जाकै ऐसा आशय है "जो परजीवकूं मैं मारूं हूं, अर पर मेरेतांई मारे हैं" सो ऐसा आशय अज्ञान है । तातैं सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है । अर जाकै यह आशय नाहीं, सो ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है । यहां ऐसा जानना—जो निश्चयनयकरि कर्ताका स्वरूप यह है, जो आप स्वाधीन जिस भावरूप परिणमै ताकूं तिस भावका कर्ता कहिये । सो परमार्थकरि कोऊ काहूकै मरण करे नाहीं है । जो परकरि परका मरण माने है, सो अज्ञानी है । निमित्तनैमित्तिकभावतैं कर्ता कहना व्यवहारनयका वचन है, सो यथार्थ मानना सम्यग्ज्ञान है । आगे पूछे है, यह अध्यवसाय अज्ञान कैसा है ? ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं । गाथा—

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं ॥१२॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणां जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुह कह ते मरणं कदं तेहिं ॥१३॥

आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरसि त्वं कथं त्वया मरणं कृतं तेषां ॥१२॥
आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरन्ति तव कथं ते मरणं कृतं तैः ॥१३॥

आत्मख्यातिः—मरणं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मक्षयेणैव तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात् स्वायुःकर्म च नान्येनान्यस्य हर्तुं शक्यं तस्य स्वोपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात् । ततो न कथंचनापि, अन्योऽन्यस्य मरणं कुर्यात् । ततो हिनस्मि हिंस्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं ।

जीवनाध्यवसायस्य तद्विपक्षस्य का वार्ता ? इति चेत्—

अर्थ—जीवनिकै मरण है सो आयुकर्मके क्षयतैं होय है । यह जिनेश्वरदेवने कह्या है । सो हे भाई, तू माने है "जो मैं परजीवकूं मारूं हूं" सो यह अज्ञान है । जातैं तू परजीवका आयुकर्म हरे नाहीं है । तातैं तिनिकै मरणकूं तूनें कैसे किया ? वहुरि जीवनिकै मरण आयुकर्मके क्षयकरि होय है । ऐसैं जिनेश्वरदेवने कह्या है । अर हे भाई ! तू ऐसैं माने है "जो मैं परजीवनिकरि मार्‌या जाऊं हूं" सो यह तेरा अज्ञान है । जातैं परजीव तेरा आयुकर्म हरे नाहीं । तातैं तिनितैं तेरा मरण कैसा किया ?

टीका—निश्चयकरि जीवनिकै मरण है सो अपने आयुकर्मके क्षयहीकरि होय है, जो आयुका

क्षय न होय, तौ तिसकै मरण करनेकूं कोऊ न समर्थ होय। बहुरि अपना आयुकर्म अन्यके अन्यकरि हरनेका असमर्थपणा है। आयुकर्म तौ अपना उपभोगहीकरि क्षयरूप होय है, तातैं अन्य है सो अन्यके मरण काहू प्रकार भी करे नाहीं है। तातैं जो ऐसा माने है, अभिप्राय करे है, जो मैं परजीवकूं हणूं हूं, तथा परजीव मोकूं हणे हैं, सो यह अध्यवसाय निश्चयकरि अज्ञान है।

भावार्थ—जो जीवकै मान्य होय अर तिस मान्यरूप कार्य न होय सो ही अज्ञान, सो मरण आपकै परका किया होय नाहीं, परकै आपका किया होय नाहीं, अर यह प्राणी माने सो ही अज्ञान है, यह निश्चयनय प्रधान कथन है। बहुरि परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावकरि पर्यायका उत्पाद व्यय होय ताकूं जन्ममरण कहिये है। तहां जाके निमित्ततैं होय ताकूं ऐसैं कहिये, जो याने याकूं मारया, सो यह कहना व्यवहार है। सो इहां ऐसा मति जानूं—जो व्यवहारका सर्वथा निषेध है। जे निश्चयकूं न जाने तिनिका अज्ञान मेटनेकूं कह्या है। याकूं जाने पीछे दोऊ नयके अविरोध जानि यथायोग्य नय मानना। फेरि पूछे है, जो मरणके अध्यवसायकूं तौ अज्ञान कह्या सो जान्या, अर तिस मरणका प्रतिपक्षी जो जीवनेका अध्यवसाय, ताकी कहा वार्ता है? ऐसैं पूछै उत्तर कहे हैं। गाथा—

जो मण्णदि जीवेमिय जीविज्जामिय परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥१४॥

यो मन्यते जीवयामि जीव्ये चापरैः सत्वैः।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥१४॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं जीवयामि परजीवैर्जीव्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः। यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः।

कथमयमध्यवसायो ज्ञानमिति चेत् ?

अर्थ—जो जीव ऐसैं माने है, जो मैं परजीवनिकूं जीवाऊं हौं, बहुरि परजीव मोकूं जीवावे हैं, सो मूढ है, मोही है, अज्ञानी है। बहुरि ज्ञानी यातैं विपरीत है, ऐसैं नाहीं माने, यातैं उलटा माने है।

टीका—परजीवनिकूं मैं जीवाऊं हौं, बहुरि परजीव मेरे तांई जीवावे हैं, ऐसा अध्यवसाय कहिये निश्चयरूप आशय है, सो निश्चयकरि अज्ञान है। सो यह जाकै होय सो जीव अज्ञानीपणातैं मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जाकै यह अध्यवसाय नाहीं है सो जीव ज्ञानीपणातैं सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ—जो ऐसैं माने हैं, जो मोकूं पर जीवावे हैं, अर मैं परकूं जीवाऊं हौं, सो यह अज्ञान है, जाकै यह अज्ञान है सो मिथ्यादृष्टि है। जाकै यह अज्ञान नाहीं सो सम्यग्दृष्टि है। आगै पूछे है, जो यह जीवावनेका अध्यवसाय अज्ञान कैसा है ? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

आउउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं ॥१५॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं ॥१६॥

आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददासि त्वं कथं त्वया जीवितं कृतं तेषां ॥१५॥
आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददाति तव कथं तु ते जीवितं कृतं तैः ॥१६॥

आत्मख्यातिः—जीवितं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मोदयेनैव, तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात्। आयुः कर्म

च नान्येनान्यस्य दातुं शक्यं तस्य स्वपरिणामेनैव, उपार्ज्यमाणत्वात्। ततो न कथंचनापि अन्योऽन्यस्य जीवितं कुर्यात्। अतो जीवयामि जीव्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं।

दुःखसुखकरणाध्यवसायस्यापि, एषैव गतिः—

अर्थ—जीव है सो अपनी आयुके उदयकरि जीवे है, ऐसैं सर्वज्ञ देव कहे हैं। तहां हे भाई, परजीवकूं तू आयूकर्म नाहीं दे है, तौ तैनैं तिनि परजीवनिका जीवित कैसा किया? बहुरि जीव है सो अपना आयुकर्मके उदयतैं जीवे है, ऐसैं सर्वज्ञ देव कहे हैं। तहां हे भाई, परजीव तोकूं आयुकर्म नाहीं दे हैं, तौ तिनिनैं तेरा जीवित कैसा किया?

टीका—जीवनिका जीवित है सो अपना आयुकर्मके उदयहीकरि है जो आयुका उदयका अभाव होय, तौ तिस जीवितका होनेका अशक्यपणा है। बहुरि अपना आयुकर्म अन्यके अन्य-करि देनेका असमर्थपणा है तिस आयुकर्मका अपने परिणामहीकरि उपजायवापणा है तातैं अन्य है सो अन्यके जीवितकूं कोई प्रकार भी नाहीं करे है। यातैं परकूं मैं जीवाऊं हौं तथा पर मोकूं जीवावै हैं ऐसा अध्यवसाय है सो निश्चयकरि अज्ञान है।

भावार्थ—पूर्वैं मरणके अध्यवसायमें कह्या सो ही जानना। आगे कहे हैं, जो दुःखसुख करनेका अध्यवसायकी भी याही गति है। गाथा—

जो अप्पणादु मण्णदि दुःखिदसुखिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥१७॥

य आत्मना तु मन्यते दुःखितसुखितान् करोमि सत्वानिति।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥१७॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं दुःखितान् सुखितांश्च करोमि। परजीवैर्दुःखितः सुखितश्च क्रियेहं, इत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं। स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः। यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः।

कथमध्यवसायोऽज्ञानमिति चेत्—

दृष्टिमें गौण है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

वसन्ततिलका छन्दः

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

अर्थ—इस लोकमें जीवनिके मरण जीवित दुःख सुख हैं ते सर्व ही सदाकाल नियमतैं अपने अपने कर्मके उदयतैं होय हैं। वहुरि जो परपुरुष है सो परके मरण जीवित दुःख सुख करे है यह मानना है सो अज्ञान है। फेरि इस ही अर्थकूं दृढ करते संते अगिले कथनकी सूचनिका रूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलका छन्दः

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवंति ॥७॥

अर्थ—यह पूर्वोक्त मानना अज्ञान है, ताही प्राप्त होय करि जे पुरुष परतैं परकैं मरण जीवित सुख दुःख होना देखें हैं, माने हैं, ते पुरुष "मैं इनि कर्मनिकूं करूं हूं" ऐसा अहंकाररूप रसकरि कर्मनिकूं करनेके इच्छुक हैं, कर्म करनेकी मारने जीवावनेकी सुखी दुःखी करनेकी वांछा करे हैं ते नियमकरि मिथ्यादृष्टि हैं। आप ही करि अपना घात जिनिकैं पाइये है ऐसे हैं।

भावार्थ—जे परकूं मारने जीवावनेका तथा सुखदुःख करनेका अभिप्राय करे हैं, ते मिथ्यादृष्टि हैं। अर अपना स्वरूपतैं च्युत भये रागी द्वेषी मोही होय आपही करि आपका घात करे हैं, तातैं हिंसक हैं। आगे इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं। गाथा—

जो मरदि जोय दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।
तह्मा दु मारिदोदे दुहाविदो चेदि णहु मिच्छा ॥२१॥

जो ण मरदि णय दुहिदो सोविय कम्मोदयेण खलु जीवो ।
तह्मा ण मरिदोदे दुहाविदो चेदि णहु मिच्छा ॥२२॥

यो म्रियते यश्च दुःखितो जायते कर्मोदयेन स सर्वः ।
तस्मात्तु मारितस्ते दुःखितो वेति न खलु मिथ्या ॥२१॥
यो न म्रियते न च दुखितो भवति सोपि च कर्मोदयेन खलु जीवः ।
तस्मान्न मारितो नो दुःखितो वेति न खलु मिथ्या ॥२२॥

आत्मख्यातिः—यो हि म्रियते जीवति वा दुःखितो भवति सुखितो भवति च स खलु कर्मोदयेनैव तदभावे तस्य तथा भवितुमशक्यत्वात् ततः, मयायं मारितः, अयं जीवितः अयं दुःखितः कृतः, अयं सुखितः कृतः, इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः ।

अर्थ—जो मरै है बहुरि दुःखी होय है सो सर्व कर्मके उदय करि होय है । तातैं तेरै "मैं मारया, मैं दुःखी किया" ऐसा अभिप्राय है, सो मिथ्या नाहीं है कहा ? मिथ्या ही है । बहुरि जो मरे नाहीं है बहुरि दुःखी नाहीं होय है सो भी कर्मके उदयही करि होय है । तातैं तेरै यह अभिप्राय है "जो मैं मारया नाहीं अर दुःखी न किया" सो यह भी अभिप्राय कहा मिथ्या नाहीं है ? मिथ्या ही है ।

टीका—निश्चयकरि मरे है तथा जीवे है अथवा दुःखी होय है तथा सुखी होय है सो अपने कर्मके उदयकरि होय है । तिस कर्मके उदयका अभाव होतैं तिस जीवकै तैसैं मरण जीवन सुख दुःख होनेका असमर्थपणा है । तातैं मैं यह मारया, यह मैं जीवाया, यह मैं दुःखी किया, यहै मैं सुखी किया ऐसैं मानता संता जीव मिथ्यादृष्टि है ।

भावार्थ—कोऊ काहूका मारया मरे नाहीं, जीवाया जीवे नाहीं, सुखी दुःखी किया सुखी

दुःखी होय नाहीं। यातैं मारने जीवावने आदिका अभिप्राय करे सो तौ मिथ्यादृष्टि ही होय, यह निश्चयका वचन है। इहां व्यवहारनय गौण है। याका कलशरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्ययात्। य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥८॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टिका जो यह अध्यवसाय है सो अज्ञानरूप प्रत्यक्ष दीखे है, सो ही यह अभिप्राय मिथ्या विपर्ययस्वरूप है तातैं बंधका कारण है।

भावार्थ--झूठा अभिप्राय सो ही मिथ्यात्व, सो ही बंधका कारण ऐसैं जानना। आगे यह ही अध्यवसाय बंधका कारण है ऐसैं गाथामैं कहे हैं। गाथा–

एसा दु जा मदी दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥२३॥

एषा तु या मतिस्ते दुःखितसुखितान् करोमि सत्वानिति।
एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं बध्नाति कर्म ॥२३॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं हिनस्मि न हिनस्मि दुःखयामि सुखयामि इति य एवायमज्ञानमयोऽध्यवसायो मिथ्यादृष्टेः स एव स्वयं रागादिरूपत्वात्तस्य शुभाशुभबंधहेतुः।

अथाध्यवसायं बंधहेतुत्वेनावधारयति—

अर्थ--हे आत्मन्! तेरी जो यह बुद्धि है जो मैं जीवनिकूं सुखी दुःखी करूं हूं, सो यह तेरी मूढबुद्धि है, मोहस्वरूप है। सो यह ही बुद्धि शुभ अर अशुभ कर्मनिकूं बांधे है।

टीका--परजीवनिकूं मैं हणूं हूं, दुःखी करूं हूं, सुखी करूं हूं ऐसा जो यह अज्ञानमय अध्यवसाय है, सो यह मिथ्यादृष्टिकै होय है। सो ही स्वयं रागादिरूपपणातैं तिसके शुभाशुभबंधका कारण है।

भावार्थ—मिथ्या अध्यवसाय बंधका कारण है। आगै मिथ्या अध्यवसायकूं बंधका कारणपणा-करि नियमरूप कहे हैं। गाथा—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एस मज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि ॥२४॥
मारमि जीवावेमिय सत्तो जं एव मज्झवसिदंते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि ॥२५॥

दुःखितसुखितान् सत्वान् करोमि यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य च बंधकं वा भवति ॥२४॥
मारयामि जीवयामि च सत्वान् यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबन्धकं वा पुण्यस्य बन्धकं वा भवति ॥२५॥

आत्मख्यातिः—य एवायं मिथ्यादृष्टेरज्ञानजन्मा रागमयोऽध्यवसायः स एव बंधहेतुः, इत्यवधारणीयं न च पुण्य-पापत्वेन द्वित्वाद्बंधस्य तद्द्वित्वंतरसन्वेष्टव्यं ? एकेनैवानेनाध्यवसायेन दुःखयामि, मारयामि, इति सुखयामि, जीवया-मीति च द्विधा शुभाशुभाहंकाररसनिर्भरतया द्वयोरपि पुण्यपापयोर्बन्धहेतुत्वस्याविरोधात्।

एवं हि हिंसाध्यवसाय एव हिंसेत्यायातं---

अर्थ—हे आत्मन्! तेरा यह अध्यवसित है-अभिप्राय है, जो मैं जीवनिकूं दुःखी सुखी करूं हूं, सो ही यह अभिप्राय पापबंधक है तथा पुण्यका बंधक है। बहुरि मैं जीवनिकूं मारूं हूं अथवा जीवाऊं हूं जो तेरा यह अध्यवसित है—अभिप्राय है, सो भी पापका बंधक है तथा पुण्यका बंधक है।

टीका—जो यह मिथ्यादृष्टिके अज्ञानतैं जाका जन्म भया ऐसा रागमय अध्यवसाय है सो ही यह बंधका कारण है, ऐसैं अवधारण करना नियम जानना। बहुरि बंधके पुण्यपापपणाकरि

दोयपणाकरि दोयपणा है, सो याके दोयपणेतैं कारणका भेद नाहीं हेरणा जो पुण्यबंधका कारण तौ अन्य है अर पापबंधका कारण किछू और है। एक ही इस अध्यवसायकरि दुःखी करूं हूं, मारूं हूं ऐसा तथा सुखी करूं हूं, जीवाऊं हूं ऐसा दोय प्रकार शुभ अशुभ अहंकाररसकरि भरयापणाकरि पुण्यपाप दोऊहीनिका बंधका कारणपणाका अवरोध है। एक ही अध्यवसायकरि पुण्यपाप दोऊका बंध है।

भावार्थ—यह अज्ञानमय अध्यवसाय ही बंधका कारण है। तहां शुभ अध्यवसाय तौ जीवावना सुखी करना ऐसा है बहुरि मारना दुःखी करना यह अशुभ अध्यवसाय है। सो अहंकाररूप मिथ्याभाव दोऊहीमैं है, तातैं ऐसा न जानना, जो शुभका कारण तौ और है अर अशुभका कारण तौ और है। अज्ञानमयपणाकरि दोऊ अध्यवसाय एक ही है। आगे कहे हैं जो ऐसैं होतैं अध्यवसाय ही बंधका कारण होतैं जो यह हिंसाका अध्यवसाय है, सो ही हिंसा है, यह आया। गाथा—

अज्झवसिदेण वंधो सत्तो मारे हि माव मारे हि।
एसो वंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥२६॥

अध्यवसितेन बन्धः सत्वान् मारयतु मा वा मारयतु।
एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयनयस्य ॥२६॥

आत्मख्यातिः—परजीवानां स्वकर्मोदयवैचित्र्यवशेन प्राणव्यपरोपः कदाचिद् भवतु, कदाचिन्मा भवतु। य एव हिनस्मीत्यहंकाररसनिर्भरो हिंसायामध्यवसायः स एव निश्चयतस्तस्य बंधहेतुः, निश्चयेन परभावस्य प्राणव्यपरोपस्य परेण कर्तुमशक्यत्वात्।

अथाध्यवसायं पापपुण्योर्वन्धहेतुत्वेन दर्शयति—

अर्थ—निश्चयनयका यह पक्ष है, जो जीवनिकूं मारो अथवा मति मारो, यह जीवनिकै कर्मबंध है सो अध्यवसायहीकरि है, यह ही बंधका संक्षेप है।

टीका—परजीवनिके प्राणनिका वियोग है सो अपना कर्मका उदयका विचित्रपणाका वशिकरि है। सो कदाचित् होऊ अथवा कदाचित् मति होऊ जो "यह मैं हणूं हौं" ऐसा अहंकाररसकरि भरया हिंसाके विषैं अध्यवसाय है—अभिप्राय है सो ही निश्चयतैं तिस अभिप्रायवाले पुरुषके बंधका कारण है, जातैं निश्चयनयकी पक्षमें परका भाव जो प्राणनिका वियोग करना, सो परके करनेकूं असमर्थपणा है।

भावार्थ—निश्चयनयकरि परका प्राणनिका वियोग करना परका किया होय नाहीं, ताके कर्मके उदयकी विचित्रताकरि कदाचित् होय है, कदाचित् नाहीं होय है तातैं जो ऐसा माने है—अहंकार करे है "जो मैं परजीवकूं मारूं हूं" सो यह अहंकाररूप अध्यवसाय है। सो अज्ञानमय है। सो यह ही हिंसा है, अपना विशुद्धचैतन्य प्राणका घात है अर यह ही बंधका कारण है, यह निश्चयनयका मत है। इहां व्यवहारनयकूं गौणकरि कह्या जानना, सो कथंचित् जानना। सर्वथा एकांतपक्ष है सो मिथ्यात्व है। आगै यह हिंसाका अध्यवसाय कह्या तैसैं ही तिसहीकूं अन्य कार्यनिविषैं भी पुण्यपापका बंधका कारणपणाकरि प्रत्यक्ष दिखावे है। गाथा—

एवमलिये अदत्ते अवह्मचेरे परिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झदे पावं ॥२७॥
तहय अचोज्जे सच्चे वंभे अपरिगहत्तणे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झदे पुण्णं ॥२८॥

एवमलीकेऽदत्तेऽब्रह्मचर्ये परिग्रहे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पापं ॥२७॥
तथापि च सत्ये दत्ते ब्रह्मणि, अपरिग्रहत्वे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पुण्यं ॥२८॥

आत्मख्यातिः—एवमयमज्ञानात् यो यथा हिंसायां विधीयतेऽध्यवसायः, तथा असत्यादत्ताब्रह्मपरिग्रहेषु यश्च विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पापबंधहेतुः यस्तु अहिंसायां यथा विधीयते, अध्यवसायः। तथा यश्च सत्यदत्तब्रह्मापरिग्रहेषु विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पुण्यबंधहेतुः।

न च वाह्यवस्तु द्वितीयोऽपि बंधहेतुरिति शक्यं वक्तुं—

अर्थ--एवं कहिये पूर्वें हिंसाका अध्यवसाय कह्या तैसे ही अलीक कहिये असत्य अदत्त कहिये चोरी आदिकरि विना दिया परधनका लेना, अब्रह्मचर्य कहिये स्त्रीका संसर्ग, परिग्रह कहिये धन-धान्यादिक इनिविषैं जो अध्यवसान कीजिये; तिसकरि तौ पापका बंध होय है। बहुरि तैसे ही सत्यविषैं, दिया लेनेविषैं, ब्रह्मचर्यविषैं, अपरिग्रहविषैं जो अध्यवसान कीजिये, तिसकरि पुण्यका बंध होय है।

टीका—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार यह अज्ञानतैं जो जैसें हिंसाविषैं अध्यवसाय करिये तैसैं ही असत्य, अदत्त, अब्रह्म, परिग्रह इनिविषैं जो अध्यवसाय कीजिये, सो सर्व ही केवल एक पाप-बंधहीका कारण है। बहुरि जो अहिंसाविषैं जैसे कीजिये तैसें ही सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरि-ग्रह इनिविषैं भी अध्यवसाय कीजिये, सो सर्व ही केवल एक पुण्यबंधहीका कारण है।

भावार्थ—जैसा हिंसाविषैं अध्यवसाय पापबंधका कारण कह्या, तैसा असत्य, अदत्त, अब्रह्म परिग्रह इनिविषैं अध्यवसाय पापबंधका कारण है। बहुरि जैसा अहिंसाविषैं अध्यवसाय पुण्यका कारण है, तैसा सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहपणा इनिविषैं पुण्यबंधका कारण है। ऐसें पांच पापका अभिप्राय तौ पापबंध करे है अर पांच व्रत एकदेश सर्वदेशविषैं अभिप्राय है सो पुण्यबंध करे है। आगें कहे हैं 'जो वाह्यवस्तु है, सो दूसरा बंधका कारण है नाहीं' कोई जानेगा कि, जैसा अध्यवसान बंधका कारण है, तैसा वाह्यवस्तु है सो भी दूसरा बंधका कारण है' सो ऐसें नाहीं है। एक अध्यवसाय ही बंधका कारण है। गाथा—

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं ।
ण हि वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्ति ॥२९॥

वस्तु प्रतीत्य यत्पुनरध्यवसानं तु भवति जीवानां ।
न च वस्तुतस्तु बंधोऽध्यवसानेन बन्धोस्ति ॥२९॥

आत्मख्यातिः---अध्यवसानमेव बंधहेतुर्न तु बाह्यवस्तु तस्य बंधहेतोरध्यवसानस्य हेतुत्वेनैव चरितार्थत्वात् । तर्हि किमर्थो बाह्यवस्तुप्रतिषेधः ? अध्यवसानप्रतिषेधार्थः । अध्यवसानस्य हि बाह्यवस्तु, आश्रयभूतं । न हि बाह्यवस्त्वनाश्रित्य, अध्यवसानमात्मानं लभते । यदि बाह्यवस्त्वनाश्रित्यापि, अध्यवसानं जायेत तदा यथा वीरसूसुतस्याश्रयभूतस्य सद्भावे वीरसूनुं हिनस्मीत्यध्यवसायो जायते, तथा वंध्यासुतस्याश्रयभूतस्यासद्भावेऽपि वंध्यासुतं हिनस्मीत्यध्यवसायो जायेत । न च जायते । ततो निराश्रयं नास्त्यध्यवसानमिति नियमः । तत एव चाध्यवसानाश्रयभूतस्य बाह्यवस्तुनोऽत्यंतप्रतिषेधः, हेतुप्रतिषेधेनैव हेतुमत्प्रतिषेधात् । न च बंधहेतुहेतुत्वे सत्यपि बाह्यं वस्तु बंधहेतुः स्यात् ईर्यासमितिपरिणतयतींद्रपदव्यापाद्यमानवेगापतत्कालचोदितकुलिङ्गवत् बाह्यवस्तुनो बन्धहेतुहेतोरबन्धहेतुत्वेन बन्धहेतुत्वस्यानैकान्तिकत्वात् । अतो न बाह्यवस्तु जीवस्यातद्भावो बन्धहेतुः । अध्यवसानमेव तस्य तद्भावो बन्धहेतुः ।

एवंविधहेतुत्वेन निर्धारितस्याध्यवसानस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावेन मिथ्यात्वं दर्शयति—

अर्थ—जीवनिकै अध्यवसान होय है सो वस्तूकूं प्रतीत्यकरि अवलंब्यकरि होय है। बहुरि वस्तुतैं बंध नाहीं है, अध्यवसानहीकरि बंध है।

टीका—अध्यवसान है सो ही बंधका कारण है। बहुरि बाह्यवस्तु है सो बंधका कारण नाहीं है। जातैं बंधका कारण जो अध्यवसान, ताका कारणपणाकरि ही बाह्यवस्तुकै चरितार्थपणा है बाह्य वस्तु तौ अध्यवसानहीका कारण है बंधका कारण नाहीं। तहां पूछे है जो बाह्यवस्तु बंधका कारण नाहीं; तौ ताका निषेध कौन अर्थी कीजिये है ? जो बाह्यवस्तुका प्रसंग मति करो त्याग करौ। ताका समाधान करै है—जो अध्यवसानका प्रतिषेधके अर्थि बाह्यवस्तुका प्रतिषेध है-त्याग कराइए है। जातैं बाह्यवस्तु है सो अध्यवसानका आश्रयभूत है। बाह्यवस्तुका आश्रयविना अध्यवसान

अपना स्वरूपकूं नाहीं पावे है—नाहीं उपजे है। जो बाह्यवस्तूका आश्रय न लेकरि भी अध्यवसान उपजै, तौ जैसैं सुभटकी माताका पुत्र जो सुभट, ताका सद्भाव होतैं, तिसका आश्रय लेकरि काहूकै अध्यवसान होय है, जो सुभटकी माताका पुत्रकूं मैं हणूं हूं, तैसैं ही वांझका पुत्रका सद्भाव न होते भी तिसके आश्रय भी "मैं वंध्यासुतकूं मारूं हूं" ऐसा अध्यवसान उपजै? सो तो नाहीं उपजे है। सो ऐसैं विना आश्रय अध्यवसान उपजे नाहीं। वंध्याका पुत्र ही नाहीं, तौ मारनेका अध्यवसाय कैसा उपजै? तातैं. यह नियम है—जो बाह्यवस्तू विना निराश्रय अध्यवसान उपजै नाहीं, याहीतैं अध्यवसानका आश्रयभूत जो बाह्यवस्तु, ताका अत्यंत प्रतिषेध है, तातैं हेतु जो कारण, ताका प्रतिषेधकरि ही हेतुमान् जो कार्य, ताका प्रतिषेध है यह न्याय है। बाह्यवस्तु अध्यवसानका हेतु है, तातैं ताका प्रतिषेधकरि अध्यवसानका प्रतिषेध होय है। बहुरि बाह्यवस्तूके बंधका हेतु जो अध्यवसान, ताका हेतुपणा होतैं भी बाह्यवस्तु बंधका हेतु नाहीं है. यामैं व्यभिचार है। जातैं कोई मुनींद्र ईर्यासमितिरूप प्रवर्तै है ताके चरणकरि हण्या गया जो कालका प्रेर्या अतिवेगकरि शीघ्र आय पड्या कोई उडता जीव, ताके मरनेतैं मुनींद्रकूं हिंसा न लागै; तैसे अन्य वस्तु भी बंधके कारण मानै, ते अबंधके भी कारण हैं, तातैं बाह्यवस्तुकै बंधका कारणपणा माननेविषैं अनैकांतिक हेत्वाभासपणा है व्यभिचार आवै है। यातैं निश्चयकरि बाह्यवस्तुकै बंधका कारणपणा निर्बाध सिद्ध होय नाहीं। यातैं जीवकै बाह्यवस्तु अतद्भावरूप है, सो बंधका कारण नाहीं। तद्भावरूप अध्यवसान है सो ही बंधका कारण है।

भावार्थ—बंधका कारण निश्चयनयकरि अध्यवसान ही है। अर बाह्यवस्तु है सो अध्यवसानका आलंबन है। तिनिकूं आलंब्यकरि अध्यवसान उपजै है, तातैं अध्यवसानका कारण कहिये है। विनाबाह्यवस्तु निराश्रय अध्यवसान उपजे नाहीं, याहीतैं बाह्यवस्तुका त्याग कराया है। अर बंधका कारण बाह्यवस्तु कहिये, तौ यामैं व्यभिचार आवै है। जो कोई जायगां कारण

अर कोई जायगा न दीखे, ताकूं व्यभिचार कहिये । जैसें कोई मुनि ईर्यासमितितें यत्नतें गमन करै था, अर ताके पादतलै कोई उडता जीव आय पड्या मरि गया, तौ ताकी हिंसा मुनींद्रकूं न लागै । सो इहां बाह्यदृष्टिकरि देखिये तौ हिंसा भई, परंतु मुनीकै हिंसाका अध्यवसान नाहीं, तातैं बंधका कारण नाहीं तैसैं अन्य भी बाह्यवस्तु जानना । अर बाह्यवस्तुविना निराश्रय अध्यवसान न होय, तातैं ताका निषेध है ही । आगै कहे हैं—जो या प्रकार बंधका कारणपणा करि निश्चयकिया जो अध्यवसान, ताकै अपनी अर्थक्रियाका करनेवालापणा नाहीं है, तातैं याकै मिथ्यापणा है । जाकै अर्थक्रियाकारिपणा नाहीं, सो ही मिथ्या जो किया चाहिये सो होय नाहीं, सो चाहि करना झूठा है, ऐसा दिखावे हैं । गाथा—

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा तुज्झ मदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥३०॥

दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि बध्नामि तथा विमोचयामि ।
सा एषा तव मतिः निरर्थिका सा खलु अहो मिथ्या ॥३०॥

आत्मख्यातिः—परान् जीवान् दुःखयामि सुखयामीत्यादि बंधयामि वा यदेतदध्यवसानं तत्सर्वमपि परभावस्य परस्मिन्नव्याप्रियमाणत्वेन स्वार्थक्रियाकारित्वाभावात् खकुसुमं लुनामीत्यध्यवसानवन्मिथ्यारूपं केवलमात्मनोऽनर्थायैव ।

कुतो नाध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि ? इति चेत्—

अर्थ—हे भाई, तेरी ऐसी बुद्धि है, जो मैं जीवनिकूं दुःखी सुखी करूं हूं तथा बंधावूं हूं, छुडावूं हुं सो यह बुद्धि मूढमति है--मोहस्वरूप है, निरर्थक है-जाका विषय सत्यार्थ नाहीं, तातैं निश्चय करि मिथ्या है ।

टीका—परजीवनिकूं दुःखी करूं हूं, सुखी करूं हूं, इत्यादि तथा बंधाऊं हूं छुडावूं हूं इत्यादि जो यह अध्यवसान है, सो सर्व ही मिथ्या है । जातैं परभावका परविषैं व्यापार न होने-

पणाकरि स्वार्थ क्रियाकारिपणाका अभाव है। परभाव परविषैं प्रवेश करै नाहीं। तातैं जैसैं कोई कहै 'मैं आकाशका फूलकूं चूटूं हूं' ऐसा अध्यवसान करै सो झूठा होय, तैसैं मिथ्यारूप है सो केवल आपके अनर्थहीके अर्थि है, परकै किछू भी करनेवाला नाहीं है।

भावार्थ—जाका विषय नाहीं सो निरर्थक है। सो परकूं दुःखी सुखी आदि करनेकी बुद्धि करै, सो पर याका किया दुःखी सुखी होय नाहीं, तब बुद्धि निरर्थक भई, सो यह बुद्धि मिथ्या है। आगै फेरि पूछे है जो यह अध्यवसान अपनी अर्थ क्रियाका करनेवाला कैसैं नाहीं? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुंचंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते किंकरोसि तुमं ॥३१॥

अध्यवसाननिमित्तं जीवा बध्यन्ते कर्मणा यदि हि।
मुच्यन्ते मोक्षमार्गे स्थिताश्च तत् किंकरोषि त्वं ॥३१॥

आत्मख्यातिः—यत्किल बंधयामि मोचयामीत्यध्यवसानं तस्य हि स्वार्थक्रिया यद्बन्धनं मोचनं जीवानां। जीवस्तु, अस्याध्यवसायस्य सद्भावेऽपि सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः, अभावान्न बध्यते न मुच्यते। सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः सद्भावात्तस्याध्यवसायस्याभावेऽपि बध्यते मुच्यते च, यतः परत्राकिंचित्करत्वान्नेदमध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि ततश्च मिथ्यैवेति भावः।

अर्थ—हे भाई! जो जीव हैं ते अध्यवसान है निमित्त जिनिकूं ऐसे कर्मकरि बंधे हैं। बहुरि मोक्षमार्गविषैं तिष्ठ्या कर्मकरि छूटे हैं। जो ऐसैं है, तौ तू कहा करेगा? तेरा तौ बांधने छोडनेका अभिप्राय विफल गया।

टीका—हे भाई! तेरी यह बुद्धि है, जो मैं प्रगटपणैं बंधाऊं हूं छुडावूं हूं ऐसा अध्यवसान है ताकी अर्थक्रिया जीवनिका बांधना छोडना है। सो जीव तौ इस अध्यवसायका सद्भाव

होते भी अपना सरागवीतरागपरिणामके अभावतैं न बंधे हैं न छूटे हैं। बहुरि अपना सरागवीतराग परिणामके सद्‌भावतैं तिस तेरे अध्यवसायका अभाव होते भी बंधे हैं तथा छूटे हैं, तातैं परविषैं तौ यह अकिंचित्कर है—किछू भी करनेवाला नाहीं। तातैं यह अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारि नाहीं है। तातैं मिथ्या ही है, ऐसा भाव है।

भावार्थ—जो हेतु किछू भी न करै ताकूं अकिंचित्कर कहिये है, सो यहू बांधने छोडनेका अध्यवसानतैं परविषैं किछू भी न किया। जातैं याकै नाहीं होतैं तौ जीव अपने सरागवीतरागपरिणामकरि बंधमोक्षकूं प्राप्त होय। बहुरि याकै होतैं भी जीव अपने सरागवीतराग परिणामके अभाव होतैं बंधमोक्षकूं नाहीं प्राप्त होय। तातैं अध्यवसान परविषैं अकिंचित्कर है, तातैं स्वार्थक्रियाकारी नाहीं, मिथ्या है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है तथा अगिले कथनकी सूचनिका रूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः। तत्किञ्चनापि नैवास्ति नात्माऽऽत्मानं करोति यत् ॥९॥

अर्थ—आत्मा है सो इस निष्फल निरर्थक अध्यवसायकरि मोह्या हुवा आपकूं अनेकरूप करे है। सो ऐसा पदार्थ कोई जगतमें नाहीं है—जिसरूप आपकूं नाहीं करै, सर्वहीरूप करे है।

भावार्थ--यह आत्मा मिथ्या अभिप्रायकरि भूल्या हुवा चतुर्गतिसंसारमें जेती अवस्था हैं, जेते पदार्थ हैं, तिनि सर्वस्वरूप आपकूं भया माने है। अपना शुद्धस्वरूपकूं नाहीं पहिचाने है। आगे इस अर्थकूं प्रगटरूप गाथामें कहे हैं। गाथा--

---

नीचे लिखी पांच गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥१॥

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए ।
देवमणुवेपि सव्वे पुण्णं पावं अणेयविहं ॥३२॥

वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥२॥
मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥३॥
सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥४॥

कायेन दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ॥
वाचा दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ॥
मनसा दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ।
शस्त्रेण दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि जीवाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—कायेण इत्यादि स्वकीयपापोदयेन जीवाः दुःखिताः भवंति यदि चेत् । तेषां जीवानां स्वकीयपापकर्मोदयभावे भवतो किमपि कर्तुं नायाति इति हेतोः मनोवचनकायैः शस्त्रैश्च जीवान् दुःखितान् करोमि इति रे

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥३३॥

दुरात्मन् त्वदीया मतिर्मिथ्या । परं किं तु स्वस्थभावच्युतो भूत्वा त्वं पापमेव बध्नासि इति ।

अर्थ—ये जीव अपने पापकर्मके उदयसे दुःखित होते हैं इसलिये हे जीव ! तेरी जो यह भावना है कि—मैंने मन वचन काय या शस्त्रसे इन्हें दुःखित किया है सो सर्व मिथ्या है कारण—यदि उनके पापकर्मका उदय नहीं हो तो तेरे प्रयत्नसे भी उनको दुःख नहीं पहुंच सक्ता ।

अथ सुखिता अपि निश्चयेन स्वकीयशुभकर्मोदये सति भवंतीति कथयति--

कायेण च वायाइव मणेण सुहिदे करेमि सत्तेति ।
एवंपि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥५॥

कायेन च वाचा वा मनसा सुखितान् करोमि सत्त्वानिति ।

एवमपि भवति मिथ्या सुखिनः कर्मणा यदि सत्वाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—स्वकीयकर्मोदयेन जीवा यदि चेत् सुखिता भवंति न च त्वदीयपरिणामेन तर्हि मनोवचनकायै-र्जीवान् सुखितानहं करोमि इति भवदीया मतिर्मिथ्या । एवं तवाध्यवसानं स्वार्थकं न भवति । परं किं तु निरुपराग-परमचिज्ज्योतिःस्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वमश्रद्दधानः, तथैवाजानन् अभावयंश्च तेन शुभपरिणामेन पुण्यमेव बध्नाति इत्यर्थः ।

अर्थ—जीव अपने शुभकर्मोदयसे सुखी होते हैं किसी दूसरे जीवके प्रयत्नसे नहीं इसलिये हे जीव ! तेरा यह सोचना कि मैंने इन्हें सुखी किया है, मिथ्या है ।

अथ स्वस्थभावप्रतिपक्षभूतेन च रागाद्यध्यवसानेन मोहितः सन्स्वयं जीवः समस्तमपि परद्रव्यमात्मनि नियोजयति इत्युपदिशति—

सर्वान् करोति जीवानध्यवसानेन तिर्यङ्नैरयिकान् ।
देवमनुजांश्च सर्वान् पुण्यं पापं च नैकविधं ॥३२॥
धर्माधर्मं च तथा जीवाजीवौ अलोकलोकं च ।
सर्वान् करोति जीवः अध्यवसानेन आत्मानं ॥३३॥

आत्मख्यातिः—यथायमेव क्रियागर्भहिंसाध्यवसानेन हिंसकं, इतराध्यवसानैरितरं च; आत्मात्मानं कुर्यात्, तथा विपच्यमाननारकाध्यवसानेन नारकं, विपच्यमानतिर्यगध्यवसानेन तिर्यंचं, विपच्यमानमनुष्याध्यवसानेन मनुष्यं, विपच्य-मानदेवाध्यवसानेन देवं, विपच्यमानसुखादिपुण्याध्यवसानेन पुण्यं, विपच्यमानदुःखादिपापाध्यवसानेन पापमात्मानं कुर्यात् । तथैव च ज्ञायमानधर्माध्यवसानेन धर्मं, ज्ञायमानाधर्माध्यवसानेनाधर्मं, ज्ञायमानाजीवाध्यवसानेन जीवं, ज्ञाय-मानाजीवाध्यवसानेनाजीवं, ज्ञायमानलोकाध्यवसानेन लोकं, ज्ञायमानालोकाकाशाध्यवसानेनालोकाकाशमात्मानं कुर्यात् ।

अर्थ—जीव है सो अध्यवसानकरि आपकै तिर्यंच नारक देव मनुष्य ए सर्व ही पर्याय हैं तिनिकूं करे है । वहुरि पुण्य पाप हैं तिनि सर्वहीकूं अनेक प्रकार आपकै करे है । वहुरि धर्म अधर्म तथा जीव अजीव तथा लोक अलोक इनि सर्वहीकूं इस अध्यवसानकरि आपरूप करे है ।

टीका—जैसैं यह आत्मा पूर्वोक्त क्रिया है गर्भ कहिये मध्य जाकै ऐसा हिंसाका अध्यवसानकरि आपकूं हिंसक करे है । वहुरि अहिंसाका अध्यवसानकरि अहिंसक करे है । वहुरि अन्य अध्य-वसानकरि अन्य वहुत प्रकार करे है । तैसैं ही विपच्यमान कहिये उदयमें आया जो नारकका अध्यवसान, ताकरि आपकूं नारकी करे है । वहुरि उदय आया जो तिर्यंचका अध्यवसान, ताकरि आपकूं तिर्यंच करे है । वहुरि उदय आया जो मनुष्यका अध्यवसान, ताकरि आपकूं मनुष्य करे है । वहुरि उदय आया जो देवका अध्यवसान, ताकरि आपकूं देव करे है । वहुरि उदय आया जो सुख आदि पुण्यका अध्यवसान, ताकरि पुण्यरूप आपकूं करे है । वहुरि उदय आया जो दुःख आदि पापका अध्यवसान, ताकरि आपकूं पापरूप करे है । तैसैं ही जाननेमें आया जो धर्म, ताका अध्यवसानकरि आपकूं धर्मरूप करे है । वहुरि जाण्या हुवा अधर्मका अध्यवसानकरि

आपकूं अधर्मरूप करे है। बहुरि जाण्या हुवा अन्य जीवका अध्यवसानकरि आपकूं अन्यजीवरूप करे है। बहुरि जाण्या हुवा पुद्गलका अध्यवसानकरि आपकूं पुद्गल करे है। बहुरि जाण्या हुवा लोकाकाशका अध्यवसानकरि आपकूं लोकाकाश करे है। बहुरि जाण्या हुवा अलोकाकाशका अध्यवसानकरि आपकूं अलोकाकाश करे है। ऐसें सर्वस्वरूप आपकूं अध्यवसानकरि करे है।

भावार्थ--यहू अध्यवसान अज्ञानरूप है, तातैं अपना परमार्थरूप नाहीं जानना। आत्मा आपकूं अनेक अवस्थारूप करे है, तिनिविषैं आपा मानि प्रवर्ते है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं तथा अगिले कथनकी सूचनिका है।

इन्द्रवज्राछन्दः

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावादात्मानमात्मा विदधाति विश्वम्।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०॥

अर्थ—यह आत्मा समस्त द्रव्यनितैं भिन्न है, तौऊ जिस अध्यवसायके प्रभावतैं आपकूं समस्तस्वरूप करे है, सो यह अध्यवसाय कैसा है? मोह है एक कंद जाका। सो यह अध्यवसाय जिनिकै नाहीं है, ते यति हैं मुनि हैं। आगे कहे हैं यह अध्यवसाय जिनिकै नाहीं ते मुनि कर्मतैं नाहीं लिपे हैं। गाथा—

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥३४॥

एतानि न संति येषामध्यवसानान्येवमादीनि।
तेऽशुभेन शुभेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्यंति ॥३४॥

आत्मख्यातिः--एतानि किल यानि त्रिविधान्यध्यवसानानि समस्तान्यपि शुभाशुभकर्मबन्धनिमित्तानि स्वयमज्ञानादिरूपत्वात्। तथा हि यदिदं हिनस्मीत्याद्यध्यवसानं तदज्ञानमयत्वेन आत्मनः सदहेतुकज्ञप्त्यैकक्रियस्य रागद्वेष-

विपाकमयीनां, हननादिक्रियाणां च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्माऽदर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं, विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं। यत्पुनरेष धर्मो ज्ञायत इत्याद्यध्यवसानं तदप्यज्ञानमयत्वेनात्मनः सदहेतुकज्ञानैकरूपस्य ज्ञेयमयानां धर्मादिरूपाणां च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्मादर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं। ततो बंधनिमित्तान्येवैतानि समस्तान्यध्यवसानानि। येषामेवैतानि न विद्यंते त एव मुनिकुञ्जराः। केचन सदहेतुकज्ञप्त्येकक्रियं सदहेतुकज्ञायकैकभावं सदहेतुकज्ञानैकरूपं च विविक्तात्मानं जानंतः सम्यक्पश्यंतोऽनुचरंतश्च स्वच्छस्वच्छंदोद्यदमंदांतर्ज्योतिषोऽत्यंतमज्ञानादिरूपत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा कर्मणा खलु न लिप्येरन्।

अर्थ--ए पूर्वोक्त अध्यवसान जिनिकै नाहीं हैं तथा या प्रकारके अन्य भी अध्यवसान जिनिकै नाहीं हैं, ते मुनिराज अशुभ तथा शुभकर्मकरि नाहीं लिपे हैं।

टीका—ए पूर्वोक्त अध्यवसान हैं ते तीन प्रकार हैं। अज्ञान अदर्शन अचारित्र। ऐसे ते समस्त ही शुभ अशुभ कर्मबंधके निमित्त हैं। जातैं ए आप स्वयं अज्ञानादिरूप हैं। कैसे हैं :सो कहिये हैं। जो यह मैं परजीवकूं हणूं हूं इत्यादिक अध्यवसाय है सो अज्ञानादिरूप होय है। जातैं आत्मा तौ ज्ञायक है, तिसपणाकरि ज्ञप्तिक्रियामात्र ही है, तातैं सद्रूपद्रव्यदृष्टिकरि अहेतुक काहूतैं उपज्या नाहीं ऐसा नित्यरूप ज्ञप्ति कहिये जाननेमात्र ही है एक क्रिया जाकै ऐसा: है। बहुरि हनना घातना आदि क्रिया हैं ते राग द्वेषका उदयमय हैं। ऐसैं आत्माके अर घातने आदि क्रियाके विशेष न जाननेकरि भिन्न आत्माकूं जान्या नाहीं, तातैं मैं परजीवकूं घातूं हूं ऐसा अध्यवसान अज्ञान है। बहुरि ऐसे ही भिन्न न्यारा आत्माका न देखना, श्रद्धान न होना तातैं अध्यवसान मिथ्यादर्शन है। बहुरि ऐसे ही भिन्न न्यारा आत्माका अनाचरणतैं अध्यवसान ही अचारित्र है। बहुरि यह धर्मद्रव्य है सो मोकरि जानिये है ऐसा अध्यवसाय है, सो भी अज्ञानादिरूप ही है। जातैं आत्मा तौ ज्ञानमय है, तिसपणा करि ज्ञानमात्र ही है। जातैं सद्रूपद्रव्यदृष्टिकरि अहेतुक कहिये जाका कारण कोऊ नाहीं ऐसा ज्ञानमात्र हो है एकरूप जाका ऐसा है।

बहुरि धर्मादिकरूप हैं ते ज्ञेयमय हैं। ऐसें ज्ञानज्ञेयका विशेष न जाननेकरि भिन्न न्यारा आत्माका अज्ञानतें मैं धर्मकूं जानूं हूं ऐसा भी अज्ञानरूप अध्यवसान है। बहुरि भिन्न आत्माका न देखनेकरि श्रद्धान न होनेकरि यह अध्यवसान मिथ्यादर्शन है। बहुरि भिन्न आत्माका अनाचरणतैं यह अध्यवसान अचारित्र है। तातैं ए अध्यवसान हैं ते समस्त ही बंधके निमित्त हैं। सो जिनिकै ए अध्यवसान विद्यमान नाहीं हैं, तेही मुनि प्रधान हैं। तिनिकूं मुनिकुञ्जर कहिये। ते केई विरले हैं। ते कैसे हैं ? सर्व अन्यद्रव्यभावनितैं भिन्न आत्मा सत्तारूप द्रव्यदृष्टीकरि काहूतैं उपज्या नाहीं, तातैं अहेतुक एक ज्ञायकभावस्वरूप अर सत्ता अहेतुक एकज्ञानरूप ऐसा आत्माकूं जानते संते हैं। बहुरि तिसहीकूं सम्यक्प्रकार देखते श्रद्धान करते संते हैं। बहुरि तिसहीकूं आचरते संते हैं। बहुरि निर्मल स्वच्छंद स्वाधीनप्रवृत्तिरूप उदयकूं प्राप्त होता अमंदप्रकाशरूप है अंतरंगज्योतिःस्वरूप जिनिकै ऐसे हैं। तातैं अज्ञान आदिके अत्यंत अभावतैं शुभ तथा अशुभकर्मकरि ते नाहीं लिपे हैं।

भावार्थ—यह अध्यवसान हैं ते मैं परकूं हणूं हूं ऐसे हैं, तथा मैं परद्रव्यकूं जानूं हूं ऐसे हैं, सो आत्माके अर रागादिकके तथा आत्माके अर ज्ञेयरूप अन्यद्रव्यके जेतैं भेद न जाने, तेतैं प्रवर्तै हैं। सो भेदविज्ञानविना मिथ्याज्ञानरूप हैं तथा मिथ्यादर्शनरूप हैं तथा मिथ्याचारित्ररूप हैं। ऐसे तीन प्रकार प्रवर्तै हैं। सो जिनिकै नाहीं ते मुनिकुंजर हैं। ते आत्माकूं सम्यक् जाने हैं, सम्यक् श्रद्धे हैं, सम्यक् आचरे हैं। तातैं अज्ञानके अभावतैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप भये संते कर्मनितैं नाहीं लिपे हैं। आगे पूछे है कि अध्यवसान बारबार कहते आये, सो यह अध्यवसान कहा है ? याका रूप नीकै समझे नाहीं ऐसैं पूछे अध्यवसानका रूप प्रगटकरि दिखावै हैं। गाथा—

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मदीय विण्णाणं ।
इक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥३५॥

बुद्धिर्व्यवसायोऽपि वा अध्यवसानं मतिश्च विज्ञानं ।
एकार्थमेव सर्वं चित्तं भावश्च परिणामः ॥३५॥

आत्मख्यातिः—स्वपरयोरविवेके सति जीवस्याध्यवसितिमात्रमध्यवसानं । तदेव च बोधनमात्रत्वाद् बुद्धिः । व्यवसानमात्रत्वात् व्यवसायः । मननमात्रत्वान्मतिज्ञानं । चेतनामात्रत्वाच्चित्तं । चितोभवनमात्रत्वाद् भावः । चितः परिणमनमात्रत्वात् परिणामः ।

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई । तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है ।

जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणद असुहसुहजणायं ।
अप्पसरूवा रिद्धी जाय ण हियए परिप्फुरइ ॥

यावत्संकल्पविकल्पो तावत्कर्म करोत्यशुभशुभजनकं ।
आत्मस्वरूपा ऋद्धिः यावत् न हृदये परिस्फुरति ॥

तात्पर्यवृत्तिः—यावत्कालं बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेतिरूपं संकल्पं करोति अभ्यंतरे हर्षविषादरूपं विकल्पं च करोति तावत्कालमनंतज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मानं हृदये न जानाति । यावत्कालमित्थंभूत आत्मा हृदये न परिस्फुरति, तावत्कालं शुभाशुभजनकं कर्म करोतीत्यर्थः ।

अर्थ—जब तक आत्मा आत्मासे भिन्न शरीर पुत्र और स्त्री आदिमें यह मेरे हैं इस प्रकार संकल्प करता है तथा अन्तरंगमें हर्ष विषादरूप विकल्प करता है तबतक अनंतज्ञानादि संपत्तिरूप आत्माको हृदयमें नहीं जानता है और तबतक शुभाशुभ कर्मको करता रहता है ।

अर्थ—बुद्धि व्यवसाय बहुरि अध्यवसान बहुरि मति विज्ञान चित्त भाव बहुरि परिणाम ए सर्व एकार्थ ही हैं, नाम भेद है, इनिका अर्थ न्यारा नाहीं।

टीका—आपका अर परका दोऊका भेदज्ञान न होते संते जो जीवकी अध्यवसिति कहिये निश्चितमात्र होय सो अध्यवसान है। सो ही बोधनमात्रपणातैं बुद्धि है बहुरि सो ही व्यवसान कहिये निश्चयमात्रपणातैं व्यवसाय है। सो ही जाननेमात्रपणातैं मति है। बहुरि सो ही विज्ञप्तिमात्रपणातैं विज्ञान है। बहुरि सो ही चेतनमात्रपणातैं चित्त है। बहुरि सो ही चेतनका भवनमात्रपणातैं भाव है। बहुरि सो ही परिणमनमात्रपणातैं परिणाम है। ए सर्व ही एकार्थ हैं।

भावार्थ—ए बुद्धि आदि आठ नाम कहे, ते सर्व ही चेतन आत्माके परिणाम हैं। सो जेतैं आपापरका भेदज्ञान न होय तेतैं परविषैं अर आपविषैं एकपणाका निश्चयरूप बुद्धि आदिक होय हैं। सो ही अध्यवसान नाम है। आगैं अगिले कथनकी सूचनिकाके अर्थरूप काव्य कहे हैं, "जो अध्यवसान त्यागनेयोग्य कह्या है, सो तहां ऐसी संभावना है, जो व्यवहारका त्याग कराया है, निश्चयनयका ग्रहण कराया है" ऐसैं कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं शुद्धज्ञानधने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥११॥

अर्थ—सर्व ही वस्तुनिविषैं जो समस्त अध्यवसान है, सो जिनभगवान् त्यागने योग्य कह्या है। सो आचार्य कहे हैं, हम ऐसे माने हैं "जो परके आश्रय प्रवर्तता जो व्यवहार सो सर्व ही छुडाया है" तातैं हम उपदेश करे हैं—जो सत्पुरुष हैं, ते सम्यक्प्रकार एक निश्चयहीकूं निष्कम्प जैसैं होय तैसैं निश्चल अंगीकार करिके अर शुद्धज्ञानघनस्वरूप अपना महिमा आत्मस्वरूप, ताविषैं थिरता क्यों नाहीं धारे हैं?

भावार्थ—जिनेश्वर देव अन्य पदार्थनिविषैं आत्मबुद्धिरूप अध्यवसान छुडाया है, सो यह

परात्रित सर्व ही व्यवहार छुडाया है ऐसें जानूं, तातें शुद्धज्ञानस्वरूप अपना आत्मा, ताविर्षे थिरता राखियो, ऐसा शुद्धनिश्चयका ग्रहणका उपदेश है । आचार्य आश्चर्य भी किया है—जो भगवान् अध्यवसानकूं छुडाया, तो अब सत्पुरुष याकूं छोडि अपने स्वरूपविर्षे क्यों नाहीं तिष्ठै हैं ? यह हमारे अचिरज है । आगे इस अर्थकूं गाथामें कहै हैं गाथा—

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥३६॥

एवं व्यवहारनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन ।
निश्चयनयसंलीना मुनयः प्राप्नुवन्ति निर्वाणं ॥३६॥

आत्मख्यातिः—आत्माश्रितो निश्चयनयः, पराश्रितो व्यवहारनयः । तत्रैवं निश्चयनयेन पराश्रितं समस्तमध्यवसानं बंधहेतुत्वेन मुमुक्षोः प्रतिषेधयता व्यवहारनय एव किल प्रतिषिद्धः, तस्यापि पराश्रितत्वाविशेषात् । प्रतिषेध्य एवं चायं, आत्माश्रितनिश्चयनयाश्रितानामेव मुच्यमानत्वात्, पराश्रितव्यवहारनयस्यैकान्तेनामुच्यमानेनाभव्येनाश्रियमाणत्वाच्च ।

कथमभव्येनाश्रियते व्यवहारनयः ? इति चेत्—

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार अध्यवसानरूप व्यवहारनय है, सो निश्चयनयकरि प्रतिषेधरूप जानूं । जे मुनिराज निश्चयके आश्रित हैं, ते निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ।

टीका—इहां निश्चयनय है सो तो आत्माकूं आश्रित है । बहुरि परकूं आश्रित है सो व्यवहारनय है । सो जैसें परकूं आश्रित समस्त अध्यवसान परकूं अर आपकूं एक मानना सो बंधका कारणपणाकरि मोक्षके इच्छककूं छुडावता जो निश्चनय, ताकरि तैसें ही निश्चयतें व्यवहारनय ही प्रतिषेध्या है छुडाया है । जातें जैसें अध्यवसान पराश्रित है, तैसें व्यवहारनय भी पराश्रित है, यामें विशेष नाहीं । जातें ऐसा सिद्ध होय है, जो यह व्यवहारनय प्रतिषेधनेयोग्य ही है ।

जातैं जे आत्माश्रित निश्चयनयकूं आश्रितपुरुष हैं, तिनिकै ही कर्मतैं छूटवापना है। बहुरि पराश्रित जो व्यवहारनय ताकै तौ एकांतकरि कर्मतैं नाहीं छूटता जो अभव्य, ताकरि भी आश्रीयमाणपणा है।

भावार्थ—आत्माकै परके निमित्ततैं अनेक भाव होय हैं, ते सर्व व्यवहारनयके विषय हैं, तातैं व्यवहारनय तौ पराश्रित है। अर जो एक अपना स्वाभाविकभाव है, सो निश्चयनयका विषय है। तातैं निश्चयनय आत्माश्रित है। सो अध्यवसान भी व्यवहारनयका ही विषय है। तातैं अध्यवसानका त्याग सो व्यवहारनयका ही त्याग है। सो निश्चयनयकूं प्रधानकरि व्यवहारनयका त्यागका उपदेश है। जातैं जे निश्चयके आश्रय प्रवर्तें हैं, ते तौ कर्मतैं छूटे हैं अर जे एकांतकरि व्यवहारनयहीके आश्रय प्रवर्तें हैं, ते कर्मतैं कबहू नाहीं छूटे हैं। आगै पूछे है, जो अभव्यकरि भी व्यवहारनय कैसैं आश्रय कीजिये है? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

वदसमिदी गुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
कुव्वंतोवि अभविओ अण्णाणी मिच्छदिट्ठीय ॥२७॥

व्रतसमितिगुप्तयः शीलतपो जिनवरैः प्रज्ञप्तं।
कुर्वन्नप्यभव्योऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु ॥२७॥

आत्मख्यातिः—शीलतपःपरिपूर्णं त्रिगुप्तिपञ्चसमितिपरिकलितमहिंसादिपंचमहाव्रतरूपं, व्यवहारचारित्रं, अभव्योऽपि कुर्यात् तथापि स निश्चारित्रोऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिरेव निश्चयचारित्रहेतुभूतज्ञानश्रद्धाशून्यत्वात्।

तस्यैकादशांगज्ञानमस्ति ? इति चेत्

अर्थ—व्रत समिति गुप्ति शील तप जिनेश्वरदेवनें कहे हैं। तिनिकूं करता संता भी अभव्यजीव है सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

टीका—शीलतपकरि परिपूर्ण, तीन गुप्ति पांच समितिकरि संयुक्त, अहिंसादिक पांच महा-

व्रतरूप ऐसा व्यवहारचारित्रकूं अभव्य भी करे है। तौऊ सो अभव्य चारित्रकरि रहित ही है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। जातैं निश्चयचारित्रका कारण स्वरूप जो ज्ञान श्रद्धान, ताकरि ताकै शून्यपणा है।

भावार्थ—अभव्य जीव महाव्रत समिति गुप्तिरूप व्यवहारचारित्र पालै तौऊ निश्चयसम्यग्ज्ञान श्रद्धान विना सो सम्यक्चारित्र नाम न पावे है। तातैं सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही रहे है। आगै शिष्य कहे है, "जो ताकै ग्यारह अंगका ज्ञान होय है," ताकूं अज्ञानी कैसैं कह्या? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥३८॥

मोक्षमश्रद्दधानोऽभव्यसत्त्वस्तु योधीयीत।
पाठो न करोति गुणमश्रद्दधानस्य ज्ञानं तु ॥३८॥

आत्मख्यातिः—मोक्षं हि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते, ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः, ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

तस्य धर्मश्रद्धानमस्तीति चेत्—

अर्थ—जो अभव्यजीव है, सो शास्त्रका पाठ पढे है परंतु मोक्षतत्त्वका श्रद्धानकूं नाहीं करता संता है, तातैं सो ज्ञान श्रद्धान नाहीं करता पुरुषकै गुण नाहीं करे है।

टीका—अभव्यजीव है सो प्रथम तो निश्चयकरि मोक्षकूं नाहीं श्रद्धान करे है। जातैं शुद्धज्ञानमय जो आत्मा, ताका ज्ञानकरि अभव्यकै शून्यपणा है, अभव्यकै शुद्धात्माका ज्ञान होय

नाहीं तातैं अभव्य ज्ञानकूं भी नाहीं श्रद्धानरूप करे है। बहुरि ज्ञानकूं नाहीं श्रद्धान करता संता अभव्य है सो आचारांगकूं आदि लेकरि ग्यारह अंगरूप श्रुतकूं पढता संता भी शास्त्रका पढनेका जो गुण है, ताका अभावतैं ज्ञानी नाहीं होय है। शास्त्र पढनेका यह गुण है, जो भिन्न वस्तुभूत ज्ञानमय आत्माका ज्ञान होय सो तिस भिन्नवस्तुभूत ज्ञानकूं नाहीं श्रद्धान करता जो अभव्य, ताकै शास्त्रके पढनेकरि आत्मज्ञान करनेकूं नाही समर्थ हूजिये है। तातैं ताकै शास्त्र पढनेका सो भिन्न आत्माका जानना गुण है सो नाहीं है। तातैं सांचे ज्ञानश्रद्धानके अभावतैं सो अभव्य अज्ञानी ही है, यह नियम है।

भावार्थ—अभव्य जीव ग्यारह अंग पढै तौऊ ताकै शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान न होय, तातैं ताकै शास्त्र पढना गुण न किया, तातैं सो अज्ञानी ही है। आगे शिष्य फेरि कहे हैं 'तिस अभव्यके धर्मका तौ श्रद्धान होय है, सो कैसैं निषेधिये?' ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं णहु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥३९॥

श्रद्दधाति प्रत्येति च रोचयति तथा पुनश्च स्पृशति।
धर्मं भोगनिमित्तं न खलु स कर्मक्षयनिमित्तं ॥३९॥

आत्मख्यातिः—अभव्यो हि नित्यकर्मफलचेतनारूपं वस्तु श्रद्धत्ते, नित्यज्ञानचेतनामात्रं न तु श्रद्धत्ते नित्यमेव भेदविज्ञानानर्हत्वात्। ततः स कर्ममोक्षनिमित्तं ज्ञानमात्रं भूतार्थं धर्मं न श्रद्धत्ते भोगनिमित्तं शुभकर्ममात्रमभूतार्थमेव श्रद्धत्ते। तत एवासौ, अभूतार्थधर्मश्रद्धानप्रत्ययनरोचनस्पर्शनैरुपरितनग्रैवेयकभोगमात्रमास्कंदन्न पुनः कदाचनापि विमुच्यते ततोऽस्य भूतार्थधर्मश्रद्धानाभावात्, श्रद्धानमपि नास्ति एवं सति तु निश्चयनयस्य व्यवहारनयप्रतिषेधो युज्यत एव।

कीदृशौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत्—

अर्थ—सो अभव्य जीव धर्मकूं श्रद्धान करे है, प्रतीति करे है, रोचे है, तथा स्पर्शे है। परंतु

संसारके भोगके निमित्त धर्म है ताकूं ही श्रद्धे है, ताहीकूं प्रतीति करे है, ताहीकूं रोचे है, ताहीकूं स्पर्शे है। अर कर्मक्षयका निमित्त धर्म है ताकूं नाहीं श्रद्धे है, नाहीं प्रतीति करे है, अर कर्मक्षयका निमित्त धर्म है ताकूं नहीं रोचे है, नाहीं स्पर्शे है।

टीका—अभव्य जीव है सो नित्य ही कर्मफलचेतनारूप वस्तूकूं श्रद्धे है। बहुरि नित्यज्ञानचेतनामात्र वस्तूकूं नाहीं श्रद्धे है। जातैं अभव्य जीव नित्य ही आपापरका भेदविज्ञानके योग्य नाहीं है; तातैं सो अभव्य ज्ञानमात्र भूतार्थ सत्यार्थ धर्म जो कर्मक्षयका निमित्त है, ताकूं नाहीं श्रद्धे है। अर शुभकर्ममात्र असत्यार्थ धर्म है, सो भोगका निमित्त है, ताकूं श्रद्धे है; तातैं ही यह अभव्य अभूतार्थ धर्मका श्रद्धान प्रतीति रोचना स्पर्शना इनिकरि उपरिले ग्रैवेयकताईंके भोगमात्रनिकूं पावे है, बहुरि कर्मतैं कदाचित् भी नाहीं छूटे है। तातैं याके भूतार्थ सत्यार्थ धर्मका श्रद्धानका अभावतैं साचा श्रद्धान भी नाहीं है। ऐसैं होतैं निश्चयनयकै व्यवहारनयका प्रतिषेध युक्त ही है।

भावार्थ—अभव्यजीव कर्मफलचेतनाकूं जाने है अर ज्ञानचेतनाकूं जाने नाहीं, जातैं याकै भेदज्ञान होनेकी योग्यता नाहीं है, तातैं शुद्ध आत्मिकधर्मका श्रद्धान याके नाहीं अर शुभकर्महीकूं धर्म श्रद्धे है, ताका फल ग्रैवेयकताईंके भोग पावे है, अर कर्मका क्षय नाहीं होय है, तातैं याकै सत्यार्थधर्मका भी श्रद्धान न कहिये अर याहीतैं निश्चयनयकै व्यवहारनयका निषेध है। इहां एता और जानना—जो यह हेतुवादरूप अनुभवप्रधान ग्रंथ है, तातैं भव्य अभव्यका अनुभवकी अपेक्षा निर्णय है अर यह ही अहेतुवाद आगमतैं मिलाइये तब अभव्यके सूक्ष्म केवलीगम्य ऐसा ही व्यवहारनयकी पक्षका आशय रहिजाय है, सो छद्मस्थके अनुभवगोचर नाहीं भी होय है, परंतु सर्वज्ञदेव जाने है। ताकै केवलव्यवहारकी पक्षतैं सर्वथा एकांतरूप मिथ्यात्व रहै, तातैं अभव्यका यहै आशय सर्वथा न मिटै, तातैं अभव्य ही है। आगे पूछे हैं, जो निश्चयनय तौ व्यवहारका प्रतिषेधक कह्या अर निश्चयके व्यवहारनय प्रतिषेधनेयोग्य कह्या, सो

ए दोऊ ही कैसें हैं ? ऐसें पूछे निश्चयव्यवहारका स्वरूप प्रगट कहे हैं । गाथा—

आयारादीणाणं जीवादीदंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥४०॥
आदा खु मज्झणाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥४१॥

आचारादिज्ञानं जीवादिदर्शनं च विज्ञेयं ।
षट्जीवानां रक्षा भणति चरित्रं तु व्यवहारः ॥४०॥
आत्मा खलु मम ज्ञानमात्मा मे दर्शनं चरित्रं च ।
आत्मा प्रत्याख्यानं आत्मा मे संवरो योगः ॥४१॥

आत्मख्यातिः—आचारादिशब्दश्रुतं ज्ञानस्याश्रयभूतत्वात् ज्ञानं, जीवादयो नवपदार्था दर्शनस्याश्रयत्वाद्दर्शनं, षट्जीवनिकायश्चारित्रस्याश्रयत्वात् चारित्रं, व्यवहारः । शुद्ध आत्मा ज्ञानाश्रयत्वाद् ज्ञानं, शुद्ध आत्मा दर्शनाश्रयत्वाद्दर्शनं, शुद्ध आत्मा चारित्राश्रयत्वाच्चारित्रमिति निश्चयः । तत्राचारादीनां ज्ञानाश्रयत्वस्यानैकांतिकत्वाद् व्यवहारनयः प्रतिषेध्यः । निश्चयनयस्तु शुद्धस्यात्मनो ज्ञानाद्याश्रयत्वस्यैकांतिकत्वात् तत्प्रतिषेधकः । तथाहि—नाचारादिशब्दश्रुतं एकांतेन ज्ञानस्याश्रयः, तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन ज्ञानस्याभावात् । न जीवादयः पदार्था दर्शनस्याश्रयाः तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन दर्शनस्याभावात् । न षट्जीवनिकायः चारित्रस्याश्रयस्तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन चारित्रस्याभावात् । शुद्ध आत्मैव ज्ञानस्याश्रयः, आचारादिशब्दश्रुतसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव ज्ञानस्य सद्भावात् । शुद्ध आत्मैव दर्शनस्याश्रयः, जीवादिपदार्थसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव दर्शनस्य सद्भावात् । शुद्ध आत्मैव चारित्रस्याश्रयः षड्जीवनिकायसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव चारित्रस्य सद्भावात् ।

अर्थ—आचारांग आदि शास्त्र है सो तौ ज्ञान है, बहुरि जीवादि तत्त्व है सो दर्शन है, बहुरि छह कायकी जीवनिकी रक्षा है सो चारित्र है; ऐसैं तौ व्यवहारनय कहे है। बहुरि निश्चय-

करि मेरा आत्मा ही ज्ञान है, वहुरि मेरा आत्मा ही दर्शन है, वहुरि मेरा आत्मा ही चारित्र है, बहुरि मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है, बहुरि मेरा आत्मा ही संवर है, बहुरि मेरा आत्मा ही योग है, समाधि है, ध्यान है ऐसैं निश्चयनय कहे है ।

टीका—आचारांगकूं आदि लेकरि शब्दश्रुत है, सो ज्ञान है, जातैं यह ज्ञानका आश्रय है । बहुरि जीवकूं आदि लेकरि नव पदार्थ हैं, ते दर्शन हैं, जातैं ए दर्शनके आश्रय हैं । बहुरि छह जीवनिकी रक्षा है, सो चारित्र है, जातैं यह चारित्रका आश्रय है । ऐसैं तौ व्यवहारनयके वचन हैं । बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ज्ञान है, जातैं ज्ञानका आश्रय आत्मा ही है । बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही दर्शन है. जातैं दर्शनका आश्रय आत्मा ही है। बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही चारित्र है, जातैं चारित्रका आश्रय आत्मा ही है । ऐसैं निश्चयनयके वचन हैं । तहां आचारांग आदिककै ज्ञानादिकका आश्रयपणाका अनैकांतिकपणा है, व्यभिचार है । आचारांग आदिक तौ होय अर ज्ञान आदिक नाहीं भी होय, तातैं व्यवहारनय प्रतिषेधने योग्य है । बहुरि निश्चयनय है, सो शुद्ध आत्माके ज्ञानादिकका आश्रयपणाका ऐकांतिकपणा है, जहां शुद्ध आत्मा है, तहां ही ज्ञानदर्शनचारित्र है । तातैं तिस व्यवहारनयका प्रतिषेध करनेवाला है । सो ही हेतुकरि कहे हैं, आचारादि शब्दश्रुत है, सो एकांतकरि ज्ञानका आश्रय नाहीं है, जातैं आचारांगादिकका अभव्य जीवकै सद्भाव होतै भी शुद्ध आत्माका अभावकरि ज्ञानका अभाव है। बहुरि जीव आदि नवपदार्थ हैं ते दर्शनका आश्रय नाहीं है, जातैं अभव्यकै तिनिका सद्भाव होतै भी शुद्धात्माका अभावकरि दर्शनका अभाव है । बहुरि छह जीवनिकी रक्षा है, सो चारित्रका आश्रय नाहीं है, जातैं ताका सद्भाव होतै भी अभव्यकै शुद्धात्माका अभावकरि चारित्रका अभाव है । बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही ज्ञानका आश्रय है, जातैं आचारांगादि शब्दश्रुतका सद्भाव होतै तथा असद्भाव होतै भी शुद्धात्माका सद्भावहीकरि ज्ञानका सद्भाव है । शुद्ध आत्मा है सो ही दर्शनका आश्रय है, जातैं जीवादि पदार्थनिका सद्भाव होतै तथा असद्भाव होतै भी शुद्धात्माका

सद्भावहीकरि दर्शनका सद्भाव है। बहुरि शुद्ध आत्मा ही चारित्रका आश्रय है, जातैं छह जीवनिकी रक्षाका सद्भाव होतैं तथा असद्भाव होतैं भी शुद्धात्माका सद्भावहीकरि चारित्रका सद्भाव है।

भावार्थ—आचारांगादि शब्दश्रुतका जानना तथा जीवादिपदार्थका जानना तथा छह कायके जीवनिकी रक्षा इनिके होतैं भी अभव्यके ज्ञानदर्शनचारित्र न होय है, तातैं व्यवहारनय तौ प्रतिषेध्य है। बहुरि शुद्धात्माके होतै ज्ञानदर्शनचारित्र होय ही हैं, तातैं निश्चयनय याका प्रतिषेधक है, तातैं शुद्धनय उपादेय कह्या है। आगैं अगिले कथनकी सूचनिकाका काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

रागादयो वन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१२॥

अर्थ—इहां शिष्य फेरि पूछे है, जो रागादिक हैं ते तौ बंधके कारण कहे, बहुरि ते शुद्ध-चैतन्यमात्र मह जो आत्मा तातैं अतिरिक्त कहिये भिन्न कहै—न्यारे कहै, तहां तिनिके होनेमें आत्मा निमित्त है कि पर कोई निमित्त है? ऐसैं प्रेरे हुए आचार्य फेरि आगाने याका उत्तर दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

नीचे लिखी गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्चं ॥
आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा ॥

जह फलियमणि विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादियेहिं दव्वेहिं ॥४२॥

आधाकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य ये इमे दोषाः ।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणाः खलु ये नित्यं ॥
आधाकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य ये इमे दोषाः ।
कथमनुमन्यते अन्येन क्रियमाणाः परस्य गुणाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—स्वयं पाकेनोत्पन्न आहार आधाकर्मशब्देनोच्यते तत्प्रभृतिव्याख्यानं करोति--आधाकर्माद्या ये इमे दोषाः, कथंभूताः ? शुद्धात्मनः सकाशात्परस्याभिन्नस्याहाररूपपुद्गलद्रव्यस्य गुणाः । पुनरपि कथंभूताः ? तस्यैवाहार-पुद्गलस्य पचनपाचनादिक्रियारूपाः तान्निश्चयेन कथं करोतीति ज्ञानीति प्रथमगाथार्थः । अनुमोदयति वा कथमिति द्वितीय गाथार्थः परेण गृहस्थेन क्रियमाणान्, न कथमपि । कस्मात् ? निर्विकल्पसमाधौ सति आहारविषयमनोवचन-कायकृतकारितानुमननाभावात् इत्याधाकर्मव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं ।

अर्थ—अपने आप पाकसे उत्पन्न हुये आहारको "आधाकर्म" नामसे कहा गया है । आधा-कर्म आदि पुद्गलद्रव्यके गुण हैं उनको यह ज्ञानी आत्मा स्वयं कैसे कर सकता है तथा किस प्रकार दूसरोंसे किये हुये उन दोषोंकी अनुमोदना कर सकता है अर्थात् ज्ञानी शुद्ध आत्मासे भिन्न पुद्गलद्रव्यके गुण आधाकर्म आदिको न तो स्वयं करता है और न दूसरोंसे किये हुओंकी अनुमोदना ही करता है ।

आहारग्रहणात्पूर्वं तस्य पात्रस्य निमित्तं यत्किमप्यशनपानादिकं कृतं तदौपदेशिकं भण्यते तेनौपदेशिकेन सह तदेवाधाकर्म पुनरपि गाथाद्वयेन कथ्यते—

आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥४३॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥

आधाकर्मौपदेशिकं च पुद्गलमयमेतद्द्रव्यं।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥
आधाकर्मौपदेशिकं च पुद्गलमयमेतद् द्रव्यं ।
कथं तन्मम कारितं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—यदिदमाहारकपुद्गलद्रव्यमाधाकर्मरूपमौपदेशिकं च चेतनशुद्धात्मद्रव्यपृथक्त्वेन नित्यमेवाचेतनं भणितं तत्कथं मया कृतं भवति कारितं वा कथं भवति ? न कथमपि । कस्माद्धेतोः ? निश्चयरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञाने सति आहारविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमानाभावात् । इत्यौपदेशिकव्याख्यानमुख्यत्वेन च गाथाद्वयं गतं ।

अयमत्राभिप्रायः पश्चात्पूर्वं संप्रतिकाले वा योग्याहारादिविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमतरूपैर्नवभिर्विकल्पैः शुद्धास्तेषां परकृताहारादिविषये बंधो नास्ति यदि पुनः परकीयपारिणामेन बंधो भवति तर्हि क्वापि काले निर्वाणं नास्ति । तथा चोक्तं ।

णावकोडिकम्मसुद्धो पच्छापुरदोय संपदिय काले ।
परसुहदुक्खणिमित्तं वज्झदि जदि णत्थि णिव्वाणं ॥

अर्थ—आधाकर्म आहारक पुद्गलद्रव्यरूप हैं इसलिये चेतनशुद्धात्मद्रव्यसे पृथक् हैं अतः वे कैसे मेरे होसक्ते हैं या मैं उनरूप कैसे हो सक्ता हूं ? अर्थात् नहीं हो सक्ता हूं क्योंकि मेरा उनका लक्षण भिन्न भिन्न है और इसीलिये आधाकर्म आदि अचेतनको न करा सकता हूं और न उनकी अनुमोदना ही कर सकता हूं। यहांपर यह अभिप्राय समझना चाहिये कि

यथा स्फटिकमणिः शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रक्तादिभिर्द्रव्यैः ॥४२॥
एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रागादिभिर्दोषैः ॥४३॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु केवलः स्फटिकोपलः परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते । परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्यते । तथा केवलः किलात्मा परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्येत, इति तावद्वस्तुस्वभावः ।

अर्थ—जैसा स्फटिकमणि आप शुद्ध है, सो रागादि कहिये ललाई आदि रंगरूप आप ही तौ नाहीं परिणमे है, अन्य लाल काला आदि द्रव्यनिकरि ललाई आदि रंगरूप परिणमे है । तैसा ही याही प्रकार ज्ञानी है सो आप शुद्ध है, सो रागादि भावनिकरि आप ही तौ नाहीं परिणमे है, अन्य जे रागादि दोष, तिनिकरि रागादिरूप कीजिये है ।

टीका—जैसा निश्चयकरि केवल एकला स्फटिकपाषाण है सो आप परिणामस्वभावरूप होतै संते भी अपना शुद्धस्वभावपणाकरि तौ रागादिनिमित्तपणाका अभावतैं रागादिकरि आप: नाहीं परिणमे है, आप ही आपके रागादिपरिणाम होनेका निमित्त नाहीं है । बहुरि परद्रव्य: स्वयं रागादिभावकूं प्राप्त हुवापणाकरि स्फटिकके रागादि निमित्तभूत है । ताकरि, शुद्धस्वभावतैं च्युत होता संता ही रागादिककरि परिणमिये है । तैसा केवल एकला आत्मा है सो परिणाम-

वर्तमान भूत भविष्यत कालमें वा योग्य आहारादि विषयमें नवकोटि विकल्पसे मेरा आत्मा शुद्ध है, उसके परकृत आहारदिके विषयमें बन्ध नहीं होता है । यदि उसके भी बन्ध माना जायगा तो किसी भी कालमें आत्माका निर्वाण नहीं हो सक्ता है ।

स्वभावरूप होतै संते भी आपके शुद्धस्वभावपणाकरि रागादिनिमित्तपणाका अभावतैं आप ही रागादि भावनिकरि नाहीं परिणमे है आपके आप ही रागादि परिणामका निमित्त नाहीं है, परद्रव्य स्वयं रागादिभावकूं प्राप्त हुवापणाकरि आत्माके रागादिकका निमित्तभूत है, ताकरि शुद्धस्वभावतैं च्युत होता संता ही रागादिककरि परिणमिये है। ऐसा ही वस्तूका स्वभाव है।

भावार्थ—आत्मा एकाकी तौ शुद्ध ही है, परंतु परिणामस्वभाव है। जैसा परका निमित्त मिलै तैसा परिणमे भी है। तातैं रागादिकरूप परिणमे है। सो परद्रव्यका निमित्तकरि परिणमे है। तहां स्फटिकमणिका दृष्टांत है—जो स्फटिकमणि आप तौ केवल एकाकार शुद्ध ही है, परंतु परद्रव्यका ललाई आदिका डंक लागै तब ललाई आदिरूप परिणमे है, सो यह वस्तूहीका स्वभाव है। यहां किछू अन्य तर्क नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप श्लोक है।

उपजातिछन्दः

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्माऽऽत्मनो याति यथाऽर्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥१३॥

अर्थ—आत्मा है सो आपके रागादिकका निमित्तभावकूं कदाचित् न प्राप्त होय है, तिस आत्माविषैं रागादिकका निमित्त परद्रव्यका संग ही है, इहां सूर्यकांतमणिका दृष्टांत है—जैसैं सूर्यकांतमणि आप ही तौ अग्निरूप नाहीं परिणमे है, तिसविषैं सूर्यका बिंब अग्निरूप होनेकूं निमित्त है, तैसैं जानना। यह वस्तूका स्वभाव उदयकूं प्राप्त है काहूका किया नाहीं है। आगै कहे हैं, जो ऐसा वस्तूका स्वभावकूं जानता संता ज्ञानी रागादिककूं आपके नाहीं करे है ऐसा सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः। रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः ॥१४॥

अर्थ—जैसैं अपने वस्तुस्वभावकूं ज्ञानी है सो जाने है, तिस कारणकरि सो ज्ञानी रागादिककूं

आपकै नाहीं करे है, तातैं रागादिकका कारक नाहीं है। आगै ऐसैं ही गाथामैं कहे हैं। गाथा--

णवि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥४४॥

नापि रागद्वेषमोहं करोति ज्ञानी कषायभावं वा।
स्वयमेवात्मनो न स तेन कारकस्तेषां भावानां ॥४४॥

आत्मख्यातिः—यथोक्तवस्तुस्वभावं जानन् ज्ञानी शुद्धस्वभावादेव न प्रच्यवते, ततो रागद्वेषमोहादिभावैः स्वयं न परिणमते न परेणापि परिणम्यते, ततष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावो ज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानामकर्तैवेति नियमः।

अर्थ—ज्ञानी है सो आप ही आपकै राग द्वेष मोह तथा कषायभाव नाहीं करे है, तिस कारणकरि सो ज्ञानी तिनि भावनिका कारक कहिये करनेवाला—कर्ता नाहीं है।

टीका—जैसा कह्या तैसा वस्तूका स्वभाव जानता संता ज्ञानी है सो अपना शुद्धस्वभावतैं ही नाहीं छुटे है, तातैं राग द्वेष मोह आदि भावनिकरि आपैआप नाहीं परिणमे है अर परकरि भी नाहीं परिणमिये है, तातैं टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वरूप ज्ञानी राग द्वेष मोह आदि भावनिका अकर्ता ही है, ऐसा नियम है।

भावार्थ—ज्ञानी भया, तब वस्तूका ऐसा स्वभाव जान्या, जो आप तौ आत्मा शुद्ध है—द्रव्यदृष्टिकरि अपरिणमनस्वरूप है, पर्यायदृष्टिकरि परद्रव्यके निमित्ततैं रागादिरूप परिणमे है, सो अब आप ज्ञानी तिनिभावनिका कर्ता न हो है, उदय आवै तिनिका ज्ञाता ही है। आगै कहे हैं "अज्ञानी ऐसा वस्तूका स्वभाव नाहीं जाने है, तातैं रागादिक भावनिका कर्ता होय है," याको सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः। रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥१५॥

अर्थ—अज्ञानी है सो ऐसा अपना वस्तुस्वभावकूं नाहीं जाने है, तिस कारणकरि सो अज्ञानी रागादिकभावनिकूं आपकै करे है, यातैं तिनिका कारक होय है। अब इस अर्थकी गाथा कहे हैं। गाथा—

रागह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणममाणो रायादी बंधदि पुणोवि ॥४५॥

रागे दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति पुनरपि ॥४५॥

आत्मख्यातिः—यथोक्तं वस्तुस्वभावमजानंस्त्वज्ञानी शुद्धस्वभावादासंसारं प्रच्युत एव। ततः कर्मविपाकप्रभवै रागद्वेषमोहादिभावैः परिणममानोऽज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानां कर्ता भवन् बध्यत एवेति प्रतिनियमः। ततः स्थितमेतत्—

अर्थ—राग बहुरि द्वेष बहुरि कषायकर्म इनिकूं होते संते जे भाव होय हैं, तिनिकरि परिणमता संता, अज्ञानी रागादिककूं फेरि फेरि बांधे है।

टीका—जैसा कह्या तैसा वस्तूका स्वभावकूं नाहीं जानता संता अज्ञानी है सो अपना शुद्धस्वभावतैं अनादिसंसारतैं लगाय च्युत ही है, छूटि रह्या है तातैं कर्मके उदयकरि भये जे राग द्वेष मोहादिक भाव, तिनिकरि परिणमता संता, अज्ञानी राग द्वेष मोहादि भावनिका कर्ता होता संता कर्मनिकरि बंधे ही है ऐसा नियम है।

भावार्थ—अज्ञानी वस्तूका स्वभाव तौ यथार्थ जाने नाहीं अर कर्मका उदयकरि जैसा भाव होय, तिसकूं आपा जानि परिणमैं, तब तिनिका कर्ता भया संता आगामी फेरि फेरि कर्म बांधे है यह नियम है। आगैं कहे हैं, जो इस हेतुतैं यह ठहरी, ताकी गाथा—

रागह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
ते मम दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा ॥४६॥
रागे च दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः ।
तन्मम तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति चेतयिता ॥४६॥

आत्मख्यातिः—य इमे किलाज्ञानिनः पुद्गलकर्मनिमित्ता रागद्वेषमोहादिपरिणामास्त एव भूयो रागद्वेषमोहादिपरिणामनिमित्तस्य पुद्गलकर्मणो बंधहेतुरिति ।

कथमात्मा रागादीनामकारकः ? इति चेत्—

अर्थ—राग बहुरि द्वेष बहुरि कषाय कर्म इनिकूं होते संते जे भाव होय तिनिकरि परिणमता संता, आत्मा रागादिकनिकूं बांधे है ।

टीका—निश्चयकरि जे ए अज्ञानीके पुद्गलकर्म हैं निमित्त जिनिकूं ऐसे राग द्वेष मोह आदि भावनिका कर्ता होता संता कर्मनिकरि बंधे ही है, ऐसा परिणाम है; ते ही फेरि राग द्वेष मोह आदि परिणामकूं निमित्त जो पुद्गलकर्म, ताके बंधके कारण होय हैं ।

भावार्थ—अज्ञानीकै कर्मके निमित्ततैं राग द्वेष मोह आदिक परिणाम होय हैं, ते फेरि आगामी कर्मबंधके कारण होय हैं । आगैं फेरि पूछे है, ऐसैं है, जो अज्ञानीके रागादिक फेरि कर्मबंधके कारण हैं, तौ आत्मा रागादिकका अकारक ही है, ऐसें कैसैं कह्या है? ताका समाधान कहे हैं । गाथा—

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥४७॥
अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चखाणंपि ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥४८॥

जाव ण पच्चक्खाणं अपडिक्कमणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वं ॥४९॥

अप्रतिक्रमणं द्विविधमप्रत्याख्यानं तथैव विज्ञेयं ।
एतेनोपदेशेनाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥४७॥
अप्रतिक्रमणं द्विविधं द्रव्ये भावे तथैवाप्रत्याख्यानं ।
एतेनोपदेशेनाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥४८॥
यावन्नप्रत्याख्यानमप्रतिक्रमणं च द्रव्यभावयोः ।
करोत्यात्मा तावत्तु कर्ता स भवति ज्ञातव्यः ॥४९॥

आत्मख्यातिः—आत्मा अनात्मनां रागादीनामकारक एव, अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्वैविध्योपदेशान्यथानुपपत्तेः। यः खलु, अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्रव्यभावभेदेन द्विविधोपदेशः स द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावं प्रथयन्नकर्तृत्वमात्मनो ज्ञापयति । तत एतत् स्थितं परद्रव्यं निमित्तं नैमित्तका आत्मनो रागादिभावाः। यद्येवं नेष्येत तदा द्रव्याप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोः कर्तृत्वनिमित्तत्वोपदेशोऽनर्थक एव स्यात् तदनर्थकत्वे त्वेकस्यैवात्मनो रागादिभावनिमित्तत्वापत्तौ नित्यकर्तृत्वानुषंगान्मोक्षाभावः प्रसजेच्च ततः परद्रव्यमेवात्मनो रागादिभावनिमित्तमस्तु तथा सति तु रागादीनामकारक एवात्मा, तथापि यावन्निमित्तभूतं द्रव्य न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च तावन्नैमित्तिकभूतं भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च, यावत्तु भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे तावत्कर्तैव स्यात् । यदैव निमित्तभूतं द्रव्यं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदैव नैमित्तिकभूतं भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च । यदा तु भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदा साक्षादकर्तैव स्यात् ।

द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावोदाहरणं चैतत् ।

अर्थ—अप्रतिक्रमण दोय प्रकार जानना, तैसैं ही अप्रत्याख्यान दोय प्रकार जानना, इस उपदेशकरि चेतयिता--आत्मा अकारक कह्या है । सो अप्रतिक्रमण दोय प्रकार--एक तौ द्रव्यविषैं, एक भावविषैं, बहुरि तैसैं ही अप्रत्याख्यान दोय प्रकार—एक द्रव्यविषैं, एक भावविषैं, इस

उपदेशकरि चेतयिता–आत्मा अकारक कह्या है, जेतैं आत्मा द्रव्यविषैं अर भावविषैं अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यान करै है, तेतैं सो आत्मा कर्ता होय है यह जानना।

टीका–आत्मा है सो आपहीकरि रागादिभावनिका अकारक ही है। जातैं आप ही कारक होय तौ अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यान इनिका द्रव्यभावकरि दोय प्रकारका उपदेशकी अप्राप्ति आवै है–जो निश्चयकरि अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यानका दोय प्रकार भेदका उपदेश है, सो यह उपदेश द्रव्यके अर भावके निमित्तनैमित्तिकभावकूं विस्तारता संता, आत्माके अकर्तापणाकूं जनावै है, तातैं यह ठहर्‌या, जो परद्रव्य तौ निमित्त है अर नैमित्तिक आत्माके रागादिकभाव हैं, जो ऐसैं न मानिये तौ द्रव्य अप्रतिक्रमण अर द्रव्य अप्रत्याख्यान इनिके कर्तापणाका निमित्तपणाका उपदेश है सो अनर्थक ही होय, अर इस उपदेशके अनर्थकपणा होतै संतै एक आत्माहीकै रागादिभावका निमित्तपणाकी प्राप्ति होतै सदा नित्यकर्तापणाका प्रसंग आवै, तातैं मोक्षका अभाव ठहरै, तातैं आत्माकै रागादिभावनिका निमित्त परद्रव्य ही होऊ, तैसैं होतैं आत्मा रागादिभावनिका अकारक ही है, यह सिद्ध भया तोऊ जेतैं रागादिकका निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान नाहीं करै, तेतैं नैमित्तिकभूत रागादिकभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान न होय, बहुरि जेतै इनि भावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान न होय, तेतैं रागादि भावनिका कर्ता ही है, बहुरि जिसकाल रागादिभावनिका निमित्तभूत द्रव्यनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करै है, तिसही काल नैमित्तिकभूत रागादिभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय है, बहुरि जिसकाल इनि भावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान भया, तिस काल साक्षात् अकर्त्ता ही है।

भावार्थ–प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानका द्रव्यभावके भेदकरि दोय प्रकारका उपदेश है। सो इहां शुद्धनयप्रधान कथन है। तातैं निषेधप्रधानकरि वर्णन है। तहां अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान ऐसा कह्या है. सो अतीतकालमैं परद्रव्यका ग्रहण किया, ताकूं अब भला जानै, ताका संस्कार रहै, ममत्व रहै, सो तौ द्रव्य अप्रतिक्रमण है। अर तिस परद्रव्यके ग्रहणके निमित्ततैं रागादिकभाव

भये थे, तिन्किूं वर्तमानमैं भला जानै, तिनिसूं ममत्व संस्कार रहै, सो भाव अप्रतिक्रमण है। बहुरि आगामी कालमैं परद्रव्यकी वांछाकरि ममत्व राखे सो द्रव्य अप्रत्याख्यान है। बहुरि तिनिके निमित्ततैं आगामी कालमैं रागादिभाव होयंगे तिनिकी वांछा राखै, ममत्व राखै, सो भाव अप्रत्याख्यान है। सो यह द्रव्य अप्रतिक्रमण भाव अप्रतिक्रमण, बहुरि द्रव्य अप्रत्याख्यान भाव अप्रत्याख्यान ऐसा दोय प्रकारका उपदेश है, सो द्रव्यभावके निमित्तनैमित्तिक भावकूं जनावे है। परद्रव्य तौ निमित्त है अर नैमित्तिक रागादिक भाव हैं; सो जेतैं निमित्तभूत परद्रव्यका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान या आत्माके है, तेतैं तौ रागादिभावनिका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है। अर जेतैं रागादिभावनिका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है, तेतैं रागादिभावनिका कर्ता ही है। अर जिस काल निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करै, तिसकाल नैमित्तिक रागादिभावनिका भी प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय। बहुरि रागादिभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय तब साक्षात् अकर्ता ही है। ऐसैं आत्मा स्वयमेव तौ रागादिभावनिका अकर्ता ही है। यह परद्रव्यका निमित्त कहनेतैं जानिये है। आगे द्रव्यके अर भावके निमित्तनैमित्तिक भावका उदाहरण यह है, सो गाथामैं कहे हैं। गाथा—

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणादु जे णिच्चं ॥५०॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होदि कयं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥५१॥

अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः।
कथं तान्करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यं ॥५०॥

अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं ।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥५१॥

आत्मख्यातिः--यथाधःकर्मनिष्पन्नमुद्देशनिष्पन्नं च पुद्गलद्रव्यनिमित्तभूतमप्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं न प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यमप्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तकं भावं न प्रत्याचष्टे। यथा चाधःकर्मादीन् पुद्गलद्रव्यदोषान्न नाम करोत्यात्मा परद्रव्यपरिणामत्वे सति, आत्मकार्यत्वाभावात् ततोऽधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलद्रव्यं न मम कार्यं नित्यमचेतनत्वे सति मत्कार्यत्वाभावात् इति तत्त्वज्ञानपूर्वकं पुद्गलद्रव्यं निमित्तभूतं प्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यं प्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तं भावं प्रत्याचष्टे एवं द्रव्यभावयोरस्ति निमित्तनैमित्तिकभावः।

अर्थ—अधःकर्मकूं आदि लेकरि जे ए पुद्गलद्रव्यके दोष हैं, तिनिकूं ज्ञानी कैसें करे? जातैं ए नित्य ही सदा पुद्गलद्रव्यके गुण हैं। वहुरि यह अधःकर्म अर उद्देशिक है सो पुद्गलमय द्रव्य है, ज्ञानी यह जाने है, जो यह मेरा किया कैसें होय? जो सदा अचेतन कह्या है।

टीका—जैसें अधःकर्मकरि निपज्या वहुरि उद्देशकरि निपज्या जो आहार आदिक पुद्गल द्रव्य, सो भावनिकूं निमित्तभूत है। जैसा भक्षण करै तैसा भाव होय, सो ऐसें द्रव्यकूं अप्रत्याख्यानरूप करता त्याग न करता जो मुनि, सो तिस द्रव्यके नैमित्तिकभूत जे भाव, ते वंधके साधक हैं, तिनिकूं भी त्याग न करे हैं; तैसें ही समस्त परद्रव्यकूं जो त्यागै नाहीं है, सो तिसके निमित्ततैं होते भावनिकूं भी नाहीं त्यागे है। वहुरि जैसें अधःकर्म आदिक पुद्गलद्रव्यनिकूं आत्मा नाहीं करे है, जातैं ए पर पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, तिसपणाकूं होतैं आत्माके कार्यपणाका इनिकै अभाव है; तातैं ज्ञानी ऐसें जानै "जो अधःकर्म उद्देशिक पुद्गलद्रव्य हैं, ते मेरे कार्य नाहीं हैं, जातैं ए नित्य ही अचेतनपणाके होतै मेरे कार्यपणाका इनिकै अभाव है" ऐसें तत्त्वज्ञानपूर्वक निमित्तभूत पुद्गलद्रव्यकूं त्याग करता संता मुनि वंधका साधक जो नैमित्तिकभूतभाव, ताकूं भी त्यागे है, तैसें ही समस्त परद्रव्यकूं त्याग करता संता तिस परद्रव्यके

निमित्ततैं होते भावनिकूं भी त्यागे है, ऐसैं द्रव्यभावके निमित्तनैमित्तिकभाव हैं।

भावार्थ—यह द्रव्यकै अर भावकै निमित्तनैमित्तिकपणा उदाहरणकरि दृढ किया है। जैसैं लौकिकजन कहे हैं—जो जैसा दाणा खाय, तैसी बुद्धि उपजै। तैसैं ही शास्त्रमें उदाहरण है—जो पापकर्मकरि आहार निपजै, ताकूं अधःकर्मनिष्पन्न कहिये तथा जो आहार किसीके निमित्त निपजै, ताकूं उद्देशिक कहिये। सो ऐसा आहार जो पुरुष सेवै, ताके तैसे ही भाव होय। ऐसा द्रव्यभावका निमित्तनैमित्तिकभाव है, तैसा ही समस्तद्रव्यनिका निमित्तनैमित्तिकभाव जानना। ऐसैं होते जो परद्रव्यकूं ग्रहण करे है ताकै रागादिभाव भी होय हैं, तिनिका कर्ता भी होय है, तब कर्मका बंध भी करै है। बहुरि जब ज्ञानी होय है, तब काहूके ग्रहण करनेका राग नाहीं, तब रागादिरूप परिणमन भी नाहीं, तब आगामी बंध भी नाहीं, ऐसैं ज्ञानी परद्रव्यका कर्ता नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहि परद्रव्यके त्यागनेका उपदेश करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्तन्मूलं बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ॥
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१६॥

अर्थ—जो पुरुष ऐसैं परद्रव्यके अर अपने भावके निमित्तनैमित्तिकपणा विचारिकरि, तिस परद्रव्यसमस्तकूं अपना बल—पराक्रम--उद्यमकरि, त्याग करिके, अर सो परद्रव्य है मूल जाका ऐसी बहुत भावनिकी संतति--परिपाटीकूं दूरि युगपत् उडावनेकूं चाहता संता अतिशयकरि वहता प्रवाहरूप धारावाही पूर्ण एकसंवेदन, तिसकरि युक्त जो अपना आत्मा, ताहि प्राप्त होय है। जिस कारणकरि उन्मूलित किये हैं—मूलतैं उपाडे हैं कर्मके बंधन जानै ऐसा भगवान् यह आत्मा आपहीविषैं स्फुरायमान प्रगट होय है।

भावार्थ—परद्रव्यके अर अपने भावके निमित्तनैमित्तिकभाव जानि, समस्त परद्रव्यकूं त्यागै, तब समस्तरागादि भावनिकी संतति कटि जाय, अब आत्मा अपना ही अनुभव करता संता

कर्मके बंधनकूं काटि आपहीविषैं प्रकाशरूप प्रगटे हैं । तातैं अपना हित चाहे हैं ते ऐसैं करो ।

अब बंध अधिकार पूर्ण किया, ताके अंतमंगलरूप ज्ञानकी महिमाका अर्थरूप कलशकाव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत् तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्या वृणोति ॥१७॥

इति बंधो निष्क्रांतः ।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ सप्तमोऽङ्कः ।

अर्थ—यह ज्ञानज्योति है सो क्षेप्या है—दूरि किया है अज्ञानरूप अंधकार जानें सो तैसें सम्यक्प्रकार सज्या जैसैं याका प्रसर कहिये फैलना अवर कोई आवरे नाहीं सो यह ऐसा पहलै कहा करिकै सज्या सो कहे हैं । पहलै तो बंधके कारण जे रागादिकभाव, तिनिका उदयकूं जैसें निर्दयी काहूकूं विदारे तैसैं तिनिकूं विदारता संता प्रगटया, पीछैं जब कारण दूरी भये, तब तिनिका कार्य जो कर्मका ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार बंध ताकूं अब तत्काल ही दूरि करिके अर सज्या है ।

भावार्थ—ज्ञान प्रगट होय है जब रागादिक न रहै, तिनिका कार्य बंध न रहै, तब फेरि याकूं आवरणेवाला कोई न रहै, सदाकाल प्रकाशरूप रहै । ऐसैं रंगभूमिमैं बंधका स्वांग प्रवेश किया था, सो ज्ञानज्योति प्रगट भया, तब बंध स्वांग दूरि करि निकसि गया ।

सवैया तेईसा

जो नर कोय परै रजमाहि सचिक्कण अंग लगै वह गाढै, त्यौं मतिहीन जु राग विरोध लिये विचरे तब बंधन बाढै ।
पाय समै उपदेश यथारथ रागविरोध तजै निज चाटै, नाहि बंधै तब कर्मसमूह जु आप गहै परभावनि काटै ॥१॥

ऐसैं इस समयसारनाम ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीकाकी वचनिकाविषैं बंध नामा सातमां अधिकार पूर्ण भया । इहां तांई गाथा २८७ भई । कलश १७९ भये ॥

अथ मोक्षाधिकारः ।

दोहा—कर्मबंध सब काटिकै पहुंचै मोक्ष सुथान । नमूं सिद्ध परमात्मा करूं ध्यान अमलान ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशति मोक्षः ।

अब टीकाकारके वचन हैं, जो इहां मोक्षतत्त्व प्रवेश करे है । प्रबंध—जैसैं नृत्यके अखाडेमैं स्वांग प्रवेश करे है । तहां ज्ञान सर्व स्वांगका जाननेवाला है, तातैं सम्यग्ज्ञानकी महिमारूप मंगल अधिकारका आदिविषैं काव्य कहे हैं ।

शिखरिणीछन्दः

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद् बन्धपुरुषौ नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम् ।
इदानीमुन्मज्जन् सहजपरमानन्दसरसं परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१॥

अर्थ—अब बंधपदार्थके अनंतर पूर्णज्ञान है सो प्रज्ञारूप करोतकरि दलन कहिये विदारणतैं बंध अर पुरुषकूं द्विधा कहिये न्यारे न्यारे दोय करि अर पुरुषकूं साक्षात् मोक्षकूं प्राप्त करता संता जयवंत प्रवर्तै है । कैसा है पुरुष ? उपलंभ कहिये अपना स्वरूपका साक्षात् अनुभवन, ताहीकरि निश्चित है । बहुरि ज्ञान कैसा है ? उदय होता जो अपना स्वाभाविक परम आनंद, ताकरि सरस है रस भरया है, बहुरि पर कहिये उत्कृष्ट है, बहुरि कीये हैं समस्त करने योग्य कार्य जानै—अब कछु करना न रह्या है ।

भावार्थ—ज्ञान है सो बंधपुरुषकूं जुदे करि पुरुषकूं मोक्ष प्राप्त करता संता अपना संपूर्णरूप प्रगटकरि जयवंत प्रवर्तै है, याका सर्वोत्कृष्टपणा कहना यह ही मंगलवचन है । आगैं कहे हैं, जो मोक्षकी प्राप्ति कैसैं होय है । तहां प्रथम तौ जो बंधका छेद न करै हैं अर बंधका स्वरूप ही जाणि संतुष्ट हैं, ते मोक्ष न पावे हैं । गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणियह्मि चिरकालपडिवद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स ॥ १ ॥
जइ णावि कुव्वदि छेदं ण मुंचदि तेण कम्मबंधेण।
कालेण वहुएणवि ण सो णरो पावदि विमोक्खं ॥ २ ॥
इय कम्मबंधणाणं पयेसपयडिट्ठिदीयअणुभागं।
जाणंतोवि ण मुंचदि मुंचदि सव्वेज्ज जदि सुद्धो ॥३॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषो बंधनके चिरकालप्रतिबद्धः।
तीव्रं मंदस्वभावं कालं च विजानाति तस्य ॥१॥
यदि नापि करोति छेदं न मुच्यते तेन कर्मबंधेन।
कालेन बहुकेनापि न स नरः प्राप्नोति विमोक्षं ॥२॥
इति कर्मबंधानां प्रदेशस्थितिप्रकृतिमेवमनुभागं।
जानन्नपि न मुंचति मुंचति सर्वान् यदि विशुद्धः ॥३॥

आत्मख्यातिः—आत्मबंधयोर्द्विधाकरणं मोक्षः, बंधस्वरूपज्ञानमात्रं तद्धेतुरित्येके तदसत् न कर्मबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रं मोक्षहेतुः अहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रवत् एतेन कर्मबंधप्रपंचरचनापरिज्ञानमात्रसंतुष्टा उत्थाप्यंते—

अर्थ—अहो देखो ! जैसैं कोऊ पुरुष बंधनविषैं बहुत कालका बंध्या, तिस बंधनका तीव्र मंद गाढा ढीला स्वभावकूं जाने है, बहुरि तिसका कालकूं जानें है, जो एता कालका बंध्या है, अर जो तिस बंधनकूं आप काटै नाहीं है तौ तिस बंधनकै वशी भया ही रहे है, तिसकरि छूटै नाहीं है, बहुत भी कालकरि सो पुरुष बंधतैं छूटना ऐसा मोक्ष नाहीं पावे है। तैसैं ही जो पुरुष कर्मके

बंधनका प्रदेशबंध स्थितिबंध प्रकृतिबंध अनुभागबंध याप्रकार है ऐसैं जानता संता है, सो भी कर्मतैं नाहीं छूटै है, बहुरि जो आप रागादिकूं दूरि करि शुद्ध होय, तौ छूटै है।

टीका—आत्माका अर बंधका द्विधाकरण कहिये न्यारा न्यारा करना सो मोक्ष है। तहां केई ऐसैं कहे हैं जो बंधका स्वरूपका ज्ञानमात्रहीतैं मोक्ष है, बंधका स्वरूप जानना सो ही मोक्षका कारण है सो यह कहना असत्य है, जातैं ऐसा अनुमानका प्रयोग है जो कर्मकरि बंधे पुरुषकै बंधका स्वरूपका ज्ञानमात्र ही मोक्षका कारण नाहीं है। जातैं यह जानना ही कर्मतैं छूटनेका कारण नाहीं है, जैसैं बेडी आदि करि बंध्या पुरुषकै तिस बेडी आदि बंधनका स्वरूपका जाननेमात्रपणा ही बेडी आदि काटनेका कारण नाहीं होय है, तैसैं ही कर्मका बंधका स्वरूप जाननेमात्रहीतैं कर्मबंधतैं छुटै नाहीं है। इस कथनकरि कर्मके बंधका प्रपंच कहिये विस्तार तिसकी रचना अनेक प्रकार होना तिसका जाननेमात्रकरि जे केई अन्यमती आदि मोक्ष माने हैं, ते इसका ज्ञानमात्रहीविषैं संतुष्ट हैं, तिनिका उत्थापन कीजिये हैं।

भावार्थ—केई अन्यमती ऐसैं माने हैं, जो बंधका स्वरूप जानतेतैं ही मोक्ष है तिनिका कहनेका इस कथनकरि निराकरण जानना। जाननेमात्रतैं बंध कटै नाहीं। बंध तौ काट्या कटै। आगे कहे हैं, जो बंधकी चिंता किये भी बंध कटै नाहीं। गाथा—

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावदि विमोक्खं ॥४॥

यथा बंधं चिंतयन् बंधनबद्धो न प्राप्नोति विमोक्षं।
तथा बंधं चिंतयन् जीवोऽपि न प्राप्नोति विमोक्षं ॥४॥

आत्मख्यातिः—बंधचिंताप्रबंधो मोक्षहेतुरित्यन्ये तदप्यसत् न कर्मबद्धस्य बंधचिंताप्रबंधज्ञानमात्रं मोक्षहेतुरहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधचिंताप्रबंधवत्। एतेन कर्मबंधविषयचिंताप्रबंधात्मकविशुद्धधर्मध्यानांधबुद्धयो बोध्यंते।

कस्तर्हि मोक्षहेतुः इति चेत्—

अर्थ—जैसैं कोई बंधनकरि बंध्या पुरुष है सो तिनिबंधनकूं चिंतवता संता तिसका सोच करतासंता भी मोक्षकूं नाहीं पावे है, तैसैं कर्मबंधकी चिंता करता जीव है सो भी मोक्षकूं नाहीं पावे है।

टीका—अन्य केई ऐसैं माने हैं जो बंधकी चिंताका प्रबंध है, सो मोक्षका कारण है सो भी मानना असत्य है। इहां भी अनुमानका प्रयोग ऐसा ही है, जो कर्मबंधनकरि बंध्या जो पुरुष, ताकै तिस बंधकी चिंताका प्रबंध है—जो यह बंध कैसैं छूटेगा ? या रीति मनकूं लगाय राखै सो भी बंधका अभावरूप जो मोक्ष ताका कारण नाहीं है। जातैं यह चिंताप्रबंध बंधतैं छूटनेका कारण नाहीं। जैसैं कोई बेडी सांखलतैं बंध्या पुरुष तिस बंधकी चिंता करवो करै, छूटनेका उपाय न करै, सो तिस बेडी आदिके बंधनतैं छूटै नाहीं। तैसैं कर्मबंधकी चिंताप्रबंधतैं मोक्ष नाहीं। इस कथनकरि कर्मबंधविषैं चिंताप्रबंधस्वरूप विशुद्ध धर्मध्यानकरि अंध है बुद्धि जिनिकी तिनिकूं समझाईए हैं।

भावार्थ—कर्मबंधकी चिंतामैं मन लग्या रहै, सोच करवो करै तौ भी मोक्ष होय नाहीं। यह धर्मध्यानरूप शुभपरिणाम है, सो केवल शुभपरिणामहीतैं मोक्ष माने हैं, तिनिकूं उपदेश है। जो शुभपरिणामतैं मोक्ष नाहीं। आगे पूछे हैं "जो बंधके स्वरूपका ज्ञानतैं मोक्ष नाहीं, तिसका सोच कीये मोक्ष नाहीं, तौ मोक्षका कारण क्या है ?" ऐसैं पूछै मोक्ष होनेका उपाय कहे हैं। गाथा—

जह बंधे छित्तूणय बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं।
तह बंधे छित्तूणय जीवो संपावदि विमोक्खं ॥५॥

यथा बंधांश्छित्वा च बंधनबद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षं ।
तथा बंधांश्छित्वा च जीवः सम्प्राप्नोति विमोक्षं ॥५॥

आत्मख्यातिः—कर्मबद्धस्य बंधच्छेदो मोक्षहेतुः, हेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधच्छेदवत् एतेन उभयेऽपि पूर्वे आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे व्यापार्यंते ।

किमयमेव मोक्षहेतुः ? इति चेत् ।

अर्थ—जैसैं बंधनतैं बंध्या पुरुष है सो बंधनकूं छेदिकरि मोक्षकूं पावे है, तैसैं ही कर्मके बंधनकूं छेदिकरि, जीव मोक्षकूं पावे है ।

टीका—कर्मके बंधका बंधनकूं छेदना मोक्षका कारण है, जातैं यह छेदना ही तहां कारण है । जैसैं बेडी सांकल आदिकरि बंध्या पुरुषकै सांकलका बंध काटना छूटनेका कारण है, तैसैं इस कथनकरि पहिलै कहे थे जे दोय पुरुष—एक तौ बंधका स्वरूप जाननेवाला अर एक बंधकी चिंता करनेवाला—तिनि दोऊनिकूं आत्माका अर बंधका न्यारा न्यारा करनेविषैं प्रेरणा करि व्यापार कराइए है—उपदेशकरि उद्यम कराया है । फेरि पूछे है जो कर्मबंधनका छेदना मोक्षका कारण कह्या, सो एतावान्मात्र ही मोक्षका कारण है, कहा ? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं । गाथा—

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमुक्खणं कुणदि ॥६॥

बंधानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च ।
बंधेषु यो न रज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥६॥

आत्मख्यातिः—य एव निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावं तद्विकारकारकं बंधानां च स्वभावं विज्ञाय बंधेभ्यो विरमति स एव सकलकर्ममोक्षं कुर्यात् । एतेनात्मबंधयोर्द्विधाकरणस्य मोक्षहेतुत्वं नियम्यते ।

केनात्मबंधो द्विधा क्रियते ? इति चेत्—

अर्थ—बंधनिका स्वभावकूं जानिकरि बहुरि आत्माका स्वभावकूं जानिकरि अर जो पुरुष बंधनिविषें विरक्त होय है, सो पुरुष कर्मनिका विमोक्षण करे है।

टीका—जो पुरुष निश्चयकरि निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र तौ आत्माका स्वभाव अर तिस आत्माके विकारका करनेवाला बंधनिका स्वभाव इनि दोऊनिकूं विशेषकरि जानिकरि अर तिनि बंधनितैं विरक्त होय है, सो ही पुरुष समस्त कर्मका मोक्षकूं करे है। इस कथनकरि आत्माका अर बंधका न्यारा न्यारा द्विधा करनेके मोक्षका कारणपणाका नियम किया है। दोऊका न्यारा न्यारा करना ही मोक्षका कारण नियमकरि है। ऐसैं नियमकरि कह्या है। आगे फेरि पूछे हैं, जो आत्मा अर बंध ए दोऊ किसकरि द्विधा कहिये न्यारे कीजिये? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

जीवो बंधोय तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएणदु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥७॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
प्रज्ञाछेदकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ ॥७॥

आत्मख्यातिः—आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे कार्ये कर्तुरात्मनः करणमीमांसायां निश्चयतः स्वतो भिन्नकरणासंभवात् भगवती प्रज्ञैव छेदनात्मकं करणं। तया हि तौ छिन्नौ नानात्वमवश्यमेवापद्येते ततः प्रज्ञैवात्मबंधयोर्द्विधाकरणं। ननु कथमात्मबंधौ चेत्यचेतकभावेनात्यंतप्रत्यासत्तेरेकीभूतौ भेदविज्ञानाभावादेकचेतकवद् व्यवह्रियमाणौ प्रज्ञया छेत्तुं शक्येते? नियतस्वलक्षणसूक्ष्मांतःसंधिसावधाननिपातनादिति बुध्येमहि। आत्मनो हि समस्तशेषद्रव्यासाधरणत्वाच्चैतन्यं स्वलक्षणं तत्तु प्रवर्तमानं यद्यदभिव्याप्य प्रवर्तते निवर्तमानं च यद्यदुपादाय निवर्तते तत्तत्समस्तमपि सहप्रवृत्तं क्रमप्रवृत्तं वा पर्यायजातमात्मेति लक्षणीयं तदेकलक्षणलक्ष्यत्वात्, समस्तसहक्रमप्रवृत्तानंतपर्यायाविनाभावित्वाच्चैतन्यस्य चिन्मात्र एवात्मा निश्चेतव्यः, इति यावत्। बंधस्य तु आत्मद्रव्यसाधरणा रागादयः स्वलक्षणं। न च रागादय आत्म-

द्रव्यासाधारणतां बिभ्राणाः प्रतिभासंते नित्यमेव चैतन्यचमत्कारादतिरिक्तत्वेन प्रतिभासमानत्वात् । न च यावदेव समस्त-स्वपर्यायव्यापि चैतन्यं प्रतिभाति ? रागादीनंतरेणापि चैतन्यस्यात्मलाभसंभावनात् । यत्तु रागादीनां चैतन्येन सहैवो-त्प्लवनं तच्चेत्यचेतकभावप्रत्यासत्तेरेव नैकद्रव्यत्वात्, चेत्यमानस्तु रागादिरात्मनः प्रदीप्यमानो घटादिः प्रदीपस्य प्रदी-पकतामिव चेतकतामेव प्रथयेन्न पुनारागादीनां, एवमपि तयोरत्यंतप्रत्यासत्त्या भेदसंभावनाभावनादिरस्त्येकत्वव्यामोहः स तु प्रज्ञयैव छिद्यत एव ।

आत्मबंधौ द्विधाकृत्वा किं कर्तव्यं ? इति चेत् ।

अर्थ—जीव अर बंध दोऊ अपने अपने निश्चतस्वलक्षणनिकरि बुद्धिरूपी छैनीकरि जैसैं छेदे तैसैं छेदिये हुये नानापणाकूं प्राप्त होय जाय न्यारे न्यारे होय जांय ।

टीका—आत्मा अर बंधका द्विधाकरण कहिये न्यारा न्यारा करना नामा जो कार्य, ताविषें करनेवाला जो कर्ता आत्मा, ताकै करणका विचार कीजिये तब निश्चयनयथकी आपतैं न्यारा करण नामा कारकका तौ असंभव है । तातैं भगवती कहिये ज्ञानस्वरूप जो प्रज्ञा बुद्धि, सो ही छेदनस्वरूप करण है, तिस प्रज्ञाहीकरि ते दोऊ आत्मा अर बंध छेदे हुये नानापणाकूं अवश्य प्राप्त होय हैं—अवश्य न्यारे न्यारे होय जाय हैं । तातैं प्रज्ञाहीकरि आत्मा अर बंधका न्यारा न्यारा करना है । इहां प्रश्न है--जो आत्मा अर बंध ए दोऊ तौ चेतकचेत्यभावकरि अत्यंत प्रत्या-सत्ति कहिये निकटताकरि एकसे होय रहे है । आत्मा तौ चेतक है अर बंध चेत्य है । सो दोऊ एकरूप भये अनुभवमें आवे है । सो भेदविज्ञानके अभावतैं एक चेतक ही जो व्यवहारमैं प्रवर्तते देखिये हैं, ते प्रज्ञाकरि कैसैं छेदनेकूं समर्थ हूजिये ? ताका समाधान आचार्य करे हैं--जो हम ऐसैं जाने हैं, आत्मा अर बंधका निश्चितस्वलक्षणकी सूक्ष्म जो अन्तःसन्धि कहिये अन्तरंगकी मिली हुई सन्धि, ताविषें इस प्रज्ञा छैनीकूं सावधान होयकरि पटकनेतैं दोऊ न्यारे न्यारे होय जाय हैं । तहां आत्माका तौ निजलक्षण निश्चयकरि समस्त अन्य द्रव्यनितैं असाधारणपणातैं जो अन्यमें न पाइये है ऐसा चैतन्य स्वलक्षण है, सो यह चैतन्य स्वलक्षण है, सो प्रवर्तता संता जिस जिस

पर्यायकूं व्याप्यकरि प्रवर्तते है बहुरि निवृत्तता संता जिस जिस पर्यायकूं ग्रहणकरि निवृत्त होय है, सो सो समस्त सहवर्ती अर क्रमवर्ती पर्यायनिका समूह, सो आत्मा है ऐसा लखने योग्य है, यह लक्षण समस्त गुणपर्यायनिमैं व्यापक है। सो सर्व ही गुणपर्यायनिका समुदाय आत्मा है ऐसा इस लक्षणतैं जानना। जातैं आत्मा तिस ही एक लक्षणतैं लक्ष्य है। बहुरि चैतन्यके समस्त सहवर्ती अर क्रमवर्ती जे अनंतपर्याय, तिनितैं अविनाभावीपणा है। तातैं चिन्मात्र ही आत्मा है, ऐसा निश्चय करना, ऐसा दूसरा व्याख्यान है।

बहुरि बंधका स्वलक्षण आत्मद्रव्यतैं असाधारण रागादिक हैं। जातैं ए रागादिक हैं ते आत्मद्रव्यतैं साधारणपणाकूं धारते नाहीं प्रतिभासे हैं। इनिके सदा ही चैतन्यचमत्कारतैं भिन्नपणाकरि प्रतिभासमानपणा है। बहुरि जेता कछु समस्त अपने पर्यायनिमैं व्यापनेस्वरूप चैतन्य-प्रतिभासे है, तेते ही रागादिक नाहीं प्रतिभासे हैं, रागादिकविना भी चैतन्यका आत्मलाभ कहिये स्वरूप पावना संभवे है। बहुरि जो रागादिकका चैतन्यकरि सहित ही उपजना दीखे है, सो यह चेत्यचेतकभाव कहिये ज्ञेयज्ञायकभाव, ताके अत्यंत प्रत्यासत्ति कहिये अतिनिकटता, तातैं दीखे है, एकद्रव्यपणातैं नाहीं है। तहां चेत्यमान कहिये ज्ञेयरूपज्ञानमैं आवते जे रागादिक, ते आत्माके चेतकता कहिये ज्ञायकपणाहीकूं विस्तारे हैं। बहुरि रागादिकपणाकूं नाहीं विस्तारे हैं। जैसैं दीपकके घटादिक प्रकाशने योग्य होते प्रदीपकपणाहीकूं विस्तारे हैं, बहुरि घटादिक-पणाकूं नाहीं विस्तारे हैं, तैसैं जानना। बहुरि ऐसैं होते भी आत्मा अर बंध दोऊके अत्यंत प्रत्यासत्ति—निकटताकरि भेदकी संभावनाका अभाव है—भेद दीखे नाहीं है, तातैं इस अज्ञानीकै अनादिकालतैं एकपणाका व्यामोह है—भ्रम है, सो ऐसा व्यामोह प्रज्ञाहीकरि छेद्या ही जाय है।

भावार्थ—आत्मा अर बंध दोऊकूं लक्षणभेदकरि पहिचानि बुद्धिरूपी छैनीकरि छेदि न्यारे न्यारे करने। जातैं आत्मा तौ अमूर्तिक, अर बंध सूक्ष्मपुद्गलपरमाणुनिका स्कंध, यातैं दोऊ

ही न्यारे छद्मस्थके ज्ञानमें आवै नाहीं। एक स्कंध दीखे, याहीतैं अनादि अज्ञान है। सो श्रीगुरुनिका उपदेश पायकरि इनिका लक्षण न्यारा न्यारा ही अनुभवकरि जानना। जो चैतन्यमात्र तौ आत्माका लक्षण है अर रागादिक बंधका लक्षण है, ते भी ज्ञेयज्ञायकभावकी अतिनिकटताकरि एकसे होय रहे दीखे हैं, सो तीक्ष्णबुद्धिरूपी छैनी इनिकूं भेदि न्यारे न्यारे करनेका शस्त्र है, ताकूं इनिकी सूक्ष्मसंधीकूं हेरि सावधान निष्प्रमाद होय पटकणी, तिसकूं पडते ही दोऊ न्यारे न्यारे दीखने लागै, तब आत्माकूं ज्ञानभावमें ही राखना अर बंधकूं अज्ञानभावमें राखना। ऐसैं दोऊकूं भिन्न करना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहै हैं।

स्रग्धराछन्दः

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ॥
आत्मानं मग्नमन्तः स्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥२॥

अर्थ–आत्मा अर बंधकूं भिन्न करनेकूं यह प्रज्ञा है सो तीक्ष्ण छैनी है। सो जे प्रवीण पुरुष हैं ते सावधान प्रमादरहित भये संते आत्मा अर कर्म इनि दोऊनिका सूक्ष्म जो अन्तः कहिये मांहिला संधीका बंधन, ताविषैं याकूं कोई प्रकार यत्नकरि ऐसैं पटके है सो यह बुद्धिरूपी छैनी तहां पडी हुई शीघ्र ही समस्तपणैं भिन्न भिन्न करती पडे है। सो आत्माकूं तौ अंतरंगविषैं स्थिर अर विशदलसत् कहिये स्पष्ट प्रकाशरूप दैदीप्यमान है धाम कहिये तेज जाका ऐसा जो चैतन्यका पूर प्रवाह, ताविषैं मग्न करती संती पडै है। बहुरि बंधकूं अज्ञानभावविषैं निश्चल नियमतैं करती संती पडे है।

भावार्थ—इहां आत्मा अर बंधका भिन्न भिन्न करना नामा कार्य है। ताका कर्ता आत्मा है। अर करणविना कर्ता काहेकरि कार्य करै? तातैं करण चाहिये। अर निश्चयनयकरि कर्तातैं भिन्न करण होय नाहीं। तातैं आत्मातैं अभिन्न यह बुद्धि, इस कार्यविषैं करण है। सो आत्माकै अनादि बंध ज्ञानावरणादि कर्म हैं। तिनिका कार्य भावबंध तौ रागादिक हैं। अर

नोकर्म शरीरादिक हैं। सो बुद्धिकरि आत्माकूं शरीरतैं तथा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मतैं तथा रागादिक भावकर्मतैं भिन्न एक चैतन्यभावमात्र अनुभवकरि ज्ञानहीमें लीन राखना, यह ही भिन्न करना याहीतैं सर्व कर्मका नाश होय, सिद्धपदकूं प्राप्त होय है, ऐसैं जानना। आगे फेरि पूछे है, जो आत्मा अर बंधकूं द्विधा करि अर कहा करना? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

जीवो बंधोय तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पाय घेत्तव्वो ॥८॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
बंधश्छेत्तव्यः शुद्ध आत्मा गृहीतव्यः ॥८॥

आतमख्यातिः—आत्मबंधौ हि तावन्नियतस्वलक्षणविज्ञानेन सर्वथैव छेत्तव्यौ ततो रागादिलक्षणः समस्त एव बंधो निर्मोक्तव्यः, उपयोगलक्षणशुद्ध आत्मैव गृहीतव्यः। एतदेव किलात्मबंधयोर्द्विधाकरणस्य प्रयोजनं यद्बंधत्यागेन शुद्धात्मोपादानं।

अर्थ—जीव अर बंध ए दोऊ अपने अपने निश्चित निजलक्षणनिकरि तैसैं भिन्न कीजिये, जैसैं बंध तौ छेदि भिन्न करना अर शुद्ध आत्माकूं ग्रहण करना।

टीका—आत्मा अर बंध दोऊ प्रथम तौ अपना अपना निश्चित निजलक्षण है ताका विज्ञानकरि सर्वप्रकार ही भिन्न करने, पीछे रागादिक हैं लक्षण जाका ऐसा समस्त ही बंधकूं तौ छोडना, अर उपयोग है लक्षण जाका ऐसा शुद्ध आत्मा एकला ही ग्रहण करना। यह ही निश्चयकरि आत्मा अर बंधका द्विधाकरणका प्रयोजन है; जो बंधका त्याग करि शुद्ध आत्माका ग्रहण करना।

भावार्थ—शिष्य पूछा था, जो आत्मा अर बंधकूं द्विधा करि कहा करना? ताका यह उत्तर दिया, जो बंधका तौ त्याग करना अर शुद्धात्माका ग्रहण करना। आगैं पूछे है—आत्मा अर

बंधकूं प्रज्ञाकरि तो भिन्न किये अर आत्माकूं ग्रहण काहेकरि कीजिये ? ताका प्रश्नोत्तरकी गाथा कहे हैं ।

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाए विभत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥९॥

कथं स गृह्यते आत्मा प्रज्ञया स तु गृह्यते आत्मा ।
यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥९॥

आत्मख्यातिः—ननु केन शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः ? प्रज्ञयैव शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः, शुद्धस्यात्मनः स्वयमात्मानं गृह्णतो विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात् अतो यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ।

कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्यः इति चेत्—

अर्थ—शिष्य पूछे है, सो यह शुद्ध आत्मा काहेकरि ग्रहण कीजिये ? आचार्य उत्तर कहे हैं—प्रज्ञाहीकरि यह शुद्ध आत्मा ग्रहण कीजिये । जैसें पहले प्रज्ञाकरि भिन्न किया, तैसें प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना ।

टीका—शिष्यका प्रश्न, जो यह शुद्ध आत्मा काहेकरि ग्रहण करना ? गुरु उत्तर कहे हैं—जो यह शुद्ध आत्मा प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना । आप स्वयं शुद्ध आत्माकूं ग्रहण करता जो शुद्ध आत्मा, ताकै पहलै भिन्न करताकै प्रज्ञा ही एक करण था, तैसैं ही ग्रहण करताकैं भी सो ही प्रज्ञा एक करण है, भिन्न करण नाहीं । यातैं जैसैं पहलै प्रज्ञाकरि भिन्न किया था, तैसैं प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना ।

भावार्थ—भिन्न करनेमें अर ग्रहण करनेमें न्यारा करण नाहीं है । तातैं प्रज्ञाहीकरि तौ भिन्न किया अर प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना । आगैं फेरि पूछै है "जो यह आत्मा प्रज्ञाकरि कौन प्रकार ग्रहण करना ?" ताका उत्तर कहे हैं । गाथा—

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झपरित्त णादव्वा ॥१०॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥१०॥

आत्मख्यातिः—योहि नियतस्वलक्षणावलंबिन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमहं । ये त्वमी अवशिष्टा अन्यस्वलक्षणलक्ष्या व्यवह्रियमाणा भावाः, ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकस्य व्याप्यत्वमनायांतोऽत्यंतं मत्तो भिन्नाः । ततोऽहमेव मयैव मह्यमेव मत्त एव मय्येव मामेव गृह्णामि । यत्किल गृह्णामि तच्चेतनैकक्रियत्वादात्मनश्चेतये, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमाने एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये । अथवा न चेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमानं चेतये । किंतु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि ।

अर्थ—जो चेतयिता कहिये चेतनस्वरूप आत्मा है, सो निश्चयतें मैं हौं ऐसें प्रज्ञाकरि ग्रहण करने योग्य है । अवशेष जे भाव हैं, ते मेरे पर हैं, इस प्रकार आत्माकूं ग्रहण करना जानना ।

टीका—निश्चयकरि जो नियतस्वलक्षण कहिये निश्चित निजलक्षणकूं अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा है, तिसकरि चैतन्यस्वरूप आत्माकूं भिन्न किया था, सो ही यह मैं हौं, बहुरि जे यह अवशेष अन्य अपने स्वलक्षणकरि लखने योग्य व्यवहाररूप भाव हैं, ते सर्व ही चेतयिता आत्माका व्यापक जो चेतकपणा, ताका व्याप्यपणामें नाहीं आवते भाव हैं, ते मोतें अत्यंत भिन्न हैं, तातें मैं ही मुझहीकरि मेरे ही अर्थि मुझहीतें मोविषें ही मोहीकूं ग्रहण करो हौं, बहुरि प्रगट ग्रहण करो हौं । सो आत्माके चेतना ही है एक क्रिया जाकै तिसपणाकरि चेतूं ही हौं । चेतता संताही चेतूं हौं । चेतता संता ही करि चेतूं हौं । चेतता संताहीके अर्थि चेतूं हौं । चेतता संताहीतें चेतूं हौं । चेतता संताहीविषें चेतूं हौं । चेतता संताहीकूं चेतूं हौं । अथवा न चेतूं हौं । न चेतता

संता चेतूं हौं। न चेतता संताहीकरि चेतूं हौं। न चेतता संताके अर्थि चेतूं हौं। न चेतता संतातैं चेतूं हौं। न चेतता संताविषैं चेतूं हौं। न चेतता संताकूं चेतूं हौं। तौ कहा हौं? सर्व विशुद्ध चैतन्यमात्र भाव हौं।

भावार्थ—जिस प्रज्ञाकरि आत्माकूं बंधतैं भिन्न किया था, तिसहीकरि यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हौं, अन्य अवशेष भाव हैं ते मोतैं न्यारे—पर हैं, ऐसैं ग्रहण करना सो अभिन्न षट्कारक लगावनेमैं मोकूं, मोहीकरि, मेरे ही अर्थि, मोतैं, मोविषैं ग्रहण करूं हौं। सो ग्रहण करना कहा है? चेतनकी चित्स्वरूप क्रिया ही है। ताकरि चेतूं हौं—जानूं हौं अनुभवूं हौं ऐसैं लगाय, फेरि इनि कारकनिके भेदका भी निषेध किया। जो मैं शुद्ध चैतन्यमात्र भाव हौं, सो एक अभेद हौं—द्रव्यदृष्टिकरि कर्ता कर्म आदि षट्कारकका भी भेद मोविषैं नाहीं है। तातैं नाहीं चेतूं हौं इत्यादि लगावना। ऐसैं बुद्धिकरि ग्रहण करना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

भित्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद् भेत्तुं कियच्छक्यते चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम्।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि भिद्यन्तां न भिदाऽस्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥३॥

अर्थ—ज्ञानी कहे है। जो भेदनेकूं—न्यारे करनेकूं समर्थ हूजिये, तिस सर्वकूं निजलक्षणके बलतैं भेदिकरि अर मैं चैतन्यचिह्नकरि चिह्नित विभागरहित है महिमा जाकी ऐसा शुद्ध चैतन्य ही हौं। बहुरि जो कर्त्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण ये षट्कारक अर सत्त्व असत्त्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व आदिक धर्म अर ज्ञान दर्शन आदिक गुण ए भेदरूप हैं, तौ भेदरूप होऊ। विशुद्ध समस्त विभावत्तितैं रहित एक अर विभु कहिये सर्व गुणपर्यायनिमैं व्यापक ऐसा चैतन्यभावविषैं तौ किछू भेद है नाहीं।

भावार्थ—जो इस चैतन्यभावतैं अन्य अपने स्वलक्षणकरि भेदे गये ते तौ भेदरूप किये अर

ज्ञानपरि षट्कारक भेदरूप लगाय, फेरि अभेदरूप करनेकूं कारकभेदका निषेध करि, एक ज्ञानमात्र आपका अनुभवन करना ।

भावार्थ—पहले तौ सामान्य चेतनाका अनुभवन कराया । सो आत्माकूं प्रज्ञाकरि ग्रहण करना पहलै कह्या था, सो चेतनाका अनुभवन करना ही ग्रहण करना है—किछू अन्य वस्तूका ग्रहण करना नाहीं है । बहुरि अनुभवन करना, अनुभवन करनेवाला, अनुभवन जाकरि कीजिये इत्यादि षट्कारक भेदरूप कहिकरि अभेदविवक्षामैं कारकभेदका निषेध किया, एक शुद्ध चेतनामात्र ही कह्या था । अर अब इहां चेतनासामान्य है सो दर्शनज्ञानविशेषकूं नाहीं उल्लंघि वर्तै है । तातैं द्रष्टा अर ज्ञाताका अनुभवन कराया । तहां भी षट्कारकरूप भेद अनुभवनकरि पीछे अभेद अनुभवन अपेक्षा कारकभेद दूरि करि द्रष्टा ज्ञातामात्रका अनुभवन कराया है ।

इहां शिष्य पूछे है, जो चेतना दर्शनज्ञानभेदकूं कैसें नाहीं उल्लंघै है ? जाकरि चेतयिता आत्मा द्रष्टा ज्ञाता होय । ताका उत्तर कहे हैं । प्रथम तौ चेतना है सो प्रतिभासरूप है, सो ऐसी चेतना है सो दोयरूपपणाकूं नाहीं उल्लंघि वर्तै है । जातैं सर्व ही वस्तुका सामान्यविशेषरूप स्वरूप है । सो चेतना भी वस्तु है, सो सामान्य विशेषरूपकूं कैसें उल्लंघे ? सो ताके दोयरूप हैं ते दर्शन ज्ञान हैं, तातैं सो चेतना तिनि दर्शन ज्ञान दोऊनिकूं नाहीं उल्लंघे है । बहुरि जो इनि दोयरूपकूं उल्लंघे तौ सामान्यविशेषरूपका उल्लंघवापणातैं चेतना ही न होय है । तिस चेतनाके अभावतैं दोय दोष आवै—एक तौ अपने गुणका उच्छेद होनेतैं चेतनकै अचेतनपणाकी प्राप्ति आवै, अर दूसरा व्यापक जो चेतना, ताका अभाव होतैं, व्याप्य जो चेतन आत्मा ताका अभाव होय है । तातैं तिनि दोषनिके भयतैं चेतना दर्शनज्ञानस्वरूप ही अंगिकार करनी । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

अद्वैताऽपि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्माऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकादात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥४॥

अर्थ—जगतविषैं निश्चयकरि चेतना अद्वैत है तौऊ जो दर्शनज्ञानरूपकूं छोडै तौ सामान्यविशेषरूपके अभावतैं सो चेतना अपना अस्तिपनाहीकूं छोडै। बहुरि जब चेतना अपना अस्तित्वकूं छोडै, तब चेतनके जडता होय है। बहुरि व्याप्य जो आत्मा, सो व्यापक जो चेतना, तिसविना अंतकूं प्राप्त होय। आत्माका नाश होय। तातैं नियमतैं चेतना है सो दर्शनज्ञानस्वरूप ही होऊ।

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप है, सो चेतना भी वस्तु है, सो दर्शनज्ञानविशेषकूं छोडै, तौ वस्तुपणाका नाश होय, तब चेतनाका अभाव होतैं, कै तौ चेतनके जडपणा आवै, कै चेतना आत्माकी सर्व अवस्थामैं पावै? तातैं व्यापक है अर आत्मा चेतना ही है। तातैं चेतनाके व्याप्य है सो व्यापकके अभावतैं व्याप्य जो चेतन आत्मा ताका अभाव होय है। तातैं चेतना दर्शनज्ञानस्वरूप ही माननी। इहां तात्पर्य ऐसा—जो सांख्यमती आदि केई सामान्यचेतनाहीकूं मानि एकांत कहे हैं, तिनिका निषेध करनेकूं वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषरूप है, सो चेतनाकूं सामान्यविशेषरूप अंगीकार करनी ऐसा जनाया है। आगै कहे हैं, चेतनाका तौ चिन्मय एक भाव है अर अन्य परभाव हैं, सो चिन्मयभाव तौ उपादेय है अर परभाव हेय है, सो यह सूचनिका अगिले कथनकी है, ताका श्लोक है।

इन्द्रवज्राछन्दः

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥५॥

अर्थ—चैतन्यका तौ एक चिन्मय ही भाव है, अर अन्य भाव हैं, ते प्रगटपणै परके भाव हैं। तातैं एक चिन्मयभाव है सो ही ग्रहण करनेयोग्य है, बहुरि जे परभाव हैं, ते सर्व ही त्यागनेयोग्य हैं। अब इस उपदेशकी गाथा कहे हैं। गाथा—

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे परोदये भावे ।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥१३॥

को नाम भणेद्‌ बुधः ज्ञात्वा सर्वान् परोदयान् भावान् ।

ममेदमिति वचनं जानन्नात्मानं शुद्धं ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यो हि परात्मनोर्नियतस्वलक्षणविभागपातिन्या प्रज्ञया ज्ञानी स्यात् स खल्वेकं चिन्मात्रं भावमात्मीयं जानाति शेषांश्च सर्वानेव भावान् परकीयान् जानाति । एवं जानन् कथं परभावान्ममामी इति ब्रूयात् परात्मनोर्निश्चयेन स्वस्वामिसंबंधस्यासंभवात् । अतः सर्वथा चिद्भाव एव गृहीतव्यः शेषाः सर्वे एव भावाः प्रहातव्या इति सिद्धांतः ।

अर्थ—ज्ञानी है सो अपना स्वरूपकूं जानिकरि अर सर्व ही परके भावनिकूं जानिकरि अर ए मेरे हैं ऐसा वचन कौन कहै ? ज्ञानी पंडित तो नाहीं कहै । कैसा है ज्ञानी ? अपना शुद्ध आत्माकुं जानता संता है ।

टीका—जो पुरुष आतमा अर परका निश्चितस्वलक्षणके विभागविषैं पडनेवाली जो प्रज्ञा ताकरि ज्ञानी होय है, सो पुरुष निश्चयकरि एक चैतन्यमात्र अपना भाव ताकूं तो अपना जाने है । बहुरि बाकीके सर्व ही भावनिकूं परके जाने है । ऐसैं जानता संता परके भावनिकूं "ए मेरे हैं" ऐसैं कैसैं कहै ? ज्ञानी तो नाहीं कहै । जातैं परके अर आपके निश्चयकरि स्वस्वामिपणाका संबंधका असंभव है । यातैं सर्वथा चिद्भाव ही एक ग्रहण करने योग्य है । अवशेष सर्व ही भाव त्यागने योग्य हैं ऐसा सिद्धांत है ।

भावार्थ—लोकमें भी यह न्याय है, जो सुबुद्धि न्यायवान होय, सो परके धनादिककूं अपना न कहै । तैसें ही सम्यग्ज्ञानी है सो समस्त ही परद्रव्यकूं अपना बनावै नाहीं । अपना निजभावहीकूं अपना जानि ग्रहण करे है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहै हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणाः तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥६॥

अर्थ—उज्वल है उत्कट है चित्तका चरित्र जिनिका ऐसे मोक्षके अर्थि पुरुष हैं, ते यह सिद्धांत सेवन करो—जो मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदा ही हौं, अर ए जे अनेक प्रकारके भिन्नलक्षणरूप भाव हैं, ते मैं नाहीं हौं। जातैं ते समग्र कहिये सारे ही मेरे परद्रव्य हैं। भावार्थ सुगम है। आगै कहे हैं, जो परद्रव्यकूं ग्रहण करे है, सो अपराधवान है, बंधमें पडे है। अर जो निजद्रव्यमें संतुष्ट है सो निरपराधी है, बंधे नाहीं है। ऐसी सूचनिकाका अगिले कथनका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्यते चापराधवान् । बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो यतिः ॥७॥

अर्थ—जो परद्रव्यकूं ग्रहण करता संता है, सो तौ अपराधवान् है, सो बंधमें पडे है। बहुरि अपने ही द्रव्यविषैं संवररूप है संतुष्ट है परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करे है सो यतीश्वर अपराधरहित है, सो बंधे नाहीं। आगै इस कथनकूं दृष्टांतपूर्वक गाथामें कहे हैं। गाथा—

तेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि ।
मा वज्झेऽहं केणवि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥१४॥
जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि ।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उपज्जदि कयावि ॥१५॥
एवं हि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेदा ।
जो पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥१६॥

स्तेयादीनपराधान् करोति यः स शंकितो भवति ।
मा वध्ये केनापि चौर इति जने विचरन् ॥१४॥
यो न करोत्यपराधान् स निश्शंकस्तु जनपदे भवति ।
नापि तस्य बद्धुं अहो चिंतोत्पद्यते कदाचित् ॥१५॥
एवं हि सापराधो वध्येऽहं तु शंकितश्च तयिता ।
यदि पुनर्निरपराधो निश्शंकोऽहं तु वध्ये ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यथात्र लोके य एव परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति। यस्तु शुद्धः सन् तं न करोति तस्य सा न संभवति। तथात्मापि य एवाशुद्धः सन् परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति यस्तु शुद्धः संस्तं न करोति तस्य सा न संभवति, इति नियमः। अतः सर्वथा सर्वपरकीयभावपरिहारेण शुद्ध आत्मा गृहीतव्यः, तथा सत्येव निरपराधत्वात्।

कोहि नामायमपराधः ?--

अर्थ—जो पुरुष चोरी आदि अपराधनिकूं करे है, सो ऐसें शंकासहित हुवा भ्रमे है, जो यह चोर है ऐसैं जानि मोकूं कोई मति वांधी ल्यो। ऐसी शंकासहित लोककेविषैं विचरे है। बहुरि जो किछू अपराध नाहीं करे है, सो पुरुष देशविषैं निःशंक भ्रमे है। ताकै वंधनेकी चिंता कदाचित् नाहीं उपजी है। ऐसैं मैं जो अपराध सहित हौं तौ मेरी शंका है, जो 'मैं वंधूं' ऐसी शंकायुक्त आत्मा होय है। बहुरि जो मैं निरपराध हौं तौ निशंक हौं, न वंधूगा, ऐसैं ज्ञानी विचारे है।

टीका—जैसैं या लोकविषैं जो पुरुष परद्रव्यका ग्रहण है लक्षण जाका ऐसा अपराधकूं करे है तिसहीके बंधकी शंका संभवे है। बहुरि जो अपराध नाहीं करे है, ताकै तौ शंका नाहीं संभवे है। तैसैं आत्मा भी जो अशुद्ध हुवा संता परद्रव्यका ग्रहण है लक्षण जाका ऐसा अपराधकूं करे है, तिसहीकै बंधकी शंका संभवे है। बहुरि जो आत्मा शुद्ध भया संता तिस अप-

राधकूं नाहीं करे है ताकै सो शंका नाहीं संभवे है, यह नियम है । यातैं सर्वथा सर्वपरद्रव्यके भावका परिहार करि शुद्ध आत्मा ग्रहण करना । तैसैं किये ही निरपराधपणा है ।

भावार्थ—चोरी आदि अपराध करै, तौ बंधनकी शंका होय । निरपराधकै शंका काहेकूं होय ? तैसैं ही आत्मा परद्रव्यका ग्रहणरूप अपराध करै, तौ बंधकी शंका होय ही । आपकूं शुद्ध अनुभवै परकूं नाहीं ग्रहै तौ बंधकी शंका काहेकूं होय ? तातैं परद्रव्यकूं छोडि शुद्ध आत्माका ग्रहण करना तब निरपराध होय है । आगै पूछे है, जो यह अपराध कहा है ? ताका उत्तर अपराधका स्वरूप कहे हैं । गाथा—

संसिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिदं च एयट्ठो ।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराहो ॥१७॥
जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिओ दु सो होदि ।
आराणाए णिच्चं वट्टेहिं अहं तु जाणंतो ॥१८॥

संसिद्धिराधसिद्धं साधितमाराधितं चैकार्थं ।
अपगतराधो यः खलु चेतयिता स भवत्यपराधः ॥१७॥
यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति ।
आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति जानन् ॥१८॥

आत्मख्यातिः—परद्रव्यपरिहारेण शुद्धस्यात्मनः सिद्धिः साधनं वा राधः, अपगतो राधो यस्य भावस्य सोऽपराध-स्तेन सह यश्चेतयिता वर्तते स सापराधः स तु परद्रव्यग्रहणसद्भावेन शुद्धात्मसिद्ध्यभावाद्बंधशंकासंभवे सति स्वयमशुद्धत्वादनाराधक एव स्यात् । यस्तु निरपराधः स समग्रपरद्रव्यपरिहारेण शुद्धात्मसिद्धिसद्भावाद् बंधशंकाया असंभवे सति,

उपगोगैकलक्षणशुद्ध आत्मैक एवाहमिति निश्चिन्वन् नित्यमेव शुद्धात्मसिद्धिलक्षणयाराधनया वर्तमानत्वादाराधक एव स्यात् ।

अर्थ—संसिद्धि राध सिद्ध साधित आराधित ए शब्द एकार्थ हैं, तातैं जो चेतयिता आत्मा अपगतराध कहिये राधसूं रहित होय सो आत्मा अपराध है । बहुरि जो आत्मा अपराध नाहीं निरपराध है, सो निःशंक है—शंकारहित है । आपकूं मैं हौं ऐसैं जानता संता आराधनाकरि वर्तै है ।

टीका—परद्रव्यका परिहार करिके जो शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधन सो राध कहिये, तहां जिस चेतयिता आत्माके राध कहिये शुद्ध आत्माकी सिद्ध अथवा साधन अपगत कहिये दूरिवर्ती होय सो आत्मा अपराध है । अथवा याका दूसरा समासविग्रह ऐसा—जिस भावका राध दूरवर्ती होय, तिस भावकूं अपराध कहिये सो तिस अपराधकरि जो आत्मा वर्तै सो आत्मा सापराध है, सो ऐसा आत्मा परद्रव्यके ग्रहणका सद्भावतैं शुद्ध आत्माकी सिद्धीके अभावतैं ताके बंधकी शंकाका संभव होतैं आप स्वयं अशुद्धपणातैं अनाराधक ही है—आराधना करनेवाला नाहीं है । बहुरि जो आत्मा अपराधरहित निरपराध है, सो समस्त परद्रव्यपरिग्रहका परिहार करिके शुद्ध आत्माकी सिद्धीके सद्भावतैं ताके बंधकी शंकाका असंभवकूं होतैं ऐसा निश्चय करता वर्तै—जो मैं उपयोग ही है एक लक्षण जाका ऐसा एक शुद्ध आत्मा ही है । सो आत्मा नित्य ही शुद्ध आत्माकी सिद्धि है लक्षण जाका ऐसी आराधनाकरि वर्तमान होय है तातैं आराधक ही है ।

भावार्थ—संसिद्धि राध सिद्धि साधित आराधित इनि शब्दनिका अर्थ एक ही है । सो इहां राध नाम शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधनका है, सो जाकै यह नाहीं, सो आत्मा सापराध है । अर यह जाकै होय, सो निरपराध है । सो सापराध है ताकै बंधकी शंका संभवे है, तातैं अनाराधक है । अर निरपराध है सो निःशंक भया अपने उपयोगमैं लीन होय, तब

बंधकी शंका नाहीं । अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपका एक भावरूप निश्चय आराधनाका आराधक ही है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीवृत्तम्

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः स्पृशति निरपराधो बन्धनं जातु नैव ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो भवति निरपराधः साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

अर्थ—जो आत्मा सापराध है, सो तौ निरंतर अनंतपुद्गलपरमाणुरूप कर्मनिकरि बंधै है । बहुरि जो निरपराध है, सो बंधनकूं कदाचित् नाहीं स्पर्शै है । बहुरि यह सापराध आत्मा है, सो तौ अपने आत्माकूं नियमकरि अशुद्ध ही सेवता सापराध ही होय है । बहुरि जो निरपराध है, सो भले प्रकार शुद्ध आत्माका सेवनेवाला होय है । आगै व्यवहारनयका आलंबी तर्क करे है—जो इस शुद्ध आत्माका सेवनका प्रयास कहिये खेद ताकरि कहा है ? जातैं प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त है, ताकरि ही आत्मा निरपराध होय है । जातैं सापराधके तौ अप्रतिक्रमणादि हैं, सो अपराधके दूरि करनेवाले नाहीं हैं, तातैं तिनिकूं विषकुंभ कहे हैं । बहुरि निरपराधके प्रतिक्रमणादिक हैं ते तिस अपराधके दूरि करनेवाले हैं, तातैं तिनिकूं अमृतकुंभ कहे हैं । सो ही व्यवहारका कहनेवाला आचारसूत्रविषैं कह्या है । उक्तं च गाथा—अप्पडिकमणमपडिसरणं, अप्पडिहारो अधारणा चेव । अणियत्ती य अणिंदागरहा सोहीय विसकुंभो ॥१॥ पडिकमणं पडिसरणं परिहरणं धारणा णियत्तीय । णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो दु ॥२॥ अर्थ—अप्रतिक्रमण, अप्रतिशरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगर्हा, अशुद्धि ऐसैं आठ प्रकार करिके लगै दोषका प्रायश्चित्त करना, सो तौ विषकुंभ है--जहरका भरचा घडा है । बहुरि प्रतिक्रमण, प्रतिशरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा शुद्धि ऐसैं आठ प्रकारकरि लगे दोषका प्रायश्चित्त करना, सो अमृतकुंभ है । ऐसैं व्यवहारनयके पक्षीनैं तर्क किया, ताका समाधान आचार्य निश्चयनयकूं प्रधानकरि कहे हैं । गाथा—

पडिकमणं पडिसरणं परिहरणं धारणा णियत्तीय ।
णिंदा गरुहा सोहिय अट्ठविहो होदि विसकुंभो ॥१९॥
अपडिक्कमणं अपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्तीय अणिंदा अगरुहा विसोहिय अमयकुंभो ॥२०॥

प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारो धारणा निवृत्तिश्च ।
निंदा गर्हा शुद्धिः अष्टविधो भवति विषकुंभः ॥१९॥
अप्रतिक्रमोऽप्रतिसरणं परिहारोऽधारणा चैव ।
अनिवृत्तिश्चानिंदाऽगर्हाऽशुद्धिरमृतकुंभः ॥२०॥

आतमख्यातिः—यस्तावदज्ञानिजनसाधरणोऽप्रतिक्रमणादिः स शुद्धात्मसिद्ध्यभावस्वभावत्वेन स्वयमेवापराधत्वाद्विषकुंभ एव किं विचारेण । यस्तु द्रव्यरूपः प्रतिक्रमणादिः स सर्वापराधविषापदाकर्षणसमर्थत्वेनामृतकुंभोऽपि प्रतिक्रमणादिविलक्षणाप्रतिक्रमणादिरूपां तार्तीयकीं भूमिमपश्यतः स्वकार्यकरणासमर्थत्वेन विपक्षकार्यकरित्वाद्विषकुंभ एव स्यात् । अप्रतिक्रमणादिरूपा तृतीयभूमिस्तु स्वयं शुद्धात्मसिद्धिरूपत्वेन सर्वापराधविषदोषाणां सर्वंकषत्वात् साक्षात्स्वयममृतकुंभो भवतीति व्यवहारेण द्रव्यप्रतिक्रमणादेरपि, अमृतकुंभत्वं साधयति । तयैव च निरपराधो भवति चेतयिता । तदभावे द्रव्यप्रतिक्रमणादेरप्यपराध एव । अतस्तृतीयभूमिकयैव निरपराधत्वमित्यवतिष्ठते तत्प्राप्त्यर्थ एवायं द्रव्यप्रतिक्रमणादिः, ततो मेति मंस्था यत्प्रतिक्रमणादीन् श्रुतिरूपा जयति किंतु द्रव्यप्रतिक्रमणादिना न मुंचति अन्यदीयप्रतिक्रमणाप्रतिक्रमणाद्यगोचराप्रतिक्रमणादिरूपं शुद्धात्मसिद्धिलक्षणमतिदुष्करं किमपि करिष्यति । वक्ष्यते चात्रैव—

अर्थ—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार धारणा बहुरि निवृत्ति, निंदा, गर्हा, शुद्धि ऐसे आठ प्रकार तौ विषकुंभ हैं । जातैं यामैं कर्तापणाकी बुद्धि संभवे है । अर कर्त्तापणा है सो बंधका कारण है । बहुरि अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, बहुरि अनिवृत्ति, अनिंदा,

अगर्हा, अशुद्धि ऐसे आठ प्रकार अमृतकुंभ हैं। जातैं इहां कर्त्तापणाका निषेध है, किछू ही न करना। तातैं बंधतें रहित है।

टीका—जो प्रथम अज्ञानी जन ते साधारण अप्रतिक्रमणादिक है, सो तौ शुद्धात्माकी सिद्धीका अभाव स्वभावरूप है, तातैं स्वयमेव अपराध दोषरूप ही है, तातैं ताका विचार करि तौ कहा ? वह तौ पहलै ही त्यागने योग्य है। बहुरि जो द्रव्य प्रतिक्रमणादिक है, सो सर्व अपराधरूपपणातैं विषके अनुक्रमकरि मेटनेविषैं समर्थपणाकरि अमृतकुंभ भी व्यवहार आचारसूत्रमें कह्या है। तौऊ प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदि दोऊते विलक्षण ऐसी अप्रतिक्रमण आदि स्वरूप तीसरी भूमिकूं नाहीं देखनेवाले पुरुषके दोषका काटना जो अपना कार्य, ताके करनेविषैं असमर्थपणाकरि विपक्ष जो बंध ताका कार्य करनेवालापणातैं प्रतिक्रमणादिक है, सो विषकुंभ ही है। बहुरि अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमि है, सो आप स्वयं शुद्धात्माकी सिद्धिरूप है, तिसपणाकरि सर्व अपराधरूप विषके दोष, तिनिकी सर्वकी मेटनेवाली है। तातैं साक्षात् आप स्वयं अमृतकुंभ है, सो ऐसे ही तीया भूमि व्यवहार करिकै द्रव्यप्रतिक्रमणादिकके भी अमृतकुंभपणाकूं साधे है। तिस तीसरी भूमीही करि चेतयिता आत्मा निरपराध होय है। इस तीसरी भूमीकाका अभाव होतैं द्रव्यप्रतिक्रमणादिक है, सो भी अपराध ही है। यातैं यह ठहरी—जो अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमीहीकरि निरपराधपणा है, ताकी प्राप्तिके अर्थि ही यह द्रव्यप्रतिक्रमणादिक है, तातैं ऐसैं मति मानो, जो निश्चयनयका शास्त्र है, सो द्रव्य प्रतिक्रमणादिककूं छुडावै है, तौ कहा कहे है ? द्रव्यप्रतिक्रमणादिकहीकरि आत्मा बंधतैं नाहीं छूटै है। इस सिवाय अन्य भी प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदिकै अगोचर अप्रतिक्रमणादिरूप शुद्धात्माकी सिद्धि है लक्षण जाका अर करना जाका अतिकठिन ऐसा किछू करावै है, सो इहां ही आगै कहसी, ताकी गाथा--कम्मं जं पुव्वकयं। सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं। तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो

पडिक्कमणं । इत्यादिक निश्चयप्रतिक्रमणादिक स्वरूप आगै कहसी । तहां इस गाथाका भी अर्थ लिखियेगा ।

भावार्थ—व्यवहारनयकै आलंबी कही जो लगै दोषका प्रतिक्रमणादिकरि ही आत्मा शुद्ध होय है, तौ पहले ही शुद्धात्माका आलंबनका खेदकरि कहा है ? शुद्ध भये पीछे ताका आलंबन होय, पहलै ही तौ आलंबनका खेद निष्फल है । ताकूं आचार्य समझावे हैं--जो द्रव्यप्रतिक्रमणादिक हैं ते दोषके मेटनेवाले हैं, परंतु शुद्ध आत्माका स्वरूप प्रतिक्रमणादिरहित है । ताका आलंबविना तौ द्रव्यप्रतिक्रमणादिक हैं ते दोप स्वरूप ही हैं । दोषकूं मेटनेकूं समर्थ नाहीं । जातैं निश्चयकी सापेक्षसहित तौ व्यवहारनय मोक्षमार्गमें है अर केवल व्यवहारहीका पक्ष तौ मोक्षमार्गमें नाहीं, बंधहीका मार्ग है । तातैं ऐसैं कह्या है, जो अज्ञानीके जे अप्रतिक्रमणादिक हैं, ते तौ विषकुंभ है ही, तिनिकी तौ कहा कथा ? परंतु जे व्यवहारचारित्रमें प्रतिक्रमणादिक कहे हैं ते भी निश्चयनयकरि विषकुंभ ही हैं । जातें आत्मा तौ प्रतिक्रमणादिककरि रहित शुद्ध अप्रतिक्रमणादिस्वरूप है ऐसैं जानना । अब इस कथनका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां प्रलीनं चापलमुन्मीलितमालंबनं— ।
आत्मन्येवालानितं च चित्तमासम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥६॥

अर्थ—इस कथनतैं सुखकरि बैठनेपणाकूं प्राप्त भये ऐसे प्रमादीजीवनिकूं तौ ताडे हैं । जे निश्चयनयका आश्रय ले प्रमादी होय प्रवर्तें, तिनिकूं ताडिकरि उद्यम लगावे हैं । बहुरि चपलपणाका प्रलय किया है । जे स्वच्छंद वर्तैं तिनिका स्वच्छंदपणा मेटया है । बहुरि आलंबनकूं उपाड्या है । जे व्यवहारकी पक्षकरि परद्रव्यका तथा द्रव्यप्रतिक्रमणादिका आलंबन ले संतुष्ट होय है, तिनिका आलंबन छुडाया है । बहुरि चित्तकूं आत्माहीविषैं आलानित किया है, थांभ्या है । व्यवहारके आलंबनमें अनेक प्रवृत्तीमें चित्त भ्रमे था, सो शुद्ध आत्माहीविषैं लगाया है । जहां तांई संपूर्ण विज्ञानघन आत्माकी प्राप्ति न होय, तहां तांई चैतन्यमात्र आत्माविषैं चित्त

लग्या रहै ऐसैं थांभ्या है, ऐसैं जानना । अब कहे हैं, जो इहां निश्चयनयकरि प्रतिक्रमणादिककूं तौ विषकुंभ कह्या अर अप्रतिक्रमणादिककूं अमृतकुंभ कह्या, ताकूं कोई उलटी समझि प्रतिक्रमणादिककूं छोडि प्रमादी होय ताकूं समझावनेकूं कलशरूप काव्य कहे हैं ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥१०॥

अर्थ—अहो भाई, जहां प्रतिक्रमणहीकूं विष कह्या, तहां काहेतैं अप्रतिक्रमण अमृत होय ? तातैं यह जन नीचै नीचै पडता संता प्रमादरूप क्यौं होय है ? निष्प्रमादी भया संता ऊंचा ऊंचा क्यौं नाहीं चढै है ।

भावार्थ—आचार्य कहे हैं, जो अज्ञानावस्थामैं जो अप्रतिक्रमणादिक था, ताकी तौ कथा ही कहा ? इहां तौ निश्चयनयकूं प्रधानकरि अर द्रव्यप्रतिक्रमणादिक शुभ प्रवृत्तिरूप थे, तिनिकी पक्ष छुडावनेकूं तिनिकूं तौ विषकुंभ कहे हैं । जातैं ए कर्म बंधके ही कारण हैं, बहुरि अप्रतिक्रमणप्रतिक्रमणतैं रहित तीसरी भूमि शुद्ध आत्मस्वरूप है, सो प्रतिक्रमणादितैं रहित है । तातैं तहांके अप्रतिक्रमणादिककूं अमृतकुंभ कह्या है । तिस भूमीविषैं चढावनेकूं उपदेश किया है सो प्रतिक्रमणादिककूं विषकुंभ कहे सुणिकरि जो प्रमादी होय है ताकूं कहे हैं यह जन नीचा नीचा क्यौं पडै है ? तीसरी भूमिमैं ऊंचा ऊंचा क्यौं नाहीं चढै है ? जहां प्रतिक्रमणकूं विषकुंभ कह्या, तहां तौ तिसका निषेधरूप अप्रतिक्रमण ही अमृतकुंभ होयगा । सो यह अप्रतिक्रमणादिक अज्ञानीकै होय, सो न जानना, तीसरी भूमिका शुद्ध आत्मामयी जाननी । आगै इस अर्थकूं दृढ करते संते काव्य कहे हैं ।

पृथ्वीवृत्तम्

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते वाऽचिरात् ॥११॥

अर्थ—जातैं कषायका भर कहिये भार, ताका गौरव कहिये भारचापणा, तातैं अलसता कहिये आलसपणा, ताकूं प्रमाद कहिये है। सो ऐसैं प्रमादकरि युक्त अलसभाव होय, सो शुद्धभाव कैसैं होय? यातैं आत्मिकरसकरि भरया स्वभावविषैं निश्चल होता संता मुनि है सो परमशुद्धताकूं प्राप्त होय है। बहुरि शीघ्र ही थोरे ही कालमें कर्मबंधतैं छूटे है।

भावार्थ—प्रमाद तौ कषायका गौरवतैं होय है सो प्रमादीकै शुद्धभाव होय नाहीं। जो मुनि उद्यमकरि स्वभावमें प्रवर्ते है सो शुद्ध होयकरि मोक्षकूं प्राप्त होय है। अत्र मुक्त होनेका अनुक्रमके अर्थरूप काव्य कहे हैं अर मोक्षका अधिकार पूर्ण करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं स्वे द्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥१२॥

अर्थ—जो पुरुष निश्चयकरि अशुद्धताका करनेवाला जो परद्रव्य, ताकूं सर्वकूं छोडिकरि अर आप अपने निजद्रव्यविषैं रतीकूं प्राप्त होय है—लीन होय है, सो पुरुष नियमतैं सर्व अपराधतैं रहित भया संता, बंधका नाशकूं प्राप्त होयकरि नित्य उदयरूप भया संता अपना स्वरूपका प्रकाशरूप ज्योतिकरि निर्मल उछलता जो चैतन्यरूप अमृतका प्रवाह, ताकरि पूर्ण है महिमा जाकी ऐसा शुद्ध होता संता कर्मनितैं छूटे है।

भावार्थ—पहले समस्त परद्रव्यका त्याग करि अपना निजद्रव्य आत्मस्वरूपविषैं लीन होय है, सो सर्व रागादिक अपराधतैं रहित होय आगामी बंधका नाश करे है अर नित्य उदयरूप केवलज्ञानकूं पाय शुद्ध होय सर्व कर्मका नाशकरि मोक्षकूं प्राप्त होय है, यह मोक्ष होनेका अनुक्रम है। ऐसैं मोक्षका अधिकार पूर्ण भया, ताके अंत मंगलरूप ज्ञानकी महिमाका कलशरूप काव्य कहे हैं।

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेतन्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥१३॥

इति मोक्षो निष्क्रांतः ।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ अष्टमोंकः ।

अर्थ—यह ज्ञान है सो पूर्ण भया संता दैदीप्यमान प्रगट भया । कहा करता संता प्रगट भया ? कर्मका बंध था ताके छेदतैं अविनाशी अतुल जो मोक्ष, ताकूं प्राप्त होता संता । बहुरि कैसा प्रगट भया ? नित्य है उद्योत प्रकाश जाका ऐसी प्रफुल्लित भई है स्वाभाविक अवस्था जाकी । बहुरि कैसा प्रगट भया ? एकान्तशुद्ध कहिये ताके कर्मका मैल न रह्या अत्यंत शुद्ध भया प्रगट भया । बहुरि कैसा प्रगट भया ? एक जो अपना ज्ञानमात्र आकार, ताका निजरसका भरतैं अत्यंत गंभीर है अर धीर है—जाकी थाह नाहीं अर जामैं किछू आकुलता नाहीं । बहुरि प्रगट होयकरि कहा किया ? अचल जो कोई प्रकार चलै नाहीं ऐसी आपकी महिमा, ताविषैं लीन भया ।

भावार्थ—यह ज्ञान प्रगट भया सो कर्मका नाश करि मोक्षरूप होता अपनी स्वाभाविक अवस्थारूप अत्यंत शुद्ध समस्त ज्ञेयाकारकूं गौण करि ज्ञानका प्रकाश "जाका थाह नाहीं जामैं आकुलता नाहीं" ऐसा प्रगट दैदीप्यमान होयकरि अपनी महिमाविषैं लीन भया । ऐसैं रंगभूमिविषैं मोक्षतत्त्वका स्वांग आया था; सो ज्ञान प्रगट भया, मोक्षका स्वांग निसरि गया ।

सवैया—ज्यों नर कोय परयो दृढबंधन बंधस्वरूप लखै दुखकारी ।
चिंत करै निति कैम कटै यह तौऊ छिदै नहि नै कटिकारी ॥
छेदनकूं गहि आयुध धाय चलाय निशंक करै दुय धारी ।
यों बुध बुद्धि धसाय दुधा करि कर्मरु आतम आप गहारी ॥१॥

ऐसैं इस समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं आठमा मोक्षनामा अधिकार पूर्ण भया ॥८॥ इहां तांई गाथा ३०७ भई । कलश १९२ भये ।

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ।

दोहा—सर्वविशुद्ध सुज्ञानमय सदा आतमाराम । परकूं करै न भोगवै जानै जपि तसु नाम ॥१॥

इहां मोक्षतत्त्वका स्वांग निकसनेके अनंतर सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करे है। रंगभूमिविषैं जीवाजीव, कर्ता कर्म, पुण्य पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए आठ स्वांग आये। तिनिका नृत्य भया। अपना अपना स्वरूप दिखाय निकसि गये। अब सर्व स्वांग दूरि भये एकाकार सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करे है। तहां प्रथम ही मंगलरूप ज्ञानपुंज आत्माकी महिमाका काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

नीत्वा सम्यक्प्रलयमखिलान्कर्तृभोक्त्रादिभावान् दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ॥१॥

अर्थ—ज्ञानका पुञ्ज आत्मा है, सो स्फुरायमान प्रगट होय है। कहा करि प्रगट होय है? समस्त ही कर्ता अर भोक्ता इत्यादिक भाव हैं तिनि सर्वहीकूं भले प्रकार प्रलय कहिये नाशकूं प्राप्त करी प्रगट होय है। वहुरि कैसा है? प्रतिपद कहिये वारंवार नाशकूं प्राप्त करि प्रगट होय है। कर्मके क्षयोपशमके निमित्ततैं अनेक अवस्था होय हैं, तिनिप्रति बंधमोक्षकी ज्यों कल्पना प्रवृत्ति तातैं दूरीभूत है—दूरीवर्त्ती है। वहुरि शुद्ध है शुद्ध है। दोयवार कहनेतैं रागादिक मल अर आवरण दोऊतैं रहित है वहुरि कैसा है? अपना निजरस जो ज्ञानरस, ताका विसर कहिये फैलना, ताकरि आपूर्ण कहिये भरया ऐसा पवित्र अर अचल है अर्चि कहिये दीप्ति—प्रकाश जाका। वहुरि कैसा है? टंकोत्कीर्ण है प्रगट महिमा जाकी।

भावार्थ—शुद्धनयका विषय ज्ञान स्वरूप आत्मा है, सो कर्ताभोक्तापणाका भावसूं रहित है। वहुरि बंधमोक्षकी रचनाकरि रहित है, अर परद्रव्यतैं अर सर्व परद्रव्यके भावनितैं रहित है, तातैं शुद्ध है। अर अपने निजरसका प्रवाहकरि पूर्ण दैदीप्यमान ज्योतिरूप टंकोत्कीर्ण जाकी

महिमा है। सो ऐसा ज्ञानपुंञ्ज आत्मा प्रगट होय है। अब सर्व विशुद्धज्ञानकूं प्रगट करे है। तहां प्रथम ही कर्ता-भोक्ताभावतैं न्यारा दिखावे हैं, ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्। अज्ञानादेव कर्ताऽयं तदभावादकारकः ॥२॥

अर्थ—इस चित्स्वरूप आत्माका कर्तापणा स्वभाव नाहीं है। जैसैं वेदयितृत्व कहिये भोक्तापणा स्वभाव नाहीं है, तैसैं सो यह आत्मा कर्ता मानिये है, सो अज्ञानतैं मानिये है। अर जब अज्ञानका अभाव होय है, तब अकारक कहिये कर्त्ता नाहीं है। आगे आत्माका अकर्तापणा दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करे हैं। गाथा—

दवियं जं उपज्जदि गुणेहि तंतेहि जाणसु अणगणं।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥१॥
जीवस्साजीवस्सय जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥२॥
ण कुदोवि विउप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण सो होदि ॥३॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पंजंतिय णियमा सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा ॥४॥

द्रव्यं यदुत्पद्यते गुणैस्तत्तैर्जानीह्यनन्यत्।
यथा कटकादिभिस्तु पर्यायैः कनकमनन्यदिह ॥१॥

जीवस्याजीवस्य तु ये परिणामास्तु दर्शिताः सूत्रे ।
ते जीवमजीवं वा तैरनन्यं विजानीहि ॥२॥
न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात्कार्यं न तेन स आत्मा ।
उत्पादयति न किंचित्कारणमपि तेन न स भवति ॥३॥
कर्म प्रतीत्य कर्ता कर्तारं तथा प्रतीत्य कर्माणि ।
उत्पद्यंते नियमात्सिद्धिस्तु न दृश्यतेऽन्या ॥४॥

आत्मख्यातिः—जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः, एवमजीवोऽपि क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानोऽजीव एव न जीवः, सर्वद्रव्याणां स्वपरिणामैः सह तादात्म्यात् कंकणादिपरिणामैः कांचनवत् । एवं हि जीवस्य स्वपरिणामैरुत्पद्यमानस्याप्यजीवेन सह कार्यकारणभावो न सिद्ध्यति सर्वद्रव्याणां द्रव्यांतरेणोत्पाद्योत्पादकभावाभावात् । तदसिद्धौ चाजीवस्य जीवकर्मत्वं न सिद्ध्यति । तदसिद्धौ च कर्तृकर्मणोरनन्यापेक्षसिद्धत्वात्—जीवस्याजीवकर्तृत्वं न सिद्धति, अतो जीवोऽकर्ता अवतिष्ठते ।

अर्थ—जो द्रव्य अपना गुणनिकरि उपजे है, सो तिनि गुणनिकरि अन्य मति जानूं तिनि गुणमय ही है । जैसैं सुवर्ण है सो अपना कटक आदि पर्यायनिकरि लोकमें अन्य नाहीं है—कटकादि है सो सुवर्ण ही है । तैसैं ही द्रव्य जानूं । ऐसैं जीवके अर अजीवके जे परिणाम सूत्रविषैं कहे हैं, तिनि परिणामनिकरि तिस जीव अजीवकूं अनन्य जानूं—अन्य मति जानूं । परिणाम हैं ते द्रव्य ही हैं । यातैं सो आत्मा कोईतैं उपज्या नाहीं है, तातैं तौ काहूका किया कार्य नाहीं है । बहुरि काहू अन्यकूं उपजावै नाहीं है, तातैं काहूका कारण भी नाहीं है । बहुरि यह न्याय है जो कर्मकूं प्रतीत्यकरि कर्ता है तैसैं ही कर्ताकूं प्रतीत्यकरि कर्म उपजे है यह नियम है । अन्यप्रकार कर्ताकर्मकी सिद्धि नाहीं देखिये है ।

टीका—जीव है सो तौ प्रथम ही क्रमकरि अर नियमित निश्चित अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता जीव ही है, अजीव नाहीं है । ऐसैं ही अजीव है सो भी क्रमहीकरि अर

निश्चित जे अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता अजीव ही है, जीव नाहीं है। जातैं सर्व ही द्रव्यनिकै अपने परिणामनिकरि सहित तादात्म्य है, कोई ही अपने परिणामनितैं अन्य नाहीं, ऐसे परिणाम तिनिकूं छोडि अन्यमें जाय नाहीं। जैसैं कंकणादि परिणामनिकरि सुवर्ण उपजे है, सो कंकणादिकतैं अन्य नाहीं है तिनितैं तादात्म्यस्वरूप है; तैसैं सर्व द्रव्य हैं। ऐसैं ही अपने परिणामनिकरि उपजता जो जीव, ताके अजीवकरि सहित कार्यकारणभाव नाहीं सिद्ध होय है। जातैं सर्व द्रव्यनिकै अन्य द्रव्यकरि सहित उत्पाद्य अर उत्पादकभावका अभाव है अर तिस कार्यकारणभावकी सिद्धि न होतैं अजीवकै जीवका कर्मपणा न सिद्ध होय है अर अजीवकै जीवका कर्मपणा न होतैं कर्ताकर्मके अनन्यापेक्षसिद्धपणातैं जीवकै अजीवका कर्तापणा न ठहर्‌या। यातैं जीव है सो परद्रव्यका कर्ता न ठहर्‌या अकर्ता ठहर्‌या।

भावार्थ—सर्वद्रव्यनिके परिणाम न्यारे न्यारे हैं। अपने अपने परिणामनिके सर्व कर्ता हैं। ते तिनिके कर्ता हैं, ते परिणाम तिनिके कर्म हैं। निश्चयकरि कोईकै काहूतैं कर्ताकर्मसंबंध नाहीं है। तातैं जीव अपने परिणामनिका कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। तैसैं ही अजीव अपना परिणामनिका कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। ऐसैं अन्यके परिणामनिका जीव अकर्ता है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं। अर जीव अकर्ता है, तौऊ याकै बंध होय है सो यह अज्ञानकी महिमा है, ऐसैं कहे हैं।

शिखरिणीछन्दः

अकर्त्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभुवनः।
तथाऽप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥३॥

अर्थ—ऐसैं जीव है सो अपने निजरसतैं विशुद्ध है। यातैं परद्रव्यका तथा परभावनिका अकर्ता ठहर्‌या। कैसा है जीव? स्फुरायमान होता—फैलता जो चैतन्यज्योति, तिनिकरि व्याप्त भया है भुवन कहिये लोकका आभोग कहिये मध्य जाकरि ऐसा है भवन कहिये होना जाका।

ऐसा है तौऊ याकै इस लोकविषैं प्रगट कर्मप्रकृतिनिकरि बंध होय है। सो यह निश्चयकरि अज्ञानका कोई ऐसा ही महिमा है, सो वडा गहन है–ताका थाह न पाइये।

भावार्थ—शुद्धनयकरि जीव परद्रव्यका कर्ता नाहीं अर सर्व ज्ञेयनिविषैं जाका ज्ञान व्यापनेवाला है, तौऊ याकै कर्मका बंध होय है सो यह कोई अज्ञानका वडा महिमा है। आगे इस अज्ञानका महिमाकूं प्रगट करे हैं। गाथा–

चेदा दु पयडियट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि।
पयडीवि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ॥५॥
एवं बंधो दुण्हंपिं अण्णोण्णपच्चयाण हवे।
अप्पणो पयडी एय संसारो तेण जायदे ॥६॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति।
प्रकृतिरपि चेतकार्थमुत्पद्यते विनश्यति ॥५॥
एवं बंधो द्वयोरन्योन्यप्रत्ययाद्भवेत्।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते ॥६॥

आत्मख्यातिः—अयं हि आ संसारत एव प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानेन परमात्मनोरेकत्वाध्यासस्य करणात्कर्ता सन् चेतयिता प्रकृतिनिमित्तमुत्पादविनाशावासादयति। प्रकृतिरपि चेतयितृनिमित्तमुत्पत्तिविनाशावासादयति। एवमनयोरात्मप्रकृत्योः कर्तृकर्मभावाभावेप्यन्योन्यनिमित्तनैमितिकभावेन द्वयोरपि बंधो दृष्टः, ततः संसारः, तत एव च तयोः कर्तृकर्मव्यवहारः—

अर्थ—चेतयिता कहिये चेतनेवाला आत्मा है सो तौ प्रकृति कहिये ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृति ताके निमित्ततैं उपजे है तथा विनसे है। तथा प्रकृति भी तिस चेतनेवाले आत्माके

निमित्ततैं उपजे विनसे है, आत्माके परिणामके निमित्ततैं तैसैं ही परिणमे है। ऐसैं दोऊकै आत्माकै अर प्रकृतिकै परस्पर निमित्ततैं बंध होय है। बहुरि तिस बंधकरि संसार उपजे है।

टीका—यह चेतयिता आत्मा है सो अनादि संसारतैं लगाय अर आपका अर बंधका न्यारा न्यारा लक्षणका भेदज्ञान न होनेकरि परके अर आत्माके एकपणाका निश्चित अभिप्रायके करनेतैं परद्रव्यका कर्ता भया संता प्रकृति जो ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृति, ताके निमित्ततैं उपजना विनशना करे है। बहुरि प्रकृति भी आत्माके निमित्ततैं उत्पत्ति-विनाशकूं प्राप्त होय है—आत्माके परिणामके अनुसार परिणमे है। ऐसैं इनि आत्माकै अर प्रकृतिकै दोऊनिकै परमार्थतैं कर्ताकर्मपणाका भावका अभाव होतैं भी परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावकरि दोऊहीकै बंध देखिये है। बहुरि तिस बंधतैं संसार है, ताहीतैं दोऊकै कर्ताकर्मका व्यवहार प्रवर्तै है।

भावार्थ—आत्माकै अर प्रकृतिकै परमार्थतैं कर्ताकर्मपणाका अभाव है, तौऊ परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावतैं कर्ताकर्मका भाव है, तातैं बंध है, बंधतैं संसार है ऐसा व्यवहार है। आगे कहै कि जेतैं आत्मा प्रकृतिके निमित्ततैं उपजना विनशना न छोडै, तेतैं अज्ञानी मिथ्यादृष्टि असँयत है। गाथा—

जाएसो पयडियट्ठं चेदगो ण विमुंचदि ।
अयाणओ हवे तावं मिच्छादिट्ठी असंजदो ॥७॥
जदा विमुंचदे चेदा कम्मप्फलमणंतयं ।
तदा विमुत्तो हवदि जाणगो पस्सगो मुणी ॥८॥

यावदेष प्रकृत्यर्थं चेतयिता नैव विमुंचति ।
अज्ञायको भवेत्तावन्मिथ्यादृष्टिरसंयतः ॥७॥

यदा विमुंचति चेतयिता कर्मफलमनंतकं ।

तदा विमुक्तो भवति ज्ञायको दर्शको मुनिः ॥८॥

आत्मख्यातिः—यावदयं चेतयिता प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं न मुंचति तावत्स्वपरयोरेकत्वज्ञानेनाज्ञायको भवति । स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन मिथ्यादृष्टिर्भवति । स्वपरयोरेकत्वपरिणतया चासयतो भवति । तावदेव परात्मनोरेकत्वाध्यासस्य करणात्कर्ता भवति । यदा त्वयमेव प्रतिनियतस्वलक्षणनिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं मुंचति तदा स्वपरयोर्विभागज्ञानेन ज्ञायको भवति । स्वपरयोर्विभागदर्शनेन दर्शको भवति स्वपरयोर्विभागपरिणत्या च संयतो भवति तदैव च परात्मनोरेकत्वाध्यासस्याकरणादकर्ता भवति ।

अर्थ--यह आत्मा चेतयिता जेतैं प्रकृतिके निमित्ततैं उपजना विनशना न छोडै तेतैं अज्ञायक भया संता मिथ्यादृष्टि असँयमी होय है । वहुरि जिस काल आत्मा अनंत जो कर्मका फल, ताकूं छोडे है, तिस काल वंधसूं रहित होय—विमुक्त होय, ज्ञायक दर्शक कहिये ज्ञाता द्रष्टा मुनि सँयमी होय है ।

टीका--जेतैं यह चेतयिता आत्मा अपना अर प्रकृतिका न्यारा न्यारा स्वभावरूप लक्षणका भेदज्ञानका अभावतैं आपके वंधका निमित्त जो प्रकृतिका स्वभाव, ताही न छोडे है, तेतैं अपना अर परका एकपणाका ज्ञानकरि अज्ञायक होय है । वहुरि अपना परका एकपणाका दर्शन श्रद्धानकरि मिथ्यादृष्टि होय है । वहुरि अपनी अर परकी एकपणाकी परिणतिकरि असँयत होय है । वहुरि तेतैं ही परका अर आत्माका एकपणाका अध्यवसान करनेतैं कर्ता होय है । वहुरि जिस-काल यह ही आत्मा आपका अर प्रकृतिका न्यारा न्यारा स्वलक्षणका निर्णयरूप ज्ञानतैं आपके वंधका निमित्त जो प्रकृतिका स्वभाव ताहि छोडे है, तिस काल अपना अर परका विभागका ज्ञानकरि ज्ञायक होय है । वहुरि अपना अर परका विभागका दर्शन श्रद्धानकरि दर्शक होय है । वहुरि अपना अर परका विभागकी परिणतिकरि सँयत होय है । तिस ही काल परका अर आपका एकपणाका अभ्यास नाहीं करनेतैं अकर्ता होय है ।

भावार्थ—यह आत्मा जेतैं अपना अर परका निजलक्षण नाहीं जानै, तेतैं भेदज्ञानका अभावतैं कर्मप्रकृतिका उदयकूं अपना जाणि परिणमे है। तैसैं मिथ्यादृष्टि अज्ञानी असँयमी होय, कर्ता होय, कर्मका बंध करे है। अर भेदज्ञान होय तब ताका कर्ता न बने है, तब कर्मका बंध न करे है, ज्ञाता द्रष्टा हुवा परिणमे है। ऐसैं ही भोक्तापणा आत्माका स्वभाव नाहीं है ऐसैं कहे हैं। ताकी सूचनिकाका श्लोक—

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः। अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥४॥

अर्थ—इस आत्माका कर्तास्वभाव जैसैं नाहीं है, तैसैं ही भोक्तापणा भी स्वभाव नाहीं है, यह अज्ञानहीतैं भोक्ता होय है। बहुरि जब अज्ञानका अभाव होय है तब अवेदक है—भोक्ता नाहीं है। आगै इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं।

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ॥९॥

अज्ञानी कर्मफलं प्रकृतिस्वभावस्थितस्तु वेदयते।
ज्ञानी पुनः कर्मफलं जानाति—उदितं न वेदयते ॥९॥

आत्मख्यातिः—अज्ञानी हि शुद्धात्मज्ञानाभावात् स्वपरयोरेकत्वज्ञानेन, स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन, स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या च प्रकृतिस्वभावे स्थितत्वात् प्रकृतिस्वभावमप्यहंतया—अनुभवन् कर्मफलं वेदयते। ज्ञानी तु शुद्धात्मज्ञानसद्भावात्स्वपरयोर्विभागज्ञानेन, स्वपरयोर्विभागदर्शनेन स्वपरयोरेकत्वापरिणत्या च प्रकृति स्वभावादपसृतत्वात्—शुद्धात्मस्वभावमेकमेवाहंतयानुभवन् कर्मफलमुदितं ज्ञेयमात्रत्वात्—जानात्येव न पुनस्तस्याहंतयाऽनुभवितुमशक्यत्वाद् वेदयते।

अर्थ—अज्ञानी है सो तौ कर्मका फलकूं प्रकृतिके स्वभावविषैं तिष्ठ्या हुवा वेदे है—भोगवै है। बहुरि ज्ञानी है सो उदय आया कर्मका फलकूं जाने है अर वेदे नाहीं है—भोगवै नाहीं है।

टीका—अज्ञानी है सो निश्चयकरि शुद्ध आत्माका ज्ञानका अभावतैं अपना अर परका एक-

पणाका ज्ञानकरि वहुरि अपना अर परका एकपणाका दर्शन श्रद्धानकरि वहुरि अपनी अर परकी एकपणाकी परिणतिकरि प्रकृतिके स्वभावविषैं तिष्ठे है। तातैं प्रकृतिके स्वभावकूं अहंबुद्धिपणाकरि आप अनुभवता संता कर्मके फलकूं वेदे है—भोगवे है। वहुरि ज्ञानी है सो शुद्ध आत्माके ज्ञानके सद्भावतैं अपना अर परका विभागका ज्ञानकरि वहुरि अपना अर परका विभागका दर्शन श्रद्धान करि वहुरि अपनी परकी विभागरूप परिणतिकरि प्रकृतिके स्वभावतैं अपसृत भया है—दूरिवर्ती भया है अर अपना शुद्ध आत्माका स्वभावकूं एकहीकूं अहंबुद्धिपणाकरि आप अनुभवे है। सो ऐसैं अनुभवन करता संता उदय आया जो कर्मका फल, सो ज्ञेयमात्रपणातैं ताकूं जाने ही है। वहुरि ताकूं अहंपणाकरि अनुभवन करनेका असमर्थपणातैं वेदे नाहीं है भोगवै नाहीं है।

भावार्थ—अज्ञानीकै तौ शुद्ध आत्मा ज्ञान नाहीं है, तातैं जैसा कर्म उदय आवै तिसहीकूं आपा जानि भोगवै है। वहुरि ज्ञानीकै शुद्ध आत्मानुभव भया, तातैं प्रकृतीका उदय आवै ताकूं अपना स्वभाव जाने नाहीं, ताका ज्ञाता ही रहै—भोक्ता नाहीं होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको ज्ञानीतु प्रकृतिस्वभावनिरतो नो जातु चिद्वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां शुद्धैकात्ममये महस्याचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥५॥

अज्ञानी वेदक एवेति नियम्यते—

अर्थ—अज्ञानी जन है सो तौ प्रकृतिस्वभावविषैं रागी है लीन है, ताहीकूं अपना स्वभाव जाने है, तातैं सदाकाल ताका वेदक है—भोक्ता है। वहुरि ज्ञानी है सो प्रकृतिस्वभावविषैं विरागी है—विरक्त है, ताकूं परका स्वभाव जाने है, तातैं कदाचित् भी वेदक नाहीं है—भोक्त नाहीं है। सो आचार्य उपदेश करे हैं—जो जे निपुण प्रवीण पुरुष हैं, ते ज्ञानीपणाका अर अज्ञानीपणाका

ऐसा नियम निरूपणकरि विचारिकरि अज्ञानीपणाकूं तौ छोडौ। अर शुद्ध आत्मामय जो एक मह—तेज—प्रताप, ताविषैं निश्चल होयकरि ज्ञानीपणाकूं सेवन करौ। आगै अज्ञानी है सो वेदक ही है—भोक्ता ही है ऐसा नियम कहे हैं। गाथा—

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइदूण सत्थाणि।
गुडदुद्धंपि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥१०॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठुप्यधीत्य शास्त्राणि।
गुडदुग्धमपि पिबंतो न पन्नगा निर्विषा भवंति ॥१०॥

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

जो पुण णिरावराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।
आराहणाय णिच्चं वट्ठदि अहमिदि वियाणंतो ॥

यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति।
आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति विजानन् ॥

तात्पर्यवृत्तिः—जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि—यस्तु चेतयिता ज्ञानी जीवः स निरपराधः सन् परमात्माराधनविषये निश्शंको भवति। निश्शंको भूत्वा किं करोति? आहारणायं णिच्चं वट्ठदि अहमिदि वियाणंतो-निर्दोषपरमात्माराधनारूपया निश्चयाराधनया नित्यं सर्वकालं वर्तते। किं कुर्वन्? अनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा शुद्धात्मानं सम्यग्जानन् परमसमरसी भावेन वानुभवति इति।

अर्थ—जो ज्ञानी जीव है वह निरपराध होता हुआ परमात्माके आराधनमें निःशंक होता है और मैं अनंतज्ञान स्वरूप हूं" ऐसी निर्विकल्प समाधीमें स्थित होकर परम समरसी भावका अनुभव करता है।

आत्मख्यातिः—यथात्र विषधरो विषभावं स्वयमेव न मुंचति, विषभावमोचनसमर्थसशर्करक्षीरपानाच्च न मुंचति। तथा किलाभव्यः प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव न मुंचति प्रमोचनसमर्थद्रव्यश्रुतज्ञानाच्च न मुंचति, नित्यमेव भावश्रुतज्ञान-लक्षणशुद्धात्मज्ञानाभावेनाज्ञानित्वात्। अतो नियम्यते ज्ञानी प्रकृतिस्वभावे सुस्थितत्वाद्वेदक एव।

अर्थ—अभव्य है सो प्रकृति कहिये कर्मका उदयस्वभाव है ताही न छोडे है। जो भलैप्रकार अभ्यास करि शास्त्रनिकूं पढे है, तौऊ प्रकृति वदले नाहीं है। जैसें सर्प है सो गुडसहित दूधकूं पीवता संता भी निर्विष नाहीं होय है।

टीका—जैसैं इस लोकविषैं सर्प है, सो अपना विषभाव, ताही आपै आप भी नाहीं छोडे है। वहुरि विषभावके मेटनेकूं समर्थ ऐसा मिश्रीसहित दूधके पीवनेते भी नाहीं छोडे है। तैसैं प्रगटपणैं अभव्य है सो प्रकृतिका स्वभावकूं स्वयमेव भी नाहीं छोडे है, वहुरि प्रकृतिस्वभावके छुडावनेकूं समर्थ जो द्रव्यश्रुत शास्त्रका ज्ञान, तातें भी नाहीं छोडे है। जातें याकै नित्य ही भावश्रुतज्ञानस्वरूप जो शुद्धात्मज्ञान, ताका अभावकरि अज्ञानीपणा है। यातैं ऐसा नियम कीजिये है, जो अज्ञानी प्रकृतिस्वभावविषैं तिष्ठवापणातें वेदक हो है—कर्मका भोक्ता ही है।

भावार्थ—अज्ञानी कर्मका फलका भोक्ता ही है यह नियम कह्या। तहां अभव्यका उदाहरण युक्त है, जाका ऐसा स्वयमेव स्वभाव है, यह नियम कह्या। तहां अभव्य जो वाह्यकारण मिलै भी कर्मका उदयका भोगनेका स्वभाव नाहीं वदले है। तातैं अज्ञानीकै भोक्तापणाका नियम वणे है। आगै कहे हैं, जो ज्ञानी कर्मफलका अवेदक ही है ऐसा नियम कीजीये है। गाथा—

णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणादि।
महुरं कडुवं बहुविहमवेदको तेण पण्णत्तो ॥११॥

निर्वेदसमापन्नो ज्ञानी कर्मफलं विजानाति।
मधुरं कटुकं वहुविधमवेदको तेन प्रज्ञप्तः ॥११॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी तु निरस्तभेदभावश्रुतज्ञानलक्षणशुद्धात्मज्ञानसद्भावेन परतोऽत्यंतविविक्तत्वात् प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव मुंचति ततो मधुरं मधुरं वा कर्मफलमुदितं ज्ञातृत्वात् केवलमेव जानाति, न पुनर्ज्ञाने सति परद्रव्यस्याहंतयाऽनुभवितुमयोग्यत्वाद्वेदयते। अतो ज्ञानी प्रकृतिस्वभावविरक्तत्वादवेदक एव।

अर्थ—ज्ञानी है सो निर्वेद कहिये वैराग्य, ताकूं प्राप्त है, सो कर्मके फलकूं जाने है। जो मधुर कहिये मीठा है तथा कटुक कहिये कडवा है ऐसैं अनेक प्रकार है ताकूं जाने है, तातैं अवेदक है—भोक्ता नाहीं है।

टीका—ज्ञानी है सो दूरि भया है भेद जामैं, ऐसा जो अभेदरूप भावश्रुतज्ञान है, सो स्वरूप जाका ऐसा जो शुद्धात्मा, ताका ज्ञानका सद्भावकरि परतैं अत्यंत विरक्त है। तातैं ऐसा ज्ञानी प्रकृतिस्वभाव जो कर्मका उदयका स्वभाव, ताहि स्वयमेव छोडे है, तिसरूप नाही परिणमे है। तातैं मीठा कडवा जो सुखदुःखरूप कर्मका फल उदय आया, ताकूं, ताकूं केवल जाने ही है। जातैं ज्ञानीका ज्ञातापणा स्वभाव है, तातैं कर्ता नाहीं बने है। भोक्ता नाहीं बने है। ज्ञान होते संते परद्रव्यका अहंबुद्धिकरि अनुभवनेका अयोग्यपणा है, तातैं वेदक नाहीं है—भोक्ता नाहीं होय है। यातैं ज्ञानी प्रकृतिस्वभावतैं विरक्त है, तिसपणाकरि अवेदक ही—भोक्ता नाहीं है।

भावार्थ—जो जातैं विरक्त होय ताकूं अपने वश तौ भोगवै नाहीं अर परवशतैं भोगवै तौ ताकूं परमार्थकरि भोक्ता न कहिये। इस न्यायतैं ज्ञानी प्रकृतिस्वभाव जो कर्मका उदय, ताकूं अपना जानै नाहीं, तातैं विरक्त है, सो स्वयमेव तौ भोगवे ही नाहीं अर उदयकी वरजोरीतैं परवश हुवा अपनी निबलाईतैं भोगवे तौ ताकूं परमार्थकरि भोक्ता न कहिये, व्यवहारकरि भोक्ता कहिये। ताका इहां शुद्धनयतैं अधिकार नाहीं। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

६०

वसन्ततिलकाछन्दः

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावात् शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥६॥

अर्थ—ज्ञानी है सो कर्मकूं स्वतंत्र होय करै नाहीं है । तैसैं ही वेदे नाहीं है । केवल तिस कर्मस्वभावकूं जाने ही है । ऐसैं केवल जानता संता करनेका अर वेदनेका अभावतैं शुद्ध-स्वभावके विषैं निश्चित है सो निश्चयकरि मुक्त ही है—कर्मनितैं छुट्या ही कहिये ।

भावार्थ—ज्ञानी कर्मका स्वाधीनपणे कर्ता भोक्ता नाहीं केवल ज्ञाता ही है । तातैं शुद्ध स्वभावरूप भया संता मुक्त ही है । जो कर्म उदय आवै भी है तौ ज्ञानीका कहा करै ? जेतैं निबलाई रहै जेतैं कर्म जोर चलावो, सबलाई क्रमतैं बधाय कर्मका निर्मूल नाश करेहीगा । आगे इस ही अर्थकूं फेरि दृढ करे हैं । गाथा—

णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माइ बहु पयाराइ ।
जाणादि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥१२॥

नापि करोति नापि वेदयते ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ।
जानाति पुनः कर्मफलं बंधं पुण्यं च पापं च ॥१२॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि कर्मचेतनाशून्यत्वेन कर्मफलचेतनाशून्यत्वेन च स्वयमकर्तृत्वादवेदयितृत्वाच्च न कर्म करोति न वेदयते च । किंतु ज्ञानचेतनामयत्वेन केवलं ज्ञातृत्वात्कर्मबंधं कर्मफलं च शुभमशुभं वा केवलमेव जानाति ।

कुत एतत् ?

अर्थ—ज्ञानी है सो बहुत प्रकारके कर्मनिकूं करै नाहीं है, वेदे नाहीं है । बहुरि कर्मके फलकूं पुण्यकूं पापकूं जाने है ।

टीका—ज्ञानी है सो कर्मचेतनाकरि शून्य है । बहुरि कर्मफलचेतनाकरि शून्य है । तिसपणा-करि स्वयं स्वतंत्र होय कर्ता नाहीं होय है । बहुरि स्वयं वेदक भी न होय है । तातैं कर्मकूं करै

नाहीं है, वेदै नाहीं है, तौ कहा है ? । ज्ञानी ज्ञानचेतनामय है, तिसपणाकरि केवल ज्ञाता ही है, तिसपणातैं कर्मका बंध बहुरि कर्मका शुभ तथा अशुभफल ताकूं केवल जाने ही है। आगै पूछे है, जो यह जानना कैसा है ? काहेतैं है ? ताका उत्तर दृष्टांतपूर्वक कहे हैं। गाथा–

दिट्ठी सयंपि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणदि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥१३॥

दृष्टिः स्वयमपि ज्ञानमकारकं यथाऽवेदकं चैव ।
जानाति च बंधमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यथात्र लोके दृष्टिर्दृश्यादत्यंतविभक्तत्वेन तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात् दृश्यं न करोति न वेदयते च, अन्यथाग्निदर्शनात्संधुक्षणवत् स्वयं ज्वलनकरणस्य, लोहपिंडवत्स्वयमेवौष्ण्यानुभवनस्य च दुर्निवारत्वात्। किंतु केवलं दर्शनमात्रस्वभावत्वात् तत्सर्वं केवलमेव पश्यति तथा ज्ञानमपि स्वयं दृष्टित्वात् कर्मणोऽत्यंतविभक्तत्वेन निश्चयतस्तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात्कर्म न करोति न वेदयते च। किंतु केवलं ज्ञानमात्रस्वभावत्वात्कर्मबंधं मोक्षं वा कर्मोदयं निर्जरां वा, केवलमेव जानाति।

अर्थ--जैसैं दृष्टि कहिये नेत्र है सो देखनेयोग्य पदार्थकूं देखे है, तिनिका कर्ता भोक्ता नाहीं है। तैसैं ही ज्ञान है सो बंध, मोक्ष, कर्मका उदय, निर्जरा इनिकूं जाने ही है; करनेवाला भोगनेवाला नाहीं है।

टीका--जैसैं इस लोकमें दृष्टि कहिये नेत्र है सो दृश्य कहिये देखनेयोग्य पदार्थ तिनितैं अत्यंत भिन्नपणातैं तिनिके करनेकूं अर वेदनेकूं असमर्थ है; तिसपणाकरि दृश्यपदार्थकूं करै नाहीं है, वेदै नाहीं है। जो ऐसैं न होय तौ अग्नीकूं प्रज्वलित करनेवालाकीज्यौं अर लोहका पिंड अग्नीतैं प्रज्वलित तप्तायमान होय है ताकी ज्यौं अग्नीके देखनेतैं नेत्रकै कर्ता–भोक्तापणा अवश्य आवै तौ कहा है ? दृष्टीका केवल दर्शनमात्र स्वभाव है। तातैं तिस दृश्यकूं केवल देखे ही है। तैसैं ही

ज्ञान है सो भी आप दृष्टिवत् ही है, तातैं कर्मतैं अत्यंतभिन्नपणातैं निश्चयतैं तिस कर्मका करना अर भोगनाविषैं असमर्थ है. तिसपणातैं कर्मकूं करै नाहीं है, भोगवै नाहीं है। तौ कहा है? केवल ज्ञानमात्रस्वभावपणातैं कर्मके बंधकूं तथा मोक्षकूं तथा कर्मके उदयकूं तथा कर्मकी निर्जराकूं केवल जाने ही है।

भावार्थ--ज्ञानका स्वभाव नेत्रकीज्यौं दूरितैं जाननेका है, तातैं करना भोगना ज्ञानकै नाहीं। जो करना भोगना माने है, सो अज्ञान है। इहां कोई पूछै जो ऐसा तो केवलज्ञान है; अर जबताईं मोहकर्मका उदय है तबताईं तो सुखदुःखरागादिरूप परिणमे ही है; अर दर्शनावरण ज्ञानावरण वीर्यांतरायका उदय है तहांताईं अदर्शन अज्ञान असमर्थपणा होय ही है; केवलज्ञान पहले ज्ञाता द्रष्टा कैसें कहिये? ताका समाधान--जो पहले तो कहते ही आवे है तो स्वतंत्र होय करै भोगवै ताकूं परमार्थतैं कर्ता भोक्ता कहिये है, सो जब मिथ्यादृष्टिरूप अज्ञानका अभाव भया, तब परद्रव्यका स्वामीपणाका अभाव भया, तब आप ज्ञानी भया, स्वतंत्रपणें तौ काहूका कर्त्ता भोक्ता होय नाहीं। अर आपकी निबलाईकरि कर्मउदयकी वरजोरीकरि जो कार्य होय है, तातैं परमार्थदृष्टीमें कर्ता भोक्ता न कहिये है। अर तिसके निमित्ततैं कछू नवीनकर्मरज लागे भी है, तो ताकूं इहां बंधमें न गणिये है। जो संसार है सो तौ मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व गये पीछै संसारका अभाव ही होय है, समुद्रमें बूंदकी कहा गणती?

बहुरि एता और जानना--जो केवलज्ञानी तो साक्षात् शुद्धात्मस्वरूपरूपही है अर श्रुतज्ञानी भी शुद्धनयके अवलंबनतैं आत्माकूं तैसा ही अनुभवे है, प्रत्यक्ष परोक्षका ही भेद है। सो याके ज्ञानश्रद्धानकी अपेक्षा तौ ज्ञाताद्रष्टापणा ही है, बहुरि चारित्रकी अपेक्षा प्रतिपक्षी कर्मका जेता उदय है तेता घात है; सो याका नाश करनेका उद्यम है। जब कर्मका अभाव होसी, तब साक्षात् यथाख्यात चारित्र होसी, तब केवलज्ञानकी प्राप्ती होसी। बहुरि सम्यग्दृष्टिकूं ज्ञानी कहिये है सो मिथ्यात्वका अभावहीकी अपेक्षा कहिये है। जो अपेक्षा न लीजिये, तौ ज्ञान सामान्य

करि तौ सर्व ही जीव ज्ञानी हैं वहुरि विशेष अपेक्षा ही लीजिये तौ जहां तांई कञ्चिन्मात्र भी अज्ञान रहै, जेतैं ज्ञानी न कह्या जाय, जैसैं सिद्धांतमें भाव लगाये है तहांतांई केवलज्ञान न उपजै, तेतैं बारमा गुणस्थानतांई अज्ञानभाव लगाया है। तातैं इहां ज्ञानी अज्ञानी कहना सम्यक्त्वमिथ्यात्व हीकी अपेक्षा जानना। आगै जे सर्वथा एकांतके आशयतैं आत्माकूं कर्ता ही माने हैं, तिनिकूं निषेधे हैं, ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः। सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—ये पुरुष अज्ञान अंधकारकरि आच्छादे हुये आत्माकूं कर्ताही माने हैं, ते मोक्षकूं चाहते हैं, तौऊ तिनिकै सामान्यजन—लौकिकजनकीज्यौं मोक्ष नाहीं होय है॥ अब इस अर्थकूं गाथाकरि कहे हैं॥ गाथा—

लोगस्स कुणदि विह्णू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणंपिय अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए ॥१४॥
लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाणं अप्पओ कुणदि ॥१५॥
एवं ण कोवि मुक्खो दीसइ दुण्हंपि समणलोयाणं।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणुआसुरे लोगे ॥१६॥

लोकस्य करोति विष्णुः सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान्।
श्रमणानामप्यात्मा यदि करोति षड्विधान् कायान् ॥१४॥

लोकश्रमणानामेवं सिद्धांतं प्रति न दृश्यते विशेषः ।
लोकस्य करोति विष्णुः श्रमणानामप्यात्मा करोति ॥१५॥
एवं न कोऽपि मोक्षो दृश्यते लोकश्रमणानां द्वयेषां ।
नित्यं कुर्वतां सदैव मनुजान् सुरान् लोकान् ॥१६॥

आत्मख्यातिः—ये त्वात्मानं कर्तारमेव पश्यंति ते लोकोत्तरिका अपि न लौकिकतामतिवर्तन्ते । लौकिकानां परमात्मा विष्णुः सुरनारकादिकार्याणि करोति, तेषां तु स्वात्मा तानि करोति इत्यपसिद्धांतस्य समत्वात् । ततस्तेषामात्मनो नित्यकर्तृत्वाभ्युपगमात्—लौकिकानामिव लोकोत्तरिकाणामपि नास्ति मोक्षः ।

अर्थ—देव नारक तिर्यच मनुष्यप्राणी हैं तिनिकूं लोककै तौ विष्णु करे है ऐसी मान्य है। वहुरि श्रमण जे यति तिनिकैभी ऐसी मान्य होय, जो षट्कायके जीवनिकूं आत्मा करे है। तौ लोकका अर श्रमणनिका दोऊनिका एक सिद्धांत ठहर्‌या, किछू विशेष न देखिये है। जातैं लौकिकके विष्णु करे है, श्रमणनिके आत्मा करे है ऐसें दोऊ कर्ताकी माननेमें समान भये। ऐसें लोकके अर श्रमणनिके दोऊनिके कोईभी मोक्ष नाहीं देखिये है। जातैं देव मनुष्य असुर सहित लोकनिकूं जीवनिकूं नित्य दोऊ करते संते प्रवर्तें हैं, तिनिकै काहेका मोक्ष होय ?

टीका—जे पुरुष आत्माकूं कर्ताही माने हैं, ते लोकोत्तरिक हैं—लोकतैं दूरिवर्ति वाह्य भये हैं। तौऊ लौकिकपणाकूं नाहीं उल्लंघि वर्तें हैं। जातैं लौकिकजननिकै तौ परमात्मा विष्णु सुरनारक आदि कायनिकूं करे हैं। वहुरि तैं लोकवाह्य भये ऐसे मुनि तिनिकै अपना आत्मा तिनि सुरनारक आदिकूं करे हैं ऐसैं अपसिद्धांत कहिये अन्यथा माननेका दोऊकै समानपणा है। तातैं ते आत्माकूं नित्य कर्तापणाके माननेतैं लौकिकजनकीज्यों लोकोत्तरिक मुनि हैं तौऊ लौकिकजन ही हैं, तिनिकै मोक्ष नाहीं होय है।

भावार्थ—जे आत्माकूं कर्ता माने हैं ते मुनि होय तौऊ लौकिकजनसारिखेही हैं। जातैं लोक

ईश्वरकूं कर्ता माने है तिनि मुनिनिनै आत्माकूं कर्ता मान्या ऐसैं दोऊकी माननी समान भई। तातैं जो लौकिकजनकै सो मोक्ष नाहीं, तैसैं तिस मुनिनिकै मोक्ष नहीं कर्ता होगा सो कार्यके फलकूं भोगवेहीगा जो फल भोगवेगा ताकै काहेका मोक्ष? आगै कहे हैं, जो परद्रव्यका अर आत्माका किछूभी संबंध नाही है, तातैं कर्ताकर्मसंबंधभी नाही है, ऐसैं श्लोकमें कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः। कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८॥

अर्थ—परद्रव्यका अर आत्मतत्त्वका सर्व ही संबंध नाही है, ऐसैं कर्त्ताकर्मपणाका संबंधका अभावकूं होतै परद्रव्यका कर्तापणा काहेते होय?

भावार्थ—परद्रव्यका अर आत्माका किछूभी संबंध नाही, तब कर्त्ताकर्मसंबंध काहेकूं होय? ऐसैं होतैं कर्तापणा कहेकूं होय? आगै व्यवहारनयके वचनकरि कहिये हैं, जो परद्रव्य मेरा है सो जे व्यवहारहीकूं निश्चय माने हैं, तै अज्ञानतैं माने हैं, याकूं दृष्टांतपूर्वक कहे हैं। गाथा—

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदत्था।
जाणंति णिच्छयेण दु णय इह परमाणुमित्त मम किंचि ॥१७॥
जह कोवि णरो जंपदि अह्माणं गामविसयपुररट्ठं।
णय होंति ताणि तस्स दु भणदिय मोहेण सो अप्पा ॥१८॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवदि एसो।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ॥१९॥
तह्मा ण मेति णच्चा दोह्नं एदाण कत्ति ववसाओ।
परदव्वे जाणंतो जाणे जो दिट्ठिरहिदाणं ॥२०॥

व्यवहारभाषितेन तु परद्रव्यं मम भणंत्यविदितार्थाः
जानंति निश्चयेन तु नचेह परमाणुमात्रमपि किंचित् ॥१७॥
यथा कोऽपि नरो जल्पति अस्माकं ग्रामविषयपुरराष्ट्रं ।
न च भवंति तस्य तानि तु भणति च मोहेन स आत्मा ॥१८॥
एवमेव मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निस्संशयं भवत्येषः ।
यः परद्रव्यं ममेति जानन्नात्मानं करोति ॥१९॥
तस्मान्न मे इति ज्ञात्वा द्वयेषामप्येतेषां कर्तृव्यवसायं ।
परद्रव्ये जानन् जानीयाद् दृष्टिरहितानां ॥२०॥

आत्मख्यातिः—अज्ञानिन एव व्यवहारविमूढा परद्रव्यं ममेदमिति पश्यंति । ज्ञानिनस्तु निश्चयप्रतिबुद्धाः परद्रव्यकणिकामात्रमपि न ममेदमिति पश्यंति । ततो यथात्र लोके कश्चिद् व्यवहारविमूढः परकीयग्रामवासी ममायं ग्राम इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः । तथा ज्ञान्यपि कथंचिद् व्यवहारविमूढो भूत्वा परद्रव्यं ममेदमिति पश्येत् तदा सोऽपि निस्संशयं परद्रव्यमात्मानं कुर्वाणो मिथ्यादृष्टिरेव स्यात् । अतस्तत्त्वं जानन् पुरुषः सर्वमेव परद्रव्यं न ममेति ज्ञात्वा लोकश्रमणानां द्वयेषामपि योऽयं परद्रव्ये कर्तृव्यवसायः, स तेषां सम्यग्दर्शनरहितत्वादेव भवति इति सुनिश्चितं जानीयात् ।

अर्थ—अविदितार्थ कहिये नाहीं जान्या है पदार्थका स्वरूप ज्यानैं, ते पुरुष व्यवहार कहे वचन लेकरि कहे हैं, जो परद्रव्य मेरा है । बहुरि जे निश्चयकरि पदार्थका स्वरूप जाने हैं, ते कहे हैं, जो परद्रव्य परमाणुमात्र भी किछू मेरा नाहीं है । व्यवहारका कहना ऐसा है—जैसैं कोई पुरुष कहें मेरा ग्राम है, मेरा देश है, मेरा नगर है, मेरा राजका देश है, तहां निश्चय विचारिये तौ ते ग्राम आदिक ताके नाहीं हैं; वह आत्मा मोहकरि मेरा मेरा कहे हैं । ऐसैं ही जो ज्ञानी होयकरि भी जो परद्रव्यकूं परद्रव्य जानता संता भी कहे है जो परद्रव्य मेरा है, ऐसैं आपकूं परद्रव्यमय करे है, सो निःसंदेह मिथ्यादृष्टि होय है । तातैं ज्ञानी है सो परद्रव्य मेरा नाहीं है

ऐसैं जानिकरि अर जो परद्रव्यविषैं लौकिकजनकै अर मुनिनिकै जो कर्तापणाका व्यापार होय तौ ऐसैं जानैं, जो ए सम्यग्दर्शनकरि रहित है।

टीका—जे व्यवहारहीविषैं विमूढ है ते ही अज्ञानी हैं, ते ही यह परद्रव्य मेरा है ऐसैं देखे है कहे हैं। बहुरि ज्ञानो हैं ते निश्चयनयकरि प्रतिबुद्ध भये हैं, ते परद्रव्यकूं कणिकामात्रकूं भी यह मेरा है ऐसैं नाहीं देखे हैं, तातैं जैसैं या लोकमैं कोई व्यवहारविषैं विमूढ परके ग्राममैं वसनेवाला कहे "यह मेरा ग्राम है" ऐसैं देखतासंता मिथ्यादृष्टि कहिये। तैसैं जो ज्ञानी भी कोई प्रकारकरि व्यवहारविषैं विमूढ होयकरि 'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसैं देखे, तौ तिसकाल सो भी परद्रव्यकूं आप करता संता मिथ्यादृष्टि ही होय। यातैं जो तत्त्वकूं जानता पुरुष है, सो सब ही परद्रव्य मेरा नाहीं है ऐसैं जानिकरि अर लौकिकजन अर श्रमणजन इनि दोऊनिके भी जो यह परद्रव्यविषैं कर्तापणाका निश्चय है, तौ सो तिनिके सम्यग्दर्शनका रहितपणाहीतैं होय है, ऐसैं निश्चय जाने है।

भावार्थ—ज्ञानी भी होय अर फेरि व्यवहारकरि मोही होय, तौ, लौकिकजन होऊ तथा मुनिजन होऊ, दोऊके परद्रव्यका कर्तापणा आवै, तब मिथ्यादृष्टि होय है, ऐसैं ज्ञानी जानै है। अब इस ही अर्थके कलशरूपकाव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्धं सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
तत्कर्तृकर्मघटनाऽस्ति न वस्तुभेदे पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥६॥

अर्थ—जाकारणतैं एकवस्तुकै अन्यवस्तुकरि सहित इस लोकमैं संबंध है, सो समस्त ही निषेध्या है; तातैं जहां वस्तुभेद है तहां कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति ही नाहीं है। तातैं लौकिकजन भी अर मुनिजन भी वस्तुके तत्त्व कहिये यथार्थस्वरूप ऐसा ही देखो, जो कोई काहूका कर्ता नाहीं, परद्रव्य परका अकर्त्ता ही श्रद्धामैं ल्यावो। आगे कहे हैं जो पुरुष ऐसा वस्तुस्वभावका नियम

४८१

नाहीं जाने है; ते अज्ञानी भये कर्मकूं करे हैं, ते भावकर्मके कर्ता होय हैं, ऐसैं अपने भावकर्मका कर्ता अज्ञानतैं चेतन ही है, ताकी सूचनिकाका काव्य है।

वसन्ततिलकाछन्दः

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेममज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष वस्तुका स्वभावका पूर्वोक्त नियमकूं नाहीं जाने हैं, तिनिका आचार्य खेद करि कहे हैं। अहो अज्ञानविषैं मग्न भया है मह कहिये पुरुषार्थ–पराक्रमरूप तेज जिनिका ते वराक कहिये रांक भये संते कर्मकूं करे हैं, ज्ञानतैं छूटि गये हैं तातैं दूसरी तीसरी भावकर्मका आप चेतन ही कर्ता होय है, अन्य नाहीं है।

भावार्थ—जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है सो वस्तूका स्वरूपका नियम तौ जाने नाहीं अर परद्रव्यका कर्ता बनै, तब आप अज्ञानरूप परिणमैं, तब अपना भावकर्मका कर्ता अज्ञानी ही है, अन्य नाहीं है। आगैं इस कथनकूं युक्तिकरि साधै हैं। गाथा—

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्ता ॥२१॥

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई।

सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥

सम्यक्त्वं यदि प्रकृतिः सम्यग्दृष्टिं करोत्यात्मानं।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारकः प्राप्तः ॥

अहवा एसो जीवो पोग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पोग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ॥२२॥
अह जीवो पयडी विय पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छंत्तं ।
तह्मा दोहि कयं तं दोण्णिवि भुंजंति तस्स फलं ॥२३॥
अह ण पयडी ण जीवो पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पोग्गलदव्वं मिच्छत्तं तंतु ण हु मिच्छा ॥२४॥

मिथ्यात्वं यदि प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टिं करोत्यात्मानं ।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारकः प्राप्तः ॥२१॥
अथवैषः जीवः पुद्गलद्रव्यस्य करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः ॥२२॥
अथ जीवः प्रकृतिरपि पुद्गलद्रव्यं कुरुते मिथ्यात्वं ।
तस्मात् द्वाभ्यां कृतं द्वावपि भुंजाते तस्य फलं ॥२३॥
अथ न प्रकृतिर्न च जीवः पुद्गलद्रव्यं करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं तत्तु न खलु मिथ्या ॥२४॥

आत्मख्यातिः—जीव एव मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता तस्याचेतनप्रकृतिकार्यत्वे चेतनत्वानुषंगात् । स्वस्यैव जीवो मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता जोवेन पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादिभावकर्मणि क्रियमाणे पुद्गलद्रव्यस्य चेतनानुषंगात् । न च जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वादिभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ जीववदचेतनायाः प्रकृतेरपि तत्फलभोगानुषंगात् । न च जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादि—भावानुषंगात् । ततो जीवः कर्ता स्वस्य कर्म कार्यमिति सिद्धं ।

अर्थ—जीवकै मिथ्यात्वभाव होय है ताकूं विचारे है—जो निश्चयकरि यह कौन करे है? तहां जो मिथ्यात्वनामा मोहकर्मकी प्रकृति पुद्गलद्रव्य है, सो यह प्रकृति आत्माकूं मिथ्यादृष्टि करे है। ऐसें मानिये तौ सांख्यमतीकूं कहे हैं—प्रकृति तो तेरे मत। अचेतन है, सो, अहो सांख्यमती, अचेतन प्रकृति जीवकै मिथ्यात्वभावका करनेवाला ठहरचा। सो यह बने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये, जो यह जीव है सो पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वकूं करे है। तौ ऐसें मानै पुद्गलद्रव्यकी मिथ्यादृष्टि ठहरै, जीव मिथ्यादृष्टि न ठहरै, सो यह भी बने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये जो जीव अर प्रकृति ए दोऊ पुद्गलद्रव्यकै मिथ्यात्वकूं करे हैं। तौ दोऊकरि किया ताका फल दोऊ ही भोगवै ऐसें ठहरै, सो यह भी बने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये, जो पुद्गलद्रव्यनामा मिथ्यात्वकूं प्रकृति भी न करे है अर जीव भी न करे है, तो पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यात्व है। सो ऐसैं मानना कहां मिथ्या झूठा नाहीं है। तातैं यह सिद्ध होय है—जो मिथ्यात्वनामा जीवका भावकर्म ताका कर्ता तौ अज्ञानी जीव है अर याके निमित्ततैं पुद्गल द्रव्यमें मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति निपजी है।

टीका—मिथ्यात्व आदि भाव कर्म है, ताका कर्त्ता जीव ही है। जातैं तिसकूं अचेतन जो प्रकृति, ताका कार्य मानिये तौ तिस भावकर्मकै भी अचेतनपणाका प्रसंग आवे है। वहुरि मिथ्यात्व आदि भावकर्मका कर्ता जीव आपके ही आप है। जो जीवकरि पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्व आदि भावकर्म किये मानिये, तौ भावकर्म चेतन है, सो पुद्गलद्रव्यकै चेतनपणाका प्रसंग आवे है। वहुरि जीव अर प्रकृति दोऊ ही मिथ्यात्व आदि भावकर्मके कर्ता नाहीं है, जातैं प्रकृति अचेतन है, ताकै भी जीवकी ज्यौं ताका फल भोगनेका प्रसंग आवे है। वहुरि ये दोनूं अकर्ता भी नाहीं, जातैं पुद्गलद्रव्यकै अपने स्वभावहीतैं मिथ्यात्व आदि भावका प्रसंग आवे है। तातैं मिथ्यात्व आदि भावकर्मका जीव कर्ता है अर अपना भावकर्म है सो अपना कार्य है यह सिद्ध भया।

भावार्थ—भावकर्मका कर्ता जीव ही सिद्ध किया, सो इहां ऐसा जानना—जो परमार्थतैं अन्य द्रव्य अन्यद्रव्यका भावका कर्ता नाहीं है। तातैं जे चेतनके भाव हैं, तिनिका चेतन ही कर्ता होय। सो यह जीवकै अज्ञानतैं मिथ्यात्व आदि भावरूप परिणाम हैं ते चेतन हैं, जड नाहीं हैं। शुद्धनयकरि तिनिकूं चिदाभास भी कहे हैं। तातैं चेतनकर्मका कर्ता चेतन ही होय, यह परमार्थ है। तहां अभेददृष्टिमैं तौ शुद्धचेतनमात्र जीव है अर कर्मके निमित्ततैं परिणमे तब तिनि परिणामनिकरि युक्त होय। तब परिणामपरिणामीका भेददृष्टिमैं अपने अज्ञानभाव परिणाम हैं, तिनिका कर्ता जीव ही है। अर अभेददृष्टिमैं कर्ताकर्मभाव ही नाहीं है, शुद्धचेतनामात्र जीववस्तु है। या प्रकार यथार्थ समझना। जो चेतनकर्मका कर्त्ता चेतन ही है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयोरज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गा कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न तत्पुद्गलः ॥११॥

अर्थ—कर्म है सो कार्य है, तातैं विना किया होय नाहीं। बहुरि सो कर्म जीवका अर प्रकृतिका दोऊका किया नाहीं। जातैं प्रकृति तो जड है, ताकै अपने अपने कार्यका फलका भोगनेका प्रसंग आवे है। बहुरि एक प्रकृतिकी ही कृति कहिये कार्य नाहीं है। जातैं प्रकृति तौ अचेतन है अर भावकर्म चेतन है। तातैं इस भावकर्मका कर्त्ता जीव ही है। यह जीवहीका कर्म है। जातैं चेतनके अनुग कहिये चेतनतैं अन्वयरूप हैं—चेतनके परिणाम हैं। अर पुद्गल है सो ज्ञाता नाहीं है। तातैं पुद्गलके नाहीं है।

भावार्थ—चेतनकर्म चेतनहीकै होय, पुद्गल जड है, ताकै चेतनकर्म कैसैं होय? आगै जे केई भावकर्मका भी कर्ता कर्महीकूं माने हैं, तिनिकूं समझावनेकूं स्याद्वादकरि वस्तुकी मर्यादा कहे हैं। ताकी सूचनिकाका काव्य है।

शार्दूलविक्रिडितच्छन्दः

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वाऽऽत्मनः कर्तृतां कर्त्ताऽऽत्मैव कथञ्चिदित्यचलिता कैश्चित् श्रुतिः कोपिता ।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—केई आत्माके घातक सर्वथा एकान्तवादी तिनिनैं कर्महीकूं कर्त्ता विचारि अर आत्माके कर्तापणा दूरि करि अर यह आत्मा कथंचित् कर्त्ता है ऐसैं कहनेवाली निर्बाध श्रुति कहिये जिनेश्वरकी वाणी है, ताकूं कोप उपजाया, ऐसे सर्वथा एकान्तवादी हैं । ते कैसे हैं ? उद्धत उत्कट तीव्र उदय भया जो मोह मिथ्यात्व ताकरि मुद्रित भई है बुद्धि जिनकी तिनिका बोध कहिये ज्ञान ताकी सम्यक्प्रकार शुद्धिके अर्थि वस्तुकी मर्यादा कहिये है । कैसी कहिये है ? स्याद्वादके प्रतिबन्ध कहिये प्रबन्ध ताकरि पाइये है विजय कहिये निर्बाधसिद्धि जानैं ।

भावार्थ—केई वादी सर्वथा एकान्तकरि कर्मका कर्त्ता कर्महीकूं कहे हैं । अर आत्माकूं अकर्त्ता ही कहे हैं । ते आत्माका स्वरूपके घातक हैं । अर जिनवाणी है सो स्याद्वादकरि वस्तुकूं निर्बाध साधे है, सो वाणी आत्माकूं कथंचित् कर्त्ता कहे है, सो तिनि सर्वथा एकान्ती-निपरि वाणीका कोप है । तिनिकी बुद्धि मिथ्यात्वकरि मूंदि रहे है । तिनिके मिथ्यात्वके दूरि करनेकूं आचार्य कहे हैं । स्याद्वादकरि जैसी वस्तुसिद्धि होय है, तैसैं कहिये है । गाथा—

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिं सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ॥२५॥
कम्मेहिं सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिय मिच्छत्तं णिज्जदि य असंजयं चेव ॥२६॥

कम्मेहिं भमाडिज्जदि उड्ढमहं चावि तिरियलोयम्मि ।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि ॥२७॥
जह्मा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदित्ति हरदि जं किंचि ।
तह्मा सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥२८॥
पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छी कम्मं च पुरिसमहिलसदि ।
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी ॥२९॥
तह्मा ण कोवि जीवो अवह्मचारी दु तुह्म मुवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेवहि कम्मं अहिलसदि जं भणियं ॥३०॥
जह्मा घादेदि परं परेण घादिज्जदेदि सापयडी ।
एदेणच्छेण दुकिर भण्णदि परघादणामेत्ति ॥३१॥
तह्मा ण कोवि जीवो उवघादगो अत्थि तुह्म उवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेवहि कम्मं घादेदि जं भणियं ॥३२॥
एवं संखुवदेसं जेदु परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारया सव्वे ॥३३॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाण अप्पणो कुणदि ।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एवं भणंतस्स ॥३४॥

अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि ।
णवि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियोव कादुं जे ॥३५॥
जीवस्स जीवरूवं विच्छरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो किं सो हीणो अहियोव कदं भणसि दव्वं ॥३६॥
जह जाणगोदु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मदं ।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि ॥३७॥

कर्मभिस्तु अज्ञानी क्रियते ज्ञानी तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिः स्वाप्यते जागर्यते तथैव कर्मभिः ॥२५॥
कर्मभिः सुखीक्रियते दुःखीक्रियते च कर्मभिः ।
कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते नीयतेऽसंयमं चैव ॥२६॥
कर्मभिर्भ्राम्यते उर्द्ध्वमधश्चापि तिर्यग्लोकं च ।
कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यावत्किंचित् ॥२७॥
यस्मात् कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरतीति किंचित् ।
तस्मात्तु सर्वजीवा अकारका भवंत्यापन्नाः ॥२८॥
पुरुषः स्त्र्यभिलाषी स्त्रीकर्म च पुरुषमभिलषति ।
एषाचार्यपरंपरागतेदृशी श्रुतिः ॥२९॥
तस्मान्न कोऽपि जीवोऽब्रह्मचारी युष्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्मैव हि कर्माभिलषतीति यद्भणितं ॥३०॥

यस्माद्धंति परं परेण हन्यते च सा प्रकृतिः ।
एतेनार्थेन भण्यते परघातं नामेति ॥३१॥
तस्मान्न कोऽपि जीव उपघातको युष्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्मैव हि कर्म हंतीति भणितं ॥३२॥
एवं सांख्योपदेशे ये तु प्ररूपयंतीदृश श्रमणाः ।
तेषां प्रकृतिः करोत्यात्मानश्चाकारकाः सर्वे ॥३३॥
अथवा मन्यसे ममात्मात्मानमात्मनः करोति ।
एष मिथ्यास्वभावस्तवैतन्मन्यमानस्य ॥३४॥
आत्मा नित्योऽसंख्येयप्रदेशो दर्शितस्तु समये ।
नापि स शक्यते ततो हीनोऽधिकश्च कर्तुं यत् ॥३५॥
जीवस्य जीवस्वरूपं विस्तरतो जानीहि लोकमात्रं हि ।
ततः स किं हीनोऽधिको वा कथं करोति द्रव्यं ॥३६॥
अथ ज्ञायकस्तु भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठतीति मतं ।
तस्मान्नाप्यात्मात्मानं स्वयमात्मनः करोति ॥३७॥

आत्मख्यातिः—कर्मैवात्मानमज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव ज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव स्वापयति निद्राख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव जागरयति निद्राख्यकर्मोदयक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव सुखयति सद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव दुःखयति असद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव मिथ्यादृष्टिं करोति मिथ्यात्वकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवासंयतं करोति चारित्रमोहाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकं भ्रमयति आनुपूर्व्याख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः अपरमपि यद्यावत्किंचिच्छुभाशुभभेदं तत्तावत्सकलमपि कर्मैव करोति प्रशस्ताप्रशस्तरागाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । यत एवं समस्तमपि स्वतंत्रं कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरति च ततः सर्व एव जीवाः

नित्यमेवैकांतेनाकर्तारं एवेति निश्चिनुमः। किंच—श्रुतिरप्येनमर्थमाह पुंवेदाख्यं कर्म स्त्रियमभिलषति स्त्रीवेदाख्यं कर्म पुमांसमभिलषति इति वाक्येन कर्मण एव कर्माभिलाषकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्याब्रह्मकर्तृत्वसमर्थनेन प्रतिषेधात्। तथा यत्परेण हंति, येन च परेण हन्यते तत्परघातकर्मेति वाक्येन कर्मण एव कर्मघातकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्य घातकर्तृत्वप्रतिषेधाच्च सर्वथैवाकर्तृत्वज्ञापनात्। एवमीदृशं सांख्यसमयं स्वप्रज्ञापराधेन सूत्रार्थमबुध्यमानाः केचिच्छ्रमणाभासाः प्ररूपयंति तेषां प्रकृतेरेकांतेन कर्तृत्वाभ्युपगमेन सर्वेषामेव जीवानामेकांतेनाकर्तृत्वापत्तेः–जीवः कर्तेति कोपो दुःशक्यः परिहर्तुं। यस्तु कर्म, आत्मनो ज्ञानादिसर्वभावान् पर्यायरूपान् करोति, आत्मा त्वात्मानमेवैकं करोति ततो जीवः कर्तेति श्रुतिकोपो न भवतीत्यभिप्रायः स मिथ्यैव। जीवो हि द्रव्यरूपेण तावन्नित्योऽसंख्येयप्रदेशो लोकपरिमाणश्च। तत्र न तावन्नित्यस्य कार्यत्वमुपपन्नं कृतकत्वनित्यत्वयोरेकत्वविरोधात्। न चावस्थिताऽसंख्येयप्रदेशस्यैकस्य पुद्गलस्कंधस्येव प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणद्वारेणापि कार्यत्वं प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणे सति तस्यैकत्वव्याघातात्। न चापि सकललोकवस्तुविस्तारपरिमितनियतनिजाभोगसंग्रहस्य प्रदेशसंकोचनविकाशद्वारेण तस्य कार्यत्वं, प्रदेशसंकोचविकाशयोरपि शुष्कार्द्रचर्मवत्प्रतिनियतनिजविस्ताराद्धीनाधिकस्य तस्य कर्तुमशक्यत्वात्। यस्तु वस्तुस्वभावस्य सर्वथापोढुमशक्यत्वात् ज्ञायको भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठति, तथा तिष्ठंश्च ज्ञायककर्तृत्वयोरत्यंतविरुद्धत्वान्मिथ्यात्वादिभावानां न कर्ता भवति। भवंति च मिथ्यात्वादिभावाः ततस्तेषां कर्मैव कर्तृ प्ररूप्यत इति वासनोन्मेषः स तु नितरामात्मानं करोतीत्यभ्युपगममुपहंत्येव ततो ज्ञायकस्य भावस्य सामान्यापेक्षया ज्ञानस्वभावावस्थितत्वेऽपि कर्मजानां मिथ्यात्वादिभावानां ज्ञानसमयेऽनादिज्ञेयज्ञानशून्यत्वात् परमात्मेति जानतो विशेषापेक्षया त्वज्ञानरूपस्य ज्ञानपरिणामस्य करणात्कर्तृत्वमनुमंतव्यं तावद्यावत्तदादिज्ञेयज्ञानभेदविज्ञानपूर्णत्वादात्मानमेवात्मेति जानतो विशेषापेक्षयापि ज्ञानरूपेणैव ज्ञानपरिणामेन परिणममानस्य केवलं ज्ञातृत्वात्साक्षादकर्तृत्वं स्यात्।

अर्थ–जीव है सो कर्मनिकरि अज्ञानी कीजिये है। वहुरि तैसैं ही कर्मनिकरि ज्ञानी कीजिये है। कर्मनिकरि सुवाईये है। तैसैं ही कर्मनिकरि जगाइये है। कर्मनिकरि सुखी कीजिये है। वहुरि तैसैं ही कर्मनिकरि दुःखी कीजिये है। कर्मनिकरि मिथ्यात्व प्राप्त कीजिये है। वहुरि कर्मनिकरि असंयम प्राप्त कीजिये है। कर्मनिकरि ऊर्ध्वलोकमें तथा अधोलोकमें तथा तिर्यग्लोकमें भ्रमाइये है। जो किछू शुभ अशुभ है, सो कर्मनिहीकरि कीजिये है। जातैं कर्म करे है, कर्म दे है, कर्म हरि ले है,

जो किछू करे है, सो कर्म ही करे है। तातैं सर्व जीव हैं ते अकारक प्राप्त भये—जीव कर्त्ता नाहीं। बहुरि यह आचार्यनिकी परंपराकरि चली आई श्रुति है, सो भी कहे हैं—जो पुरुष वेदकर्म है, सो तौ स्त्रीका अभिलाषी है बहुरि स्त्रीवेदनामा कर्म है, सो पुरुषकूं अभिलाषे है--चाहे है। तातैं कोई भी जीव अब्रह्मचारी नाहीं। हमारा उपदेशविषैं ऐसा है, जातैं कर्म है सो ही कर्मकूं अभिलाषे है—चाहे है ऐसैं कह्या है। जातैं परकूं हणे है परकरि हणिये है सो भी प्रकृति ही है। तिस ही अर्थकरि प्रगटकरि कहिये है—जो यह परघातनामा प्रकृति है। तातैं हमारा उपदेशविषैं कोई भी जीव उपघात करनेवाला नाहीं है। जातैं कर्म है सो ही कर्मकूं घाते है ऐसैं कह्या है। ऐसे जे केई श्रमण जति ऐसा सांख्यमतका उपदेशकूं प्ररूपे हैं, तिनिकै प्रकृति ही करे है, आत्मा हैं ते सर्व ही अकारक है ऐसा आया अथवा आचार्य कहे हैं—जो आत्माका कर्तापणाका पक्ष साधनेकूं तूं ऐसैं मानेगा जो मेरा आत्मा है सो आपके आपकूं करे है ऐसैं कर्तापणाका पक्ष भी मानू हौ। तौ तेरा ऐसैं जाननेका यह मिथ्या स्वभाव है। जातैं आत्मा नित्य असंख्यातप्रदेशी सिद्धांतविषैं कह्या है, तिसतैं हीन अधिक करनेकूं समर्थ नाहीं हूजिये है। जीवका जीवरूप विस्तार अपेक्षा निश्चयकरि लोकमात्र जानू। सो ऐसा जीवद्रव्य तिस परिणामतैं हीन तथा अधिक कैसैं करे है? बहुरि ऐसैं मानिये जो ज्ञायकभाव है सो ज्ञानस्वभावकरि तिष्ठे है, तौ ताही हेतूतैं ऐसा आया—जो आत्मा आपके आपकूं स्वयमेव नाहीं करे है। तातैं कर्तापणा साधनेकूं विवक्षा पलटिकरि पक्ष कह्या सो बन्या नाहीं, तातैं कर्मका कर्ता कर्महीकूं माने तौ स्याद्वादतैं विरोध ही आवेगा, तातैं कथंचित् अज्ञान अवस्थामैं अपने अज्ञानभावरूप कर्मका कर्ता मानै स्याद्वादतैं विरोध नाहीं है।

टीका—तहां पूर्वपक्ष ऐसा है—जो कर्म ही आत्माकूं अज्ञानी करे है, जातैं ज्ञानावरण कर्मका उदय विना तिस अज्ञानकी अप्राप्ति है, बहुरि कर्म ही आत्माकूं ज्ञानी करे है, जातैं ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम विना ज्ञानकी अप्राप्ति है। बहुरि कर्म ही आत्माकूं सुवाणै है, जातैं निद्रानामा

कर्मका उदय विना निद्राकी अप्राप्ति है, वहुरि कर्म ही आत्माकूं जगावे हैं, जातैं निद्रानामा कर्मका क्षयोपशम विना जागनेकी अप्राप्ति है । वहुरि कर्म ही आत्माकूं सुखी करे है जातैं सातावेदनीयनामा कर्मका उदय विना सुखकी अप्राप्ति है । वहुरि कर्म ही आत्माकूं दुःखी करे है, जातैं असातावेदनीयनामा कर्मका उदय विना दुःखकी अप्राप्ति है । वहुरि कर्म ही आत्माकूं मिथ्यादृष्टि करे है जातैं मिथ्यात्वकर्मका उदय विना मिथ्यात्वकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं असंयमी करे है, जातैं चारित्रमोहनामा कर्मका उदय विना असंयमकी अप्राप्ति है । वहुरि कर्म ही आत्माकूं उर्ध्वलोकमें अधोलोकमें तिर्यचलोकमें भ्रमावे है, जातैं आनुपूर्वीनामा कर्मका उदय विना भ्रमणकी अप्राप्ति है । वहुरि और भी ज्यों क्यों जेता शुभ अशुभ है, सो तेता सर्व ही कर्म ही करे है, जातैं प्रशस्त अप्रशस्त रागनामा कर्मका उदय विना तिनि शुभाशुभकी अप्राप्ति है। जातैं या प्रकार समस्तहीकूं कर्म स्वतंत्र होय करे है, कर्म ही दे है, कर्म ही हरि ले है, तातें हम ऐसा निश्चय करे हैं, जो सर्व ही जीव हैं ते नित्य ही सदा ही एकांतकरि अकर्ता ही हैं वहुरि विशेष कहिये—जो श्रुति कहिये वाणी शास्त्र भी इस ही अर्थकूं कहे है, जो पुरुषवेदनामा कर्म है सो तौ स्त्रीकूं अभिलापे है--चाहे है, वहुरि स्त्रीवेदनामा कर्म है सो पुरुषकूं अभिलापे है—चाहे है, ऐसैं वाक्यकरि कर्मके ही कर्मका अभिलाषका कर्तापणाका समर्थनकरि जीवकै अब्रह्मचारीपणाका कर्तापणाका प्रतिषेधतैं भी कर्महीकै कर्तापणा आया, जीव अकर्ता ही सिद्ध भया । वहुरि तैसैं ही जो परकूं हणै है, वहुरि जो परकरि हणिये है, सो परघातनामा कर्म है, ऐसैं वचनकरि कर्महीकै कर्मका घातका कर्तापणाका समर्थनकरि जीवकै घातका कर्तापणाका प्रतिषेधतैं सर्वथा जीवकै अकर्तापणा जनाया है । या प्रकर ऐसा सांख्यका मत केई "श्रमणाभास कहिये यति नाहीं अर यतीसे कहावे ते" अपनी बुद्धिके अपराधकरि सूत्रके अर्थकूं ऐसैं विपरीत जानते संते सूत्रका अर्थ प्ररूपण करे हैं । ऐसा पूर्वपक्ष है ।

अब आचार्य कहे हैं-जे ऐसे पक्ष करे हैं, तिनिकै एकांतकरि प्रकृतिका कर्तापणा माननेकरि

सर्व ही जीवनिके एकांतकरि अकर्तापणाकी प्राप्ति आवनेतैं जीव कर्ता है ऐसी जो श्रुति कहिये भगवन्तकी वाणी ताका कोप आवे है। सो दूरि करनेकूं योग्य नाहीं है। बहुरि वाणीका कोप दूरि करनेकूं जो ऐसैं कहै—जो कर्म है सो तौ आत्माके अज्ञानादि सर्वपर्यायरूप भाव हैं तिनिकूं करे है। बहुरि आत्मा है सो एक अपने आत्माहीकूं द्रव्यरूप करे है, तातैं जीव कर्ता है। ऐसा श्रुति कहिये वाणीका वचन मानिये है, तातैं वाणीका कोप नाहीं होय है, ऐसा अभिप्राय करै तौ सो यह अभिप्राय मिथ्या है। जातैं जीव है सो प्रथम तौ द्रव्यरूपकरि नित्य है, असंख्यात प्रदेशी है, लोकपरिमाण है, तहां नित्यका कार्यपणा बने नाहीं। जातैं कृत कहिये कृत्रिमवस्तूका अर नित्यपणाका परस्पर एकपणाका विरोध है; नित्य कृत्रिम होय नाहीं। बहुरि एक आत्मा अवस्थित असंख्यातप्रदेशी है ताके जैसैं पुद्गलके स्कंधमें परमाणु आय बैठे हैं अर निकसि जाय हैं, ताकै कार्यपणा बने है। तैसैं याकै कार्यपणा नाहीं बने है जातैं प्रदेशनिका आवना अर निकसि जाना होय तौ अवस्थित असंख्यातप्रदेशरूप एकपणाका व्याघात होय, बहुरि सकल लोकरूपी घरमात्र विस्तार परिमाण निश्चित अपना समस्तपणाका संग्रहरूप आत्माके प्रदेशनिका संकोचना अर फैलना तिस द्वारकरि भी ताकै कार्यपणा बने नाहीं। जातैं प्रदेशनिका संकोचना अर फैलना इनि दोऊनिकैभी सूके आले चामडेकी ज्यौं नियमरूप अपना जो प्रदेशनिका विस्तार है तातैं ताका हीनाधिक करनेका असमर्थपणा है। बहुरि जो ऐसे अभिप्रायमें वासना होय जो वस्तुका स्वभावका सर्वथा मेटनेका असमर्थपणा है, तातैं ज्ञायकभाव है सो तौ ज्ञानस्वभावहीकरि सदाकाल ही तिष्ठे है, सो तैसैं तिष्ठता आत्मा मिथ्यात्वादि भावनिका कर्ता न होय है। जातैं ज्ञायकपणाका अर कर्तापणाका अत्यंत विरुद्धपणा है, अर मिथ्यात्व आदिभाव हैं ते होय ही हैं, तातैं तिनिका कर्ता कर्म ही है ऐसी प्ररूपणा कीजिये है। तहां आचार्य कहे हैं—ऐसी वासनाका उघडना है सो ही पहलै कह्या था 'जो आत्मा आत्माकूं करे है तातैं कर्ता है' तिस माननेकूं अतिशयकरि हणे है घाते है। जातैं सदाकाल ज्ञायक मान्या तब आत्मा अकर्ता ही भया, तातैं

हम कहे हैं ऐसा अनुमान करना—जो ज्ञायकभावकै सामान्य अपेक्षाकरि ज्ञानस्वभावरूप अवस्थितपणा होतैं भी कर्मतैं उपजे जे मिथ्यात्व आदि भाव, तिनिका ज्ञानका समयविषैं अनादिहीतैं ज्ञेयका अर ज्ञानका भेदविज्ञानका शून्यपणातैं परकूं आत्मा जानता संताके विशेष अपेक्षाकरि अज्ञानस्वरूप जो ज्ञानका परिणाम, ताकै करनेतैं कर्तापणा है, यह अनुमान करने योग्य है, तौ कहांतांई करना ? जेतैं जिस कालतैं ज्ञेयज्ञानका भेदविज्ञानका पूर्णपणातैं आत्माहीकूं आत्मा जानताकै विशेष अपेक्षाकरि भी ज्ञानरूप ही ज्ञानपरिणामकरि परिणमता संताके केवल ज्ञातापणातैं साक्षात् अकर्तापणा होय, तेतैं कर्तापणाका अनुमान करना।

भावार्थ—केई जैनके मुनि भी स्याद्वादवाणीमैं नीका न समझिकरि सर्वथा एकांतका अभिप्राय करै तथा विवक्षा पलटिकरि कहे—जो आत्मा तौ भावकर्मका अकर्त्ता ही है, कर्मप्रकृतिका उदय है सो ही भावकर्मकूं करे है। अज्ञान, ज्ञान, सोवना, जागना, सुख, दुःख, मिथ्यात्व, असँयम च्यारी गतिमैं भ्रमण जे किछू शुभ अशुभ जेतेक भाव हैं ते सर्व कर्म करे है। जीव तौ अकर्ता है। ऐसा ही शास्त्रका अर्थ करै–जो वेदका उदयतैं स्त्रीपुरुषका विकार होय है, वहुरि अपघात परघात प्रकृति उदयतैं परस्पर घात प्रवर्ते है। ऐसा एकांतकरि जैसैं सांख्यमती सर्व प्रकृतिका कार्य माने हैं पुरुषकूं अकर्ता माने हैं, तैसैं बुद्धिके दोषकरि जैनी मुनीनिका भी मानना आया। तब जैनवाणी स्याद्वाद है, तातैं सर्वथा एकांत माननेवालेपरि वाणीका कोप अवश्य होयगा। वहुरि वाणीके कोपके भयतैं विवक्षा पलटिकरि कहै—जो आत्मा अपना आत्माका कर्ता है, तातैं भावकर्मका कर्ता तौ कर्म ही है अर अपना कर्ता आत्मा है, ऐसैं कथंचित् कर्ता आत्माकूं कहैंते वाणीका कोप न होयगा, तौ वह कहना तौ मिथ्या है। आत्मा द्रव्यकरि नित्य है, लोकपरिमाण असंख्यातप्रदेशी है। सो यामैं तौ किछू नवीन करनेकूं है नाहीं। नाहीं काहूकूं करै अर भावकर्मरूप पर्याय हैं तिनिका कर्ता कर्म बतावै तौ आत्मा तौ अकर्ता ही रह्या, तब वाणीका कोप कैसैं मिट्या ? तातैं आत्माकै कर्तापणा अर अकर्तापणाकी विवक्षा यथार्थ

मानना ही स्याद्वाद मानना सांचा होय है। सो ऐसा है—जो आत्माकै ज्ञायक स्वभाव तौ सामान्य अपेक्षाकरि है ही, परंतु ज्ञानविशेषकी अपेक्षा आपापरका भेदविज्ञान विना परकूं आत्मा जाने है, सो इस अज्ञानरूप अपना भावका कर्ता है। अर जब तिस ज्ञानविशेषकी अपेक्षा करि आपापरका भेदविज्ञान होय, तिस ही कालतैं लगाय भेदविज्ञानकी पूर्णता भये आपकूं आप जानै अर ज्ञानपरिणामकरि परिणमैं तब केवल ज्ञाता भया साक्षात् अकर्ता होय है ऐसैं मानना सत्यार्थ स्याद्वादका प्ररूपण है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

मा कर्त्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः कर्त्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परं ॥१३॥

अर्थ—आर्हत कहिये अर्हतके मतके जैनी जन हैं ते आत्माकूं सर्वथा अकर्ता सांख्यमतीनिकी ज्यौं मति मानू। तिस आत्माकूं भेदविज्ञान भये पहलैं कर्ता मानू अर भेदज्ञान भये ताके उपरि उद्धत ज्ञानमंदिरविषैं निश्चत नियमरूप कर्त्तापणाकरि रहित निश्चल एक ज्ञाता ही आपें आप प्रत्यक्ष देखो।

भावार्थ—सांख्यमती पुरुषकूं सर्वथा एकांतकरि अकर्ता शुद्ध उदासीन चैतन्यमात्र माने हैं। सो ऐसैं माननेतैं पुरुषकै संसारका अभाव आवे है। अर प्रकृतिकै संसार माने तौ प्रकृति तौ जड है, ताकै सुखदुःख आदिका संवेदन नाहीं। ताकै काहेका संसार? इत्यादि दोष आवे हैं। यातैं सर्वथा एकांत वस्तूका स्वरूप नाहीं। तातैं ते सांख्यमती मिथ्यादृष्टि हैं। तैसैं जैनी भी माने हैं तौ मिथ्यादृष्टि होय हैं। तातैं आचार्य उपदेश करे हैं—जो, सांख्यमतीनिकी ज्यौं जैनी आत्माकूं सर्वथा अकर्ता मति मान। जहांतांई आपापरका भेदविज्ञान न होय, तहांतांई तौ रागादिक अपने

विवक्षाके वशतैं सिद्ध होय हैं। यह स्याद्वादमत जैनीनिका है। अर वस्तुस्वभाव ऐसा ही है। कल्पना नाहीं है। ऐसैं मानै पुरुषकै संसार मोक्ष आदिकी सिद्धि है। सर्वथा एकांत माननेविषैं सर्व निश्चय व्यवहारका लोप होय है ऐसैं जानना। आगे बौद्धमती क्षणिकवादी हैं, ते ऐसैं माने हैं, जौ, कर्ता तौ अन्य है अर भोक्ता अन्य है। तिनिके सर्वथा एकांत माननेमें दूषण दिखावे हैं। अर स्याद्वादकरि जैसैं वस्तुस्वरूप कर्ताभोक्तापणा है तैसैं दिखावे हैं। तहां प्रथम ही ताकी सूचनिकाका काव्य है।

मालिनीछन्दः

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदं।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः स्वयमयमभिषिंचंश्चिचमत्कार एव ॥१४॥

अर्थ—एक कहिये बौद्धमती क्षणिकवादी है सो आत्मतत्त्वकूं क्षणिक कल्पिकरि अर अपना मनविषैं कर्ता अर भोक्ताविषैं भेद माने है। करै और है, भोगवै और है ऐसैं माने है। ताका विमोह कहिये अज्ञानकूं यह चैतन्यचमत्कार है सो ही आप दूरी करे है। कहा करता संता? नित्यरूप अमृतका ओघनिकरि सिंचता संता।

भावार्थ—क्षणिकवादी कर्ताभोक्ताविषैं भेद माने हैं, पहिलै क्षण था सो दूजै क्षण नाहीं ऐसैं माने हैं। सो आचार्य कहे हैं। जो हम ताकूं कहा समझावें? यह चैतन्य ही ताका अज्ञान दूरी करेगा। जो अनुभवगोचर नित्यरूप है। पहिले क्षण आप है, सो ही दूजे क्षणमें कहे हैं। मैं पहलैं था, सो ही हौं, ऐसा स्मरणपूर्वक प्रत्यभिज्ञान, ताकी नित्यता दिखावे हैं। इहां बौद्धमती कहे, जो पहिलै क्षण था, सो ही मैं दूजे क्षण हौं, यह मानना तौ अनादि अविद्यातैं भ्रम है, यह मिटै तब तत्त्व सिद्ध होय, समस्त क्लेश मिटै। ताकूं कहिये, जो, हे बौद्ध, तैं प्रत्यभिज्ञानकूं भ्रम बताया, तौ जो अनुभवगोचर है सो भ्रम ठहरया। तौ तेरा मानना क्षणिक है। सो भी अनुभवगोचर है। सो यह भी भ्रम ही ठहऱ्या। जातैं अनुभव अपेक्षा दोऊ ही समान हैं

तातैं सर्वथा एकांत मानना तौ दोऊ ही भ्रम है—वस्तुस्वरूप नाहीं। हम कथंचित नित्यानित्यात्मक वस्तुस्वरूप कहे हैं, सो सत्यार्थ है। आगे ऐसे ही क्षणिक माननेवालेकूं युक्तिकरि निषेधे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्। अन्यः करोति भुंक्तेऽन्यः इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥१५॥

अर्थ—वृत्त्यंश कहिये क्षणक्षणप्रति अवस्थाभेद हैं, तिनिकूं वृत्त्यंश कहिये। तिनिके अत्यंत कहिये सर्वथा भेद न्यारे न्यारे वस्तु माननेतैं वृत्तिमत् कहिये जामैं अवस्था पाइये ऐसा आश्रयरूप वृत्तिमान् वस्तु, ताका नाशकी कल्पनातैं ऐसैं माने हैं, जो करै और है अर भोगवै और है। सो आचार्य कहे हैं, जो ऐसा एकांत मति प्रकाशो। जहां अवस्थावान् पदार्थका नाश भया, तहां अवस्था कोनके आश्रय होय ? ऐसा दोऊका नाश आवे है, तब शून्यका प्रसंग होय है। अब अनेकांतकूं प्रगट करि इस क्षणिकवादकूं स्पष्ट करि निषेधे हैं। गाथा—

केहि चिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥३७॥
केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि सोवा अण्णो व णेयंतो ॥३८॥
जो चेव कुणदि सो चेव वेदको जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३९॥
अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥४०॥

कैश्चित्पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥३७॥
कैश्चित्पर्यायः—विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्माद्वेदयति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥३८॥
य एव करोति स एव वेदको यस्यैष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥३९॥
अन्यः करोत्यन्यः परिभुंक्ते यस्य एष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥४०॥

आत्मख्यातिः—यतो हि प्रतिसमय संभवदगुरुलघुगुणपरिणामद्वारेण क्षणिकत्वादचलितचैतन्यान्वयगुणद्वारेण नित्यत्वाच्च जीवः कैश्चित्पर्यायैर्विनश्यति, कैश्चित्तु न विनश्यतीति द्विस्वभावो जीवस्वभावः । ततो य एव करोति स एवान्यो वा वेदयते । य एव वेदयते स एवान्यो वा करोतीति नास्त्येकांतः । एवमनेकांतेऽपि यस्तत्क्षण वर्तमानस्यैव परमार्थसत्त्वेन वस्तुत्वमिति वस्त्वंशेऽपि वस्तुत्वमध्यास्य शुद्धनयलोभादृजुसूत्रैकांते स्थित्वा य एव करोति स एव न वेदयते । अन्यः करोति अन्यो वेदयते इति पश्यति स मिथ्यादृष्टिरेव दृष्टव्यः । क्षणिकत्वेऽपि वृत्त्यंशानां वृत्तिमतश्चैतन्यचमत्कारस्य टंकोत्कीर्णस्यैवांतःप्रतिभासमानत्वात् ।

अर्थ—जातैं जीव नामा पदार्थ है सो केई पर्यायनिकरि तौ विनसे है । बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है । तातैं सो ही जीव कर्ता होय है अथवा सो ही कर्ता न होय है, अन्य कर्ता होय है । ऐसा स्याद्वाद है—एकांत नाहीं है । बहुरि जातैं जीव है सो केई पर्यायनिकरि विनसे है बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है । तातैं सो ही जीव भोगवे है—भोक्ता होय है अथवा सो ही भोक्ता न होय है, अन्य भोगवे है । ऐसा स्याद्वाद है—एकांत नाहीं है । बहुरि जाका ऐसा सिद्धांत है—मत है, जो जीव करे है, सो ही नाहीं भोगवे है, अन्य ही भोगवे है, सो जीव मिथ्यादृष्टि जानना, अरहंतका मतका नाहीं है । बहुरि जाका

ऐसा सिद्धांत है, जो अन्य करे है अर अन्य भोगवे है, सो जीव मिथ्यादृष्टि जानना, अरहंतका मतका नाहीं है।

टीका—जातैं जीव है सो समयसमयप्रति संभवता अगुरुलघुगुणका परिणाम तिसका द्वारकरि तौ क्षणिक है। बहुरि अचलित चेतन्यका अन्वयरूप गुणकरि द्वारकरि नित्य है तिसपणातैं केई पर्यायनिकरि तौ विनसे है बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है। ऐसैं दोय स्वभावरूप जीवका स्वभाव है। तातैं जो ही करे है सो ही भोगवे है अथवा सो ही नाहीं भोगवे है, अन्य भोगवे है अथवा जो ही भोगवे है, सो ही करे है, अथवा अन्य करे है एकांत नाहीं है। ऐसैं अनेकांत होते भी जो ऐसैं माने है—जो जिस क्षणके विषैं वर्तमान है, ताहीके परमार्थरूप सत्त्वकरि वस्तूपणा है। ऐसैं वस्तूका अंशविषैं वस्तूपणाका निश्चय करि अर शुद्धनयके लोभतैं ऋजुसूत्र नयके एकांतविषैं तिष्ठिकार अर जो ही करे है सो ही न भोगवे है अन्य करे है अर अन्य भोगवे है ऐसैं देखे है—श्रद्धान करे है सो जीव मिथ्यादृष्टि ही जानना। जातैं वृत्त्यंश जे पर्यायरूप अवस्था, तिनिके क्षणिकपणा होते भी वृत्तिमान् जो चैतन्यचमत्कार, टंकोत्कीर्ण नित्यस्वरूपका अंतरंगविषैं प्रतिभासमानपणा है।

भावार्थ—वस्तूका स्वभाव रूप जिनवाणीमें द्रव्यपर्यायस्वरूप कह्या है, सो पर्याय अपेक्षा तौ वस्तु क्षणिक है, बहुरि द्रव्य अपेक्षा नित्य है ऐसा अनेकांत स्याद्वादतैं सिद्ध होय है। सो जीवनामा वस्तु भी ऐसा ही द्रव्यपर्यायस्वरूप है, सो पर्याय अपेक्षाकरि देखिये, तब तौ कार्यकूं करै तौ और पर्याय हैं, अर भोगवे और पर्याय है। जैसैं मनुष्यपर्यायमें शुभाशुभकर्म किये, ताका फल देवादि पर्याय भोग्या। बहुरि द्रव्यदृष्टिकरि देखिये, तब जो करे है, सो ही भोगवे ऐसा सिद्ध होय है। जैसैं मनुष्यपर्यायमें जीवद्रव्य था, तिसने शुभाशुभ कर्म किये थे अर सो ही जीव देवादिपर्यायमें गया, तहां तिस ही जीवने अपना कियाका फल भोगया, सो ऐसैं वस्तूका स्वरूप अनेकांतरूप सिद्ध होते भी जे शुद्धनयमें तौ संशय नाहीं अर शुद्धनयके लोभतैं वस्तूका पर्याय वर्त-

मानकालमें एक अंश था, ताहीकूं वस्तु मानि ऋजुसूत्रनयका विषयका एकांत पकडि अर ऐसें माने है—जो करे है सो भोगवे नाहीं अन्य भोगवे है अर भोगवे है सो करे नाहीं अन्य करे है सो मिथ्यादृष्टि है, अरहंतका मतका नाहीं। जातैं पर्यायके क्षणिकपणा होते भी द्रव्यरूप चैतन्य चमत्कार तौ अनुभवगोचर नित्य है। जैसें प्रत्यभिज्ञानकरि ऐसें जाने जो बालक अवस्थामें मैं था सो ही.अब तरुण अवस्थामें तथा वृद्ध अवस्थामें हौं। ऐसें जो अनुभवगोचर स्वसंवेदनमें आवे अर जिनवाणी ऐसें ही गावै, ताकूं न माने, सो ही मिथ्यादृष्टि कहावै ऐसें जानना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यांधकैः कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रेरितैरात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥१६॥

अर्थ—आत्माकूं समस्तपणैं शुद्ध इच्छक जे पृथुक कहिये बौद्धमती, तिनिने तिस आत्माविषैं कालके उपाधिके बलतैं अधिक अशुद्धता मानिकरि अतिव्याप्ति पायकरि अर शुद्ध ऋजुसूत्रनयके प्रेरे हुये चैतन्यकूं क्षणिक कल्पिकरि आंधेनिनैं आत्माकूं छोड्या। जातैं आत्मा तौ द्रव्यपर्याय-स्वरूप था, सो सर्वथा क्षणिकपर्यायस्वरूप मानि छोडि दिया, तिनिकै आत्माकी प्राप्ति न भई। इहां हारका दृष्टांत है—जैसें मोतीनिका हार नामा वस्तु है, तामैं सूत्रविषैं मोती पोये हैं, ते भिन्नभिन्न दीखे हैं। सो जे हार नामा वस्तूकूं सूत्रसहित मोती पोये नाहीं दीखे हैं अर मोती-निहीकूं न्यारेन्यारे देखि ग्रहण करे हैं, तिनिकै हारकी प्राप्ति नाहीं होय है। तैसें ही जे आत्मा-का एक नित्य चैतन्यभावकूं नाहीं ग्रहण करे हैं अर समयसमय वर्तना परिणामरूप उपयोगकी प्रवृत्तीकूं देखि तिसकूं सदा नित्य मानि कालका उपाधीतैं अशुद्धपना मानि ऐसें जाने हैं—जो नित्य माने कालका उपाधि लागै तब आत्माकै अशुद्धपणा आवै तब अतिव्याप्ति दूषण लागै,

सो इस दूषणके भयतैं ऋजुसूत्रनयका विषय जो शुद्ध वर्तमानसमयमात्र क्षणिकपणा, तिस मात्र मानि आत्माकूं छोडि दीया ।

भावार्थ—बौद्धमती आत्माकूं समस्तपणैं शुद्ध माननेका इच्छक होय अर विचारी—जो आत्माकूं नित्य मानिये तौ नित्यमें तौ कालकी अपेक्षा आवै तातें उपाधि लागै, तब बडी अशुद्धता आवै, तब अतिव्याप्ति दूषण लागै. इस भयतैं शुद्ध ऋजुसूत्रनयका विषय वर्तमान समयमात्र था, तिसमात्र क्षणिक आत्माकूं मान्या तब आत्मा नित्यानित्यस्वरूप द्रव्यपर्यायस्वरूप था, तिसका ग्रहण ताकै न भया, केवल पर्यायमात्रविषैं आत्माकी कल्पना भई, सो सत्यार्थ आत्मा नाहीं ऐसैं जानना । अब फेरि इस ही अर्थके समर्थनरूप वस्तूका अनुभवन करनेकूं काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिंत्यतां ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचिच्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥१७॥

अर्थ—कर्ताके अर भोक्ताके युक्तिके वशतैं भेद होऊ अथवा अभेद होऊ, अथवा कर्ता भोक्ता दोऊ ही मति होऊ, वस्तूहीका चिंतवन करौ । जातैं निपुण जे चतुर पुरुष, तिनिकरि सूत्रविषैं पोई हुई मणीनिकी माला जैसी भेदी न जाय, तैशी आत्माविषैं पोई हुई चैतन्यरूप चिंतामणीकी माला है, सो कहूं ही कोई करि भेदनेकूं समर्थ न हूजिये । ऐसी यह आत्मारूपी माला समस्तपणैं एक हमारे प्रकाशरूप प्रगट हो ।

भावार्थ—वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक अनंतधर्मा है । ताविषैं विवक्षाके वशतैं कर्ता भोक्तापणाका भेद भी है । अर भेद नाहीं भी है । अर कर्ता भोक्ता भी काहेकूं कहना ? केवल शुद्ध वस्तुमात्रका असाधारण धर्मके द्वारै अनुभवन करना । ऐसैं आत्मा नामा वस्तु सो असाधारण चैतन्यमात्रभावके द्वारै अनुभवन करते चैतन्यके परिणमनरूप पर्यायके भेदनिकी अपेक्षा कर्ता-

भोक्ताका भेद है। चिन्मात्र द्रव्य अपेक्षा भेद नाहीं है। ऐसें भेद अभेद होऊ तथा चिन्मात्र अनुभवनमें काहेकूं भेद अभेद कहना? कर्ताभोक्ता ही न कहना। वस्तुमात्र अनुभवन करना। जैसा मणिनिकी मालामें सूत्र मोतीनिका विवक्षातें भेद है। मालामात्रग्रहण करनेमें भेदाभेद-विकल्प नाहीं, तैसा आत्माविषैं चेतन्यके द्रव्यपर्याय अपेक्षा भेदाभेद है, तौऊ आत्मवस्तुमात्र अनुभव करते विकल्प नाहीं। सो आचार्य कहे हैं—ऐसा निर्विकल्प आत्माका अनुभव हमारे प्रकाशरूप है, ऐसा जैनीनिका वचन है। आगे इस कथनकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करे हैं, ताकी सूचनिकाकूं नयविभागका काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८॥

अर्थ—व्यवहारकी दृष्टिमें तो केवल कर्ता अर कर्म भिन्न दीखे है, अर जब निश्चयकरि देखिये वस्तूकूं विचारिये तब कर्ता अर कर्म सदाकाल एक ही देखिये है।

भावार्थ—व्यवहारनय तो पर्यायाश्रित है। सो यामें तो भेद ही दीखे। बहुरि शुद्धनिश्चयनय है सो द्रव्याश्रित है। तामें अभेद ही दीखे, तातें व्यवहारमें तो कर्ताकर्मका भेद है। निश्चयमें अभेद है। आगे इस कथनकूं दृष्टांतकरि गाथामें कहे हैं।

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि गाय सोदु तम्मओ होदि।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि गाय तम्मओ होदि ॥४१॥
जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि गाय सोदु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणेहिं कुव्वदि गाय तम्मओ होदि ॥४२॥

जह सिप्पिउ करणाणि गिह्णदि णय सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणाणि य गिह्णदि णय तम्मओ होदि ॥४३॥
जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि णय सोदु तम्मओ होदि ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि णय सोवि तम्मओ होदि ॥४४॥
एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दंसणं समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि ॥४५॥
जह सिप्पिओ दु चिट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ॥४६॥
जह चिट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि ।
तत्तो सेय अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥४७॥

यथा शिल्पिकस्तु कर्म करोति न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति न च तन्मयो भवति ॥४१॥
यथा शिल्पिकः करणैः करोति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणैः करोति न च तन्मयो भवति ॥४२॥
यथा शिल्पिकस्तु करणानि गृह्णाति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणानि च गृह्णाति न च तमन्यो भवति ॥४३॥
यथा शिल्पिकः कर्मफलं भुंक्ते न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः कर्मफलं भुंक्ते न च तन्मयो भवति ॥४४॥

एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन ।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद् भवति ॥४५॥
यथा शिल्पिकस्तु चेष्टां करोति भवति च तथानन्यस्तस्याः ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति भवति चानन्यस्तस्मात् ॥४६॥
यथा चेष्टां कुर्वाणस्तु शिल्पिको नित्यदुःखितो भवति ।
तस्माच्च स्यादनन्यस्तथा चेष्टमानो दुःखी जीवः ॥४७॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु शिल्पी सुवर्णकारादिः कुंडलादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कर्म करोति । हस्तकुट्टकादिभिः परद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति । हस्तकुट्टकादीनि परद्रव्यपरिणामात्मकानि करणानि गृहणाति। ग्रामादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कुंडलादिककर्मफलं भुंक्ते नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः । तथात्मापि पुण्यपापादि पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म करोति । कायवाङ्मनोभिः पुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति कायवाङ्मनांसि पुद्गलपरिणामात्मककरणानि गृह्णाति सुखदुःखादिपुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकं पुण्यपापादिकर्मफलं भुंक्ते च नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः । यथा च स एव शिल्पी चिकीर्षुः चेष्टानुरूपमात्मपरिणामात्मकं कर्म करोति । दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टानुरूपकर्मफलं भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोऽनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणामिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः। तथात्मापि चिकीर्षुश्चेष्टारूपमात्मपरिणामात्मकं करोति । दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टारूपकर्मफलं भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणमिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः ।

अर्थ—जैसा शिल्पी कहिये सुनार आदि कारीगर है, सो आभूषणादिक कर्मकूं करे है, सो तिस आभूषणादिकतैं तन्मय नाहीं होय है । तैसा जीव भी पुद्गलकर्मकूं करे है तथापि तातैं तन्मय नाहीं होय है। बहुरि जैसा शिल्पी हथोड़ा आदि करणनितैं कर्मकूं करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है तैसा जीव भी मन वचन काय आदि करणनितैं कर्मकूं करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है । बहुरि जैसा शिल्पिक करणनिकूं ग्रहण करे है तथापि तिनितैं

तन्मय नाहीं होय है। तैसा जीव भीं मन-वचन-कायरूप करणनिकूं ग्रहण करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। बहुरि जैसा शिल्पिक आभूषणादि कर्मके फलकूं भोगवे है तथापि तातैं तन्मय नाहीं होय है। तैसा जीव भी सुखदुःख आदि कर्मके फलकूं भोगवे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। या प्रकार व्यवहारका दर्शन कहिये मत, सो संक्षेप कहने योग्य है अर निश्चयके वचन है सो अपने परिणामनिकरि किये होय है। सो कहिये है, सो सुणू। जैसा शिल्पिक है सो अपने परिणामरूप चेष्टारूप कर्मकूं करे है, सो शिल्पी तिस चेष्टातैं न्यारा नाहीं है—तन्मय है। तैसा जीव भी अपना परिणामरूप चेष्टास्वरूपकर्मकूं करे है, सो तिस चेष्टातैं न्यारा नाहीं है—तन्मय है। बहुरि जैसा शिल्पी चेष्टा करता संता निरंतर दुःखी होय है, तिस दुःखतैं न्यारा नाहीं है, तातैं तन्मय है। तैसा जीव भो चेष्टा करता संता दुःखी होय है।

टीका—जैसा निश्चयकरि शिल्पी सुवर्णकारादिक है सो कुंडल आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, हथोडा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करण तिनिकरि करे है, हथोडा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करण तिनिकूं ग्रहण करे है, बहुरि कुंडल आदि कर्मका फल ग्राम धन आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूपकूं पावे है, तिनिकूं भोगवे है तथापि ते सर्व ही भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं—सो तिसतैं अन्य है। तातैं तिनितैं तन्मय नाहीं होय है, तातैं तहां निमित्त-नैमित्तिक भावमात्रकरि ही तिनिके कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका व्यवहार है। तैसा आत्मा भी पुण्यपाप आदि पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मकूं करे है, बहुरि काय—मन—वचन—पुद्गलद्रव्यस्वरूप करणनिकरि कर्मकूं करे है, बहुरि काय—वचन—मन—पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वरूप करणनिकूं ग्रहण करे है, बहुरि सुखदुःख आदि पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वरूप पुण्यपाप आदि कर्मका फलकूं भोगवे है, सो भिन्नद्रव्यपणातैं तिनितैं अन्य होते संते तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। तातैं निमित्तनैमित्तिक भावमात्रकरि ही तहां कर्ताकर्मपणा—भोक्ताभोग्यपणाका व्यवहार है। बहुरि जैसा सो ही शिल्पी करनेका इच्छक भया संता अपना हस्त आदिकी चेष्टारूप अपना

परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, बहुरि दुःखस्वरूप अपना परिणामरूप चेष्टामय कर्मके फलकूं भोगवे है, तिनि परिणामनिकूं अपना एक ही द्रव्यपणाकरि अनन्य होते संते तिनितैं तन्मय होय है, तातैं तिनिविषैं परिणाम—परिणामिभावकरि कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका निश्चय है। तैसा आत्मा भी करनेका इच्छक भया संता अपना उपयोगकी तथा प्रदेशनिकी चेष्टारूप अपना परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, अर दुःख है लक्षण जाका ऐसा अपने परिणामरूप चेष्टारूप कर्मका फलकूं भोगवे है, तिनि परिणामनिके अपना एक ही द्रव्यपणाकरि अन्यपणा न होता संता तिनितैं तन्मय होय है। तातैं तिनि परिणाम निविषैं परिणाम परिणामी भावकरि कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका निश्चय है।

नतु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥८॥

अर्थ—ननु कहिये अहो मुनि हो, तुम यह निश्चय करो, जो यह प्रगटपणै परिणाम है, सो तौ निश्चयतैं कर्म है। बहुरि सो परिणाम अपना आश्रय जो परिणामी द्रव्य, ताहीका होय है, अन्यका नाहीं होय है। जातैं परिणाम हैं ते अपने अपने द्रव्यके आश्रय हैं, अन्यके परिणामका अन्य आश्रय होय नाहीं। बहुरि जो कर्म है, सो कर्ता विना होय नाहीं। बहुरि वस्तु है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है। तातैं ताकी एक अवस्थारूप कूटस्थस्थिति आदि होय नाहीं, सर्वथा नित्यपणा बाधासहित है। तातैं अपना परिणामरूप कर्मका आप ही कर्ता है, यह निश्चय सिद्धांत है। अब इस ही अर्थके समर्थन कलशरूप काव्य कहे हैं।

पृथ्वीछन्दः

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं तथाऽप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥१९॥

अर्थ—यद्यपि वस्तु है सो आप प्रकाशरूप अनंतशक्तिस्वरूप है, तथापि अन्य वस्तु है, सो

अन्य वस्तुविषैं प्रवेश नाहीं करे है, बाहरि ही लोटे है। जातैं समस्त ही वस्तु अपने अपने विभावविषैं नियमरूप हैं ऐसैं मानिये है। सो आचार्य कहे हैं—जो ऐसैं होतैं भी यह जीव अपने स्वभावतैं चलायमान होय, आकुल हुवा मोही भया संता, क्यौं क्लेशरूप होय है।

भावार्थ—वस्तुस्वभाव तौ नियमरूप ऐसा है, जो काहू वस्तूमो कोई मिलै नाहीं अर यह प्राणी अपने विभावसूं चलायमान होय व्याकुल--क्लेशरूप होय है, सो यह बडा अज्ञान है। फेरि इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥२०॥

अर्थ—जातें यालोकविषैं एक वस्तु है सो अन्य वस्तुका नाहीं है, तिस ही कारणकरि वस्तु है सो वस्तु है, ऐसैं न होय तौ वस्तुका वस्तुपणा न ठहरै, यह निश्चय है। ऐसैं होतें अन्य वस्तु है सो अन्यवस्तुके बाहरि लोटे है, तोऊ ताका कहा करै? किछू भी न करि सके है।

भावार्थ—वस्तूका स्वभाव तौ ऐसा है, जो अन्य कोई वस्तु पलटाय न सकै, तब अन्यके अन्य कहा किया? किछू भी न किया। जैसैं चेतन वस्तुके एक क्षेत्रावगाहरूप पुद्गल तिष्ठे है, तौऊ चेतनकूं जडकरि आपरूप तौ परिणमाय सक्या नाहीं, तब चेतनका कहा किया? किछू भी न किया, यह निश्चयनयका मत है। वहुरि निमित्तनैमित्तिकभावकरि अन्य वस्तुके परिणाम होय है, सो भी तिस वस्तुहीका है, अन्यका कहना व्यवहार है, सो ही कहे हैं—

रथोद्धताछन्दः

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

अर्थ—जो कोई वस्तु अन्यवस्तूकै किछू करे है ऐसा कहिये है सो वस्तु आप परिणामी है,

अवस्थातैं अन्य अवस्थारूप होना वस्तूका पर्यायस्वभाव है, याहीतैं परिणामी कहिये है। सो ऐसें परिणामी वस्तूकै अन्यके निमित्ततैं परिणाम भया ताकूं कहैं, यह अन्यने कीया सो यह व्यवहारनयकी दृष्टिकरि कहिये है। वहुरि निश्चयतैं तो अन्य किछू किया है नाहीं, परिणाम भया सो आपहीका भया, अन्यने तो तामैं किछू भी ल्याय धरया नाहीं ऐसें जानना। आगै इस निश्चयव्यवहारनयके कथनकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट कहे हैं। गाथा—

जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सोदु ॥४८॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह पस्सगो दु ण परस्स पस्सगो पस्सगो सोदु ॥४९॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सोदु ॥५०॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तंतु ॥५१॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्सय वत्तव्वं से समासेण ॥५२॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि णादा विसएण भावेण ॥५३॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सादि जीवोवि सएण भावेण ॥५४॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विरमदि णादावि सएण भावेण ॥५५॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण ॥५६॥
एसो ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो ॥५७॥

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु ॥४८॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका तु सा भवति ।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकस्तु स भवति ॥४९॥
यथा सेटिकास्तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु ॥५०॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु ॥५१॥
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
शृणु व्यवहारस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन ॥५२॥

यथा परद्रव्यं सेटयति खलु सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५३॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं पश्यति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५४॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५५॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्ते ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५६॥
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयो ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः ॥५७॥

आत्मख्यातिः—सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादिपरद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते—यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवंती कुड्यादिरेव भवेत्, एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः, ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः। यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति। ननु कतरान्या सेटिका ? यस्याः सेटिका भवति? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः। किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः। यथा दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः। चेतयितात्र तावद् ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण ज्ञेयं पुद्गलादि द्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य ज्ञेयस्य ज्ञायकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति, चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादेरेव भवेत् एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः । ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गला-

... द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः। ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः। यदि न भवति चेतयिता पुद्गला-

देस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? चेतयितुरेव चेतयिता भवति। ननु कतरोन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः, किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि तर्हि न कस्यापि ज्ञायकः। ज्ञायको ज्ञायक एवेति निश्चयः।

किंच सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि परद्रव्यं। अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद् भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवति कुड्यादिरेव भवेत् एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः। न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वादे-स्त्युच्छेदः। ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः। यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति। ननु कतरान्या सेटिका सेटिकायाः यस्याः सेटिका भवति ? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकेवेति निश्चयः यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः—चेतयितात्र तावद्दर्शनगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्य तस्य तु व्यवहारेण दृश्यं पुद्गलादि परद्रव्यं। अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य दृश्यस्य दर्शकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्व-संबंधो मीमांस्यते—यदि चेतयिता पुद्लादेर्भवति तदा यस्य यद् भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधो जीवति चेतयिता पुद्गलदेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत् एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः। न च द्रव्यां-तरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः ? ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः। यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेःस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्यापि दर्शकः, दर्शको दर्शक एवेति निश्चयः।

अपि च सेटिका तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि परद्रव्यं। अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका

किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः। यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः—चेतयितात्र तावत् ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावं द्रव्यं। तस्य तु व्यवहारेणापोह्यं पुद्गलादिपरद्रव्यं। अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्यापोह्यस्यापोहकः किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथा मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत्। एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्यच्छेदः। न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः। ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः। यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ! चेतयितुरेव चेतयिता भवति। ननु कतरोऽन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्याप्यपोहकः, अपोहकोऽपोहक एवेति निश्चयः।

यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मस्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते तथा चेतयितापि ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन जानातीति व्यवह्रियते।

किंच यथा च सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयंती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन श्वेतयतीति व्यावाह्रियते। तथा चेतायितापि दर्शनगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन पश्यतीति व्यवह्रियते।

अपि च—यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन्ती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते

तथा चेतयितापि ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेनापोहतीति व्यवह्रियते। एवमयमात्मनो ज्ञानदर्शनचरित्रपर्यायाणां निश्चयव्यवहारप्रकारः। एवमेवान्येषां सर्वेषामपि पर्यायाणां दृष्टव्यः।

अर्थ—जैसी सेटिका कहिये सुपेदी करनेकी कली तथा खडी पांडु ऐसा द्रव्य है, सो, पर जो भींति आदि ताको सुपेद करनेवाली है। यातैं सेटिका नाहीं है, सेटिका है सो आप ही सेटिका है। तैसा ज्ञायक कहिये जाननेवाला है सो परद्रव्यका जाननेवाला है। यातैं ज्ञायक नाहीं है, आप ही ज्ञायक है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परकी सेटिका नाहीं है, सो आप ही सेटिका है। तैसा दर्शक कहिये देखनेवाला है, सो परका देखनेवाला है। यातैं देखनेवाला नाहीं है, आप ही देखनेवाला है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परकी सेटिका नाहीं है, आप ही सेटिका है तैसा संयत है, सो परकूं त्यागे है। यातैं संयत नाहीं है, आप ही संयत है बहुरि जैसी सेटिका है, सो परकी नाहीं है, सेटिका आप ही सेटिका है। तैसा दर्शन कहिये श्रद्धान है, सो परका श्रद्धानतैं श्रद्धान नाहीं है आप ही श्रद्धान है। ऐसा दर्शन—ज्ञान—चारित्रविषैं निश्चयनयका भाषित है—कह्या वचन है। बहुरि तिस व्यवहारका वक्तव्य है, सो संक्षेपकरि कहिये है, सो सुणु—जैसी सेटिका अपने स्वभावकरि परद्रव्य जो भींति आदि तिनिकूं सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता कहिये जाननेवाला है सो परद्रव्यकूं अपना स्वभावकरि जाने है। बहुरि जैसी सेटिका अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं सुपेद्र करे है, तैसा ज्ञाता है सो अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं देखे है। बहुरि जैसी सेटिका है, सो अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता भी अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं त्यागे है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता भी अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं श्रद्धे है। ऐसा जो दर्शनज्ञानचारित्रविषैं व्यवहारका विशेषकरि निश्चय कह्या है, सो ही अन्य पर्यायनिविषैं भी ऐसा ही जानना।

टीका–प्रथम ही दृष्टांत कहे हैं—इस लोकविषैं सेटिका है सो श्वेतगुणकरि भरया द्रव्य है, ताकूं लोक कली खडी पांडू इत्यादि कहे हैं। ताकै व्यवहारकरि श्वेत करनेयोग्य मंदिर कुटी भिंती आदि परद्रव्य हैं। अब इहां सेटिकाकै अर परद्रव्यकै दोऊकै परमार्थकरि संबंध कहा है ? सो विचारिये हैं। श्वेत करनेयोग्य कुटी आदि परद्रव्य है, ताकी श्वेत करनेवाली सेटिका किछू है कि नाहीं है ? जो ऐसैं मानिये, जो सेटिका कुटयादि परद्रव्यकी है, तौ ऐसा न्याय है—जो जाका जो होय, सो तिसस्वरूप ही होय। जैसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही स्वरूप है। ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधी जीवता विद्यमान होतैं, सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदिका स्वरूप होय—तिसतैं न्यारा द्रव्य न होय। ऐसैं होते संते सेटिकाका निजद्रव्यका तौ उच्छेद होय–अभाव होय, कुटी आदिक ही एकद्रव्य ठहरै। सो दूसरा द्रव्यका उच्छेद नाहीं युक्त है। जातैं द्रव्यका अन्यद्रव्य होना तौ पहलै ही प्रतिषेधरूप कहि आये हैं, अन्य द्रव्यका पलटि करि अन्य द्रव्य होय नाहीं। तातैं यह निश्चय भया—जो सेटिका कुटी आदि परद्रव्यकी नाहीं है।

इहां पूछे है—सो सेटिका कुटी आदिकी नाहीं है, तौ कौनकी सेटिका है ? ताका उत्तर-जो सेटिका सेटिकाहीकी है। तहां फेरि पूछे है–जो वह अन्यसेटिका कौनसी है ? जिस सेटिकाकी यह सेटिका है। ताका उत्तर—जो सेटिकातैं अन्य दूजी सेटिका तौ नाहीं है। तौ कहा है ? सेटिकाकै स्वस्वामिभाव है। सो ये अंश हैं, तिनिकै अन्यपणा है। तहां कहे हैं–जो इहां निश्चय-नयके विषैं स्वस्वामिअंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो सेटिका अन्य काहूकी भी नाहीं। सेटिका है सो सेटिका ही है ऐसा निश्चय है। सो जैसा यह दृष्टांत है, तैसा ही यह दार्ष्टांतिक अर्थ है। तहां इस लोकविषैं प्रथम तौ चेतयिता कहिये चेतनेवाला आत्मा है, सो ज्ञानगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है। ताकै व्यवहारकरि ज्ञेय कहिये जानने योग्य पुद्गल आदिक परद्रव्य है, सो इहां तिस आत्माका अर

पुद्गल आदि परद्रव्य दोऊका परमार्थ तत्त्वरूप संबंध विचारिये है—जो पुद्गल आदि परद्रव्य हैं, तिनिका चेतयिता आत्मा है की नाहीं है ? तहां जो ऐसैं मानिये—चेतयिता आत्मा पुद्गल आदि परद्रव्यका है, तौ यहै न्याय है--जाका जो होय सो वह सो ही है-अन्य नाहीं है। ऐसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है, ज्ञान कछू न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं, आत्मा पुद्गलादिका होता संता, पुद्गलादिक ही होय, ऐसैं होतैं आत्माका स्वद्रव्यका उच्छेद होय--अभाव होय, पुद्गलद्रव्य ही ठहरै, आत्मा न्यारा द्रव्य न ठहरै सो ऐसैं होय नाहीं, द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्यद्रव्यकी पलटिकारी अन्यद्रव्य होनेका प्रतिषेध तौ पहलैंही कही आये हैं। तातैं चेतयिता आत्मा पुद्गलादिक परद्रव्यका नाहीं होय हे। तहां पूछे है—जो चेतयिता आत्मा पुद्गलादि परद्रव्यका नाहीं है, तौ कौनका है? ताका उत्तर —जो चेतयिताहीका चेतयिता है। तहां फेरि पूछे है—जो वह दूसरा चेतयिता कौन सा है ? जाका यह चेतयिता है। ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य दूजा चेतयिता तौ नाहीं है। तौ कहा है ? तहां कहे हैं—जो स्वस्वामि अंश हैं ते अन्य कहिये हैं। तहां कहे हैं, इहां निश्चय-नयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं। तातैं यह ठहरी—जो ज्ञायक है सो निश्चयकरि अन्य काहूका नाहीं है, ज्ञायक है सो आप ही ज्ञायक है ऐसा निश्चय है।

अब जैसा ज्ञायक दृष्टांतदार्ष्टांतकरि कह्या, तैसा ही दर्शककूं कहे हैं। तहां सेटिका है सो प्रथम तौ श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है। ताकै व्यवहारकरि श्वेत करने-योग्य कुटी आदि परद्रव्य है। सो सेटिका अर कुटी आदि परद्रव्यका इहां दोऊका परमार्थ-तत्त्वरूप संबंध विचारिये है। जो श्वेत करनेयोग्य कुटि आदि परद्रव्यके श्वेत करनेवाली सेटिका है कि नाहीं है ? तहां जो सेटिका कुटयादिककी है ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जाका जो होय सो वह ही है अन्य नाहीं। जैसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है। ऐसा परमार्थरूप संबंधकूं जीवता विद्यमान होता सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदिक ही होय।

एसैं होतैं सेटिकाका स्वद्रव्यका उच्छेद होय, सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं, जातैं द्रव्यका अन्य-द्रव्य पलटिकरि होनेका पहलै ही निषेध करि आये हैं। तातैं सेटिका कुटी आदिककी नाहीं है। इहां पूछे है—जो सेटिका कुट्यादिकी नाहीं है, तौ कौनकी है ? ताका उत्तर—जो सेटिका सेटिकाहीकी है। फेरि पूछे है, वह दूजी सेटिका कौन सी है ? जाकी यह सेटिका है। ताका उत्तर--जो अन्य दूजी सेटिका तौ नाहीं है, जाकी यह सेटिका होय। तौ कहा है ? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे हैं, इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशके व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो सेटिका काहूकी भी नाहीं, सेटिका है सो सेटिका ही है, ऐसा निश्चय है। जैसा यह दृष्टांत है, तैसा यह दार्ष्टांतिक है। जो इहां चेतयिता आत्मा प्रथम ही दर्शनगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है, ताकै व्यवहारकरि देखनेयोग्य पुद्गल आदि परद्रव्य है।

अब इहां दोऊका परमार्थभूत तत्त्वरूप संबंध विचारिये है। जो पुद्गल आदि परद्रव्य है ताका चेतयिता है कि नाहीं है ? जो चेतयिता पुद्गल द्रव्यादिका है ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जो जाका होय, सो वह सो ही है, अन्य नाहीं है। जैसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है ज्ञान न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं चेतयिता पुद्गल आदिका होता संता पुद्गल आदिक ही होय, न्यारा द्रव्य न होय। ऐसैं होतैं चेतयिताका स्वद्रव्यका उच्छेद होय--नाश होय। सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका पलटिकरि अन्यद्रव्य होनेका पहिलै ही निपेधकरि आये हैं। तातैं यह ठहरी, जो चेतयिता पुद्गलद्रव्य आदिका नाहीं है, तहां पूछे है—जो चेतयिता पुद्गलद्रव्य आदिकका नाहीं है तौ कौनका है ? ताका उत्तर--जो चेतयिताका ही चेतयिता है। फेरि पूछे है, वह दूजा चेतयिता कौन सा है ? जाका यह चेतयिता होय है, ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य तौ चेतयिता नाहीं है। तौ कहा है ? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे है, इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यव-

हारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं तौ यह ठहरी, जो चेतयितो कोईका भी दर्शक नाहीं । दर्शक है सो दर्शक ही है । इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं यह निश्चय है ।

अब तैसैं ही चारित्रकूं कहे हैं । तहां जैसी सेटिका है, सो प्रथम ही श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका द्रव्य है । ताकै व्यवहारकरि श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है । अब यहां दोऊकै परमार्थकरि संबंध विचारिये है । श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है ताकी श्वेत करनेवाली सेटिका है कि नाहीं है ? तहां जो सेटिका कुटी आदिकी है, ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है, जो जाका होय सो वह सो ही है, अन्य नाहीं है । जैसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है, अन्य न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदि ही होय, ऐसैं होतैं सेटिकाका स्वद्रव्यका उच्छेद होय, सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं । जातैं अन्य द्रव्यका पलटिकरि अन्यद्रव्य होनेका पहिले प्रतिषेध करि आये हैं, तातैं सेटिका कुटयादिककी नाहीं है । तहां पूछे है, जो कुटयादिकी नाहीं है तौ कौनकी सेटिका है ? ताका उत्तर—सेटिकाहीकी सेटिका है । फेरि पूछे है, वह दूजी सेटिका कौनसी है ? जाकी यह सेटिका है । ताका उत्तर—जो इस सेटिकातैं अन्य सेटिका तौ नाहीं है । तौ कहा है ? स्वास्वामि अंश हैं, ते ही अन्य हैं । तहां कहे हैं—स्वस्वामि-अंशकरि निश्चयनयविषैं कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं । तौ यह ठहरी—जो सेटिका अन्य काहूकी भी नाहीं है, सेटिका है सो सेटिका ही है ऐसा निश्चय है । जैसा यह दृष्टांत है, तैसा दार्ष्टांतिक अर्थ है, जो चेतयिता आत्मा है, सो प्रथमही ज्ञानदर्शनगुणकरि भरया परका त्यागरूप है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है, ताकै व्यहारकरि त्यागने योग्य पुद्गल आदि परद्रव्य है ।

अब इहां दोऊकै परमार्थतत्त्वरूप संबंध विचारिये है, जो त्यागने योग्य जो पुद्गल आदि परद्रव्य, ताका त्यागनेवाला चेतयिता है कि नाहीं है ? जो चेतयिता पुद्गल आदि परद्रव्यका

है। ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जो जाका जो होय, सो वह सो ही है। ऐसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है अन्य न्यारा द्रव्य नाहीं ऐसा तत्त्वसंबंध जीवता विद्यमान होतै चेतयिता पुद्गल आदिका होता संता पुद्गल आदिक ही होय। ऐसैं होतैं चेतयिताका स्वद्रव्यका उच्छेद होय. सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका पलटिकरि अन्य द्रव्य होनेका प्रतिषेध पहलै ही कहि करि आये हैं। तातैं चेतयिता पुद्गलादिकका न होय है। इहां पूछे हैं—जो चेतयिता पुद्गल आदिका नाहीं है, तौ कौनका चेतयिता है? ताका उत्तर—जो चेतयिताका ही चेतयिता है। तहां फेरि पूछे हैं, वह दूजा चेतयिता कौनसा है? जाका यह चेतयिता है। ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य चेतयिता तौ नाहीं है। तौ कहा है? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे हैं—इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो त्यागनेवाला अपोहक है सो काहूका ही अपोहक नाहीं, अपोहक है सो अपोहक ही है ऐसा निश्चय है।

अब व्यवहारकूं कहे हैं—जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका सो आप कुटी आदि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमतो संती बहुरि कुड्यादिक परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती कुड्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना श्वेतगुणकरि भरया स्वभावका परिणामकरि उपजती संती कुड्यादि परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि सुफेद करे है। कैसा है परद्रव्य? सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संता है, ताकूं श्वेत करे है, ऐसा व्यवहार कीजिये हैं। तैसैं चेतयिता आत्मा भी ज्ञानगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है। सो स्वयं आप तौ पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमता संता है। अर पुद्गल आदि परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। बहुरि पुद्गल आदि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना ज्ञानगुणकरि भरया स्वभाव ताका परिणामकरि उपजता संता है, सो पुद्गलादि परद्रव्य चेतयिता जाकूं निमित्त ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि

उपजता संता है, ताकूं अपने स्वभावकरि जाने है, ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसा तौ ज्ञानका व्यवहार है।

बहुरि दर्शनगुणका व्यवहार कहे हैं--जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है, सो आप स्वयं कुट्यादि परद्रव्यके स्वभावकरि तौ न परिणमती संती है; अर कुट्यादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती है; अर कुट्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा श्वेतगुणकरि भरया अपना स्वभाव, ताका परिणामकरि उपजती संती है। सो कुट्यादि परद्रव्य, सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संता है; ताकूं अपने स्वभावकरि सुफेद करे है; ऐसा व्यवहार कीजिये है। तैसैं चेतयिता है सो दर्शनगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है। सो स्वयं आप तौ पुद्गल आदि परद्रव्यका स्वभावकरि न परिणमता संता है। बहुरि पुद्गल आदि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। अर पुद्गल आदि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना दर्शनगुणकरि भरया स्वभावका परिणाम ताकरि उपजता संता है। सो पुद्गल आदि परद्रव्यकूं चेतयिता है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संताकूं अपना स्वभावकरि देखे है, ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसा दर्शनगुणका व्यवहार है।

अब चारित्रका व्यवहार कहे हैं--जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसी है, सो आप स्वयं कुट्यादि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमती संती है, बहुरि कुट्यादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती है, अर कुट्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा श्वेतगुणकरि भरया अपना स्वभाव ताका परिणामकरि उपजती संती है; सो कुट्यादि परद्रव्यकूं सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजै ताकूं सेटिका अपने स्वभावकरि श्वेत करै है। ऐसा व्यवहार कीजिये है। तैसैं चेतयिता आत्मा भी ज्ञानदर्शनगुणकरि भरया परके अपोहन कहिये त्याग, तिस रूप स्वभाव है, सो स्वयं आप पुद्गलादि पर-

द्रव्यके स्वभावकरि न परिणमता संता है। बहुरि पुद्गलादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। अर पुद्गलादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना ज्ञानदर्शनगुणकरि भर्या परके त्याग करनेरूप स्वभावके परिणामकरि उपजता संता है, सो चेतयिता है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता जो पुद्गलादि परद्रव्य ताकूं अपने स्वभावकरि त्यागै है। ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसैं यह आत्माके ज्ञान दर्शन चारित्र तेही भये पर्याय तिनिका निश्चय व्यवहारका प्रकार है। ऐसे ही अन्य भी जे केई पर्याय हैं तिनि सर्व ही पर्यायनिका निश्चय व्यवहार जानना।

भावार्थ—आत्माका शुद्धनयकरि एक चेतनामात्र स्वभाव है। ताके परिणाम देखना, जानना, श्रद्धना, परद्रव्यतैं निवृत्त होना है। तहां निश्चयनयकरि विचारिये तब आत्मा परद्रव्यका ज्ञायक न कहिये, दर्शक न कहिये, श्रद्धान करनेवाला न कहिये, त्याग करनेवाला न कहिये। जातैं परद्रव्यकै अर आत्माकै निश्चयकरि किछू भी संबंध नाहीं है। जो ज्ञाता, द्रष्टा, श्रद्धान करनेवाला, त्याग करनेवाला, ए सर्व भाव हैं सो आप ही है। भावभावकका भेद कहना सो भी व्यवहार है। अर परद्रव्यका ज्ञाता, द्रष्टा, श्रद्धान करनेवाला, त्याग करनेवाला कहिये है। सोभी व्यवहारनयकरि कहिये हैं। जातैं परद्रव्यकै अर आत्माका निमितिनैमित्तिक भाव है। सो-परकै निमित्ततैं किछू भाव भये देखि व्यवहारी जन कहे हैं, जो परद्रव्यकूं जाने है, परद्रव्यकूं देखे है, परद्रव्यका श्रद्धान करे है, परद्रव्यकूं त्यागे है। ऐसैं निश्चय व्यवहारका प्रकार जानि यथावत् श्रद्धान करना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं—

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ॥२२॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं--जो शुद्ध द्रव्यके निरूपणविषैं लगाई है बुद्धि जाने बहुरि तत्त्वकूं

अनुभवता है ऐसा पुरुषकै एक द्रव्यविषैं प्राप्त भया अन्यद्रव्य किछू भी न कदाचित् प्रतिभासे है। बहुरि ज्ञान है सो अन्य ज्ञेय पदार्थकूं जानै है सो यह ज्ञानका शुद्ध स्वभावका उदय है, सो यह जन लोक हैं ते अन्यद्रव्यके ग्रहणविषैं आकुल है बुद्धि जिनिकी ऐसे, भये संते शुद्धस्वरूपतैं क्यों चिगे हैं ?

भावार्थ—शुद्धनयकी दृष्टिकरि तत्त्वका स्वरूप विचारतैं अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यविषैं प्रवेश नाही दीखे है। अर ज्ञानविषैं अन्य द्रव्य प्रतिभासे है सो यह ज्ञानकी स्वच्छताका स्वभाव है। किछू ज्ञान तिनिकूं ग्रहण न कीये है। अर यह लोक अन्य द्रव्यका ज्ञानविषैं प्रतिभास देखि अर अपना ज्ञानस्वरूपतैं छूटि अर ज्ञेयके ग्रहण करनेकी बुद्धि करे हैं सो यह अज्ञान है। ताकी आचार्यनें करुणाकरि कह्या है। जो ए लोक तत्त्वतैं क्यों चिगे हैं ? फेरि इस ही अर्थकूं दृढ़ करे हैं—

मन्दाक्रान्ताछन्दः

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष—मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्तिभूमिर्ज्ञानं ज्ञयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२३॥

अर्थ—जिस द्रव्यका जो निज भाव होय सो स्वभाव है। सो आत्माका ज्ञानचेतना स्वभाव है। ताकै शुद्ध द्रव्य जो शुद्ध आत्मा ताका निजरस ज्ञानचेतना है। ताकै होतैं ते अन्य बाकी जा द्रव्य है सो कहां होय ? किछू भी न होय। परमार्थकरि संबंध नाही अथवा अन्य द्रव्य है ताकै यहू स्वभाव कहा होय ? किछू भी न होय। परमार्थकरि संबंध नाहीं। जैसैं ज्योत्स्ना जो चांदणी ताका रूप पृथ्वीकूं उज्वल करे है, तौ कहां पृथ्वी चांदणीकी होय जाय ? किछू भी न होय। तैसैं ज्ञान है सो ज्ञेयपदार्थकूं सदाकाल जाने है, तौ ज्ञेय ज्ञानका किछू कहा होय जाय ? किछूं भी नाहीं है।

भावार्थ—शुद्धनयकी दृष्टिकरि देखिये तब कोई द्रव्यका स्वभाव काहू अन्यद्रव्यरूप होय नाहीं। जैसैं चांदणी पृथ्वीकूं उज्वल करे है परंतु चांदणीकी पृथ्वी किछू होय नाहीं है। तैसैं ज्ञान ज्ञेयकूं

जाने है परंतु ज्ञानका ज्ञेय किछू होय नाहीं है। आत्माका ज्ञान स्वभाव है सो याकी स्वच्छतामैं ज्ञेय स्वयमेव झलके है। तौऊ ज्ञानमैं तिनि ज्ञेयनिका प्रवेश नाहीं है। अब कहे हैं, जो ज्ञानमैं राग द्वेषका उदय कहां तांई है? ताका काव्य—

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावद् ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यः।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं भावोभावो भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः ॥२४॥

अर्थ—यहु ज्ञान जेतैं ज्ञानरूप न होय है, अर बोध्य कहिये ज्ञेय सो ज्ञेयभावकूं प्राप्त न होय है, तेतैं राग द्वेष दोऊ उदय होय हैं। तातैं यह ज्ञान है सो ज्ञानरूप होऊ। कैसा होऊ? दूरी किया है अज्ञानभाव जाने ऐसा होऊ। तिस कारणकरि भाव अभाव ज्ञानमैं होय हैं। तिनिकूं दूरी करता संता पूर्ण स्वभाव होय।

टीका—जेतैं ज्ञान ज्ञानरूप न होय, ज्ञेय ज्ञेयरूप न होय, तेतैं राग द्वेष उपजै है। तातैं यह ज्ञान अज्ञानभावकूं दूरिकरि ज्ञानरूप होऊ। जिस कारणतैं ज्ञानमैं भाव अर अभाव ए दोय अवस्था होय हैं, सो तौ मिटि जाय। अर ज्ञान पूर्णस्वभावकूं प्राप्त होय जाय, यह प्रार्थना है। आगै कहे हैं कि, राग द्वेष मोहतैं दर्शनज्ञानचारित्रका घात होय है, सो दर्शन ज्ञान चारित्र पुद्गल द्रव्यमें तौ हैं नाहीं, आत्माहीमैं दर्शनज्ञानचारित्र हैं। अर आत्माहीमैं अज्ञानतैं राग द्वेष मोह हैं। सो अज्ञानतैं अपना ही घात होय है; ऐसा निर्णय करे हैं। गाथा—

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥५८॥
दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥५९॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे काये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥६०॥
णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स ।
णवि तह्मि कोऽवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ॥६१॥
जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तह्मा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ॥६२॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव दु अणण्ण परिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥६३॥

दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने विषये ।
तस्मात्किं घातयति चेतयिता तेषु कायेषु ॥५८॥
दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि ।
तस्मात्किं घातयति चेतयिता तेषु कर्मसु ॥५९॥
दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने काये ।
तस्मात् किं घातयति चेतयिता तेषु कायेषु ॥६०॥
ज्ञानस्य दर्शनस्य भणितो घातस्तथा चरित्रस्य ।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातो निर्दिष्टः ॥६१॥
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न संति खलु ते परेषु द्रव्येषु ।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु ॥६२॥

रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः ।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न संति रागादयः ॥६३॥

आत्मख्यातिः—यद्धि यत्र भवति तत्तद्घाते हन्यत एव यथा प्रदीपघाते प्रकाशो हन्यते। यत्र च यद्भवति तत्तद्घाते हन्यते यथा प्रकाशघाते प्रदीपो हन्यते। यत्तु यत्र न भवति तत्तद्घाते न हन्यते यथा घटप्रदीपघाते घटो न हन्यते। यथात्मनो धर्मा ज्ञानदर्शनचारित्राणि पुद्गलद्रव्यघातेऽपि न हन्यंते, न च दर्शनज्ञानचारित्राणां घातेऽपि पुद्गलद्रव्यं हन्यते, एवं दर्शनज्ञानचारित्राणि पुद्गलद्रव्ये न भवंतीत्यायाति अन्यथा तद्घाते पुद्गलद्रव्यघातस्य, पुद्गलद्रव्यघाते तद्घातस्य दुर्निवारत्वात्। यत एवं ततो ये यावंतः केचनापि जीवगुणास्ते सर्वेऽपि परद्रव्येषु न संतीति सम्यक् पश्यामः। अन्यथा अत्रापि जीवगुणघाते पुद्गलद्रव्यघातस्य पुद्गलद्रव्यघाते जीवगुणघातस्य च दुर्निवारत्वात्। यद्येवं तर्हि कुतः सम्यग्दृष्टेर्भवति रागो विषयेषु? न कुतोऽपि। तर्हि रागस्य कतरा खानिः रागद्वेषमोहादि जीवस्यैवाज्ञानमयाः परिणामास्ततः परद्रव्यत्वाद्विषयेषु न संति, अज्ञानाभावात्सम्यग्दृष्टौ तु न भवंति एवं ते विषयेष्वसंतः सम्यग्दृष्टेर्न भवंतो न भवंत्येव।

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो अचेतन जे विषय तिनिविषैं किछू भी नाहीं हैं। तातैं तिनि विषयनिविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै? घातनेकूं किछू भी नाहीं। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो अचेतन जो कर्म ताविषैं किछू भी नाहीं हैं। तातैं तिस कर्मविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै। किछू भी घातनेकूं नाहीं। दर्शन ज्ञान चारित्र है सो अचेतन जो काय ताविषैं किछू भी नाहीं है। तातैं तिनि कायनिविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै? किछू भी घातनेकूं नाहीं। बहुरि घात है सो ज्ञानका तथा दर्शनका तथा चारित्रका कह्या है तहां पुद्गलद्रव्यका किछू घात नाहीं कह्या है। बहुरि जे केई जीवके गुण हैं ते परद्रव्यनिविषैं नाहीं हैं। तातैं सम्यग्दृष्टीकै विषयनिविषैं राग नाहीं है। राग द्वेष मोह हैं ते जीवहीका अनन्य एकरूप; अभेदरूप परिणाम हैं। इस कारणकरि रागादिक हैं ते शब्दादिविषैं नाहीं हैं।

टीका—निश्चयकरि जो जाविषैं होय सो तिसके घात होतैं हण्याही जाय है। जैसैं दीपक-

विषैं प्रकाश है सो दीपकका घात होतैं प्रकाश भी हणिये ही है। बहुरि जाविषैं जो होय सो ताकै घात होतै हणिये ही है। जैसैं प्रकाशको घाते होतैं प्रदीप भी हणियो ही है। बहुरि जो जाविषैं न होय सो ताके घात होतै नाहीं हणिये है। जैसैं घटका घात होतैं घटका प्रदीपक है सो नाहीं हणिये है। बहुरि जाविषैं जो न होय सो ताके घाते नाहीं हणिये है। जैसैं घडेमें प्रदीपका घात होतै घट नाहीं हणिये है इस न्यायतैं कहे हैं—जो आत्माके धर्म दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते पुद्गलद्रव्यके घात होते भी नाहीं घातैं जाय हैं। बहुरि दर्शनज्ञानचारित्रका घात होतै भी पुद्गलद्रव्य घात्या न जाय है। ऐसैं दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते पुद्गलद्रव्यविषैं नाहीं हैं। यह आत्मा जो ऐसे न होय, तौ दर्शनज्ञानचारित्रका घात होतै तौ पुद्गलद्रव्यका घातका दुर्निवारपणा होय, अवश्य घात होय। अर पुद्गलद्रव्यका घात होतैं दर्शनज्ञानचारित्रका घात अवश्य होय। जातैं ऐसै है तातैं आचार्य कहे हैं, जेजे किछू जीवद्रव्यके गुण हैं ते सर्व ही परद्रव्यनिविषैं नाहीं हैं। ऐसे पुद्गल सम्यक् प्रकार हम देखे हैं। अर जो ऐसें न होय तो इहां भी जीवके गुणका घात होतै पुद्गल द्रव्यका घातका दुर्निवारपणा होय। अर पुद्गलद्रव्यका घात होतै जीवगुणका घातका दुर्निवारपणा होय। सो ऐसै है नाहीं। अब विचारे हैं—जो ऐसैं होतै सम्यग्दृष्टीके विषयनिविषैं राग कौन हेतूतैं होय है? तहां कहे हैं। काहू ही हेतूतैं नाहीं होय है। तब पूछे है—रागके उपजनेकी कौनसी खानी है? तहां कहे हैं—राग द्वेष मोह हैं ते जीव ही का अज्ञानमय परिणाम हैं। यह अज्ञान ही रागादिककै उपजनेकी खानी है। जातैं विषय हैं ते परद्रव्य हैं। तिनिविषैं रागादिक अज्ञानमय परिणाम नाहीं है। बहुरि जब अज्ञानका अभाव होय तब आत्मा सम्यग्दृष्टि होय, तब ताविषैं रागादि न होय हैं। ऐसैं ते रागादिक विषयनिविषैं न होतै संतै अर सम्यग्दृष्टीके न होतै संतै नाहीं है।

भावार्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र आदि जेते जीवके गुण हैं ते अचेतन पुद्गलद्रव्यमैं नाहीं हैं। तातैं आत्माके अज्ञानमय परिणामतैं राग द्वेष मोह होय हैं। तिनिकरि आपहीके दर्शन

ज्ञान चारित्र आदि गुण घातै जाय हैं। अर राग द्वेष मोह जीवहीके अस्तित्वमैं अज्ञानतैं उपजै हैं। जब अज्ञानका अभाव होय तब सम्यग्दृष्टि होय तब नाहीं उपजे है। ऐसे होतै शुद्धद्रव्यके दृष्टीमैं पुद्गलविषैं भी राग द्वेष मोह नाहीं सम्यग्दृष्टि जीवविषैं भी नाहीं। ऐसे दोऊ ही विषैं न होतै ए नाहीं ही हैं अर पर्यायदृष्टीमैं जीवके अज्ञान अवस्थामैं हैं ऐसा जानना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात् तौ वस्तुत्वं प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटंतौ ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥२५॥

अर्थ—इस आत्माविषैं ज्ञान है सो ही अज्ञान भावतैं राग द्वेष रूप परिणमे है। बहुरि ते रागादिक वस्तुपणाविषैं स्थापिदृष्टिकरि देखे हुये किछू भी नाहीं हैं, द्रव्यरूप न्यारे वस्तु नाहीं है। तातैं आचार्य प्रेरणा करे हैं, जो सम्यग्दृष्टि पुरुष है सो तत्त्वदृष्टिकरि तिनिकूं प्रगट देखि अर क्षेपो नाश करो। ज्यों स्वाभाविक ज्ञानज्योतिपूर्ण है प्रकाशरूप अचल दीप्ति जाकी ऐसी देदीप्यमान प्रकाशै।

भावार्थ—राग द्वेष न्यारा ही तौ द्रव्य नाहीं। जीवके अज्ञान भावतैं होय है। तातैं सम्यग्दृष्टि होय तत्त्वदृष्टिकरि देखिये, किछू भी वस्तु नाहीं ऐसें देखे। घातिकर्मका नाश होय केवलज्ञान उपजै है। आगे कहे हैं, जो अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुण नाहीं उपजाइये है, ताकी सूचनिकाका काव्य है—

मालिनीछन्दः

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद् द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥२६॥

अर्थ—राग द्वेषका उपजावनेवाला तत्त्वदृष्टिकरि देखिये तब अन्य द्रव्य किछू भी नाहीं देखिये

है। चेतनहीके परिणाम हैं। जातैं यह न्याय है—जो सर्व द्रव्यनिकी उत्पत्ति है सो अपने ही निज स्वभावविषैं अंतरंगविषैं अत्यंत प्रगटरूप शोभे है। अन्य द्रव्यविषैं अन्यके गुणपर्यायनिकी उत्पत्ति नाहीं है। अब इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं गाथा—

अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो।
तह्मा दु सव्वदव्वा उपज्जंते सहावेण ॥६४॥

अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यस्य न क्रियते गुणोत्पादः।
तस्मात्तु सर्वद्रव्याण्युत्पद्यंते स्वभावेन ॥६४॥

आत्मख्यातिः—न च जीवस्य परद्रव्यं रागादीन्युत्पादयतीति शक्यं—अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यगुणोत्पादककरणस्यायोगात्। सर्वद्रव्याणां स्वभावेनैवोत्पादात्। तथा हि मृत्तिका कुंभभावेनोत्पद्यमाना किं कुंभकार स्वभावेनोत्पद्यते किं मृत्तिकास्वभावेन? यदि कुंभकारस्वभावेनोत्पद्यते तदा कुंभकरणाहंकारनिर्भरपुरुषाधिष्ठितव्यापृतकरपुरुषशरीराकारः कुंभः स्यात्, न च तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात्। यद्येवं तर्हि मृत्तिका कुंभकारस्वभावेन नोत्पद्यते किंतु मृत्तिकास्वभावेनैव, स्वस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्य दर्शनात्। एवं च सति स्वस्वभावानतिक्रमान्न कुंभकारः कुंभस्योत्पादक एव मृत्तिकैव कुंभकारस्वभावमस्पृशंती स्वस्वभावेनोत्पद्यते। एवं सर्वाण्यपि द्रव्याणि स्वपरिणामपर्यायेणोत्पद्यमानानि किं निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते किं स्वस्वभावेन? यदि निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते तदा निमित्तभूतपरद्रव्याकारस्तत्परिणामः स्यात् न च तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात्। यद्येवं तर्हि न सर्वद्रव्याणि निमित्तभूतपरस्वभावेनोत्पद्यंते किंतु स्वस्वभावेनैव, स्वस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्य दर्शनात् एवं च सति सर्वद्रव्याणां निमित्तभूतद्रव्यांतराणि स्वपरिणामस्योत्पादकान्येव सर्वद्रव्याण्येव निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावमस्पृशंति स्वस्वभावेन स्वपरिणामभावेनोत्पद्यंते अतो न परद्रव्यं जीवस्य रागादीनामुत्पादकमुत्पश्यामो यस्मै कुप्यामः।

अर्थ—अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुणका उत्पाद नाहीं कीजिये है। तातैं यह सिद्धांत है, जो सर्व ही द्रव्य अपने अपने स्वभावकरि उपजे हैं।

टीका—जीवद्रव्यकै परद्रव्य है सो रागादिक उपजावे है, ऐसी आशंका न करनी। जातैं अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुणका उत्पाद करनेका अयोग्य है। सर्वद्रव्यविषैं स्वभावहीकरि उत्पाद है। सो ही दृष्टांतकरि दिखाइये हैं—मृत्तिका है सो कुंभभावकरि उपजती संती कहा कुंभकारके स्वभावकरि उपजे है, की मृत्तिका स्वभावकरि उपजै? ऐसे दोय पक्ष पूछी, तहां जो कहिये कुंभकारके स्वभावकरि उपजे है कुंभके करनेका अहंकारकरि भर्या जो पुरुष ताकरि आश्रयरूप अर व्यापाररूप है हस्त जामैं ऐसा पुरुषका शरीर ताका आकार कुंभ भया चाहिये कुंभकारका शरीरकी आकार घट वनाया चाहिये, सो ऐसें है नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका स्वभावकरि अन्यद्रव्यका परिणामका उपजना न देखिये है। तातैं जो ऐसें है तौ मृत्तिका कुंभकारके स्वभावकरि तौ नाहीं उपजे है, तौ कैसैं उपजे है? मृत्तिका स्वभावहीकरि उपजे है। जातैं अपने स्वभावहीकरि द्रव्यका परिणामका उत्पाद देखिये है। ऐसैं होतैं मृत्तिकाका स्वभावकै नाहीं उल्लंघनेतैं कुंभकार है सो कुंभका उत्पादक कहिये उपजावनहारा नाहीं है, मृत्तिका ही कुंभकारके स्वभावकूं नाहीं स्पर्शती संती अपना ही स्वभावकरि कुंभभावकरि उपजे है। ऐसे ही सर्व ही द्रव्य हैं, ते अपने परिणामरूप पर्यायकरि उपजते संते हैं, ते कहा निमित्तभूत जे अन्य द्रव्य तिनिके स्वभावकरि उपजे है की अपने स्वभावहीकरि उपजे है? ऐसे दोय पक्ष पूछी, तहां जो कहिये निमित्तभूत अन्य द्रव्यके स्वभावकरि उपजे है, तौ निमित्तभूत परद्रव्यका आकार तिसका परिणाम होय, सो ऐसैं होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका स्वभावकरि अन्य द्रव्यका परिणामका उपजनेका अदर्शन है—नाहीं देखिये है। तातैं जो ऐसे है तौ सर्व ही द्रव्य हैं ते निमित्तभूत जो परद्रव्य ताका स्वभावकरि नाहीं उपजे हैं, तौ कैसैं उपजे हैं अपने स्वभावहीकरि उपजे हैं। जातैं अपने स्वभावहीकरि सर्वद्रव्यनिका परिणामका उत्पाद देखिये है। ऐसे होतैं सर्व ही द्रव्यनिके निमित्तभूत जे अन्य द्रव्य ते अन्य द्रव्यके परिणामके उपजावनहारे नाहीं हैं। सर्व ही द्रव्य हैं ते निमित्तभूत जे अन्य द्रव्य तिनिके स्वभावकूं नाहीं स्पर्शते संते अपने स्वभावकरि

अपने परिणाम भावकरि उपजे हैं। या कारणतें आचार्य कहे हैं—जो परद्रव्य है, सो जीवके रागादिकका उपजावनहारा नाहीं देखे है, जापरि हम कोप करें।

भावार्थ—आत्माके रागादिक उपजे हैं ते अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चयनयकरि विचारिये तब इनिका उपजावनहारा अन्य द्रव्य नाहीं है। अन्य द्रव्य इनिका निमित्तमात्र हैं। जातें अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्यगुणपर्याय उपजावे नाहीं यह नियम है। तातें जे ऐसे माने हैं, जो मेरैं रागादिक परद्रव्य ही उपजावे है, ऐसा एकांत करे है, ते नयविभागमें समझे नाहीं, मिथ्यादृष्टि हैं। ए रागादिक जीवकै सत्त्वमें उपजे हैं, परद्रव्य निमित्तमात्र है, ऐसैं मानना सम्यग्ज्ञान है। तातैं आचार्य ऐसैं कहे हैं—हम राग द्वेषके उत्पत्तिमैं अन्य द्रव्यपरि काहेकूं कोप करें? राग द्वेषका उपजना आपहीका अपराध है। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥२७॥

अर्थ—जो इस आत्माविषैं राग द्वेष दोषकी उत्पत्ति है तहां परद्रव्यकूं किछू भी दूषण नाहीं है। तिस आत्माविषैं यह अज्ञान आप अपराधी फैले है। यह कथन प्रगट होऊ, अर यह अज्ञान है सो अस्त होऊ। जातैं मैं तो ज्ञानस्वरूप हौं, ऐसैं मानना सम्यग्ज्ञान है।

भावार्थ—अज्ञानी जीव राग द्वेषकी उत्पत्ति परद्रव्यतैं मानि परद्रव्यतैं कोप करे है। जो मेरै परद्रव्य राग द्वेष उपजावे है ताकूं दूरी करूं। ताकूं समझावनेकूं कहे है। जो राग द्वेषकी उत्पत्ति अज्ञानतैं आपहीकेविषैं होय है। ते आपहीके अशुद्ध परिणाम हैं। सो यह अज्ञान नाशकूं प्राप्त होऊ, अर सम्यग्ज्ञान प्रगट होऊ आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा अनुभव करौ। राग द्वेषके उपजनेमैं परद्रव्यकूं उपजावनहारा मानि तिसपरि कोप मति करौ। ऐसा उपदेश है। अब इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं अर अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

राग जन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते । उत्तरंति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥२८॥

अर्थ—जे पुरुष रागकी उत्पत्तिविषैं परद्रव्यहीका निमित्तपणा मानै हैं, अपना किछू भी हेतु न माने हैं, ते मोहरूप नदीके पार नाहीं उतरे हैं । जातैं शुद्धनयका विषयभूत जो आत्माका स्वरूप ताका ज्ञानकरि रहित अंध है बुद्धि जिनिकी ते ऐसैं हैं ।

भावार्थ—शुद्धनयका विषय आत्मा अनंत शक्तीकूं लिये चैतन्यचमत्कारमात्र नित्य अभेद एक है । तामैं यह स्वच्छता है, जो जैसा निमित्त मिलै तैसे आप परिणमे है । ऐसा नाहीं, जो पैला परिणमावै तैसे परिणमे है । अपना किछू पुरुषार्थ नाहीं है । सो ऐसे आत्माका स्वरूपका जिनिकूं ज्ञान नाहीं है, ते ऐसे माने हैं, जो आत्माकूं परद्रव्य परिणमावै है, तैसे परिणमे है । ते ऐसे माननेवाले मोहकी वाहिनी जो सेना अथवा नदी, राग द्वेषादि परिणाम तिनितैं पार नाहीं होय है । तिनिके राग द्वेष नाहीं मिटे हैं । जातैं अपना पुरुषार्थ तिनिके होनेमैं होय तौ तिनिके मेटनेमें भी होय । अर परहीके किये होय तौ पैला किया ही करै । अपना मेटना काहेका ? तातैं अपना किया होय अपना मेट्या मिटै, ऐसैं कथंचित् मानना सम्यग्ज्ञान है । आगै इस कथनकूं प्रगट करे हैं—जो स्पर्शरसगंधवर्ण शब्दरूप पुद्गल परिणमे हैं, ते इंद्रियनिकरि आत्माके जाननेमैं आवे हैं तथापि ते जड हैं । आत्माकूं किछू कहे नाहीं हैं, जो हमकूं ग्रहण करौ । आत्मा ही अज्ञानी होय तिनिकूं भले बुरे मानि रागी द्वेषी होय है । ऐसैं गाथामैं कहे हैं ।

णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि ।
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥६५॥
पोग्गलदव्वं सदुत्तह परिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिदो किंचिवि किं रूससे अबुहो ॥६६॥

असुहो सुहोव सद्दो ण तं भणदि सुणसु मंति सो चैव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं सोदु विसयमागदं सद्दं ॥६७॥
असुहं सुहं च रूवं ण तं भणादि पेच्छ मंति सो चेव ।
णाय एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रूवं ॥६८॥
असुहो सुहोय गंधो ण तं भणादि जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं ॥६९॥
असुहो सुहोय रसो ण तं भणादि रसय मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागदं तु रसं ॥७०॥
असुहो सुहोय फासो ण तं भणादि फासमंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागदं फासं ॥७१॥
असुहो सुहोय गुणो ण तं भणादि बुज्झ मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं ॥७२॥
असुहं सुहं च दव्वं ण तं भणादि बुज्झमंति सो चेव ।
णाय एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं ॥७३॥
एवं तु जणि दव्वस्स उपसमेणेव गच्छदे मूढो ।
णिग्गहमणा परस्साय सयंच बुद्धिं सिवमपत्तो ॥७४॥

निंदितसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमंति बहुकानि ।
तानि श्रुत्वा रूष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः ॥६५॥
पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः ।
तस्मान्न त्वां भणितः किंचिदपि किं रुष्यस्यबुद्धः ॥६६॥
अशुभः शुभो वा शब्दः न त्वां भणति शृणु मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दं ॥६७॥
अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपं ॥६८॥
अशुभः शुभोवा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव ।
नचेति विनिर्ग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधं ॥६९॥
अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु रसं ॥७०॥
अशुभः शुभोवा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं कायविषयमागतं तु स्पर्शं ॥७१॥
अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
नचेति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु गुणं ॥७२॥
अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु द्रव्यं ॥७३॥
एवं तु ज्ञातद्रव्यस्य उपशमेनेव गच्छति मूढः ।
विनिर्ग्रहमनाः परस्य तु स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः ॥७४॥

आत्मख्यातिः–यथेह बहिरर्थो घटादिः, देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा 'मां प्रकाशय' इति स्वप्रकाशने न

प्रदीपं प्रयोजयति । नच प्रदीपोप्ययः कांतोपलकृष्टायः सूचीवत स्वस्थानात्प्रच्युत्य तं प्रकाशयितुमायाति। किं तु वस्तुस्वभावस्व परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्तत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्संनिधानेऽपि स्वरूपेणैव प्रकाशते । स्वरूपेणैव प्रकाशमानस्य चास्य वस्तुस्वभावादेव विचित्रां परिणतिमासादयन् कमनीयोऽकमनीयो वा घटपटादिर्न मनागपि विक्रियायै कल्पते । तथा बहिरर्थः शब्दो रूपं गंधो रसः स्पर्शो गुणद्रव्ये च देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा मां शृणु मां पश्य मां जिघ्र मां रसय मां स्पर्श मां बुध्यस्वेति स्वज्ञाने नात्मानं प्रयोजयति। नचात्माप्ययःकांतोपलकृष्टायःसूचीवत् स्वस्थानात्प्रच्युत्य तान् ज्ञातुमायाति । किंतु वस्तुस्वभावस्य परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्तत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्सन्निधानेऽपि स्वरूपेणैव जानीते। स्वरूपेण जानतश्चास्य वस्तुस्वभावादेव विचित्रां परिणतिमासादयंतः कमनीया अकमनीया वा शब्दादयो बहिरर्था न मनागपि विक्रियायै कल्प्येरन् । एवमात्मा परं प्रति उदासीनो नित्यमेवेति वस्तुस्थितिः, तथापि यद्रागद्वेषौ तदज्ञानं।

अर्थ—निंदाके अर स्तुतीके वचन हैं ते बहुत प्रकार पुद्गल परिणमे हैं तिनिकूं सुणिकरि यह अज्ञानी जीव ऐसैं माने है, जो मोकूं कह्या; ऐसैं मानि रूसे है रोस करे है तथा दोष करे है। शब्दरूप परिणया पुद्गल द्रव्य है, सो यह पुद्गल द्रव्यका गुण है, अन्य है । तातैं हे अज्ञानी जीव तोकूं तौ किछू ही न कह्या, तूं अज्ञानी भया काहेकूं रोस करे है ? अशुभ अथवा शुभ शब्द है, सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो मोकूं सुणि । बहुरि श्रोत्र इंद्रियके विषयमें आया जो शब्द, ताकूं ग्रहण करनेकूं अपने स्वरूपकूं छोडि सो आत्मा भी नाहीं प्राप्त होय है । बहुरि अशुभ अथवा शुभ रूप है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं देखि । बहुरि चक्षु इंद्रियके विषयमें आया जो रूप ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशनिकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है । बहुरि अशुभ अथवा शुभ गंध है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तूं मोकूं सूंघि । बहुरि घ्राण इंद्रियके विषयमें आया जो गंध ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ रस है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं आस्वाद करि । बहुरि रसन इंद्रियका विषयमें आया जो रस ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना,

प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ स्पर्श है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है जो तू मोकूं स्पर्शि। बहुरि स्पर्शन इंद्रियके विषयमें आया जो स्पर्श ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ द्रव्यका गुण है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं जाणि। बहुरि बुद्धिके विषयमें आया जो गुण ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ द्रव्य है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं जाणि। बहुरि बुद्धीके विषयमें आया जो द्रव्य ताकूं आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। यह मूढ जीव है सो ऐसैं यहु जाणि करि उपशमभावकूं नाहीं प्राप्त होय है। अर परके ग्रहण करनेकूं मन करे है। जातैं आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान ताकूं नाहीं प्राप्त भया है।

टीका—तहां प्रथम दृष्टांत कहे हैं। जैसे बाह्यपदार्थ घट पट आदिक हैं, सो जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुष यज्ञदत्तनामा पुरुषकूं हाथ पकडि कहे, तैसे दीपककूं अपने प्रकाशने विषैं नाहीं प्रेरणा करै है, जो तू मोकूं प्रकाशि। बहुरि दीपक है सो भी अपने स्थानककूं छोडि—जैसैं चुंवक पाषाणकूं लोहकी सूई अपना स्थानककूं छोडि जाय लगै तैसैं नाहीं जाय लगे है। तौ कहा है? वस्तुका स्वभावके परकरि उपजावनेकूं अशक्यपणा है तथा परकूं उपजावनेका असमर्थपणा है। बहुरि घटपटादिक समीप नाहीं होतैं दीपक प्रकाशरूप है। तैसैं ही तिनिकूं समीप होतैं भी अपना स्वरूप ही करि प्रकाशरूप है। बहुरि अपना स्वरूप ही करि प्रकाशरूप होता दीपककै वस्तुस्वभावहोतैं विचित्र परिणतीकूं प्राप्त होता जो मनोहर अमनोहर घटपटादिपदार्थ सो किंचित्मात्र भी विक्रियाके अर्थी नाहीं कल्पिये है। तैसा ही दार्ष्टांत है। जो बाह्य पदार्थ शब्द रूप, गंध, रस, स्पर्श गुण द्रव्य हैं, ते जैसैं देवदत्तनामा पुरुष यज्ञदत्तनामा पुरुषकूं हाथ पकडि कहै, तैसैं नाहीं कहे हैं। मोकूं सुणि, मोकूं देखि, मोकूं सूंघि, मोकूं आस्वादि, मोकूं स्पर्शि, मोकूं जाणि ऐसैं अपने ज्ञानकरि आत्माकूं नाहीं प्रेरे हैं। बहुरि

आत्मा है सो भी जैसैं चुंबकपाषाणकरि खैंची लोहकी सूई पाषाणकैं जाय लगी है तैसैं अपने स्थानक प्रदेशनितैं छूटि तिनिकूं जाननेकूं नाहीं जाय है। तौ कहा है? वस्तूका स्वभावकै परकरि उपजावनेकूं अशक्यपणा है तथा परकूं उपजावनेका असमर्थपणा है। बहुरि जैसैं शब्दादिककूं समीप नाहीं होतैं तिनिकूं आत्मा अपने स्वरूपही करि जाने है, तैसैं ही तिनिकूं समीप होतैं भी अपने स्वरूपहीकरि तिनिकूं जाने है, बहुरि अपने स्वरूप ही करि शब्दादिककूं जानता आत्माके ते शब्द आदिक वस्तुस्वभावहीतैं विचित्रपरिणतीकूं प्राप्त होते मनोहर तथा अमनोहर बाह्यपदार्थ किंचिन्मात्र भी विक्रियाके अर्थी नाहीं कल्पिये हैं। ऐसैं आत्मा है सो दीपककी ज्यौं परद्रव्यप्रति नित्य ही उदासीन हैं। ऐसी ही वस्तुकी मर्यादा है, तौऊ जो राग द्वेष उपजे है सो अज्ञान है।

भावार्थ—आत्मा शब्दकूं सुणिकरि, रूपकूं देखिकरि, गंधकूं सूंघिकरि, रसकूं आस्वादकरि, स्पर्शकूं स्पर्शिकरि, गुणद्रव्यकूं जाणिकरि भला बुरा मानिकरि राग द्वेष उपजावे है, सो यह अज्ञान है। जातैं ते शब्दादिक तौ जड पुद्गलद्रव्यके गुण हैं। सो आत्माकूं कछू कहे नाहीं जो हमकूं ग्रहण करौ। अर आप भी अपना प्रदेशनिकूं छोडि तिनिकूं ग्रहण करनेकूं तिनिविषैं जाय नाहीं है। जैसैं तिनिकूं समीप नाहीं होतैं जाने है, तैसैं ही समीप होतैं जाने है। आत्माके विकारके अर्थि किंचिन्मात्र भी नाहीं है। जैसैं दीपक घटपटादिककूं प्रकाशे है, तैसैं आत्मा तिनिकूं जाने है, ऐसा वस्तूका स्वभाव है। तौऊ आत्मा राग द्वेष उपजावे है सो यह अज्ञान ही है। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे है।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं, यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो, रागद्वेषमयीं भवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥२२॥

अर्थ—यह बोद्धा कहिये ज्ञानी है सो पूर्ण अर एक जो च्युत नाहीं होय अर शुद्ध—विकारतैं

रहित ऐसा जो ज्ञान तिस स्वरूप है महिमा जाकी ऐसा है। सो ऐसा ज्ञानी बोध्य कहिये ज्ञेय पदार्थ तिनितैं किछू भी विक्रियाकूं नाहीं प्राप्त होय है। जैसैं दीपक है सो प्रकाशनेयोग्य घटपट आदि पदार्थ हैं तिनितैं विक्रियाकूं प्राप्त नाहीं होय है, तैसें। सो ऐसे वस्तूकी मर्यादाका ज्ञान-करि रहित है धिषणा कहिये बुद्धि जिनकी ऐसे भये संते ए अज्ञानी जीव अपनी स्वाभा-विक उदासीनताकूं क्यौं छोडे हैं ? अर राग द्वेषमय क्यौं होय हैं ? ऐसा आचार्यने शोच किया है।

भावार्थ—ज्ञानका स्वभाव ज्ञेयकूं जाननेहीका है। जैसा दीपकका स्वभाव घटपट आदि-ककूं प्रकाशनेका है। यह वस्तुस्वभाव है। ज्ञेयकूं जाननेमात्रतैं ज्ञानमें विकार नाहीं होय है। अर ज्ञेयकूं जानिकरि भला बुरा मानि आत्मा रागी द्वेषी विकारी होय है। सो यह अज्ञान है। सो आचार्य शोच किया है—जो वस्तूका स्वभाव तौ ऐसे, अर यह आत्मा अज्ञानी होयकरि राग-द्वेषरूप क्यौं परिणमे है ? अपनी स्वाभाविक उदासीनता अवस्थारूप क्यौं रहै नाहीं ? सो यह आचार्यका शोच युक्त है, जातैं जेतैं शुभ राग है तेतैं प्राणीनिकूं अज्ञानतैं दुःखी देखि करुणा उपजै तब शोच होय हैं। अब अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं विन्दंति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम् ॥३०॥

अर्थ—ज्ञानी है ते कैसे हैं ? राग द्वेष जे विभाव तिनिकरि रहित है मह कहिये तेज जिनिका। बहुरि कैसे हैं ? नित्य ही अपना चैतन्यचमत्कारमात्र स्वभाव है ताकूं स्पर्शनेवाले हैं। बहुरि कैसे हैं ? पूर्वे किये जे समस्त कर्म अर आगामी होयगे जे समस्त कर्म तिनितैं रहित हैं। बहुरि कैसे हैं ? तदात्व कहिये वर्तमानकालमें आवै जो कर्मका उदय तातैं भिन्न हैं। ऐसैं ज्ञानी हैं ते अति-शयकरि अंगीकार किया जो चारित्र ताका जो विभव समस्त परद्रव्यका त्याग ताके बलतैं ज्ञानकी

सम्यक्प्रकार चेतना ताकूं अनुभवे हैं। कैसो है ज्ञानचेतना? चञ्चत् कहिये चिमकती जागती जो चैतन्यरूप ज्योति तिसमयी है। वहुरि कैसी ह? अपना ज्ञानरूप रस ताकरि सिंच्या है भुवन कहिये तीन लोक जीहि।

भावार्थ—जिनिका राग द्वेष गया अर अपने चैतन्य स्वभावका अंगीकार भया अर अतीत अनागत वर्तमान कर्मका ममत्व गया ऐसे ज्ञानी सर्व परद्रव्यतैं न्यारे होय चारित्रकूं अंगीकार करे हैं। ताके बलतैं कर्मचेतना अर कर्मफलचेतनातैं न्यारी जो अपनी चैतन्यके परिणमनस्वरूप ज्ञानचेतना ताकूं अनुभवन करे हैं। इहां तात्पर्य यह जानना—जो पहलै तौ कर्मचेतना अर कर्मफल चेतनातैं भिन्न अपनी ज्ञानचेतनाका स्वरूप आगम अनुमान स्वसंवेदन—प्रमाणतैं जानै अर ताका श्रद्धान—प्रतीति दृढ करै सो यह तौ अविरत देशविरत प्रमत्त अवस्थामैं भी होय है। वहुरि जब अप्रमत्त अवस्था होय है, तब अपना स्वरूपहीका ध्यान करे है। तब ज्ञानचेतनाका जैसा श्रद्धान किया तिसविषैं लीन होय है। तब श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजाय साक्षात् ज्ञानचेतनारूप होय है, ऐसैं जानना। अब इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं। तहां अतीत कर्मतैं ममत्व छोडै सो प्रतिक्रमण है; आगामी न करनेकी प्रतिज्ञा करै सो प्रत्याख्यान है, वर्तमानकर्म उदय आया ताका ममत्व छोडै सो आलोचना है, ऐसा चारित्रका विधान है, ताकूं कहे हैं। गाथा—

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥७५॥
कम्मं जं सुहमसुहं जह्मिय भावेण बज्झदि भविस्सं।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवे चेदा ॥७६॥

५३७

जं सुहमसुहमुदिरणं संपडिय अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेददि स खलु आलोयणं चेदा ॥७७॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चंपि जो पडिक्कमदि ।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ॥७८॥

कर्म यत्पूर्वकृतं शुभाशुभमनेकविस्तरविशेषं ।
तस्मान्निवर्तयत्यात्मानं तु यः स प्रतिक्रमणं ॥७५॥
कर्म यच्छुभमशुभं यस्मिंश्च भावे बध्यते भविष्यत् ।
तस्मान्निवर्तते यः स प्रत्याख्यानं भवति चेतयिता ॥७६॥
यच्छुभमशुभमुदीर्णं संप्रति चानेकविस्तरविशेषं ।
तं दोषं चेतयते स खल्वालोचनं चेतयिता ॥७७॥
नित्यं प्रत्याख्यानं करोति नित्यमपि यः प्रतिक्रामति ।
नित्यमालोचयति स खलु चरित्रं भवति चेतयिता ॥७८॥

आत्मख्यातिः—यः खलु पुद्गलकर्मविपाकभवेभ्यो भावेभ्यश्चेतयितात्मानं निवर्तयति स तत्कारणभूतं पूर्वकर्म प्रतिक्रामन् स्वयमेव प्रतिक्रमणं भवति। स एव तत्कार्यभूतमुत्तरं कर्म प्रत्याचक्षाणः प्रत्याख्यानं भवति। स एव वर्तमानकर्मविपाकमात्मनोऽत्यंतभेदेनोपलभमानः, आलोचना भवति। एवमयं नित्यं प्रतिक्रामन्, नित्यं प्रत्याचक्षाणो नित्यमालोचयंश्च पूर्वकर्मकार्येभ्य उत्तरकर्मकरणेभ्यो भावेभ्योत्यंतं निवृत्तः, वर्तमानं कर्मविपाकमात्मनोऽत्यंतभेदेनोपलभमानः स्वस्मिन्नेव खलु ज्ञानस्वभावे निरंतरचरणाच्चारित्रं भवति। चारित्रं तु भवन् स्वस्य ज्ञानमात्रस्य चेतनात् स्वयमेव ज्ञानचेतना भवतीति भावः।

अर्थ—पूर्वे अतीतकालमें किये जे शुभ अशुभ ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार

विशेषरूप कर्म तिनितैं जो चेतयिता आत्मा अपने आत्माकूं निवर्तन करै छुडावै सो आत्मा प्रतिक्रमणस्वरूप है। बहुरि जो आगामी कालमैं कर्म शुभ तथा अशुभ जिस भावके होतैं बंधे है तिस अपने भावतैं जो चेतयिता निवृत्त होय छूटै सो आत्मा प्रत्याख्यानस्वरूप है। बहुरि जो वर्तमानकालमैं शुभ तथा अशुभ कर्म अनेक प्रकार ज्ञानावरण आदि विस्ताररूप विशेषनिकूं लिये उदय आया ताकूं दोषकूं जो चेतयिता चेतरूप भया चेतै, वेदै—अनुभवै, तिसका स्वामिपणा कर्तापणा छोडै सो आत्मा आलोचनास्वरूप है। ऐसैं जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करे है, नित्य प्रतिक्रमण करे है, नित्य आलोचना करे है सो चेतयिता चारित्रस्वरूप है।

टीका—जो आत्मा पुद्गलकर्मके उदयतैं भये भावनितैं अपने आत्माकूं निवर्तन करै, छुडावै सो आत्मा तिस भावकूं कारणभूत जो पूर्वं अतीतकालमैं किये कर्मकूं प्रतिक्रमणरूप करता संता आप ही प्रतिक्रमणस्वरूप होय है। बहुरि सो ही आत्मा पूर्वकर्मका कार्यभूत जो आगामी बंधेगा कर्म ताकूं प्रत्याख्यानरूप करता—त्यागता संता आप ही प्रत्याख्यानस्वरूप होय है। बहुरि सो ही आत्मा वर्तमान जो कर्मका उदय तातैं आपकूं अत्यंत भेदकरि अनुभवन करता संता प्रवर्तै सो आप ही आलोचनास्वरूप होय है। ऐसैं यह आत्मा नित्य प्रतिक्रमण करता संता, नित्य प्रत्याख्यान करता संता, नित्य आलोचना करता संता, पूर्वकर्मके कार्यरूप अर उत्तर आगामी कर्मके कारणरूप जो भाव तिनितैं अत्यंत निवृत्तिस्वरूप भया संता, अर वर्तमान जो कर्मका उदय तातैं आपकूं अत्यंत भेदकरि पावता संता अपना जो ज्ञानस्वभाव तिस ही विषैं निरंतर प्रवर्तनेतैं आप ही चारित्रस्वरूप होय है। बहुरि ऐसैं चारित्ररूप होता संता आपकूं ज्ञानमात्र चेतनेतैं अनुभवनेतैं आप ही ज्ञानचेतनास्वरूप होय है, ऐसा भाव है।

भावार्थ—इहां निश्चयचारित्र प्रधानकरि कथन है। तहां चारित्रमैं प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचनाका विधान है। तहां लग्या दोषतैं आत्माकूं निर्वर्तन करना सो तौ प्रतिक्रमण है। अर आगामी दोष लगावनेका त्याग करना सो प्रत्याख्यान है। अर वर्तमान दोषतैं आत्माकूं न्यारा

करना सो आलोचना है। सो निश्चय विचारिये तब तीनू कालसंबंधि कर्मनितैं आत्माकूं भिन्न जानना, श्रद्धना, अनुभवना ऐसे किये आत्मा ही प्रतिक्रमण है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही आलोचना है। तीनों स्वरूप निरंतर आत्माका अनुभवन सो ही चारित्र है। अर निश्चय-चारित्र है सो ही ज्ञानचेतनाका अनुभवन है। इस ही अनुभवनतैं साक्षात् ज्ञानचेतनास्वरूप केवलज्ञानमय आत्मा प्रगट होय है। अब आगै ज्ञानचेतना अर अज्ञानचेतना जो कर्मचेतना अर कर्मफलचेतना ताका स्वरूप प्रकट करे हैं। ताकी सूचनिकाका काव्य कहै हैं।

उपजातिछन्दः

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्धम्।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥२१॥

अर्थ—ज्ञानकी संचेतनाकरि ही ज्ञान है सो अत्यंत शुद्ध निरंतर प्रकाशे है। बहुरि अज्ञानकी चेतनाकरि बंध है सो दोडता संता ज्ञानकी शुद्धताकूं रोके है, न होने दे है।

भावार्थ—संचेतना कहिये जो जहां जिसतैं एकाग्र होय तिस ही ओर अनुभवनरूप स्वाद लिया करै सो तिस स्वरूपचेतना कहिये। सो जब ज्ञानहीतैं एकाग्र उपयुक्त होय तिस ही ओर चेत राखै सो तौ ज्ञानचेतना है। सो यातैं तौ ज्ञान अत्यंत शुद्ध होय प्रकाशे है, केवलज्ञान उपजि आवै है तब संपूर्ण ज्ञानचेतना नाम पावे है। बहुरि अज्ञान जो कर्म अर कर्मका फलरूप उपयोगकूं करना सो तिस ही ओर एकाग्र होय अनुभव करना सो अज्ञानचेतना है। सो यातैं कर्मका बंध होय है। सो ज्ञानकी शुद्धताकूं रोके है। अब इस कथनकूं गाथाकरि कहे हैं। गाथा—

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥७९॥

वेदंतो कम्मफलं मयेकदं जो दु मुणदि कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥८०॥
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो दु हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणोवि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥८१॥

वेदयमानः कर्मफलमात्मानं यस्तु करोति कर्मफलं ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥७९॥
वेदयमानः कर्मफलं मया कृतं यस्तु जानाति कर्मफलं ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥८०॥
वेदयमानः कर्मफलं सुखितो दुःखितश्च भवति चेतयिता ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥८१॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानादन्यत्रेदमहमिति चेतनं अज्ञानचेतना । सा द्विधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च । तत्र ज्ञानादन्यत्रेदमहं करोमीति चेतनं कर्मचेतना । ज्ञानादन्यत्रेदं वेदयेऽहमिति चेतनं कर्मफलचेतना । सा तु समरसापि संसारबीजं । संसारबीजस्याष्टविधकर्मणो बीजत्वात् । ततो मोक्षार्थिना पुरुषेणाज्ञानचेतनाप्रलयाय सकलकर्मसन्यासभावनां सकलकर्मफलसन्यासभावनां च नाटयित्वा स्वभावभूता भगवती ज्ञानचेतनैवैका नित्यमेव नाटयितव्या ।

तत्र तावत्सकलकर्मफलसन्यासभावनां नाटयति—

अर्थ—जो आत्मा कर्मका फलकूं वेदता संता कर्मफलकूं आपरूप ही करै मानै, सो फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है । बहुरि कर्मका फलकूं वेदता संता आत्मा तिस कर्मफलकूं ऐसैं जाने है यह मैं किया है सो फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है । बहुरि कर्मका फलकूं वेदता संता आत्मा है सो सुखी दुःखी होय है । सो चेतयिता फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है ।

टीका—ज्ञानतैं अन्य जो अन्यभाव ताविषैं ऐसैं चेतै अनुभवै मानै, यह जो मैं हौं, सो अज्ञानचेतना है। सो दोय प्रकार है। कर्मचेतना कर्मफलचेतना। तहां ज्ञानसिवाय अन्य भावनिविषैं ऐसैं चेतै अनुभवै मानै, जो याकूं मैं करूं हौं, सो तौ कर्मचेतना है। बहुरि ज्ञानसिवाय अन्य भावनिविषैं एसैं चेतै अनुभवै मानै जो याकूं मैं वेदूं हौं, भोगऊं हौं, सो कर्मफल चेतना है। सो यह दोऊ ही दोऊ प्रकारकी अज्ञानचेतना है। सो संसारका बीज है। जातैं संसारका बीज अष्टप्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म है। ताका यह अज्ञानचेतना बीज है। यातैं कर्म उपजे है बंधे है। तातैं जो मोक्षका अर्थी पुरुष है ताकरि अज्ञानचैतनाका नाशके अर्थी समस्तकर्मकी संन्यासभावना कहिये पटकी देणेकी भावनाकूं नचायकरि नृत्य करायकरि अर फेरि समस्त कर्मके फलकी संन्यासकी भावना त्यागकी भावनाकूं नचायकरि अर अपना स्वभावभूत जो ज्ञानवती भगवती एक ज्ञानचेतना ताहीकूं निरंतर नृत्य करावने योग्य है। तहां प्रथम ही सकलकर्मके संन्यासकी भावनाकूं नृत्य करावे हैं। ताका कलशरूप काव्य है।

आर्याछन्दः

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः। परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३२॥

अर्थ—अतीत अनागत वर्तमानकालसंबंधी सर्व ही कर्म है ताही कृत, कारित, अनुमोदना, अर मन वचन कायकरि परिहारकरि छोडिकरि उत्कृष्ट निष्कर्म अवस्था है, ताही मैं अवलंबन करौं हौं। ऐसैं सर्व कर्मका त्याग करनेवाला ज्ञानी प्रतिज्ञा करै है। अब सर्वकर्मका त्याग करनेका कृत कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि गुणचास भंग होय है। तहां अतीतकालसंबंधी कर्मके त्याग करनेकूं प्रतिक्रमण कहिये। ताके प्रथम ही गुणचास भंग करि कहे हैं। तहां टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति २ यदहमकार्षं यद-

चीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३ यदहमकार्षं यदचीकरं
यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंत-
मप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ५ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति ६ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे
दुष्कृतमिति ७ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ८ यदहमकार्षं यत्कुर्वं-
तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ९ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं
समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १० यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च वाचा च
तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ११ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृत-
मिति १२ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति १३ यदहमका-
र्षं यदचीकरं मनसा कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १४ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च
कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १५ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या
मे दुष्कृतमिति १६ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १७ यदहमकार्षं यत्कुर्वंत-
मप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १८ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १९ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २०
यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २१ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं
समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २२ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २३
यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २४ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं सम-
न्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २५ यदहमकार्षं यदचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २६ यदहम-
कार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २७ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २८ यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २९ यदचीकरं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ३० यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन
च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३१ यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३२ यदहमची-
करं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३३ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे

दुष्कृतमिति ३४ यदहमकार्षं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३५ यदहमचीकरं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३६ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३७ यदहमकार्षं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३८ यदहमचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३९ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४० यदहमकार्षं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४१ यदहमचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४२ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४३ यदहमकार्षं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४४ यदहमचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४५ तत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४६ यदहमकार्षं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४७ यदहमचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४८ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४९ ।

अर्थ—प्रतिक्रमण करनेवाला कहे है—जो मैं दुष्कृत कहिये पापकर्म अतीतकालमैं किया था, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया था, अर अन्यकूं करतेकूं अनुमोद्या था भला जाण्या था, मनकरि, वचनकरि, कायकरि, सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ ।

भावार्थ—पापकर्मकूं संसारका बीज जाणि हेयबुद्धि आई तब ममत्व छोड्या, यह ही मिथ्या करना । ऐसैं यह एक भंग भया । सो याकी समस्या ऐसी—जो कृत कारित अनुमोदना ए तीन है, ताका तो तीनका अंक स्थापिये । बहुरि मन वचन काय ए भी तीन यामैं लागै । तातैं याका दूसरा तीया स्थापिये तब तेतीसका अंक भया । सो इस भंगकूं तेतीसका है, ऐसा नाम कहिये। ३३।१। ऐसे ही टीकामें अन्यभंगनिका संस्कृत पाठ है, तिनिकी वचनिका करि लिखिये है । जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । ऐसा दूसरा भंग है । इहां समस्या—कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है । अर मन अर वचन दोय ही लागै । काय न लागै। तातैं दोयका अंक थापिये, तब तीया अर दूवा ऐसे बत्तीसका भंग नाम भया । ३२।२ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं कीया, अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या,

मनकरि अर कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा तीसरा भंग है इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही भया। अर मनकरि अर कायकरि ऐसैं दोय लागै। यातैं तीया दूवा ऐसैं याका नाम बत्तीसका भंग भया। इहां वचन न लाग्या। ३२। ३। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भी भला जाण्या, वचनकरि अर कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा चौथा भंग है। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है। अर वचन अर काय दोय लागै। मन न लाग्या। तातैं दूवा भया। तातैं याकूं भी बत्तीसका भंग कहिये। इहां ताई बत्तीसके तीन भंग भये। ४।३२।

बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमें मैं किया अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर करतेकूं भला जाण्या, मनहीकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा पांचमा भंग भया। यहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर एक मन ही लाग्या ताका एका भया। वचन काय न लाग्या। तातैं याका नाम इकतीसका भंग कह्या। ५।३१। बहुरि जो मैं अतीतकालमैं पापकर्म किया अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, वचनकरि, सो पाप-कर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा छट्ठा भंग भया। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर वचन ही एक लाग्या, मन काय न लाग्या। तातैं तीया एका ऐसैं इकतीसका भंग नाम भया। ६।३१। बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह सातवा भंग भया। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर काय एक ही लाग्या। मन वचन न लाग्या। तातैं तीया एका ऐसा इकतीसका भंग नाम भया। ७।३१। ऐसे इकतीसके भी तीन ही भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर जो अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, मन वचन काय-करि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह आठवा भंग भया। इहां कृत कारित ए दोय

ही लगाये, अर मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं दूवा तीया ऐसा समस्यामैं तेईसका भंग नाम भया।८।२३। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, मन वचन कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा नवमा भंग है। इहां कृत अनुमोदना ए दोय ही लीये। अर मन वचन काय तीनूं ही लागै। तातैं दूवा तीया ऐसी तेईसकी समस्या भई। तातैं तेईसका भंग नाम पाया।९।२३। बहुरि जो पापकर्म मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मन वचन कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह दशमा भंग है। इहां कारित अनुमोदना दोय ही लिये अर मन वचन काय तीनूं ही लागै। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया।१०।२२। ऐसे तेईसके भी तीन ही भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मन वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह ग्यारहमा भंग भया। यामें कृत कारित दोय लिये। अर मन वचन दोय लागे। तातैं दोय दोय ऐसी बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम कहिये। ११।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा बारवा भंग है। यामैं कृत अनुमोदना दोय लिये। मन वचन ए दोय लागै। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये।१२।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा तेरवा भंग है। यामैं कृत कारित दोय लीये। मन वचन दोय लागै। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम पाया।१३।२२। बहुरि जो मैं अतीतकालमें पापकर्म किया, अर अन्यकूं प्रेरि कराया मनकरि कायकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ। यह चौदवां भंग भया। यामैं कृत कारित दोऊ लिये। मन काय दोय लागै। तातैं बाइसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये।१४।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं किया अतीतकालमैं, अर करतेकूं अन्यकूं भला जाण्या मनकायकरि ऐसा पंदरवां भंग है। यामैं कृत

अनुमोदना लिया। अर मन काय लागै। तातैं बाईसका भंग कहिये।१५।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जान्या मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा सोलवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना लिया। मन काय लागा। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम है। १६।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह सतरावां भंग है। यामैं कृत कारित लिया। वचन काय लाग्या। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये। १७।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह अठारवा भंग है। यामैं कृत अनुमोदना लिया। वचन काय लागै। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये। १८।२२। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि मैं कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह उगणीसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना ए दोय लिये। अर वचन काय लागा। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये। १९।२२। ऐसे बाईसकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया एक मनहिकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह वीसवा भंग है। यामैं कृत कारित दोय लिया। अर एक मन ही लागा। तातैं दूवा एकातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये। २०।२१। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह इकईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना ए दोय लिये। एक मन लागा। तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये ॥२१।२१॥ बहुरि जो पापकर्म किया मैं अतीतकालमैं अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि, सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ। यह बाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना ए दोय लिये। अर एक

मन लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंगनाम है ॥२२।२१॥ बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं कीया । अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ । यह तेईसवां भंग है । यामैं कृत कारित ए दोय लिये । अर वचन ही लागा ताका दूवा एका ऐसा इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये ।२३।२१ । बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकाल मैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चौवीसवां भंग है । यामैं कृत अनुमोदना ए दोय लिये । अर एक वचन ही लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये । २५।२१ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर करतेकूं अन्यकूं ते भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह पचीसवां भंग भया । यामैं कारित अर अनुमोदना ए दोय लिये । अर एक वचन ही लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग भया । २५।२१ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया कायकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ । यह छवीसवां भंग है । यामैं कृत कारित दोय लिये । अर एक काय लगाया । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये । २६।२१ । बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पाप कर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह सताईसवां भंग है । यामैं कृत अनुमोदना दोय लीये । अर एक काय लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंगनाम कहिये ।२७।२१ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह अठाईसवां भंग है । यामैं कारित अनुमोदना ए दोय ले, एक काय लगाया । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग नाम है । २८।२१। ऐसे इकईसके नव भंग भये ।

बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया, मनकरि वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह गुणतीसवां भंग है । यामैं कृत एकही ले, मन वचन काय तीनूं लगाये ।

तातैं तेराकी समस्यातैं तेराका भंग कहिये ॥२९।१३॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनवचनकायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तीसका भंग है। यामैं कारित एक ले, मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं एक तीयातैं तेराकी समस्यातैं तेराका भंग कहिये ॥३०।१३॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह इकतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं एका तीया तेराकी समस्यातैं तेराका भंग है ॥३१।१३॥ ऐसे तेराके समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया मनवचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह बत्तीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३२।१२॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीत कालमैं अन्यकूं प्रेरकरि कराया मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तेतीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं एका दुवा ऐसी बारहकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३३।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि सो यह पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चौतीसवां भंग भया। यामैं अनुमोदना एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं एका दूवा एसा बारहका भंग कहिये ॥३४।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह पैंतीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, मन अर काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३५।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह छतीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, मन अर काय ए दोय लगाये तातैं बारहकी समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३६।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह

सैतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, मन अर काय लगाये। तातैं बारहकी समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३७।१२॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकाल मैं किया वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह अठतीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, वचन अर काय दोय लगाये। तातैं बारहको समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३८।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचन कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह गुणतालीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, वचन काय दोय लगाय, तातैं बारहको समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३९।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चालीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, वचन अर काय ए दोऊ लगाये। तातैं बारहकी समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥४०।१२॥ ऐसैं बारहकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया मनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह इकतालीसवां भंग है। यामैं एक कृत ले, एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ॥४१।११॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह बियालीसवां भंग है। यामैं एक कारित ले, एक मन लगाया, तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ॥४२।११॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तियालिसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदना ले, एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग भया ४३।११ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चवालीसवां भंग है। यामैं एक कृत ले, एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये। ४४।११। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह पैंतालीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, एक

वचन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ।४५।११। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह छियालीसवां भंग है । यामैं एक अनुमोदना ले एक वचन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४६।११ । बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह सैतालीसवां भंग है यामैं एक कृत ले, एक काय लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४७।११। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह अठतालीसवा भंग है । यामैं एक कारित ले, एक काय लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ।४८।११। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह गुणचासवां भंग है । यामैं एक अनुमोदना ले, एक काय लगाया । तातैं एका एका ऐसैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४९।११। ऐसे ग्यारहके नव भंग भये । ऐसे गुणचास भंग हैं । तिनिमैं तेतीसकी समस्याका एक १ । बत्तीसका तीन ३ । इकतीसका तीन ३ । तेईसका तीन ३ । बाईसका नव ९ । इकईसका नव ९ । तेराका तीन ३ । बारहका नव ९ । ग्यारहका नव ९ । ऐसे सब मिलि गुणचास भये ।

इनि गुणचास भंगनिका संक्षेपपाठ ऐसा जानना—कृत कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि । ३३ । ए तेतीसकी समस्याका भंग । १ । कृत कारित अनुमोदना मन वचनकरि । ३२ । कृत-कारित अनुमोदना मन कायकरि ३२ । कृत कारित अनुमोदना वचनकायकरि ३२ । ए तीन बत्तीसकी समस्याका ३ । कृत कारित अनुमोदना मनकरि । ३१ । कृत कारित अनुमोदना वचनकरि । ३१ । कृत कारित अनुमोदना कायकरि । ३१ । ए इकतीसकी समस्याका तीन । ३ । कृत कारित मन वचन कायकरि । २३ । कृत अनुमोदना मन वचन कायकरि । २३ । कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि । २३। ए तेईसकी समस्याका तीन ।३। कृत कारित मन

वचनकरि ।२२। कृत अनुमोदना मन वचनकरि । २२ । कारित अनुमोदना मन वचनकरि ।२२। कृत कारित मनकायकरि ।२२। कृत अनुमोदना मनकायकरि ।२२। कारित अनुमोदना मनकायकरि ।२२। कृत कारित वचनकायकरि । २२ । कृत अनुमोदना वचनकायकरि ।२२। कारित अनुमोदना वचन कायकरि ।२२। ए नव वाईसको समस्याको ।९। कृत कारित मनकरि ।२१। कृत अनुमोदना मनकरि ।२१। कारित अनुमोदना मनकरि ।२१। कृत कारित वचनकरि ।२१। कृत अनुमोदना वचन करि ।२१। कारित अनुमोदना वचनकरि ।२१। कृत कारित कायकरि । २१ । कृत अनुमोदना कायकरि । २१ । कारित अनुमोदना कायकरि । २१ । ए नव इकईसकी समस्याका है । ९ । कृत मन वचन कायकरि । १३ । कारित मन वचन कायकरि । १३ । अनुमोदना मन वचन कायकरि ।१३। ए तेराकी समस्याका तीन । ३ । कृत मन वचनकरि । १२ । कारित मन वचन-करि वारह ।१२। अनुमोदना मन वचनकरि ।१२। कृत मनकायकरि । १२ । कारित मनकायकरि ।१२। अनुमोदना मनकायकरि । १२ । कृत वचनकायकरि ।१२। कारित वचनकायकरि । १२ । अनुमोदना वचनकायकरि ।१२। ए नव वाराकी समस्याका है । ९ । कृत मनकरि । ११ । कारित मनकरि ।११। अनुमोदना मनकरि ।११। कृत वचनकरि ।११। कारित वचनकरि ।११। अनुमोदना वचनकरि ।११। कृत कायकरि ।११। कारित कायकरि ।११। अनुमोदना कायकरि ।११। ए नव ग्याराकी समस्याका है । ९ । ऐसे तेतीसका एक ।१। वत्तीसका ३ । इकतीसका ३ । तेईसका ३ । वाईसका ९ । इकईसका ९ । तेराका ३ । वाराका ९ । ग्याराका ९ । सव मिलि गुणचास भये । अव इस कथनका कलशरूप काव्य है सो लिखिये है ।

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य । आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३३॥

अर्थ—जो मैं मोहतैं अज्ञानतैं, अतीतकालविषैं कर्म किये तिनि समस्तहीकूं प्रतिक्रमणरूप-करि अर समस्त कर्मतैं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं आपहीकरि निरंतर वर्तौं हौं। ऐसैं ज्ञानी अनुभव करै ।

भावार्थ—अतीतकालमें किये कर्मका गुणचास भंगरूप मिथ्याकार प्रतिक्रमणकरि ज्ञानी ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं लीन होय निरंतर अनुभव करै। ताका यह विधान है। मिथ्या कहनेका प्रयोजन यहु जो जैसैं कोई पहलै धन कमाय घरमे धरया था। पीछे तासूं ममत्व छोडया। तब ताका भोगनेका अभिप्राय नाहीं। कमाया था जैसा न कमाया। तैसैं कर्म बांध्या था, ताकूं अहित जानि ममत्व छोडया। ताका फलमें लीन न होयगा, तब बांध्या तैसा न बांध्या मिथ्या ही है। ऐसा जानना। ऐसा प्रतिक्रमणकल्प है। अब आलोचनाकल्प है। तहां संस्कृत टीकाका पाठ ऐसा—

न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति २ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति ३ करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा कायेन चेति ४ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ५ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ६ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ७ न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ८ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ९ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वावा च कायेन चेति १० न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा चेति ११ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति १३ न करोमि न कारयामि मनसा च कायेन चेति १४ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १५ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १६ न करोमि न कारयामि वाचा च कायेन चेति १७ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १८ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १९ न करोमि न कारयामि मनसा चेति २० न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २१ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २२ न करोमि न कारयामि वाचा चेति २३ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २४ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २५ न करोमि न कारयामि कायेन चेति २६ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २७ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २८ न

करोमि मनसा च वाचा च कायेन चेति २९ न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३१ न करोमि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३२ न कारयामि मनसा च वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति ३४ न करोमि मनसा च वाचा चेति ३५ न कारयामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करोमि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारयामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति ४० न करोमि मनसा चेति ४१ न कारयामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ४३ न करोमि वाचा चेति ४४ न कारयामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ४६ न करोमि कायेन चेति ४७ न कारयामि कायेन चेति ४८ कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ४९ ।

याका अर्थ—यामैं वर्तमान कर्तापणाका निषेध है। जो मैं कर्मकूं न करौ हौं, न अन्यकूं प्रेरि कराऊं हौं, न अन्यकूं कर्ताकूं भी भला जानूं हौं, मनकरि वचनकरि कायकरि। ऐसा प्रथम भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन काय लगाये। तातैं तीन-तीनका अंककी समस्यातैं तेतीसका भंग कहिये। १।३३। ऐसे ही अन्यभंगनिके संस्कृत पाठ हैं; तिनिकी वचनिका लिखिये। तहां—वर्तमान कर्मकूं मैं न करौ हौं, न अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं हौं, न अन्यकूं करतेकूं भला जाणूं हौं, मनकरि वचनकरि। ऐसा दूसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं तीया दुवा ऐसैं बत्तीसकी समस्याका भंग कहिये।२।३२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करौ हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा तीसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदनापरि मन काय लगाये। तव बत्तीसकी समस्याका भंग भया।३।३२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करौ हौं, अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं, भला न जाणूं हौं वचनकरि कायकरि। ऐसा चौथा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि वचन काय ए दोय लगाये तव बत्तीसकी समस्याका भंग भया। ४।३२। ऐसैं बत्तीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला न जाणूं हौं मनकरि ऐसा पांचवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक मन लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग भया ॥५।३१॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं वचनकरि, ऐसा छठा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक वचन लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग कहिये ॥६।३१॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं कायकरि, यह सातमा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक काय लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग भया। ७।३१॥ ऐसैं इकतीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह आठवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग कहिये ॥८।२३॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह नवमां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया ॥९।२३॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह दशमा भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया ॥१०।२३॥ ऐसैं तीन भंग तेईसकी समस्याके भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, मनकरि वचनकरि, ऐसा ग्यारवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये तातैं बाईसकी समस्याका भंग भया। ११।२२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं अन्य करतेकूं भला नाही

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि, यह इकईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२१।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं कराऊं नाहीं हौं, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि, यह बाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २२।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं वचनकरि, यह तेईसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एकवचन लगाया। तातैं इकईसको समस्या भई। २३।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं वचनकरि ऐसा चोईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। ऐसी इकईसकी समस्या भई २४।२१ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं, वचनकरि ऐसा पचीसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २५। २१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं कायकरि, ऐसा छवीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २६।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं, कायकरि, ऐसा सताईसवां भङ्ग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २७।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं कायकरि, ऐसा अठाईसवां भङ्ग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २८।२१। ऐसे इकईसके नव भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई ॥२९।१३॥ बहुरि

वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं मन वचन कायकरि, ऐसा तीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई।३०।१३। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा इकतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई।३१।१३। ऐसे तेराकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि वचनकरि, ऐसा बत्तीसका भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३२।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं नाहीं कराऊं हौं मनकरि वचनकरि, ऐसा तेतीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३३।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं करताकूं मैं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि ऐसा चौतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३४।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि कायकरि ऐसा पैंतीसवां भंग है। यामैं कृत एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३५।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा छत्तीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३६।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा सैंतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३७।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं वचनकरि कायकरि ऐसा अठतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि वचन काय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३८।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३९।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला

नाहीं जानूं हौं, वचनकरि कायकरि, ऐसा चालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई। ४०।१२। ऐसे नव भंग बारहके भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि, ऐसा इकतालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक मन लागा। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४१।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं नाहीं कराऊं हौं, मनकरि, ऐसा बियालीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि एक मन लागा तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४२।११। बहुरि वर्तमान कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि ऐसा तियालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४३।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं वचनकरि, ऐसा चवालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि वचन एक लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४४।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं वचनकरि, ऐसा पैंतालीसवां भंग। यामैं एक कारितपरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४५।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं वचनकरि, ऐसा छियालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४६।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं कायकरि, ऐसा सैंतालीसवां भङ्ग भया। यामैं एक कृतपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४७।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊं हौं कायकरि, ऐसा अठतालीसवां भङ्ग है। यामैं एक कारितपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४८।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करताकूं भला नाहीं जानूं हौं कायकरि, ऐसा गुणचासवां भङ्ग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४९।११। ऐसैं ग्यारहकी समस्याके नव भङ्ग भये। ऐसे आलोचनाके गुणचास भंग हैं। इनिमैं तेतीसकी समस्याका एक १। बत्तीसका तीन ३। इकतीसका तीन ३। तेईसका तीन ३। बाईसका नव ९। इकई–

सका नव ९। तेराका तीन ३। बाराका नव ९। ग्याराका नव ९। ऐसैं सब मिलि गुणचास भये। अब याके अर्थका कलशरूप काव्य है।

आर्याछन्दः

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३४॥

इत्यालोचनाकल्पः समाप्तः।

अर्थ—निश्चयचारित्रकूं अंगीकार करनेवाला कहे है। जो मोहके विलासकरि फैल्या यह उदयकूं प्राप्त होता जो वर्तमानकर्म ताकू समस्तकूं आलोचनामैं लेकरि समस्तकर्मसूं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं मैं आपहीकरि निरंतर वर्तों हौं।

भावार्थ—वर्तमानकालमैं कर्मका उदय आवै, ताकूं ज्ञानी ऐसे विचारे है। जो पूर्वे बांध्या था ताका यह कार्य है। मेरा तौ यह कार्य नाहीं मैं याका कर्ता नाहीं। मैं तौ शुद्धचैतन्यमात्र आत्मा हौं। ताकी दर्शनज्ञानरूप प्रवृत्ति है। ताकरि या उदय भये कर्मका देखने जाननेवाला हौं। मेरा स्वरूपहीमैं मैं वर्तों हौं। ऐसा अनुभवन करना ही निश्चयचारित्र है। ऐसैं आलोचनाकल्प समाप्त किया। आगैं प्रत्याख्यानकल्प कहे हैं। ताकी टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति २ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति ५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्य समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ७ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा वाचा च कायेन चेति ८ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनमा च वाचा च कायेन च ९ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १० न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च वाचा चेति ११ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति १३ न

करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति १४ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १५ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा च कायेन चेति १७ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १८ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति १९ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा चेति २० न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति २१ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति २२ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा चेति २३ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २४ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि कायेन चेति २६ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २७ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २८ न करिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति २९ न कारयिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं जनं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा कायेन चेति ३१ न करिष्यामि मनसा वाचा चेति ३२ न कारयिष्यामि मनसा वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा चेति ३४ न करिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३५ न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारयिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४० न करिष्यामि मनसा चेति ४१ न कारयिष्यामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति ४३ न करिष्यामि वाचा चेति ४४ न कारयिष्यामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ४६ न करिष्यामि कायेन चेति ४७ न कारयिष्यामि कायेन चेति ४८ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ४९ ।

याका अर्थ—प्रत्याख्यान करनेवाला कहे है, जो आगामी कालविषैं कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा, मनकरि वचनकरि कायकरि। ऐसा प्रथम भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन काय ए तीनूं लगाये। तातैं तीया तीया तेतीसकी समस्याका भंग भया। १।३३। ऐसैं ही अन्य भंगनिका टीकामैं संस्कृतपाठ भी है तिनिकी वचनिका लिखिये हैं। आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा मनकरि वचन-

करि, ऐसा दूसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। २।३२। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा तीसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही भया। अर मनकरि अर कायकरि ऐसे दोय लागे। तातैं तीया दूवा। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। ३।३२। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अर अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं नाहीं अनुमोदूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा चौथा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। ४।३२। ऐसें बत्तीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि, ऐसा पांचवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक मन लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ५।३१। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं में नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि, ऐसा छठा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक वचन लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ६।३१। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि, ऐसा सातवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक काय लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ७।३१। ऐसे इकतीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, आठवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई। ८।२३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं करतेकूं

भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि ऐसा नवमां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई। ९।२३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि ऐसा दसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई। १०।२३। ऐसे तेईसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि ऐसा ग्यारवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। ११।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि ऐसा बारवां भंग है यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १२।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि, ऐसा तेरवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन लगाये बाईसकी समस्या भई। १३।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि कायकरि ऐसा चौदवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन अर काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १४।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा पंदरवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१५।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकू भला नाहीं जानूंगा, मनकरि कायकरि ऐसा सोलवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१६।२२। बहुरि आगामी कर्मकू मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं करा-

ऊंगा वचनकरि कायकरि ऐसा सतरावां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि वचन काय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १७।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाही जानूंगा वचनकरि कायकरि ऐसा अठारवां भंग भया। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि वचन काय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १८।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा वचनकरि कायकरि ऐसा उगणीसवां भंग भया। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १९।२२। ऐसे बाईसकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि, ऐसा वीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २०।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि ऐसा इकईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन एक लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २१।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि ऐसा बाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २२।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि ऐसा तेईसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २३।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं करतेकूं भला नाही जानूंगा वचनकरि ऐसा चोईसवां भग है यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयनिपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २४।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा वचनकरि ऐसा पचीसवां भंग है। यामैं कारित

अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २५।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा कायकरि ऐसा छवीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २६।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा सत्ताईसवां भंग भया। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२७।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा अठाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना ईनि दोय-परि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २८।२१। ऐसे इकईसकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतीसवां भंग है। यामैं कृत एकपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई।२९।१३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा तीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई। ३०।१३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचन-करि कायकरि ऐसा इकतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेरहकी समस्या भई। ३१।१३। ऐसे तेराकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं न करूंगा मनकरि वचनकरि ऐसा बत्तीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्या भई।३२।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि ऐसा तेतीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३३।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं नाहीं अनुमोदूंगा मनकरि वचनकरि, ऐसा चौतीसवां भंग है। यामैं एक

अनुमोदनापरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्या भई।३४।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा पैंतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्या भई।३५।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि कायकरि, ऐसा छत्तीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३६।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा सैंतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३७।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं न करूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा अठतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३८।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३९।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा चालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।४०।१२। ऐसे नव भंग बारहकी समस्याके भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि ऐसा इकतालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४१।११। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं मैं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि ऐसा बियालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४२।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि, ऐसा तियालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४३।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा वचनकरि, ऐसा चवालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी सम-

स्या भई ।४४।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि, ऐसा पैतालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४५।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि, ऐसा छियालीसवां भंग है यामैं एक अनुमोदनापरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४६। ११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा कायकरि ऐसा सैंतालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४७।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा कायकरि, ऐसा अठतालीसवां भंग है। यामैं कारितपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४८।११। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा गुणचासवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक काय लगाया तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४९।११। ऐसैं ग्यारहकी समस्याके नव भंग भये। ऐसे गुणचास भंग प्रत्याख्यानके भये। तिनिमैं तेतीसकी समस्याका एक ।१। बत्तीसके तीन ।३। इकतीसके तीन ।३। तेईसके तीन ।३। बाईसके नव ।९। इकईसके नव ।९। तेराके तीन ।३। बाराके ।९। ग्याराके ।९। ऐसैं सब मिलि गुणचास भये। अब इस अर्थका कलशरूपकाव्य कहे हैं।

आर्याछन्दः

प्रत्याख्याय भविष्यत् कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३५॥

इति प्रत्याख्यानकल्पः समाप्तः।

अर्थ—प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहे है। जो आगामी समस्त कर्मनिकूं मैं प्रत्याख्यानरूप त्याग करि, अर नष्ट भया है मोह जाका ऐसा भया संता कर्मसूं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं आपहीकरि वर्तूं हों।

भावार्थ—निश्चयचारित्रमें प्रत्याख्यानका विधान ऐसा है, जो समस्त आगामी कर्मसूं रहित अपना शुद्धचैतन्यकी प्रवृत्तिरूप जो शुद्धोपयोग ताविषैं वर्तना है। सो ज्ञानी आगामी समस्त

कर्मका प्रत्याख्यान करि अपना चैतन्यस्वरूपविषैं वर्ते है। इहां तात्पर्य ऐसा जानना—जो व्यवहारचारित्रमें तो ज्यौं प्रतिज्ञामैं दोष लागै ताका प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान होय हैं। अर इहां निश्चयचारित्रका प्रधानपणें कथन है। सो शुद्धोपयोगसूं विपरीत समस्त ही कर्म आत्माके दोषस्वरूप है। तिनि सर्व ही कर्मचेतनास्वरूप परिणामका ज्ञानी तीन कालके कर्मका प्रतिक्रमण आलोचना प्रत्याख्यानकरि समस्तकर्म चेतनासूं न्यारा अपना शुद्धोपयोगस्वरूप आत्माका ज्ञान श्रद्धान करि, अर तिसमैं थिर होनेका विधान करि निष्प्रमाद दशाकूं प्राप्त होय। श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजावनेके सन्मुख होय है। यह ज्ञानीका कार्य है। ऐसा प्रत्याख्यानकल्प समाप्त किया। आगें सकलकर्मका संन्यास कहिये क्षेपणा, पटकी देना, ताको भावनाकूं नृत्य कराय कथन पूरण करनेका काव्य है।

उपजातिछन्दः

समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी। विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथावलम्बे ॥३६॥

अथ सकलकर्मफलसंन्यासभावनां नाटयति।

अर्थ—शुद्धनयका अवलंबन करनेवाला कहे है, जो इत्येवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार तीन काल-अतीत वर्तमान भविष्यत्–संबंधी कर्मकूं निराकरणकरि छोडिकरि अर शुद्धनयका अवलंबन करनेवाला ज्ञानीमैं हौं। सो विलय भया है मोह मिथ्यात्वकर्म जाका ऐसा भया संता अब समस्तविकारतें रहित चैतन्यमात्र आत्माकूं अवलंबूं हौं। अब सकल कर्मफलका संन्यासकी भावनाकूं नृत्य करावे हैं। ताका टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—तहां प्रथम तौ समुच्चय अर्थका काव्य है।

आर्याछन्दः

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव। सञ्चेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥३७॥

अर्थ—सकलकर्मफलकी संन्यासभावना करनेवाला कहे है, जो कर्मरूपी विषका वृक्षके फल

हैं ते मेरे भोगनेविना ही खिरि जावो। मैं चैतन्यस्वरूप जो मेरा आत्मा ताकूं निश्चल चेतूं हौं–अनुभवूं हौं।

भावार्थ—ज्ञानी कहे है, जो कर्मका फल उदय आवे है, ताकूं मैं ज्ञाता द्रष्टा हुवा देखूं हौं, ताका फलका भोक्ता नाहीं वनूं हौं, तातैं मेरे भोगेविना ही ते कर्म खिरि जावो। मैं मेरे चैतन्यस्वरूप आत्मामैं लीन भया तिनिका देखने जाननेवाला ही हौं। इहां इतना विशेष और जानना जो अविरतदशामैं तथा देशविरतप्रमत्तसंयतदशामैं तौ ऐसा ज्ञान श्रद्धान ही प्रधान है अर जब अप्रमत्तदशा होयकरि श्रेणी चढै है तब यह अनुभव साक्षात् होय है। अब सकलकर्मफलका संन्यासभावनाका पाठ संस्कृतटीकामैं ऐसा है—

नाहं मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १ नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्म फलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २ नाहमवधिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३ नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४ नाहं केवलज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५ नाहं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६ नाहमचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७ नाहमवधिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८ नाहं केवलदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ९ नाहं निद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १० नाहं निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ११ नाहं प्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२ नाहं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३ नाहं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४ नाहं सातवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १५ नाहमसातवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १६ नाहं सम्यक्त्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १७ नाहं मिथ्यात्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १८ नाहं सम्यक्त्वमिथ्यात्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १९ नाहं अनंतानुबंधिक्रोधकषायवेदनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २० नाहं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोधवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २१ नाहं प्रत्याख्यानावर-

णीयक्रोधवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २२ नाहं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २३ नाहं अनंतानुबंधिमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २४ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २५ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २६ नाहं संज्वलनमानकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २७ नाहमनंतानुबंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २८ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २९ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३० नाहं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३१ नाहमनंतानुबंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३२ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३३ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३४ नाहं संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३५ नाहं हास्यनोकषायवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३६ नाहं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३७ नाहमरतिनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३८ नाहं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३९ नाहं भयनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४० नाहं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४१ नाहं स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४२ नाहं पुंवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४३ नाहं नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४४ नाहं नरकायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४५ नाहं तिर्यगायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४६ नाहं मानुषायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४७ नाहं देवायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४८ नाहं नरकगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४९ नाहं तिर्यग्गतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५० नाहं मनुष्यगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५१ नाहं देवगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५२ नाहमेकेन्द्रियनामफलं भुंजे चैतन्या–

त्मानमात्मानमेव संचेतये ५३ नाहं द्वींद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५४ नाहं त्रींद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५५ नाहं चतुरिंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५६ नाहं पंचेंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५७ नाहमौदरिकादिशरीरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५८ नाहं वैक्रियकशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५९ नाहमाहारकशरीरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६० नाहं तैजसशरीनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६१ नाहं कार्माणशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६२ नाहमौदारिकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६३ नाहं वैक्रियकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६४ नाहमाहारकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६५ [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६६ नाहं वैक्रियकशरीरबंधननामफलं भुंजे [illegible] संचेतये ६७ नाहमाहारकशरीरबंधननामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६८ नाहं [illegible] भुंजे [illegible]नमात्मानमेव संचेतये ६९ नाहं कार्मणशरीरबंधननामफलं भुंजे चैतन्यात्मा[illegible] शरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७१ नाहं [illegible] संचेतये ७२ नाहमाहारकशरीरसंघातनामफलं भुंजे [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७४ [illegible] संचेतये ७५ नाहं समचतुरस्रसंस्थाननामफलं भुंजे [illegible] भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये [illegible] ७८ नाहं कुब्जसंस्थाननामफलं भुंजे [illegible]नमेव संचेतये ८० नाहं [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मान[illegible] ८३ नाहं नाराचनाम[illegible] भुंजे [illegible]नमात्मानमेव संचेतये [illegible] नामफलं भुंजे [illegible] ८८ नाहं सूक्ष्म-

सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाऽबुद्धिपूर्वककलंकविपाकसद्भावात् पुद्गलकर्मबंधः स्यात् । अतस्तावद्ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावद् ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात्।

अर्थ—दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते जो जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तिस कारणकरि ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गलकर्म करि बंधे है ।

टीका—जो निश्चयकरि ज्ञानी है सो बुद्धिपूर्वक रागद्वेष मोहरूप आस्रवभावके अभावतैं निरास्रव ही है । तहां यह विशेष है—सो ही ज्ञानी जेतैं ज्ञानकूं सर्वोत्कृष्टभावकरि देखनेकूं जाननेकूं आचरनेकूं असमर्थ है, अर जघन्यभाव ही करि ज्ञानकूं देखे है, जाने है, आचरे है, तेतैं तिस ज्ञानीके भी ज्ञानके जघन्यभावकी अन्यथा अप्राप्तिकरि अनुमानरूप कीया अबुद्धिपूर्वक कर्ममलकलंकका सद्भाव है । यातैं पुद्गलकर्मका बंध होय है । यातैं यह उपदेश है—जो, तेतैं ज्ञानकूं देखना जानना आचरण करना, जेतैं ज्ञानका पूर्णभाव जेता है तेता देख्या जान्या आचर्या भले प्रकार होय । तापीछे साक्षात् ज्ञानी भया संता सर्वथा निरास्रव ही होय है ।

भावार्थ—ज्ञानीकूं निरास्रव ऐसा कह्या है, जो, जेतैं याकै क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं तौ बुद्धिपूर्वक अज्ञानमय राग द्वेष मोहका अभाव है, तातैं निरास्रव कह्या है । अर जेतैं क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं दर्शन ज्ञान चारित्र जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तेतैं संपूर्णज्ञानकूं देख्या जान्या आचर्या जाय नाहीं है । सो इस जघन्यभाव ही करि ऐसा जानिये है—जो, याकै अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक विद्यमान है ताकरि बंध भी होय है, सो चारित्रमोहका उदयकरि है, अज्ञानमय भाव नाहीं है । तातैं ऐसा उपदेश है—जो, जेतैं ज्ञान संपूर्ण न होय--केवलज्ञान न उपजै, तेतैं ज्ञानहीका ध्यान निरंतर करना, ज्ञानहीकूं देखना, ज्ञानहीकूं जानना, ज्ञानहीकूं आचरना, इस ही मार्ग चारित्रमोहका नाश होय है, अर केवलज्ञान उपजे है । तब सर्वप्रकारकरि साक्षात् निरास्रव होय है, यह

त्मानमेव संचेतये १२७ नाहं दुःस्वरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२८ नाहं शुभनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२९ नाहमशुभनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३० नाहं सूक्ष्मशरीरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३१ नाहं बादरशरीरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३२ नाहं पर्याप्तनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३३ नाहमपर्याप्तनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३४ नाहं स्थिरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३५ नाहमस्थिरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३६ नाहमादेयनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३७ नाहमनादेयनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३८ नाहं यशःकीर्तिनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३९ नाहमयशःकीर्तिनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४० नाहं तीर्थकरत्वनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४१ नाहमुच्चैर्गोत्रनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४२ नाहं नीचैर्गोत्रनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४३ नाहं दानांतरायनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४४ नाहं लोभांतरायनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४५ नाहं भोगांतरायनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४६ नाहमुपभोगांतरायनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४७ नाहं वीर्यांतरायनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४८ ।

अर्थ—मैं ज्ञानी हौं, सो मतिज्ञानावरणीय नामा कर्मका फलकूं नाहीं भोगूं हौं, चैतन्य–स्वरूप आत्माहीकूं संचेतूं हौं—एकाग्र अनुभवूं हौं। इहां चेतना अनुभवना वेदना भोगना इनिका एक अर्थ जानना अर 'सं' उपसर्गतैं एकाग्र अनुभवना जानना यहू, सर्वपाठमैं जानना ।१। ऐसे ही अन्य एकसो सैतालीस कर्मप्रकृतिनिके संस्कृत पाठ हैं, तिनिकी वचनिका लिखिये है । मैं श्रुतज्ञानावरणीय कर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं । चैतन्यस्वरूप आत्माहीकूं अनुभऊं हौं ।२। मैं अवधिज्ञानावरणीय कर्मका फलकूं नाहीं भोगऊं हौं। चैतन्य० ।३। मैं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्म० चैतन्य० ।४। मैं केवलज्ञानावरणीयकर्म० चैतन्य० । ५ । मैं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।६। मैं अचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।७। मैं अवधिदर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।८। मैं केवल–दर्शनावरणीयकर्म० । चैतन्य० ।९। मैं निद्रादर्शनावरणीयकर्म० चैत० ।१०। मैं निद्रानिद्रादर्शना–

वर्णीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं। चैतन्यस्वरूप आत्माहीकूं अनुभवूं हौं। ११। मैं प्रचला-दर्शनावरणीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं। चैत०।१२। मैं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म० चैत०।१३। मैं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्म० चैत०। १४। मैं सातावेदनीयकर्म० चैत०। १५। मैं असातावेदनीयकर्म० चैत०। १६। मैं सम्यक्त्वमोहनीयकर्म० चैतन्य०।१७। मैं मिथ्यात्वमोहनीय कर्म० चैतन्य०।१८। मैं सम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म० चैतन्य०।१९। मैं अनंतानुवंधिक्रोधकषाय-वेदनीयमोहनीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं। चैतन्यस्वरूप०।२०। मैं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोध कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।२१। मैं प्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। २२। मैं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। २३। मैं अनंतानुवंधि-मानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य०। २४। मैं अप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य०। २५। मैं प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य०। २६। मैं संज्वलनमानकषायवेद-नीयकर्म चैतन्य०।२७। मैं अनंतानुवंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। २८। मैं अप्र-त्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। २९। मैं प्रत्याख्यानावरणीयमाया-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३०। मैं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३१। मैं अनंतानुवंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३२। मैं अप्रत्याख्यानावरणीयलोभ-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३३। मैं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। ३४। मैं संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म चैतन्य०। ३५। मैं हास्यनोकषाय-वेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३६। मैं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३७। मैं अर-तिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३८। मैं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०।३९। मैं भयनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। ४०। मैं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीय-कर्म० चैतन्य०। ४१। मैं स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। ४२। मैं पुरुषवेदनो-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०। ४२। मैं नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०

।४४। मैं नारकआयुकर्मका० चैतन्य० ।४५। मैं तिरयंचआयुकर्मका० चैतन्य० । ४६ । मैं मानुष-आयुकर्म० चैतन्य० ।४७। मैं देवआयुकर्म० चैतन्य० । ४८ । मैं नरकगतिनामकर्म० चैतन्य० ।४९। मैं तिर्यंचगतिनामकर्म० चैतन्य० ।५०। मैं मनुष्यगति० चैतन्य० ।५१। मैं देवगतिनामकर्म० चैतन्य० ।५२। मैं एकेंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५३ । मैं द्वींद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५४ । मैं त्रींद्रियजातिनामकर्म० ।५५। मैं चतुरिंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० ।५६। मैं पंचेंद्रिय-जातिनामकर्म० चैतन्य० ।५७। मैं औदारिकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ५८ । मैं वैक्रियकशरीर-नामकर्म० चैतन्य० ।५९। मैं आहारकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६० । मैं तैजसशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६१ । मैं कार्मणशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६२ । मैं औदारिकशरीरअंगोपांगनामकर्म चैतन्य० । ६३ । मैं वैक्रियकशरीरअंगोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६४ । मैं आहारकशरीरांगो-पांगनामकर्म० चैतन्य० । ६५ । मैं औदारिकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० ।६६। मैं वैक्रियक-शरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६७ । मैं आहारकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६८ । मैं तैजसशरीरबंधननामकर्म० चैत० । ६९ । मैं कार्मणशरीरबंधननामकर्म० चैत० । ७० । मैं औदारिकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७१ । मैं वैक्रियकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७२ । मैं आहारकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७३ । मैं तैजसशरीरसंघातनामकर्म० चैत० ।७४। मैं कार्मणशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७५ । मैं समचतुरस्त्रसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७६। मैं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७७। मैं सातिकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७८। मैं कुब्जकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७९। मैं वामनसंस्थाननामकर्म० चैत० ।८०। मैं हुंडकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।८१। मैं वज्रर्षभनाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८२। मैं वज्र-नाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८३। मैं नाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८४। मैं अर्धनारा-चसंहनननामकर्म० चैत० ।८५। मैं कीलिकासंहनननामकर्म० चैत० ।८६। मैं असंप्राप्तसृ-पाटिकासंहनननामकर्म० चैत० ।८७। मैं स्निग्धस्पर्शनामकर्म० चैत० ।८८। मैं रूक्षस्पर्शनाम-

कर्म० चैत० ।८९। मैं शीतस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९०। मैं उष्णस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९१। मैं गुरुस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९२। मैं लघुस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९३। मैं मृदुस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९४। मैं कर्कशस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९५। मैं मधुररसनामकर्म० चैत० ।९६। मैं आम्लरसनामकर्म० चैत० ।९७। मैं तिक्तरसनामकर्म० चैत० ।९८। मैं कटुकरसनामकर्म० चैत० ।९९। मैं कषायरसनामकर्म० चैत० ।१००। मैं सुरभिगंधनामकर्म० चैत० ।१०१। मैं असुरभिगंधनामकर्म० चैत० ।१०२ शुक्लवर्णनामकर्म० चैत० ।१०३। मैं रक्तवर्णनामकर्म० चैत० ।१०४। मैं पीतवर्णनामकर्म० चैत० ।१०५। मैं हरितवर्णनामकर्म० चैत० ।१०६। मैं कृष्णवर्णनामकर्म० चैत० ।१०७। नरकगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१०८। मैं तिर्यंचगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१०९। मैं मनुष्यगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।११०। मैं देवगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१११। मैं निर्माणनामकर्म० चैत० ।११२। मैं अगुरुलघुनामकर्म० चैत० ।११३। मैं उपघातनामकर्म० चैत० ।११४। मैं परघातनामकर्म० चैत० ।११५। मैं आतपनामकर्म० चैत० ।११६। मैं उद्योतनामकर्म० चैत० ।११७। मैं उच्छ्वासनामकर्म० चैतन्य० ।११८। मैं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।११९। मैं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।१२०। मैं साधारणशरीरनामकर्म० चैतन्य० ।१२१। मैं प्रत्येकशरीरनामकर्म० चैतन्य० ।१२२। मैं स्थावरनामकर्म० चैत० ।१२३। मैं त्रसनामकर्म० चैत० ।१२४। मैं सुभगनामकर्म० चैत० ।१२५। मैं दुर्भगनामकर्म० चैत० ।१२६। मैं सुस्वरनामकर्म० चैत० ।१२७। मैं दुःस्वरनामकर्म० चैत० ।१२८। मैं शुभनामकर्म० चैत० ।१२९। मैं अशुभनामकर्म० चैत० ।१३०। मैं सूक्ष्मनामकर्म० चैत० ।१३१। मैं बादरशरीरनामकर्म० चैत० ।१३२। मैं पर्याप्तनामकर्म० चैत० ।१३३। मैं अपर्याप्तनामकर्म० चैत० ।१३४। मैं स्थिरनामकर्म० चैत० ।१३५। मैं अस्थिरनामकर्म० चैत० ।१३६। मैं आदेयनामकर्म० चैत० ।१३७। मैं अनादेयनामकर्म० चैत० ।१३८। मैं यशःकीर्तिनामकर्म चैत० ।१३९। मैं अयशःकीर्तिनामकर्म० चैत० ।१४०। मैं तीर्थंकरनामकर्म० चैत० ।१४१। मैं उच्चैर्गोत्रकर्म० चैत०

।१४२। मैं नीचैर्गोत्र० चैत० ।१४३। मैं दानांतरायकर्म० चैत० ।१४४। मैं लाभांतरायकर्म० चैतन्य० ।१४५। मैं भोगांतरायकर्म० चैत० ।१४६। मैं उपभोगांतरायकर्म० चैत० ।१४७। मैं वीर्यांतराय कर्म० चैत० ।१४८। ऐसो ज्ञानी सकलकर्मकी फलकी संन्यासकी भावना करे। इहां भावना नाम फेरि फेरि चिंतवनकरि उपयोगका अभ्यास करनेका है ।

सो जब सम्यग्दृष्टि होय, ज्ञानी होय है, तब ज्ञानश्रद्धान तौ भया ही जो मैं शुद्धनयकरि समस्त कर्मतैं अर कर्मके फलतैं रहित हौं । परंतु पूर्वे बांधे कर्म उदय आवे तामैं तिनि भावनिका कर्तापणा छोडि अर पूर्वे तीन काल संबंधी गुणचास भंगकरि कर्मचेतनाका त्यागकी भावनाकरि बहुरि यह सर्वकर्मके फलका भोगवनेका त्यागकी भावनाकरि एक चैतन्य स्वरूप आत्माहीका भोगवना रह्या । सो अविरत देशविरत प्रमत्त अवस्थामैं तौ ज्ञानश्रद्धानमैं निरंतर भावना है ही । अर जब अप्रमत्तदशा होय एकाग्र चित्तकरि ध्यान करै तब केवल चैतन्यमात्र आत्माविषैं उपयोग लगावै, अर शुद्धोपयोगरूप होय, तब निश्चयचारित्ररूप शुद्धोपयोग भावतैं श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजावै है । तब इस भावनाका फल कर्मचेतना अर कर्मफलचेतनातैं रहित साक्षात् ज्ञानचेतनारूप होना है। सो फेरि अनंत कालताई ज्ञानचेतना ही रूप भया संता आत्मा परमानंदमैं मग्न रहे है । अब इस ही अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

निःशेषकर्मफलसन्न्यसनान्ममैवं सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३८॥

अर्थ—सकल कर्मके फलका त्यागकरि ज्ञानचेतनाकी भावना करनेवाला ज्ञानी कहे है । जो एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार सकल कर्मका फलका सन्न्यास करनेतैं मैं कैसा हौं ? चैतन्य है लक्षण जाका ऐसा आत्मतत्त्व, ताही अतिशयकरि भोगवता हौं । अर इस सिवाय अन्य जो उपयोगकी तथा बाह्यकी क्रिया, ताविषैं विहार कहिये प्रवर्तना तातैं रहित है वृत्ति जाकी ऐसा

अचल हौं। सो मेरे यह कालकी आवली प्रवाहरूप अनंत है सो इसहीकूं भोगनेरूप जावो। उपयोगकी प्रवृत्ति अन्य विषैं मति जावो।

भावार्थ—ऐसी भावना करनेवाला ज्ञानी ऐसा तृप्त भया है, जो, भावना करते मानूं साक्षात् केवली ही भया। सो ऐसा ही रहना अनंत काल चाहे है। सो सत्य है। याही भावनातैं केवली होय है केवलज्ञान उपजनेका परामर्थ उपाय यही है। बाह्य व्यवहार चारित्र है सो इसहीका साधनरूप है। अर इस विना व्यवहारचारित्र है सो शुभकर्मकूं बांधे है। मोक्षका उपाय नाहीं है। फेरि काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

य: पूर्वभावकृतकर्मविपद्रुमाणां भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं निष्कर्म शर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष पूर्वे अज्ञान भावकरि किये जे कर्म तेही भये विषके वृक्ष तिनिका फल उदय आया ताकूं ताका स्वामी होय न भोगवे है। अर निश्चयकरि अपने आत्मस्वरूपहीतैं तृप्त है। अन्य किछू तृष्णा नाहीं करे है। सो पुरुष वर्तमान कालविषैं तौ सुन्दर रमनेयोग्य, अर आगामी कालविषैं जाका फल सुन्दर रमनेयोग्य ऐसा कर्मनितैं रहित स्वाधीन सुखमयी दशांतर कहिये ऐसी दशा संसार अवस्थामैं पूर्वे कबहू न भई ऐसी अन्य स्वरूप दशाकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—इस ज्ञानचेतनाकी भावनाका यहु फल है। याके भावनातें अत्यंत तृप्त रहे हैं, अन्य तृष्णा न रहे है। अर आगामी केवलज्ञान उपजाय सर्वकर्मनितैं रहित मोक्ष—अवस्थाकूं प्राप्त होय है। अब उपदेश करे हैं, जो ऐसें कर्मचेतना अर कर्मफल चेतनाका त्यागकी भावनाकरि अज्ञानचेतनाका अभावकूं प्रकट नचाय ज्ञानचेतनाका स्वभावकूं पूर्ण करि, ताकूं नचावतैं संतैं ज्ञानी जन हैं ते सदाकाल आनंदरूप रहैं। इस अर्थके कलशरूप काव्य हैं।

स्रग्धराछन्दः

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसञ्चेतनां स्वां सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ॥४०॥

अर्थ—ज्ञानी जन हैं ते कर्मतैं अर कर्मके फलतैं अत्यन्त विरक्त भावनाकूं निरंतर भावना करि, बहुरि समस्त अज्ञानचेतनाका नाशकूं स्पष्ट प्रकटपणैं नृत्य कराय अर अपना निज रसतैं पाया स्वभावरूप जो ज्ञानचेतना ताकूं, आनंद सहित जैसैं होय तैसैं पूर्ण करि नृत्य करावते संते इहांतैं आगे प्रशमरस जो कर्मका अभावरूप आत्मिकरस अमृतरस ताहि सदाकाल पीवो । यह ज्ञानीजननिकूं प्रेरणा है ।

भावार्थ—यह पहलै तौ तीन कालसंबंधी कर्मका कर्तापणारूप कर्मचेतनाके गुणचास भंगरूप त्यागकी भावना कराई । पीछै एक सौ अठतालीस कर्मप्रकृतिका उदयरूप कर्मका फलका त्यागकी भावना कराई है । ऐसैं अज्ञानचेतनाका प्रलय कराय अर ज्ञानचेतनामैं प्रवर्तनेका उपदेश किया है । यहं ज्ञानचेतना सदा आनंदरूप अपना स्वभावका अनुभवरूप है । ताकूं ज्ञानी जन सदा भोगवो । श्रीगुरुनिका उपदेश है । आगैं यह सर्व विशुद्धज्ञानका अधिकार है सो ज्ञानकूं कर्ताभोक्तापणातैं भिन्न दिखाया अब अन्य द्रव्य अर अन्य द्रव्यनिके भाव तिनितैं ज्ञानकूं न्यारा दिखावैं हैं । ताकी सूचनिकाका काव्य है ।

वंशस्थच्छन्दः

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४१॥

अर्थ—इहांतैं आगैं इस ज्ञानके अधिकारविषैं समस्त वस्तुनितैं व्यतिरेक कहिये भिन्नका निश्चयतैं विवेचित कहिये न्यारा किया जो ज्ञान सो अवस्थान करे है, निश्चल तिष्ठे है । कैसा हुवा तिष्ठे है ? पदार्थकी जो प्रथना कहिये फैलना ताका अवगुंठन कहिये ज्ञेयज्ञानसंबंधकरि

एकसे दिखाना, तातैं भई जो अनेक रूप कृति कहिये कर्तृत्वभावरूप क्रिया, ताविना एक ज्ञान क्रियामात्र सर्व आकुलतातैं रहित दैदीप्यमान होता तिष्ठै है।

भावार्थ—सर्ववस्तुनितैं न्यारा ज्ञानकूं प्रगट दिखावे हैं। सो ही गाथामें कहे हैं—

सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥८२॥
सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥८३॥
रूवं णाणं ण हवदि जह्मा रूवं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥८४॥
वण्णो णाणं ण हवदि जह्मा वण्णो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥८५॥
गंधो णाणं ण हवदि जह्मा गंधो ण याणदे किंचि।
तह्मा णाणं अण्णं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥८६॥
ण रसो दु होदि णाणं जह्मा दु रसो अचेदणो णिच्चं।
तह्मा अण्णं णाणं रसं च अण्णं जिणा विंति ॥८७॥
फासो णाणं ण हवदि जह्मा फासो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥८८॥

कम्मं णाणं ण हवदि जह्मा कम्मं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥८९॥
धम्मच्छिओ ण णाणं जह्मा धम्मो ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥९०॥
ण हवदि णाणमधम्मच्छिओ जं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥९१॥
कालोवि णत्थि णाणं जह्मा कालो ण याणदे किंचि ।
तह्मा ण होदि णाणं जह्मा कालो अचेदणो णिच्चं ॥९२॥
आयासंपि य णाणं ण हवदि जह्मा ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णायासं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥९३॥
अज्झवसाण णाण ण हवदि जह्मा अचेदण णिच्चं ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥९४॥
जह्मा जाणदि णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणगो णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥९५॥
णाणं सम्मादिट्ठी दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वजं अज्झवंति वुहा ॥९६॥

शास्त्रं ज्ञानं न भवति यस्माच्छास्त्रं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यच्छास्त्रं जिना वदंति ॥८२॥
शब्दो ज्ञानं न भवति यस्माच्छब्दो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं शब्दं जिना वदंति ॥८३॥
रूपं ज्ञानं न भवति यस्माद्रूपं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना वदंति ॥८४॥
वर्णो ज्ञानं न भवति यस्माद्वर्णो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना वदंति ॥८५॥
गंधो ज्ञानं न भवति यस्माद्गंधो न जानाति किंचित् ।
तस्माज्ज्ञानमन्यदन्यं गंधं जिना वदंति ॥८६॥
न रसस्तु भवति ज्ञानं यस्मात्तु रसो अचेतनो नित्यं ।
तस्मादन्यज्ज्ञानं रसं चान्यं जिना वदंति ॥८७॥
स्पर्शो ज्ञानं न भवति यस्मात्स्पर्शो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना वदंति ॥८८॥
कर्म ज्ञानं न भवति यस्मात्कर्म न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत्कर्म जिना वदंति ॥८९॥
धर्मास्तिकायो न ज्ञानं यस्माद्धर्मो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना वदंति ॥९०॥
न भवति ज्ञानमधर्मास्तिकायो यस्मान्न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यमधर्मं जिना वदंति ॥९१॥

कालोऽपि नास्ति ज्ञानं यस्मात्कालो न जानाति किंचित् ।
तस्मान्न भवति ज्ञानं यस्मात्कालोऽचेतनो नित्यं ॥९२॥
आकाशमपि ज्ञानं न भवति यस्मान्न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्याकाशमन्यज्ज्ञानं जिना वदंति ॥९३॥
अध्यवसानं ज्ञानं न भवति यस्मादचेतनं नित्यं ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमध्यवसानं तथान्यत् ॥९४॥
यस्माज्जानाति नित्यं तस्माज्जीवस्तु ज्ञायको ज्ञानी ।
ज्ञानं च ज्ञायकादव्यतिरिक्तं ज्ञातव्यं ॥९५॥
ज्ञानं सम्यग्दृष्टिं तु संयमं सूत्रमंगपूर्वगतं ।
धर्माधर्मं च तथा प्रव्रज्यामभ्युपयंति बुधाः ॥९६॥

आत्मख्यातिः—न श्रुतं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेकः । न शब्दो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानशब्दयोर्व्यतिरेकः । न रूपं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेकः । न वर्णो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेकः । न गंधो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगंधयोर्व्यतिरेकः । न रसो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरसयोर्व्यतिरेकः । न स्पर्शो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शयोर्व्यतिरेकः । न कर्म ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेकः । न धर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेकः । नाधर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेकः । न कालो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेकः । नाकाशं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेकः । नाध्यवसानं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेकः । इत्येवं ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यैः सह व्यतिरेको निश्चयसाधितो भवति । अथ जीव एवैको ज्ञानं चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेकः, न च जीवस्य स्वयं ज्ञानत्वात्ततो व्यतिरेकः कश्चनापि शंकनीयः । एवं तु सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टिः, ज्ञानमेव संयमः, ज्ञानमेवांगपूर्वरूपं सूत्रं, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो दृष्टव्यः ।

अथैवं सर्वद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण वा अतिव्याप्तिमव्याप्तिं च परिहरमाणमनादिविभ्रम-

मूलं धर्माधर्मरूपं परमसमयमुद्दम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमापाद्य दर्शनज्ञानचरित्रस्थितित्वरूपं समयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणतं कृत्वा समवाप्तसंपूर्णविज्ञानघनभावं हानोपादानशून्यं साक्षात्समयसारभूतं शुद्धज्ञानमेकमेव स्थितं द्रष्टव्यं ।

अर्थ—शास्त्र है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं शास्त्र किछू जाने नाहीं है, जड है। तातैं ज्ञान अन्य है शास्त्र अन्य है, ऐसैं जिन भगवान् हैं ते जाने हैं कहे हैं। शब्द है सो ज्ञान नाहीं है जातैं शब्द किछू जाने नाहीं है तातैं ज्ञान अन्य है शब्द अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। रूप है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रूप किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है रूप अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। वर्ण है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वर्ण किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है वर्ण अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। गंध है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं गंध किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है गंध अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। बहुरि रस है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रस किछू जाने नाहीं है, तातैं, ज्ञान अन्य है रस अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। स्पर्श है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं स्पर्श किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है स्पर्श अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। कर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं कर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है कर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। धर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं धर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है धर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। अधर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अधर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है अधर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। काल है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं काल किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है काल अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। आकाश भी ज्ञान नाहीं है जातैं आकाश किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है आकाश अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। तैसैं ही अध्यवसान है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अध्यवसान अचेतन है, तातैं, ज्ञान अन्य है अध्यवसान अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। बहुरि जीव है सो ज्ञायक है, सो ही ज्ञान है। जातैं यह निरंतर जाने है। ज्ञान है सो ज्ञायकतैं अभिन्न है न्यारा नाहीं है, ऐसा जानना। बहुरि ज्ञान है सो ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान ही

संयम है, ज्ञान ही अंगपूर्वगत सूत्र है, धर्म अधर्म भी ज्ञान ही है, बहुरि प्रव्रज्या दीक्षा है सो भी ज्ञान है। ज्ञानी जन हैं ते ऐसैं अंगीकार करे हैं माने हैं।

टीका—श्रुत कहिये वचनात्मक द्रव्यश्रुत है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वचन है सो अचेतन है। तातैं ज्ञानके अर श्रुतके व्यतिरेक है भेद है। बहुरि शब्द है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं शब्द पुद्गलद्रव्यका पर्याय है अचेतन है, तातैं ज्ञानके अर शब्दके व्यतिरेक है। बहुरि रूप है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रूप पुद्गलका गुण है अचेतन है, तातैं रूपके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि वर्ण है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वर्ण पुद्गलद्रव्यका गुण है, अचेतन है, तातैं वर्णके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि गंध है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं गंध पुद्गलद्रव्यका गुण है, अचेतन है, तातैं गंधके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि रस है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रस पुद्गलद्रव्यका गुण है अचेतन है, तातैं रसके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि स्पर्श है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं स्पर्श पुद्गलद्रव्यका गुण है अचेतन है, तातैं स्पर्शके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि कर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं कर्म अचेतन है, तातैं कर्मके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि धर्मद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं धर्म अचेतन है तातैं धर्मद्रव्यके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि अधर्मद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अधर्म अचेतन है, तातैं अधर्मद्रव्यके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि कालद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं काल अचेतन है, तातैं कालके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि आकाशद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं आकाश अचेतन है। तातैं ज्ञानके अर आकाशके व्यतिरेक है। बहुरि अध्यवसान है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अध्यवसान अचेतन है। तातैं ज्ञानके कर्मके उदयकी प्रवृत्तिरूप अध्यवसानके व्यतिरेक है। ऐसैं याप्रकार तौ ज्ञानके सर्व ही परद्रव्यनिकरि सहित व्यतिरेक भिन्नपणाका निश्चय साध्या हुवा देखना। अर अब कहे हैं, जो जीव है सो ही एक ज्ञान है जातैं जीव चेतन है, तातैं ज्ञानके अर जीवके अव्यतिरेक है अभेद है। बहुरि जीवके आपैआप ज्ञानपणा है। ज्ञानजीवके व्यतिरेक भेद

किछू ही आशंकारूप न करना। ऐसैं होतैं ज्ञान है सो ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान है सो ही संयम है, ज्ञान है सो ही अंगपूर्वगत सूत्र है। बहुरि धर्म अधर्म है सो भी ज्ञान ही है। बहुरि ज्ञान है सो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा है, निश्चयचारित्र है। ऐसैं जीवके पर्यायनिकरि सहित भी अव्यतिरेक अभेदका निश्चय साध्या हुवा देखना। अब कहे हैं। जो ऐसैं सर्वपरद्रव्यनिकरि तौ व्यतिरेक करि बहुरि जीवके सर्वदर्शनकूं आदि लेकरि स्वभावनिकरि अव्यतिरेक करि, तौ अतिव्याप्ति अर अव्याप्ति दूषणकूं दूरिकरता संता, अर अनादिकालतैं विभ्रम अविद्या है मूल जाका ऐसा धर्म अधर्म कहिये पुण्य पाप शुभ अशुभरूप परसमय ताकूं दूरि करि, अर आप प्रव्रज्या जो निश्चयचारित्ररूप दीक्षाकूं पायकरि, दर्शनज्ञानचारित्रविषैं स्थितिरूप जो स्वसंयम ताकूं व्याप्यकरि आत्माहीविषैं मोक्षमार्गकूं परिणामरूपकरि, अर पाया है संपूर्ण विज्ञानघन स्वभाव जानैं, अर हान उपादान कहिये त्याग ग्रहणकरि रहित साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्ध एक ज्ञान अवस्थित भया देखना, प्रत्यक्ष स्वसंवेदनकरि अनुभवन करना।

भावार्थ—अर सर्व परद्रव्यनितैं तौ न्यारा अर अपना पर्यायनितैं अभेद ऐसा ज्ञान एक दिखाया। सो यातैं अतिव्याप्ति अर अव्याप्ति नामा लक्षणके दोष हैं ते दूरि भये। जातैं आत्माका लक्षण उपयोग है। सो उपयोगमैं ज्ञान प्रधान है। सो यह अन्य अचेतनद्रव्यनिमैं नाहीं। तातैं तौ अतिव्याप्तिस्वरूप नाहीं। अर अपनी अवस्थामैं सर्वमैं है, तातैं अव्याप्तिस्वरूप नाहीं। अर इहां ज्ञान कहनेतैं आत्माही जानना। जातैं अभेदविवक्षामैं गुणगुणीके अभेद है। तातैं विरोध नाहीं। इहां ज्ञानहीकूं प्रधानकरि आत्माका अधिकार है। या ही लक्षणतैं सर्वपरद्रव्यनितैं भिन्न अनुभवगोचर होय है। यद्यपि आत्मामैं अनंतधर्म हैं तथापि तिनिमैं केई तौ छद्मस्थके अनुभवगोचर ही नाहीं, तिनिकूं कहे, छद्मस्थ ज्ञानी आत्माकूं कैसे पहिचाने? अर केई धर्म अनुभवगोचर हैं तिनिमैं केई अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादिक हैं ते अन्यद्रव्यनितैं साधारण हैं समान हैं। तिनिकूं कहे न्यारा आत्मा जान्या जाय नाहीं। बहुरि केई परद्रव्यके निमित्ततैं भये, तिनिकूं

कहे। परमार्थभूत आत्माका स्वरूप शुद्ध कैसें जान्या जाय ? तातैं ज्ञान ही कहे। छद्मस्थ ज्ञानी आत्माकूं पहिचाने तातैं ज्ञानहीकूं आत्मा कहिकरि, अर इस ज्ञानमैं अनादि अज्ञानतैं शुभाशुभ उपयोगरूप परसमयकी प्रवृत्ति है ताकूं दूरि करि, अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रविषैं प्रवृत्तिरूप स्वसमयरूप परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गविषैं आत्माकूं परिणमाय, अर संपूर्ण ज्ञानकूं प्राप्त होय तब फेरि त्यागग्रहणकूं किछू न रहै। ऐसा साक्षात् समयसारस्वरूप पूर्णज्ञान परमार्थभूत शुद्ध ठहरै। ताकूं देखना।

तहां देखना ही तीन प्रकार जानना। एक तौ शुद्धनयका ज्ञानकरि याका श्रद्धान करना सो यह तौ अविरत आदि अवस्थामैं भी मिथ्यात्वके अभावतैं होय है। बहुरि दूसरा ज्ञानश्रद्धान भये पीछे बाह्य सर्व परिग्रहका त्यागकरि याका अभ्यास करना। उपयोगकूं ज्ञानहीविषैं थांभना सो जैसें शुद्धनयकरि अपना स्वरूपकूं सिद्धसमान जान्या श्रद्धान किया, तैसा ही ध्यानविषैं ले एकाग्रचित्तकूं ठहरावना। फेरि फेरि याहीका अभ्यास करना। सो यह देखना अप्रमत्तदशामें होय है। सो जहां तांई ऐसे अभ्यासतैं केवलज्ञान उपजै तहां तांई यह अभ्यास निरंतर रहै। यह देखनेका दूसरा प्रकार है। सो इहां तांई तौ पूर्णज्ञान शुद्धनयके आश्रय परोक्ष देखना है। बहुरि तीसरा यह है, जो केवलज्ञान उपजै तब साक्षात् देखना होय है। तब सर्वविभावनितैं रहित होय सर्वका देखनजाननहारा ज्ञान है सो यह पूर्णज्ञानका प्रत्यक्ष देखना ही सो यह ज्ञान है सो ही आत्मा है। अभेदविवक्षामें ज्ञान कहौ तथा आत्मा कहौ किछू विरोध न जानना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथाऽवस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥४२॥

अर्थ—यह ज्ञान है सो तैसें अवस्थित भया है, जैसें याका महिमा निरंतर उदयरूप तिष्टै,

प्रतिप्रक्षी कर्म न रहै । कैसा अवस्थित भया है ? अन्य जे परद्रव्य तिनितैं व्यतिरिक्त कहिये न्यारा अवस्थित भया है । वहुरि कैसा है ? आत्मनियतं कहिये आपहीविषैं निश्चित है । वहुरि कैसा है ? पृथक् कहिये न्यारा ही वस्तुपणाकूं धारता संता है । वस्तूका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है, सो ज्ञान भी सामान्यविशेषपणाकूं धारया है । वहुरि कैसा है ? आदानोज्झन कहिये ग्रहणत्याग तिनिकरि शून्य है रहित है । ज्ञानमैं किछू त्याग ग्रहण नाहीं है । वहुरि कैसा है ? अमल कहिये रागादिक मलतैं रहित है ऐसा है । वहुरि याका महिमा नित्य उदयरूप तिष्ठै है सो कैसा है ? मध्य अर आदि अर अंत जे विभाग तिनिकरि मुक्त कहिये रहित, अर सहज कहिये स्वाभाविक, अर स्फार कहिये फैल्या विस्तरया जो प्रभा कहिये प्रकाश ताकरि दैदीप्यमान है । वहुरि शुद्धज्ञानका घन कहिये समूह है ऐसा जाका महिमा सदा उदयमान है । तैसैं अवस्थित भया है ठहरया है ।

भावार्थ—ज्ञानका पूर्णरूप सर्वकूं जानना है । सो जब यह प्रकट होय है तब तिनि विशेषणनिसहित प्रकट होय है । सो याकी महिमाकूं कोई बिगाडि सकै नाहीं सदा उदयमान रहे है । अब कहे हैं, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्माका धारणा सो ही कृतकृत्यपणा है ।

उपजातिछन्दः

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् । यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥४३॥

अर्थ—जो समेटी है सर्व शक्ति जानैं ऐसा जो पूर्णस्वरूप आत्मा, ताका आत्मा ही विषैं धारण करना सो ही जो उन्मोच्य कहिये छोडनेयोग्य था, सो तौ सर्व उन्मुक्त कहिये छोडया । अर जो आदेय कहिये लेने योग्य था, सो समस्त लिया ।

भावार्थ—जो पूर्णज्ञान स्वरूप सर्वशक्तिका समूहस्वरूप आत्मा, ताकूं धारणा सो ही त्यागनेयोग्य तौ सर्व ही त्यागा । अर ग्रहण करनेयोग्य था सो ग्रहण कीया । यह ही कृतकृत्यपणा है । आगे कहे हैं, जो ऐसे ज्ञानकै देह भी नाहीं है । ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुप्छन्दः

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितं । कथमाहारकं तत्स्यायेन देहोऽस्य शंक्यते ॥४४॥

भावार्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार परद्रव्यतैं न्यारा ज्ञान अवस्थित भया ठहरया । सो ऐसा ज्ञान आहारक कहिये कर्मनोकर्मरूप आहार करनेवाला कैसा होय ? अर जब आहारक नाहीं तब याके देहकी सका कैसी करिये ? नाहीं करिये । अब इस अर्थकूं गाथामें कहे हैं । गाथा—

अत्ता जस्स अमुत्तो णहु सो आहारओ हवदि एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ दु ॥९७॥
णवि सक्कदि घित्तुं जं ण मुंचदे चेव जं परं दव्वं ।
सो कोवि य तस्स गुणो पाउग्गिय विस्ससो वापि ॥९८॥
तह्मा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिह्वदे किंचि ।
णेव विमुंचदि किंचिवि जीवाजीवाणदव्वाणं ॥९९॥

आत्मा यस्यामूर्तो न खलु स आहारको भवत्येवं ।
आहारः खलु मूर्तो यस्मात्स पुद्गलमयस्तु ॥९७॥
नापि शक्यते गृहीतुं यन्न मुंचति चैव यत्परं द्रव्यं ।
स कोऽपि च तस्य गुणो प्रायोगिको वैस्रसो वापि ॥९८॥
तस्मात्तु यो विशुद्धश्चेतयिता स नैव गृह्णाति किंचित् ।
नैव विमुंचति किंचिदपि जीवाजीवयोर्द्रव्ययोः ॥९९॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानं हि परद्रव्यं किंचिदपि न गृह्णाति न मुंचति प्रायोगिकगुणसामर्थ्यात् वैस्रसिकगुणसाम-

र्थाद्वा ज्ञानेन परद्रव्यस्य गृहीतुं मोक्तुं चाशक्यत्वात्। परद्रव्यं च न ज्ञानस्यामूर्तात्मद्रव्यस्य मूर्तपुद्गलद्रव्यत्वादाहारः ततो ज्ञानं नाहारकं भवत्यतो ज्ञानस्य देहो नाशंकनीयः।

अर्थ—याप्रकार जाका आत्मा अमूर्तिक है सो निश्चयकरि आहारक नाहीं है। जातैं आहार है सो मूर्तिक है। सो आहार पुद्गलमय है। वहुरि जो परद्रव्य है सो ग्रहण करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है। अर छोडनेकूं समर्थ न हूजिये है। सो कोई ऐसाही आत्माका गुण है, प्रायोगिक है तथा वैस्रसिक है। तातैं जो विशुद्ध चेतयिता आत्मा है सो किछू ही परद्रव्यकूं जीव अजीवकूं नाहीं ग्रहण करे है। वहुरि किछू ही परद्रव्यकूं नाहीं छोडै है।

टीका—इहां आत्मा कहनेतैं ज्ञानका ग्रहण है, जातैं, अभेदविवक्षातैं लक्षणविषैं ही लक्ष्यका व्यवहार है। इस न्यायतैं आत्माकूं ज्ञान ही कहते आवै है। तातैं टीका करे हैं। जो, ज्ञान है सो परद्रव्यकूं किंचिन्मात्र भी नाहीं ग्रहण करे है, अर किंचिन्मात्र भी नाहीं छोडे है। जातैं प्रायोगिक गुण कहिये परनिमित्ततैं भया जो गुण ताकी सामर्थ्यतैं तथा वैस्रसिक कहिये स्वाभाविक गुणकी सामर्थ्यतैं दोऊ प्रकारतैं ज्ञानकरि परद्रव्यका ग्रहण करनेका अर छोडनेका असमर्थपणा है। वहुरि अमूर्तिक आत्मद्रव्य जो ज्ञान ताकै मूर्तिक पुद्गलद्रव्य आहार नाहीं है। अमूर्तिककै मूर्तिक आहार होय नाहीं। तातैं ज्ञान आहारक नाहीं है। यातैं ज्ञानकै देहकी संका न करणी।

भावार्थ—ज्ञानस्वरूप आत्मा अमूर्तिक है। अर आहार है सो कर्मनोकर्मरूप पुद्गलमय मूर्तिक है। तातैं परमार्थतैं आत्माकै पुद्गलमय आहार नाहीं है। वहुरि आत्माका ऐसा ही स्वभाव है, सो परद्रव्यकूं तौ ग्रहण ही नाहीं करे है। स्वभावरूप परिणमू तथा विभावरूप परिणमू अपने ही परिणामका ग्रहण त्याग है। परद्रव्यका तौ ग्रहण त्याग किछू भी नाहीं है। तातैं आत्माकै पुद्गलमय देहस्वरूप जो लिंग है, वेष है, वाह्यचिन्ह है, सो मोक्षका कारण नाहीं है। ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते । ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥४५॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकारकरि शुद्धज्ञानकै देह ही नाहीं विद्यमान है। तातैं ज्ञाताकै देहमय लिंग है, चिन्ह हैं, भेष है सो मोक्षका कारण नाहीं हैं। अब इस अर्थकूं गाथाकरि कहे हैं। गाथा—

पाखंडियलिंगाणि य गिहलिंगाणिय बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥१००॥
णय होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंति ॥१०१॥

पाखंडिलिंगानि च गृहलिंगानि च बहुप्रकाराणि ।
गृहीत्वा वदति मूढा लिंगमिदं मोक्षमार्ग इति ॥१००॥
न तु भवति मोक्षमार्गो लिंगं यद् हनैर्ममका अर्हंतः ।
लिंगं मुक्त्वा दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवंते ॥१०१॥

आत्मख्यातिः—केचिद् द्रव्यलिंगमज्ञानेन मोक्षमार्गं मन्यमानाः संतो मोहेन द्रव्यलिंगमेवोपाददते। तदप्यनुपपन्नं सर्वेषामेव भगवतामर्हद्देवानां शुद्धज्ञानमयत्वे सति द्रव्यलिंगाश्रयभूतशरीरममकारत्यागात् । तदाश्रितद्रव्यलिंगत्यागेन दर्शनज्ञानचरित्राणां मोक्षमार्गत्वेनोपासनस्य दर्शनात् ।

अथैतदेव साधयति—

अर्थ—पाखंडिलिंग बहुरि गृहिलिंग ऐसे बहुत प्रकार बाह्यलिंग हैं। तिनिकूं ग्रहणकरि मूढ अज्ञानी जन ऐसैं कहे हैं, यह लिंग है सो ही मोक्षका मार्ग है। आचार्य कहे हैं लिंग मोक्षका

मार्ग नाहीं है । जातैं, अर्हंतदेव हैं ते देहके विषैं निर्ममत्व भये संते लिंगकूं छोडिकरि दर्शन-ज्ञानचारित्रहीकूं सेवे हैं ।

टीका—केईक जन अज्ञानकरि द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग मानते संते मोहकरि द्रव्यलिंगहीकूं अंगीकार करै हैं । सो यह द्रव्यलिंगकूं मोक्षमार्ग मानना अनुपपन्न है । जातैं सर्व ही भगवान् अरहंतदेव हैं तिनिकै शुद्धज्ञानमयीपणाकूं होतैं संतैं द्रव्यलिंगका आश्रयभूत जो शरीर ताका ममकारका त्यागतैं तिस शरीरके आश्रित जो द्रव्यलिंग ताका त्याग करि अर दर्शन ज्ञानचारित्रनिके मोक्षमार्गपणाकरि सेवना देखिये हैं ।

भावार्थ—जो देहमय द्रव्यलिंग ही मोक्षका कारण होता तौ अरहंतादिक देहका ममत्व छोडि दर्शनज्ञानचारित्रकूं काहेकूं सेवतैं ? द्रव्यलिंगहीतैं मोक्षकूं प्राप्त होते । तातैं यह निश्चय भया, जो देहमयलिंग मोक्षमार्ग नाहीं है । परमार्थकरि दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप आत्मा ही मोक्षका मार्ग है । आगै यह साधे हैं, जो दर्शनज्ञानचारित्र ही मोक्षमार्ग है । गाथा—

णवि एस मोक्खमग्गो पाखंडी गिहमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचारित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥१०२॥

नाप्येष मोक्षमार्गः पाखंडिगृहमयानि लिंगानि ।
दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गं जिना वदंति ॥१०२॥

आत्मख्यातिः—न खलु द्रव्यलिंगं मोक्षमार्गः शरीराश्रितत्वे सति परद्रव्यत्वात् । तस्माद्दर्शनज्ञानचारित्राण्येव मोक्षमार्गः, आत्माश्रितत्वे सति स्वद्रव्यत्वात् ।

यत एवं—

अर्थ—पाखंडिलिंग अर गृहस्थलिंग ये मोक्षमार्ग नाहीं । दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते मोक्षमार्ग हैं । ऐसैं जिनदेव कहे हैं ।

टीका—निश्चयकरि द्रव्यलिंग है सो मोक्षका मार्ग नाहीं है। जातैं याकै शरीरकै आश्रितपणा होतैं संतै यह परद्रव्य है। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते ही मोक्षमार्ग हैं। जातैं इनिकै आत्माकै आश्रितपणा होतैं संतैं निज आत्मद्रव्यपणा है।

भावार्थ—मोक्ष है सो सर्व कर्मका अभावरूप आत्माका परिणाम है। सो याका कारण भी आत्माका परिणाम ही चाहिये। तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते आत्माका परिणाम हैं। तातैं ते ही मोक्षके मार्ग हैं, यह निश्चयकरि कह्या। बहुरि लिंग है सो देहमय है। देह है सो पुद्गलद्रव्यमय हैं। तातैं आत्माकै देह मोक्षका मार्ग नाहीं है। परमार्थकरि अन्यद्रव्यकै अन्यद्रव्य किछु करे नाहीं यह नियम है। आगै कहे हैं, जो जातैं ऐसैं है द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नाहीं, तातैं ऐसैं करना यह उपदेश करे हैं।

जह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारिएहि वा गहिदे।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥१०३॥

तस्मात्तु जहित्वा लिंगानि सागारैरनगारिकैर्वा गृहीतानि।
दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मानं युंक्ष्व मोक्षपथे ॥१०३॥

आत्मख्यातिः—यतो द्रव्यलिंगं न मोक्षमार्गः, ततः समस्तमपि द्रव्यलिंगं त्यक्त्वा दर्शनज्ञानचारित्रे चैव मोक्षमार्गत्वात् आत्मा योक्तव्य इति सूत्रानुमतिः।

अर्थ—जातैं द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नाहीं, तातैं सागार कहिये गृहस्थनिकरि, अर अनगार कहिये गृहकूं त्यागि मुनि होयकरि जे लिंग ग्रहे तिनिकूं छोडिकरि अपने आत्माकूं दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षमार्गविषैं युक्त करौ। यह श्रीगुरुनिका उपदेश है।

टीका—जातैं द्रव्यलिंग है सो मोक्षका मार्ग नाहीं है, तातैं समस्त ही द्रव्यलिंग हैं ताहि

छोडि अर दर्शनज्ञानचारित्रनिविषैं ही आत्माकूं युक्त करना। जातैं एही मोक्षका मार्ग है। ऐसा सूत्रका उपदेश है।

भावार्थ—इहां द्रव्यलिंगनकूं छुडाय दर्शनज्ञानचारित्रविषैं लगावनेका वचन है। सो यह सामान्य परमार्थवचन है। कोई जानैगा, कि मुनि श्रावककै व्रत छुडावनेका उपदेश है। सो ऐसा नाहीं है। जे केवल द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग जानि भेष धारै तिनिकूं पक्ष छुडाई है। जो भेषमात्रतैं मोक्ष नाहीं है। परमार्थरूप मोक्षमार्ग आत्माके परिणाम दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते ही हैं। अर व्यवहार आचारसूत्रमैं कहे तिस अनुसार मुनिश्रावककै बाह्य व्रत हैं ते व्यवहारकरि निश्चयमोक्षमार्गके साधक हैं। तिनिकूं छुडावै नाहीं ऐसा कहे हैं। जो तिनिका भी ममत्व छोडि परमार्थ मोक्षमार्गमैं लागै मोक्ष होय है। केवल भेषमात्रतैं मोक्ष नाहीं है ऐसा जानना। आगै इस ही अर्थकूं दृढ करे हैं ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप् छन्दः

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥४६॥

अर्थ—जातैं आत्माका तत्त्व कहिये यथार्थरूप दर्शनज्ञानचारित्रका त्रिकस्वरूप है तातैं मोक्षके इच्छुक पुरुषनिकरि एक ही यह मोक्षमार्ग सदा सेवने योग्य है। अब यहु ही उपदेश गाथाकरि कहे हैं।

मुक्खपहे अप्पाणं ठवेहि वेदयदि झायहि तं चेव।
तत्थेव विहर णिच्चं माविरहसु अण्णदव्वेसु ॥१०४॥

मोक्षपथे आत्मानं स्थापय वेदय ध्याय हि तं चैव।
तत्रैव विहर नित्यं मा विहार्षीरन्यद्रव्येषु ॥१०४॥

आत्मख्यातिः—आ संसारात्परद्रव्ये रागद्वेषादौ नित्यमेव स्वप्रज्ञादोषेणावतिष्ठमानमपि स्वप्रज्ञागुणेनैव ततो व्यावर्त्य दर्शनज्ञानचारित्रेषु नित्यमेवावस्थापयंति निश्चितमात्मानं। तथा चिंतांतरनिरोधेनात्यंतमेकाग्रो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्रा-

ण्येव ध्यायस्व । तथा सकलकर्मकर्मफलचेतनासंन्यासेन शुद्धज्ञानचेतनामयोभूत्वा दर्शनज्ञानचारित्राण्येव चेतयस्व । तथा द्रव्यस्वभाववशतः प्रतिक्षणविजृंभमाणपरिणामतया तन्मयपरिणामो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्रेष्वेव विहर । तथा ज्ञानरूपमेकमेवाचलितमवलंबमानो ज्ञेयरूपेणोपाधितया सर्वत एव प्रधावत्स्वपि परद्रव्येषु सर्वेष्वपि मनागपि मा विहार्षीः ।

अर्थ–हे भव्य ! तू मोक्षमार्गकेविषैं अपने आत्माकूं स्थापि । बहुरि तिसहीकूं ध्याय । बहुरि तिसहीकूं चेति अनुभवगोचर करि । बहुरि तिस आत्माहीके विषैं निरंतर विहार करि । अन्यद्रव्यनिविषैं मति विहार करै ।

टीका—आचार्य उपदेश करे हैं, जो हे भव्य ! तू अनादि संसारतैं लगाय यह आत्मा अपनी बुद्धिके दोषकरि परद्रव्यविषैं रागद्वेषादिविषैं नित्य ही निरंतर तिष्ठता संता प्रवर्ते है तौऊ ताकूं अपनी बुद्धिहीके गुणकरि तिनि परद्रव्यनिविषैं राग द्वेषतें छुडाय अर दर्शनज्ञानचारित्रविषैं निरंतर तिष्ठता अति निश्चल स्थापन करि तैसैं ही समस्त अन्य चिंताका निरोध करि अत्यंत एकाग्रचित्त होय दर्शनज्ञानचारित्रहीकूं ध्याय ध्यान करि । तैसैं ही समस्त कर्म अर कर्मका फलरूप चेतनाका संन्यास करि, त्याग करि अर शुद्धज्ञानचेतनामय होयकरि, दर्शनज्ञानचारित्रहीकूं चेति अनुभवन करि । तैसैं ही द्रव्यके स्वभावके वशतें क्षणक्षणप्रति उपजते उदय होते जे परिणाम, तिसपणाकरि तन्मयपरिणाम करि, दर्शनज्ञानचारित्रहीविषैं विहार करि । तैसैं ही तू एकज्ञानरूपहीकूं निश्चलरूप अवलंबन करता संता ज्ञेयरूपकरि ज्ञानके उपाधिपणाकरि सर्व तरफतैं आय पडते जे सर्व ही परद्रव्य तिनिविषैं किंचिन्मात्र भी विहार मति करै ।

भावार्थ—परमार्थरूप आत्माका परिणाम दर्शनज्ञानचारित्र है । ते ही मोक्षमार्ग है । तिनिहीविषैं आत्माकूं स्थापना । तिनिहीका ध्यान करना । तिनिका अनुभव करना । तिनिहीविषैं प्रवर्तना । अन्य द्रव्यनिविषैं नाहीं प्रवर्तना । यहु ही परमार्थकरि उपदेश है । केवल व्यवहारहीमैं मूढ न रहना । अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकस्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।
तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन् सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥४७॥

अर्थ—जो दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप यह एक मोक्षका मार्ग है सो जो पुरुष तिस ही विषैं स्थितीकूं प्राप्त होय है तिष्ठे है, बहुरि जो तिसहीकूं निरंतर ध्यावे हैं, बहुरि जो तिसहीकूं चेते है, अनुभवे है, बहुरि जो तिसहीविषैं निरंतर विहार करे है प्रवर्ते है, कैसा भया संता ? अन्य द्रव्यनिकूं नाहीं स्पर्शता संता, सो पुरुष थोरे ही कालमें अवश्य समयसार जो परमात्माका रूप जाका नित्य उदय रहै ऐसा अनुभवे है पावे है ।

भावार्थ—निश्चयमोक्षमार्गके सेवनेतैं थोरे ही कालमें मोक्षकी प्राप्ति होय यह नियम है । आगै कहे हैं, जो द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग मानि ताविषैं ममत्वभाव राखे हैं ते मोक्ष नाहीं पावे हैं । ताकी सूचनिकाका काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

ये त्वेनं परिहृत्य संवृत्तिपथप्रस्थापितेनात्मना लिङ्गे द्रव्यमये च हन्ति ममतां तत्त्वाववोधच्युताः ।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभाप्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥४८॥

अर्थ—जे पुरुष यहु पूर्वोक्त परमार्थस्वरूप मोक्षमार्ग ताकूं छोडिकरि अर व्यवहार मार्गविषैं वलाया स्थाप्या जो अपना आत्मा ताहीकरि, द्रव्यमय जो यह बाह्यलिंग भेष ताविषैं ममता करै है; जाने है, कि यह ही हमकूं मोक्ष प्राप्त करेगा; ते पुरुष तत्त्वके यथार्थ ज्ञानतैं रहित भये संते मुनिपद लीया है तौऊ इस समयसारकूं नाहीं अवलोकन करे हैं. नाहीं पावै हैं । कैसा है समयसार ? नित्य है उदय जाका, कोई प्रतिप्रक्षी होय ताका उदयका विच्छेद न करि सके है । बहुरि कैसा है ? अखंड है, जामैं अन्य ज्ञेय आदिके निमित्ततैं खंड नाहीं होय है । बहुरि कैसा है ? एक है, पर्यायनिकरि अनेक अवस्था होय हैं, तौऊ एकरूपपणाकूं नाहीं छोडे है । बहुरि कैसा

है ? अतुल कहिये जाके बराबरी अन्य नाहीं ऐसा है आलोक कहिये प्रकाश जाका, सूर्यादिकका प्रकाशकी ज्ञानप्रकाशकूं उपमा नाहीं लागै। बहुरि अपने स्वभावको जो प्रथा ताका प्राग्भार है, जाका भार अन्य सहारी शकै नाहीं। बहुरि अमल है, रागादिक विकारमलकरि रहित है। ऐसा परमात्माका स्वरूपकूं द्रव्यलिंगी नाहीं पावे है। अब इस अर्थकी गाथा कहे हैं। गाथा—

पाखंडियलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं ॥१०५॥

पाखंडिलिंगेषु वा गृहिलिंगेषु वा बहुप्रकारेषु।
कुर्वंति ये ममतां तैर्न ज्ञातः समयसारः ॥१०५॥

आत्मख्यातिः—ये खलु श्रमणोऽहं श्रमणोपासकोऽहमिति द्रव्यलिंगममकारेण मिथ्याहंकारं कुर्वंति तेऽनादिरूढव्यवहारविमूढाः प्रौढविवेकं निश्चयमनारूढाः परमार्थसत्यं भगवंतं समयसारं न पश्यंति।

अर्थ—जे पुरुष पाखंडिलिंगनिविषैं अथवा गृहस्थलिंगनिविषैं बहुत प्रकार हैं, तिनिविषैं ममता करे हैं, जो हमारे यह ही मोक्षके देनहारे हैं, तिनि पुरुषनिनैं समयसारकूं जान्या नाहीं।

टीका—जे पुरुष निश्चयकरि ऐसैं माने हैं, जो मैं श्रमण हौं, मुनि हौं अथवा श्रमणका उपासक हौं, सेवक हौं, श्रावक हौं, ऐसैं द्रव्यलिंगविषैं ममकारकरि मिथ्या अहंकार करे हैं, ते अनादिका प्रसिद्ध चल्या आया जो व्यवहार ताविषैं मूढ मोही भये संते प्रौढ कहिये बडा है भेदज्ञान जामैं ऐसा निश्चयनयकूं नाहीं प्राप्त भये संते परमार्थकरि सत्यार्थ जो भगवान् ज्ञानरूप समयसार ताहि नाहीं देखे हैं नाहीं पावे हैं।

भावार्थ—जे अनादिकालका परद्रव्यके संयोगतैं भया जो व्यवहार ताही विषैं मूढ मोही हैं, ते ऐसे जाने हैं, जो यह बाह्य महाव्रतादिरूप भेष है सो ही हमकूं मोक्ष प्राप्त करेगा। अर भेदज्ञानका जातैं जानना होय ऐसा निश्चयनयकूं नाहीं जाने हैं। तिनिकै सत्यार्थ परमात्मरूप

शुद्धज्ञानमय समयसारकी प्राप्ति नाहीं होय है। अब इस ही अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।:

वियोगिनीछन्दः

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः। तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंडुलम् ॥४९॥

अर्थ—जे जन व्यवहारहीविषैं विमूढ मोही है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते परमार्थकूं नाहीं जाने हैं। जैसैं लोकविषैं जे तुसहीके ज्ञानविषैं विमुग्धबुद्धि जन हैं ते तुसहीकूं तंदुल जाने हैं। अर तंदुलकूं तंदुल नाहीं जाने हैं।

भावार्थ—जे परमार्थ आत्माका स्वरूप नाहीं जाने हैं अर व्यवहारहीविषैं मूढ होय रहे हैं. शरीरादि परद्रव्यहीकूं आत्मा जाने हैं ते परमार्थ आत्माकूं नाहीं जाने हैं। जैसैं तुष तंडुलका भेद तौ जाने नाहीं अर परालकूं कूंटैं तिनिकै तंडुलकी प्राप्ति नाहीं। तुस तंडुलका भेदज्ञान भये संते तंडुल पावै। आगै इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं कहे हैं।

स्वागताछन्दः

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैर्दृश्यते समयसार एव न। द्रव्यलिङ्गमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥५०॥

अर्थ—द्रव्यलिंगके ममकारकरि मीलित हैं मो ही आंधे हैं तिनिकरि समयसार है सो देखिये ही नाहीं है। जातैं इस लोकविषैं द्रव्यलिंग है सो तौ अन्य द्रव्यतैं होय है। अर यह ज्ञान है सो आप आत्मद्रव्यतैं ही होय है।

भावार्थ—जे द्रव्यलिंगकूं ही आपा माने हैं ते आंधे हैं। तिनिकूं आपा पर सूझ्या नाहीं। आगै कहे हैं जो व्यवहारनय तौ मुनि श्रावकके भेदकरि लिंग दोय प्रकार हैं, तिनि दोऊकूं मोक्षमार्ग न कहे है अर निश्चयनय काहू ही लिंगकूं मोक्षमार्ग न कहे है। गाथा—

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ दु णिच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥१०६॥

व्यावहारिकः पुनर्नयो द्वे अपि लिंगे भणति मोक्षपथे ।
निश्चयनयस्तु नेच्छति मोक्षपथे सर्वलिंगानि ॥१०६॥

आत्मख्यातिः—यः खलु श्रमणश्रमणोपासकभेदेन द्विविधं द्रव्यलिंगं भवति मोक्षमार्ग इति प्ररूपणप्रकारः स केवलं व्यवहार एव न परमार्थस्तस्य स्वयमशुद्धद्रव्यानुभवनात्मकत्वे सति परमार्थत्वाभावात् । यदेव श्रमणश्रमणोपासकविकल्पानतिक्रांतं दृशिज्ञप्तिप्रवृत्तिमात्रं शुद्धज्ञानमेकमेवैकमिति निस्तुषसंचेतनं परमार्थः, तस्यैव स्वयं शुद्धद्रव्यानुभवात्मकत्वे सति परमार्थकत्वात् ततो ये व्यवहारमेव परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते समयसारमेव न संचेतयंते । य एव परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते एव समयसारं चेतयंते ।

अर्थ—व्यवहारनय है सो तौ मुनि श्रावकके भेदकरि दोय प्रकार लिंग हैं तिनि दोऊहोकूं मोक्षमार्ग कहे है । बहुरि निश्चयनय है सो सर्व ही लिंगकूं मोक्षमार्गविषैं नाहीं इष्ट करे है ।

टीका—निश्चयकरि श्रमण कहिये मुनि अर श्रमणके उपासक कहिये श्रावक ऐसैं दोय भेदकरि लिंग दोय प्रकार हैं । सो दोऊ ही लिंग मोक्षमार्ग है, ऐसा प्ररूपणका प्रकार है, सो केवल व्यवहार ही है । परामर्थ नाहीं है । जातैं इस व्यवहारनयके स्वयं अशुद्धद्रव्यका अनुभवस्वरूपपणा होतै संतै परमार्थपणाका अभाव है । बहुरि जो श्रमण अर श्रमणका उपासकके भेदतैं दूरिवर्ती दर्शनज्ञानचारित्रकी प्रवृत्तिमात्र निर्मलज्ञान ही एक है, ऐसा निर्मल अनुभवन सो परमार्थ है, सो ही मोक्षमार्ग है । जातैं ऐसैं ज्ञानहीके स्वयं शुद्धद्रव्यरूप होनेका स्वरूपपणा होते संतै परमार्थपणा है । तातैं जे पुरुष केवल व्यवहारहीकूं परमार्थबुद्धिकरि अनुभवे हैं ते समयसारकूं नाहीं चेते हैं, नाहीं अनुभवे हैं । बहुरि जे परमार्थहोकूं परमार्थकी बुद्धिकरि अनुभवे हैं, ते ही तिस सयमसारकूं अनुभवे हैं ।

भावार्थ—व्यवहारनयका तौ विषय भेदरूप है । सो अशुद्ध द्रव्य है । सो परमार्थ नाहीं । अर निश्चयनयका विषय अभेदरूप शुद्धद्रव्य है सो परमार्थ है । सो जे व्यवहारहीकूं निश्चय मानि प्रवर्तें हैं तिनिकै समयसारकी प्राप्ति नाहीं है । अर जे परमार्थकूं परमार्थ जाने हैं

तिनिकै समयसारकी प्राप्ति होय है । ते ही मोक्षकूं पावे हैं । आगे कहे हैं, जो बहुत कहनेकरि पूरि पडौ, एक परमार्थहीका चिंतवन करना ।

मालिनीछन्दः

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चिंत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रान्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥५१॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं, जो अति बहुत कहनेकरि अर बहुत दुर्विकल्पनिकरि तौ पूरि पडो । इस अध्यात्मग्रन्थविषैं यह परमार्थ है, सो ही एक निरंतर अनुभवन करना । जातैं निश्चयकरि अपने रसका फैलावकरि पूर्ण जो ज्ञान ताका स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार परमात्मा तिसशिवाय अन्य किछू भी सार नाहीं है ।

भावार्थ—पूर्णज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभवन करना । निश्चयकरि इस उपरांति किछू भी सार नाहीं है । आगैं इस समयसार ग्रंथकूं पूर्ण करे हैं । ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुपछन्दः

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् । विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ॥५२॥

अर्थ—इदं कहिये यह समयप्राभृत है सो पूर्णताकूं प्राप्त होय है । कैसा है ? अक्षय कहिये जाका विनाश न होय ऐसा जगतके अद्वितीय नेत्रसमान है । जातैं कहा करता है ? विज्ञानघन जो शुद्ध परमात्मा समयसार आनंदमय ताकूं प्रत्यक्ष प्राप्त करता संता है ।

भावार्थ—यह समयप्राभृत ग्रंथ है सो वचनरूप तथा ज्ञानरूप दोऊ ही प्रकार करि नेत्रसमान है । जातैं जैसैं नेत्र घटपटादिककूं प्रत्यक्ष दिखावे है तैसैं यह शुद्ध आत्माका स्वरूपकूं प्रत्यक्ष अनुभवगोचर दिखावे है । अब याकूं आचार्य पूर्ण करे हैं, सो याका महिमारूप पढनेका फलकी गाथा कहे हैं ।

जो समयपाहुडमिणं पठिदूणय अच्छतच्चदो णादुं ।
अच्छे ठाहिदि चेदा सो पावदि उत्तमं सुक्खं ॥१०७॥

यः समयसारप्राभृतमिदं पठित्वाऽर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा ।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स प्राप्नोत्युत्तमं सौख्यम् ॥१०७॥

आत्मख्यातिः—यः खलु समयसारभूतस्य भवतः परमात्मनोऽस्य विश्वप्रकाशकत्वेन विश्वसमयस्य प्रतिपादनात् स्वयं शब्दब्रह्मायमाणं शास्त्रमिदमधीत्य विश्वप्रकाशनसमर्थपरमार्थभूतचित्प्रकाशरूपपरमात्मानं निश्चिन्वन् अर्थतस्तत्त्वतश्च परिच्छिद्य अस्यैवार्थभूतं भगवति एकस्मिन् पूर्णविज्ञानघने परमब्रह्मणि सर्वारंभेण स्थास्यति चेतयिता, स साक्षात्तत्क्षणविजृंभमाणचिदेकरसनिर्भरस्वभावसुस्थितनिराकुलात्मरूपतया परमानंदशब्दवाच्यमुत्तममनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं स्वयमेव भविष्यतीति ।

अर्थ—जो चेतयिता पुरुष भव्यजीव इस समयप्राभृतकूं पढिकरि अर अर्थतैं अर तत्त्वतैं जानिकरि अर याका अर्थविषैं तिष्ठेगा सो उत्तमसौख्यस्वरूप होयगा ।

टीका—जो चेतयिता भव्यपुरुष आत्मा निश्चयकरि इस शास्त्रकूं पढिकरि अर समस्तपदार्थनिका प्रकाशनेविषैं समर्थ ऐसा परमार्थभूत चैतन्यप्रकाशरूप आत्माकूं निश्चय करता संता अर्थतैं अर यथार्थ तत्त्वतैं जाणि, अर याहीका अर्थभूत जो भगवान् एक पूर्णविज्ञानघनस्वरूप परब्रह्म ताविषैं सर्वप्रकार उद्यम आरंभ करिकै अर तिष्ठेगा सो पुरुष, उत्तम अनाकुलता है लक्षण जाका ऐसे सुखरूप स्वयमेव आप ही होयगा । कैसा है यह शास्त्र समयसारभूत भगवान् परमात्मा ? समस्तका प्रकाशनेवालापणाकरि जाकूं विश्वसमय कहिये, ताके प्रकाशनेतैं आप स्वयं शब्दब्रह्मसारिखा है । बहुरि जिस सुखकूं प्राप्त होयगा सो सुख कैसा है ? तत्काल उदयरूप प्रगट होता एक चैतन्यरसकरि भरया अपने स्वभावविषैं भलै प्रकार तिष्ठया निराकुल आत्मस्वरूपपणाकरि परमानंद शब्दकरि कहने योग्य है ।

भावार्थ—इस शास्त्रका नाम समयप्राभृत है। सो समय नाम पदार्थका है ताका कहनेवाला है। तथा समय नाम आत्मा है ताका कहनेवाला है। सो आत्मा समस्त पदार्थनिका प्रकाशनेवाला है। ताकूं यह कहे है। सो समस्तपदार्थनिका कहनेवाला होय ताकूं शब्दब्रह्म कहिये। सो ऐसैं आत्माकूं कहनेतैं इस शास्त्रकूं शब्दब्रह्मसारिखा कहिये। शब्दब्रह्म तौ द्वादशांगशास्त्र है, ताकी उपमा याकूं भी है सो यह शब्दब्रह्म परब्रह्म जो शुद्धपरमात्मा ताकूं साक्षात् दिखावे है। जो इस शास्त्रकूं पढिकरि याके यथार्थ अर्थविषैं ठहरेगा सो परब्रह्मकूं पावेगा। याहीतैं उत्तमसौख्य जाकूं परमानंद कहिये ऐसा स्वात्मिक स्वाधीन जामैं बाधा नाहीं विच्छेद नाहीं अविनाशी ऐसा सुख पावेगा याहीतैं भव्यजीव अपना कल्याणके अर्थी याकूं पढो, सुणू, निरंतर याहीका स्मरण ध्यान राखो ज्यौं अविनाशीसुखकी प्राप्ति होय। यह श्रीगुरुनिका उपदेश है। अब इस सर्वविशुद्धज्ञानका अधिकारकी पूर्णताका कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप् छन्दः

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्। अखण्डमक्रमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥५३॥

अर्थ—इति कहिये याप्रकार आत्माका तत्त्व कहिये परमार्थभूत स्वरूप ज्ञानमात्र अवस्थित भया निश्चित ठहरया। कैसा है ज्ञानमात्रतत्त्व? अखंड है अनेक ज्ञेयाकारकरि तथा प्रतिपक्षि कर्मकरि खंड खंड दीखे है, तौऊ ज्ञानमात्रविषैं खंड नाहीं है। बहुरि याहीतैं एकरूप है। बहुरि अचल है ज्ञानरूपतैं चल न होय अर ज्ञेयरूप नाहीं है। बहुरि स्वसंवेद्य है आपहीकरि आप जाननेयोग्य है। बहुरि अबाधित है काहू खोटी युक्तिकरि बाध्या नाहीं जाय है।

भावार्थ—इहां आत्माका निजस्वरूप ज्ञान ही कह्या है। जातैं आत्मामैं अनंत धर्म हैं, तिनिमैं केई तौ साधारण हैं, ते तौ अतिव्याप्तिरूप हैं। तिनितैं आत्मा पिछाण्या जाय नाहीं। बहुरि केई पर्यायाश्रित हैं, कोई अवस्थामैं है कोईमैं नाहीं है, ते अव्याप्तिरूप हैं। तिनितैं भी आत्मा पिछाण्या जाय नाहीं। बहुरि चेतनता है सो यद्यपि लक्षण है तथापि शक्तिमात्र है, सो अदृष्ट

है। तातैं ताकी व्यक्ति दर्शन ज्ञान हैं। तिनिमैं ज्ञान साकार है, प्रकट अनुभवगोचर है। तातैं याहीके द्वारै आत्मा पहिचान्या जाय है। तातैं या ज्ञानहीकूं प्रधानकरि आत्मतत्त्व कह्या है। ऐसा मति जानूं, जो आत्माकूं ज्ञानमात्र तत्त्व कह्या है। सो एता ही परमार्थ है अन्य धर्म झूटे हैं आत्मामैं नाहीं हैं ऐसा सर्वथा एकांत किये मिथ्यादृष्टि होय है। विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धका मत आवे है। तथा वेदांतका मत आवे है। सो ऐसा एकांत बाधासहित है। ऐसा एकांत अभिप्राय-करि मुनिव्रत भी पालै, अर आत्माका ज्ञानमात्रका ध्यान भी करे तौ मिथ्यात्व कटै नाहीं। मन्दकषायनिके वशतैं स्वर्ग पावे तौ पावो, मोक्षका साधन तौ होय नाहीं। तातैं स्याद्वादकरि यथार्थ समजना। ऐसैं इहां तांई गाथाका व्याख्यान अर तिस व्याख्यानके कलशरूप तथा सूच-निकारूप काव्य टीकाकारनैं किये। अब इहां टीकाकार विचारे हैं—जो इस ग्रंथमैं ज्ञानकूं प्रधानकरि ज्ञानमात्र आत्मा कहते आये। तहां कोई ऐसा तर्क करै, जो जैनमत तौ स्याद्वाद है, ज्ञानमात्र कहनेमैं एकांत आया, स्याद्वादतैं विरोध आया। तथा एक ही ज्ञानमैं उपायतत्त्व अर उपेयतत्त्व ए दोय कैसैं बणैं? ऐसैं तर्कके निराकरणके अर्थि किछू कहिये हैं। ताका श्लोक है।

अनुष्टुपछन्दः

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः। उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥५४॥

अर्थ—इहां इस अधिकारविषैं स्याद्वादके शुद्धताके अर्थि वस्तुतत्त्वकी व्यवस्था है सो विचारिये है तथा एक ही ज्ञानमैं उपायभाव अर उपेयभाव किछु एक फेरि भी विचारिये है।

भावार्थ—यद्यपि इहां ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व कह्या है तथापि वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक अनेक धर्मस्वरूप है, सो स्याद्वादतैं सधे है। सो ज्ञानमात्र आत्मा भी वस्तु है, ताकी व्यवस्था स्याद्वादकरि साधिये है। अर इस ज्ञानहीमैं उपायभाव अर उपेयभाव कहिये साध्यसाधकभाव विचारिये है। अब याकी व्यवस्था कहे हैं। स्याद्वाद है सो समस्तवस्तूका साधनेवाला एक निर्बाध अर्हत्सर्वज्ञका शासन है मत है। सो स्याद्वाद सर्ववस्तु अनेकांतात्मक हैं ऐसैं कहे है।

जातें सर्व ही वस्तूका अनेकांतात्मक कहिये अनेकधर्मरूप स्वभाव है। असत्यार्थ कल्पनाकरि नाहीं कहे है। जैसा वस्तूका स्वभाव है तैसा ही कहे है। सो इहां आत्मा नामा वस्तूकूं ज्ञानमात्रपणाकरि कहते संते स्याद्वादका परिकोप नाहीं है। ज्ञानमात्र आत्मवस्तूके भी स्वयमेव अनेकांतात्मकपणा है। सो कैसा है सो ही कहे हैं। तहां अनेकांतका ऐसा स्वरूप है, जो जोही वस्तु तत्स्वरूप है, सो ही वस्तु अतत्स्वरूप है। बहुरि जो ही वस्तु एकस्वरूप है सो ही वस्तु अनेकस्वरूप है।

बहुरि जो ही वस्तु सत्स्वरूप है सो ही वस्तु अतत्स्वरूप है। बहुरि जो ही वस्तु नित्यस्वरूप है सो ही वस्तु अनित्य स्वरूप है। ऐसें एकवस्तुविषें वस्तुपणाकी निपजावनहारी परस्परविरुद्ध दोय, शक्तिका प्रकाशना सो अनेकांत है। सो ऐसी विरुद्ध दोय शक्ति अपना आत्मवस्तूके ज्ञानमात्रपणा होतें भी पाइए है सो ही कहिये हैं। आत्माकै ज्ञानमात्रपणा होते भी अंतरंगविषें चिमकता प्रकाशमान् जो ज्ञानस्वरूप ताकरि तो तत्स्वरूपपणा है। बहुरि बाह्य उघडते अनंत ज्ञेयभावकूं प्राप्त अर ज्ञानस्वरूपतें भिन्न जे परद्रव्यनिके रूप, तिनिकरि अतत्स्वरूपपणा है। तिनि स्वरूपज्ञान नाहीं है। बहुरि सहभूत प्रवर्तते अर क्रमरूप प्रवर्तते जे अनंत चेतन्यके अंश तिनिका समुदायरूप अविभागरूप जो द्रव्यपणा ताकरि तो एकपणा है। बहुरि अविभाग एकद्रव्यविषें व्याप्त जे सहभूत प्रवर्तते अर क्रमरूप प्रवर्तते चेतन्यके अनंत अंश, तिनिरूप पर्याय, तिनिकरि अनेकपणा है। बहुरि अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप होनेकी शक्तीका स्वभावपणाकरि सत्स्वरूप है। बहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावकी होनेकी शक्तीका स्वभावपणाकै अभावकरि असत्त्वस्वरूप है। बहुरि अनादिनिधन अविभाग एकवृत्तिरूप जो परिणमन तिसपणाकरि नित्यपणा स्वरूप है। बहुरि क्रमकरि प्रवर्तते जे एकसमयपरिमाण अनेकवृत्तीके अंश तिनिकरि परिणमनेपणाकरि अनित्यपणा स्वरूप है। ऐसैं ततूपणा, अततूपणा, एकपणा अनेकपणा, सतूपणा, असतूपणा, नित्यपणा अनित्यपणा प्रकट प्रकाशे ही है। इहां तर्क, जो आत्मवस्तूके ज्ञानमात्रपणा होते

भी स्वमेव अनेकांत प्रकाशे है, तौ अर्हंत भगवान् तिसके साधनपणाकरि अनेकांतकूं कौन अर्थी अनुशासन करे हैं—उपदेशरूप करे हैं ? ताका समाधान—जो अज्ञानी जन हैं तिनिके ज्ञानमात्र आत्मवस्तूका प्रसिद्ध करनेके अर्थी कहे हैं। निश्चयकरि अनेकांतविना ज्ञानमात्र आत्मवस्तु ही प्रसिद्ध नाहीं होय है। सो ही कहिये है। स्वभाव ही थकी बहुत भावनिकरि भरया जो यह लोक ताविषें सर्वभावनिकै अपने अपने स्वभावकरि अद्वैतपणा है। तौऊ द्वैतपणाका निषेध करनेका असमर्थपणा है। तातैं समस्त ही वस्तु है सो स्वरूपविषैं प्रवृत्ति अर पररूपतैं व्यावृत्ति इनि दोऊ रीतिकरि दोऊ भावनिकरि आश्रित है, युक्त है. यह नियम है। सो ही ज्ञानमात्र भावविषें लगावना। तहां ज्ञानभाव है सो अन्य बाकीके ज्ञेयभावनिकरि सहित अपना निजज्ञानरसका भरकरि प्रवर्त्या जो ज्ञाताज्ञेयका संबंध तिसपणाकरि अनादिहीतैं ज्ञेयाकार परिणमता ही दीखे है। तातैं जो अज्ञानी जन है सो ज्ञान तत्त्वकूं ज्ञेयरूप अंगीकार करि अज्ञानी होयकरि अर आप नाशकूं प्राप्त होय है। तिस काल यह अनेकांत है, सो अपना ज्ञानस्वरूपकरि ज्ञेयतैं भिन्न ज्ञानतत्त्वकूं प्रकट करि अर इस आत्माकूं ज्ञातापणाकरि परिणमनतैं ज्ञानी करता संता तिस आत्माकूं उदयरूप करे है। नाश न होने दे है ॥२॥

बहुरि अज्ञानी जन जिस काल ऐसैं माने हैं, जो यह सर्व जगत है सो निश्चयकरि एक आत्मा है। ऐसैं अज्ञानतत्त्वकूं अपना ज्ञानस्वरूपकरि अंगीकार करि अर समस्त जगतकूं आपा मानि ग्रहण करि, अपना भिन्न आत्माका नाश करे है। तिस काल परभावस्वरूपकरि अतत् कहिये सर्व जगत् एक ही आत्मा नाहीं है, ऐसैं भिन्न आत्मस्वरूपपणा प्रकट करि अर यहअनेकांत है सो समस्त जगत्तैं भिन्न ज्ञानकूं दिखावता संता आत्माका नाश नाहीं करने दे है। २।

बहुरि जिस काल अनेक ज्ञेयनिके आकारनिकरि खंड खंड रूप किया जो एक ज्ञानका आकार ताकूं देखि एकांतवादी ज्ञानतत्त्वकूं नाशकूं प्राप्त करे है। तिस काल यह अनेकांत है सो ज्ञानतत्त्वके द्रव्यकरि एकपणाकूं प्रकट करता संता ताकूं जीवावै है। नाश नाहीं होने देवे है।३।

बहुरि जिस काल एकांती ज्ञानका एक आकारका ग्रहण करनेके अर्थि अनेक ज्ञेयनिके आकार ज्ञानमैं आवै हैं, तिनिका त्याग करि अर ज्ञानस्वरूप आत्माका नाश करे है। तिस काल यह अनेकांत है सो ज्ञानके पर्यायनिकरि अनेकपणाकूं प्रकट करता संता आत्माका नाश नाहीं करने दे है ।४।

बहुरि जिस काल एकांती है सो ज्ञायमान ज्ञानमैं आवते जे परद्रव्य तिनिके परिणमनतैं ज्ञाताद्रव्यकूं परद्रव्यपणाकरि अंगीकार करि आत्माका नाश करे है। तिस काल अपना स्वद्रव्यकरि आत्माका सत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही तिस आत्माकूं जीवावे है नाश नाहीं होने दे है ।५।

बहुरि जिस काल एकांती है, सो सर्वद्रव्य है ते मेंही हों ऐसैं परद्रव्यनिकूं ज्ञाताद्रव्यकरि अंगीकार करि आत्माका नाश करे है, तिस काल परद्रव्यरूप आत्मा नाहीं है, ऐसैं परद्रव्यकरि आत्माका असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही नाश करने नाहीं दे है ।६।

बहुरि परक्षेत्रविषैं प्राप्त जे ज्ञेय पदार्थ तिनिके आकार तिनिसारिखा परिणमनेतैं परक्षेत्रहीकरि ज्ञानकूं सद्रूप अंगीकार करि एकांती नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल अपना क्षेत्रकरि अस्तित्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही जीवावे है, नाश नाहीं होने दे है ।७।

बहुरि अपने क्षेत्रविषैं होनेके अर्थि परक्षेत्रविषैं प्राप्त ज्ञेय तिनिका आकार ज्ञानका होना ताका त्यागकरि ज्ञानकूं ज्ञेयाकाररहित तुच्छ करता संता एकांती आत्माका नाश करे है तिस काल अनेकांत है सो ज्ञानकै अपना क्षेत्रविषैं परक्षेत्रविषैं प्राप्त जे ज्ञेय तिनिके आकाररूप परिणमनेका स्वभावपणा है, ऐसैं परक्षेत्रकरि नास्तिपणाकूं प्रगट करता संता नाश करने न दे है ।८।

बहुरि जिस काल पूर्वे आलंबे थे ज्ञेय पदार्थ तिनिका विनाशका कालविषैं ज्ञानका असत्त्वकूं अंगीकार करि एकांती ज्ञानकूं नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल अपना ज्ञानहीका कालकरि अज्ञानका सत्त्वकूं प्रगट करता संता अनेकांत ही ज्ञानकूं जीवावे है, नाश न होने दे है ।९।

बहुरि जिस काल अर्थका आलंबनका कालहीविषैं ज्ञानका सत्त्वकूं ग्रहणकरि एकांती आत्माका नाश करे है तिस काल परके कालकरि असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही नाश होने न दे है ।१०।

बहुरि जिस काल ज्ञायमान ज्ञाननेमैं आवता जो परभाव ताके परिणमनके आकार दिखता जो ज्ञायकभाव ताकूं परभावकरि ग्रहणकरि अर ज्ञानभावकूं एकांती नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल स्वभावकरि ज्ञानका सत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही ज्ञानकूं जीवावे है नाश न होने दे है ।११।

बहुरि जिस काल एकांती है सो ऐसा मनावे है 'जो सर्व भाव है ते मैं हौं' ऐसैं परभावकूं ज्ञायकपणा।करि अंगीकार करि अर आत्माका नाश करे है, तिस काल परभावनिकरि ज्ञानका असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही आत्माका नाश न होने दे है ।१२।

बहुरि जिस काल अनित्य जे ज्ञानके विशेष तिनिकरि खंडित भया जो नित्यज्ञानसामान्य, सो नाशकूं प्राप्त होय है ऐसा एकांत स्थापैं, तिस काल ज्ञानका सामान्यरूपकरि नित्यपणाकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही नाश करने न दे है ।१३।

बहुरि जिस काल नित्य जो ज्ञानसामान्य ताका ग्रहण करनेके अर्थि अनित्य जे ज्ञानके विशेष तिनिका त्यागकरि एकांत है सो आत्माकूं नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल ज्ञानके विशेषरूपकरि अनित्यपणाकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही तिस आत्माकूं जीवावे है, नाश होने न दे है ।१४।

ऐसैं चौदह भंगनिकरि ज्ञानमात्र आत्माकूं एकांतकरि तौ आत्माका अभाव होना अर अनेकांतकरि आत्माका ठहरना दिखाया। तहां तत् अतत्, अर एक अनेक, नित्य अनित्य, ऐसैं तौ छह भंग भये। अर सत्त्व असत्त्वके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि आठ भंग किये, ऐसे चौदह भंग जानने अब इनिके कलशरूप १४ काव्य हैं, सो कहिये हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत् विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुनर्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥२॥

अर्थ—पशु कहिये अज्ञानी तिर्यंचसमान सर्वथा एकांती, ताका ज्ञान है सो बाह्य ज्ञेय पदार्थनिकरि समस्तपणे पीया गया ऐसा होता संता छोडि जो अपनी व्यक्ति तिनिकरि रीता भया संता समस्तपणेकरि पररूपहीके विषैं विश्रांत भया रहि गया। अपना रूप किछू भी न रह्या, सो नष्ट भया। बहुरि स्याद्वादीका ज्ञान है सो जो अपने स्वरूपतें जो है सो यत्स्वरूप ही है ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसें तत्स्वरूप भया संता अतिशयकरि प्रकट भया जो ज्ञानका समूहरूप स्वभाव ताके भरतें संपूर्ण उदयरूप प्रकट होय है।

भावार्थ—कोई सर्वथा एकांती तौ ज्ञानकूं ज्ञेयाकारमात्र ही माने है। ताके तौ ज्ञानकूं ज्ञेय पीय गये आप कछू न रह्या। बहुरि स्याद्वादी ज्ञान अपने स्वरूपकरि ज्ञान ही है, ज्ञेयाकार भया तौऊ ज्ञानपणाकूं नाहीं छोडे है, ऐसें माने हैं। तातैं तत्स्वरूप ज्ञान प्रकट प्रकाशमान है। पुनः—

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया भूतो विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते ।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुनर्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥३॥

अर्थ—पशु कहिये अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है सो, समस्त ज्ञेयपदार्थ है सो ज्ञानमय है, ऐसैं विचारि करि, अर सकल जगतकूं निजतत्त्वकी आशाकरि देखि आप समस्त वस्तुमयी होय। अर तिर्यंचकी ज्यौं स्वच्छंद चेष्टा करे है। बहुरि स्याद्वादका देखनेवाला है सो तिस ज्ञानका निज स्वरूपकूं ऐसा देखे है, जो अपने ज्ञानस्वरूपतैं तत्स्वरूप है। सो पर जे ज्ञेयस्वरूप तिनितैं तत्स्वरूप नाहीं है। ऐसैं समस्त वस्तुतैं भिन्न अर समस्तज्ञेयवस्तुनिकरि घड्या तौऊ समस्त ज्ञेयस्वरूप नाहीं, ज्ञेयाकाररूप भया तौऊ न्यारा ऐसा ज्ञानका स्वरूप अनुभवे है।

भावार्थ—जो वस्तु अपना स्वरूपतैं तत्स्वरूप है सो ही वस्तु परका स्वरूपतैं अतत्स्वरूप है ऐसैं स्याद्वादी देखे है। सो ज्ञान अपना स्वरूपतैं तत्स्वरूप है। तैसैं ही पर ज्ञेयनिका आकाररूप भया है तौऊ तिनितैं भिन्न है। तातैं असत्स्वरूप है। अर एकांतवादी समस्तवस्तुरूप ज्ञानकूं मानि आपाकूं तिनि ज्ञेयमयी मानि अज्ञानी होय पशुकी ज्यौं स्वच्छंद प्रवर्तै है। ऐसा अतत्स्वरूपका भंग है। पुनः—

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदाऽप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥४॥

अर्थ—पशु कहिये अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है सो ज्ञानका स्वभाव बाह्य ज्ञेयपदार्थका ग्रहणरूप है ताके भरतैं समस्त अनेक उदय भये प्रकट ज्ञानमें आये जे ज्ञेयनिके आकार तिनिकरि खण्ड खण्ड बिगडी है शक्ति जाकी ऐसा भया संता समस्तपणैंकरि तूटता खण्ड खण्ड होता आप नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि अनेकांतका जाननेवाला है सो सदा उदयरूप जो ज्ञानका एकद्रव्यपणा तिसकरि ज्ञेयनिके आकार होनेतैं भया जो सर्वथा भेदका भ्रम ताहि दूरि करता संता निर्बाध अनुभवन स्वरूप ज्ञानकूं एक देखे है।

भावार्थ—ज्ञान है सो ज्ञेयनिके आकार परिणमनेतैं अनेक दीखे है। ताकूं सर्वथा एकांतवादी अनेक खण्डखण्डरूप देखता संता ज्ञानमय जो आपा ताका नाश करे है। अर स्याद्वादी ज्ञानकूं ज्ञेयाकार भया है तौऊ सदा उदयरूप द्रव्यपणाकरि एक देखे है। यह एकस्वरूप भंग है। पुनः—

ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पयन्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन् पश्यत्यनेकान्तवित् ॥५॥

अर्थ—पशु अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है। सो ज्ञेयनिके आकारनिकरि कलंककरि अनेकाकाररूप मलिन जो चैतन्य ताविषैं एक चैतन्यकामात्र आकार करनेकी इच्छा करि प्रक्षालन कहिये

धोवना कल्पता संता ज्ञान अनेकाकार प्रकट है तौऊ ताकूं नाहीं माने है एकाकार ही मानि ज्ञानका अभाव करे है। वहुरि अनेकांतका जाननेवाला है सो ज्ञेयाकारकरि ज्ञानका विचित्रपणा है तौऊ एकपणाकूं प्राप्त ज्ञान है सो आप स्वयमेव प्रक्षाल्या हुवा शुद्ध है, एकाकार है अर पर्यायनिकरि ताके अनेकताकूं अनुभवे है।

भावार्थ–एकांतवादी तौ ज्ञानविषैं ज्ञेयाकारकूं मेल जाणि एकाकार करनेकूं ज्ञेयाकारकूं धोय दूरि करि ज्ञानका नाश करे है। वहुरि अनेकांती ज्ञानकूं स्वरूपकरि अनेकाकारपणा माने है। सो ऐसा वस्तुस्वभाव है सो सत्यार्थ है ऐसा अनेकस्वरूप भंग है। पुनः—

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन्जीवति ॥६॥

अर्थ–पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो प्रत्यक्षप्रमाणकरि आलिखित कहिये चितरया हुवा दीखता स्फुट प्रकट स्थूल अर स्थिर कहिये निश्चल ऐसा परद्रव्यकूं देखि तिसका अस्तित्वकरि ठिग्या हुवा अपना निज आत्मद्रव्यका अस्तित्व नाहीं देखनेकरि समस्तपणें सर्वथाशून्य होता आपाका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी है सो अपना निजद्रव्यका अस्तिपणाकरि निपुण जैसें होय तैसें निज आत्मद्रव्यका निरूपणकरि तत्काल प्रकट होता जो विशुद्धज्ञानरूप तेज ताकरि पूर्ण होता जीवे है। नष्ट न होय है।

भावार्थ--एकांती वाह्य परद्रव्यकूं प्रत्यक्ष देखि ताहीका अस्तित्व मान्या। अर अपना आत्मद्रव्य इंद्रियप्रत्यक्षकरि दीख्या नाहीं। जाकूं शून्य मानि आत्माका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी ज्ञानरूप तेजकरि अपना आत्मद्रव्यका अस्तित्वके अवलोकनकरि आप जीवे है, आपाका नाश नाहीं करे है। यह स्वद्रव्यअपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः--

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥७॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो पुरुष जो आत्मा ताकूं सर्वद्रव्यमयी एक कल्पिकरि अर कुनयकी वासनाकरि वासित हुवा प्रकट परद्रव्यविषैं स्वद्रव्यका भ्रमकरि विश्रामकरे है। बहुरि स्याद्वादी है सो समस्त ही वस्तूविषैं परद्रव्यस्वरूप करि नास्तिताकूं जानता संता निर्मल है शुद्धज्ञानकी महिमा जाकी ऐसा हुवा स्वद्रव्यहीकूं आश्रय करे है।

भावार्थ—एकांतवादी तौ सर्वद्रव्यमय एक आत्माकूं मानि परद्रव्य अपेक्षा नास्तिता है ताका लोप करे है। अर स्याद्वादी समस्तविषैं परद्रव्य अपेक्षा नास्तिता मानि अपना निजद्रव्य-है रमे है। यह परद्रव्य अपेक्षा नास्तिताका भंग है। पुनः—

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा सीदत्येव बहिः पतन्तमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनि खातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥८॥

अर्थ—अशु अज्ञानी एकांतवादी है सो भिन्नक्षेत्रविषैं तिष्ठ्या जे ज्ञेयपदार्थ तिनिविषैं ज्ञेय-ज्ञायकसंबंधरूप निश्चितव्यापारविषैं तिष्ठ्या संता पुरुषकूं समस्तपणे बाह्यज्ञेयनिविषैं ही पडता संता ताकूं देखता संता कष्टहीकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादका जाननेवाला है सो अपने क्षेत्रविषैं अपना अस्तिपणाकरि रोक्या है अपना रभस ज्यानैं ऐसा भया संता आत्माहीविषैं आकाररूप भये जे ज्ञेय तिनिका निश्चयव्यापारकी शक्तिरूप होता संता अपने क्षेत्रहीविषैं अस्तित्वरूप तिष्ठे है।

भावार्थ—एकांतवादी तौ भिन्नक्षेत्रविषैं ज्ञेय पदार्थ तिष्ठे हैं तिनिके जाननेके व्यापाररूप होता पुरुषको बाह्य पडता ही मानि नष्ट करे है। बहुरि स्याद्वादी अपना क्षेत्रविषैं ही तिष्ठ्या पुरुष अन्यक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेयनिकूं जानता संता अपने क्षेत्रहीविषैं अस्तित्वकूं धारे है, ऐसा मानता संता आत्माहीविषैं तिष्ठे है। यह स्वक्षेत्रविषैं अस्तित्वका भंग है। पुनः—

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन्।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥९॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो अपना क्षेत्रविषैं तिष्ठनेके अर्थी न्यारे न्यारे परक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेय पदार्थ तिनिके छोडनेतैं तुच्छ होयकरि अपने चेतन्यके ज्ञेयरूप आकारनिकूं परज्ञेय अर्थकी साथि वमता संता जैसैं अर्थनिकूं छोडै तैसैं चैतन्यके आकारनिकूं भी छोडै। तब आपा तुच्छ रह्या। ऐसा आपका नाश करे है। बहुरि स्याद्वादी अपने क्षेत्रविषैं वसता संता परक्षेत्र विषैं अपनी नास्तिताकूं जानता संता यद्यपि परक्षेत्र ज्ञेय पदार्थनिकूं छोडे है तौऊ अपने चैतन्यके ज्ञेयरूप आकार भये तिनिकूं परतैं खेचनेवाला होता तुच्छताकूं नाहीं अनुभवे है नष्ट नाहीं होय है।

भावार्थ—एकांती तौ परक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेयपदार्थनिके आकार चैतन्यके आकार भये तिनिकूं जैसैं अर्थनिकूं छोडे है तैसैं चैतन्यके आकारनिकूं भी छोडे है ऐसैं जाने है। चैतन्यके आकारनिकूं अपना करूंगा तौ अपना क्षेत्र छुटि जायगा। तातैं आप चैतन्यके आकाररहित होय तुच्छ होय है, नष्ट होय है। बहुरि स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थनिकूं छोडे है, तौऊ अपने चैतन्यके आकारनिकूं छोडे नाहीं है। अपने क्षेत्रविषैं वसता परक्षेत्रविषैं अपनी नास्तिताकूं जानता तुच्छ नाहीं होय है, नष्ट नाहीं होय है। यह परक्षेत्र अपेक्षा नास्तिताका भंग है। पुनः—

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन् सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥१०॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो पूर्वकालमैं आलंबे जे ज्ञेयपदार्थ तिनिका नाश होनेके समय विषैं ज्ञानका भी नाशकूं जानता संता किछू भी नाहीं जानता संता तुच्छ भया नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादका वेदी है सो इस आत्माका अपने कालतैं अस्तित्वकूं जनता संता बाह्यवस्तु बारंबार होयकरि नष्ट होते संते भी आप पूर्ण ही तिष्ठे है।

भावार्थ—पहिले ज्ञेय पदार्थ जाने थे उत्तरकालमैं विनसि गये तिनिकूं देखि एकांती अपना ज्ञानका भी नाश मानि अज्ञानी हुवा आत्माका नाश करे है। बहुरि स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थनिकूं

नष्ट होतैं भी अपना अस्तित्व अपना ही कालतैं मानता नष्ट न होय है। यह स्वकाल अपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः—

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहिर्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन् ॥११॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो ज्ञेयपदार्थके आलम्बनकाल ही ज्ञानका अस्तित्व जानता संता बाह्यज्ञेयका आलंबनविषैं चित्तकूं अनुरागसहित करि अर बाह्य भ्रमता संता नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादका वेदी है सो परकालतैं अपना आत्माका नास्तित्वकूं जानता संता आत्माविषैं उकिरथा जो नित्य स्वाभाविक ज्ञानपुंज तिस स्वरूप होता संता तिष्ठे है, नष्ट न होय है।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञेयके आलंबनके काल ही ज्ञानका सत्त्व जाने है सो ज्ञेयके आलंबनविषैं मन लगाय बाह्य भ्रमता संता नष्ट होय है। बहुरि स्याद्वादी ज्ञेयके कालतैं अपना अस्तित्व नाहीं जाने है, अपने ही कालतैं अपना अस्तित्व जाने है। तातैं ज्ञेयतैं न्यारा ही अपना ज्ञानका पुंजरूप होता नष्ट न होय है। यह परकाल अपेक्षा नास्तित्वका भंग है॥ पुनः—

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुपु नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः ।
सर्वस्मिन्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन् स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥१२॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो परभावकूं ही अपना भाव जाननेतैं बाह्यवस्तुनिविषैं विश्राम करता संता अपना स्वभावकी महिमाविषैं एकांतकरि निश्चेतन भया जड होता संता आप नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादी है सो सर्व ही वस्तुनिविषैं अपना निश्चित नियमरूप जो स्वभावभावका भवनस्वरूप ज्ञान तातैं सर्वतैं न्यारा होता संता सहजस्वभावका स्पष्ट प्रत्यक्ष अनुभवरूप किया है प्रत्यय कहिये प्रतीतिरूप जानपना जाने ऐसा भया नाशकूं प्राप्त नाहीं होय है।

भावार्थ—एकांती तौ परभावकूं निजभाव जानि बाह्यवस्तूहीविषैं विश्राम करता संता आत्माका नाश करे है। बहुरि स्याद्वादी अपना ज्ञानभाव यद्यपि ज्ञेयाकार होय है, तथापि ज्ञान-हीकूं अपना भाव जानता संता आपाका नाश नाहीं करे है। यह अपना भावकी अपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः—

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरादारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कम्पितः ॥१३॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो अपने आत्माविषैं सर्वज्ञेयपदार्थनिका होना निश्चय करि अर शुद्धज्ञानस्वभावतैं च्युत भया संता सर्वपदार्थनिविषैं निःशंक वर्जनारहित स्वेच्छाचारी भया क्रीडा करे है। अपना भावका लोप करे है। बहुरि स्याद्वादी है सो अपना ही भावविषैं सर्वथा आरूढ भया परभावका अपने भावविषैं अभावका प्रकटपणा है ताकरि निश्चय भया शुद्ध ही शोभायमान है।

भावार्थ—एकांती तौ परभावनिकूं आपा जानि अपने शुद्धस्वभावसूं च्युत भया सर्वत्र निःशंक स्वेच्छातैं प्रवर्ते है। बहुरि स्याद्वादी परभावनिकूं जाने है तौऊ तिनितैं न्यारा अपना आत्माकूं शुद्धज्ञानस्वभाव अनुभवता संता सोभे है। यह परभाव अपेक्षा नास्तित्वका भंग है। पुनः—

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्क्षणभङ्गसङ्गपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं टङ्कोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥१४॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो उत्पादव्ययकरि लक्षित प्राप्त होता जो ज्ञान ताके अंशनिकरि नानास्वरूपका निर्णयका ज्ञानतैं क्षणभंगका संगमैं पड्या बाहुल्यपणे आपाका नाश करे है। बहुरि स्याद्वादी है सो चैतन्यस्वरूपकरि चैतन्यवस्तूकूं नित्य उदयरूप अनुभवता संता टंकोत्कीर्णघनस्वभाव है महिमा जाकी ऐसा ज्ञानरूप होता संता जीवै है। आपाका नाश नाहीं करे है।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञेयके आकारवत् ज्ञानकूं उपजता विनसता देखि अर क्षणभंगकी संगतीवत् आपाका नाश करे है। बहुरि स्याद्वादी है सो ज्ञान ज्ञेयकी साथि उपजै विनशै है तौऊ चैतन्यभावका नित्य उदय अनुभवता संता ज्ञानी होता जीवे है, आपाका नाश नाहीं करे है। यह नित्यपणाका भंग है। पुनः—

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्वाशया वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नः पशुः किंचन।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ॥१५॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो टंकोत्कीर्ण निर्मलज्ञानका फैलावस्वरूप एक आकार जो आत्मतत्त्व, ताकी आशाकरि अर आपविषैं उछलती जो निर्मल चैतन्यकी परिणिति, तातैं न्यारा किछू आत्माकूं चाहे है। सो किछू है नाहीं। बहुरि स्याद्वादी है सो नित्य ज्ञान है सो अनित्यताकूं प्राप्त होते भी उज्वल दैदीप्यमान चैतन्यवस्तुकी प्रवृत्तिके क्रमतैं ज्ञानके अनित्यताकूं अनुभवता संता ज्ञानकूं अंगीकार करे है।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञानकूं एकाकार नित्य ग्रहण करनेकी वांछा करि अर ज्ञानचैतन्यकी परिणति उपजै विनशै है तातैं भिन्न किछू माने है, सो परिणामसिवाय परिणामी किछू न्यारा ही है नाहीं। बहुरि स्याद्वादी है सो यद्यपि ज्ञान नित्य है, तौऊ चैतन्यकी परिणति क्रमतैं उपजे विनशै है, ताके क्रमतैं ज्ञानकी अनित्यता माने है, वस्तुस्वभाव ऐसा ही है, यह अनित्यपणाका भंग है। अब कहे हैं, जो ऐसा अनेकांत है, सो जे अज्ञानकरि मोही मूढ हैं, तिनिकूं आत्मतत्त्वकूं ज्ञानमात्र साधता संता स्वयमेव अनुभवनमें आवे है।

अनुष्टुप्छन्दः

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्। आत्मतत्त्वमनेकांतः स्वयमेवानुभूयते ॥१६॥

अर्थ—ऐसे पूर्वोक्तप्रकार अनेकान्त है, सो जे अज्ञानकरि प्राणी मूढ भये हैं, तिनिकूं समझावनेकूं आत्मतत्त्वकूं ज्ञानमात्र साधता संता आपैआप अनुभवगोचर होय है।

भावार्थ—अनादिकालके प्राणी स्वयमेव तथा एकांतवादका उपदेशकरि आत्मतत्त्वकूं ज्ञानका अनुभवनतैं अनेक प्रकार पक्षपातकरि आत्माका नाश करे है। तिनिकूं समझावनेकूं आत्माका स्वरूप ज्ञानमात्र ही कहिकरि, अर तिसकूं अनेकांतस्वरूप प्रकटकरि स्याद्वादतैं दिखाया है, सो यह असत्कल्पना नाहीं है। ज्ञानमात्र वस्तु अनेकधर्मसहित आपै आप अनुभवगोचर प्रत्यक्ष प्रतिभासमैं आवै है। सो प्रवीण पुरुष अपना आपाकी तरफ देखि अनुभवकरि देखो। ज्ञान तत्स्वरूप अतत्स्वरूप, एकस्वरूप अनेकस्वरूप, अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावतैं सत्स्वरूप, परके द्रव्यक्षेत्रकालभावतैं असत्स्वरूप, नित्यस्वरूप, अनित्यस्वरूप इत्यादि प्रत्यक्ष अनुभवगोचरकरि अनेकधर्म स्वरूप प्रतीतीमैं ल्यावो। यह ही सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा एकांत मानै मिथ्याज्ञान है, ऐसा जानना। अब अनेकांतकी महिमा करे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम्। अलङ्घ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७॥

अर्थ—याप्रकार तत्त्व कहिये वस्तूका यथार्थ स्वरूपकी व्यवस्थितिकरि अपने स्वरूपकूं आप ही स्थापन करता संता अनेकांत है सो व्यवस्थित भया निश्चत ठहरचा। सो कैसा है यह? अलंघ्य कहिये काहूकरि लंघ्या न जाय जीत्या न जाय ऐसा जिनदेवका शासन है, मत है, आज्ञा है।

भावार्थ—यह अनेकांत है सो ही निर्बाध जिनमत है। सो जैसैं वस्तूका स्वरूप है तैसैं स्थापता आपैआप सिद्ध भया है। असत्कल्पनाकरि वचनमात्र प्रलाप काहूने न कह्या है। निपुण पुरुषनिके विचारि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणकरि अनुभवकरि देखो। इहां कोई तर्क करे है, जो आत्मा अनेकांतमयी है, अनंतधर्मा है, तौऊ ताका ज्ञानमात्रपणाकरि नाम कौन अर्थी किया? ज्ञानमात्र कहनेमैं तौ अन्यधर्मनिका निषेध जान्या जाय है। ताका समाधान—जो इहां लक्षणकी प्रसिद्धिकरि लक्ष्यके प्रसिद्धिके अर्थी आत्माका ज्ञानमात्रपणाकरि नाम किया है, जो आत्मा ज्ञानमात्र है। सो ही कहे हैं, आत्माका ज्ञान लक्षण है। जातैं तिस आत्माका सो ज्ञान असाधारण गुण है।

यहु ज्ञान काहू अन्यद्रव्यमैं पाइए नाहीं, तिस कारणकरि इस ज्ञानलक्षणकी प्रसिद्धि करि, अर ताकरि लक्ष्य कहिये लखने योग्य जो आत्मा ताकी प्रसिद्धि होय है। लक्षण होय सो ज्ञाकूं बाहुल्यपणैंकरि सर्व जाणे सो होय। अर लक्ष्य होय सो जाकूं प्रसिद्ध न जानिये सो होय। यातैं लक्षण कहनेतैं लक्ष्य प्रसिद्ध होय है। इहां फेरि तर्क करे है, जो इस लक्षणको प्रसिद्धिकरि कहा साध्य है? लक्ष्य ही साधने योग्य है, आत्माहीकूं साधना था। ताका समाधान—जो अप्रसिद्ध है लक्षण जाकै ऐसा अज्ञानी पुरुषकै लक्ष्यकी प्रसिद्धि नाहीं होय है। अज्ञानीकूं पहलै लक्षण दिखाइए तब लक्ष्यकूं ग्रहण करै। जातैं जाके लक्षण प्रसिद्ध होय ताहीके तिस लक्षणस्वरूप लक्ष्यकी प्रसिद्धि होय है।

फेरि पूछे है, जो वह लक्ष्य न्यारा ही कहा है; जो ज्ञानकी प्रसिद्धिकरि तिसतैं न्यारा ही सिद्ध होय है। ताका उत्तर—जो ज्ञानतैं न्यारा ही तौ लक्ष्य आत्मा नाहीं है। जातैं द्रव्यपणाकरि ज्ञानके अर आत्माके भेद नाहीं है--अभेद ही है। इहां फेरि पूछे है, जो ज्ञान आत्मा अभेदरूप है तौ लक्ष्यलक्षणका भेद काहेकरि कीया हुवा होय है? ताका उत्तर—जो प्रसिद्धकरि प्रसाध्यमानपणा है ताकरि किया भेद है। ज्ञान प्रसिद्ध है। जातैं ज्ञानमात्रके स्वसंवेदनकरि सिद्धपणा है। सर्व प्राणीनिके स्वसंवेदनरूप अनुभवमैं आवे है। तिस प्रसिद्धिकरि साध्या हुवा तिस ज्ञानतैं अविनाभावी जे अनंत धर्म तिनिका समुदायरूप अभिन्नप्रदेशरूप मूर्ति आत्मा है। तातैं ज्ञानमात्रविषैं अचलित निश्चल लगाई उकीरी जो दृष्टि ताकरि क्रमरूप अर अक्रमरूप—युगपद्रूप प्रवर्तता जो तिस ज्ञानतैं अविनाभूत अनंत धर्मका समूह जेता जो कछू लखिये है तेता सो कछू समस्त ही एक निश्चयकरि आत्मा है। इस ही प्रयोजनके अर्थी इस अध्यात्मप्रकरणविषैं इस आत्माका ज्ञानमात्रपणाकरि व्यपदेश किया है, नाम कह्या है। फेरि पूछे है, जो क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तें हैं अनंत धर्म जाविषैं ऐसा आत्माके ज्ञानमात्रपणा कैसा है? ताका समाधान—जो परस्पर व्यतिरिक्त कहिये न्यारा न्यारा स्वरूपकूं धारे जे अनंत धर्म तिनिका

समुदायरूप परिणाई जो एक ज्ञप्ति कहिये ज्ञानक्रिया तिसमात्र भावरूपकरि आपे आप स्वयमेव होनेतें आत्माके ज्ञानमात्रपणा है। आत्माके जेते धर्म हैं तेते सर्व ही ज्ञानके परिणमनरूप हैं यद्यपि तिनिके लक्षणभेदकरि भेद है, तथापि प्रदेशभेद नाहीं है। तातें एक असाधारण ज्ञानकूं कहते सर्व यामें आय गये। याहीतें इस आत्माका ज्ञानमात्र जो एकभाव ताके अंतःपातिनी कहिये याहीमें आय पडनेवाली अनंतशक्ति उदय होय है उघडे है। तिनिकूं कईकनिकूं कहे हैं, तिनिका टीकामें संस्कृत पाठ है सो लिखिकरि तिनिकी वचनिका लिखिये हैं।

आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।

अर्थ—प्रथम तौ जीवत्व नामा शक्ति है, सो कैसी है? आत्मद्रव्यकूं कारणभूत जो चैतन्यमात्रभाव सो ही भया भावप्राण ताका धारणा है लक्षण जाका ऐसी है।

अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः।

अर्थ—यह दूजी चिति शक्ति है सो कैसी है? अजडपणा कहिये जड नाहीं होय ऐसी चेतना जाका स्वरूप ऐसी है।

अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः।

अर्थ—यह तीसरी दर्शनक्रियारूप शक्ति है। कैसी है? अनाकार कहिये, जामें ज्ञेयरूप आकारका विशेष नाहीं ऐसा जो दर्शनोपयोग सत्तामात्रपदार्थसूं उपयुक्त होना, तिसमयी है।

साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः।

अर्थ—यह चौथी ज्ञानशक्ति है, सो कैसी है? साकार कहिये ज्ञेयपदार्थका आकाररूप विशेषतें जुडनेवाला उपयुक्त होनेवाला जो ज्ञान तिसमयी है।

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः।

अर्थ—यह पांचमो सुखशक्ति है। कैसी है? अनाकुलत्व कहिये आकुलतातें रहितपणा है लक्षण जाका ऐसी है।

स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः ।

अर्थ—यह छठी वीर्यशक्ति है । कैसी है ? अपना निज आत्मस्वरूप ताका निर्वर्तन कहिये निपजावना रचना तिसको सामर्थ्य तिसरूप है ।

अखण्डितप्रतापस्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः ।

अर्थ—यह सातमी प्रभुत्वशक्ति है । कैसी है ? जो काहूकरि खंड्या न जाय ऐसा अखंडित है प्रताप जाका ऐसा जो स्वाधीनपणा ताकरि शोभनीकपणा है लक्षण जाका ऐसी है ।

सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः ।

अर्थ—यह आठमी विभुत्व नामा शक्ति है । कैसी है ? सर्वभावनिविषैं व्यापक जो एक भाव तिसरूप है जाका ज्ञान एक भाव सर्वभावनिविषैं व्यापे है ।

विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः ।

अर्थ—यह नवमी सर्वदर्शित्व नामा शक्ति है । कैसी है ? विश्व कहिये समस्त पदार्थनिका समूहरूप जो लोकालोक ताका सामान्यभाव सत्तामात्र तिसके देखनेरूप परिणया है स्वरूप जाका ऐसा दर्शन कहिये देखना तिसमयी है ।

विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः ।

अर्थ—विश्व कहिये समस्त पदार्थनिका समूहरूप लोकालोक, तिनिके समस्त जे विशेष भाव आकारनिसहित भाव, तिनिके जाननेरूप परिणया है स्वरूप जाका ऐसो ज्ञानमयी दशमी सर्वज्ञत्व नामा शक्ति है ।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः ।

अर्थ—अमूर्तिक आत्माका प्रदेशनिविषैं प्रकाशमान जो लोकालोकका आकारकरि मेचक कहिये अनेक आकाररूप दीखता उपयोग सो है लक्षण जाका ऐसी स्वच्छत्व नामा ग्यारमी शक्ति है । जैसी आरसाकी स्वच्छता प्रकाशरूप घटपटादि जामैं प्रकाशै, तैसी स्वच्छता है ।

स्वयम्प्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः ।

अर्थ—स्वयमेव आपै आप प्रमाशमान विशद स्पष्ट स्वसंवित्ति कहिये अपना अनुभव, तिसमयी प्रकाश नामा शक्ति बारमी है ।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिकाऽसङ्कुचितविकासत्वशक्तिः ।

अर्थ—क्षेत्रकालकरि अमर्यादरूप जो चैतन्यका विलास तिसस्वरूप असंकुचितविकासत्व नामा तेरमी शक्ति है ।

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिकाऽकार्यकारणशक्तिः ।

अर्थ—अन्यकरि न करनेयोग्य अर अन्यका कारण नाहीं ऐसा एक द्रव्य तिस स्वरूप अकार्यकारणत्व नामा चौदमी शक्ति है ।

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामात्मकशक्तिः ।

अर्थ—पर अर आप है निमित्त जिनिका ऐसा ज्ञेयाकार अर ज्ञानाकार तिनिका ग्रहण करना अर ग्रहण करावना ऐसा स्वभाव है रूप जाका ऐसी परिणम्यपरिणामात्मक नामा पंदरमी शक्ति है । ज्ञेयाकार अर ज्ञानाकर आप ही परिणमे है यह शक्ति है ।

अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वस्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः ।

अर्थ—अन्यून कहिये घटता नाहीं, अर अनतिरिक्त कहिये बधता नाहीं ऐसें स्वरूपविषें नियतत्व कहिये नियमरूप जैसाका तैसा रहना तिसरूप त्यागोपादानशून्यत्व नामा सोलमी शक्ति है ।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः ।

अर्थ—षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप परिणया जो वस्तूका निजस्वरूपकी प्रतिष्ठाका कारण-विशिष्ठ अगुरुलघुत्वनामा गुण तिस स्वरूप अगुरुलघुत्व नामा सतरमी शक्ति है । इस षट्स्थान-पतितहानिवृद्धिका स्वरूप गोमटसारग्रंथतें जानना । यह ही अविभाग प्रतिच्छेदकी संख्यारूप जे

षट्स्थान तिनिकरि वस्तुस्वभावका घटना वधना वस्तूके स्वरूपकूं ठहरनेकूं कारण ऐसा ही कोई गुण है ताकूं अगुरुलघु गुण कहिये है। सो यह भी शक्ति आत्मामें है।

क्रमाक्रमवृत्तिवृत्तलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।

अर्थ—क्रमवृत्तिरूप पर्याय अक्रमवृत्तिरूप गुण तिनिका वर्तन सो है लक्षण जाका ऐसी उत्पादव्ययध्रुवत्व नामा अठारमी शक्ति है। क्रमवर्ती पर्याय तौ उत्पादव्ययरूप होय हैं। अर सहवर्ती गुण ध्रुवरूप रहे है।

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः।

अर्थ—द्रव्यके स्वभावभूत ऐसे ध्रौव्य व्यय उत्पाद तिनिकरि आलिंगित स्पर्शित जे समानरूप अर असमानरूप परिणाम तिनिस्वरूप एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति उगणीसमी है।

कर्मबन्धव्यपगमव्यञ्जितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिकाऽमूर्तत्वशक्तिः।

अर्थ—कर्मबंधका अभावकरि प्रकट व्यक्त भया जो स्वाभाविक स्पर्श रस गंध वर्णकरि शून्य रहित आत्माका प्रदेश तिसस्वरूप अमूर्तत्व नामा शक्ति बीसमी है।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिकाऽकर्तृत्वशक्तिः।

अर्थ—समस्तकर्मकरि किये ज्ञातापणामात्रतैं अतिरिक्त कहिये न्यारे परिणाम तिनिका करनेका उपरम कहिये अभाव तिसस्वरूप अकर्तृत्वशक्ति इकईसमी है। आत्मा ज्ञातापणासिवाय कर्मकरि किये परिणामका कर्ता नाहीं है, यह भी यामें शक्ति है।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिकाऽभोक्तृत्वशक्तिः।

अर्थ—सकलकर्मनिकरि कीया ज्ञातापणामात्रतैं अतिरिक्त न्यारे जे परिणाम तिनिका अनुभव कहिये भोगना तिसका अभावस्वरूप अभोक्तृत्व नामा बाईसमी शक्ति है। आत्मा ज्ञातापणासिवाय अन्य परिणाम कर्मके किये हैं, तिनिका भोक्ता नाहीं है यह भी यामें शक्ति है।

सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपानिष्क्रियत्वशक्तिः।

अर्थ—समस्तकर्मका अभावकरि प्रवर्त्या जो आत्माका प्रदेशका नैष्पन्द्य कहिये निश्चलपणा

तिसस्वरूप तेईसमी निष्क्रियत्वशक्ति है। सकलकर्मका अभाव होय तब प्रदेशनिका कंप मिटि जाय है। तातैं निष्क्रियत्वशक्ति भी यामैं है।

आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षणलक्षितकिञ्चिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थितलोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।

अर्थ—अनादिसंसारतैं लगाय संकोचविस्तारकरि चिन्हित अर किंचित् ऊन चरमशरीरपरिमाणकरि अवस्थित ऐसैं दोऊ भावकूं लिये लोकाकाशपरिमाणस्वरूप अवयवपणा है लक्षण जाका ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति चौवीसमी है। आत्माका लोकपरिमाण असंख्यात प्रदेश नियत है। सो संसार अवस्थामैं तौ संकुचे विस्तरे है। अर मोक्ष अवस्थामैं चरमशरीरसूं किछू घाटि अवस्थित है। ऐसी शक्ति है।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः।

अर्थ—सर्व ही शरीरनिमैं एकस्वरूपरूप रहना यह स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति पचीसमी है। शरीरके धर्मरूप न होना अपने धर्मनिमैं व्यापना यह शक्ति है।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—आप परके समानधर्म अर असमानधर्म अर समानासमान धर्म ऐसैं तीन प्रकारके भावधारणस्वरूप यह साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्व नामा शक्ति छवीसमी है।

विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणाऽनन्तधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—परस्पर भिन्नलक्षणस्वरूप जे अनंत स्वभाव तिनिकरि भावित मिल्या हुवा जो एक भाव सो है लक्षण जाका ऐसी अनंतधर्मत्वशक्ति सताईसमी है।

तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—तत्स्वरूप अर अतत्स्वरूप तिनिमयपणा है लक्षण जाका ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति अठाईसमी है।

तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः ।

अर्थ—तत्स्वरूप होना है स्वरूप जाका ऐसी तत्त्वशक्ति गुणतीसमी है । जो वस्तूका स्वभाव ताकूं तत्त्व कहिये । सो तत्त्वशक्ति है ।

अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः ।

अर्थ—तत्स्वरूप न होय रूप अतत्त्वशक्ति तीसमी है । जैसें चेतन जडरूप न होय यह शक्ति है ।

अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः ।

अर्थ—अनेक जे अपने पर्याय तिनिमैं व्यापक जो एक द्रव्य तिसमयी स्वरूप एकत्वशक्ति इकतीसमी है ।

एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपाऽनेकत्वशक्तिः

अर्थ—एकद्रव्यविषैं व्यापनेयोग्य जे अनेकपर्याय तिनिमय स्वरूप अनेकत्वशक्ति बत्तीसमी है ।

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः ।

अर्थ—भूत कहिये भये विद्यमान परिणामतें अवस्थित स्वरूप सो भावशक्ति है ये तेतीसमी है ।

शून्यावस्थत्वरूपाऽभावशक्तिः ।

अर्थ—जिस परिणामका अभाव है तिनिका शून्यपणातैं अवस्थितस्वरूप सो अभावशक्ति है । यह चौतीसमी है ।

भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान होसी जो पर्याय ताका व्यय होना तिसरूप भावाभावशक्ति पैंतीसमी है ।

अभवत्पर्यायोदयरूपाऽभावभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान न होते पर्यायका उदय होना तिसरूप अभावभावशक्ति है ।

भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान पर्यायका होना, तिसरूप रहना सो भावभावशक्ति है ।

अभवत्पर्यायाभवनरूपाऽभावाभावशक्तिः ।

अर्थ—न होते पर्यायका नाहीं होना तिसरूप अभावाभावशक्ति है यह अठतीसमी है ।

कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः ।

अर्थ—कारक जे कर्ता कर्म आदि तिनिविषैं अनुगत जो क्रिया तातैं रहित जो होनामात्रमयी सो भावशक्ति गुणतालीसमी है ।

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः ।

अर्थ—कारककै अनुगत अनुसार होना तिसरूप भावमयी क्रियाशक्ति चालीसमी है ।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः ।

अर्थ—पावनेमैं आवता है ऐसा सिद्धरूप वण्या वणाया जो भाव तिसमयी कर्मशक्ति इकतालीसमी है ।

भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृत्वशक्तिः ।

अर्थ—होवापणारूप जो सिद्धरूपभाव तिसके भाव कहिये होनेवाला तिसपणामयी कर्तृत्वशक्ति बियालीसमी है ।

भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः ।

अर्थ—होता जो भाव तिसका होना तिसविषैं अतिशयमान् जो साधक तिसपणामयी करणशक्ति तियालीसमी है ।

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः ।

अर्थ—आपहीकरि देनेमैं आवता जो भाव ताके प्राप्त होने योग्यपणा पावने योग्यपणामयी संप्रदानशक्ति चवालीसमी है ।

उत्पादव्ययालिङ्गितभावापागनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः ।

अर्थ—उत्पादव्ययकरि स्पर्शित जो भाव ताका अपायकै होतैं निरपाय कहिये नष्ट न होता ऐसा ध्रुवपणामयी अपादानशक्ति पैतालीसमी है ।

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः ।

अर्थ---भाव्यमान कहिये भावनेमैं आवता जो भाव तिसका आधारपणामयी छियालीसमी अधिकरणशक्ति है ।

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः ।

अर्थ---अपना भाव तिस मात्र स्वस्वामिपणा तिस मयी संबंधशक्ति सैतालीसमी है । अपना भावनिका स्वामी आप है यह संबंध है ऐसै सैतालीस शक्तीके नाम लिये । इनकूं आदि लेकरि अनेकशक्तिकरि युक्त आत्मा है । तौऊ ज्ञानमात्रपणाकूं नाही छोडे है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है ।

वसन्ततिलकाछन्दः

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥१८॥

अर्थ—इति कहिये ऐसे ए सैतालीस शक्ति कहि तिनिकूं आदि लेकरि अनेक अपनी शक्तिनिकरि भलै प्रकार भया है तौऊ जो भाव ज्ञानमात्रमयीपणाकूं नाहीं छोडे है सो चैतन्य आत्मा द्रव्यपर्यायमयी इस लोकमैं वस्तु है । कैसा है ? क्रमरूप अक्रमरूप विशेष वर्तनेवाले जे विवर्त कहिये परिणमनके विकाररूप अवस्था तिनिकरि चित्र कहिये नाना प्रकार होय प्रवर्ते है ।

भावार्थ—कोई जानेगा कि ज्ञानमात्र कह्या सो आत्मा एकस्वरूप ही है । सो ऐसैं नाहीं है । वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायमयी है, अर चैतन्य भी वस्तु है, सो अनंतशक्तिकरि भरचा है । सो क्रमरूप अर अक्रमरूप अनेक परिणामके विकारनिका समूहरूप अनेकाकार होय है । अर ज्ञान असाधारण भाव है ताकूं नाहीं छोडे है । सर्व अवस्था परिणामपर्यायी हैं ते ज्ञानमय हैं । अब इस अनेकस्वरूप वस्तूकूं जे जाने हैं श्रद्धे हैं, अनुभवे हैं तिनिके बडाईके अर्थ कलशरूप काव्य कहे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

नैकान्तसङ्गतदृशां स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।

स्याद्वादशुद्धमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः ॥१९॥

अर्थ—वस्तु है सो स्वयमेव आपै आप अनेकान्तात्मक है ऐसें वस्तुतत्त्वकी व्यवस्थाकूं अनेकान्तविषैं संगत कहिये प्राप्तकरि जो दृष्टि ताकरि विलोकते देखते संते सत्पुरुष हैं ते स्याद्वादकी अधिकशुद्धीकूं अंगीकारकरिकै अर ज्ञानी होय हैं । कैसे भये संते ? जिनेश्वर देवका स्याद्वादन्याय ताकूं वादी उल्लंघन न करते हैं ।

भावार्थ—जे सत्पुरुष अनेकांतकूं लगाई दृष्टिकरि ऐसे अनेकांतरूप वस्तुतत्त्वकी मर्यादाकूं देखते हैं, ते स्याद्वादकी शुद्धिकूं पायकरि ज्ञानी होय हैं । अर जिनदेवके स्याद्वादन्यायकूं नाहीं उल्लंघे हैं । स्याद्वाद न्याय जेसें वस्तु तैसें कहे है । असत्कल्पना नाहीं करे है । ऐसें स्याद्वादका अधिकार पूर्ण किया ।

अब ज्ञानमात्रभावके उपाय अर उपेय ए दोऊ भाव विचारिये हैं । जातैं, उपाय तो जाकरि पावनेयोग्य भाव पाइये सो है । ताकूं मोक्षमार्ग भी कहिये । बहुरि उपेयभाव जो पावनेयोग्य आदरनेयोग्य भाव होय ताकूं कहिये । सो आत्माका शुद्ध सर्वकर्मनितैं रहित भाव है ताकूं मोक्ष भी कहिये । सो यद्यपि ज्ञानमात्र भाव एक है तथापि अनेकांतस्वरूप है । तामैं स्याद्वादतैं साध्या हूवा उपाय उपेय ए दोऊ भाव एकहीमैं बने हैं । सो विचारिये हैं ।

आत्मा जो वस्तु ताकै ज्ञानमात्रपणा होतै भी उपाय—उपेयभाव विद्यमान है ही । जातैं ताकै एककै भी स्वयमेव आपैआप साधक अर सिद्ध इनि दोऊरूप परिणामीपणा है । आत्मा तो परिणामी है । अर साधकपणा अर सिद्धपणा ए दोऊ परिणाम हैं । तहां जो साधकरूप है सो तो उपाय है, बहुरि जो सिद्ध है सो उपेय है । यातैं इस आत्माकै अनादितैं लगाय मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्रनिकरि अपना स्वरूपतैं च्युत होनेतैं संसारमैं भ्रमताकै भलै प्रकार निश्चल-

ग्रहण किया जो व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ताका पाक कहिये परिपाक पचना ताका प्रकर्ष कहिये वधनेकी परंपरा ताकरि अनुक्रमकरि अपना स्वरूपविषैं आपकूं आरोपण करताकै अर अन्तर्मग्न जो निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका विशेष तिसपणाकरि साधकरूप है। बहुरि तैसैं ही परमप्रकर्ष कहिये वधना ताकी मकरिका कहिये हद्द ताकूं अधिरूढ कहिये प्राप्त भया जो रत्नत्रय ताका अतिशयकरि प्रवर्त्या जो समस्त कर्मका नाश ताकरि प्रज्वलित दैदीप्यमान अर अस्खलित कहिये फेरि चिगे नाहीं ऐसा निर्मल स्वभावभाव तिसपणाकरि सिद्धरूप है। इनि साधक सिद्ध दोऊ भावनिकरि स्वयमेव आप परिणमता जो एक ज्ञानमात्र भाव सो ही उपायउपेयभावकूं साधे है।

भावार्थ—यह आत्मा अनादिकालतैं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रतैं संसारमैं भ्रमे है। सो जब व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकूं निश्चल अंगीकार करै, तब अनुक्रमतैं अपना स्वरूपका अनुभवनकी वृद्धि करता निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी पूर्णताकूं प्राप्त होय तेतैं तौ साधकरूप है। बहुरि निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी पूर्णताकरि समस्त कर्मका नाश होय तब साक्षात् मोक्ष होय। सो सिद्धरूप भाव है। सो इनि दोऊ भावरूप ज्ञानहीका परिणाम है। सो ही उपायोपेयभाव है। ऐसैं दोऊ ही भावनिविषैं ज्ञानमात्रकै अनन्यपणा है। अन्यपणा नाहीं है। तिसकरि नित्य निरंतर नाहीं चिगता जो एकवस्तु ताका निष्कम्प परिग्रहणतैं तिस ही काल मोक्षके अर्थी पुरुषनिकै जो भूमिका अनादिसंसारतैं लगाय कबहू जिनिनैं पाई नाहीं ऐसी भूमिकाका लाभ तिनिकूं या प्रकार होय है। तातैं ते सत्पुरुष तहां सदाकाल निश्चल भये संते आपहीतैं क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तैं जे अनेकांत कहिये अनेक धर्म तिनिकी मूर्ति भये संते साधकभावतैं है संभव कहिये उत्पत्ति जाकी ऐसी परमप्रकर्षकी हदरूप जो सिद्धि ताके भावके भाजन होय हैं। बहुरि जे इस भूमीकूं नाहीं पावे हैं "कैसी है भूमि? अंतर्नीत कहिये जामैं गर्भित भये अनेक धर्म ऐसा जो ज्ञानमात्र एक भाव तिसस्वरूप है" सो ऐसी भूमिकूं जे नाहीं पावै ते नित्य अज्ञानी होते

संते ज्ञानमात्रभावके अपना स्वरूपकरि नाहीं होना अर पररूपकरि होना देखते संते, श्रद्धान करते संते, जानते संते, आचरते संते मिथ्यादृष्टि भये संते, मिथ्याज्ञानी भये संते, मिथ्या चारित्री भये संते, अत्यंत उपायोपेयभावतैं भ्रष्ट भये संते संसारमैं भ्रमे ही हैं। अव इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः।

ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥२०॥

अर्थ—जे भव्यपुरुष कोई प्रकारकरि कैसे ही दूरि भया है मोह अज्ञान मिथ्यात्व जिनिका ऐसे हैं, ते ज्ञानमात्र निजभावमयी निश्चलभूमिकाकूं आश्रय करे हैं। ते पुरुष साधकपणाकूं अंगीकरकरि सिद्ध होय हैं। वहुरि जे मूढ मोही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं, ते इस भूमिकाकूं न पाय अर संसारमैं भ्रमे हैं।

अर्थ—जे पुरुष गुरूके उपदेशतैं तथा स्वयमेव काललब्धीकूं पाय मिथ्यात्वसूं रहित होय हैं, ते ज्ञानमात्र अपना स्वरूपकूं पाय साधक होय, सिद्ध होय हैं। अर ज्ञानमात्र आत्माकूं नाहीं पावे हैं, ते संसारमैं भ्रमे हैं। अय कहे हैं, जो वह भूमिका ऐसे पावे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।

ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष स्याद्वादन्यायका प्रवीणपणा अर निश्चलव्रतसमितिगुप्तिरूप संयम इनि दोऊनिकरि अपने ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं उपयोग लगावता संता आत्माकूं निरंतर भावे है, सो ही पुरुष ज्ञानमय अर क्रियानयकरि इनि दोऊनिकेविषैं परस्पर भया जो तीव्र मैत्रीभाव तिसका पात्ररूप भया इस निजभावमयी भूमिकाकूं पावे है।

भावार्थ—जो ज्ञाननयहीकूं ग्रहणकरि क्रियानयकूं छोडे है सो प्रमादी स्वच्छन्दभया इस भूमिकूं न पावे है। बहुरि जो क्रियानयहीकूं ग्रहणकरि ज्ञाननयकूं नाहीं जाने है सो भी शुभकर्ममैं संतुष्ट भया इस निष्कर्मभूमिकाकूं नाहीं पावे है। बहुरि ज्ञान पाय निश्चल संयमकूं अंगीकार करे हैं तिनिकै ज्ञाननयके अर क्रियानयके परस्पर अत्यंत मित्रता होय है ते इस भूमिकाकूं पावे हैं। इनि दोऊ नयनिका ग्रहणत्यागका रूप वा फल पंचास्तिकायग्रंथके अंतमैं कह्या है, तहांतैं जानना। अब कहे हैं, इस भूमिकाकूं पावे है सो ही आत्माकूं पावे है।

वसन्ततिलकाछन्दः

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।

आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२२॥

अर्थ—जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकार भूमिकाकूं पावे है तिस ही पुरुषके यह आत्मा उदय होय है। कैसा है आत्मा? चैतन्यका जो पिंड ताका निरर्गलविलास करनेवाला जो विकास प्रफुल्लित होना तिसरूप है हास कहिये फूलना जाका, बहुरि कैसा है? शुद्धप्रकाशका भर कहिये समूह ताकरि भला प्रभातसारिखा उदयरूप है। बहुरि कैसा है? आनंदकरि भलै प्रकार तिष्ठ्या सदा नाहीं चिगता है एकरूप जाका ऐसा है। बहुरि कैसा है? अचल है अर्चि कहिये ज्ञानरूप दीप्ति जाकी।

भावार्थ—इहां चित्पिंड इत्यादि विशेषणतैं तौ अनंतदर्शनका प्रकट होना जनाया है। बहुरि कैसा है? अचल है? शुद्धप्रकाश इत्यादि विशेषणतैं अनंतज्ञानका प्रकट होना जनाया है। अरु आनंदसुस्थित इत्यादि विशेषणकरि अनंत सुखका प्रकट होना जनाया है। अर अचलार्चि इस विशेषकरि अनंतवीर्यका प्रकट होना जनाया है। पूर्वोक्त भूमीके आश्रयतैं ऐसा आत्मा उदय हो है। अब कहे हैं, ऐसा ही आत्मस्वभाव हमारै प्रकट होऊ।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।

किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैर्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥२३॥

अर्थ—मोविषैं स्याद्वादकरि दीपित कहिये प्रकाशरूप भया है लहलाट करता तेजःपुंज जामैं, बहुरि शुद्धस्वभावकी है महिमा जामैं ऐसा ज्ञानप्रकाश उदय होतैं बन्धमोक्षके मार्ग पटकनेवाले जे अन्यभाव तिनिकरि कहा साध्य है ? मेरैं तो केवल अनंतचतुष्टयरूप यह अपना स्वभाव सो निरंतर उदयरूप भया स्फुरायमान होऊ ।

भावार्थ—स्याद्वादकरि यथार्थ आत्मज्ञान भये पीछे याका फल पूर्ण आत्माका प्रकट होना है । सो मोक्षका इच्छक पुरुष यह ही प्रार्थना करे है, जो मेरा पूर्णस्वभाव आत्मा उदय होऊ । अन्यभाव बंधमोक्षमार्गको कथारूप हैं, तिनिकरि कहा प्रयोजन है ? अब कहे हैं, जो नयनिकरि आत्मा साधिये है, परंतु नयहीपरि दृष्टि रहै तौ नयनिके परस्पर विरोध भी है । तातैं मैं नयनिकूं अविरोधकरि आत्माकूं अनुभऊं हौं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः ।

तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेकमेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२४॥

अर्थ—यह आत्मा है सो चित्र कहिये अनेक प्रकार जे अपनी शक्ति तिनिके समुदायमय है । सो नयनिकी दृष्टिकरि भेदरूप किया हुवा तत्काल खंडखंडरूप होय नाशकूं प्राप्त होय है । तातैं मैं मेरा आत्माकूं ऐसैं अनुभवूं हौं, जो मै चैतन्यमात्र मह वस्तू हौं । सो कैसा हौं ? नाहीं निराकरण कीये हैं खंड जामैं तौऊ खंड भेदरहित अखंड हौं, एक हौं, बहुरि एकांतशांतरूप हौं । जामैं कर्मका उदयका लेश नाहीं ऐसा शांतभावमय हौं । अर अचल हौं, कर्मका उदयका चलाया चलूं नाहीं हौं ।

भावार्थ—आत्मामैं अनेकशक्ति हैं, अर एक एक शक्तिका ग्राहक एक एक नय है, सो नयनिकी एकांत दृष्टिकरि ही देखिये तौ आत्माका खंड खंड होय नाश होय जाय। तातैं स्याद्वादी नयनिका विरोध मेटि चैतन्यमात्र वस्तु अनेकशक्तिसमूहरूप सामान्यविशेषस्वरूप सर्वशक्तिमय एकज्ञानमात्र अनुभव करे है। ऐसा वस्तूका स्वरूप है तामैं विरोध नाहीं। अब अखंड आत्माका ऐसैं अनुभव करे सो कहे हैं।

न द्रव्येण खण्डयामि न क्षेत्रेण खण्डयामि न कालेन खण्डयामि।
न भावेन खण्डयामि सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रो भावोऽस्मि ॥

अर्थ—ज्ञानी शुद्ध नयका आलम्बन लेकरि ऐसैं अनुभवै, जो मैं मेरे शुद्धात्मस्वरूपकूं द्रव्यकरि नाहीं खंडू हौं भेद नाहीं देखू हौं। तथा क्षेत्रकरि नाहीं खंडूं हौं। तथा कालकरि नाहीं खंडूं हौं। तथा भावकरि नाहीं खंडू हौं। भलै प्रकार विशुद्ध निर्मल एक ज्ञानमय भाव हौं।

भावार्थ—शुद्धनयकरि देखिये तब द्रव्यक्षेत्रकालभावकरि शुद्ध चैतन्यमात्र भावविषैं किछू भी भेद नाहीं दीखे है। तातैं ज्ञानी अभेदज्ञानस्वरूप अनुभवमें भेद नाहीं करे है। अब कहे हैं, जो ज्ञान तौ मैं हौं, ज्ञेय ज्ञेय है।

शालिनीछन्दः

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव। ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः॥२५॥

अर्थ—जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हौं सो ज्ञेयका ज्ञानमात्र ही नाहीं जानना। तौ यह ज्ञानमात्रभाव कैसा जानना? ज्ञेयनिके आकार जे ज्ञानके कल्लोल तिनिकूं विलगता ऐसा ज्ञान सो ही ज्ञान, सो ही ज्ञेय, सो ही ज्ञाता ऐसैं ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता इनि तीन भावनिसहित वस्तुमात्र जानना।

भावार्थ—अनुभव करते ज्ञानमात्र अनुभवै। तब बाह्य ज्ञेय तौ न्यारे ही हैं ज्ञानमैं पैठे नाहीं बहुरि ज्ञेयनिके आकारकी झलक ज्ञानमैं है। सो ज्ञान भी ज्ञेयाकाररूप दीखे हैं, ए ज्ञानके

कल्लोल हैं। सो ऐसा भी ज्ञानका स्वरूप है। अर आपकरि आप जानने योग्य है तातैं ज्ञेयरूप भी है। अर आप ही आपकूं जाननेवाला है यातैं ज्ञाता भी है। ऐसैं तीनूं भावस्वरूप ज्ञान एक है। याहीतैं सामान्यविशेषरूप वस्तु कहिये तिसमात्र ही ज्ञानमात्र कहिये है। सो अनुभव करनेवाला ऐसैं ही अनुभव करै, जो ऐसा ज्ञानभाव यहु मैं हौं। अब कहे हैं, अनुभवकी दशामैं अनेकरूप दीखे हैं। तौऊ यथार्थज्ञाता निर्मल ज्ञानकूं भूले नाहीं है।

पृथ्वीछन्दः

कचिल्लसति मेचकं कचिन्मेचकामेचकं कचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२६॥

अर्थ—अनुभवन करनेवाला कहे है। जो मेरा आत्मतत्त्व है सो कहूं तो मेचक लसे है अनेकाकार दीखे है। वहुरि कहूं अमेचक कहिये अनेकाकाररहित शुद्ध एकाकार दीखे है। वहुरि कहूं मेचकामेचक कहिये दोऊ रूप दीखे है। तौऊ जे निर्मलबुद्धि हैं तिनिका मनकूं भ्रमरूप नाहीं करे है। जातैं कैसा है? परस्पर भलै प्रकार मिलै जे प्रकट अनेक शक्ति तिनिका समूहस्वरूप स्फुरायमान होता है।

भावार्थ—आत्मतत्त्व है तो अनेकशक्तीकूं लिये है। तातैं कोई अवस्थामें तो अनेक आकार कर्म उदयके निमित्तकरि अनुभवमैं आवे हैं। वहुरि कोई अवस्थामैं शुद्ध एकाकार अनुभवमैं आवे हैं। वहुरि कोई अवस्थामैं शुद्धाशुद्धरूप अनुभवमें आवे है। तौऊ यथार्थज्ञानी स्याद्वादके बलकरि भ्रमरूप न होय है। जैसा है तैसा माने है। ज्ञानमात्रसूं च्युत न होय है। अब कहे हैं, जो अनेकरूपकूं धारता यह आत्माका अद्भुत आश्चर्यकारी विभव है।

पृथ्वीछन्दः

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाऽप्येकतामितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजैरहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥२७॥

अर्थ—अहो ! बडा आश्चर्यकारी ! सो यह आत्माका स्वाभाविक अद्भुत विभव है। जो इतः कहिये एकतरफ देखिये तौ अनेकताकूं धारता है, यह पर्यायदृष्टि है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ सदा ही एकताकूं धारता है, यह द्रव्यदृष्टि है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ क्षणभंगुर है, यह भी क्रमभावी पर्यायदृष्टि है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ ध्रुव दीखे है, यह सहभावी गुणदृष्टि है। जातैं सदा उदयरूप दीखे है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ परमविस्तारस्वरूप दीखे है, यह ज्ञान अपेक्षा सर्वगतदृष्टि है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ अपने प्रदेशनिहीकरि धारिये है, यह प्रदेशनिकी अपेक्षादृष्टि है। ऐसा आश्चर्यरूप विभवकूं आत्मा धारे है।

भावार्थ—यह द्रव्यपर्यायात्मक अनंतधर्मा वस्तूका स्वभाव है। सो जे पूर्वैं अज्ञानी है, तिनिके ज्ञानमैं आश्चर्य उपजावे है। सो असंभवती वार्ता है। बहुरि ज्ञानीनिके वस्तुस्वभावमैं आश्चर्य नाहीं है। तौऊ अद्भुत परम आनंद ऐसा होय है, ऐसा कबहू पूर्वैं न भया। यह आश्चर्य भी उपजे है। फेरि इस ही अर्थरूप काव्य है।

पृथ्वीछन्दः

कषायकलिरेकतस्स्खलति शान्तिरस्त्येकतो भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः स्वभावमहिमाऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः॥

अर्थ—आत्माका स्वभावका महिमा है सो अद्भुततैं अद्भुत विजयरूप प्रवर्ते है। काहूकरि बाध्या न जाय है। कैसा है ? एकतरफ दखिये तौ कषायनिका कलेश दीखे है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ कषायनिका उपशमरूप शांत भाव है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ संसारसंबंधी पीडा दीखे है। बहुरि एकतरफ देखिये तो संसारका अभावरूप मुक्ति भी स्पर्शे है। बहुरि एकतरफ देखिये तौ केवल एक चैतन्यमात्र ही शोभे है। ऐसैं अद्भुततैं अद्भुत महिमा है।

भावार्थ—इहां भी पहलै काव्यके भावार्थरूप ही जानना। यह अन्यवादी सुणि बडा आश्चर्य करे हैं। तिनिके चित्तमैं विरुद्ध भासे, सो समाहि शके नाहीं। अर तिनिकै कदाचित् श्रद्धा

आये तौ प्रथम अवस्थामैं बडा अद्भुत दीखै, जो हमने अनादिकाल यौं ही खोया। यह जिन-वचन बडे उपकारी है, वस्तूका स्वरूप यथार्थ जनावे है। ऐसैं आश्चर्यकरि श्रद्धान करे हैं। आगै टीकाकार इस सर्व विशुद्धज्ञानका अधिकार पूर्ण करे हैं। ताके अंतमङ्गलके अर्थी इस चिच्चमत्कारहीकूं सर्वोत्कृष्ट कहे हैं।

मालिनीछन्दः

जयति सहजतेजःपुञ्जमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भप्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥२९॥

अर्थ—यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार है सो जयवंत प्रवर्ते है। काहूकरि बाध्या न जाय ऐसैं सर्वोत्कृष्ट होय प्रवर्तै है। कैसा हे? अपना स्वभावस्वरूप जो तेजः प्रकाशका पुंज ताविषैं मग्न होते जे तीन लोकके पदार्थ तिनिकरि होते दीखते हैं अनेक विकल्प भेद जामैं ऐसा है। तौऊ एकस्वरूप ही है। भावार्थ--केवलज्ञानमैं सर्व पदार्थ झलके हैं। ते अनेक ज्ञेयाकाररूप दीखे हैं। तौऊ चैतन्यरूप ज्ञानाकारकी दृष्टीमैं एक ही स्वरूप है। बहुरि कैसा है? अपना निज-रसकरि पूर्ण ऐसा नाहीं छिद्या है तत्त्वस्वरूपका पावना जाकै। भावार्थ--प्रतिपक्षी कर्मका अभाव भया तातैं नाहीं पाया स्वभावका अभाव जाकै ऐसा है। बहुरि कैसा है? प्रसभ कहिये प्रकट बलात्कारै नियमरूप है दीप्ति जाकी। अपना अनंतवीर्यतैं निष्कंप तिष्ठे है ऐसा चिच्चमत्कार जयवन्त है। इहां जयवन्त कहनेमैं सर्वोत्कर्षकरि वर्तना कह्या, सो यह ही मंगल है। आगै टीकाकार अपना नामकूं प्रकट करते पूर्वोक्त आत्माहीकूं आशीर्वाद करे हैं।

अविचलितचिदात्मन्यात्मनाऽऽत्मानमात्मन्यनवरतनिमग्नं धारयत् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ताज्ज्वलतु विमलपूर्णं निस्सपत्नस्वभावम् ॥३०॥

अर्थ—यह अमृतचन्दज्योति कहिये जामैं मरण नाहीं तथा जाकरि अन्यकै मरण नाहीं सो अमृत, तथा अत्यंत स्वादुरूप मिष्ट होय ताकूं लोक रूढिकरि अमृत कहे हैं। ऐसा अमृतमयी जो चन्द्रमासारिखा ज्योति प्रकाशस्वरूप ज्ञान, प्रकाशरूप आत्मा, सो उदयकूं प्राप्त भया। सो यह

समंतात् कहिये सर्व तरफ सर्वक्षेत्रकालमैं, ज्वलतु कहिये देदीप्यमान प्रकाशरूप रहौ। कैसा है? अविचलित कहिये निश्चल जो चित् कहिये चेतना सो है स्वरूप जाका ऐसा जो अपना आत्मा, ताविषैं आपहीकरि अपने आत्माकूं निरंतर मग्न हूवा धारता संता है। पाया स्वभावकूं कबहू नाहीं छोडता है। बहुरि कैसा है? ध्वस्त कहिये नाशकूं प्राप्त भया है मोह जाका अज्ञान अंधकारकूं दूरि कीया है। बहुरि निस्सपत्न कहिये प्रतिप्रक्षी कर्मकरि रहित ऐसा है स्वभाव जाका। बहुरि कैसा है? निर्मल है अर पूर्ण है।

भावार्थ—इहां आत्माकूं अमृतचंद्रज्योति कह्या, सो यह लुप्तोपमा अलंकारकरि कह्या जानना। जातैं, अमृतचंद्रवत् ज्योति ऐसा समासविषैं वत् शब्दका लोप होय है तब अमृतचंद्रज्योति कहिये। तथा वत् शब्द न करिये तब अमृतचंद्ररूपज्योति ऐसा कहिये। तब भेदरूपक अलंकार है। तथा अमृतचन्द्रज्योति ऐसा ही आत्माका नाम कहिये तब अभेदरूपक अलंकार हो है। अर याके विशेषण हैं तिनिकरि चंद्रमातैं व्यतिरेक भी है। जातैं ध्वस्तमोह विशेषण तौ अज्ञान अंधकार दूरि होना जणावे है। अर निर्मल पूर्ण विशेषण लांछनरहितपणा पूर्णपणा जणावे है। अर निःसपत्नस्वभाव विशेषण राहुबिंबतैं तथा वादला आदिकरि आच्छादित न होना जणावे है। समंतात् ज्वलन है सो सर्वक्षेत्र सर्वकालमैं प्रतापरूप प्रकाश करना जणावे है। चंद्रमा ऐसा नाहीं। बहुरि अमृतचंद्र ऐसा टीकाकार अपने नाम भी जणाया है। बहुरि याका समास पलटिकरि अर्थ कीजिये तब अनेक अर्थ होय हैं। सो यथासंभव जानने।

ऐसैं समयसारग्रन्थकी आत्मख्याति नाम टीकाकी वचनिकाविषैं सर्वविशुद्धज्ञानका प्रवेश नामा नवमां अधिकार पूर्ण भया ॥९॥

इहां तांई गाथा तौ ४१४ भई। अर काव्य २७५ भये। श्लोकसंख्या १२००० है।

सवैया—सुखविशुद्धज्ञानरूप सदा चिदानंद करता न भोगता न परद्रव्यभावको।
मूरतअमूरत जे आनद्रव्य लोकमांहि ते भी ज्ञानरूप नाही न्यारे न अभावको ॥

यहै जानि ज्ञानी जीव आपकूं भजै सदीव ज्ञानरूप सुखतूप आन न लगावको ।
कर्म कर्मफलरूप चेतनाकूं दूरि टारि ज्ञानचेतना अभ्यास करे शुद्ध धावको ॥१॥

अब संस्कृतटीका पूर्ण करि अमृतचंद्र आचार्य कहे हैं, जो आत्मामैं परसंयोगतैं अनेक भाव होय हैं तिनिका वर्णन ग्रंथनिमें होय है, सो सर्व ही वर्णन इस विज्ञानघनमैं मग्न भये किछू भी नाहीं दीखे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्द:

यस्मात् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं । रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्नक्रियायाः फलं । तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल ॥३१॥

अर्थ—यस्मात् कहिये जिसपर संयोगरूप बंधपर्याय जनित अज्ञानतैं प्रथम तौ अपना अर परका द्वैतरूप एकभाव भया, बहुरि जिस द्वैतपणातैं अपने स्वरूपविषैं अंतर भया, बंधपर्यायहीकूं आपा जान्या, बहुरि तिस अंतर पडनेतैं रागद्वेषका परिग्रहण भया, तिसके होतै क्रिया अर कर्ता कर्म आदि कारकनिकरि भेद पड्या, बहुरि तिस क्रिया कारकके भेदकरि आत्माकी अनुभूति है, सो क्रियाका समस्तफलकूं भोगती संती खेदखिन्न भई सो ऐसा अज्ञान है, सो अव ज्ञान भया । तब तिस विज्ञानघनके समूहविषैं मग्न होय गया सो अब याकूं देखिये तौ किछू भी नाहीं है । यह प्रकट अनुभवमैं आवे है ।

भावार्थ—अज्ञान है सो परसंयोगतैं ज्ञान ही अज्ञानरूप परिणया था । कछू दूजा तौ वस्तु था नाहीं । सो अव ज्ञानरूप परिणम्या तब किछू भी न रह्या । तब इस अज्ञानके निमित्ततैं राग, द्वेष, कर्ता, कर्म, सुख, दुःख, आदि भाव होय थे, ते भी विलाये गये । एक ज्ञान ही ज्ञान रहि गया । तीन कालवर्ती अपना परका सर्व भावनिकूं आत्मा ज्ञाता द्रष्टा हुवा देखवो करौ । आगै अमृतचंद्र आचार्य इस ग्रंथ करनेका अभिमानरूप कषायकूं दूरि करता संता यथार्थ कहे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्द:

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः । स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥३२॥

अर्थ—यह समय कहिये आत्मवस्तु तथा समय कहिये समयप्राभृत नाम शास्त्र, ताकी व्याख्या कहिये व्याख्यान तथा यह आत्मख्याति नाम टीका, सो शब्दनिकरि करी है। कैसे हैं शब्द ? अपनी शक्तिहीकरि संसूचित कहिये भलै प्रकार कह्या है वस्तूका तत्त्व कहिये यथार्थस्वरूप कहिये निज आत्मरूप अमूर्तिक ज्ञानमात्र, तिसविषैं गुप्त होय प्रवेशकरि रह्या है।

भावार्थ-शब्द है सो तौ पुद्‌गल है। सो पुरुषके निमित्ततैं वर्णपदवाक्यरूप परिणमैं है सो इनिमैं वस्तूका स्वरूपके कहनेकी शक्ति स्वयमेव है। जातैं शब्दका अर अर्थका वाच्यवाचक संबंध है; सो द्रव्यश्रुतकी रचना शब्दहीकै करना संभवै है। अर आत्मा है सो अमूर्तिक है, अर ज्ञानस्वरूप है, तातैं मूर्तिक पुद्‌गलकी रचना कैसैं करै ? तातैं आचार्यनें ऐसा कह्या है, सो यह समयप्राभृतकी टीका शब्दनिकरि करी है। मैं मेरा स्वरूपमैं लीन हौं। मेरा कर्तव्य यामैं नाहीं है। ऐसैं कहनेमैं उद्धतपणाका परिहार भी आवे है। अर निमित्तनैमित्तिकव्यवहारकरि ऐसा कहिये ही है, जो विवक्षितकार्य फलाने पुरुषनै किया इस न्यायकरि अमृतचंद्र आचार्यकृत यह टीका है हो। इस ही न्यायकरि पढनेसुननेवालेनिकूं तिनिका उपकार भी मानना युक्त है। जातें याकै पढने सुननेकरि परमार्थ आत्माका स्वरूप जान्या जाय है। तिसका श्रद्धान आचरण भये मिथ्या ज्ञान श्रद्धान आचरण दूरि होय है। परंपरा मोक्षकी प्राप्ति होय है। याका निरंतर अभ्यास करना योग्य है।

ऐसैं आत्मख्याति नामा समयसारग्रंथकी टीका समाप्त भई।

सवईया इकतीसा

कुंदकुंदमुनि कियो गाथाबंध प्राकृत है प्राभृतसमय शुद्ध आतम दिखावनूं।
सुधाचंद्रसूरि करि संस्कृतटीका वर आत्मख्याति नाम यथातथ्य मन भावनूं॥
देशकी वचनिकामैं लिखि जयचंद्र पढै संक्षेप अर्थ अल्पबुद्धिकूं पावनूं।
पढो सुनूं मन लाय शुद्ध आतमा लखाय ज्ञानरूप गहौ चिदानंद दरसावनूं ॥१॥

दोहा----समयसार अविकारका वर्णन कर्ण सुनंत। द्रव्यभावनोकर्म तजि आतमतत्त्व लखंत ॥२॥

पुरुष विकल्पके जालतैं रहित शांत भया है चित्त जिनिका ऐसे भये संते साक्षात् अमृतकूं पीवे हैं।

टीका—जेतैं कछू पक्षपात रहे तेतैं चित्तका क्षोभ मिटै नाहीं, जब सर्वनयका पक्षपात मिटि जाय, तब वीतरागदशा होय स्वरूपकी श्रद्धा निर्विकल्प होय अर स्वरूपविषैं प्रवृत्ति होय है। अब नयपक्षकूं प्रगटकरि कहे हैं, अर तिसकूं छोडे है सो तत्त्वज्ञानी है स्वरूपकूं पावे है, ऐसा अर्थके कलशरूप वीस काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२५॥

अर्थ—यहु चिन्मात्र जीव है सो एकनयका तौ कर्मकरि बंध्या है ऐसा पक्ष है। बहुरि दूसरे नयका कर्मकरि नाहीं बंध्या है ऐसा पक्ष है। ऐसे दोऊ ही नयके दोऊ पक्ष हैं। सो ऐसैं दोऊ नयका जाकै पक्षपात है सो तौ तत्त्ववेदी नाहीं है। बहुरि जो तत्त्ववेदी है, तत्त्वका स्वरूप जाननेवाला है, सो पक्षपातरहित है। तिस पुरुषका जो चिन्मात्र आत्मा है सो चिन्मात्र ही है। यामैं पक्षपातकरि कल्पना नाहीं करे है।

टीका—इहां शुद्धनयकूं प्रधानकरि कथन है। तहां जीवनामा पदार्थकूं शुद्ध नित्य अभेद चैतन्यमात्र स्थापि अर कहे हैं, जो इस शुद्धनयका भी जो पक्षपात करेगा, सो भी तिस स्वरूपका स्वादकूं नाहीं पावेगा। अशुद्धपक्षकूं तौ गौणकरि कहतेहि आवे है। अर कोई शुद्धनयका भी जो पक्षपात करेगा, तौ पक्षका राग न मिटेगा। तब वीतरागता नाहीं होयगी। तातैं पक्षपातकूं छोडि चिन्मात्रस्वरूपविषैं लीन भये समयसार पावे है। अर चैतन्यके परिणाम परनिमित्ततैं अनेक होय हैं। तिनि सर्वनिकूं गौण कहते ही आवे है। तातैं सर्वपक्ष छोडि शुद्धस्वरूपका श्रद्धान करि पीछे स्वरूपविषैं प्रवृत्तिरूप चारित्र भये वीतरागदशा करना योग्य है। अब जैसैं बद्ध अबद्धपक्ष छुडाई तैसैं ही अन्यपक्षकूं प्रगटकरि कहि छुडावे हैं।

एकस्य मूढो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६॥

अर्थ—एक नयके तौ जीव मूढ है मोही है, बहुरि दूसरे नयके मूढ नाहीं है यह पक्ष है। ऐसे ये दोऊ ही चैतन्यविषैं पक्षपात हैं। बहुरि जो तत्त्ववेदी है सो पक्षपातरहित है, ताका चित् है सो चित् ही है, मोही अमोही नाहीं है।

एकस्य रक्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२७॥

अर्थ—एकनयके तौ यह जीव रक्त कहिये रागी है ऐसा पक्ष है, बहुरि दूसरे नयके रक्त नाहीं है ऐसा पक्षपात है। सो ए दोऊ ही चैतन्यविषैं नयके पक्षपात हैं। बहुरि जो तत्त्ववेदी है सो पक्षपातरहित है, ताकै पक्षपात नाहीं है, ताकै जो चित् है सो चित् ही है।

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८॥
एकस्य कर्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२९॥
एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३०॥
एकस्य जीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३१॥
एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३२॥
एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३३॥

एकस्य काय न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३४॥
एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३५॥
एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३६॥
एकस्य सांतो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३७॥
एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८॥
एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३९॥
एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४०॥
एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४१॥
एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४२॥
एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४३॥
एकस्य भातो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४४॥

अर्थ—एक नयके तो दुष्ट कहिये द्वेषी है, बहुरि दूसरे नयके दुष्ट नाहीं है । ऐसैं ए चैतन्य-

विषैं दोऊ नयके दोय पक्षपात हैं। एक नयके कर्ता है, दूसरे नयके कर्ता नाहीं है। ए ऐसे चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भोक्ता है, दूसरे नयके भोक्ता नाहीं है। ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके जीव है, दूसरे नयके जीव नाहीं है। ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके सूक्ष्म है, दूसरे नयके सूक्ष्म नाहीं है। ऐसे ए चैतन्यविषैं दोऊ नयके दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके हेतु है, दूसरे नयके हेतु नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके कार्य है, दूसरे नयके कार्य नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भावरूप है, दूसरे नयके अभावरूप है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके एक है दूसरे नयके अनेक है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके सांत कहिये अंतसहित है, दूसरे नयके अंतसहित नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके नित्य है, दूसरे नयके अनित्य है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके वाच्य कहिये वचनकरि कहनेमें आवे है, दूसरे नयके वचनगोचर नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके नाना रूप है, दूसरेके नानारूप नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके चेत्य कहिये जानने योग्य है, दूसरेके चितवने योग्य नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके दृश्य कहिये देखने योग्य है, दूसरेके देखनेमें नाहीं आवे है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके वेद्य कहिये वेदनेयोग्य है, दूसरेके वेदनेमें न आवे है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। एक नयके भात कहिये वर्तमान प्रत्यक्ष है, दूसरेके नाहीं है। ए दोऊ नयके चैतन्यविषैं दोऊ पक्षपात हैं। ऐसे चैतन्य सामान्यविषैं ए सर्व पक्षपात हैं। बहुरि तत्त्ववेदी है सो स्वरूपकूं यथार्थ अनुभवन करनेवाला है। ताका चिन्मात्रभाव है सो चिन्मात्र ही है, पक्षपातसूं रहित है।

भावार्थ—जीवके परनिमित्ततैं अनेक परिणाम हैं, तथा यामैं साधारण अनेक धर्म हैं। तथापि

असाधारण धर्म चित्स्वभाव है, सो ही सामान्यभावकरि शुद्धनयका विषय है, तिस ही कूं प्रधान करि कथन है, सो याके साक्षात् अनुभवके अर्थि ऐसा कह्या है, जो यामें नयनिके अनेक पक्षपात उपजे हैं। बद्ध अबद्ध, मूढ अमूढ, रागी विरागी, द्वेषी अद्वेषी, कर्ता अकर्ता, भोक्ता अभोक्ता, जीव अजीव, सूक्ष्म स्थूल, कारण अकारण, कार्य अकार्य, भाव अभाव, एक अनेक, सान्त असान्त, नित्य अनित्य, वाच्य अवाच्य, नाना अनाना, चेत्य अचेत्य, दृश्य अदृश्य, वेद्य अवेद्य, भात अभात इत्यादि नयनिके पक्षपात हैं। सो तत्त्वका अनुभवन करनेवाला पक्षपात नाहीं करे है। नयनिकूं तौ यथायोग्य विवक्षातैं साधे है। अर चैतन्यकूं चेतनमात्र ही अनुभवन करे है। इस ही अर्थका संक्षेपकरि काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां।
अंतर्वहिःसमरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रं ॥४५॥

अर्थ—जो तत्त्वका जाननेवाला पुरुष है सो पूर्वोक्त प्रकार आपै आप उठते हैं वहुतविकल्पनिके जाल जामें, ऐसी जो वडी नयपक्षरूप वन ताकूं उल्लंघ्यकरि अर समरस जो वीतराग भाव सो ही है एकरस जामें ऐसा है स्वभाव जाका ऐसा जो आत्माका भात्र अपना स्वरूप अनुभूतिमात्र, ताकूं प्राप्त होय है। फेरि कहे हैं—

रथोद्धताछन्दः

इंद्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६॥

पक्षातिक्रांतस्य किं स्वरूपमिति चेत् ?

अर्थ—तत्त्ववेदी ऐसा अनुभवन करे है जो मैं चिन्मात्र मह तेजका पुंज हूं। जाका स्फुरायमान होना ही वड़ी वड़ी पुष्ट उठती चंचल जे विकल्परूप लहरी, तिनि करि उछलता इनि नयनिके प्रवर्तनरूप इंद्रजाल, ताही तत्काल समस्तनिकूं दूरी करे है।

भावार्थ—चैतन्यका अनुभवन ऐसा है, जो याकै होतैं समस्त नयनिका विकल्परूप इंद्रजाल है सो तत्काल विलय जाय है। आगे पूछे है जो पक्षतैं अतिक्रांत है दूरवर्ती है तिसका कहा स्वरूप है॥ ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं। गाथा—

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिवद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥७५॥

द्वयोरपि नययोर्भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिबद्धः।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥७५॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु भगवान्केवली श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः विश्वसाक्षितया केवलं स्वरूपमेव जानाति न तु सततमुल्लसितसहजविमलसकलकेवलज्ञानतया नित्यं स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वाच्छ्रुतज्ञानभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहदूरीभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति तथा किल यः श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः क्षयोपशमविजृंभितश्रुतज्ञानात्मकविकल्पप्रत्युद्गमनेपि परपरिग्रहप्रतिनिवृत्तौत्सुक्यतया स्वरूपमेव केवलं जानाति न तु खरतरदृष्टिगृहीतसुनिस्तुपनित्योदितचिन्मयसमयप्रतिबद्धतया तदात्वे स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वात् श्रुतज्ञानात्मकसमस्तांतर्बहिर्जल्परूपविकल्पभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति स खलु निखिलविकल्पेभ्यः परतरः परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्योतिरात्मख्यातिरूपोनुभूतिमात्रः समयसारः।

अर्थ—जो पुरुष समय कहिये अपना शुद्धात्मा तिसतैं प्रतिबद्ध है आत्माकूं जाने है, सो दोऊ ही नयका कह्याकूं केवल जाने ही है। बहुरि नयपक्षकूं किछू भी नाहीं ग्रहण करे हैं। कैसा है वह पुरुष? नयके पक्षकरि रहित है।

टीका—इहां प्रथम दृष्टांत कहे हैं, जैसे केवली भगवान् सर्वज्ञ वीतराग समस्त वस्तूका साक्षीभूत है, ज्ञाता द्रष्टा है, सो श्रुतज्ञानके अवयवभूत जे व्यवहार निश्चयनयके पक्षरूप दोय नय तिनिका केवल स्वरूपकूं जाने ही है। बहुरि काहू ही नयके पक्षकूं नाही ग्रहण करे है। जातैं

केवली भगवान् निरंतर उदय स्वाभाविक निर्मल केवल ज्ञानस्वभाव है, तातैं नित्य ही स्वयमेव विज्ञानघनस्वरूप है, याहीतैं श्रुतज्ञानकी भूमिकातैं अतिक्रांतपणाकरि समस्त नय पक्षका परिग्रहतैं दूरीवर्ती है। तैसे ही जो मति श्रुतज्ञानी है सो भी श्रुतज्ञानके अवयवभूत जे व्यवहार निश्चय दोऊ नय तिनिका पक्षका स्वरूपकूं ही केवल जाने है, जातैं याकै क्षायोपशमिक ज्ञान है, ताकरि उपजे जे श्रुतज्ञानस्वरूप विकल्प तिनिका फेरि उपजना होय है, तौऊपर जे ज्ञेय तिनिका ग्रहणप्रति उत्साहकी निवृत्ति है, ताकरि नयनिका स्वरूपका ज्ञाता ही है। बहुरि काहूहि नयकी पक्षकूं नाही ग्रहण करे है, जातैं तीक्ष्ण ज्ञानदृष्टिकरि ग्रह्या जो निर्मल नित्य जाका उदय ऐसा चिन्मय समय कहिये चैतन्यस्वरूप अपना शुद्ध आत्मा, तिसतैं याकै प्रतिबद्धपणा है, ताकरि तिस स्वरूपके अनुभवनके काल स्वयमेव केवलीकी ज्यौं विज्ञानघनरूप भया है। याहीतैं श्रुतज्ञान स्वरूप जे समस्त अंतरंग अर बाह्य जल्प कहिये अक्षरस्वरूप विकल्प ताकी भूमिकातैं अतिक्रांत है, तिसपणे करि केवलीकी ज्यौं समस्त नयपक्षका ग्रहणतैं दूरीभूत है। सो ऐसा मतिश्रुतज्ञानी भी है। सो निश्चयकरि समस्त विकल्पनितैं दूरवर्ती परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्योति आत्मख्यातिरूप अनुभूतिमात्र समयसार है।

भावार्थ—जैसैं केवली भगवान् सदा नयनिकी पक्षका ज्ञाता द्रष्टा है तैसैं ही श्रुतज्ञानी भी जिस काल समस्त नयपक्षतैं रहित होय शुद्ध चैतन्यमात्र भावका अनुभवन करे है तब नयपक्षका ज्ञाता ही है। एकनयकी सर्वथा पक्ष ग्रहण करे तौ मिथ्यात्वसूं मील्यो पक्षको राग होय। बहुरि प्रयोजनके वशतैं एकनयकूं प्रधानकरि ग्रहण करै, तौ मिथ्यात्व विना चारित्रमोहका पक्षसूं राग रहै। अर जब नयपक्ष छोडी वस्तुस्वरूपकूं केवल जाने ही, तब तिस काल श्रुतज्ञानी भी केवलीकी ज्यौं वीतरागसारिखा ही होय है ऐसा जानना। इस अर्थकूं मनमें धारि तत्त्ववेदी ऐसा अनुभव करै ऐसे अर्थरूप काव्य कहे हैं।

स्वागताछन्दः

चित्स्वभावभरभावितभावाऽभावभावपरमार्थतयैकं ।
बंधपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारं ॥४७॥

पक्षातिक्रांत एव समयसार इत्यवतिष्ठते ।

अर्थ—मैं जू हौं तत्त्वका जाननेवाला सो समयसार जो परमात्मा ताही अनभवूं हूं। कैसा है समयसार ? चैतन्यस्वभावका भर कहिये पुंज, ताकरि भया है भाव अभावस्वरूप जो एकभावरूप परमार्थ तिसपणाकरि एक है।

टीका—परमार्थकरि विधिप्रतिषेधका विकल्प जामैं नाहीं है। बहुरि पहलै कहा करि अनुभवूं हूं ? समस्त ही जो बंधकी पद्धति कहिये परिपाटी, ताकूं दूरि करिकै।

भावार्थ—परद्रव्यके कर्ताकर्म भावकरि बंधकी परिपाटी चालै थी, ताकूं पहलै दूरी करि समयसारकूं अनुभवूं हौं। बहुरि कैसा है ? अपार है, जाके केवलज्ञानादि गुणका पार नाहीं है। आगे ऐसा नियमकरि ठहरावै है, जो पक्षतैं अतिक्रांत दूरवर्ती ही समयसार है। गाथा—

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥७६॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेतल्लभत इति केवलं व्यपदेशं ।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥७६॥

आत्मख्यातिः—अयमेक एव केवलं सम्यग्दर्शनज्ञानव्यपदेशं किल लभते। यः खल्वखिलनयपक्षाक्षुण्णतया विश्रांतसमस्तविकल्पव्यापारः स समयसारः। यतः प्रथमतः श्रुतज्ञानावष्टंभेन ज्ञानस्वभावमात्मानं निश्चित्य ततः खल्वात्मख्यातये परख्यातिहेतूनखिला एवेंद्रियानिंद्रियबुद्धीरवधार्य आत्माभिमुखीकृतमतिज्ञानतत्त्वः, तथा नानाविधपक्षालंबनेनानेकविकल्पैराकुलयंतीः श्रुतज्ञानबुद्धीरप्यवधार्य श्रुतज्ञानतत्त्वमप्यात्माभिमुखीकुर्वन्नत्यंतमविकल्पो भूत्वा झगित्येव स्वरसत

एव न्कीभवंतमादिमध्यांतविमुक्तमनाकुलमेकं केवलमखिलस्यापि विश्वस्योपरितरंतमिवाखंडप्रतिभासमयमनंतं विज्ञानघनं परमात्मानं समयसारं विंदन्नेवात्मा सम्यग्दश्यते ज्ञायते च ततः सम्यग्दर्शनं ज्ञानं च समयसार एव ।

अर्थ—जो सर्व नयपक्षतैं रहित है सो ही समयसार ऐसा कह्या है बहुरि यह समयसार है सो ही केवल सम्यग्दर्शनज्ञान ऐसा नामकूं पावे है यह नाम वाहीके है, वस्तु दोय नाहीं है। जो निश्चयतैं समस्त नयपक्षतैं भेदरूप न किया जाय ऐसा चिन्मात्रभाव, तिसकरि विलय भये हैं समस्त विकल्पनिके व्यापार जामैं ऐसा समयसार शुद्धस्वरूप है। सो यह ही एक केवल सम्यग्ज्ञान ऐसा नामकूं पावे है। परमार्थतैं एकही है। जातैं आत्मा प्रथम ही श्रुतज्ञानके अवलंबन करि ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चयकरि, तापीछे निश्चयतैं आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि होनेके अर्थि परख्याति जो आत्मातैं परपदार्थकी ख्याति कहिये प्रगट होना, ताकूं कारण जो इंद्रिय अर मनके द्वारैं प्रवृत्तिरूप बुद्धि, ताकूं गौण करी आत्माके सन्मुख किया है मतिज्ञानका स्वरूप जानैं ऐसा होय है। बहुरि तैसे ही नानाप्रकारके नयनिके पक्ष, तिनिका अवलंबन करी अनेक विकल्पनिकरि आकुलता उपजावती जो श्रुतज्ञानकी बुद्धि ताकूं भी गौण करी, अर श्रुतज्ञान है ताकूं भी आत्मतत्त्व स्वरूपविषैं सम्मुख करता संता अत्यंत निर्विकल्परूप होय, अर तत्काल ही अपने निजरसहीकरि व्यक्त प्रगट होता आदि मध्य अंतके भेदकरि रहित, अनाकुल एक केवल समस्त पदार्थसमूह जो लोक, ताके उपरि तरता जैसैं होय तैसैं अखंडप्रतिभासमय अविनाशी अनंतविज्ञानघन स्वभावरूप परमात्मा जो समयसार, ताही अनुभवता संता सम्यक्प्रकार देखिये है श्रद्धिये है, सम्यक्प्रकार जानिये है। तातैं यह ही सम्यग्दर्शन है, यह ही सम्यग्ज्ञान है ऐसैं यह ही समयसार है।

भावार्थ—आत्माकूं पहलै आगमज्ञानतैं ज्ञानस्वरूप निश्चयकरि, पीछै इंद्रियबुद्धिरूप मतिज्ञानकूं भी ज्ञानमात्रहीमैं मिलाय, श्रुतज्ञानरूप नयनिके विकल्प मीटि, अर श्रुतज्ञानकूं भी निर्विकल्प

करि एक ज्ञानमात्र अखंड प्रतिभासका अनुभवन करना। यह ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान नाम पावे है किछु न्यारा ही है नाहीं। अब याही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान् ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोप्ययं ॥४८॥

अर्थ—जो नयनिका पक्षविना निर्विकल्पभावकूं प्राप्त होता, निश्चल जैसें होय तैसें समय कहिये आगम अथवा आत्मा, ताका सार है सो सोभे है। सो कैसा है? जे निश्चितपुरुष हैं तिनि करि स्वयं आस्वाद्यमान है, तिनिनैं अनुभवतैं जाणि लिया है। सो ही यह भगवान् विज्ञान ही है एकरस जाका ऐसा है, सो पवित्र पुराणपुरुष है, याकूं ज्ञान कहौ अथवा दर्शन कहौ अथवा किछू और नामकरि कहौ, जो कछू है सो यह एक ही है, नाना नाम कहावे है। अब कहे हैं, जो यह आत्मा ज्ञानतैं च्युत भया था सो ज्ञानहीसूं आय मिले है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मनमात्मा हरन् आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥४९॥

अर्थ—यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभावतैं च्युत भया संता, प्रचुर विकल्पनिके जालके गहनवनमें अतिशयकरि भ्रमण करे था, तिस भ्रमतेकूं विवेकरूप नीचे मार्गके गमनकरि जलकी ज्यौं अपना विज्ञानघन स्वभावविषैं दूरतैं आणि मिलाया। कैसा है? जे विज्ञानका रस ही के एक रसीले हैं, तिनिकूं एक विज्ञानरस स्वरूप ही है। सो ऐसा आत्मा अपने आत्मस्वभाव ही कूं आप ही विषैं समेटता संता जैसैं बाह्या गया था, तैसैं ही अपने स्वभावविषैं आय प्राप्त होय है।

भावार्थ—इहां जलका दृष्टांत है। जैसैं जल है सो जलके निवासमेंसं कोई मार्गकरि बाह्य निसरै सो वनमें अनेक जायगा भ्रमे, फेरि कोई नीचा मार्गकरि ज्यौंका त्यौं अपना जलके

निवासमें आय मिलै। तैसैं आत्मा भी अनेक विकल्पनिके मार्गकरि स्वभावतैं च्युत भया भ्रमण करता संता कोई विवेक भेदज्ञानरूप नीचा मार्गकरि आप ही आपकूं खेचता संता, अपने स्वभाव विज्ञानघनविषैं आय मिले है।

अब कर्ता कर्म अधिकारकूं पूर्ण किया है, सो कर्ता कर्मका संक्षेप अर्थके कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्। न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥५०॥

अर्थ—विकल्प करनेवाला तौ केवल कर्त्ता है। बहुरि विकल्प है सो केवल कर्म है। अन्य किछू कर्ता कर्म नाहीं है। यातैं जो विकल्पसहित है, ताका कर्ता कर्मपणा कदाचित् भी नष्ट नाहीं होय है।

भावार्थ—जहां तांई विकल्पभाव है, तहां तांई कर्ताकर्मभाव है। जिस काल विकल्पका अभाव होय, तिस काल कर्ताकर्मभावका भी अभाव होय है। अब कहे हैं, जो करे है सो करे ही है, जाने है सो जाने ही है।

रथोद्धताछन्दः

यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम्।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१॥

अर्थ—जो करे है, सो केवल करे ही है। बहुरि जो जाने है, सो केवल जाने ही है। बहुरि जो करे, है, सो कछू ही नाहीं जाने है। अर जो जाने है, सो कछू ही नाहीं करे है।

भावार्थ—कर्ता है सो ज्ञाता नाहीं, अर ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं। अब कहे हैं, ऐसैं ही करनेरूप क्रिया अर जाननेरूप क्रिया दोऊ भिन्न हैं।

इन्द्रवज्राछन्दः

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥५२॥

अर्थ--जाननेरूप क्रिया है, सो तौ करनेरूप क्रियाविषैं अंतरंगमैं नाहीं भासे है। बहुरि करनेरूप क्रिया है, सो जाननेरूप क्रियाविषैं अंतरंगमें नाहीं भासे है। तातैं ज्ञप्ति क्रिया अर करोति क्रिया दोऊ भिन्न हैं। तातैं यह ठहरी जो ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं है।

भावार्थ--जिस काल ऐसे परिणमे है, जो मैं परद्रव्यकूं करूं हौं, तिस काल तौ तिस परिणमन क्रियाका कर्ता ही है। बहुरि जिस काल ऐसै परिणमे है, जो मैं परद्रव्यकूं जानूं हौं, तिस काल जानन क्रियारूप ज्ञाता ही है। इहां कोई पूछे है, अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके जेतैं चारित्रमोहका उदय है, तेतैं कषायरूप परिणमे है। तहां कर्ता कहिये कि नाहीं ? ताका समाधान—जो अविरत सम्यग्दृष्टयादिके श्रद्धान ज्ञानमय परद्रव्यके स्वामीपणारूप कर्तापणाका अभिप्राय नाहीं, अर कषायरूप परिणमन है सो उदयकी बरजोरीसूं है, ताका यह ज्ञाता है। तातैं अज्ञानसंबंधी कर्तापणा याकै नाहीं है। अर निमित्तकी बरजोरीका परिणमनका फल किंचित् होय है। सो संसारका कारण नाहीं है। जैसैं वृक्षकी जड कटे पीछै किंचित्काल रहै या न रहै तैसैं है। फेरि दृढ करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि द्वन्द्वं विप्रतिपिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥५३॥

अथवा नानाट्यतां तथापि–

अर्थ—कर्ता है सो तौ कर्मविषैं निश्चयकरि नाहीं है। बहुरि कर्म है सो भी कर्ताविषैं निश्चयकरि नाहीं है। ऐसैं दोऊ ही परस्पर विशेषकरि प्रतिषेधिये, तब कर्ताकर्मकी कहा स्थिति होय ? नाहीं होय। तब वस्तुकी मर्यादा प्रगट व्यक्तरूप यह ठहरी, जो ज्ञाता तौ सदा ज्ञानविषैं ही है। अर कर्म है सो सदा कर्मविषैं ही है। तौऊ यह मोहे अज्ञान है, सो नेपथ्यविषैं कैसैं नाचे है ? सो यह बडा खेद है। नेपथ्य कहिये शांत ललित उदात्त धीर इनि च्यारि

आभरणनि सहित जो यह तत्त्वनिका नृत्य, ताविषैं यह मोह कैसैं नाचे है? कर्ताकर्मभाव तौ नेपथ्यस्वरूप नृत्यका आभूषण नाहीं, ऐसैं खेदसहित वचन आचार्य नें कह्या है।

भावार्थ--कर्म तौ पुद्गल है, ताका कर्ता जीवकूं कहिये, तौ तिनि दोऊनिकौ तौ वडा भेद है, जीव तौ पुद्गलमें नाहीं अर पुद्गल जीवमें नाहीं तब इनिके कर्तृकर्मभाव कैसा बनै? तातैं जीव तौ ज्ञाता है, सो ज्ञाता ही है, पुद्गलका कर्ता नाहीं। वहुरि पुद्गलकर्म है सो कर्म ही है। तहां आचार्य खेदकरि कह्या है--जो ऐसें प्रगट भिन्नद्रव्य है, तौऊ अज्ञानीका ए मोह कैसैं नाचे है? जो मैं तो कर्ता हूं अर यह पुद्गल मेरा कर्म है, यह वडा अज्ञान है। फेरि कहे हैं, जो ऐसें मोह नाचे है, तो नाचो, वस्तुस्वरूप तौ जैसा है तैसा ही तिष्ठै है।

मन्दाक्रांताछन्दः

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चैश्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४॥

इति जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रांतौ।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ द्वितीयोऽङ्कः।

अर्थ--यहू ज्ञानज्योति है सो अंतरंगविषैं अतिशयकरि अपनी चेतन्यशक्तीके समूहके भारतैं अत्यंत गंभीर, जाका थाह नाहीं, सो ऐसैं निश्चल व्यक्तरूप प्रगट भया। जैसैं अज्ञानविषैं आत्मा कर्ता था, सो तौ अब कर्ता न होय, अर याके अज्ञानतैं पुद्गलकर्मरूप होय था, सो अब कर्मरूप न होय, वहुरि जैसैं ज्ञान तो ज्ञानरूप ही होय अर पुद्गल है सो पुद्गलरूप ही रहै, ऐसैं प्रगट भया।

भावार्थ--आत्मा ज्ञानी होय तब ज्ञान तौ ज्ञानरूप ही परिणमे, पुद्गलकर्मका कर्ता न बने, वहुरि पुद्गल है सो पुद्गलरूप ही रहे, कर्मरूप न परिणमे, ऐसैं आत्माकै ज्ञान यथार्थ भये दोऊ द्रव्यके परिणामके निमित्तनैमित्तिकभाव नाहीं होय है, ऐसा सम्यग्दृष्टीकै ज्ञान होय है। ऐसैं

जीव अर अजीव दोऊ कर्ता कर्मके वेषकरि एक होय नृत्यके अखाडेमैं प्रवेश किया था, सो सम्यग्दृष्टीका ज्ञान यथार्थ देखनेवाला है, सो दोऊकूं न्यारे न्यारे लक्षणतैं दोय जानि लीये, तब वेष दूरि करी, रंगभूमितैं बाह्य नीसरी गये। बहुरूपीका वेषका यह ही प्रवर्तन है--जो देखनेवाला जेतैं पहिचाने नाहीं, तेतैं चेष्टा किया करै, अर यथार्थ पहिचानि ले तब निजरूप प्रगट करि चेष्टा न करता बैठि रहै, तैसैं जानना। ऐसैं कर्ताकर्म नामा दूसरा अधिकार पूर्ण भया।

सवैया तेईसा

जीव अनादि अज्ञान वसाय विकार उपाय वणै करता सौ,
ताकरि बंधन आन तणूं फल ले सुख दुःख भवाश्रमवासो।
ज्ञान भये करता न बणे तब बंध न होय खुलै परपासो,
आतममोहि सदा सुविलास करै सिव पाय रहै निति थासो ॥१॥

याकी गाथा ७६। कलसा ५४। अर पहिला अधिकारकी गाथा ६८। कलसा ४५।
सब मिलि गाथा तौ १४४ भई अर कलसा ९९ भये।

ऐसैं इस समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं दूसरा कर्ताकर्मनामा अधिकार पूर्ण भया ॥२॥



अथ पुण्यपापाधिकारः।

दोहा—पुण्य पाप दोऊ करम बंधरूप दुर मानि। शुद्ध आतमा जिन लह्यो नमूं चरन हित जानि ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथैकमेव कर्म द्विपात्रीभूय पुण्यपापरूपेण प्रविशति—

अब टीकाकारके वचन हैं। तहां कर्म एक ही प्रकार है, सो दोय जो पुण्यपापरूप तिनिकरि प्रवेश करे है। जैसैं नृत्यके अखाडे मैं एक ही पुरुष अपने दोय रूप दिखाय नाचै, ताकूं यथार्थ

ज्ञानी पहिचाने, तब एक ही जानै । तैसैं सम्यग्दृष्टीका ज्ञान यथार्थ है सो यद्यपि कर्म एक ही है, सो पुण्यपाप भेदकरि दोय प्रकार रूप करि नाचे है, ताकूं एकरूप पहिचानि ले । तिस ज्ञानकी महिमारूप इस अधिकारके आदिविषें काव्य कहे हैं ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् । ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१॥

अर्थ—अथ कहिये कर्ताकर्म अधिकारके अनंतर, यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर सम्यग्ज्ञानरूप चंद्रमा है, सो स्वयं आपैआप उदयकूं प्राप्त होय है । कैसा है ? तत् कहिये सो प्रसिद्ध कर्म है सो कर्म सामान्यकरि एक ही प्रकार है । सो शुभ अर अशुभके भेदतैं दोयरूपपणाकूं प्राप्त भया है । ताकूं एकपणाकूं प्राप्त करता संता, उदय होय है ।

भावार्थ—अज्ञानतैं एक कर्म दोय प्रकार देखे था, सो ज्ञान एक प्रकार दिखाय दिया । वहुरि कैसा है ज्ञान ? दूरी किया है अतिशयरूप मोहमय रज जानें । भावार्थ—ज्ञानविषें मोहरूप रज लागि रह्या था, सो दूरी किया, तब यथार्थ ज्ञान भया । जैसें चंद्रमाकै वादला तथा पाला-का पटल आडा आवै, तब यथार्थप्रकाश होय नाहीं, आवरण दूरी भये यथार्थ प्रकासै, तैसैं जानना । आगैं पुण्यपापका स्वरूपका दृष्टांतरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमानादन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२॥

अर्थ—काहू शूद्री स्त्रीके उदरतैं युगपत् एक ही काल दोय पुत्र निसरे जन्मे, तिनिमें एक तो ब्राह्मणके घर पल्या, ताकै ब्राह्मणपनाका अभिमान भया, जो मैं ब्राह्मण हौं सो तिस अभि-मानतैं मदिराकूं दूरीहीतैं छोडे है, स्पर्शै भी नाहीं है । बहुरि दूजा शूद्रहीके घर रह्यो, सो मैं आप शूद्र हौं ऐसैं मानि तिस मदिराकरि नित्य सौच करे है, शुचि माने है सो याका परमार्थ

विचारिये तब दोऊ ही शूद्रीके पुत्र हैं, जातैं दोऊ ही शूद्रीके उदरतैं जन्मे हैं, सो साक्षात् शूद्र हैं। ते जाति भेदके भ्रमकरि प्रवर्ते हैं, आचरण करे हैं। ऐसैं पुण्यपाप कर्म जानने, विभावपरिणतीतैं उपचे, दोऊ ही बंधरूप हैं, प्रवृत्तिभेदकरि दोय दीखे हैं, परमार्थदृष्टि कर्म एक ही जाने हैं। आगे शुभाशुभ कर्मके स्वभावका वर्णन कहे हैं। गाथा—

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाण सुहसीलं।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १ ॥

कर्माशुभं कुशीलं शुभकर्म चापि जानीत सुशीलं।
कथं तद् भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति ॥ १ ॥

आत्मख्यातिः—शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तत्वे सति कारणभेदात् शुभाशुभपुद्‌गलपरिणाममयत्वे सति स्वभावभेदात् शुभाशुभफलपाकत्वे सत्यनुभवभेदात् शुभाशुभमोक्षबंधमार्गाश्रितत्वे सत्याश्रयभेदात् चैकमपि कर्म किंचिच्छुभं किंचिदशुभमिति केषांचित्किल पक्षः, स तु प्रतिपक्षः। तथाहि शुभोऽशुभो वा जीवपरिणामः केवलाज्ञानत्वादेकस्तदेकत्वे सति कारणाभेदात् एकं कर्म। शुभोऽशुभो वा पुद्‌गलपरिणामः केवलपुद्‌गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सति स्वभावाभेदादेकं कर्म। शुभोऽशुभो वा फलपाकः केवलपुद्‌गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सत्यनुभवाभेदादेकं कर्मः। शुभाशुभौ मोक्षबंधमार्गौ तु प्रत्येकं केवलजीवपुद्‌गलमयत्वादनेकौ तदनेकत्वे सत्यपि केवलपुद्‌गलमयबंधमार्गाश्रितत्वेनाश्रयाभेदादेकं कर्म।

अर्थ—अशुभकर्म तौ कुशील है, पापस्वभाव है, बुरा है। बहुरि शुभकर्म है सो सुशील है, पुण्यस्वभाव है, भला है। ऐसैं जगत् जाने है। तहां परमार्थदृष्टि कहे हैं, जो कर्म तौ शुभ होऊ, तथा अशुभ होऊ, प्राणीकूं संसारमें प्रवेश करावे है सो सुशील कैसैं होय ? नाहीं होय।

टीका—केईकनिका ऐसा पक्ष है, कर्म एक है तौ शुभ अशुभके भेदतैं दोय भेदरूप है। जातैं अर अशुभ जे जीवके परिणाम ते जाकूं निमित्त हैं तिस पणेकरि कारणके भेदतैं भेद है।

बहुरि शुभ अर अशुभ जे पुद्गलके परिणाम, तिनिमय होते संते, स्वभावके भेदतैं भेद है। बहुरि कर्मका फल जो शुभ अर अशुभ, तिसका पाक जो रस, तिसपणाकूं होतैं, अनुभव कहिये स्वादका भेदतैं भेद है। बहुरि शुभ अर अशुभ जो मोहका अर बंधका मार्ग, ताकूं आश्रितपणा होतैं, आश्रयका भेदतैं भेद है। ऐसैं इनि चारि हेतूनितैं किछू कोई कर्म शुभ है, कोई कर्म अशुभ है, ऐसा कोईका पक्ष है, सो सप्रतिपक्ष है—याका निषेध करनेवाला दूसरा पक्ष है सो ही कहे है। जो शुभ अथवा अशुभ जीवका परिणाम है, सो केवल अज्ञानमयपणातैं एक ही है, ताकूं एक होतै कारणका अभेद है, तातैं कारणका अभेदतैं कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ पुद्गलका परिणाम है सो केवल पुद्गलमय है। तातैं एक ही है। ताके एक होते स्वभावका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ जो कर्मका फलका रस, सो केवल पुद्गलमय ही है। ताके एक होतैं अनुभव कहिये आस्वादके अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अथवा अशुभ मोक्षका अर बंधका मार्ग ए दोऊ न्यारे हैं। केवल जीवमय तौ मोक्षका मार्ग है अर केवल पुद्गलमय बंधका मार्ग है, ते अनेक हैं एक नाहीं हैं। तिनिकूं एक न होतै भी केवल पुद्गलमय जो बंधमार्ग ताका आश्रितपणाकरि आश्रयका अभेदतैं कर्म एक ही है।

भावार्थ—कर्मके विषैं शुभ अशुभका भेदकी पक्ष चार हेतुतैं कही। तहां शुभका हेतु तौ जीवका शुभपरिणाम है, सो अरहंतादिविषैं भक्तीका अनुराग, बहुरि जीवनिविषैं अनुकंपापरिणाम, बहुरि मंदकषायतैं चित्तकी उज्ज्वलता इत्यादि हैं। बहुरि अशुभकूं जीवके अशुभपरिणाम तीव्र क्रोधादिक अशुभलेश्या, निर्दयपणा, विषयासक्तपणा, देवगुरु आदि पूज्यपुरुषनितैं विनयरूप न प्रवर्तना इत्यादिक हैं। तातैं इनि हेतूनिके भेदतैं कर्म शुभाशुभरूप दोय प्रकार है। बहुरि शुभ अशुभ पुद्गलके परिणामका भेदतैं स्वभावका भेद है। शुभ तौ द्रव्यकर्म तौ सातावेदनीय शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र ए हैं। अर अशुभ चारी घातिया अर असातावेदनीय, अशुभ

आयु, अशुभनाम, अशुभगोत्र ए हैं। बहुरि इनिके उदयतैं प्राणीकूं इष्ट अनिष्ट भली बुरी सामग्री मिले सो है, सो ए पुद्गलके स्वभाव हैं, सो इनिका भेदतैं कर्मविषैं स्वभावका भेद है अर शुभ अशुभ अनुभवका भेदतैं भेद है। शुभका अनुभव तौ सुखरूप स्वाद है अर अशुभका दुःखरूप स्वाद है। बहुरि शुभाशुभ आश्रयका भेदतैं भेद है। शुभका तौ आश्रय मोक्षमार्ग है अर अशुभका आश्रय बंधमार्ग है ऐसा तो भेदपक्ष है। अब याका निषेधपक्ष कहे हैं। जो शुभ अर अशुभ दोऊ जीवके परिणाम अज्ञानमय हैं, तातैं दोऊका एक अज्ञान ही हेतु है। तातैं हेतूका भेदतैं कर्ममें भेद नाहीं है। बहुरि शुभ अशुभ दोऊ पुद्गलके परिणाम हैं। तातैं पुद्गल-परिणामरूप स्वभाव भी दोऊका एक ही है, तातैं स्वभावका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभाशुभ फल सुखदुःखरूप स्वाद भी पुद्गलमय ही है, तातैं स्वादका अभेदतैं भी कर्म एक ही है। बहुरि शुभ अशुभ मोक्षबंधमार्ग कहे, ते मोक्षमार्ग तौ केवल एक जीवहीका परिणाम है अर बंधमार्ग केवल एक पुद्गलहीका परिणाम है, आश्रय न्यारे न्यारे हैं, तातैं बंधमार्गके आश्रयतैं भी कर्म एक ही है। ऐसैं इहां कर्मके शुभाशुभ भेदका पक्षकूं गौण करि निषेध किया, जातैं इहां अभेदपक्ष प्रधान है, सो अभेदपक्ष करि देखिये तब कर्म एक ही है, दोय नाहीं है। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेदः।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥३॥

अथोभयं कर्माविशेषेण बंधहेतुं साधयति—

अर्थ—हेतु स्वभाव अनुभव आश्रय इनि च्यारीनिके सदा ही अभेदतैं कर्मविषैं भेद नाहीं है। तातैं बंधका मार्गकूं आश्रय करि कर्म एक ही इष्ट किया है, मान्या है। जातैं शुभरूप तथा

अशुभरूप दोऊ ही आप स्वयं निश्चयतैं बंध हीका कारण हैं। आगैं शुभ अशुभ दोऊ ही कर्मकूं अविशेष करि बंधका कारण साधे हैं। गाथा—

सौवण्णियह्मि णियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ २ ॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि च यथा पुरुषं।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ २ ॥

आत्मख्यातिः—शुभमशुभं च कर्मविशेषणैव पुरुषं बध्नाति बंधत्वाविशेषात् कंचनकालायसनिगलवत् अथोभयं कर्म प्रतिषेधयति—

अर्थ—जैसैं सुवर्णकी बेडी पुरुषकूं बाधे है अर लोहेकी बेडी भी पुरुषकूं बांधे है, तैसैं शुभ तथा अशुभ किये हुये कर्म है सो जीवकूं बांधे ही है।

टीका—शुभ अर अशुभ कर्म है सो अविशेष करि पुरुष जो आत्मा ताकूं बांधे ही है, जातैं दोऊ बंधपणा करि विशेष रहित हैं। जैसैं सुवर्णकी बेडी अर लोहकी बेडीमें बंध अपेक्षा भेद नाहीं। तैसैं कर्ममें भी बंध अपेक्षा भेद नाहीं है। आगे शुभ अशुभ जे दोऊ कर्म तिनिकूं निषेधे हैं। गाथा—

तह्मादु कुसीलेहिय रायं माकाहि माव संसग्गं।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ ३ ॥

तस्मात्तु कुशीलैरागं मा कुरु मा वा संसर्गं।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागाभ्याम् ॥३॥

आत्मख्यातिः—कुशीलशुभाशुभकर्मभ्यां सह रागसंसर्गौ प्रतिषिद्धौ बंधहेतुत्वात् कुशीलमनोरमाऽमनोरमकरेणुकुट्टिनीरागसंसर्गवत्। अथोभयं कर्म प्रतिषेध्यं स्वयं दृष्टांतेन समर्थयते—

अर्थ—भो मुनिजन हो, पूर्वोक्त शुभ अशुभ कर्म हैं ते कुशील हैं, निंद्य स्वभाव हैं। तातैं तिनि दोऊ कुशीलनितैं राग प्रीति मति करो अथवा तिनिका संसर्ग भी मति करो। जातैं कुशीलके संसर्गतैं अर रागतैं अपना स्वाधीनका ही विनाश है, आपका घात आप हीतैं होय है।

टीका—कुशील जे शुभ अशुभ कर्म तिनि करि सहित राग अर संसर्ग दोऊ प्रतिषेधे हैं। जातैं ये दोऊ ही कर्मबंधके कारण हैं। जैसैं कुशील जो मनको रमावनेवाली अर मनको नाहीं रमावनेवाली हथनीरूपी कुट्टनी, ताका राग अर संसर्ग करनेवाला हस्तीका स्वाधीन विनाश होय है, तैसैं स्वाधीन विनाश है। आगै दोऊ कर्मका प्रतिषेधकूं आप दृष्टांत करि दृढ़ करे हैं। गाथा—

जहणाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥ ४ ॥
एमेव कम्मयपडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादु ।
वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गं सहावरदा ॥ ५ ॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषः कुत्सितशीलं जणं विज्ञाय ।
वर्जयति तेन समकं संसर्गं रागकरणं च ॥ ४ ॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा ।
वर्जयंति परिहरंति च तत्संसर्गं स्वभावरताः ॥ ५ ॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु कुशलः कश्चिद्वनहस्ती स्वस्य बंधाय उपसर्प्पन्तीं चटुलमुखीं मनोरमाममनोरमां वा करेणुकुट्टिनीं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति। तथा किलात्माऽरागो ज्ञानी स्वस्य बंधाय उपसर्प्पंतीं मनोरमाममनोरमां वा सर्वामपि कर्मप्रकृतिं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति।

अथोभयकर्महेतुं प्रतिषेध्यं चागमेन साधयति—

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष कुत्सित कहिये निंदनेयोग्य बुरा जाका स्वभाव ऐसा काहूं लोककूं

जानि, तिसकी साथी संसर्ग करना अर राग करना वर्जे है, ऐसे ही कर्मप्रकृतीका शीलस्वभाव कूत्सित निंदने योग्य खोटा जानि, ताका संसर्ग वर्जे है, छोडे है अर ताका राग छोडे हैं। अपने स्वभावमैं रत होय हैं, स्वभावमैं लीन होय हैं।

टीका—जैसे कोई प्रवीण वनका हस्ती आपके वंधके अर्थी समीपवर्तती चंचल मुखकूं लीलारूप करती मनको रमावनेवाली सुन्दर तथा असुन्दर जे हथणीरूपी कुट्टिनी ताकूं कुत्सितशील बुरी जाणि, तिस करि सहित राग अर संसर्ग समीप जाना, दोऊ प्रतिपेधे हैं, नाहीं करे है। तैसे ही आत्मा राग रहित ज्ञानी भया संता अपने वंधके अर्थी समीप उदय आवती मनोरमा अमनोरमा कहिये शुभरूप तथा अशुभरूप जो समस्त ही कर्मप्रकृति, ताही परमार्थतैं कुत्सितशील कहिये बुरी जाणि, तिस करि सहित राग अर संसर्ग प्रतिपेधे है।

भावार्थ—जैसें हस्तीकै पकडनेकूं कपटकी हथिणी दिखावे तव हस्ती कामांध भया तिससूं राग संसर्ग करि खंदकमें पडी पराधीन होय, दुख भोगवै अर प्रवीण हस्ती होय तौ तासूं राग संसर्ग न करे। तैसैं कर्मप्रकृतीकूं भली जाणि अज्ञानी तासूं राग करै संसर्ग करै, तव वंधमें पडी संसारके दुःख भोगवै, ज्ञानी होय सो तासूं संसर्ग राग नाहीं करे। आगें शुभ अशुभ दोऊ कर्म हैं ते वंधके कारण हैं अर प्रतिपेधने योग्य हैं यह आगम करि साधे हैं। गाथा—

रत्तो वंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मारज्ज ॥ ६ ॥

रक्तो वध्नाति कर्म मुच्यते जीवो विरागसम्पन्नः।
एष जिनोपदेशः तस्मात् कर्मसु मारज्यस्व ॥ ६ ॥

आत्मख्यातिः—यः खलु रक्तोऽवश्यमेव कर्म वध्नीयात् विरक्त एव मुच्येतेत्ययमागमः स सामान्येन रक्तत्वनिमित्तत्वाच्छुभमशुभमुभयकर्माविशेषेण वंधहेतुं साधयति तदुभयमपि कर्मप्रतिषेधयति।

अर्थ—रागी जीव है सो तौ कर्मकूं बांधे है, बहुरि वैराग्यकूं प्राप्त है सो जीव कर्मसूं छूटे है, यहू जिनभगवानका उपदेश है । तातैं भो भव्यजीव ! तूं कर्मनिविषैं राग प्रीति मति करौ, रागी मति होहू ।

टीका—जो रागी है सो अवश्य कर्मकूं बांधे ही है । बहुरि विरक्त है सो ही कर्मतैं छूटे है । ऐसा यह आगमका वचन है । सो यह वचन है सो सामान्य करि कर्म रागीपणाका निमित्तपणा करि शुभ तथा अशुभ ए दोऊ हैं, तिनिकूं अविशेष करि बंधका कारण साधे है, तातैं तिनि दोऊ ही कर्मनिकूं निषेधे है । इस अर्थका कळशरूप काव्य है ।

स्वागताछन्दः

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बंधसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥४॥

अर्थ—सर्वज्ञदेव हैं, ते सर्व ही कर्म, शुभ तथा अशुभकूं अविशेषतैं बंधका कारण कहे हैं, तिस ही कारण करि सर्व ही कर्म प्रतिषेध्या है । मोक्षका कारण तौ एक ज्ञान हीकूं कह्या है । अब कहे हैं, जो कर्म सर्व ही प्रतिषेध्या है, तौ मुनि हैं ते कौनके शरणै आश्रय मुनिपद पालैंगे ? याके निर्वाहकूं काव्य कहे हैं ।

शिखरिणीछन्दः

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥५॥

अथ ज्ञानहेतुं साधयति—

अर्थ—सुकृत कहिये शुभ आचरणरूप कर्म, बहुरि दुरित कहिये अशुभ आचरणरूप कर्म, ऐसा सर्व ही कर्मका निषेध करते संते, बहुरि नैष्कर्म्य कहिये कर्म रहित निवृत्ति अवस्थाकूं प्रवर्तते संते मुनि हैं ते अशरण नाहीं हैं । इहां ऐसी नाहीं आशंका करनी—जो ए मुनिपद काहेकै आश्रय

पालेंगे। जिस काल निवृत्ति अवस्था प्रवृत्तै, तिस काल इनि मुनिनिके ज्ञानविषैं ज्ञानहीकूं आचरणा यह शरण है। ते मुनि तिस ज्ञानविषैं लीन भये संते परम उत्कृष्ट अमृतकूं आप स्वयं भोगवे हैं।

भावार्थ—सर्व कर्मका त्याग भये ज्ञानका वडा शरण है। तिस ज्ञानमें लीन भये सर्व आकुलता रहित परमानंदका भोगना होय है, याका स्वाद ज्ञानी ही जाने है। अज्ञानी कषायी जीव कर्महीकूं सर्वस्व जानि तामैं लीन है, ज्ञानानंदका स्वाद नाहीं जाने है। आगे ज्ञानकूं मोक्षका कारण साधे हैं। गाथा—

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तह्मिट्ठिदो सभावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥ ७॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्ज्ञानी।
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनियः प्राप्नुवंति निर्वाणं॥७॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानं मोक्षहेतुः, ज्ञानस्य शुभाशुभकर्मणोरबंधहेतुत्वे सति मोक्षहेतुत्वस्य तथोपपत्तेः तत्तु सकलकर्मादिजात्यंतरविविक्तचिज्जातिमात्रः परमार्थ आत्मेति यावत् स तु युगपदेकीभावप्रवृत्तज्ञानगमनतया समयः। सकलनयपक्षासंकीर्णैकज्ञानतया शुद्धः। केवलचिन्मात्रवस्तुतया केवली। मननमात्रभावमात्रतया मुनिः स्वयमेवज्ञानतया ज्ञानी। स्वस्य भवनमात्रतया स्वस्वभावः स्वतश्चितो भवनमात्रतया सद्भावो वेति शब्दभेदेऽपि न च वस्तुभेदः।

अथ ज्ञानं विध्यापयति—

अर्थ—निश्चय करि परमार्थरूप समय कहिये जीवनामा पदार्थका यह स्वरूप है, जो शुद्ध है, केवली है, मुनि है, ज्ञानी है ए जाके नाम हैं। तिस स्वभावविषें जे मुनि तिष्ठे हैं ते मुनि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं।

टीका—ज्ञान ही मोक्षका हेतु कहिये कारण है, जातैं अज्ञान शुभ अशुभ कर्मरूप है, ताकै

बंधका कारणपणा होतैं संतैं मोक्षका कारणपणाकी तैसीहि उपपत्ति है, मोक्षका हेतुपणा ज्ञान हीकै बने है। सो यह ज्ञान है सो ही परमार्थ है, आत्मा है ऐसा कहिये है, जातैं समस्त कर्मकूं आदि लेकरि अन्य पदार्थनितैं भिन्न जात्यंतर चिज्जातिमात्र है। सो ही परमार्थ स्वरूप आत्मा है, जड जातितैं भिन्न है। सो याहीकूं समय कहिये। जातैं समय शब्दका ऐसा अर्थ पूर्वैं कह्या है— सम् ऐसा तो उपसर्ग है, ताका अर्थ तौ एकैकाल एकरूप प्रवर्तना है, बहुरि अय ऐसा शब्दका अर्थ ज्ञान भी है, अर गमन भी सो दोऊ क्रियारूप एकै काल होय प्रवर्तै, ताकूं समय कहिये। सो ऐसा प्रवर्तन जीव नाम पदार्थका है, सो ही आत्मा है। बहुरि तिस हीकूं शुद्ध ऐसा नाम कहिये, जातैं समस्त धर्म तथा धर्मीके ग्रहण करनेवाले जे नय तिनिका पक्ष तिनितैं असंकीर्ण कहिये मिलै नाहीं, न्यारा ही एक ज्ञानपणा है, यह असाधारण धर्म है सो अन्यधर्मनितैं न्यारा ही प्रकाशरूप है, अन्यतैं न मिलै, सो एककूं शुद्ध कहिये। बहुरि याहीकूं केवली कहिये, जातैं केवल एक चैतन्यमात्र वस्तुपणा याकै है, केवलशब्दका अर्थ एक है। बहुरि याहीकूं मुनि कहिये, जातैं मननमात्र कहिये ज्ञानमात्र तिसभावमात्र यह है, तिसपणाकरि मुनि भी यह ही है। बहुरि आप स्वयमेव ज्ञानी है ही, तिसपणाकरि ज्ञानी भी याकूं कहिये है। बहुरि अपना जो ज्ञानस्वरूप, ताका भवन कहिये होना सत्तारूप प्रवर्तना, तिसपणाकरि स्वभाव भी याकूं कहिये। तथा अपना चेतनाका भवनमात्रपणा कहिये सत्तारूप होना, ताकरि सद्भाव ऐसा भी याहीका नाम है। ऐसे शब्दनिके भेदतैं नाम भेद होतैं भी वस्तु भेद नाहीं है।

भावार्थ—मोक्षका अपादान तौ आत्मा ही है, सो आत्माका परमार्थकरि ज्ञान स्वभाव है, सो ज्ञान है सो आत्मा ही है, तथा आत्मा है सो ज्ञान ही है। तातैं ज्ञानहीकूं मोक्षका कारण कहना युक्त है। आगे, कोई जानेगा की, बाह्य तपश्चरणादि करे है, सो ही ज्ञान है, ताकूं ज्ञान-की विधि बतावे हैं। गाथा—

परमट्ठम्मिय अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि ।
तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वण्हु ॥ ८ ॥

परमार्थे चास्थितः करोति तपो व्रतं च धारयति ।
तत्सर्वं वालतपो वालव्रतं विदंति सर्वज्ञाः ॥ ८ ॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानमेव मोक्षस्य कारणं विहितं परमार्थभूतज्ञानशून्यस्याज्ञानकृतयोर्व्रततपः कर्मणोः बंधहेतुत्वाद्बालव्यपदेशेन प्रतिषिद्धत्वे सति तस्यैव मोक्षहेतुत्वात् ।

अथ ज्ञानाज्ञानमोक्षबंधहेतू नियमयति—

अर्थ—जो परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं तौ नाहीं तिष्ठ्या है अर तप करे है बहुरि व्रतकूं धारे है सो सर्व ही तप व्रतकूं सर्वज्ञदेव हैं ते बालतप कहिये अज्ञानतप अर बालव्रत कहिये अज्ञानव्रत जाने हैं कहे हैं ।

टीका—मोक्षका कारण ज्ञान ही है यह विधि है । जातैं परमार्थभूत जो ज्ञान ताकरि शून्य कहिये रहित जो अज्ञानतैं किये तप अर व्रतरूप कर्म, तिनि दोऊनिकै बंधका कारणपणा है । तातैं बालतप बालव्रत ऐसा नाम कहैकरि सर्वज्ञदेवने प्रतिषेधे है । तातैं तिस पूर्वोक्त ज्ञान हीकै मोक्षका कारणपणा है ।

भावार्थ—ज्ञानविना तप व्रत करना है, सो बालतप बालव्रत कह्या है । तातैं मोक्षका कारण ज्ञान ही है । आगैं ज्ञान है सो तौ मोक्षका हेतु है अर अज्ञान है सो बंधका हेतु है, ऐसा नियम-करि कहे हैं । गाथा—

वदणियमाणिधरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी ॥ ९ ॥

व्रतनियमान् धारयंतः शीलानि तथा तपश्च कुर्वाणाः ।
परमार्थबाह्या येन तेन ते भवन्त्यज्ञानिनः ॥ ९ ॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानमेव मोक्षहेतुस्तदभावे स्वयमज्ञानभूतानामज्ञानिनामन्तर्व्रतनियमशीलतपः प्रभृतिशुभकर्मसद्भावेऽपि मोक्षाभावात् । अज्ञानमेव बंधहेतुः, तदभावे स्वयं ज्ञानभूतानां ज्ञानिनां बहिर्व्रतनियमशीलतपः प्रभृतिशुभकर्मासद्भावेऽपि मोक्षसद्भावात् ।

अर्थ—ये केई व्रत अर नियम इनिकूं धारे हैं तैसैं ही शील बहुरि तप तिनिकूं करे हैं अर परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मातैं बाह्य हैं ताका स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान जिनिकै नाहीं है ते निर्वाणकूं नाहीं अनुभवे हैं, नाहीं पावे हैं ।

टीका—ज्ञान ही मोक्षका हेतु है । जातैं ज्ञानके अभावकूं होते आप अज्ञानरूप भये जे अज्ञानी तिनिके अंतरंगविषैं व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्मका सद्भाव होते भी मोक्षका अभाव है । ज्ञानविना शुभकर्मरूप व्रत नियम शील तपोरूप प्रवृत्ति होते भी मोक्ष नाहीं होय है । बहुरि अज्ञान है सो ही बंधका हेतु है । जातैं अज्ञानका अभाव होतैं आप ज्ञानरूप भये जे ज्ञानी, तिनिके बाह्य व्रत नियम शील तप आदि शुभकर्मका असद्भाव होतैं भी मोक्षका सद्भाव है ।

भावार्थ—ज्ञान होतैं ज्ञानीके व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्म बाह्य न होते भी मोक्ष होय है । इहां ऐसा जानना, जो व्रत आदिकी प्रवृत्ति शुभकर्म है, सो प्रवृत्तिका अभाव भये—निर्वृत्ति अवस्था भये व्रत नियम शील तपका बाह्यप्रवृत्तिरूपका अभाव है, तौऊ मोक्ष होय है, यह नियम जानना । इस अर्थका कलशरूप काव्य है ।

शिखरिणीछन्दः

यदेतद्ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बंधस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत् ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम् ॥६॥

अर्थ—जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुव है सो जब निश्चल अपने ज्ञानस्वरूप होता सोहे है,

सो ही यह मोक्षका कारण है। जातैं आप स्वयमेवहि मोक्षस्वरूप है। बहुरि यासिवाय अन्य है सो बंधका कारण है। जातैं सो आप स्वयमेव बंधस्वरूप है, तातैं ज्ञानस्वरूप अपना होना सो ही अनुभूति है, ऐसैं निश्चयतैं बंधमोक्षका हेतूका विधान किया है। आगे, फेरि भी पुण्यकर्मका पक्षपात करै, ताका प्रतिबोधनेके अर्थि उत्तर कहे हैं। गाथा—

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं विमोक्खहेदुं अयाणंता ॥ १० ॥

परमार्थबाह्या ये ते अज्ञानेन पुण्यमिच्छंति।
संसारगमनहेतुं विमोक्षहेतुमजानंतः ॥१०॥

आत्मख्यातिः—इह खलु केचिन्निखिलकर्मपक्षक्षयसंभावितात्मलाभं मोक्षमभिलषंतोऽपि तद्धेतुभूतं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावपरमार्थभूतज्ञानभवनमात्रमैकाग्र्यलक्षणं समयसारभूतं सामायिकं प्रतिज्ञायापि दुरंतकर्मचक्रोत्तरणक्लीबतया परमार्थभूतज्ञानानुभवनमात्रसामायिकमात्मस्वभावमलभमानाः प्रतिनिवृत्तस्थूलतमसंक्लेशपरिणामकर्मतया प्रवृत्तमानस्थूलतमविशुद्धिपरिणामकर्माणः कर्मानुभवगुरुलाघवप्रतिपत्तिमात्रसंतुष्टचेतसः स्थूललक्ष्यतया सकलं कर्मकांडमनुन्मूलयंतः स्वयमज्ञानादशुभकर्म केवलं बंधहेतुमध्यास्य एवं व्रतनियमशीलतपःप्रभृतिशुभकर्मबंधहेतुमप्यजानंतो मोक्षहेतुमभ्युपगच्छंति।

अथ परमार्थमोक्षहेतुस्तेषां दर्शयति—

अर्थ—जे जीव परमार्थतैं बाह्य हैं, परमार्थभूतज्ञानस्वरूप आत्माकूं नाहीं अनुभवे हैं, ते जीव अज्ञानकरि पुण्यकूं इष्ट करे हैं, भला मानि चाहे हैं। कैसा है पुण्य? संसारके गमनकूं कारण है, तौऊ बहुरि ते जीव कैसे हैं? मोक्षका कारण ज्ञानस्वरूप आत्माकूं नाही जानते संते पुण्यहीकूं मोक्षका कारण माने हैं।

टीका—या लोकविषैं निश्चयकरि केईक जीव ऐसे हैं, जे समस्तकर्मके पक्षका नाशकरि उपजे है आत्मलाभ कहिये निजस्वरूपका लाभ जामैं ऐसा मोक्षकूं चाहते भी हैं, तौऊ तिस

मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभाव परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र एकाग्रतालक्षण समयसारभूत सामायिक चारित्र, ताकी प्रतिज्ञा लेकरिभी दुरन्तकर्मका समूहके पार होनेविषैं सयर्थपणाका अभावकरि परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र जो सामायिक चारित्रस्वरूप आत्माका स्वभाव ताकूं नाही पावते संते, अतिशयकरि मोठा स्थूल संक्लेशपरिणामस्वरूप कर्मतें तौ निवृत्त भये हैं, बहुरि अतिशयकरि स्थूल मोठा विशुद्धरूप परिणामरूप कर्मकरि प्रवर्तें हैं, ते कर्मका अनुभवका गुरुपणा अर लघुपणाकी प्राप्तिमात्रकरि ही संतुष्ट है चित्त जिनिका, बहुरि स्थूललक्ष्यतारूप जो मोठा अनुभवगोचर संक्लेशरूप कर्मकांड ताकूं तौ छोडे हैं, परंतु समस्तकर्मकांडकूं मूलतैं नाहीं उन्मूल करते हैं, ते आप ही अपने अज्ञानतैं अशुभकर्महीकूं केवल बंधका कारण निश्चयकरि व्रत नियम शील तप आदिक शुभकर्मबंधका कारण है तौऊ याकूं बंधका कारण नाहीं जानते याकूं मोक्षका कारण माने हैं अंगीकार करे हैं, ते परमार्थतैं बाह्य हैं।

भावार्थ—केई जीव अतिसंक्लेशपरिणामरूप कर्मकूं तौ बंधका कारण जानि छोडे हैं अर अतिविशुद्धतारूप परिणामरूप कर्मसहित वर्तें हैं, कर्मका घणा थोडामात्र ही बंधमोक्षका कारण जाने हैं, अर सकलकर्मतैं रहित अपना स्वरूप मोक्षका कारण नाहीं जाने हैं, ते अशुभकर्मकूं छोडि व्रत नियम शीलतपरूप शुभकर्म हीकूं मोक्षका कारण मानि अंगीकार करे हैं। ते व्रत आदिकूं पालते भी अज्ञानी ही हैं—परमार्थकूं नाही जाने हैं। आगैं, ऐसै जीवनिकूं परमार्थ-स्वरूप मोक्षका कारण दिखावे हैं। गाथा—

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादी परिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥११॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं तेषामधिगमो ज्ञानं।
रागादिपरिहरणं चारित्रं एष तु मोक्षपथः ॥११॥

आत्मख्यातिः—मोक्षहेतुः किल सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रं। तत्र सम्यक्दर्शनं तु जीवादिश्रद्धानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं। जीवादिज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं ज्ञानं। रागादिपरिहरणस्वभावेन ज्ञानस्य भवनमापातं। ततो ज्ञानसेव परमार्थमोक्षहेतुः।

अथपरमार्थमोक्षतोतुरन्यत् कर्म प्रतिषेधयति—

अर्थ—जीवादिक पदार्थनिका श्रद्धान, सो तौ सम्यक्त्व है। बहुरि तिनि जीवादिपदार्थनिका अधिगम, सो ज्ञान है। बहुरि रागादिकका परिहरण त्याग सो चारित्र है। यहू मोक्षका मार्ग है।

टीका—मोक्षके कारण प्रगटपणे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है। तहां जीवादि पदार्थनिका सम्यग्दर्शन कहिये सम्यक्प्रकार यथार्थश्रधान, तिस श्रद्धानस्वभावकरि ज्ञानका भवन कहिये होना परिणमना सो तौ सम्यग्दर्शन है। बहुरि तैसे जीवादिपदार्थनिका ज्ञान, तिस स्वभाव करि ज्ञानका होंना सो सम्यग्ज्ञान है। बहुरि रागादिकका परिहरण कहिये त्यागना, तिस स्वभावकरि ज्ञानका होना सो सम्यक्चारित्र है सो ऐसे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ए तीनू ही ज्ञानके परिणमन मैं आय गये। तातैं ज्ञान ही परमार्थरूप मोक्षका कारण भया।

भावार्थ—आत्माका असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है। अर इस प्रकरण में ज्ञानहीकूं प्रधान करि व्याख्यान है। तातैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ए तीनू ज्ञानहीका परिणमन हैं, ऐसे कहि ज्ञानहीकूं मोक्षका कारण कह्या है। ज्ञान है सो अभेदविवक्षामें आत्मा ही है। सो कहनेमें किछू विरोध नाहीं। आगे, परमार्थरूप मोक्षका कारणतैं अन्य जो कर्म, ताकूं प्रतिषेधे हैं। गाथा—

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारे ण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि ॥१२॥

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारे न विद्वांसः प्रवर्तंते।
परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो भवति ॥१२॥

आत्मख्यातिः—युः खलु परमार्थमोक्षहेतोरतिरिक्तो व्रततपःप्रभृतिशुभकर्मा केषांचिन्मोक्षहेतुः सर्वोऽपि प्रतिषिद्धस्तस्य द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्याभवनात्। परमार्थमोक्षहेतोरेवैकद्रव्यस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्य भवनात्।

अर्थ—निश्चयनयका विषयकूं छोडिकरि पंडित जन व्यवहारकरि प्रवर्ते हैं, परंतु ये यतीश्वर परमार्थभूत आत्मस्वरूपकूं आश्रित हैं, तिनिके कर्मका नाश कह्या है। व्यवहारहीमें प्रवर्तनेवालेका कर्मक्षय नाहीं होय है।

टीका—केईकनिकै ऐसा मोक्षका हेतु कारण है, जो परमार्थभूत मोक्षका कारण, तातैं तौ रहित अर व्रत तप आदिक शुभकर्मस्वरूपहीतैं मोक्ष है। सो ऐसा मोक्षका हेतु मानना सर्व ही प्रतिषेध्या है। जातैं ऐसे मोक्षके कारणके अन्यद्रव्यका स्वभावपणा है, तिस स्वभावकरि ज्ञानके परिणमनके न होना है। ज्ञानका परिणमन परमार्थतैं शुभाशुभरूप नाहीं। परमार्थभूत जो मोक्षका कारण, ताहीके एकद्रव्यका स्वभावपणा है। तिस स्वभावकरिही ज्ञानके परिणमनका होना है।

भावार्थ—मोक्ष आत्माकै होय है, सो ताका कारण भी आत्माका स्वभाव ही चाहिये, जो अन्यद्रव्यका स्वभाव होय ताकरि आत्माकै मोक्ष कैसे होय? यह निश्चयनयका मत है। यातैं शुभकर्म पुद्गलद्रव्यका स्वभाव है, सो आत्माकै मोक्षका कारण नाहीं। ज्ञान आत्माका स्वभाव है, सो ही आत्माकै परमार्थभूत मोक्षका कारण है। अब इस ही अर्थके कलशारूप दोय श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्॥ ७॥
वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि द्रव्यांतरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्॥ ८॥

अर्थ—जो ज्ञानस्वभावकरि वर्तना ज्ञानका होना है, सो ही मोक्षका कारण है। जातैं ज्ञानकै

एक आत्मद्रव्यका स्वभावपणा है। बहुरि जो कर्मस्वभावकरि वर्तना है, सो ज्ञानका होना नाहीं, सो कर्मका वर्तना मोक्षका कारण नाहीं। जातैं कर्मकै अन्यद्रव्यका स्वभावपणा है।

भावार्थ—मोक्ष आत्माकै होय है, सो आत्माका स्वभाव ही मोक्षका कारण होय, तातैं ज्ञान आत्माका स्वभाव है, सो ही मोक्षका कारण है। बहुरि कर्म है सो अन्यद्रव्य जो पुद्गलद्रव्य ताका स्वभाव है, सो आत्माकै मोक्षका कारण नाहीं होय है, यह निश्चय है आगे अगिली कथनकी सूचनिकाका श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बंधत्वात्स्वयमेव च मोक्षहेतुतिरोधायि भावत्वात्तान्निषिध्यते ॥ ६ ॥

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधानकरणं साधयति—

अर्थ—कर्म है सो मोक्षके कारणका तिरोधान है—आच्छादन करने वाला है। अर आप स्वयमेव बन्धस्वरूप है। बहुरि मोक्षका कारणका तिरोधायोभावपणा याकै है। ऐसैं तीन हेतूतैं सो कर्म निषेधिये है। सो ही अर्थ आगे गाथाकरि साधे हैं। तहां प्रथम ही कर्मकै मोक्षका कारण जो दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिका तिरोधान करना आच्छादना ताकूं साधे हैं। गाथा—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं ॥१३॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं ॥१४॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
तह दु कसायाच्छण्णं चारित्तं होदि णादव्वं ॥१५॥

वत्रस्य-श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
मिथ्यात्वमलावछन्नं तथा च सम्यक्त्वं खलु ज्ञातव्यं ॥१३॥
वत्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
अज्ञानमलावच्छन्नं तथा ज्ञानं भवति ज्ञातव्यं ॥१४॥
वत्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलनाच्छन्नः ।
कषायमलावच्छन्नं तथा चारित्रमपि ज्ञातव्यं ॥१५॥

आत्मख्यातिः–ज्ञानस्य सम्यक्त्वं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेन मिथ्यत्वनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात् तिरोधीयते । परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत् । ज्ञानस्य ज्ञानं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेनाज्ञाननाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते । परभ वभूतमलावच्छन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत् । ज्ञानस्य चारित्रं मोक्षहतुः स्वभावः, परभावेन कषायनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते । परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतवस्त्रस्वभाववत् । अतो मोक्षहेतुतिरोधानकरणात् कर्म प्रतिषिद्धं । अथ कर्मणः स्वयं बंधत्वं साधयति–

अर्थ–जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है–तिरोभूत होय है, तैसा मिथ्यात्वमलकरि व्याप्त भया आत्माका सम्यक्त्वगुण आच्छादित होय है, ऐसें जानना । बहुरि जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है, तैसा अज्ञानमल करि व्याप्त हुवा आत्मा का ज्ञानभाव आच्छादित होय है, ऐसें जानना। बहुरि जैसा वस्त्रका श्वेतभाव मलके मेलनेकरि लिप्त भया संता नष्ट होय है, तैसा कषायमलकरि व्याप्त भया संता आत्माका चारित्रभाव आच्छादित होय है, ऐसें जानना ।

भावार्थ–ज्ञानके सम्यक्त्व है सो मोक्षका कारणरूप स्वभाव है सो यह सम्यक्त्व परभावस्वरूप जो मिथ्यात्वनामा कर्म सो ही भया मल, तिसकरि व्याप्तपणातैं तिरोधानरूप होय है, आच्छादित होय है । जैसैं परभावभूत जो मल रंग, ताकरि अवच्छन्न जो श्वेतवस्त्र, ताका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित होय है तैसैं । बहुरि ज्ञानके ज्ञान है सो मोक्षाका कारणरूप

स्वभाव है। सो परभाव जो अज्ञान नामा कर्म, सो ही भया मल, ताकरि व्याप्तपणातैं तिरोधान कीजिये है-- आच्छादिये है। जैसें परभावरूप जो मल रंग, ताकरि व्याप्त भया श्वेतवस्त्रका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित होय है तैसें। बहुरि ज्ञानके चारित्र है सो मोक्षका कारणरूप स्वभाव है। सो परभावस्वरूप जो कषायनामा कर्म सो ही भया मल, ताकरि व्याप्तपणातैं तिरोधान कीजिये है—आच्छादिये है। जैसें परभावरूप जो मल रंग, ताकरि व्याप्त भया श्वेतवस्त्रका स्वभावभूत श्वेतस्वभाव आच्छादित कीजिये है तैसें। यातैं मोक्षके कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र तिनिका आच्छादन करनेतैं कर्मकूं प्रतिषेध्या है।

भावार्थ–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप ज्ञानके परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गके प्रतिबंधक मिथ्यात्व अज्ञान कषायरूप कर्म है, सो ए कर्म तिस मोक्षके कारणभावकूं आच्छादित करे है। यातैं कर्मका निषेध है। आगे कर्मका स्वयमेव बंधपणा साधे हैं। गाथा–

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेण उच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं ॥१६॥

स सर्वज्ञानदर्शी कर्मरजसा निजेनावच्छिन्नः।
संसारसमापन्नो न विजानाति सर्वतः सर्वं ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यतः यमेव ज्ञानतया विश्वसामान्यविशेषज्ञानशीलमपि ज्ञानमनादिस्वपुरुषापराधप्रवर्तमानकर्ममलावच्छन्नत्वादेव बंधावस्थायां सर्वतः सर्वमप्यात्मानमविजानदज्ञानभावेनैवेदमेवमवतिष्ठते। ततो नियतं स्वयमेव कर्मैव बंधः। अतः स्वयं बंधात्वात्कर्म प्रतिषिद्धं।

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वं दर्शयति—

अर्थ—सो आत्मा स्वभावकरि सर्वका जाननहारा देखनहारा है तौऊ अपना कर्मरूप रजकरि आच्छादित व्याप्त भया संता संसारकूं प्राप्त है ऐसा भया संता सर्वप्रकार सर्व वस्तूकूं न जाने है।

टीका—जातैं यह ज्ञानरूप आत्मा है, सो आप स्वयमेव ज्ञानपणाकरि विश्व कहिये सर्वपदार्थ, तिनिकूं सामान्यविशेषकरि जाननेका ज्ञानस्वभावरूप है, तौऊ अनादिकालतैं अपना पुरुषार्थकरि किया जो अपराध, ताकरि प्रवर्त्या जो कर्म, सो ही भया मल, ताकरि अवच्छन्न कहिये आच्छादित है-व्याप्त है—मलिन है। तिस भावकरि बंधावस्थाविषैं सर्वप्रकार सर्वज्ञेयाकाररूप जो अपना स्वरूप, ताकूं नाहीं जानता संता अज्ञानभावकरिही यह आप इस प्रकार तिष्ठै है। तातैं यह निश्चय भया—जो कर्म है, सो स्वयमेव आप ही बंधस्वरूप है। यातैं कर्म स्वयमेव आप ही बंधपणारूप जानि प्रतिषेध्या है।

भावार्थ—इहां ज्ञानशब्दकरि आत्माहीका ग्रहण कीया है। सो यह ज्ञानस्वभावकरि तौ सर्वका देखनजाननहारा है। परंतु अनादितैं आप अपराधी है, तातैं कर्म बंधे है, ताकरि आच्छादित है सो अपना संपूर्णरूपकूं न जानता संता अज्ञानरूप भया संता आप तिष्ठै है। ताकै कर्म आप ही बंधे है, कर्मकूं आप तौ लेकरि नाहीं बांधे है, आप तौ अपने अज्ञानभावरूप परिणमै है, अर कर्म आप स्वयमेव बंधरूप होय है, तातैं कर्मका प्रतिषेध है। आगै, कर्मके मोक्षका कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, तिनिका तिरोधायिभावपणा दिखावे हैं। इनिकूं प्रगट न होने देना यह तिरोधायिभावपणा है। गाथा—

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहिदं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णादव्वो ॥१७॥
णाणस्स पडिणिबद्धं अणाणं जिणवरे हि परिकहिदं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो ॥१८॥

**चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परगात्तं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरिदो होदि णादव्वो ॥१९॥**

सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं मिथ्यात्वं जिनवरैः परिकथितं ।
तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ १७ ॥
ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं अज्ञानं जिनवरैः परिकथितं ।
तस्योदयेन जीवोऽज्ञानी भवति ज्ञातव्यः ॥१८॥
चारित्रप्रतिनिबद्धं कषायो जिनवरैः प्रज्ञप्तः ।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

आत्मख्यातिः—सम्यक्त्वस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकं किल मिथ्यात्वं, तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्य मिथ्यादृष्टित्वं । ज्ञानस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकमज्ञानं तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याज्ञानत्वं । चारित्रस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकः किल कषायः, स तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याचारित्रत्वं । अतः स्वयं मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्कर्म प्रतिषिद्धं ।

अर्थ—सम्यक्त्वका प्रतिबंधक रोकनेवाला मिथ्यात्व है, सो जिनवर देव कह्या है, ताका उदय करि जीव मिथ्यादृष्टि होय है ऐसा जानना । ज्ञानका प्रतिबंधक रोकनेवाला अज्ञान है, यह जिनवर देव कह्या है, ताके उदयकरि जीव अज्ञानी होय है ऐसा जानना । चारित्रका प्रतिबंधक कषाय है ऐसे जिनवर देव कह्या है, ताके उदयकरि जीव अचारित्री होय है ऐसा जानना ।

टीका—सम्यक्त्वके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक रोकनेवाला मिथ्यात्व है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयते ही ज्ञानकै मिथ्यादृष्टिपणा है । बहुरि ज्ञानके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक रोकनेवाला प्रगट अज्ञान है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयतेही ज्ञानकै अज्ञानीपणा है । चारित्रके मोक्षका कारण स्वभाव है, ताका प्रतिबंधक प्रगट

कषाय है, सो आप स्वयं कर्म ही है, ताके उदयहीतैं ज्ञानकै अचारित्रपणा है। यातैं कर्मकै, स्वयमेव मोक्षका कारण जे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, तिनिका तिरोधायिभावपणा है, तातैं कर्म प्रतिषेध्या है।

भावार्थ—ज्ञानके मोक्षका कारणपणा स्वभाव सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र हैं, तिनि तीनीनिका प्रतिपक्षी कर्म मिथ्यात्व अज्ञान कषाय हैं, ते तीनूंनिकूं प्रगट न होने देय हैं। तातैं कर्मकै मोक्षका कारणका तिरोधायिभावपणा है। तातैं कर्मका प्रतिषेध है। अशुभकर्मकै तौ मोक्षका कारण कहा? बाधकपणा प्रसिद्ध ही है। परंतु शुभकर्म भी बंधरूप ही है। तातैं यह भी कर्मसामान्यमें प्रतिषेधरूप ही जानना। आगे इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥१०॥

अर्थ--मोक्षके अर्थि पुरुषकूं यह समस्तकर्म ही त्यागने योग्य है, ऐसे तिस समस्त ही कर्मकूं छोडे संते पुण्य अथवा पापकी कहा कथा है? कर्मसामान्यमें दोऊ आय गये। ऐसे समस्तकर्मका त्याग भये ज्ञान है सो सम्यक्त्व आदिक जो अपना स्वभाव, तिसरूप होनेतैं मोक्षका कारण होता संता कर्मरहित अवस्थातैं प्रतिबद्ध उद्धत है रस जाका ऐसा आपैआप दवड्या आवै है।

भावार्थ--कर्मकौ पटके ज्ञान आपैआप अपना मोक्षका कारणस्वभावरूप भया संता प्रगटे है, फेरि कौन रोके? आगै आशंका उपजे है, जो अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके जेतैं कर्मका उदय रहै, तेतैं ज्ञान मोक्षका कारण कैसैं? कर्म अर ज्ञान दोऊ लार कैसे रहै? ताका समाधानकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्मबन्धाय तन्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥११॥

अर्थ—जेतैं कर्मका उदय है अर ज्ञानकी सम्यक् विरति नाहीं है तेतैं कर्मका अर ज्ञानका समुच्चय कहिये एकठापणा भी कह्या है, तेतैं यामैं किछू हानि नाहीं है। इहां विशेष ऐसा—जो इस आत्माविषैं जो कर्मके उदयकी वरजोरीतैं आत्माके वश विना कर्म उदय होय है, सो तौ बंधके ही अर्थि है। बहुरि मोक्षके अर्थि तौ एक परमज्ञान है, सो ही है। कैसा है ज्ञान ? कर्मतैं आपहीतैं रहित है, कर्मके करनेविषैं आपका स्वामीपणारूप कर्तापणाका भाव नाहीं है।

भावार्थ-जेतैं कर्म उदय है तेतैं कर्म तौ अपना कार्य करे है, अर तहां ही ज्ञान है, सो अपना कार्य करे है, एक ही आत्मामैं ज्ञान अर कर्म दोऊ एकठो रहनेमें भी विरोध नाहीं है। मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानकै जैसे विरोध है, तैसे कर्मसामान्यकै अर ज्ञानकै विरोध नाहीं है। आगै कर्मका अर ज्ञानका नयविभाग दिखावे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि सततं स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥१२॥

अर्थ—जे केई कर्मनयके अवलंबनविषैं तत्पर हैं, ताके पक्षपाती हैं, ते डुबे जाते, जे ज्ञानकूं जाने ही नाहीं बहुरि जे ज्ञाननयके इच्छक हैं पक्षपाती हैं, ते भी डुबे जाते, जे क्रियाकांडको छोडी स्वच्छंद होई प्रमादी होय स्वरूपविषैं मंद उद्यमी हैं बहुरि जे आप निरंतर ज्ञानरूप होते कर्मकूं तौ नाही करे हैं अर प्रमादके वश नाहीं होय हैं, स्वरूपमें उत्साहवान हैं ते सर्व लोकके उपरि तरे हैं।

भावार्थ—इहां सर्वथा एकांत अभिप्रायका निषेध कीया है, जातैं सर्वथा एकांतका अभिप्राय है, सोही मिथ्यादृष्टि है। तहां जे परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माकूं तौ नाहीं जाने हैं अर व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्ररूप क्रियाकांडके आडंबरहीकूं मोक्षका कारण जाणि, तिसहीविषैं तत्पर रहे हैं, ताका पक्षपात करे हैं, यह कर्मनय है। याके पक्षपाती ज्ञानकूं तौ जाने नाहीं अर इस कर्मनय ही

विषैं खेदखिन्न हैं ते संसारसमुद्रमें डुबे हैं। बहुरि जे परमार्थभूत आत्मस्वरूपकूं यथार्थ तो जान्या नाहीं अर मिथ्यादृष्टि सर्वथा एकान्तिनिके उपदेशकरि तथा स्वयमेव हि किछू अंतरंगविषैं ज्ञानका स्वरूप मिथ्या कलिप तिसविषैं पक्षपात करे हैं अर व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्रका क्रियाकांडकूं निरर्थक जानि छोडे हैं, ज्ञाननयके पक्षपाती हैं ते भी संसारसमुद्रमें डुबे हैं। जातैं बाह्यक्रियाकांडकूं छोडि स्वेच्छाचारी रहे हैं स्वरूपविषैं मंद उद्यमी रहे हैं तातैं। जे पक्षपातका अभिप्राय छोडि निरंतर ज्ञानरूप होतैं कर्मकांडकूं छोडे हैं, अर निरंतर ज्ञानस्वरूपविषैं "जेतैं न थंभ्या जाय तेतैं" अशुभकर्मकूं छोडि स्वरूपका साधनरूप शुभकर्मकांडविषैं प्रवर्तें हैं ते कर्मका नाश करि, संसारतैं निवृत्त होय हैं, ते सर्व लोकके उपरि वर्तें हैं, ऐसा जानना। आगे इस पुण्यपापाधिकारकूं संपूर्ण करि अर ज्ञानकी महिमा करे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जिजृम्भे भरेण ॥१३॥

इति पुण्यपापरूपेण द्विपात्रीभूतमेकपात्रीभूय कर्म निष्क्रांतं

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ तृतीयोंकः।

अर्थ—ज्ञानज्योति है सो अतिशयकरि उदयकूं प्राप्त होत भया—सर्वत्र फैल्या। कैसा है? लीलामात्रकरि उघडी जो अपनी परमकला केवलज्ञान, तिससहित आरंभी है क्रीडा जाने, इहां भावार्थ ऐसा, जो जेतैं सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ है तेतैं तौ ताका ज्ञान परमकला जो केवलज्ञान, तिस-सहित शुद्धनयके बलतैं परोक्ष क्रीडा करे है बहुरि केवलज्ञान उपजे तब साक्षात् है। बहुरि कैसा है? भासीभूत किया है दूरी किया है अज्ञानरूप अंधकार जाने। सो यह ऐसा ज्ञानज्योति पहलें कहा करि प्रगट भया है? पूर्वोक्त शुभ अशुभरूप समस्तकर्म, ताकूं अपना बल जो वीर्य शक्ति,

ताकरि मूलतैं उन्मूल कहिये उपाडिकरि? कैसा है यह कर्म? पीया है मोह जाने। याहीतैं भ्रमके रसके भारतैं शुभ अशुभका भेदरूप उन्मादकूं नचावता संता है।

भावार्थ—ज्ञानज्योति है सो अपना प्रतिबंधक कर्म था सो भेदरूप होय नृत्यकरे था, ज्ञानकूं भुलावा दे था, ताकूं अपनी शक्तिकरि बिगाडि आप अपना संपूर्ण रूपसहित प्रकाशरूप भया। इहां आशय ऐसा जानना, कर्म सामान्यकरि एक ही है, तथापि शुभ अशुभ दोय भेदरूप स्वांग करी रंगभूमीमें प्रवेश कीया था, ताकूं ज्ञान यथार्थ एक जानि लिया, तब कर्म रंगभूमीतैं निकसी गया, ज्ञान अपनी शक्तिकरि यथार्थप्रकाशरूप भया, ऐसें जानना। ऐसें कर्म है सो नृत्यके अखाडेमें पुण्यपापरूपकरि दोय नृत्यकारिणी बनी नाचे था, सो ज्ञान यथार्थ जानी लिया-जो, कर्म एकही है, तब एकरूपकरि निकसि गया, नृत्य करता रह गया।

सवैया तेईसा

आश्रवकारण रूप सवादसु भेद विचारि गिने दोऊ न्यारे।
पुण्य अरु पाप शुभाशुभभावनि बंध भये सुखदुःखकरा रे॥
ज्ञान भये दोऊ एक लपै बुध आश्रय आदि समान विचारे।
बंधके कारण हैं दोऊ रूप इन्हैं तजि श्रीजिनमुनि मोक्ष पधारे॥१॥

ऐसें इस समयसार ग्रंथकी आत्मख्यातिनाम टीकाकी वचनिकाविषैं तीसरा पुण्यपाप नामा अधिकार पूर्ण भया। इहांताईं गाथा १६३ भई। कलसा ११२ भये।



अथ आस्रवाधिकारः ।

दोहा—द्रव्यास्रवतैं भिन्न है भावास्रव करि नास । भये सिद्ध परमात्मा नमूं तिनहि सुखआस॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशत्यास्रवः ।

अब इहां आस्रव प्रवेश करे है । जैसैं नृत्यके अखाडेमैं नाचनेवाला स्वांग करी प्रवेश करै, तैसैं इहां आस्रवका स्वांग है । तहां इस स्वांगकूं यथार्थ जाननेवाला सम्यग्ज्ञान है । ताकी महिमारूप मंगल करे है ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

अथ महामदनिर्भरमन्थरं समररङ्गपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥१॥

अर्थ–अथशब्द तौ मंगल तथा प्रारंभवाची है । सो इहांतैं आगे कहे है । जो काहूकरि जीत्या न जाय ऐसा यह अनुभवगोचरज्ञानरूप सुभट धनुष्यधारी है, सो आस्रव है ताही जीते है । कैसा है ज्ञानरूप सुभट ? उदार कहिये अमर्यादरूप फैलता अर गंभीर कहिये जाका छद्मस्थ थाह न पावे ऐसा है महान् उदय जाका । बहुरि आस्रव कैसा है ? महान् जो मद ताकरि अतिशयकरि भरया मंथर है उन्मत्त है । बहुरि कैसा है ? समररंग कहिये संग्रामभूमि ताविषैं आया है ।

भावार्थ–इहां नृत्यके अखाडेमैं आस्रव प्रवेश किया, सो नृत्यमें अनेकरस वर्णन होय है, तातैं रसवत् अलंकारकरि शांतरसमैं वीररस प्रधानकरि वर्णन कीया है । जो ज्ञानरूप धनुष्यधारी आस्रवकूं जीते है, सो आस्रव सर्वजगतकूं जीति मदोन्मत्त भया संग्रामकी रंगभूमिमैं आय खडा रह्या, तब ज्ञान यासूं भी बलवान् सुभट है, सो तत्काल जीते है, अंतर्मुहूर्तमैं कर्मका नाश करि केवलज्ञान उपजावे है । ऐसा ज्ञानका सामर्थ्य है । आगै आस्रवका स्वरूपकूं कहे हैं । गाथा–

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णासण्णादु ।
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥१॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिंपि होदि जीवो रागदोसादिभावकरो ॥ २ ॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ च संज्ञासंज्ञास्तु ।
बहुविधभेदा जीवे तस्यैवानन्यपरिणामाः ॥ १ ॥
ज्ञानावरणाद्यस्य ते तु कर्मणः कारणं भवंति ।
तेषामपि भवति जीवः रागद्वेषादिभावकरः ॥ २ ॥

आत्मख्यातिः—रागद्वेषमोहा आस्रवाः, इह हि जीवे स्वपरिणामनिमित्ताः, अजडत्वे सति चिदाभासाः, मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः पुद्गलपरिणामाः, ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मास्रवणनिमित्तत्वात्किलास्रवाः । तेषां तु तदास्रवणनिमित्तत्वनिमित्तं, अज्ञानमया आत्मपरिणामा रागद्वेषमोहाः ? तत आस्रवणनिमित्तत्वनिमित्तत्वात् रागद्वेषमोहा एवास्रवाः, ते चाज्ञानिन एव भवंतीति, अर्थादेवापद्यते ।
अथ ज्ञानिनस्तदभावं दर्शयति—

अर्थ—मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग ये च्यारी आस्रवके भेद हैं, ते संज्ञा कहिये चेतनाके विकार अर असंज्ञा कहिये जड पुद्गलके विकार ऐसे भेदकरि न्यारे न्यारे दोय दोय प्रकार हैं । तहां चेतनके विकार हैं ते जीवविषैं बहुत भेद लीये हैं । ते तिस जीवके परिणाम हैं, ते जीवतैं अन्य नाहीं हैं, अभेदरूपही हैं । जे मिथ्यात्व आदि पुद्गलके विकार हैं ते ज्ञानावरण आदि कर्म बंधनेकूं कारण होय हैं । बहुरि तिनि मिथ्यात्व आदि भावनिकूं रागद्वेष आदि भावनिका करनेवाला जीव कारण होय है ।

टीका—इस जीवविषै राग, द्वेष, मोह हैं ते आस्रव हैं । जातैं कैसे हैं ते ? अपना परिणाम है

निमित्त जिनिकूं । याहीतैं ते जड नाहीं हैं । ऐसे होते ते चिदाभास हैं । जिनिमें चैतन्यकी आभासा है । जातैं मिथ्यात्व अविरत कषाय योग हैं ते पुद्गलके परिणाम हैं ते ज्ञानावरण आदि पुद्गलकर्मनिके आस्रवण कहिये आवनेकूं निमित्त हैं, तिसपणेकरि ते प्रगट आस्रव हैं । बहुरि तिनि मिथ्यात्वादिकनिके ज्ञानावरणादिके आगमनकूं निमित्तपणाके निमित्त अज्ञानमय आत्माके परिणाम राग द्वेष मोह हैं । तातैं मिथ्यात्व आदिके कर्मके आस्रवके निमित्तपणाके निमित्तपणातैं राग द्वेष मोह ही आस्रव हैं ते अज्ञानीके ही होय हैं, ऐसा अर्थतैं ही आय प्राप्त होय है, सूत्रमें विना कह्या भी अर्थतैं आवे है ।

भावार्थ—ज्ञानावरणादिकर्मनिके आवनेकूं तो कारण मिथ्यात्वादिकर्मका उदयरूप पुद्गलके परिणाम हैं । बहुरि तिनिके कर्मके आवनेकूं निमित्त होनेका निमित्त जीवके रागद्वेषमोहरूप परिणाम हैं, तिनिकूं चिद्विकार कहिये । ते जीवके अज्ञान अवस्थामें होय हैं । सम्यग्दृष्टीकै अज्ञान अवस्था नाहीं, जातैं मिथ्यात्वसहित ज्ञानकूं अज्ञान कहिये । सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भया, तातैं ते ज्ञान अवस्थामें नाहीं । बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयतैं रागादिक होय हैं, तिनिका याके स्वामीपणा नाहीं है, उदयकी बरजोरीतैं है, तिनिकूं रोगवत् जानि मेट्या चाहै है, इस अपेक्षा इनितैं राग नाहीं । तातैं मिथ्यात्वसहित रागादिक होय, तेही अज्ञानमय रागद्वेषमोह हैं, ते सम्यग्दृष्टिके नाहीं हैं ऐसा जानना । आगै, ज्ञानीके तिनि आस्रवनिका अभाव दिखावै हैं गाथा—

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥ ३ ॥

नास्ति त्वास्रवबंधः सम्यग्दृष्टेरास्रवनिरोधः ।
संति पूर्वनिबद्धानि जानाति स तान्यबध्नन् ॥३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि ज्ञानिनोऽज्ञानमयैर्भावैरज्ञानमया भावाः, अवश्यमेव निरुध्यंते। ततोऽज्ञानमयानां भावानां, रागद्वेषमोहानां आस्रवभूतानां निरोधात् ज्ञानिनो भवत्येव आस्रवनिरोधः। अतो ज्ञानी नास्रवनिमित्तानि पुद्गलकर्माणि बध्नाति, नित्यमेवाकर्तृत्वान्नवानि न बध्नन् सदवस्थानि पूर्वबद्धानि ज्ञानस्वभावत्वात्केवलमेव जानाति।

अथ रागद्वेषमोहानामास्रवत्वं नियमयति–

अर्थ—सम्यग्दृष्टिके आस्रवबंध नाहीं है। वहुरि आस्रवका निरोध है। वहुरि पूर्वें बांधे थे ते सत्तारूप हैं, तिनिकूं जानै हैं। आगामी नाहीं बांधता संता जाने है।

टीका–जातैं निश्चयकरि ज्ञानीके अज्ञानमय भाव हैं, ते अवश्य निरोधरूप होय हैं–अभाव होय हैं। जातैं ज्ञानमय भावनिकरि अज्ञानमय भाव हैं ते रुके हैं। जातैं ते परस्पर विरोधी हैं, विरोधीनिका एक जायगा रहना होय नाहीं, तातैं रागद्वेषमोहभाव हैं ते अज्ञानमय हैं, ते आस्रवस्वरूप हैं, तिनिका ज्ञानीके निरोधतैं आस्रवका निरोध होय ही है। यातैं ज्ञानी आस्रव है निमित्त जिनकूं ऐसे जे ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म, तिनिकूं नाही बांधे है, जातैं सदा तिनि कर्मनिका अकर्ता है तातैं तिनि कर्मनिकूं नवीनकूं नाहीं बांधता संता पहली बंधे थे ते सत्तारूप अवस्थित हैं, तिनिकूं केवल जाने ही है, जातैं ज्ञानीका ज्ञान ही स्वभाव है, कर्ता स्वभाव नाहीं है, कर्ता होय तौ बांधे।

भावार्थ--ज्ञानी भये पीछे अज्ञानरूप रागद्वेषमोहभावनिका निरोध है। वहुरि रागद्वेषमोहका निरोध भये मिथ्यात्व आदि आस्रवभावका निरोध है। वहुरि आस्रवका निरोधतैं नवीन बंधका निरोध है। वहुरि पूर्वें बंधे थे ते सत्तामें तिष्ठे हैं, तिनिका ज्ञाता ही रहे है, कर्ता नाहीं होय है, जातैं नाहीं भया तव ज्ञानीका तौ ज्ञान ही स्वभाव है। यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि आदिकै चारित्रमोहका उदय है ताकूं ऐसा जानिये है, जो यह उदयकी वरजोरी है सो अपनी शक्त्यनुसाररूप तिनिकूं रोग जानि काटे ही है, तातैं छते ही अणछते कहिये। आगामी सामान्यसंसारका बंधरूप ते नाहीं हैं, अल्पस्थित्यनुभागरूप बंध करे हैं, ते अज्ञानकी पक्ष में गिणे है, अज्ञानकी

पक्षमें तौ मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके निमित्ततैं बंधे हैं, सो गिणिये है। ऐसैं ज्ञानके आस्रव बंध नाही गिण्या। आगे, राग द्वेष मोहनिके ही आस्रवपणाका नियम करे हैं। गाथा—

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥४॥

भावो रागादियुतः जीवेन कृतस्तु बंधको भवति।
रागादिविप्रमुक्तोऽबंधको ज्ञायको नवरि ॥ ४ ॥

आत्मख्यातिः—इह खलु रागद्वेषमोहसंपर्कजोऽज्ञानमय एव भावः, अयस्कांतोपलसंपर्कज इव कालायससूचीं, कर्म कर्तुमात्मानं चोदयति। तद्विवेकजस्तु ज्ञानमयः, अयस्कांतोपलविवेकज इव कालायससूचीं, अकर्मकरणौत्सुक्यमात्मानं स्वभावेनैव स्थापयति। ततो रागादिसंकीर्णोऽज्ञानमय एव कर्तृत्वे चोदकत्वाद्बंधकः। तदसंकीर्णस्तु स्वभावोद्भासकत्वात्केवलं ज्ञायक एव; न मनागपि बंधकः।

अथ रागाद्यसंकीर्णभावसंभवं दर्शयति—

अर्थ—जो रागादिकरि युक्त भाव जीवकरि कीया होय, सो नवीन कर्मका बंध करनेवाला कह्या है। बहुरि जो भाव रागादिकभावनिकरि रहित है, सो बंध करनेवाला नाहीं है। केवल जाननेवाला ही है।

टीका—इस आत्माविषैं निश्चयकरि जो रागद्वेषमोहका मिलापतैं उपज्या भाव होय, सो अज्ञानमय ही है, सो जैसैं चुंबकपाषाण के संपर्कतैं उपज्या भाव लोहकी सूईकूं प्रेरे है, चलावे है, तैसैं आत्माकूं कर्मके करनेकूं प्रेरै है। बहुरि तिनि रागादिकके भेदज्ञानतैं उपज्या भाव है; सो ज्ञानमय है। सो जैसैं चुंबकपाषाणका संसर्गविना सूईका स्वभाव है सो चलनेरूप नाही है, तैसैं आत्माकूं कर्मके करनेविषैं उत्साहरूप नाहीं ऐसे स्वभावकरि स्थापे है। तातैं रागादिकतैं मिल्या अज्ञानमय भाव है सोही कर्मका कर्तापणाविषैं प्रेरक है, तातैं नवीन बंधका करनेवाला

है । बहुरि रागादिकतैं नाही मिल्या भाव है सो अपने स्वभावका प्रगट करनेवाला है । सो केवल जाननेवाला ही है । सो नवीनकर्मका किंचिन्मात्र भी बंध करनेवाला नाही है ।

भावार्थ—रागादिकके मिलापतैं भया अज्ञानमय भाव है सो ही बंध करनेवाला है । बहुरि रागादिकतैं नाहीं मिल्या ऐसा ज्ञानमय भाव है, सो बंधका करनेवाला नाहीं है, यह नियम है । आगे रागादिकतैं मिल्या नाही ऐसा ज्ञानमय भावका संभवना दिखावै हैं । गाथा—

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं वज्झदे पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि ॥५॥

पके फले पतिते यथा न फलं बध्यते पुनर्वृन्ते ।
जीवस्य कर्मभावे पतिते न पुनरुदयमुपैति ॥५॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु पक्वं फलं वृन्तात्सकृद्विश्लिष्टं सत्, न पुनर्वृन्तसंबंधमुपैति तथा कर्मोदयजो भावो जीवभावात्सकृद्विश्लिष्टः सन्, न पुनर्जीवभावमुपैति । एवं ज्ञानमयो रागाद्यसंकीर्णो भावः संभवति ।

अर्थ—जैसैं वृक्ष तथा बेलिके फल पकी करि पडे वीटसूं क्षरि जाय सो वह फल फेरि वीटसूं बंधे नाहीं, तैसैं जीवविषैं पुद्गलकर्म भावरूप था, सौ पचिकरि छडि गया, निर्जरा होय गई, सो कर्म फेरि नाहीं उदय होय है ।

टीका—जैसैं निश्चयकरि यह प्रगट है, जो वीटसूं पाका फल एक वार क्षरि पड्या सो वह फल फेरि वीटसूं संबंधरूप नाहीं होय है । तैसैं कर्मका उदयसूं निपज्या जो जीवका भाव सो एकवार जीवभावसूं भिन्न भया संता फेरि जीवभावकूं नाहीं प्राप्त होय है । ऐसे ज्ञानमय भाव रागादिकरि असंकीर्ण संभवे है ।

भावार्थ—कर्मकी निर्जरा भये पीछे वह कर्म फेरि उदय नाही आवे, तब ज्ञानमय ही भाव रह्या । ऐसें जब जीवका मिथ्यात्वकर्म अनंतानुबंधीसहित सत्त्वमेंसूं क्षय होय जाय, तब फेरि

उदय आवे नाहीं, तब ज्ञानी भया संता फेरि कर्मका कर्ता नाहीं। मिथ्यात्वकी लार लगि प्रकृति तौ बंधे नाहीं अर अन्यप्रकृति सामान्य संसारका कारण नाहीं। मूलतैं कटे वृक्षके हरे पानवत् हैं, ते हैं, ते शीघ्र सूकने योग्य हैं। ऐसैं ज्ञानीका रागादिकतैं नाहीं मिल्या ऐसा ज्ञानमय भाव संभवे है। चारित्रमोहका उदयका राग अज्ञानमय न गिणिये है। जातैं सम्यग्दृष्टीकै ताका स्वामीपणा नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शालिनी छन्दः

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव ।
रुंधन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान् एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणां ॥२॥

अथ ज्ञानिनो द्रव्यास्रवाभावं दर्शयति—

अर्थ—जो जीवका रागद्वेषमोह विना भाव होय है, सो भाव ज्ञान ही करि रचा हुवा है, सो यह भाव है सो सर्व द्रव्यास्रवनिकूं रोकता संता है, तातैं सर्व ही भावास्रवनिका अभाव कहिये।

भावार्थ—पूर्वोक्त ही जानना। इहां सर्व भावास्रवनिका अभाव कह्या। सो संसारका कारण मिथ्यात्व ही है। तिस संबंधी रागादिकका अभाव भया, सो सर्व ही भावास्रवका अभाव भया। आगै ज्ञानीके द्रव्यास्रवका अभाव दिखावे हैं। गाथा—

पुडवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते वद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥६॥

पृथ्वीपिंडसमानाः पूर्वनिवद्धास्तु प्रत्ययास्तस्य ।
कर्मशरीरेण तु ते बद्धाः सर्वेऽपि ज्ञानिनः ॥६॥

आत्मख्यातिः—ये खलु पूर्वं, अज्ञानेनैव बद्धा मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा द्रव्यास्रवभूताः प्रत्ययाः, ते ज्ञानिनो द्रव्यांतरभूताः, चेतनपुद्गलपरिणामत्वात् पृथ्वीपिंडसमानाः। ते तु सर्वेऽपि स्वभावत एव कार्माणशरीरेणैव संबद्धा न तु जीवेन, अतः स्वभावसिद्ध एव द्रव्यास्रवाभावो ज्ञानिनः।

अर्थ—तिस पूर्वोक्त ज्ञानीकै पहले अज्ञान अवस्थामैं कर्म बंधे हैं, ते प्रत्ययसंज्ञा करि कहिये हैं, ते कार्माणशरीरकरि सहित बंधे हैं, ते जीवकै रागादिभाव भये विना पृथ्वीके पिंडसमान हैं। जैसैं मृत्तिका आदि अन्य पुद्गलस्कन्ध हैं, तैसे ते भी हैं।

टीका—जे प्रगटपणे पहलैं अज्ञानकरि बांधे जे मिथ्यात्व अविरति कषाय योगरूप द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय, ते ज्ञानीकै अन्यद्रव्यभूत अचेतन पुद्गलद्रव्यके परिणामपणातैं पृथिवीके पिंडसमान हैं, ते सर्व ही अपने पुद्गलस्वभावतैं ही कार्माण शरीर ही करि एक होय बंधे हैं, बहुरि जीवकरि नाहीं बंधे हैं। यातैं ज्ञानीकै द्रव्यास्रवका अभाव स्वभाव ही करि सिद्ध है।

भावार्थ—आत्मा ज्ञानी भया तबतैं ज्ञानीकै भावास्रवका तौ अभाव भया ही। अर द्रव्यास्रव है सो मिथ्यात्वादि पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, ते कार्मण शरीरतैं स्वयमेव बंधि रहे हैं, ते अन्यमृत्तिकाका पिंड हैं, तैसे ते भी हैं, भावास्रवविना कछू आगामी कर्मबंधकूं कारण नाहीं, अर पुद्गलमय हैं, तातैं अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप जीवतैं स्वयमेव ही भिन्न हैं, ऐसा ज्ञानी जाने। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३॥

कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्—

अर्थ—यह ज्ञानी है सो भावास्रवके अभावकूं तौ प्राप्त भया है। बहुरि द्रव्यास्रवनितैं स्वयमेव ही भिन्न है। जातैं ज्ञानी है, सो सदा ज्ञानमय ही है केवल एक भाव जाका ऐसा है, यातैं निरास्रव ही है, एक ज्ञायक ही है।

भावार्थ—भावास्रव जे राग द्वेष मोह, तिनिका तौ ज्ञानीकै अभाव भया। अर द्रव्यास्रव हैं ते

पुद्गल परिणाम हैं, तिनितैं सदा ही स्वयमेव ही भिन्न है। तातैं ज्ञानी निरास्रव ही है। आगै पूछे हैं, जो, ज्ञानी निरास्रव कैसा है ? ताका उत्तरकी गाथा कहे हैं। गाथा—

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु ॥७॥

चतुर्विधा अनेकभेदं बध्नंति ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां ।
समये समये यस्मात् तेनाबंध इति ज्ञानी तु ॥७॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि तावदास्रवभावनाभिप्रायाभावान्निरास्रव एव। यत्तु तस्यापि द्रव्यप्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्गलकर्म बध्नंति तत्र ज्ञानगुणपरिणामहेतुः।

कथं ज्ञानगुणपरिणामो बंधहेतुरिति चेत्—

अर्थ—जातैं च्यारि प्रकार आस्रव कहे जे–मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग, सो ए दर्शनज्ञानगुणनिकरि समय समय अनेक भेद लिये कर्मनिकूं बांधे हैं, तातैं ज्ञानी तौ अबंधरूप ही है।

टीका—प्रथम ही ज्ञानी है सो तौ आस्रव भावकी भावनाका अभिप्रायका अभावतैं निरास्रव ही है। बहुरि तिस ज्ञानीकै भी द्रव्यास्रव समय समयप्रति अनेक प्रकार पुद्गल कर्मकूं बांधे हैं। तिसविषैं ज्ञानगुणका परिणमन है सो कारण है। आगे फेरि पूछे है, ज्ञानगुणका परिणाम बंधका कारण कैसा है ? ताका उत्तरकी गाथा—

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥८॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते ।
अन्यत्वं ज्ञानगुणः तेन तु स बंधको भणितः ॥८॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानगुणस्य हि यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यांतर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयास्ति परिणामः। स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात्, बंधहेतुरेव स्यात्।

एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्।

अर्थ—जातैं ज्ञानगुण है सो जघन्यज्ञानगुणतैं फेरि भी अन्यपणारूप परिणमे है तिस कारण करि सो ज्ञानगुण कर्मका बंध करनेवाला कह्या है।

टीका—ज्ञानगुणका जेतैं जघन्यभाव है–क्षयोपशमरूप भाव है, तेतैं अंतर्मुहूर्त विपरिणामी है, ज्ञानभावरूप अंतर्मुहूर्त ही रहे है, पीछे अन्यप्रकार परिणमे है। तातैं अन्यपणारूप भी याका परिणाम है, सो यथाख्यातचारित्र अवस्थाके नीचे अवश्यंभावी रागपरिणामका सद्भाव है, तातैं बंधका कारण ही है।

भावार्थ–क्षयोपशमज्ञानका एक ज्ञेय परिथंवना अंतर्मुहूर्त ही है, पीछे अवश्य अन्य ज्ञेयकूं अवलंबे है। तातैं स्वरूपविषैं भी अंतर्मुहूर्त ही थंभना होय है। तातैं ऐसा अनुमान है–जो यथाख्यातचारित्र अवस्थाके नीचे अवश्य रागपरिणामका सद्भाव है, तिस रागके सद्भावतैं बंध भी होय है। तातैं ज्ञानगुणका जघन्यभाव बंधका कारण कह्या है। आगे फेरि पूछे है, जो ऐसा है, ज्ञानगुणका जघन्यभाव अन्यपणारूप परिणाम बंधका कारण है, तौ ज्ञानी निरास्रव है, ऐसैं कैसैं कह्या ? ताका उत्तरकी गाथा—

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥९॥

दर्शनज्ञानचारित्रं यत्परिणमते जघन्यभावेन।
ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥९॥

आत्मख्यातिः—यो हि ज्ञानी स बुद्धिपूर्वकरागद्वेषमोहास्रवभावाभावात्, निरास्रव एव किंतु सोऽपि यावद् ज्ञानं

सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाऽबुद्धिपूर्वककलंकविपाकसद्भावात् पुद्गलकर्मबंधः स्यात् । अतस्तावद् ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावद् ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात्।

अर्थ—दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते जो जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तिस कारणकरि ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गलकर्म करि बंधे है ।

टीका—जो निश्चयकरि ज्ञानी है सो बुद्धिपूर्वक रागद्वेष मोहरूप आस्रवभावके अभावतैं निरास्रव ही है । तहां यह विशेष है—सो ही ज्ञानी जेतैं ज्ञानकूं सर्वोत्कृष्टभावकरि देखनेकूं जाननेकूं आचरनेकूं असमर्थ है, अर जघन्यभाव ही करि ज्ञानकूं देखे है, जाने है, आचरे है, तेतैं तिस ज्ञानीके भी ज्ञानके जघन्यभावकी अन्यथा अप्राप्तिकरि अनुमानरूप कीया अबुद्धिपूर्वक कर्ममलकलंकका सद्भाव है । यातैं पुद्गलकर्मका बंध होय है । यातैं यह उपदेश है—जो, तेतैं ज्ञानकूं देखना जानना आचरण करना, जेतैं ज्ञानका पूर्णभाव जेता है तेता देख्या जान्या आचर्या भले प्रकार होय । तापीछे साक्षात् ज्ञानी भया संता सर्वथा निरास्रव ही होय है ।

भावार्थ—ज्ञानीकूं निरास्रव ऐसा कह्या है, जो, जेतैं याकै क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं तौ बुद्धिपूर्वक अज्ञानमय राग द्वेष मोहका अभाव है, तातैं निरास्रव कह्या है । अर जेतैं क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं दर्शन ज्ञान चारित्र जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तेतैं संपूर्णज्ञानकूं देख्या जान्या आचर्या जाय नाहीं है । सो इस जघन्यभाव ही करि ऐसा जानिये है—जो, याकै अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक विद्यमान है ताकरि बंध भी होय है, सो चारित्रमोहका उदयकरि है, अज्ञानमय भाव नाहीं है । तातैं ऐसा उपदेश है—जो, जेतैं ज्ञान संपूर्ण न होय--केवलज्ञान न उपजै, तेतैं ज्ञानहीका ध्यान निरंतर करना, ज्ञानहीकूं देखना, ज्ञानहीकूं जानना, ज्ञानहीकूं आचरना, इस ही मार्ग चारित्रमोहका नाश होय है, अर केवलज्ञान उपजे है । तब सर्वप्रकारकरि साक्षात् निरास्रव होय है, यह

विवक्षाका विचित्रपणा है। बुद्धिपूर्वक रागादिकका अभावकी अपेक्षा तौ अबुद्धिपूर्वक रागादिक छेतैंते भी निरास्रव कह्या, अर अबुद्धिपूर्वकका अभाव भये केवलज्ञान ही उपजैगा, तब साक्षात् निरास्रव होयहीगा ऐसैं जानना। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छदः

सन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिदन् परिवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा॥

अर्थ--यहै आत्मा जब ज्ञानी होय है, तब अपने बुद्धिपूर्वक रागकूं तौ समस्तकूं आप दूरी करता संता निरंतर प्रवर्ते है, बहुरि अबुद्धिपूर्वक रागकूं भी जीतनेकूं बारंबार अपनी ज्ञानानुभवनरूप शक्तीकूं स्पर्शता संता प्रवर्ते है, बहुरि ज्ञानकी पलटनी है ताकूं समस्तहीकूं दूरि करता संता ज्ञानकूं स्वरूपविषैं थांभता पूर्ण होता संता प्रवर्ते है। ऐसा ज्ञानी होय तब शाश्वता निरास्रव होय है।

भावार्थ--तौ सुगम है। जब समस्तरागकूं हेय जान्या तब ताका मेटनेहीका उद्यमी भया प्रवर्ते है, तब सदा निरास्रव ही कहिये। जातैं आस्रवके भावनिकी भावनाका अभिप्रायका याकै अभाव है। बहुरि यहां बुद्धिपूर्वक अबुद्धिपूर्वककी दोय सूचना है। एक तौ जो आप कीया न चाहै अर परनिमित्ततैं जबरीतैं होय ताकूं आप जाणै भी तौऊ ताकूं अबुद्धिपूर्वक कहिये। बहुरि दूजा जो अपने ज्ञानगोचर ही नाहीं प्रत्यक्षज्ञानी जाने है। तथा ताकै अविनाभाविचिन्हकरि अनुमानतैं जानिये, सो अबुद्धिपूर्वक है ऐसैं जानना। आगैं पूछे है, जो सर्व ही द्रव्यास्रवकी संततीकूं जीवतैं ज्ञानी निरास्रव कैसे? ऐसे प्रश्नका श्लोक है।

अनुष्टुप् छन्दः

सर्वस्यामेव जीवत्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ। कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः॥५॥

अर्थ--ज्ञानीकै सर्व ही द्रव्यास्रवकी संततीकूं जीवतैं संतैं ज्ञानी नित्य ही निरास्रव है, ऐसा

काहेतैं कह्या ? जो शिष्यकी ऐसी आशंकारूप बुद्धि है, ताका उत्तरकी गाथा कहे हैं।

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥ १० ॥
संतीव णिरवभोज्जा वाला इच्छी जहेव पुरुसस्स।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इच्छी जह णरस्स ॥११॥
होदूण णिरवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥ १२ ॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥१३॥

सर्वे पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययाः संति सम्यग्दृष्टेः ।
उपयोगप्रयोग्यं बध्नंति कर्मभावेन ॥१०॥
संति तु निरुपभोग्यानि वाला स्त्री यथेह पुरुषस्य ।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा पुरुषस्य ॥११॥
भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवंत्युपभोग्यानि ।
सप्ताष्टविधानि भूतानि ज्ञानावरणादिभावैः ॥१२॥
एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टिरबंधको भणितः ।
आस्रवभावाभावे न प्रत्यया बंधका भणिताः ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यतः सदवस्थायां तदात्वपरिणीतवालस्त्रीवत् पूर्वमनुपभोग्यत्वेऽपि विपाकावस्थायां प्राप्तयौवनपूर्व-

परिणीतस्त्रीवत् उपभोग्यप्रायोग्यं पुद्गलकर्मद्रव्यप्रत्ययाः संतोऽपि कर्मोदयकार्यजीवभावसद्भावादेव बध्नंति। ततो ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्ववद्धाः संति । संतु । तथापि स तु निरास्रव एव कर्मोदयकार्यस्य रागद्वेषमोहरूपस्यास्रवभावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानामबंधहेतुत्वात् ।

अर्थ--सम्यग्दृष्टिके सर्व ही पूर्वैं अज्ञान अवस्थामैं वांधे मिथ्यात्वादि प्रत्यय कहिये आस्रव ते सत्तारूप विद्यमान हैं, ते उपयोगके प्रायोग्य कहिये प्रयोग्ग करनेरूप जैसे होय तैसे तिसके अनुसार कर्मभावकरि आगामी वंधकूं योग करनेरूप जैसे होय तैसैं तिसके अनुसार कर्मभाव करि आगामी वंधकूं प्राप्त होय हैं । वहुरि ते पूर्व वंधे प्रत्यय उदय आये विना निरुपभोग्य कहिये भोगने योग्यपणातैं रहित होयकरि तिष्ठे हैं, ते फेरि आगामी तैसे वंधे हैं—जैसे सात आठ प्रकार ज्ञानावरणादिभावकरि फेरि भोगने योग्य होय । वहुरि ते पूर्व वंधे प्रत्यय सत्तामें ऐसे हैं—जैसे पुरुषके वालस्त्री भोगने योग्य नाहीं है वहुरि ते ही उपभोग्य कहिये भोगनेयोग्य होय तव पुरुषकूं वांधे है । जैसे सा ही वाला स्त्री तरुणी होय तव पुरुषकूं वांधै है । पुरुष ताकै आधीन होय यह ही वंधना । इस कारणकरि सम्यग्दृष्टि अवंधक कह्या है । जातैं आस्रवभाव जे राग द्वेष मोह तिनिका अभाव होतैं प्रत्यय मिथ्यात्वादिक हैं, ते सत्तामें छतै भी आगामी कर्मवंधके करनेवाले नाहीं हैं ।

टीका—जातैं ऐसे हैं जो जैसे तत्कालकी परिणी वालस्त्री पहलै वालक अवस्थामैं पुरुषके भोगनेयोग्य नाहीं है, फेरि सो ही स्त्री जव तरुणी होय तव जौवन अवस्थामैं भोगनेयोग्य होय है, तव पुरुष ताकै आधीन होय है । तैसे पहलै वांधे कर्म सत्ता अवस्थामैं है तेतैं भोगनेयोग्य नाहीं हैं । वहुरि ते ही जव विपाक अवस्थाकूं प्राप्त होय, तव तिस उदय अवस्थामैं भोगनेयोग्य होय है, तव जैसा आत्माका उपयोग विकारसहित होय तिस ही योग्यताके अनुसार पुद्गलकर्मरूप द्रव्य प्रत्ययसत्तारूप होतै संते भी कर्मका उदयानुसार जीवके भावनिके सद्भावहीतैं वंधकूं प्राप्त होय है । तातैं ज्ञानीके जो द्रव्यकर्मरूप प्रत्यय आस्रवसत्तामैं विद्यमान हैं तो होऊ, तथापि

सो ज्ञानी तौ निरास्रव ही है। जातैं कर्मका उदयका कार्य जो जीवका भाव रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव ताका अभावकूं होतैं द्रव्यास्रवनिके बंधका कारणपणा नाहीं है।

भावार्थ—सत्तामैं मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रव विद्यमान हैं, तौऊ ते आगामी बंधके करनेवाले नाहीं हैं, जातैं बंधके करनेवाले तौ जीवके भाव रागद्वेषमोहरूप होय हैं ते हैं। सो मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रवके उदयके अर जीवके भावनिके कारणकार्यभाव निमित्तनैमित्तिकरूप है। सो जब मिथ्यात्वादिका उदय आवैं, तब जीवका रागद्वेषमोहरूप जैसा भाव होय तिस जीवभावके अनुसार आगामी बंध होय है,। अर जब सम्यग्दृष्टि होय, तब मिथ्यात्व सत्तामैंसूं नाश होय, तब तौ तिसकी लारकी अंनतानुबंधी कषाय तथा तिस संबंधी अविरमण अर योगभाव भी नष्ट होय, तब तिस सम्बन्धी जीवके रागद्वेषमोहभाव भी नाहीं होय हैं, तब तिस मिथ्यात्व अंनतानुबंधी संबंधी बंध भी न होय था, तिनि प्रकृतिनिका आगामी बंध भी नाहीं होय। अर जो मिथ्यात्वका उपशम ही होय तब सत्तामैं रहे, तब सत्ताका द्रव्य उदय विना बंधका कारण ही नाहीं है। बहुरि जेते अविरतसम्यग्दृष्टि आदिक गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं चारित्रमोहके उदय संबंधी बंध कह्या है, सो इहां संसारसामान्यकी अपेक्षा तौ बंधमें गिण्या नाहीं है। जातैं ज्ञानी अज्ञानीका विशेष है। जेतैं कर्मका उदतमें कर्मका स्वामीपणा राखी परिणमे है तेतैं ही कर्मका कर्ता कह्या है। परके निमित्ततैं परिणमे, ताका ज्ञाता द्रष्टा होय तब ज्ञानी है, ज्ञाता है सो कर्ता नाहीं। ऐसी अपेक्षातैं सम्यक्दृष्टि भये पीछे चारित्रमोहका उदयरूप परिणाम होते भी ज्ञानी ही कह्या है। मिथ्यात्वका उदय है जेतैं तिस संबंधी रागद्वेषमोहभावरूप परिणमनेतैं अज्ञानी कह्या है। ऐसे ज्ञानी अज्ञानी कहनेका विशेष जानना। ऐसा बंध अबंधका विशेष है। बहुरि शुद्धस्वरूपमैं लीन रहनेका अभ्यासतैं साक्षात् संपूर्णज्ञानी केवलज्ञान प्रकट भये होय है। तब सर्वथा निरास्रव होय है। ऐसें पहलैं कह ही आये हैं। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनी छन्दः

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासादवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥६॥

अर्थ—यद्यपि पूर्वैं अज्ञान अवस्थामैं बंधरूप भये थे, ते द्रव्यरूप प्रत्यय कहिये द्रव्यास्रव, ते सत्तामैं विद्यमान हैं। जातैं तिनिका उदय अपनी स्थितीके अनुसार है, तातैं जेतै उदयका समयमाही आवे तेतैं सत्ताहीमें रहै, ऐसैं द्रव्यास्रव सत्तामैं रहैं, ते अपनी सत्ताकूं नाहीं छोडे हैं। तौऊ ज्ञानीके समस्त रागद्वेषमोहका अभावतैं नवीन कर्मका बंध कदाचित् ही अवतार नाहीं धरे है।

भावार्थ—रागद्वेषमोहभाव विना सत्ताका द्रव्यास्रव बंधका कारण नाहीं है। इहां सकल रागद्वेषमोहका अभाव बुद्धिपूर्वक अपेक्षा जानना। आगे इस ही अर्थकै दृढ करनेरूप गाथा है। ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप् छन्दः

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः। तत एव न बन्धोऽस्य तेहि बन्धस्य कारणम् ॥७॥

अर्थ—जातैं ज्ञानीकै रागद्वेषमोहका असंभव है, ताहीतैं ज्ञानीकै बंध नाहीं है। जातैं राग द्वेष मोह हैं ते ही बंधके कारण हैं। आगे इस अर्थका समर्थनकी गाथा—

रागो दोषो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१४॥
हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं होदि ।
तेसिं पिय रागादी तेसिमभावेण वज्झंति ॥१५॥

रागो द्वेषो मोहश्चास्रवा न सन्ति सम्यग्दृष्टेः ।
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवन्ति ॥१४॥
हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भवति ।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावेन बध्यन्ते ॥१५॥

आत्मख्यातिः—रागद्वेषमोहा न संति सम्यग्दृष्टेः सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेः । तदभावे न तस्य द्रव्यप्रत्ययाः पुद्गलकर्महेतुत्वं बिभ्रति द्रव्यप्रत्ययानां पुद्गलकर्महेतुत्वस्य रागाद्यहेतुत्वात् । ततो हेत्वभावे हेतुमदभावस्य प्रसिद्धत्वात् ज्ञानिनो नास्ति बंधः ।

अर्थ—राग द्वेष मोह ए आस्रव हैं, ते सम्यग्दृष्टीकै नाहीं हैं । तातैं आस्रवभावविना द्रव्यप्रत्यय हैं ते कर्म बन्धनेकूं कारण नाहीं हैं । मिथ्यात्वादि च्यारि प्रकार हेतु हैं सो अष्टप्रकार कर्मके बन्धनेकूं कारण हैं । बहुरि तिनि च्यारी प्रकारके हेतूकूं भी जीवके रागादिकभाव कारण हैं । सोसम्यग्दृष्टीकै तिनि रागादिक भावनिका अभाव है । तातैं सम्यग्दृष्टीकै बन्ध नाहीं है ।

टीका—सम्यग्दृष्टीकै राग द्वेष मोह नाहीं हैं । जातैं राग द्वेष मोहका अभावविना सम्यग्दृष्टिपणा बनैं नाहीं । बहुरि तिनि रागद्वेषमोहके अभावतैं तिस सम्यग्दृष्टीके द्रव्यास्रव हैं, ते पुद्गलकर्मके बन्धनेकूं कारणपणा नाहीं धारे हैं । जातैं द्रव्यास्रवनिकै पुद्गलकर्म बन्धनेका कारणपणाका रागादिकहीकै कारणपणा है । तातैं कारणके कारणका अभाव होतैं कार्यका अभावका भलेप्रकार प्रसिद्धपणा है । तातैं ज्ञानीकै बन्ध नाहीं है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि रागद्वेषमोहका अभाव विना होय नाहीं, ऐसा अविनाभाव नियम कह्या सो यह मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकका अभाव जानना । तिनहीकूं रागादिक गणे है । सम्यग्दृष्टि भये पीछे किछू चारित्रमोहसंबंधी राग रहे सो इहां न गणिये है, ते गौण हैं । तातैं तिनि भावास्रवनिविना द्रव्याशव बंधके कारण नाहीं, कारणका कारण न होय, तब भी कार्यका अभाव है यह प्रसिद्ध है । तातैं सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है, याकै बन्ध नाहीं है । इहां सम्यग्दृष्टीकूं ज्ञानी कहनेकी

अपेक्षा ऐसी जाननी—जो प्रथम तौ ज्ञान जाकै होय सो ज्ञानी कहिये। सो सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा तौ सर्व ही जीव ज्ञानी हैं। बहुरि सम्यग्ज्ञानमिथ्याज्ञानकी अपेक्षा लीजिये तब सम्यग्दृष्टी कै सम्यग्ज्ञान है ताकी अपेक्षा ज्ञानी है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। बहुरि संपूर्ण ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञानी कहिये, तब केवली भगवान् ज्ञानी है। जातैं सर्वज्ञ न होय, तेतैं पंचभावनिकी कथनीमैं अज्ञानभाव बारमा गुणस्थानताईं सिद्धांतमें कह्या है। ऐसे अनेकांततैं विधिनिषेध सर्व अपेक्षा निर्बाध सिद्ध होय है। सर्वथा एकांततैं किछू भी नाहीं सधे है। ऐसे ज्ञानी होय बंध नाहीं करे है, सो यह शुद्धनयका माहात्म्य है, तातैं शुद्धनयका महिमाकरि कहे हैं।

वसन्ततिलका छन्दः

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः पश्यति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ॥८॥

अर्थ—जे पुरुष शुध्दनयकूं अंगीकार करि निरंतर एकाग्रपणाका अभ्यास करे हैं—कैसा है शुध्दनय? उध्दतबोध कहिये काहूका दाब्या न दबै ऐसा उज्वलज्ञान सो है चिन्ह जाका—सो इसका अवलंबन करनेवाले पुरुष रागादिककरि रहित है मन जिनिका, ऐसे निरंतर होते संते बंधकरि रहित जो समयसार—अपना शुद्ध आत्मस्वरूप, ताहि अवलोकन करे हैं।

भावार्थ—इहां शुद्धनयकरि एकाग्र होना कह्या, सो साक्षात् शुद्धनयका होना तो केवलज्ञान भये होय है। अर शुध्दनय है सो श्रुतज्ञानका अंश है। सो इसके द्वारे शुद्धस्वरूपका श्रद्धान करना तथा ध्यानकरि एकाग्र होना है सो यह परोक्ष अनुभव है। एकदेश शुद्धकी अपेक्षा व्यवहारकरि प्रत्यक्ष भी कहिये है। फेरि कहे हैं, जे यातैं चिगे हैं ते कर्म बांधे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

प्रच्युत्य शुध्दनयतः पुनरेव ये तु रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९॥

अर्थ—बहुरि जे पुरुष शुद्धनयतैं छूटिकरि फेरि रागादिकें योग कहिये संबंधकूं प्राप्त होय हैं, ते छोड्या है ज्ञान जिनिनें ऐसे भये संते कर्मबंधकूं धारे हैं। कैसा कर्मबंधकूं धारे हैं ? पूर्वैं बंधे जे द्रव्यास्रव तिनिकरि कीया है विचित्र अनेकप्रकार विकल्पनिका जाल जानैं।

भावार्थ—फेरि शुद्धनयतैं चिगे तौ रागादिकके संबंधतैं द्रव्यास्रवके अनुसार अनेक भेद लिये कर्मनिकूं बांधे है। नयतैं चिगना यह जो फेरि मिथ्यात्वका उदय आय जाय तब बंध होने लगि जाय। जातैं इहां मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकतैं बंध होनेकी प्रधानताकरि है अर उपयोगकी अपेक्षा गौण है। शुद्धोपयोगरूप रहनेका काल अल्प है। तातैं ताका छूटनेकी अपेक्षा इहां नाहीं। अन्य ज्ञेयतैं ज्ञान उपयुक्त होय तौऊ मिथ्यात्वविना रागका अंश है, सो ज्ञानीके अभिप्रायपूर्वक नाहीं। तातैं अल्पबंध संसारका कारण नाहीं। अथवा उपयोगकी अपेक्षा लीजिये तब शुद्धस्वरूपतैं चिगे सम्यक्त्वतैं न छूटै। तब चारित्रमोहका रागतैं किछू बंध होय है, सो अज्ञानकी पक्षमैं नाहीं गिनिये, अर बंध है ही। ताकूं मेटनेकूं शुद्धनयतैं न छूटनेका अर शुद्धोपयोगमें लीन होनेका सम्यग्दृष्टि ज्ञानीकूं उपदेश है, ऐसैं जानना। आगे इस ही अर्थके समर्थनकूं दृष्टांतकरि दिखावे हैं। गाथा—

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥ १६ ॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥१७॥

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम्।
मांसवसारुधिरादीन्भावानुदराग्निसंयुक्तः ॥१६॥

तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम् ।
बध्नन्ति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः ॥१७॥ युगलम् ॥

आत्मख्यातिः—यदा तु शुद्धनयात् परिहीणो भवति ज्ञानी तदा तस्य रागादिसद्भावात् पूर्वबद्धाः द्रव्यप्रत्ययाः स्वस्य हेतुत्वहेतुसद्भावे हेतुमद्भावस्यानिवार्यत्वात् ज्ञानावरणादिभावैः पुद्गलकर्मबंधं परिणमयंति न चैतदप्रसिद्धं पुरुषगृहीताहारस्योदराग्निना रसरुधिरमांसादिभावैः परिणामकारणस्य दर्शनात् ।

अर्थ—जैसैं पुरुषने आहार ग्रहण कीया सो आहार उदराग्निकरि युक्त भया अनेकप्रकार मांस वसा रुधिरादि भावनिरूप परिणमे है, तैसैं ज्ञानीके पूर्वें बंधे जे द्रव्यास्रव, ते बहुत भेद लीये कर्मनिकूं बांधे हैं । बहुरि जिनिके ए कर्म बधे हैं ते जीव कैसे हैं ? नयकरि हीन भये हैं, शुद्धनयतैं छूटि गये हैं, रागादि अवस्थाकूं प्राप्त भये हैं ।

टीका—जिसकाल ज्ञानी शुद्धनयतैं परिहीन होय है, छूटे है, तिसकाल ताकै रागादिभावनिका सद्भावतैं पूर्वें बांधे थे जे प्रत्यय कहिये द्रव्यास्रव, ते अपनाहेतु पणाका हेतुका सद्भाव होतैं हेतुमत् कहिये कार्य, ताका भावका अनिर्वारण है अवश्य होय है, तातैं ज्ञानावरणादिभावनिकरि पुद्गलकर्मकूं बंधरूप परिणमावे हैं। सो यहू अप्रसिद्ध नाहीं है । दृष्टांतकरि प्रसिद्ध है । जैसैं पुरुषकरि ग्रह्या जो आहार ताका उदराग्निकरि रस रुधिर मांसादि भावनिकरि परिणाम करनेका प्रत्यक्ष दर्शन है देखिये है तैसैं जानना ।

भावार्थ—ज्ञानी शुद्धनयतैं छूटे तब रागादिभावनिका सद्भाव होय, तब रागादिरूप भया संता कर्मनिकूं बांधे है । जातैं रागादिभाव हैं ते द्रव्यास्रवकूं निमित्त होय, तब ते आस्रव अवश्य कर्मबंधकूं कारण होय हैं । इहां इस अर्थका तात्पर्यरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि । नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि ॥१०॥

अर्थ—इहां पहले कथनविषैं यह तात्पर्य है, जो शुद्धनय है सो त्यागनेयोग्य नाहीं है यह उप-

देश है। जातैं तिस शुद्धनयके अत्यागतैं तौ कर्मका बंध नाहीं होय है। बहुरि तिसके त्यागतैं कर्मका बंध होय ही है। फेरि तिस शुद्धनयहीके ग्रहणकूं दृढ करते संते काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम्।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥११॥

अर्थ--पुण्यवान् महंतपुरुषनिकरि शुद्धनय है सो कदाचित् भी छोडनेयोग्य नाहीं है। कैसा है शुद्धनय? ज्ञानविषैं थिरताकूं अतिशयकरि बांधता संता है। कैसा ज्ञानविषैं थिरता बांधे है? धीर कहिये चलाचलपणेतैं रहित अर उदार कहिये सर्वपदार्थनिमें आप विस्तरता है महिमा जाकी। बहुरि कैसा है ज्ञान? अनादिनिधन है—जाका आदि अंत नाहीं है। बहुरि कैसा है शुद्धनय? कर्मनिका सर्वंकष कहिये मूलतैं नाश करनहारा है। ऐसे शुद्धनयके विषैं जे तिष्ठे हैं, ते पुरुष अपनी ज्ञानकी मरीचि कहिये व्यक्तिविशेष, तिनिकूं तत्काल समेटिकरि कर्मके पटलतैं बाह्य निसरता अर संपूर्णज्ञानघनका समूहस्वरूप निश्चल जो शांतरूप मह कहिये ज्ञानमय तेज प्रतापका पुंज, ताहि अवलोकन करे हैं।

भावार्थ—शुद्धनय है सो आत्माकूं एक ज्ञानमय तेज प्रतापका पुंज ताहि एक चैतन्यमात्र समस्तज्ञानके विशेषनिकूं गौणकरि, अर समस्त परनिमित्ततैं भये भावनिकूं गौणकरि, शुद्ध नित्य अभेदरूप एककूं ग्रहण करे है। सो ऐसे शुद्धका विषयस्वरूप अपना आत्माकूं जे अनुभवे हैं—एकाग्र होय तिष्ठे हैं, ते समस्त कर्मका समूहतैं न्यारा संपूर्ण ज्ञान जो केवलज्ञानस्वरूप अमूर्तिक पुरुषाकार वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप अपना आत्मा, ताहि अवलोकन करे हैं। या शुद्ध-नयके विषैं अंतर्मूहूर्त तिष्ठे शुक्लध्यानकी प्रवृत्ति होयकरि केवलज्ञान उपजे है ऐसा याका माहात्म्य है। सो याकूं अवलंबन करि फेरि जेतैं केवलज्ञान न उपजै तेतैं यातैं चिगना नाहीं, ऐसा श्री-गुरुनिका उपदेश है। ऐसैं आस्रवका अधिकार पूर्ण कीया। अब रंगभूमिमैं आस्रवका स्वांग प्रवेश

भया था, ताकूं ज्ञान यथार्थ जाणि स्वांग दूरि कराय आप प्रगट भया, ऐसैं ज्ञानकी महिमाके अर्थरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ता छन्दः

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२॥

अर्थ—रागादिक आस्रवनिका तत्काल क्षणमात्रमें सर्वप्रकार दूरि होनेतैं नित्य उद्योतरूप किछू परम वस्तूकूं अंतरंगविषैं अवलोकन करनेवाला पुरुषके यहु ज्ञान है सो उन्मग्न कहिये उदयरूप प्रगट भया । कैसा प्रगट भया ? अतिविस्ताररूप फैलते जे अपने निजरसके प्रवाह, तिनिकरि सर्वलोकपर्यंत अन्यभाव, तिनिकूं अंतर्मग्न करता संता । बहुरि कैसा है ? अचल है—जैसेके तैसे सर्वपदार्थ जामैं सदा प्रतिभासे हैं, चले नाहीं है । बहुरि कैसा है ? अतुल है, जाकी बराबरी और नाहीं है ।

भावार्थ—शुद्धनयकूं अवलंबन करि जो पुरुष अंतरंग विषैं चैतन्यमात्र परमवस्तूकूं एकाग्र अनुभवे है, ताके सर्व रागादिक आस्रवभाव दूरि होय, अर सर्वपदार्थनिकूं जाननेवाला निश्चल अतुल्य केवलज्ञान प्रगट होय है । सो यह ज्ञान सर्वतैं महान् है । ऐसे आस्रवका स्वांग रंगभूमीमें प्रवेश भया था, ताकूं ज्ञान यथार्थरूप जानि लिया, तब निसरि गया ।

सवैया तेईसा

योग कषाय मिथ्यात्व असंयम आस्रव द्रव्य ते आगम गाये ।
राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भावि तजाये ॥
जे मुनिराज करै इनि पाल सुरिद्धि समाज लये सिव थाये ।
काय नवाय नमूं चित लाय कहूं जय पाय लहूं मन भाये ॥१॥

ऐसैं इस समयसार ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीकाकी वचनिकाविषैं आस्रव नामा चौथा अधिकार पूर्ण भया ॥४॥ इहांतांई गाथा १८० भई । कलसा १२४ भये ॥

अथ संवराधिकारः ।

दोहा—मोहरागरुष दूरि करि समिति गुप्ति व्रत पारि । संवरमय आतम कीयो नमूं ताहि मन धारि ॥१॥

अब रंगभूमिमें संवर प्रवेश करे है । तहां प्रथम ही टीकाकार मंगलके अर्थि, सर्व स्वांगका जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान, ताकी महिमारूप मंगल करे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक्स्वरूपे स्फुरज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१॥

तत्रादावेव सकलकर्मसंवरणस्य परमोपायभेदविज्ञानमभिनंदति ।

अर्थ—चैतन्यस्वरूपमय स्फुरायमान प्रकाशरूप ज्योति है सो उदयरूप होय फैले है । कैसा है ? अनादिसंसारतैं लगाय अपना विरोधी जो संवर, ताकी जीतिकरि एकांतपणे मदकूं प्राप्त भया जो आस्रव ताका तिरस्कारतैं पाया है नित्य विजय जानें ऐसा संवरकूं निपजावता संता है । बहुरि परद्रव्य तथा परद्रव्यके निमित्ततैं भये भाव, तिनितैं भिन्न है । बहुरि कैसा है ? अपना सम्यक् कहिये यथार्थस्वरूप, ताविषैं निश्चित है । बहुरि कैसा है ? उज्वल है, निराबाध निर्मल दैदीप्यमान प्रकाशरूप है । बहुरि कैसा है ? अपना रस जो ज्ञानरूप प्रवाह, ताका है प्राग्भार जाकै—अपना रसका बोझकूं लीये है, अन्य बोझ उतारि धर्या है ।

भावार्थ—अनादितैं आस्रवका विरोधी संवर है । ताकूं आस्रव जीतिकरि मदकरि गर्वित तथा ताका तिरस्कार करि जीतिकूं प्राप्त भया जो संवर, ताकूं प्राप्त करता, अर समस्त पररूपतैं न्यारा होय, अपना रूपविषैं निश्चल होय, यह चैतन्यप्रकाश है, सो अपना ज्ञानरसरूप भारकूं लीये निर्मल उदयरूप होय है । आगे, संवरकी प्रवेशकी आदिहीविषैं समस्तकर्मका संवर होनेका उत्कृष्ट उपाय भेदज्ञान है, ताकूं प्रशंसारूप कहे हैं । गाथा—

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवयोगो ।
कोहो कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मिय कम्मे णोकम्मे चावि णो अत्थि ॥२॥
एदं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥३॥

उपयोगे उपयोगः क्रोधादिषु नास्ति कोप्युपयोगः ।
क्रोधः क्रोधे चैव हि उपयोगे नास्ति खलु क्रोधः ॥१॥
अष्टविकल्पे कर्मणि नोकर्मणि चापि नास्त्युपयोगः ।
उपयोगेऽपि च कर्म नोकर्म चापि नो अस्ति ॥२॥
एतत्त्वविपरीतं ज्ञानं यदा भवति जीवस्य ।
न किंचित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा ॥३॥

आतमख्यातिः—न खल्वेकस्य द्वितीयमस्ति द्वयोर्भिन्नप्रदेशत्वेनैकसत्तानुपपत्तेस्तदऽसत्वे च तेन सहाधारधेयसंबंधोऽपि नास्त्येव ततः स्वरूपप्रतिष्ठत्वलक्षण, एवाधाराधेयसंबंधोऽवतिष्ठते तेन ज्ञानं जानतायां स्वरूपे प्रतिष्ठितं । जानताया ज्ञानादपृथग्भूतत्वात् ज्ञाने एव स्यात् । क्रोधादीनि क्रुध्यतादौ स्वरूपे प्रतिष्ठितानि क्रुध्यतादेः क्रोधादेः पृथग्भूतत्वात्क्रोधादिष्वेव स्युः, न पुनः क्रोधादिषु कर्मणि नोकर्मणि वा ज्ञानमस्ति । नच ज्ञाने क्रोधादयः कर्म नोकर्म वा संति परस्परमत्यंतस्वरूपवैपरीत्येन परमार्थाधाराधेयसंबंधशून्यत्वात् । नच ज्ञानस्य जानतास्वरूपं तथा क्रुध्यतादिरपि क्रोधादीनां च यथा क्रुध्यतादिस्वरूपं तथा जानतापि कथंचनापि व्यवस्थापयितुं शक्येत जानतायाः क्रुध्यतादेश्च भावभेदेनोद्भासमानत्वात् स्वभावभेदाच्च वस्तुभेद एवेति नास्ति ज्ञानाज्ञानयोराधाराधेयत्वं । किं च यदा किलैकमेवा-

काशं स्वबुद्धिमधिरोप्याधाराधेयभावो विभाव्यते तदा शेषद्रव्यांतराधिरोपनिरोधादेव बुद्धेर्न भिन्नाधिकरणापेक्षा प्रभवति । तदप्रभवे चैकमाकाशमेवैकस्मिन्नाकाश एव प्रतिष्ठितं विभावयतो न पराधाराधेयत्वं प्रतिभाति ततो ज्ञानमेव ज्ञाने एवं क्रोधादय एव क्रोधादिष्वेवेति, साधु सिद्धं भेदविज्ञानं ।

अर्थ--उपयोगविषैं उपयोग है। क्रोधादिकविषैं निश्चयकरि कोऊ उपयोग नाहीं है। बहुरि क्रोधविषैंही क्रोध है। उपयोगविषैं निश्चयकरि क्रोध नाहीं है। बहुरि अष्टप्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म अर शरीरादिक नोकर्म, ताविषैं भी उपयोग नाहीं है। बहुरि उपयोगविषैं कर्म नोकर्म भी नाहीं है। बहुरि सत्यार्थज्ञान जिसकाल जीवकै होय है, तिसकाल किछू भी उपयोगसिवाय अन्यभाव नाहीं करे है। केवल उपयोगस्वरूप शुद्ध आत्मा है।

टीका--निश्चयकरि एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य किछू संबंधी नाहीं है। जातैं द्रव्य है सो भिन्नभिन्न प्रदेशरूप है। तातैं एकसत्ताकी अप्राप्ति है। द्रव्यद्रव्यकी सत्ता न्यारी न्यारी है। बहुरि सत्ता एक न होते अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्यकरि आधाराधेयसंबंध भी नाहीं है। तातैं द्रव्यके अपने स्वरूपहीविषैं प्रतिष्ठारूप आधाराधेयसंबंध तिष्ठे है। तिसकारणकरि ज्ञान आधेय, सो तौ जाणपणारूप अपना स्वरूप आधार, ताविषैं प्रतिष्ठित है। जातैं जाणपणा है सो ज्ञानतैं अभिन्नभाव है—भिन्नप्रदेशरूप नाहीं है। तातैं जाननक्रियारूप ज्ञान है सो ज्ञानही विषैं है। बहुरि क्रोधादिक हैं ते क्रोधरूप क्रिया क्रोधपणा अपना स्वरूप ताहीविषैं प्रतिष्ठित हैं। जातैं क्रोधपणारूप क्रिया क्रोधादिकतैं अपृथग्भूत है, अभिन्नप्रदेश है। तातैं क्रोधरूप क्रिया क्रोधादिविषैंही होय है। बहुरि क्रोधादिकविषैं अथवा कर्म नोकर्मविषैं ज्ञान नाहीं है। बहुरि ज्ञानविषैं क्रोधादिक अथवा कर्म नोकर्म नाहीं है। जातैं ज्ञानके अर क्रोधादिकके अर कर्म नोकर्मके परस्पर स्वरूपका अत्यंत विपरीतपणा है। तिनिका स्वरूपका अत्यंत विपरीतपणा है। तिनिका स्वरूप एक होय नाहीं, तातैं परमार्थरूप आधाराधेय संबंधका शून्यपणा है। बहुरि जैसे ज्ञानका जाननक्रियारूप जाणपणास्वरूप है, तैसे क्रोधरूप क्रियापणास्वरूप नाहीं है। बहुरि जैसे क्रोधादिकका क्रोधपणा आदिक क्रिया-

पणा स्वरूप है, तैसे जाननक्रियारूप स्वरूप नाहीं है। कोई ही प्रकारकरि ज्ञानकूं क्रोधादिक्रियारूप परिणामस्वरूप स्थाप्या न जाय है। जातैं जाननक्रियाके अर क्रोधरूप क्रियाके स्वभावका भेदकरि प्रगट प्रतिभासमानपणा है। बहुरि स्वभावके भेदतैंहि वस्तूका भेद है, यह नियम है। तातैं ज्ञानकै अर अज्ञानस्वरूप क्रोधादिककै आधाराधेयभाव नाहीं है।

इहां दृष्टांतकरि विशेष कहे हैं—जैसा आकाशद्रव्य एक ही है, ताहि अपने बुद्धिविषैं स्थापि अर आधाराधेयभाव कल्पिये, तब आकाशसिवाय अन्य द्रव्य तिनिका तौ अधिकाररूप आरोपणाका निरोध भया। याहीतैं बुद्धिकै भिन्न आधारकी अपेक्षा तौ न रही। अर जब भिन्न आधारकी अपेक्षा नाहीं रही, तब बुद्धीमैं यह ही ठहरी, जो आकाश है सो एक ही है। सो एक आकाशहीविषैं प्रतिष्ठित है। आकाशका आधार अन्य द्रव्य नाहीं। आप आपहीकै आधार है। ऐसी भावना करनेवालेके अन्यका अन्यके आधाराधेयभाव नाहीं प्रतिभासे है। ऐसे ही जब एक ही ज्ञानकूं अपनी बुद्धिविषैं स्थापि आधाराधेयभाव कल्पिये, तब अवशेष अन्य द्रव्यनिका अधिरोप करनेका निरोध भया। यातैं बद्धीकै भिन्न आधारकी अपेक्षा नाहीं रहे है। अर भिन्न आधारकी अपेक्षा ही बुद्धिमैं न रही, तब एक ज्ञानही एक ज्ञानविषैं प्रतिष्ठित ठहरया। ऐसी भावना करनेवालेके अन्यका अन्यके आधाराधेयभाव नाहीं प्रतिभासे है। तातैं ज्ञान ही है सो तौ ज्ञान ही विषैं है। अर क्रोधादिक हैं ते क्रोधादिकविषैं ही है। ऐसैं ज्ञानके अर क्रोधादिकके अर कर्मनोकर्मके भेदका ज्ञान है सो भलैप्रकार सिद्ध भया।

भावार्थ—उपयोग है सो तौ चेतनाका परिणमन ज्ञानस्वरूप है। अर क्रोधादिक भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादिक नोकर्म, यह सर्व ही पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, ते जड हैं, इनिके अर ज्ञानके प्रदेशभेद है, तातैं अत्यंत भेद है। तातैं उपयोग विषैं तौ क्रोधादिक तथा कर्म नोकर्म नाहीं है। बहुरि क्रोधादिक कर्मनोकर्मविषैं उपयोग नाहीं है। ऐसे इनिके परमार्थस्वरूप आधारआधेयभाव नाहीं है। अपना अपना आधाराधेयभाव आप आपविषैं है। ऐसे इनिके परस्पर



परमार्थतैं अत्यंत भेद है। ऐसे भेद जाने सो भेदविज्ञान है, सो भलैप्रकार सिद्ध होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयोरन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।

भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥२॥

अर्थ—यह निर्मल भेदज्ञान है सो उदयकूं प्राप्त होय है। सो याका निश्चय करनेवाले सत्पुरुषनिकूं संबोधन करि कहे हैं। जो सत्पुरुषहो! तुम याकूं पायकरि, अर अवर द्वितीय जो रागादिक भाव, तिनितैं रहित भये संते, एक शुद्धज्ञानघनका समूहकूं आश्रय करि, तिसमें लीन भये संते बडा आनंद मानूं। जातैं यह कहा करि उदय होय है? चैतन्यरूप ताकूं धारता संता तौ ज्ञान अर जडरूपताकूं धरता राग, तिनि दोऊनिके अज्ञानदशामैं एकपणासा दीखे हैं। तिनिका अंतरंगविषैं अनुभवके अभ्यासरूप बलकरि उत्कृष्ट विदारणकरि सर्वप्रकार विभागकरि उदय होय है।

भावार्थ—ज्ञान तौ चेतनास्वरूप है अर रागादि पुद्गलविकार जड है। सो अज्ञानतैं एक जडरूप भासे है। सो भेदविज्ञान जब प्रगट होय है, तब ज्ञानका अर रागादिकका भिन्नपणाका अंतरंग अनुभवके अभ्यासतैं प्रगट होय है। तब ऐसैं जाने है, जो ज्ञानका स्वभाव तौ जाननेमात्र ही है अर ज्ञानमें रागादिककी कलुषता मलिनता आकुलतारूप संकल्प विकल्प भासे हैं, सो ए सर्व पुद्गलके विकार हैं जड हैं। ऐसा ज्ञानका अर रागादिकका भेदका आस्वाद आवे है। सो यह भेदविज्ञान सर्व विभावभाव मेटनेकूं कारण होय है, अर आत्माकूं परमसंवरभावकूं प्राप्त करे है। तातैं सत्पुरुषनिकूं कहे हैं, जो याकूं पायकरि रागादिकतैं च्युत होय शुद्ध ज्ञानघन आत्माका आश्रय ले आनंदकूं प्राप्त होऊ। अब कहे हैं—जो ऐसैं यह भेदविज्ञान जिस काल ज्ञानके रागादि विकाररूप विपरीतपणाकी कणिकाकूं न प्राप्त करता अविचलित है, तिसकाल

ज्ञान है सो शुद्धोपयोग स्वरूपपणाकरि ज्ञानहीरूप केवल भया संता किंचिन्मात्र भी रागद्वेषमोह-भावकूं नाहीं प्राप्त होय है। तातैं यह ठहरी, जो भेदविज्ञानतैं शुद्धात्माकी प्राप्ति होय है। बहुरि शुद्धात्माकी प्राप्तीतैं राग द्वेष मोह जे आस्रवभाव तिनिका अभाव है लक्षण जाका ऐसा संवर होय है। आगे पूछे है, जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्धात्माकी प्राप्ति कैसी होय है? ताका उत्तर गाथामैं कहे हैं। गाथा—

जह कणय मग्गितवियं कणयसहावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥४॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥ ५ ॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तत्परित्यजति।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वम् ॥४॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी जानाति रागमेवात्मानम्।
अज्ञानतमोऽवच्छन्न आत्मस्वभावमजानन् ॥५॥ युग्मम् ॥

आत्मख्यातिः—यतो यस्यैव यथोदितभेदविज्ञानमस्ति स एव तत्सद्भावात् ज्ञानी सन्नेवं जानाति। यथा प्रचंडपावकप्रतप्तमपि सुवर्णं न सुवर्णत्वमपोहति तथा प्रचंडविपाकोपष्टब्धमपि ज्ञानं न ज्ञानत्वमपोहति, कारणसहस्रेणापि स्वभावस्यापोढुमशक्यत्वात्। तदपोहे तन्मात्रस्य वस्तुन एवोच्छेदात्। नचास्ति वस्तूच्छेदः सतो नाशासंभवात्। एवं जानंश्च कर्माक्रांतोऽपि न रज्यते न द्वेष्टि न मुह्यति किं तु शुद्धमात्मानमुपलभते। यस्य तु यथोदितं भेदविज्ञानं नास्ति स तदभावादज्ञानी सन्नज्ञानतमसाच्छन्नतया चैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावमजानन् रागमेवात्मानं मन्यमानो रज्यते द्वेष्टि मुह्यते च न जातु शुद्धमात्मानमुपलभते। ततो भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभः।

कथं शुद्धात्मोपलंभादेव संवरः? इति चेत्—

अर्थ—जैसें सुवर्ण अग्निकरि तप्त भया संता भी अपना तिस सुवर्णभावकूं नाहीं छोडे है, तैसें ज्ञानी कर्मके उदयकरि तप्तायमान भया भी अपना ज्ञानीपणा स्वभावकूं नाहीं छोडे है, ऐसें ज्ञानी जाने है। बहुरि अज्ञानी है सो रागहीकूं आत्मा जाने है। जातैं अज्ञानी अज्ञानरूप अंधकारतैं अवच्छन्न है, व्याप्त है। तातैं आत्माका स्वभावकूं नाहीं जानता संता प्रवर्ते है।

टीका—जातैं जाकै जैसा कह्या तैसा भेदविज्ञान है, सो ही तिस भेदविज्ञानके सद्भावतैं ज्ञानी भया संता ऐसें जाने है—जैसें प्रचंड अग्निकरि तपाया भी सुवर्ण अपने सुवर्णपणा स्वभावकूं नाहीं छोडै, तैसें प्रचंड तीव्रकर्मका उदयकरि युक्त भया संता भी ज्ञानी है सो अपना ज्ञानपणाकूं नाहीं छोडे है। जातैं जो जाका स्वभाव है, सो हजारा कारण मिले तौऊ सो ताका स्वभावकूं छोडनेकूं असमर्थ है। जो स्वभावकूं छोडै, तौ तिस छोडनेकरि तिस स्वभावमात्र जो वस्तु ताका ही अभाव होय; सो वस्तुका अभाव होय नाहीं, जातैं सत्ताका नाशका असंभव है। ऐसें जानता संता ज्ञानी है सो कर्मकरि व्याप्त है तौऊ रागरूप नाहीं होय है, द्वेषरूप नाहीं होय है, मोहरूप नाहीं होय है। तौ कैसा होय है? एक शुद्ध आत्माहीकूं पावे है। बहुरि जाकै जैसा कह्या तैसा भेदविज्ञान नाहीं है, सो तिस भेदविज्ञानके अभावतैं अज्ञानी भया संता अज्ञान-रूप अंधकारकरि आच्छादितपणाकरि चैतन्यचमत्कारमात्र आत्माका स्वभावकूं नाहीं जानता संता रागस्वरूप ही आत्माकूं मानता संता रागी होय है, द्वेषी होय है, मोही होय है, शुद्ध आत्माकूं कदाचित् भी नाहीं पावे है। तातैं यह ठहरया—जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्ध आत्माका पावना है।

भावार्थ—भेदविज्ञानतैं आत्मा ज्ञानी होय है, तब कर्मका उदय आवै ताकरि तप्तायमान होय तौऊ अपना ज्ञानस्वभावतैं छूटे नाहीं है। जातैं जो जाका स्वभाव है, सो, चाहो जेते कारण मिलो, स्वभावतैं छूटे नाहीं, जो स्वभावतैं छूटे तौ वस्तुका नाश होय, यह न्याय है। तातैं कर्मके उदयमें ज्ञानी रागी द्वेषी मोही नाहीं होय है। बहुरि जाकै भेदविज्ञान नाहीं है, सो अज्ञानी भया संता रागी द्वेषी मोही होय है। तातैं यह निश्चित है, जो भेदविज्ञानहीतैं शुद्ध आत्माकी

प्राप्ति होय है। आगे पूछे है, जो शुद्ध आत्माकी प्राप्तिहीतैं संवर कैसा होय है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥६॥

शुद्धं तु विजानन् शुद्धमेवात्मानं लभते जीवः।
जानंस्त्वशुद्धमशुद्धमेवात्मानं लभते ॥६॥

आत्मख्यातिः—यो हि नित्यमेवाच्छिन्नधारावाहिना ज्ञानेन शुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते स ज्ञानमयाद् भावात् ज्ञानमय एव भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यग्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्य निरोधाच्छुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति। यो हि नित्यमेवाज्ञानेनाशुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते सोऽज्ञानमयाद्भावादज्ञानमयो भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यक्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्यानिरोधादशुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति। अतः शुद्धात्मोपलंभादेव संवरः।

अर्थ—शुद्ध आत्माकू जानता संता जीव है सो तौ शुद्ध ही आत्माकूं पावे है। बहुरि आत्माकूं अशुद्ध जानता संता जीव अशुद्ध ही आत्माकूं पावे है।

टीका—जो पुरुष तिस ही अविच्छेदरूप धारावाही ज्ञानकरि शुद्ध आत्माकूं पावता संता तिष्ठे है, सो पुरुष "ज्ञानमयभावतैं ज्ञानमय ही भाव होय है" ऐसा न्यायकरि आगामी कर्मका आस्रवणका निमित्त जे राग द्वेष मोह, तिनिका संतान, परिपाटीरूप उत्पत्तीका निरोधतैं शुद्ध ही आत्माकूं पावे है। बहुरि जो जीव नित्य ही अज्ञानकरि अशुद्ध आत्माकूं पावता संता तिष्ठे है, सो जीव "अज्ञानमयभावतैं अज्ञानमय ही भाव होय है" ऐसा न्यायकरि आगामी कर्मका आस्रवणकूं निमित्त जे राग द्वेष मोह, तिनिका संतानरूप उत्पत्तीका निरोध न होनेतैं अशुद्ध ही आत्माकूं पावे है। यातैं शुद्ध आत्माका उपलंभहीतैं संवर होय है।

भावार्थ—आत्माकूं शुद्ध अनुभवता संता तौ शुद्धहीकूं पावे है, ताके आस्रव रुकि संवर होय

है । अर आपाकूं अशुद्ध अनुभवता संता अशुद्धहीकूं पावे है, ताके आस्रव रुके नाहीं है, संवर नाहीं होय है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीछन्दः

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयमात्माराममात्मानमात्मा परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

केन प्रकारेण संवरो भवतीति चेत्—

अर्थ—जो आत्मा कोई प्रकार बडे भाग्यतैं धारावाही ज्ञानकरि निश्चल शुद्ध आत्माकूं प्राप्त होता संता तिष्ठे है, तो यहू आत्मा, उदय होता है आत्मारूप क्रीडावन जाकै, ऐसा अपना आत्माकूं परपरिणति जे राग द्वेष मोह, तिनिका निरोधतैं शुद्धहीकूं पावे है । ऐसे शुद्ध आत्माकी प्राप्तीतैं संवर होय है । इहां धारावाही ज्ञान कह्या, ताका अर्थ—यहू जो एक प्रवाहरूप ज्ञान होय, सो धारावाही है । सो याकी दोय रीति है । एक तौ मिथ्याज्ञान वीचिमैं न आवै ऐसा सम्यग्ज्ञान सो धारावाही है । बहुरि दूजा उपयोगका ज्ञेयके उपयुक्त होनेकी अपेक्षा है, सो जहां-तांई एकज्ञेयसूं उपयोग उपयुक्त होय रहै तहां तांई धारावाही कहिये । सो याकी स्थिति अंत-र्मुहूर्त ही है । पीछे विच्छेद होय है । सो जहां जैसी विवक्षा होय, तहां तैसा जानना । श्रेणी चढे तब शुद्ध आत्मासूं उपयुक्त होय धारावाही होय है । आगे पूछे है, जो, कौन प्रकारकरि संवर होय है ? ताका उत्तर कहे हैं । गाथा—

अप्पाणमप्पणोरुंभिदूण दो (सु) पुराणापावजोगेसु ।
दंसणणाणह्मिठिदो इच्छाविरदो य अराणह्मि ॥७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ ८ ॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमइओ अणण्णमणो ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मणिम्मुक्कं ॥९॥

आत्मानमात्मना रुन्ध्वा द्विपुण्यपापयोगयोः ।
दर्शनज्ञाने स्थितः इच्छाविरतश्चान्यस्मिन् ॥७॥
यः सर्वसङ्गमुक्तो ध्यायत्यात्मानमात्मनात्मा ।
नापि कर्म नोकर्म चेतयिता चिन्तयत्येकत्वम् ॥८॥
आत्मानं ध्यायन्दर्शनज्ञानमयोऽनन्यमनाः ।
लभतेऽचिरेणात्मानमेव स कर्मनिर्मुक्तम् ॥९॥ त्रिकलम् ॥

आत्मख्यातिः—यो हि नाम रागद्वेषमोहमूले शुभाशुभयोगे वर्तमानः, दृढतरभेदविज्ञानावष्टंभेन, आत्मानं, आत्मनैवात्यंतं रुध्वा, शुद्धदर्शनज्ञानात्मद्रव्ये सुष्ठु प्रतिष्ठितं कृत्वा समस्तपरद्रव्येच्छापरिहारेण समग्रसंगविमुक्तो भूत्वा नित्यमेवातिनिष्प्रकंपः सन्, मनागपि कर्मनोकर्मणोरसंस्पर्शेण, आत्मीयमात्मानमेवात्मना ध्यायन् स्वयं सहजचेतयितृत्वादेकत्वमेव चेतयते । स खल्वेकत्वचेतनेनात्यंतविविक्तं चैतन्यचमत्कारमात्मानं ध्यायन् शुद्धदर्शनज्ञानमयमात्मद्रव्यमवाप्तः शुद्धात्मोपलंभे सति समस्तपरद्रव्यमयत्व मतिक्रांतः सन्, अचिरेणैव सकलकर्मविमुक्तमात्मानमवाप्नोति, एष संवरप्रकारः ।

अर्थ—जो जीव अपने आत्माकूं आपहीकरि दोय जे पुण्यपापरूप शुभाशुभयोग तिनितै रोकिकरि अर दर्शनज्ञानविषैं तिष्ठ्या हुवा अन्य वस्तुविषैं इच्छातैं रहित हुवा संता, जो सर्वपरिग्रहतैं रहित हुवा आत्माही करि आत्माकूं ध्यावे है अर कर्म नोकर्मकूं नाहीं ध्यावे है अर आप चेतनारूप है तिस स्वरूपकूं एकपणाकूं अनुभवे है—विचारे है, सो जीव दर्शनज्ञानमय भया अन्यमय नाहीं भया संता आत्माकूं ध्यावता संता थोरे ही कालमें कर्मकरि रहित अपने आत्माकूं पावे है।

टीका—निश्चयकरि जो जीव राग द्वेष मोह है मूल जाका ऐसा जो शुभाशुभ योग तिस

विषैं वर्तमान जो अपना आत्मा, ताकूं दृढतर भेदविज्ञानका अवलंबन करि आपहीकरि अत्यंत रोकिकरि, बहुरि शुद्धज्ञानदर्शनरूप जो अपना आत्मद्रव्य, ताविषैं भलेप्रकार प्रतिष्ठितकरि ठहरायकरि, अर समस्त परद्रव्यकी इच्छाका परिग्रहसूं रहित होयकरि, नित्य ही अतिनिष्प्रकंप निश्चल हुवा संता, किंचिन्मात्र भी कर्मको स्पर्श नाहीं करि, अर अपने आत्माहीकूं आत्माकरि ध्यावता संता, आप स्वयंचेतनेवाला है, सो अपना चेतनारूपहीकूं एकत्वकूं चेते है—अनुभवे है ज्ञानचेतनामय होय है। सो जीव निश्चयकरि एकपणाका अनुभव करनेकरि परद्रव्यतैं अत्यंत भिन्न चैतन्यचमत्कार मात्र अपना आत्माकूं ध्यावता संता, शुद्ध दर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्यकूं प्राप्त भया संता, शुद्ध दर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्यकूं शुद्धात्माका उपलंभ होते संते, समस्तपरद्रव्यमयपणातैं दूरि भया संता थोरे ही कालमें समस्तकर्मतैं रहित आत्माकूं पावे है। यह संवरका प्रकार है।

भावार्थ—जो जीव पहले तो राग द्वेष मोहसूं मिले शुभाशुभ मनवचनकायके योग, तिनितैं भेदज्ञानके बलतैं अपने आत्माकूं चलने न दे, पीछै शुद्धदर्शनज्ञानमैं अपनास्वरूपविषैं निश्चल करै, अर समस्त बाह्याभ्यंतरके परिग्रहतैं रहित होयकरि, कर्मनोकर्मतैं भिन्न अपना स्वरूपविषैं एकाग्र होय ध्यान करता संता तिष्ठे, सो थोरे ही कालमें समस्त कर्मका नाश करे है। यह संवरका प्रकार है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥४॥

केनक्रमेण संवरो भवतीति चेत्—

अर्थ—जे पुरुष भेदविज्ञानकी शक्तिकरी अपना स्वरूपकी महिमाविषैं लीन हैं, तिनिकै निनियमतैं शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होय है। बहुरि तिस शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होते संते जे निश्चल जैसैं होय तैसैं समस्त अन्यद्रव्यनितैं दूरि तिष्ठे हैं, तिनिके कर्मका मोक्ष कहिये अभाव होय है, सो

अक्षय होय है–फेरि कर्मबंध नाहीं होय है, आगे पूछे हैं, जो संवर कोनसे अनुक्रमकरि होय है ? ताका उत्तर कहिये हैं । गाथा–

नीचे लिखी दो गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि ।
भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठोय णादोय ॥

उपदेशेन परोक्षरूपं यथा दृष्टा जानाति ।
भण्यते तथैव ध्रियते जीवो दृष्टश्च ज्ञातश्च ॥

तात्पर्यवृत्तिः–उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि यथा लोके परोक्षमपि देवतारूपं परोपदेशाल्लिखितं दृष्ट्वा कश्चिद् वदत्तो जानाति । भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठोय णादो य । तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते । कोसौ ? जीवः, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेति मनसा संप्रधारयति । तथा चोक्तं ।

कोविदिदिच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं ।
पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्टंतं ॥

कोविदितार्थः साधुः संप्रतिकाले भणेत् रूपमिदं ।
प्रत्यक्षमेव दृष्टं परोक्षज्ञाने प्रवर्तमानं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—अथ मतं भणिज्ज रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं । योसौ प्रत्यक्षेणात्मानं दर्शयति तस्य पार्श्वे पृच्छामो वयं । नैवं (?) । कोविदिदिच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज कोविदितार्थ साधुः, संप्रतिकाले ब्रूयात् ? न कोपि । किं ब्रूयात, न कोऽपि । किंतु रूवमिणं पच्चक्खमेवदिट्ठं इदमात्मस्वरूपं प्रत्यक्षमेव मया दृष्टं । चतुर्थकाले केवलिज्ञानिवत् । अपि तु नैवं कथभूतमिदमात्मस्वरूपं । परोक्खणाणे पवट्ठंतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षे श्रुतज्ञाने प्रवर्तमानं, इति ।

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावोय जोगोय ॥१०॥
हेदु अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ॥११॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जायदि णिरोहो ।
णो कम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ॥१२॥

तेषां हेतवः भणिताः अध्यवसानानि सर्वदर्शिभिः ।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च ॥१०॥
हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणोऽपि निरोधः ॥११॥

किंच विस्तरः यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनरूपं भावश्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते । तथापि इन्द्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षं । तेन कारणेन, आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति । केवलज्ञानापेक्षया परोक्षोऽपि भवति । सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति । किन्तु चतुर्थकालेऽपि केवलिनः, किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति ? तेपि दिव्यध्वनिना भाणित्वा गच्छन्ति । तथापि श्रवणकाले श्रोतृणां परोक्ष एव पश्चात्परमसमाधिकाले प्रत्यक्षो भवति । तथा, इदानीं कालेऽपीति भावार्थः । एवं परोक्षस्यात्मनः कथं ध्यानं क्रियते, इति प्रश्ने परिहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ।

पृष्ठ ३०४ की टिप्पणीके पहिले श्लोककी तात्पर्यवृत्तिके नीचे 'तथा चोक्तं' इसके आगेवाला श्लोक छूट गया है वह निम्न प्रकार है—

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तः स्वपरांतरं । जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरंतरं । अथ—

कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः ।
नोकर्मनिरोधेन च संसारनिरोधनं भवति ॥१२॥ ॥त्रिकलम्॥

आत्मख्यातिः—संति तावज्जीवस्य, आत्मकर्मैकत्वाशयमूलानि मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगलक्षणानि, अध्यवसानानि । तानि रागद्वेषमोहलक्षणस्यास्रवभावस्य हेतवः । आस्रवभावः, कर्महेतुः, कर्म, नोकर्महेतुः, नोकर्म, संसारहेतुः इति । ततो नित्यमेवायमात्मा, आत्मकर्मणोरेकत्वाध्यासेन मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगमयमात्मानमध्यवस्यति । ततो रागद्वेषमोहरूपमास्रवभावं भावयति । ततः कर्म, आस्रवति । ततो नोकर्म भवति ततः संसारः प्रभवति । यदा तु, आत्मकर्मणोर्भेदविज्ञानेन शुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मानं, उपलभते । तदा मिथ्यात्वाविरतियोगलक्षणानां, अध्यसानानां, आस्रवभावहेतूनां, भवत्यभावः । तदभावे रागद्वेषमोहरूपास्रवभावस्य, भवत्यभावः । तदभावेऽपि भवति कर्माभावः । तदभावेऽपि भवति संसाराभावः । इत्येष संवरक्रमः ।

अर्थ—तेषां कहिये पूर्वैं कहे जे आस्रव, राग द्वेष मोह, तिनिका हेतु सर्वज्ञ देव अध्यवसान कहे हैं । ते मिथ्यात्व अज्ञान अविरतभाव योग ये च्यारि कहे हैं । सो ज्ञानीके इनिका अभाव होतैं, नियमतैं आस्रवका निरोध होय है । सो आस्रवभावविना कर्मका भी निरोध होय है । बहुरि कर्मका अभावकरि नोकर्मका भी निरोध होय है । बहुरि नोकर्मका निरोधकरि संसारका निरोध होय है ।

टीका--प्रथम ही जीवके आत्मा अर कर्मका एकपणाका निश्चयरूप आशय है मूल कारण जिनिका ऐसे मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसान विद्यमान हैं ते राग द्वेष मोह हैं लक्षण जाका ऐसे आस्रवका कारण हैं । बहुरि आस्रवभाव है सो कर्मका कारण है । बहुरि कर्म है सो नोकर्मका कारण है । बहुरि नोकर्म है सो संसारका कारण है । तातैं आत्मा है सो नित्य ही आत्मा अर कर्मका एकपणाका निश्चयरूप आशयतैं मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगमय आत्माकूं निश्चयकरि माने है, तिस निश्चयतैं राग द्वेष मोहरूप जो आस्रवभाव ताहि भावे है । बहुरि तातैं कर्मका आस्रव होय है, बहुरि कर्मतैं नोकर्म होय है, बहुरि नोकर्मतैं संसार प्रगट

प्रवर्ते है। बहुरि जिसकाल आत्मा, आत्माका अर कर्मका भेदविज्ञान करि शुद्ध चैतन्यचमत्कार मात्र आत्माकूं पावे है तिसकाल मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसान आस्रव भावके कारण हैं, तिनिका आत्माकै अभाव होय है। अर मिथ्यात्व आदिका अभाव होतैं राग द्वेष मोहरूप आस्रवभावका अभाव होय है, अर राग द्वेष मोहका अभाव होतैं नोकर्मका अभाव होय है, अर नोकर्मका अभाव होतैं संसारका अभाव होय है। ऐसा यह संवरका अनुक्रम है।

भावार्थ—जीवकै जेतै आत्माका अर कर्मका एकपणेका आशय है—भेदविज्ञान नाहीं, तेतैं मिथ्यात्व अज्ञान अविरत योगरूप अध्यवसान विद्यमान हैं। तिनितैं रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव होय है, आस्रवभावतैं कर्म बंधे है, कर्मतैं नोकर्म शरीरादिक प्रगट होय हैं, नोकर्मतैं संसार है। बहुरि जिसकाल आत्माका अर कर्मका भेदविज्ञान होय है, तब शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होय है, तब मिथ्यात्वादि अध्यवसानका अभाव होय है, अर अध्यवसानका अभाव भये राग द्वेष मोहरूप आस्रवका अभाव होय है, आस्रवके अभावतैं कर्म नाहीं बंधे है, अर कर्मके अभावतैं नोकर्म नाहीं प्रगटे है, नोकर्मके अभावतैं संसारका अभाव होय है, ऐसा संवरका अनुक्रम जानना। अब, इस संवरका कारण प्रथम ही भेदविज्ञान कह्या, ताकी भावनाका उपदेश करे हैं। ताका कलशरूप काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

सम्पद्यते संवर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥५॥

अर्थ—जातैं यह संवर है सो निश्चयतैं साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वका उपलंभ कहिये पावनेतैं होय है। बहुरि शुद्धात्मतत्त्वका उपलम्भ है, सो आत्मा अर कर्मका भेद विज्ञानतैं होय है—कर्मकूं अर आत्माकूं न्यारे जाने तब आत्माकूं अनुभवे। तातैं सो भेद विज्ञान अतिशय करि भावने योग्य है। फेरि कहे हैं; जो, भेद विज्ञान कहां तांई भावना?

अनुष्टुप्छन्दः

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया । तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ।।६।।

अर्थ—यह भेद विज्ञान है ताहि निरन्तर धाराप्रवाहरूप जामैं विच्छेद न पडै ऐसैं तेतैं भावै, जेतैं ज्ञान है सो परभावनितैं छूटि करि अपने स्वरूपज्ञानही विषैं प्रतिष्ठित होय ठहरी जाय ।

भावार्थ—इहां ज्ञानका ज्ञान विषैं ठहरना दोय प्रकार जानना । एक तौ मिथ्यात्वका अभाव होय सम्यग्ज्ञान होय, फेरि मिथ्यात्व न आवै । बहुरि दूजा यह जो शुद्धोपयोगरूप होय ठहरै, ज्ञान अन्य विकाररूप न परिणमै । सो दोऊ प्रकार न बनै तेतैं निरन्तर भेद विज्ञानकी भावना राखनी । फेरि भेद विज्ञानकी महिमा कहे हैं ।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ।।७।।

अर्थ—जे केई सिद्ध भये हैं, ते इस भेदविज्ञानतैं भये हैं । बहुरि जे कर्मतैं बंधे हैं, ते तिसही भेदविज्ञानके अभावतैं बंधे हैं ।

भावार्थ—संसार सो आत्मा अर कर्मके एकताकी माननेतैं है, सो अनादितैं जेतैं भेदविज्ञान नाहीं है, तेतैं कर्मतैं बंधे ही है । तातैं कर्मबंधका मूल भेदविज्ञानका अभाव ही है। जे बंधे हैं ते याहीके अभावतैं बंधे हैं । बहुरि जे सिद्ध भये हैं, ते भेदविज्ञान भये हीं भये हैं । तातैं प्रथम भेदविज्ञान ही मोक्षका कारण है । यहां ऐसा भी जानना, जो विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध तथा वेदांती वस्तूकूं अद्वैत कहे हैं, ते अद्वैतका अनुभवहीतै सिद्धि कहे हैं, तिनिका भी इस भेदविज्ञानतैं सिद्धि कहनेतैं निषेध भया । जातैं सर्वथा अद्वैत वस्तुका स्वरूप नाही, अर जे माने हैं, तिनिका भेद-विज्ञान कहना बने नाहीं । भेदविज्ञान तौ वस्तु द्वैत होय तब कहना बनै । सो जीव अजीव दोय वस्तु मानैं, अर दोयका संयोग मानै, तब भेदविज्ञान बनै, यातैं स्याद्वादनिकै सर्व निर्बाध सिद्धि होय है । आगै संवरका अधिकार पूर्ण भया, सो या संवरका भये ज्ञान कैसा है ऐसे ज्ञानकी महिमाका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भाद्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८॥

अर्थ—यह ज्ञान है सो ज्ञानहीविषैं निश्चल नियमरूप उदयकूं प्राप्त भया। कैसे अनुक्रमतैं उदय भया ? प्रथम तौ भेदज्ञानका उदय होना, ताका अभ्यास भया। बहुरि तिस भेदज्ञानके अभ्यासतैं शुद्धतत्त्वका उपलंभ भया। बहुरि तिस शुद्धतत्त्वके उपलंभतैं रागके समूहका प्रलय किया। बहुरि रागग्रामका प्रलय करनेतैं आस्रवके रुकनेतैं कर्मनिका संवर भया। बहुरि कर्मका संवर होने करि परम उत्कृष्ट संतोषकूं धारता संता, ज्ञान प्रगट भया। बहुरि कैसा है ज्ञान ? निर्मल है आलोक कहिये प्रकाश जाका, क्षयोपशमके दोषतैं मलिनता थी सो अब नाहीं है। बहुरि अम्लान है, रागादिकतैं कलुषता थी सो अब नाहीं है, तातैं निर्मल है। बहुरि कैसा है ? एक है, क्षयोपशम करि भेद थे, ते अब नाहीं है। बहुरि शाश्वता है उद्योत जाका, क्षयोपशमज्ञानमैं क्रमतैं होना था, सो अब नाहीं है। ऐसा रंगभूमिमैं संवरका स्वांग प्रवेश भया था ताकूं ज्ञान जानि लिया, सो नृत्य करि रंगभूमितैं निकसि गया।

सवैया तेईसा

भेदविज्ञानकला प्रगटै तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही ।
राग द्वेष विमोह सबही गलि जाय इमै झठ कर्म रुका ही ॥
उज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहुतोष धरै परमातम माही ।
यो मुनिराज भली विधि धारत केवल पाय सुखी शिव जाही ॥१॥

ऐसे इस समयसार ग्रन्थकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं पांचमां संवर अधिकार पूर्ण भया।

इहां तांई गाथा १९२ भई। कलश १३२ भये।

अथ निर्जराधिकारः ।

दोहा—रागादिकक्ूं मेटि करि नवे बंध हति संत । पूर्व उदयमें सम रहे नमूं निर्जरावंत ॥१॥

इहां निर्जरा प्रवेश करे है । भावार्थ—जैसे नृत्यके अखाडेमैं नृत्य करनेवाला स्वांग बनाय प्रवेश करे है, तैसे इहां तत्त्वनिका नृत्य है । तहां रंगभूमिमैं निर्जराका स्वांगका प्रवेश है, तहां प्रथम ही सर्व स्वांग देखि करि यथार्थ जाननेवाला सम्यग्ज्ञान है ताकूं टीकाकार मंगलरूप जानि प्रगट करे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्छति ॥१॥

अर्थ—प्रथम तौ उत्कृष्ट संवर है, सो रागादिक जे आस्रव तिनिकै रोकनेतैं, अपनी धुरा जो सामर्थ्यकी हद्द, ताहि धारिकरि आगामी समस्त ही कर्म, ताकूं मूलतैं दूरी ही रोकता संता तिष्ठया । अबै इस संवर भये पहलै बंधरूप भया था जो कर्म, ताहि दग्ध करनेकूं निर्जरारूप अग्नि फैले है, सो इस निर्जराके प्रगट होनेतैं, ज्ञानज्योति है सो आवरण रहित भया संता, फेरि रागादि भावनिकरि मूर्छित नाहीं होय है, सदा निरावरण रहे है ।

भावार्थ—संवर भये पीछे नवीन कर्म बंधे नाहीं, अर पूर्वे बंधे थे, ते निर्जरे, तब ज्ञानका आवरण दूरि होय, तब ज्ञान ऐसा है, सो फेरि रागादिरूप न परिणमे, सदा प्रकाशरूप रहे । आगे निर्जराका स्वरूप कहे हैं । गाथा—

उवभोजमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिठ्ठी ते सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥१॥

उपभोगमिन्द्रियैर्द्रव्याणामचेतनानामितरेषाम् ।
यत्करोति सम्यग्दृष्टिस्तत्सर्वं निर्जरानिमित्तम् ॥१॥

आत्मख्यातिः—विरागस्योपभोगो निर्जरायैव रागादिभावानां सद्भावेन मिथ्यादृष्टेरचेतनान्यद्रव्योपभोगो बंधनिमित्तं स्यात् । एतेन द्रव्यनिर्जरास्वरूपमावेदितं ।

अथ भावनिर्जरास्वरूपमावेदयति—

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव जो इन्द्रियनिकरि चेतन तथा अचेतन जे द्रव्य, तिनिका उपभोग करे है, तिनिकूं भोगवे है, सो सर्व ही निर्जराके निमित्त है ।

टीका—विरागीका उपभोग है सो निर्जराके अर्थी ही है । जातैं मिथ्यादृष्टिके रागादिभावनिके सद्भावतैं चेतन अचेतन द्रव्यका उपभोग है सो बंधनिमित्त ही होय है । इस कथनकरि द्रव्य—निर्जराका स्वरूप कह्या ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकूं ज्ञानी कह्या है, सो ज्ञानीके राग द्वेष मोहका अभाव कह्या है । सो विरागीके इंद्रियनिकरि भोग होय है, सो तिस भोगकी सामग्रीकूं यह सम्यग्दृष्टि ऐसा जाने है-जो ये परद्रव्य हैं मेरा इनिका किछू नाता नाहीं, अर कर्मके उदयके निमित्तकरि इनिका मेरा संयोग-वियोग है, अर चारित्रमोहका उदय आय पीडा करे है । सो बलहीन है, जेतैं सही न जाय है । तातैं जैसे रोगी रोगकूं भला न जानै अर पीडा न सही जाय, तब ताका औषधि आदि करि इलाज करै, तैसे विषयरूप भोगोपभोगसामग्रीतैं इलाज करै है । अर कर्मके उदयतैं तथा भोगोपभोग सामग्रीतैं राग द्वेष मोह नाहीं है । तातैं सम्यग्दृष्टि ऐसे विरागी है, सो याके भोग उपभोग है, सो निर्जराहीके निमित्त है । कर्म उदय होय है, सो अपना रस दे क्षरि जाय है । उदय आये पीछे द्रव्यकर्मका सत्त्व रहै नाहीं, निर्जरै ही । अर सम्यग्दृष्टीकै तिस कर्मउदयसूं राग-द्वेष मोह नाहीं । उदय आयाकूं जानि ही ले है अर फलकूं भोगवे है । सो राग द्वेष मोह विना भोगवे है, तातैं कर्म आस्रवे नाहीं, आस्रवविना सम्यग्दृष्टि विरागीकै आगामी बंध नाहीं, ऐसैं

आगामी बंध न भया तब केवल निर्जरा ही भई। तातैं सम्यग्दृष्टि विरागीका भोगोपभोग निर्जराका ही निमित्त कह्या । अर पूर्वकर्म उदय आय ताका द्रव्य क्षरि गया सो द्रव्यनिर्जरा है । आगे भावनिर्जराका स्वरूप कहे हैं । गाथा—

दव्वे उपभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च ।
ते सुहदुःखमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥२॥

द्रव्ये, उपभुज्यमाने नियमाज्जायते सुखं च दुःखं च ।
तत्सुखदुःखमुदीर्णं वेदयते अथ निर्जरां याति ॥२॥

आत्मख्यातिः—उपभुज्यमाने सति हि परद्रव्ये तन्निमित्तः सातासातविकल्पानतिक्रमणेन वेदनायाः सुखरूपो दुःखरूपो वा नियमादेव जीवस्य भाव उदेति । स तु यदा वेद्यते तदा मिथ्यादृष्टेः रागादिभावानां सद्भावेन बंधनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोप्यजीर्णः सन् बंध एव स्यात् । सम्यग्दृष्टेस्तु रागादिभावाभावेन बंधनिमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणो प्यजीर्णः सन्निर्जरैव स्यात् ।

अर्थ--परद्रव्यकूं उपभोगमें आवते संते भोगतें संते सुख अथवा दुःख नियमतैं उपजे है । तिस उदय आया सुखदुःखकूं वेदे है, अनुभवे है, भोगवे है, आस्वादमें आवे है । सो आस्वाद देकरि क्षरि जाय है, निर्जरा होय चुक्या गया, सो फेरि नाहीं आवे है ।

टीका--परद्रव्य उपभोगमें आवता संता भोगवता संता जीवके सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियम थकी उदय होय है, उपजे है । कैसा है यह भाव ? परद्रव्य है, निमित्त जाकूं ऐसा है । जातैं वेदनाके साता तथा असाता ऐसे दोय ही रूपपणा है, इनि दोऊ भावकूं नाहीं उल्लंघ्य वर्ते है, सो इस भावकूं जिसकाल जीवकरि वेदिये है, तिसकाल मिथ्यादृष्टीके तौ तिसतैं रागादिभावनिका सद्भावकरि आगामी कर्मके बंधके निमित्त होयकरि निर्जरारूप होता भी निर्जरारूप नाहीं कहिये, आगामी बंधकरि निर्जरारूप भया, तातैं बंध ही कहिये । बहुरि सम्यग्दृष्टीके तिस

सुखदुःखकी वेदनातैं रागादिक भावनिका अभावकरि आगामी बंधके निमित्त नाहीं होय करि केवल निर्जरै ही है, सो निर्जरारूप भया संता निर्जरा ही कहिये, बंध न कहिये।

भावार्थ--कर्मका उदय आये सुखदुःखभाव नियमकरि उपजे है। तिसकूं वेदते संते मिथ्या-दृष्टीकै तौ रागादिकके निमित्ततै आगामी बंधकरि निर्जरै है। तातैं निर्जरै काहेकी? बंध ही किया। बहुरि सम्यग्दृष्टीकै तिस वेदनासूं रागादिकभाव नाहीं हैं, तातै आगामी बंध न होय, तब केवल निर्जरा ही भई। ऐसैं भावरूप निर्जरा होय है। याका अर्थकी अगिले कथनकी सूचनिकारूप कलशरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

तद् ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्य च वा किल। यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥२॥

अथ ज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति—

अर्थ—जो कर्मकूं भोगवता संता भी कर्मकरि नाहीं बंधे है, सो यह कोई आश्चर्यरूप सामर्थ्य ज्ञानका ही है, अथवा विरागीका ही है। अज्ञानीकूं तौ आश्चर्यका उपजावनहारा है। ज्ञानी यथार्थ जाने है। आगे ज्ञानका सामर्थ्यकूं दिखावे हैं। गाथा—

जह विसमुवभुज्जंता विज्जापुरिसा ण मरणमुवयंति।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव बज्झदे णाणी ॥३॥

यथा विषमुपभुंजानाः विद्यापुरुषा न मरणमुपयांति।
पुद्गलकर्मण उदयं तथा भुंक्ते नैव बध्यते ज्ञानी ॥३॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चिद्विषवैद्यः परेषां मरणकारणं विषमुपभुञ्जानोऽपि, अमोघविद्यासामर्थ्येन निरुद्ध-तच्छक्तित्वान्न म्रियते, तथा अज्ञानिनां रागादिभावसद्भावेन बंधकारणं पुद्गलकर्मोदयमुपभुंजा नोऽपि अमोघज्ञान-सामर्थ्यात् रागादिभावानामभावे सति निरुद्धतच्छक्तित्वात् न बध्यते ज्ञानी।

अथ वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति—

अर्थ—जैसें वैद्यपुरुष है सो विषकूं उपभोगता संता भी मरणकूं नाहीं प्राप्त होय है, तैसें पुद्गलकर्मका उदयकूं ज्ञानी भोगवे है, तौऊ बंधे नाहीं है।

टीका—जैसें कोई विषवैद्य है, सो अन्यकूं मरणका कारण जो विष, ताकूं भोगवता भी अमोघविद्या कहिये अचूक सफल मंत्र यंत्र औषध आदिकी विद्याके सामर्थ्यतें रोकी है तिस विषकी मारणशक्ति जानैं, तिसपणातैं मरणकूं नाहीं प्राप्त होय है। तैसें पुद्गलकर्मका उदय है सो अज्ञानीनिकै रागादिभावनिका सद्भावकरि बंधका कारण है, ताकूं ज्ञानी भोगवता संता भी अमोघ अचूक सत्यार्थज्ञानके सामर्थ्यतें रागादि भावनिका अभाव होते संते रोकी है तिस कर्मके उदयकी आगामी बंध करनेकी शक्ति जानै, तिसपणाकरि आगामी कर्मकरि नाहीं बंधे है।

भावार्थ—जैसें वैद्य अपनी विद्याकी सामर्थ्यकरि विषकी मारनेकी शक्तिका अभाव करे है, ताकूं खावै तौऊ तिसतैं मरे नाहीं। तैसें ज्ञानीके ज्ञानकी सामर्थ्य ऐसी है, जो कर्मका उदयकी बंध करनेकी शक्ति रोके है। तातैं तिसके कर्मका उदय भोगमें आवै तौऊ आगामी बंध नाहीं करे है। यह सम्यग्ज्ञानकी सामर्थ्य है। आगे वैराग्यका सामर्थ्य दिखावे हैं। गाथा—

जह मज्जं पिबमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव ॥४॥

यथा मद्यं पिबन् अरतिभावेन माद्यति न पुरुषः।
द्रव्योपभोगे अरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव ॥४॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित्पुरुषो मैरेयं प्रति प्रवृत्ततीव्रारतिभावः सन् मैरेयं पिबन्नपि तीव्रारतिसामर्थ्यान्न माद्यति तथा रागादिभावानामभावेन सर्वद्रव्योपभोगं प्रति प्रवृत्ततीव्रविरागभावः सन् विषयानुपभुञ्जानोऽपि तीव्रविरागभावसामर्थ्यान्न बध्यते ज्ञानी।

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष मद्यकूं तीव्र अरतिभावकरि विनाप्रीति पीवता संता मद रूप न होय है--मतवाला न होय है, तैसैं ज्ञानी द्रव्यके उपभोगविषैं अरत कहिये तीव्र रागरहित भया संता कर्मनिकरि नाहीं बंधे है।

टीका—जैसैं कोई पुरुष मदिराप्रति प्रवर्त्या है तीव्र अरतिभाव जाका ऐसा भया संता मदिराकूं पीवता संता भी तीव्र अरतिभावकी सामर्थ्यतैं मतवाला नाहीं होय है, तैसैं ज्ञानी भी रागादिभावनिके अभावकरि सर्व द्रव्यका उपभोग प्रति प्रवर्त्या है तीव्र विरागभाव जाका ऐसा भया संता भी विषयनिकूं भोगता संता, तीव्र विरागभावके सामर्थ्यतैं कर्मनिकरि नाहीं बंधे है।

भावार्थ—यह वैराग्यका सामर्थ्य है, जो विषयनिकूं सेवता संता भी कर्मनिकरि नाहीं बंधे है। अब इस अर्थका कळशरूप काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यः स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात् सेवकोऽपि तदसावसेवकः॥ ३ ॥

अथैतदेव दर्शयति—

अर्थ—यह पुरुष है सो विषयनिकूं सेवते संते भी जो विषयसेवनेका निजफल है, ताको नाहीं पावे है। सो ज्ञानके विभवका अर विरागताका बलतैं यह विषयनिका सेवनहारा है, तौऊ सेवनहारा नाहीं है।

भावार्थ—ज्ञानका अर विरागताका कोई अचिंत्य सामर्थ्य ऐसा ही है, जो इंद्रियनिकरि विषयनिकूं सेवे है, तौऊ ताकूं सेवनहारा न कहिये। जातैं विषयसेवनका सामान्य निजफल संसार है। सो ज्ञानी वैरागीके मिथ्यात्वके अभावतैं संसारका भ्रमणरूप फल नाहीं होय है। आगे इस ही अर्थकूं प्रगट दृष्टांतकरि दिखावे है। गाथा—

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि ।
पगरणचेट्ठा कस्सवि णयपायरणोत्ति सो होदि ॥५॥

सेवमानोऽपि न सेवते, असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित् ।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति सा भवति ॥५॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित् प्रकरणे व्याप्रियमाणोपि प्रकरणस्वामित्वाभावात्, न प्राकरणिकः । अपरस्तु तत्राव्याप्रियमाणोऽपि तत्स्वामित्वात्प्राकरणिकः । तथा सम्यग्दृष्टिः पूर्वकर्मोदयसंपन्नान् विषयान् सेवमानोऽपि रागादिभावानामभावेन विषयसेवनफलस्वामित्वाभावादसेवक एव । मिथ्यादृष्टिस्तु विषयानसेवमानोऽपि रागादिभावानां सद्भावेन विषयसेवनफलस्वामित्वात्सेवकः ।

अर्थ—कोई तौ विषयनिकूं सेवता संता भी है, तौऊ भी न सेवे है, ऐसा कहिये है । बहुरि कोई नाहीं सेवता संता है, तौऊ सेवनहारा है, ऐसा कहिये है । जैसे कोई पुरुषके कोई कार्यसंबंधी प्रकरणकी चेष्टा तौ है, तिस प्रकरणसंबंधी सर्व क्रिया करे है, तौऊ किसीका कराया करे है, आप तिसका स्वामी नाहीं है, ताकूं प्राकरण कहिये कार्यका करनेवाला है, ऐसा न कहिये ।

टीका—जैसे कोई पुरुष किसी कार्यका प्रकरणक्रियाविषैं व्यापाररूप होय प्रवर्तें है, तिससंबंधी सर्व क्रिया करे है, तौऊ तिस कार्यका प्रकरणका स्वामी कोई और है, ताका कराया करे है । तातैं प्रकरणका स्वामीपणाका अभावतैं प्राकरणिक कहिये करणवाला नाहीं है । बहुरि अन्य कोई तिस प्रकरणविषैं व्यापाररूप प्रवर्तता नाहीं है, तिस कार्यसंबंधी क्रियाकूं नाहीं करे है, तौऊ तिसकार्यका स्वामीपणातैं प्राकरणिक कहिये तिस प्रकरणका करनेवाला कहिये है । तैसे ही सम्यग्दृष्टि है सो पूर्वैं साचे थे जे कर्म, तिनिका उदयकरि व्याप्त भये जे इंद्रियनिके विषय तिनिकूं सेवता संता है, तौऊ रागादिक भावनिके अभावकरि विषयसेवनका फलका स्वामीपणाका अभावतैं सेवनेवाला नाहीं है । बहुरि मिथ्यादृष्टि है सो विषयनिकूं नाहीं सेवता संता भी रागा-

दिक भावनिका सद्भावकरि विषय सेवनेका फलका स्वामीपणातैं विषयनिका सेवनेवाला ही कहिये है।

भावार्थ—जैसैं कोई व्यापारी धनका धनी काहूकूं हाटीपरि चाकर राख्या, सो हाटीका काम व्यापार विणज देना लेना सर्व चाकर करे है, अर धनी अपने घर बैठा रहे है, हाटीसंबंधी कार्यकूं नाहीं करे है। तहां विचारिये इस हाटीके तोटे नफेका स्वामी कोन है? तहां परमार्थ यह है—जो हाटीका कार्यसंबंधी तोटा नफाका स्वामी तौ वो धनका धनी है, जाकर व्यापारादिक क्रिया करे है, तौऊ स्वामीपणाका अभावतैं तिसका फलका भोक्ता नाहीं है। अर धनका धनी किछू व्यापारादिक नाहीं करे है, तौऊ तिसका स्वामीपणातैं तोटा नफाका फलका भोक्ता है। तैसैं संसारमें साहकी ज्यौं तौ मिथ्यादृष्टि जानना अर चाकरको ज्यौं सम्यग्दृष्टि जानना। अब इस अर्थका समर्थनरूप सम्यग्दृष्टीके भावनिकी प्रवृत्तिका कळशरूप काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥६॥

सम्यग्दृष्टिः विशेषेण स्वपरावेवं तावज्जानाति—

अर्थ—सम्यग्दृष्टीकै नियमतैं ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति होय है। जातैं यह सम्यग्दृष्टि अपना वस्तुपणा यथार्थस्वरूप ताका अभ्यास करनेकूं अपना स्वरूपका ग्रहण अर परका त्यागका विधि करि, यह तौ अपना आत्मस्वरूप है अर यह परद्रव्य है ऐसा दोऊका भेद परमार्थकरि जानि, अर आपविषैं तौ तिष्ठे है, अर परद्रव्यतैं सर्व प्रकार रागके योगतैं विरक्त होय है। सो यह रीति ज्ञानवैराग्यकी शक्तोविना होय नाहीं। आगै इस काव्यका अर्थरूप गाथा है। तहां कहे हैं सम्यग्दृष्टि प्रथम ही आपकूं अर परकूं सामान्यकरि तौ ऐसैं जाने है। गाथा—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥६॥

उदयविपाको विविधः कर्मणां वर्णितो जिनवरैः ।
न तु ते मम स्वभावाः ज्ञायकभावस्त्वहमेकः ॥६॥

आत्मख्यातिः—ये कर्मोदयविपाकप्रभवा विविधा भावा न ते मम स्वभावाः । एष टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावोहं । कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत्—

अर्थ—कर्मनिका उदयका विपाक कहिये रस है सो अनेकप्रकार जिनेश्वर देव कह्या है । ते कर्मविपाकतैं भये भाव मेरा स्वभाव नाहीं है । मैं तौ एक ज्ञायक स्वभाव स्वरूप हौं ।

टीका—जे कर्मके उदयके रसतैं उपजे अनेक प्रकार भाव ते मेरा स्वभाव नाहीं हैं । मै तौ यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभाव हूं । ऐसैं सामान्यकरि सर्व ही कर्मजन्य भावनिकूं सम्यग्दृष्टि पर जाने है । आपकूं एक जाननेवाला ही जाने है, ऐसैं सामान्यकरि जानना भया । आगे कहे हैं, सम्यग्दृष्टि आप अर परकूं विशेषकरि ऐसैं जाने हैं । गाथा—

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झभावो जाणगभावो दु अहमिक्को ॥७॥

पुद्गलकर्म क्रोधस्तस्य विपाकोदयो भवति एषः ।
नत्वेष मम भावः, ज्ञायकभावः खल्वहमेकः ॥७॥

आत्मख्यातिः—अस्ति किल रागो नाम पुद्गलकर्म तदुदयविपाकप्रभवोयं रागरूपो भावः, न पुनर्मम स्वभावः । एष टङ्कोत्कीर्णज्ञायकस्वभावोहं । एवमेव च रागपदपरिवर्तनेन द्वेषमोहक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशा अन्यान्यप्यूह्यानि । एवं च सम्यग्दृष्टिः स्वं जानन् रागं मुंचंश्च नियमाज्ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति ।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि ऐसें जाने है, जो राग है सो पुद्गलकर्म है, ताका विपाकका उदय है, मेरे अनुभवमें रागरूप प्रीतिरूप आस्वाद होय है, सो है, सो यह मेरा भाव नाहीं है। जातैं निश्चयकरि मैं तौ एक ज्ञायकभावस्वरूप हौं।

टीका—निश्चयकरि राग नामा पुद्गलकर्म है, तिस पुद्गलकर्मके उदयकें विपाककरि निपज्या यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर रागरूप भाव है, सो यह मेरा स्वभाव नाहीं है, मैं तौ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वरूप हौं। ऐसैं सम्यग्दृष्टि विशेषकरि आपापरकूं जाने है। इहां गाथामैं परभावका

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो।
परदव्वाणुवओगो णदु देहो हवदि अण्णाणी॥

कथमेष तव न भवति विविधः कर्मोदयफलविपाकः।
परद्रव्याणामुपयोगो न तु देहो भवति अज्ञानी॥

तात्पर्यवृत्तिः—कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो कथमेष विविधकर्मोदयफलविपाकस्तवरूपं न भवतीति केनापि पृष्टः तत्रोत्तरं ददाति परदव्वाणुवओगो निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणस्वशुद्धात्मद्रव्यात्पृथग्भूतानि परद्रव्याणि यानि कर्माणि जीवे लग्नानि तिष्ठन्ति तेषामुपयोग उदयोयं, औपाधिकस्फटिकस्य परोपाधिवत्। न केवलं भावक्रोधादि ममस्वरूपं न भवति, इति णदु देहो हवदि अण्णाणी देहोऽपि मम स्वरूपं न भवति हु स्फुटं कस्मादिति चेत्, अज्ञानी जडस्वरूपो यतः कारणात्, अहं पुनः, अनन्तज्ञानादिगुणस्वरूप इति।

अर्थ—किसीने सम्यग्दृष्टीसे प्रश्न किया कि—यह जो नाना कर्मोंके उदयसे फलविपाक होता है वह तेरा स्वरूप क्यों नहीं है तो उसका उत्तर यह है कि—निर्विकार परमाह्लाद स्वरूप शुद्ध आत्मद्रव्यसें वे कर्मविपाक भिन्न हैं इसलिये वे मेरे स्वरूप नही है। यह ही नहीं किंतु यह जो मेरा देह—शरीर है वह भी अज्ञानी होनेके कारण ज्ञानस्वरूपी मुझसे सर्वथा भिन्न है।

विशेष राग कह्या है, तैसें ही रागकी जायगां पद पलटनेकरि द्वेष मोह क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ए पद धरि सोलह सूत्र व्याख्यान करने। बहुरि इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारणे। याप्रकार सम्यग्दृष्टि आपकूं जानता संता, बहुरि रागकूं छोडता संता, नियमतैं ज्ञानवैराग्यकरि युक्त होय है। आगै इस ही अर्थकूं सूचती गाथा कहै हैं। गाथा--

एवं सम्माइट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुअदि तच्चं वियाणंतो ॥८॥

एवं सम्यग्दृष्टिः आत्मानं जानाति ज्ञायकस्वभावं।
उदयं कर्मविपाकं च मुंचति तत्त्वं विजानन् ॥८॥

आत्मख्यातिः—एवं सम्यग्दृष्टिः सामान्येन विशेषेण च परस्वभावेभ्यो भावेभ्यो सर्वेभ्योऽपि विविच्य टंकोत्कीर्णैक-ज्ञायकस्वभावमात्मनस्तत्त्वं विजानाति। तथा तत्त्वं विजानंश्च स्वपरभावोपादानापोहननिष्पाद्यं स्वस्य वस्तुत्वं प्रथयन् कर्मोदयविपाकप्रभवान् भावान् सर्वानपि मुञ्चति। ततोयं नियमात् ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति।

अर्थ—ऐसैं सम्यग्दृष्टि आपकूं ज्ञायकस्वभाव जानै है अर कर्मका उदयकूं कर्मका विपाक जानि ताकूं छोडै है। कैसा भया संता? तत्त्व कहिये वस्तूका यथार्थस्वरूप ताकूं जानता संता प्रवर्तें है।

टीका—याप्रकार सम्यग्दृष्टि है सो सामान्यकरि तथा विशेषकरि सर्व ही परभावनितैं भिन्न होयकरि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभाव स्वभावरूप आत्माका तत्त्वकूं नीके जानै है। बहुरि तिस प्रकार तत्त्वकूं नीके जानता संता स्वभावका ग्रहण अर परभावका त्यागकरि निपजने योग्य जो अपना वस्तुपणा, ताहि विस्तारता फैलावता संता कर्मका उदयके विपाककरि निपजे जे भाव, तिनि सर्वनिकूं छोडै है तातैं यह सम्यग्दृष्टि नियमतैं ज्ञानवैराग्यकरि संयुक्त होय है, यह सिद्ध भया।

भावार्थ—जब आपकूं तौ ज्ञायकभावस्वरूप सुखमय जाने, अर कर्मके उदयकरि भये भावनिकूं आकुलतारूप दुःख जाने तब ज्ञानरूप रहना, अर परभावनितैं विरागता होय ही होय, यह प्रगट अनुभवगोचर है, यह ही सम्यग्दृष्टिका चिन्ह है। आगे कहे हैं जो ऐसैं न होय अर परद्रव्यनितैं आसक्ततारूप रागी होय, अर सम्यग्दृष्टिपणाका अभिमान करे है, सो काहेका सम्यग्दृष्टि ? वृथा सम्यग्दृष्टिपणाका अभिमान करे है ऐसें काव्यमें कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्यादित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥५॥

कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत्—

अर्थ—जे पर द्रव्यके विषैं रागद्वेषमोहभावकरि तौ संयुक्त हैं अर आपकूं ऐसैं माने हैं, जो मैं सम्यग्दृष्टि हौं, मेरे कदाचित् कर्मका बन्ध नाहीं होय है, शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिकै बन्ध नाहीं कह्या है, ऐसैं मानिकरि उत्तान कहिये गर्वसहित उंचा किया है अर हर्ष सहित उत्पुलक कहिये रोमांचरूप भया है मुख जिनिका ऐसे हैं, ते महाव्रतादि आचरण करो तथा समिति कहिये वचन विहार आहारकी क्रियाविषैं यत्नतैं प्रवर्तना, तिसकी परता कहिये उत्कृष्टता ताकूं भी आलम्बन करौ, ते ऐसे प्रवर्तते भी पापी मिथ्यादृष्टि ही हैं। जातैं आत्माका अनात्माका ज्ञानतैं रहित है, तातैं सम्यक्त्वतैं रीते हैं, तिनिकै सम्यक्त्व नाहीं है।

भावार्थ—जो आपकूं सम्यग्दृष्टि माने अर परद्रव्यतैं राग होय, तौ ताकै सम्यक्त्व काहेका ? व्रतसमिति पाले तौऊ आपापरका ज्ञान विना पापी ही है। अर आपकै बन्ध न होना मानि स्वच्छन्द प्रवर्ते, तौ काहेका सम्यग्दृष्टि ? तातैं चारित्रमोहका रागतैं बन्ध तौ यथाख्यातचारित्र जेते न होय तेते होय ही है। सो जेते राग रहै तेते सम्यग्दृष्टि अपनी निंदा गर्हा करता ही रहे है, ज्ञान होने मात्रतैं तौं बन्धतैं छूटना नाहीं, ज्ञान भये पीछे तिसहीमें लीनरूप शुद्धोपयोगरूप

चारित्रतैं बन्धन कटे है। तातैं राग छतै बन्ध न होना मानि स्वच्छन्द होना तो मिथ्यादृष्टि ही है। इहां कोई पूछै व्रतसमिति तौ शुभकार्य हैं, तिनिकूं पालतैं पापी क्यों कहै? ताका समाधान—जो सिद्धांतमें पाप मिथ्यात्वहीकूं कह्या है, जहां तांई मिथ्यात्व रहै, तहां तांई शुभ तथा अशुभ सर्वही क्रियाकूं अध्यात्मविषैं परमार्थकरि पाप ही कहिये, अर व्यवहारनयकी प्रधानतामें व्यवहारी जीवनिकूं अशुभ छुडाय शुभमें लगावनेकूं कथंचित् पुण्य भी कहिये हैं, स्याद्वादमतविषैं विरोध नाहीं।

बहुरि कोई पूछै परद्रव्यसूं राग रहै जेतै मिथ्यादृष्टि कहै, सो यामैं समझें नाहीं, अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकै चारित्रमोहका उदयतैं रागादिभाव होय हैं, ताकै सम्यक्त्व कैसे है? ताका समाधान---जो इहां मिथ्यात्वसहित अनन्तानुबन्धीका राग प्रधानकरि कह्या है। जातैं आपापरका ज्ञान श्रद्धानविना परद्रव्य तथा तिसके निमित्ततैं भये भाव, तिनिविषैं आत्मबुद्धि होय तथा प्रीति अप्रीति होय तब जानिये याकै भेदज्ञान भया नाहीं। जो मुनिपद लेकरि व्रतसमिति भी पाले हैं, तहां परजीवनिकी रक्षा तथा शरीर सम्बन्धी यत्नतैं प्रवर्तना अपने शुभभाव होना इत्यादि परद्रव्य सम्बन्धी भावनिकरि अपने मोक्ष होना मानै, अर परजीवनिका घात होना अयत्नाचार प्रवर्तना अपना अशुभभाव होना इत्यादि परद्रव्यनिकी क्रियाहीतैं अपने बन्ध मानै तेतै जानिये—याकै आपापरका ज्ञान नाहीं भया। बन्ध मोक्ष तौ अपना ही भावनितैं था परद्रव्य तौ निमित्तमात्र था, यामैं विपर्यय मान्या। तातैं ऐसैं परद्रव्यहीतैं भला बुरा मानि रागद्वेष करे हैं, जेतैं सम्यग्दृष्टि नाहीं है, अर जेतैं चारित्रमोह सम्बन्धी रागादिक रहे हैं। तिनिकूं तथा तिनिका प्रेर्या परद्रव्य सम्बन्धी शुभाशुभ क्रियामैं प्रवर्ते है तिस प्रवृत्तिनिकूं ऐसैं मानै---जो यह कर्मका जोर है, यातैं निवृत्त भये मेरा भला है, तिनिकूं रोगवत् जाने है, पीडा न सही जाय तब तिनिका इलाज करनेरूप प्रवर्ते है। तोऊ तिनितैं याकै राग न कहिये रोग मानै, तिनितैं काहेका राग? तिसका मेटनेहीका उपाय करै। सो मेटना भी अपने ही ज्ञानपरिणाम-

रूप परिणमनेतैं मानै। ऐसैं परमार्थ अध्यात्मदृष्टिकरि इहां व्याख्यान जानना।

मिथ्यात्व विना चारित्रमोहसम्बन्धी उदयका परिणामकूं इहां राग न कह्या है। जातैं सम्यग्दृष्टिकै ज्ञानवैराग्यशक्ति अवश्य होनो कह्या है। तहां मिथ्यात्व सहित ही रागकूं राग कहे हैं, सो सम्यग्दृष्टीकै है नाहीं, अर मिथ्यात्वसहित राग होय सो सम्यग्दृष्टि नाहीं, ऐसा विशेषकूं सम्यग्दृष्टि ही जाने है। मिथ्यादृष्टिका अध्यात्मशास्त्रमें प्रथम तौ प्रवेश नाहीं, अर जो प्रवेश करे, तौ विपर्यय समझे है, व्यवहारकूं सर्वथा छोडि भ्रष्ट होय है, अथवा निश्चयकूं नीके नाहीं जानि व्यवहारहीतैं मोक्ष माने है, परमार्थतत्त्वविषैं मूढ है। तातैं यथार्थ स्याद्वादन्यायकरि सत्यार्थ समझैं सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय है। आगे पूछे है कि, रागी सम्यग्दृष्टि कैसे न होय है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

परमाणुमित्तियं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पा णयं तु सव्वागमधरोवि ॥९॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चेव सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥१०॥ युग्मं॥

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य।
नापि स जानात्यात्मानं सर्वागमधरोऽपि ॥९॥

आत्मानमजानन् अनात्मानमपि सोऽजानन्।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन् ॥१०॥

आत्मख्यातिः—यस्य रागाद्यज्ञानभावानां लेशतोऽपि विद्यते सद्भावः, भवतु स श्रुतकेवलिसदृशोऽपि तथापि ज्ञानमयभावानामभावेन न जानात्यात्मानं। यस्त्वात्मानं न जानाति सोऽनात्मानमपि न जानाति स्वरूपपररूपसत्तासत्ता-

भ्यामेकस्य वस्तुनो निश्चीयमानत्वात्। ततो य आत्मानात्मानौ न जानाति स जीवाजीवौ न जानाति। यस्तु जीवाजीवौ न जानाति स सम्यग्दृष्टिरेव न भवति। ततो रागी ज्ञानाभावान्न भवति सम्यग्दृष्टिः।

अर्थ—निश्चयकरि जिस जीवकै रागादिकका परमाणुमात्र कहिये लेशमात्र अंशमात्र भी वर्तै है सो जीव सर्व आगमका धारी होय-सर्व शास्त्र पढ्या होय, तौऊ आत्माकूं नाहीं जाने है। बहुरि आत्माकूं नाहीं जानता संता अनात्मा जो पर, ताकूं भी नाहीं जाने है, बहुरि आत्मा अनात्माकूं नाहीं जानता संता जीव अजीव पदार्थकूं भी नाहीं जाने है, बहुरि जो जीवकूं नाहीं जाने सो सम्यग्दृष्टि कैसे होय ?

टीका—जिस जीवकै अज्ञानमय जे रागादिकभाव, तिनिका लेशमात्रका भी सद्भाव है सो जीव श्रुतकेवली सरीखा भी होय तौऊ ज्ञानमयभावका अभावतैं आत्माकूं नाहीं जाने है। बहुरि जो अपने आत्माकूं नाहीं जाने है सो अनात्माकूं भी नाहीं जाने है। जातैं अपना स्वरूप अर परका स्वरूपका सत्त्व अर असत्त्व दोऊ एक ही वस्तूका निश्चयमें आय जाय है, तातैं ऐसा है—जो आत्माकूं अर अनात्माकूं दोऊकूं नाहीं जाने है सो जीव अजीव वस्तूकूं ही नाहीं जाने है, जीव अजीवकूं नाहीं जाने है, सो सम्यग्दृष्टि नाहीं है। तातैं रागी है सो ज्ञानका अभावतैं सम्यग्दृष्टि नाहीं है।

भावार्थ—इहां रागी कहनेकरि अज्ञानमय राग द्वेष मोह भाव लिये तहां अज्ञानमय कहनेकरि मिथ्यात्व अनंतानुबंधीतैं भये रागादिक लेने। मिथ्यात्वविना चारित्रमोहका उदयका राग न लेना। जातैं अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयसंबंधी राग है, सो ज्ञानसहित है, ताकूं रोगवत् जाने है, तिस रागसूं याकै राग नाहीं है, कर्मोदयतैं राग भया है, ताकूं मेट्या चाहे है। बहुरि रागका लेशमात्र भी याको अभाव कह्या, सो ज्ञानीकै अशुभराग तौ अत्यंत गौण है। बहुरि शुभराग होय है, सो सर्वशास्त्र पढि जाय, मुनि होय, व्यवहारचारित्र भी पालै, अर तिस शुभरागकूं भला जानि लेशमात्र भी तिस रागसूं राग करै, तौ जानिये—यानै अपना

आत्माका परमार्थस्वरूप जान्या नाहीं । कर्मोदयजनित भावकूं भला जान्या । तिसतैं अपना मोक्ष होना मान्या । ऐसैं मानतैं अज्ञानी ही है । आपका परका परमार्थरूपकूं न जान्या । तब जानिये जीव अजीव पदार्थका भी परमार्थरूप न जान्या । तब जो जीव अजीवकूं ही न जान्या, तब काहेका सम्यग्दृष्टि ऐसैं जानना । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं । तामैं जे रागी प्राणी अनादितैं रागादिककूं अपना पद जाने हैं, तिनिकूं उपदेश करे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्वि बुध्यध्वमन्धाः ।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥६॥

किं तत्पदम् ?

अर्थ—संसारी भव्यप्राणीकूं श्रीगुरु संबोधे है । जो हे अंधे प्राणी हो, ए रागी पुरुष हैं, ते अनादि संसारतैं लगाय जिस पदविषैं सोते हैं—निद्रामैं मग्न हैं, तिस पदकूं तुम अपद जानो अपद जानो, यह तुमारा ठिकाना नाहीं । इहां दोय वारंवार कहनेतैं अतिकरुणाभाव सूचे है । फेरि कहे हैं—जो तुमारा ठिकाना यह है यह है । जहां चैतन्य धातु शुद्ध है शुद्ध है । अपने स्वाभाविकरसके समूहतैं स्थायीभावपणाकूं प्राप्त है । इहां दोय शुद्धपद हैं, सो द्रव्य अर भाव दोऊकी शुद्धताके अर्थि हैं । सो सर्व अन्यद्रव्यनितैं न्यारा, सो तौ द्रव्यशुद्धता है । अर परनिमित्ततैं भये अपने भाव तिनितैं रहित भाव शुद्ध कहिये । सो इतः कहिये इस तरफ आवो इस तरफ आवो-इहां निवास करौ ।

भावार्थ—ए प्राणी अनादि संसारतैं लगाय रागादिककूं भला जाणि, तिनिहीकूं अपना स्वभाव मानि, तिनिहीविषैं निश्चित तिष्ठे हैं—सोवे हैं । तिनिकूं श्री गुरु दयालु होय संबोधे है—जगावे है—सावधान करे है । जो हे अंधे प्राणी हौ, तुम जिस पदविषैं सोवौ हो, सो तुमारा पद नाहीं है, तुमारा पद तौ चैतन्यस्वरूपमय है, तिसकूं प्राप्त होऊ, ऐसैं सावधान करे है ।

जसे कोई महंत पुरुष मद पीयकरि मलिन जायगां सोता होय ताकूं कोई ही आय जगावै कहे है-तेरी जायगा तौ सुवर्णमय धातूकी अतिदृढ शुद्ध सुवर्णतैं रची अर बाह्य कजोडाकरि रहित शुद्ध करी ऐसी है। सो हम बतावे हैं, तहां आव, तहां शयनादि करि आनंदरूप होऊ। तैसे इहां भी श्रीगुरु उपदेश करि सावधान किया है, जो बाह्य तौ अन्य द्रव्यनिका मिलाप नाहीं अर अतंरंग विकार नाहीं ऐसा शुद्ध चैतन्यरूप अपना भावका आश्रय करौ। दोय दोय वार कहने-करि अतिकरुणा अनुराग सूचे है। आगे पूछे है, जो हे श्रीगुरो, तुम बताओ सो पद कहा है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण गिराह तव णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलंब्भंतं सहावेगा ॥११॥

आत्मनि द्रव्यभावान्यस्थिराणि मुक्त्वा गृहाण तव नियतं।
स्थिरमेकमिमं भावं उपलभ्यमानं स्वभावेन ॥११॥

आत्मख्यातिः—इह खलु भगवत्यात्मनि बहूनां द्रव्यभावानां मध्ये ये किल, अतत्स्वभावेनोपलभ्यमानाः, अनियतत्वावस्थाः, अनेके, क्षणिकाः, व्यभिचारिणो भावाः, ते सर्वेऽपि स्वयमस्थायित्वेन स्थातुः स्थानं भवितुमशक्यत्वात्, अपदभूताः। यस्तु तत्स्वभावेनोपलभ्यमानः, नियतत्वावस्थः, एकः, नित्यः, अव्यभिचारी भावः, स एक एव स्वयं स्थायित्वेन स्थानं भवितुं शक्यत्वात् पदभूतः। ततः सर्वानेवास्थायिभावान् मुक्त्वा स्थायिभावभूतं, परमार्थरसतया स्वदमानं ज्ञानमेकमेवेदं स्वाद्यं।

अर्थ—आत्माविषैं बहुत भाव हैं, तिनिमैं परनिमित्ततैं भये ते आत्माके भाव नाहीं ते अपद हैं, तिनिकूं द्रव्यरूप अर भावरूपकूं सर्वहीकूं छोडिकरि जो निश्चित थिर एक अपने स्वभाव ही करि ग्रहण होता यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यमात्र भाव है, सो अपना पन है, ताहि भो भव्य तू जैसाका तैसा ग्रहण करि।

टीका—निश्चयकरि इस भगवान् आत्माविषैं द्रव्यभावस्वरूप बहुत भाव दीखेहैं। तिनिमें

केई तिस आत्माके स्वभावरहित हैं, ते अनियत कहिये अनिश्चित अवस्था रूप हैं, अनेक हैं, क्षणिक हैं, व्यभिचारी हैं, ऐसे भाव हैं ते सर्व ही आप अस्थायी हैं, ठहरनेका जिनिका स्वभाव नाहीं। तातैं तिष्ठनेवाला आत्मा, ताके तिष्ठनेका ठिकाना स्थान होनेकूं योग्य नाहीं तातैं ते अपदभूत हैं। बहुरि जो भाव आत्मस्वभावकरि तौ ग्रहणमें आवे है, बहुरि नियतावस्था है, सदा निश्चित रहे है, बहुरि एक है, बहुरि नित्य है, बहुरि अव्यभिचारी है ऐसा एक चैतन्यमात्र ज्ञानभाव है। सो आप स्थायीभावस्वरूप है, सदा विद्यमान पाइये है, सो तिष्ठनेवाला जो आत्मा ताका तिष्ठनेका स्थान होनेकूं योग्य है, तातैं यह भाव पदभूत है। तातैं सर्व ही जे अस्थायीभाव तिनिकूं छोडिकरि स्थायीभूत परमार्थ रसपणाकरि स्वादमें आवता यह ज्ञान है सो ही एक आस्वादने योग्य है।

भावार्थ-पूर्वें वर्णादिक गुणस्थानान्त भाव कहे थे, ते तौ सर्व ही आत्माविषैं अनियत अनेक क्षणिक व्यभिचारी ऐसे भाव हैं, ते आत्माके पद नाहीं। बहुरि यह स्वसंवेदन स्वरूप ज्ञान है सो नियत है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है, स्थायीभाव है सो आत्माका पद है, सो ज्ञानीनिकरि यह ही एक स्वाद लेनेयोग्य है। अब इस अर्थका कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्। अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥८॥

अर्थ—सो ही एक पद आस्वादने योग्य है। कैसा है? विपद् जो आपदा तिनिका पद नाहीं है, जिस पदमें किछू भी आपदा प्रवेश नाहीं करे है। जाके आगे अन्य सर्व ही पद हैं ते अपद प्रतिभासे हैं।

भावार्थ—एक ज्ञान ही आत्माका पद है, यामैं किछू भी आपदा नाहीं, याके आगे अन्य सर्व ही पद आपदास्वरूप आकुलतामय अपद भासे हैं। फेरि कहे हैं, जो आत्मा ज्ञानका अनुभव करे है, तब ऐसे करे है—

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन् स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम् ॥८॥

अर्थ—यह आत्मा है सो ज्ञानके विशेषनिका उदयकूं गौण करता संता सामान्यज्ञानमात्रकूं अभ्यास करता संता समस्तज्ञानकूं एक भावकूं प्राप्त करै है। कैसा भया संता ? सो कहे हैं, एक ज्ञायकमात्र भावकरि भरया जो ज्ञानका महास्वाद ताकूं लेता संता है। बहुरि कैसा है ? द्वंद्वमय जो वर्णादिक रागादिक तथा क्षायोपशमरूप ज्ञानके भेदरूप स्वाद, ताहि करनेकूं लेनेकूं असमर्थ है, ज्ञान ही में एकाग्र होय तब दूजा स्वाद नाहीं आवे। बहुरि कैसा है ? अपनो जो वस्तूकी प्रवृत्ति ताहि जानता है, आस्वाद करता है। जातैं कैसा है ? आत्माका जो अनुभव, आस्वाद, ताके प्रभाव करि विवश है, तिसही स्वादके आधीन है—तहांतैं चिगनेकूं असमर्थ है। अद्वितीय स्वाद लेता बाहरि काहेकूं आवै।

भावार्थ—इस एक स्वरूपज्ञानके रसीले स्वाद आगै अन्य रस फीके हैं। अर भेदभाव-सब मिटि जाय हैं। ज्ञानके विशेष ज्ञेयके निमित्ततैं हैं। सो जब ज्ञानसामान्यका स्वाद ले तब सर्व-ज्ञानके भेद भी गौण होय जाय हैं। एक ज्ञान ही ज्ञेयरूप होय है। इहां कोई पूछै, छद्मस्थकै पूर्णरूप केवलज्ञानका स्वाद कैसा आवै ? ताका उत्तर तो पूर्वैं कथन शुद्धनयका किया तहां ही भया। जो शुद्धनय आत्माका शुद्ध पूर्णरूप जनावे है, सो इस नयके द्वारे पूर्णरूप केवलज्ञानका परोक्ष स्वाद आवे है ऐसैं जानना। आगै इस ही अर्थरूप गाथा कहे हैं। जो कर्मके क्षयोपशमके निमित्ततैं ज्ञानमें भेद हैं। जब ज्ञानस्वरूप विचारिये, तब एक ही है ॥ गाथा—

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥१२॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च तद्भवत्येकमेव पदं ।
स एव परमार्थः, यं लब्ध्वा निर्वृतिं याति ॥१२॥

आत्मख्यातिः—आत्मा किल परमार्थः तत्तु ज्ञानं, आत्मा च एक एव पदार्थः, ततो ज्ञानमप्येकमेव पदं यदेतत्तु ज्ञानं नामैकं पदं स एष परमार्थः साक्षान्मोक्षोपायः। न चाभिनिबोधिकादयो भेदा इदमेक पदमिह भिंदंति ? किं तु तेपीदमेवैकं पदमभिनंदंति। तथाहि--यथात्र सवितुर्घनपटलावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतः प्रकाशनातिशयभेदा न तस्य प्रकाशस्वभावं भिंदंति। तथा, आत्मनः कर्मपटलोदयावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतो ज्ञानातिशयभेदा न तस्य ज्ञानस्वभावं भिंद्युः। किं तु प्रत्युतमभिनंदेयुः। ततो निरस्तसमस्तभेदमात्मस्वभावभूतं ज्ञानमेवैकमालम्ब्यं तदालंबनादेव भवति पदप्राप्तिः। नश्यति भ्रांतिः। भवत्यात्मलाभः। सिद्धत्यनात्मपरिहारः, न कर्म मूर्छति। न रागद्वेषमोहा उत्प्लवंते। न पुनः कर्म आस्रवति। न पुनः कर्म बध्यते। प्राग्बद्धं कर्म, उपभुक्तं निर्जीर्यते। कृत्स्नकर्माभावात् साक्षान्मोक्षो भवति।

अर्थ—आभिनिबोधिक कहिये मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान ए ज्ञानके भेद हैं ते एक ज्ञान ही पदकूं प्राप्त हैं—सर्व ही एक ज्ञान नाम है, सो यह परमार्थ है, शुद्धनयका विषयस्वरूप ज्ञानसामान्य है, तथा यह ही शुद्ध नय है, जिसकूं पायकरि आत्मा निर्वाण पदकूं प्राप्त होय है।

टीका—निश्चय करि आत्मा है सो परमपदार्थ है। सो आत्मा पूर्वोक्त ज्ञान है। बहुरि आत्मा है सो एक ही पदार्थ है। तातैं ज्ञान भी एक ही पदकूं प्राप्त है। बहुरि जो यह ज्ञान नामा एक पद है, सो परमार्थस्वरूप साक्षात् मोक्षका उपाय है। बहुरि मतिज्ञानादि ज्ञानके भेद हैं ते तिस ज्ञाननामा एक पदकूं भेदरूप नाहीं करे हैं—ज्ञानरूपके भेद नाहीं करे हैं, तो एकट्ठा करे हैं, इस एक ज्ञान नामा पदहीकूं वृद्धिरूप प्रगट करि प्रकाशे हैं। सो ही कहे हैं—जैसे इस लोकमें बादलेकरि संकोचरूप आच्छादित जो सूर्य, ताकै तिस बादलेके विघटनेके अनुसार करि प्रगटपणा होय है, तिसके प्रगट होनेके प्रकाशके हीनाधिकके भेद हैं ते तिसके

प्रकाशरूप सामान्य स्वभावकूं भेदे नाहीं हैं । तैसे कर्मके पटलका उदयकरि संकोच्या आच्छादित जो आत्मा, ताकै तिस कर्मका विघटन जो क्षयोपशम, ताके अनुसार करि प्रगटपणाकूं प्राप्त होताकै ज्ञानकै हीनाधिकके भेद हैं, ते तिस आत्माके सामान्यज्ञान स्वभावकूं नाही भेदे हैं, तौ कहा करे है ? उलटा प्रकाशरूप प्रगट ही करे हैं। तातैं दूर भये हैं समस्त भेद जामैं ऐसा आत्माका स्वभावभूत जो ज्ञान, तिसहीकूं एककूं आलंबन करना। तिस ज्ञानके आलंबनहीतैं निजपदकी प्राप्ति होय है। बहुरि तिसहीतैं भ्रांतीका नाश होय है। बहुरि तिसहीतें आत्माका लाभ होय है। अनात्माका परिहारकी सिद्धि होय है। ऐसैं होतैं कर्मका उदयकी मूर्च्छा नाहीं होय है, राग द्वेष मोह नाहीं उपजे हैं, राग द्वेष मोह विना फेरि कर्मका आस्रव नाहीं होय है, आस्रव न होय तब फेरि कर्मकूं नाहीं बंधे है, पूर्वे बांधे थे जे कर्म, ते भोगे हुये निर्जराकूं प्राप्त होय हैं समस्त कर्मका अभाव होय करि साक्षात् मोक्ष होय है। ऐसा ज्ञानके आलंबनका माहात्म्य है।

भावार्थ—ज्ञानमें कर्मके क्षयोपशमके अनुसार भेद भये हैं। ते किछू ज्ञानसामान्यकूं तौ अज्ञानरूप नाहीं करे है। उलटा ज्ञानकूं प्रगट ही करे हैं। तातैं भेदनिकूं गौण करि एक ज्ञान-सामान्यका आलंबन ले आत्माकूं ध्यावना, यातैं सर्वसिद्धि होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन् वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥९॥

अर्थ—जिस आत्माकी जो ए संवेदनकी व्यक्ति कहिये अनुभवमें आवत ज्ञानके भेद हैं, ते निर्मलतैं निर्मल आपै आप उछले हैं—प्रगट अनुभवमें आवे हैं। कैसी हैं ते ? निष्पीत कहिये पीया जो समस्तपदार्थनिका समूहरूप रस, ताका प्राग्भार कहिये बहुतभार ताकरि मानूं भांती

ही हैं। सो यह भगवान् चैतन्यरूप रत्नाकर समुद्र, सो उठती जे लहरी तिनिकरि आप अभिन्न है रस जाका ऐसा एक है। तौऊ अनेकरूप होता दोलायमान प्रवर्ते है। कैसा है? अद्भुत है निधि जाका।

भावार्थ—जैसा समुद्र है सो बहुत रत्ननिकरि भरया होय है, सो एक जलकरि भरया है, तौऊ तामैं निर्मल छोटी बडी अनेक लहरी उठे हैं, ते सर्व एक जलरूप ही हैं। तैसा यह आत्मा ज्ञानसमुद्र सो एक ही है, यामैं अनेक गुण हैं अर कर्मके निमित्ततैं ज्ञानके अनेक भेद आपैआप व्यक्तिरूप होय प्रगट होय हैं, ते व्यक्ति एकज्ञानरूप ही जाननी—खंडखंडरूप नाहीं अनुभव करनी। अब और विशेषकरि कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

किं च—क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१०॥

अर्थ—केई तो कठिन दुःखकरि करे जाय ऐसे मोक्षतैं पराङ्मुख कर्म तिनिकरि स्वयमेव जिनाज्ञाविना क्लेश करो, अर केई पर कहिये मोक्षके सन्मुख कथंचित् जिनाज्ञामैं कहे ऐसे महाव्रत तथा तपके भारकरि बहुतकालपर्यंत भग्न भये पीडित भये कर्मनिकरि क्लेश करो, तिनि कर्मनितैं तौ मोक्ष होय नाहीं। जातैं यह ज्ञान है, सो साक्षात् मोक्षस्वरूप है अर निरामय पद है—जामैं किछू रोगादिकका क्लेश नाहीं है अर आपही करि आप वेदनेयोग्य है। सो ऐसा ज्ञान तौ ज्ञानगुणविना कोई ही प्रकारके कष्टकरि पावनेकूं समर्थ न हूजिये है।

भावार्थ—ज्ञान है सो साक्षात् मोक्ष है, सो ज्ञानहीतैं पाइये है। अन्य किछू क्रियाकर्मकांडतैं न पाइये है। आगै इस अर्थरूप उपदेश करे हैं। गाथा—

णाणगुणेहिं विहीणा एदं तु पदं वहूवि ण लहंति।
तं गिण्ह सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥१३॥

ज्ञानगुणैर्विहीना एतत्तु पदं बहवोऽपि न लभंते ।
तद् गृहाण सुपदमिदं यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षं ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सकलेनापि कर्मणा कर्मणि ज्ञानस्याप्रकाशनात् ज्ञानस्यानुपलंभः । केवलेन ज्ञानेनैव ज्ञान एव ज्ञानस्य प्रकाशनाद् ज्ञानस्योपलंभः । ततो बहवोऽपि बहुनापि कर्मणा ज्ञानशून्या नेदमुपलभंते । इदमनुपलभमानाश्च कर्मभिर्विमुच्यंते ततः कर्ममोक्षार्थिना केवलज्ञानावष्टंभेन नियतमेवेदमेकं पदमुपलंभनीयं ।

अर्थ—हे भव्य ! जो तू कर्मका समस्तपणें मोक्ष किया चाहे है, तौ तिस ज्ञानकूं नियमकरि निश्चित ग्रहण करि । जातैं ज्ञानगुणकरि जे रहित हैं, ते बहुत भी हैं—बहुत प्रकार कर्म करे हैं, तौऊ इस ज्ञानस्वरूप पदकूं नाहीं प्राप्त होय हैं ।

टीका—जातैं समस्त ही कर्मके विषैं ज्ञानका प्रकाशना नाहीं है, तातैं ज्ञानका उपलंभ कहिये पावना, सो कर्मकरि नाहीं होय है । केवल एक ज्ञानही करि ज्ञानके विषैं ज्ञानका प्रकाशना है, तातैं ज्ञानही करि ज्ञानका पावना होय है । तातैं बहुत भी प्राणी ज्ञानकरि शून्य हैं, ते बहुत प्रकार कर्मकरि यह ज्ञानका पद नाहीं पावे हैं बहुरि इस पदकूं नाहीं पावते संते कर्मनिकरि नाहीं छूटे हैं । तातैं जो कर्मके मोक्ष करनेका अर्थी है, ताकरि केवल एक ज्ञानहीका अवलंबन करि निश्चित इस ही एकपदकूं प्राप्त होना ।

भावार्थ—ज्ञानहीतैं मोक्ष है, कर्मतैं नाहीं है । तातैं मोक्षार्थीकूं ज्ञानहीका ध्यान करना यह उपदेश है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं सहजबोधकलासुलभं किल । तत इदं निजबोधकलाबलात्कलयितुं यततां सततं जगत् ॥११॥

अर्थ—अहो भव्यजीवहो; यह ज्ञानमय पद है सो कर्मकरि तौ दुष्प्राप्य है, बहुरि स्वाभाविक-ज्ञानकी कलाकरि सुलभ है, यह प्रगटकरि निश्चय जाणौ । तातैं अपने निजज्ञानकी कलाके बलतैं इस ज्ञानका अभ्यास करनेकूं समस्त जगत् अभ्यासका यत्न करौ ।

३३२

भावार्थ--सकलकर्मकूं छुडाय ज्ञानका अभ्यास करनेका उपदेश किया है। बहुरि ज्ञानकी कला कहनेकरि ऐसा सूचै है, जो जेतैं पूर्णकला प्रगट न होय, तेतैं ज्ञान है सो हीनकलास्वरूप है--मतिज्ञानादिरूप है। तिस ज्ञानकी कलाके अभ्यासतैं पूर्णकला जो केवलज्ञान संपूर्णकला सो प्रगट होय है। आगै फेरि इस ही उपदेशकूं प्रगट विशेषकरि कहे हैं। गाथा--

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥१४॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तः तर्हि भविष्यति तवोत्तमं सौख्यं ॥१४॥

आत्मख्यातिः---एतावानेव सत्य आत्मा यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्र एव नित्यमेव रतिमुपैहि। एतावत्येव सत्याशीः, यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव संतोषमुपैहि। एतावदेव सत्यमनुभवनीयं यावदेव ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव तृप्तिमुपैहि। अथैवं तव तन्नित्यमेवात्मरतस्य, आत्मसंतुष्टस्य, आत्मतृप्तस्य च वाचामगोचरं सौख्यं भविष्यति। तत्तु तत्क्षण एव त्वमेव स्वयमेव द्रक्ष्यसि मा अन्यान् प्राक्षीः।

अर्थ—भो भव्य प्राणी ! तू इस ज्ञानविषैं नित्य सदाकाल रत होउ--रुचिरूप लीन होऊ। बहुरि इसही विषैं नित्य संतुष्ट होऊ, अन्य किछू कल्याणकारी है नाहीं। बहुरि इसही विषैं तृप्त होऊ अन्य किछू चाहि रहे नाहीं ऐसा अनुभव करि। ऐसे किये तेरे उत्तम सुख होयगा।

टीका--हे भव्य ! एतावन्मात्र ही सत्य परमार्थस्वरूप आत्मा है, जेता यह ज्ञान है। ऐसा निश्चय करिकै ज्ञानमात्र ही आत्माविषैं निरंतर रति प्रीति रुचिकूं प्राप्त होऊ। बहुरि एतावन्मात्र ही सत्यार्थ कल्याण है, जेता यह ज्ञान है। ऐसा निश्चय करिके ज्ञानमात्र ही आत्माकरि नित्य ही संतोषकूं प्राप्त होऊ, नित्य ही तृप्तिकूं प्राप्त होऊ। बहुरि एतावन्मात्र ही सत्यार्थ अनुभवन करने योग्य है, जेता यह ज्ञान है, ऐसा निश्चय करिकै ज्ञानमात्र ही आत्माकरि नित्य ही तृप्तिकूं

प्राप्त होऊ । ऐसे नित्य ही आत्माविषैं रत, आत्माविषैं संतुष्ट, आत्माविषैं तृप्त जो तू, ताकै ऐसे निरंतर होनेतैं लगता ही वचनके अगोचर नित्य उत्तम सुख होयगा । तिस सुखकूं तिस ही काल स्वयमेव ही देखेगा । अन्यकूं मति पूछै, यह सुख आपके अनुभवगोचर ही है, परकूं काहेकूं पूछै ?

भावार्थ—ज्ञानमात्र आत्माविषैं लीन होना याहीतैं संतुष्ट रहना याहीतैं तृप्त होना, यह परमध्यान है, याहीतैं वर्तमान आनन्दरूप होय है, अर लगता ही सम्पूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप केवल ज्ञानकी प्राप्ति होय है । इस सुखकूं ऐसे करनेवाला ही जाने है । अन्यका यामैं प्रवेश नाहीं । अब इसकी महिमाकूं अगिले कथनकी सूचनारूप कलशरूप काव्य कहे हैं ।

उपजातिच्छन्दः

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेव यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१२॥

कुतो ज्ञानी न परं गृह्णाति इति चेत्—

अर्थ—जातैं यह चैतन्यमात्र ही है चिन्तामणि जाकै ऐसा ज्ञानी है । सो स्वयमेव आप देव है । कैसा है ? अचिन्त्य कहिये काहूके चितवनमें न आवै ऐसी है शक्ति जामैं । सो ऐसा ज्ञानी सर्व प्रयोजन जाकै सिद्ध हैं । ऐसे स्वरूप भया अन्यके परिग्रह करि कहा करै ? किछू ही करना नहीं ।

भावार्थ—यह ज्ञानमूर्ति आत्मा अनंतशक्तिका धारक वांछित कार्यकी सिद्धि करनेवाला आप ही देव है । तातैं सर्व प्रयोजनके सिद्धपणाकरि ज्ञानीके अन्य परिग्रहके सेवनेकरि कहा साध्य है ? यह निश्चयनयका उपदेश जानू । आगै पूछे हैं, जो ज्ञानी परकूं काहेतैं नाहीं परिग्रहण करे है ? ताका उत्तर कहे है । गाथा—

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं ममभिदं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥१५॥

को नाम भणेद् बुधः परद्रव्यं ममेदं भवति द्रव्यं ।
आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियतं विजानन् ॥१५॥

आत्मख्यातिः—यतो हि ज्ञानी योहि यस्य स्वो भावः स तस्य स्वः सतस्य स्वामीति खरतरतत्त्वदृष्ट्यवष्टंभात्, आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियमेन जानाति । ततो न ममेदं स्वं नाहमस्य स्वामी इति परद्रव्यं न परिगृह्णाति । अतोहमपि न तत्परिगृह्णामि ।

अर्थ—ज्ञानी पंडित है सो ऐसा कौन है ? जो यह परद्रव्य है सो मेरा द्रव्य है ऐसे कहे । ज्ञानी तौ न कहे । कैसा है ज्ञानी पंडित ? अपना आत्मा हीकूं नियमकरि अपना परिग्रह जानता संता प्रवर्तें है ।

टीका—जातैं जो ज्ञानी है सो नियमकरि ऐसे जाने है जो जाका स्वभाव है, सोही ताका स्व है, धन है, द्रव्य है । बहुरि तिसही स्वभावरूप द्रव्यका वह स्वामी है । ऐसैं सूक्ष्म तीक्ष्ण तत्त्वदृष्टिकरि अवलंबनेतैं, आत्माका परिग्रह अपना आत्मस्वभाव ही है ऐसैं जाने है । तातैं परद्रव्यकूं ऐसा जाने है—जो यह मेरा स्व नाहीं, मैं याका स्वामी नाहीं, यातैं परद्रव्यकूं अपना परिग्रह नाहीं करै । तातैं मैं भी ज्ञानी हौं । सो परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करो हौं ।

भावार्थ—लोकमें यह रीति है, जो समझवार स्याणा मनुष्य है, सो परकी वस्तूकूं अपनी नाहीं जाने, ताकूं ग्रहण करे नाहीं । तैसे ही परमार्थ ज्ञानी अपना स्वभावहीकूं अपना धन जाने, परका भावकूं अपना जाने नाही, ताकूं ग्रहण न करे है । ऐसा ज्ञानी है सो परका ग्रहण सेवन नाही करे है । आगे इसही अर्थकूं युक्तिकरि दृढ करे हैं । गाथा—

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीविदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥१६॥

मम परिग्रहो यदि ततोऽहमजीवतां तु गच्छेयं ।
ज्ञातैवाहं यस्मात्तस्मान्न परिग्रहो मम ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यदि परद्रव्यमहं परिगृण्हीयां तदावश्यमेवाजीवो ममासौ स्वः स्यात् । अहमप्यवश्यमेवाजीवस्यामुष्य स्वामी स्यां । अजीवस्य तु यः स्वामी स किलाजीवः । एवमवशेनापि ममाजीवत्वमापद्येत । मम तु एको ज्ञायक एव भावः, यः स्वः, अस्यैवाहं स्वामी, ततो माभून्ममाजीवत्वं ज्ञातैवाहं भविष्यामि, न परद्रव्यं परिगृण्हामि, अयं च मे निश्चयः ।

अर्थ—ज्ञानी ऐसे जाने है, जो मेरे परद्रव्य परिग्रह होय, तौ मैं भी अजीवपणाकूं प्राप्त होय जाऊं । जातैं मैं तो ज्ञाता ही हौं, तातैं मेरे किछू परिग्रह नाहीं है ।

टीका—जो अजीव परद्रव्यकूं मैं परिग्रहण करो, तौ अजीव मेरा अवश्य स्व होय । वहुरि मैं भी उस अजीवका अवश्य स्वामी ठहरौं । जातैं यह न्याय है जो अजीवका स्वामी निश्चय करि होय, सो अजीव ही होय । ऐसैं मेरा अजीवपणा अवश्य आय पडे है । तातैं मेरा तौ एक ज्ञायक भाव ही है, सो मेरा जो स्व है, तिसहीका मैं स्वामी हौं । तातैं मेरे अजीवपणा मति होऊ, मैं तो ज्ञाता ही होऊंगा, परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करूंगा, मेरा यह निश्चय है ।

भावार्थ—निश्चयनयकरि यह सिद्धांत है, जो जीवका तौ भाव जीव ही है, तिनहीकरि जीवकै स्व-स्वामी संबंध हे । बहुरि अजीवका भाव अजीव ही है, तिनही करि अजीवकै स्व-स्वामी संबन्ध है । सो जीवकै अजीवका परिग्रह मानिये तौ जीव अजीवताकूं प्राप्त होय । तातैं जीवकै अजीवका परमार्थतैं परिग्रह मानना मिथ्याबुद्धि है । तातैं ज्ञानीकै यह मिथ्याबुद्धि होय नाहीं । ज्ञानी तौ ऐसे मानैं है जो परद्रव्य मेरे परिग्रह नाहीं, मैं तौ ज्ञाता हौं । आगे कहे हैं, जो ऐसें मानते ज्ञानीकैं परद्रव्यके बिगडने सुधरनेविषैं समता है । गाथा ॥

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ॥१७॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां अथवा यातु विप्रलयं।
यस्मात्तस्माद् गच्छतु तथापि न परिग्रहो मम ॥१७॥

आत्मख्यातिः-छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वा विप्रलयं यातु वा यतस्ततो गच्छतु वा तथापि न परद्रव्यं परिगृह्णामि। यतो न परद्रव्यं मम स्वं नाहं परद्रव्यस्य स्वामी। परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वं परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वामी। अहमेव मम स्वं अहमेव मम स्वामीति जानाति।

अर्थ—ज्ञानी ऐसे विचारे, जो परद्रव्य है, सो छिदि जावो अथवा भिदि जावो अथवा कोई ले जावो अथवा नष्ट हो जावो विनशि जावो जिस तिस कारणतैं जावो, तौऊ निश्चयकरि मेरा परद्रव्य परिग्रह नाहीं है।

टीका—परद्रव्य छिदो वा भिदो, वा कोई ल्यो, वा प्रलय हो जावो, वा जिस तिस कारणतैं जावो, तौऊ मैं परद्रव्यकूं परिग्रहण नाहीं करौ हौं। जातै परद्रव्य मेरा स्व नाहीं, मैं परद्रव्यका स्वामी नाहीं। परद्रव्य ही परद्रव्यका स्व है, परद्रव्य ही परद्रव्यका स्वामी है। मैं ही मेरा स्व हौं, मैं ही मेरा स्वामी हौं ऐसैं जानू हौं।

भावार्थ—ज्ञानीकै परद्रव्यका बिगडने सुधरनेका हर्षविषाद नाही है। अब इस अर्थका कलशरूप तथा अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम्।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद् भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥ १३ ॥

अर्थ—याप्रकार परिग्रहकूं सामान्यकरि समस्तहीकूं छोडिकरि, अब आप अर परका अविवेकका

कारण अज्ञानकूं छोडनेका है मन जाका, ऐसा जो यह ज्ञानी, सो तिस परिग्रहकूं विशेषकरि न्यारा न्यारा परिहार करनेकूं फेरि प्रवर्तै है।

भावार्थ—जातैं स्वपरका एकरूप जाननेका कारण अज्ञान है, ताहीतैं परद्रव्यका परिग्रहण है। तातैं ज्ञानीकै पहिली गाथामैं तो परिग्रहका सामान्यकरि त्याग करना कह्या। अब आगे अज्ञानके छोडनेकूं विशेषकरि न्यारा न्यारा नाम लेकरि त्याग करना कह्या है। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणीय णिच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥१८॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति धर्म्मं।
अपरिग्रहस्तु धर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥१८॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो न भवति, ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति, ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावाद् धर्मं नेच्छति। तेन ज्ञानिनो धर्मपरिग्रहो नास्ति। ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावाद् धर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात्।

अर्थ—ज्ञानी है सो परिग्रह रहित है, जातैं अनिच्छ कहिये परिग्रहकी इच्छा रहित है, ऐसा कह्या है। तातैं धर्मकूं नाहीं इच्छे है। तातैं धर्मका अपरिग्रह ही है, तिस धर्मका ज्ञानी ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है, जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छे है सो अज्ञानमय भाव है. अज्ञानमय भाव है सो ज्ञानीकै नाहीं है, ज्ञानीकै तौ ज्ञानमय ही भाव है। तातैं ज्ञानी है, सो अज्ञानमयभाव जो इच्छा, ताके अभावतैं धर्मकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारण करि ज्ञानीकै धर्मपरिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव, ताके

सद्भावतैं धर्मका केवल ज्ञाता ही यह ज्ञानी है। आगे ऐसे ही ज्ञानीकै अधर्मपरिग्रह नाहीं है ऐसैं कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणीय णिच्छदि अहम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥१९॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यधर्मं।
अपरिग्रहोऽधर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥१९॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः। अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति। ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् अधर्मं नेच्छति, तेन ज्ञानिनः अधर्मपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादधर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात्। एवमेव चाधर्मपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशाऽन्यान्यप्यूह्यानि।

अर्थ—ज्ञानी इच्छारहित है, यातैं परिग्रह रहित कह्या है। याहीतैं ज्ञानी है सो अधर्मकूं नाहीं इच्छे है, तातैं अधर्मका परिग्रह याकै नाहीं है। तिस कारणकरि सो ज्ञानी तिस अधर्मका ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है। जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, अज्ञानमय भाव ज्ञानीकै नाहीं है, ज्ञानीकै तौ ज्ञानमय ही भाव है। तातैं ज्ञानी अज्ञानमय भाव जो इच्छा ताके अभावतैं अधर्मकूं नाहीं इच्छे है। तातैं ज्ञानीकै अधर्मका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव ताके सद्भावतैं यह ज्ञानी अधर्मका केवल ज्ञायक ही है। ऐसे ही गाथामैं अधर्मपद है, ताके पद पलटनेकरि अर अधर्मकी जायगां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ए सोलह पद धरि सोलह गाथासूत्र करि व्याख्यान करना। इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारने।

आगे ज्ञानीकै आहार करना भी परिग्रह नाहीं है यह कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं तु णिच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२०॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितोऽशनं च नेच्छति ज्ञानी ।
अपरिग्रहस्त्वशनस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥२०॥

आत्मख्यातिः—इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति । ततो ज्ञानी, अज्ञानमस्य भावस्य इच्छाया अभावात्, अशनं नेच्छति तेन ज्ञानिनोऽशनपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादशनस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात् ।

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नाहीं है इसलिये नाहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

धम्मच्छि अधम्मच्छी आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु ।
संगं च तहा णेयं देवमणुअत्तिरियणेरइयं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—अपरिग्रहो भणितः कोऽसौ ? अनिच्छः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु आकांक्षा नास्ति तेन कारणेन परतत्त्वज्ञानी चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं विहाय धर्माधर्माकाशाद्यंगपूर्वगतश्रुतवाह्याभ्यंतरपरिग्रहदेवमनुष्यतिर्यङ्नरकादिविभावपर्यायान्नेच्छति इति ज्ञेयं ज्ञातव्यं । ततः कारणात्तद्विषये निष्परिग्रहो भूत्वा तद्रूपेणापरिणमन् सन् दर्पणे बिम्बस्येव ज्ञायक एव भवति ।

अर्थ—जिसके इच्छा नहीं है उसके परिग्रह भी नहीं है इसलिये तत्त्वज्ञानी अपने चिदानन्द स्वभाववाले शुद्धात्माको छोडकर धर्म अधर्म आकाशादि परद्रव्य तथा अङ्गपूर्वगत श्रुत वाह्याभ्यंतर परिग्रह देव मनुष्य तिर्यंच नरक आदि विभाव पर्यायोंको नहीं चाहता है इसलिये वह उनका ज्ञाता ही है, परिग्रही नहीं।

अर्थ—इच्छा रहित होय सो परिग्रहरहित है ऐसें कह्या है। बहुरि ज्ञानी है सो अशन कहिये भोजन, ताकूं नाहीं इच्छे है। तातैं ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। तिस कारणकरि ज्ञानी अशनका ज्ञायक ही है।

टीका—इच्छा है सो परिग्रह है, सो जाकै इच्छा नाहीं ताकै परिग्रह नाहीं। बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, सो ज्ञानीकै अज्ञानमय भाव नाहीं है। जातैं ज्ञानीकै तो ज्ञानमय ही भाव है, तातैं ज्ञानी है सो अज्ञानमयभाव जो इच्छा, ताके अभावतैं अशनकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारणकरि ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय ही भाव है, तातैं ज्ञानी है सो अज्ञानमय भाव जो इच्छा, ताके अभावतैं अशनकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारणकरि ज्ञानीकै अशनका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायक भाव, ताके सद्भावतैं यह ज्ञानी केवल अशनका ज्ञायक ही है।

भावार्थ—ज्ञानीकै आहारकी भी इच्छा नाहीं है, तातैं ज्ञानीकैं आहार करना भी परिग्रह नाहीं है। इहां प्रश्न—जो आहार तौ मुनी भी करै है, ताकै इच्छा है की नाहीं? विना इच्छा आहार कैसे करै? ताका समाधान—जो असातावेदनीय कर्मके उदयतैं तो जठराग्निरूप क्षुधा उपजे है अर वीर्यांतरायके उदयकरि ताकी वेदना सही नाहीं जाय है अर चारित्रमोहके उदयकरि ग्रहणकी इच्छा उपजे है। सो इस इच्छाकूं कर्मका उदयका कार्य जाने है, तिस इच्छाकूं रोगवत् जानि मेटया चाहे हैं। इच्छातैं अनुरागरूप इच्छा नाहीं है, ऐसी इच्छा नाहीं है जो मेरी यह इच्छा सदा रहौ। तातैं अज्ञानमय इच्छाका अभाव है। परजन्य इच्छाका स्वामीपणा ज्ञानीकै नाहीं है। तातैं इच्छाका भी ज्ञानी ज्ञायक ही है। ऐसा शुद्धनयकूं प्रधानकरि कथन जानना। आगै पानका भी परिग्रह ज्ञानीकै नाहीं है ऐसें कहे हैं। गाथा—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाणं च णिच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१॥

अपरिग्रहो अनिच्छो भणितः पानं च नेच्छति ज्ञानी ।

अपरिग्रहस्तु पानस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥२१॥

आत्मख्यातिः--इच्छा परिग्रहः, तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छा त्वज्ञानमयो भावः अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति। ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति। ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् पानं नेच्छति। तेन ज्ञानिनः पानपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावात् केवलं पानकस्य ज्ञायक एवायं स्यात्।

अर्थ--इच्छा रहित है सो परिग्रहरहित कह्या है। बहुरि ज्ञानी है सो पान कहिये जल आदिक पीवना, ताकूं इच्छे नाहीं है। तातैं पानका परिग्रह ज्ञानीके नाहीं है। तिस कारणकरि ज्ञानी पानका ज्ञायक ही है।

टीका--इच्छा है सो परिग्रह है। जाके इच्छा नाहीं ताके परिग्रह भी नाहीं। बहुरि इच्छा है सो अज्ञानमय भाव है, सो ज्ञानीके अज्ञानमय भाव नाहीं है, ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है तातैं ज्ञानी अज्ञानमय भाव जो इच्छा, ताके अभावतैं पानकूं नाहीं इच्छे है। तिस कारण-करि ज्ञानीके पानका परिग्रह नाहीं है। ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव ताके सद्भावतैं यह ज्ञानी पानका केवल ज्ञायक ही है।

भावार्थ--आहारवत् जानना। आगे कहे हैं, जो ऐसे ही अन्य जे अनेक प्रकार परजन्य भाव, तिनिकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है। गाथा--

इच्चादु एदु विविहे सव्वे भावेय णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंवोय सव्वत्थ ॥२२॥

इत्यादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावान्नेच्छति ज्ञानी ।
ज्ञायकभावो नियतः निरालंबश्च सर्वत्र ॥२२॥

आत्मख्यातिः—एवमादयोऽन्येऽपि बहुप्रकाराः परद्रव्यस्य ये भावास्तान् सर्वानेव नेच्छति ज्ञानी तेन ज्ञानिनः सर्वेषामपि परद्रव्यभावानां परिग्रहो नास्ति इति सिद्धं ज्ञानिनोऽत्यंतनिष्परिग्रहत्वं । अथैवमयमशेषभावांतरपरिग्रहशून्यत्वात् उद्वांतसमस्ताज्ञानः सर्वत्राप्यत्यंतनिरालंबो भूत्वा प्रतिनियतटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावः सन् साक्षाद्विज्ञानघनमात्मानमनुभवति ।

अर्थ—इस प्रकारकूं आदि लेकरि अनेक प्रकारके जे सर्वभाव, तिनिकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है । जातैं नियमकरि आप ज्ञायकभाव है, तातैं सर्वविषैं निरालंब है ।

टीका—याही पूर्वोक्त प्रकारकूं आदि लेकरि अन्य भी बहुत प्रकार परद्रव्यके जे स्वभाव हैं, तिनि सर्वहीकूं ज्ञानी नाहीं इच्छे है । तिस कारणकरि ज्ञानीकै सर्व ही परद्रव्यनिके भावनिका परिग्रह नाहीं है । ऐसैं ज्ञानीका अत्यंत निष्परिग्रहपणा सिद्ध भया । अब याप्रकार यह ज्ञानी समस्त अन्य भावनिका परिग्रहका परिग्रह करि शून्यपणातैं बम्या है उगल्या है समस्त अज्ञान जानैं ऐसा भया संता सर्वत्र अतिनिरालंबन स्वरूप होय करि न्यारा ही एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव भया संता साक्षात् विज्ञानघन आत्माकूं अनुभवे है ।

भावार्थ—पूर्वोक्त प्रकार आदि लेकरि सर्व ही अन्य भावनिका ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं है । जातैं सर्व ही परभावनिकूं हेय जानै, तब तिनकी प्राप्तिकी इच्छा नाहीं । उदय आयेकूं अनासक्त भया भोगवे है । संसार देह भोगनिसूं रागरूप इच्छा विना परिग्रहका अभाव कह्या है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

स्वागताछन्दः

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात् ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात् नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४॥

अर्थ—ज्ञानीकै जो पूर्वै बंधे अपने कर्मका विपाक कहिये उदयतैं उपभोग होय है, सो होऊ। परंतु रागके वियोगतैं निश्चयतैं सो उपयोग परिग्रह भावकूं नाहीं प्राप्त होय है।

भावार्थ—पूर्वै बांधे कर्मका उदय आवै तब उपभोग सामग्री प्राप्त होय, ताकूं अज्ञानमय रागभाव करि भोगवै, तब तौ सो परिग्रह भावकूं प्राप्त होय सो ज्ञानीकै अज्ञानमय रागभाव नाहीं है। उदय आया है, ताकूं भोगवे है। यह जाने है—जो पूर्वै बांध्या था सो उदय आय गया, पिंड छूट्या, आगामी नाहीं वांछू हौं, ऐसैं तिनिसूं रागरूप इच्छा नाहीं तब ते परिग्रह भी नाहीं। आगै ज्ञानीकै तीनकालगत परिग्रह नाहीं है ऐसे कहे हैं। गाथा--

उप्पण्णोदयभोगे विओगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ॥२३॥

उत्पन्नोदयभोगे वियोगबुद्ध्या तस्य स नित्यं।
कांक्षामनागतस्य चोदयस्य न करोति ज्ञानी ॥२३॥

आत्मख्यातिः—कर्मोदयोपभोगस्तावत् अतीतः प्रत्युत्पन्नो नागतो वा स्यात्। तत्रातीतस्तावत अतीतत्वादेव सन् परिगृहभावं विभर्ति। अनागतस्तु आकांक्ष्यमाण एव परिगृहभावं विभृयात्। प्रत्युत्पन्नस्तु स किल रागबुद्ध्या प्रवर्तमान एव तथा स्यात्। न च प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनो रागबुद्ध्या प्रवर्तमानो दृष्टः, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्य रागबुद्धेरभावात्। वियोगबुद्ध्यैव केवलं प्रवर्तमानस्तु स किल न परिगृहः स्यात्। ततः प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिगृहो न भवेत्। अनागतस्तु स किल ज्ञानिनो न कांक्षित एव, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्याकांक्षाया अभावात्। ततो नागतोऽपि कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिगृहो न भवेत्।

अर्थ—उत्पन्न भया वर्तमानकालका उदयका भोग, सो तौ तिस ज्ञानीकै निरंतर वियोगकी बुद्धिकरि वर्ते है। तातैं परिग्रह नाहीं है। बहुरि अनागत जो आगामी काल, तिसविषैं उदय होयगा, ताकी ज्ञानी वांछा नाहीं करे है, तातैं परिग्रह नाहीं है। बहुरि अतीतकालका वीति ही

गया सो यह विना कह्या सामर्थ्यतैं ही ज्ञानीयें याकै परिग्रह नाहीं, गयेकी वांछा ज्ञानीकै कैसीं होय ?

टीका—कर्मका उदयका उपभोगना तीन प्रकार है। अतीतकालका, प्रत्युत्पन्न कहिये वर्तमान कालका, अनागत कहिये आगामी कालका ऐसे। तहां अतीतकालका तौ वीति ही गया, सो गया सो गया। यातैं ज्ञानी परिग्रहभावकूं नाहीं धारे है। बहुरि अनागत जो आगामी कालमैं आवेगा, सो ताकी वांछा करै, तब परिग्रहभावकूं धारै, सो ज्ञानीकै आगामी वांछा नाहीं, तातैं परिग्रहभावकूं नाहीं धारे है। जिस कर्मकूं ज्ञानी अपनी अहित जान्या, ताके उदयके भोगकी आगामी वांछा काहेकूं करै ? बहुरि प्रत्युत्पन्न कहिये वर्तमानका उपभोग है, सो रागबुद्धि करि प्रवर्तमान होय तौ परिग्रहभावकूं धारै। सो ज्ञानीकै वर्तमानका उपभोग रागबुद्धि करि प्रवर्तमान नाहीं दीखे है। जातैं ज्ञानीकै अज्ञानमयभाव जो रागबुद्धि ताका अभाव है। बहुरि केवल वियोगबुद्धि ही करि प्रवर्तमान होय, सो निश्चय करि परिग्रह नाहीं है। जातैं ज्ञानीकी यह बुद्धि है—जो जाका संयोग भया, ताका वियोग अवश्य होयगा। तातैं विनाशीकतै प्रीति न करनी। तातैं वर्तमान कर्मका उदयका उपभोग है, सो ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं है। बहुरि अनागत आगामी कर्मका उदयकूं नाहीं वांछता जो ज्ञानी ताकै सो अनागत उपभोग परिग्रह नाहीं है। जातैं ज्ञानीकै अज्ञानमयभावरूप जो वांछा, ताका अभाव है। तातैं अनागत भी कर्मका उदयका उपभोग ज्ञानीकै परिग्रह नाहीं होय।

भावार्थ—अतीत तौ गया ही है, अनागतकी वांछा नाहीं, वर्तमानका विषैं राग नाहीं है ये जानै ताविषै राग कैसा होय ? तातैं ज्ञानीकै तीनू ही काल सम्बन्धी कर्मका उदयका भोगना परिग्रह नाहीं। वर्तमानके कारण मिलावे है सो पीडा न सही जाय, ताका इलाज रोगवत् करे है। यह निबलाईका दोष है।

कुतोऽनागतं ज्ञानी नाकांक्षतीति चेत्—

आगे पूछे है, अनागत कालका कर्मका उदयकूं ज्ञानी काहेतें नाहीं वांछे है ? :ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयमवि ण कंखदि कयावि ॥२४॥

यो वेदयते वेद्यते समये समये विनश्यत्युभयं।
तद् ज्ञायकस्तु ज्ञानी, उभयमपि न कांक्षति कदाचित् ॥२४॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि तावद् ध्रुवत्वात् स्वभावभावस्य टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावो नित्यो भवति यौ तु वेद्यवेदकभावौ तौ तूत्पन्नप्रध्वंसित्वाद्विभावभावानां क्षणिकौ भवतः। तत्र यो भावि कांक्षमाणं वेद्यभावं वेदयते स यावद् भवति तावत्कांक्षमाणो भावो विनश्यति। तस्मिन् विनष्टे वेदको भावः किं वेदयते ? यदि कांक्षमाणवेद्यभावपृष्ठभाविनमन्यं भावं वेदयते तदा तद्भवनात्पूर्वं विनश्यति कस्तं वेदयते ? यदि वेदकभावपृष्ठभावी भावोन्यस्तं वेदयते तदा तद्भवनात्पूर्वं स विनश्यति। किं स वेदयते ? इति कांक्ष्यमाणभाववेदनानवस्था तां च विजानन् ज्ञानी न किंचिदेव कांक्षति।

अर्थ—जो अनुभव करनेवाला भाव, सो वेदकभाव कहिये। बहुरि जो अनुभवन करनेयोग्य भाव, सो वेद्यभाव कहिये। सो ऐसे वेदक अर वेद्य ये दोय भाव आत्माके होय हैं। सो अनुक्रम करि होय है, एककाल होय नाहीं, सो दोऊ ही समय समय विषैं विनशि जाय है, अर आत्मा दोऊ भावनिविषैं नित्य है। तातैं ज्ञानी आत्मा दोऊ भावनिका ज्ञायक है जाननेवाला ही है। इनि दोऊ ही भावनिकूं ज्ञानी कदाचित् भी नाहीं वांछे है।

टीका—ज्ञानी है सो तौ "अपना स्वभावभावकै ध्रुवपणा है" तातैं टंकोत्कीर्ण एकज्ञानस्वरूप नित्य है। बहुरि जो वेदना करनेवाला अर वेदने योग्य ऐसे दोय वेदक अर वेद्यभाव हैं ते उपजना अर विनसनारूप हैं। जातैं विभावभाव हैं, तिनिकै क्षणिकपणा है, तातैं दोऊ भाव

विनासीक क्षणिक हैं। तहां विचारिये है, जो वेदकभाव है सो आगामी वांछामैं लेनेयोग्य वेद्यभाव ताकूं अनुभवन करे। यहू जेतैं उपजे तेतैं वेद्यभाव नष्ट होय जाय—विनसि जाय। ताकूं विनाश होतैं वेदकभाव है सो कौनकूं वेदे–अनुभवन करै? बहुरि जो इहां ऐसे कहिये, जो वांछामैं आवता जो वेद्यभाव ताके पीछे होगा जो अन्य वेद्यभाव ताकूं वेदे है। तौ तिसके होनेके पहले ही सो वेदकभाव विनसि जाय, तब तिस वेद्यभावकूं कौन वेदे? बहुरि फेरि कहे, जो वेदकभावके पीछे होगा जो अन्य वेदकभाव सो तिस वेद्यभावकूं वेदेगा। तौ तिस वेदकभाव होनेके पहले सो वेद्यभाव विनसि जाय, तब सो वेदकभाव कौनसे भावकूं वेदे? ऐसे कांक्षमाणभाव जो वेदनाकी वांछामैं आवता भाव, ताकै अनवस्था है, कहूं ठहरना नाहीं। तिस अनवस्थाकूं जानता संता ज्ञानी किछू भी नाहीं वांछे है।

भावार्थ—वेदकभाव तो वेदनेवाला अर वेद्यभाव जाकूं वेदिए सो, इनि दोऊके कालभेद है। जब वेदकभाव होय तब वेद्यभाव होय नाहीं अर वेद्यभाव होय तब वेदकभाव होय नाहीं। ऐसैं होतैं वेदकभाव आवै तब वेद्यभाव विनसि जाय, तब वेदकभाव कोनकूं वेदे? अर वेद्यभाव आवे तब वेदकभाव विनसि जाय, तब वेदकभाव विना वेद्यकूं कौन वेदे? तातैं ज्ञानी दोऊकूं विनाशीक जाणि आप जाननेवाला ही रहे है। इहां प्रश्न—जो आत्मा तौ नित्य है, सो दोऊ भावनिकूं वेदनेवाला क्यौं न कहो? ताका समाधान–जे वेद्यवेदकभाव तौ विभाव हैं, आत्माका स्वभाव तौ हैं नाहीं, सो जाकी वांछा करी ऐसा वेद्यभाव जेतैं वेदकभाव आया तेतैं नष्ट होय गया। ऐसैं वांछितभोग तौ भया ही नाहीं। तातैं ज्ञानी निष्फल वांछा काहेकूं करे? मनोवांछित होय नाहीं, तब वांछा करना अज्ञान है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

स्वागताछन्दः

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्वेद्यते न खलु काङ्क्षितमेव।
तेन काङ्क्षति न किञ्चन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

तथाहि—

अर्थ—वेद्य वेदकभाव हैं ते कर्मके निमित्ततैं होय हैं। तातैं ते स्वभाव नाहीं, विभाव हैं, बहुरि चलायमान हैं, समयसमय विनसे हैं। तातैं वांछित भावकूं नाहीं वेदिये हैं। तिस कारण-करि विद्वान् ज्ञानी है सो किछू भी आगामी भोग नाहीं वांछे है। सर्वहीतैं अतिविरक्तभाव वैराग्यभावकूं प्राप्त है।

भावार्थ—अनुभवगोचर जो वेद्यवेदक विभाव तिनिहीके कालभेद है, तातैं मिलाप नाहीं, विधि मिले नाहीं तव आगामी वहुत कालसंवंधी वांछा ज्ञानी काहेकूं करे? आगे 'ऐसे सर्व ही उपभोगतैं ज्ञानीकै वैराग्य है' सो ही कहे हैं। गाथा—

वंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥२५॥

वंधोपभोगनिमित्तेषु अध्यवसानोदयेषु ज्ञानिनः।
संसारदेहविषयेषु नैवोत्पद्यते रागः ॥२५॥

आत्मख्यातिः—इह खल्वध्यवसानोदयाः कतरेऽपि संसारविषयाः, कतरेपि शरीरविषयाः। तत्र यतरे संसार-विषयाः, ततरे बंधनिमित्ताः। यतरे शरीरविषयास्ततरे तूपभोगनिमित्ताः। यतरे बंधनिमित्तास्ततरे रागद्वेषमोहाद्याः यतरे तूपभोगनिमित्तास्ततरे सुखदुःखाद्याः। अथामीषु सर्वेष्वपि ज्ञानिनो नास्ति रागः। नानाद्रव्यस्वभावत्वेन टङ्कोत्कीर्णकज्ञायकभावस्वभावस्य तस्य तत्प्रतिषेधात्।

अर्थ—बंधके अर उपभोगके निमित्त जे अध्यवसानके उदय, ते संसारविषय अर देहविषय हैं, तिनिविषैं ज्ञानीकै राग नाहीं उपजे है।

टीका—इस लोकविषैं निश्चयकरि जे अध्यवसानके उदय हैं, ते केतेएक तौ संसारविषय हैं बहुरि केतेएक शरीरविषय हैं। तहां जेते संसारविषय हैं, तेते तौ बंधके निमित्त हैं, बहुरि जेते

शरीरविषय हैं, तेते उपभोगके निमित्त हैं। तहां जेते बंधके निमित्त हैं, तेते तौ राग द्वेष मोह आदिक हैं, बहुरि जेते उपभोगके निमित्त हैं, तेते सुखदुःखादिक हैं। अब कहे हैं, जो इनि सर्वहीविषैं ज्ञानीकैं राग नाहीं है। जातैं अध्यवसान है सो नानाद्रव्यका स्वभाव है। तिसपणाकरि तिस ज्ञानीके एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावकै तिनिका प्रतिषेध है।

भावार्थ—संसारदेहभोगसंबंधी राग द्वेष मोह सुखदुःखादिक अध्यवसानके उदय हैं, ते नानाद्रव्य जे पुद्गलद्रव्य तथा जीवद्रव्य ऐसे संयोगरूप भये तिनिके स्वभाव हैं। अर ज्ञानीका एक ज्ञायकस्वभाव है, तातैं ज्ञानीकै तिनिका प्रतिषेध है, तातैं ज्ञानीकै तिनिविषैं राग प्रीति नाहीं है। परद्रव्य परभाव संसारमैं भ्रमणके कारण हैं, तिनितैं प्रीति करे, तौ ज्ञानी काहेका ? इस अर्थका कलशरूप तथा अगिले कथनकी सूचनिकाके श्लोक हैं।

स्वागताछन्दः

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्म रागरसरिक्ततयैति
रागयुक्तिरकषायितवस्त्रे स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥१६॥

अर्थ--ज्ञानि तिनि परिग्रहभावनिकरि रिक्त है रहित है अर ज्ञानी रागरूपी रसकरि भी रिक्त है रहित है। तिसपणाकरि कर्म है सो परिग्रह भावकूं नाहीं प्राप्त होय है। जैसे लोद फिटकडी करि कसायला न किया जो वस्त्र ताविषैं रंगका लगना है, सो अंगीकार न भया संता बाह्य ही लुठे है, वस्त्रमाहि प्रवेश नाहीं करे है।

भावार्थ—जैसैं लोद फिटकडी लगाये विना वस्त्रकैं रंग चढे नाहीं, तैसे ज्ञानीकै रागभावविना कर्मका उदयका भोग नाहीं, सो परिग्रहपणाकूं नाहीं प्राप्त होय है। फेरि कहे हैं—

स्वागताछन्दः

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्सर्वरागरसवर्जनशीलः।
लिप्यते सकलकर्मभिरेष कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१७॥

अर्थ—जातैं ज्ञानवान् है सो अपने निजरसहीतैं सर्व रागरसकरि वर्जित स्वभाव है। तातैं कर्मके मध्य पड्या है तौऊ समस्तकर्मकरि नाहीं लिपे है। आगे इस ही अर्थका व्याख्यान गाथामैं करे हैं। गाथा--

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥२६॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥२७॥

ज्ञानी रागप्रहायः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
नो लिप्यते कर्मरजसा तु कर्दममध्ये यथा कनकं ॥२६॥
अज्ञानी पुनारक्तः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
लिप्यते कर्मरजसा कर्दममध्ये यथा लोहं ॥२७॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु कनकं कर्दममध्यगतमपि कर्दमेन न लिप्यते तदलेपस्वभावत्वात् तथा किल ज्ञानी कर्ममध्यगतोऽपि कर्मणा न लिप्यते सर्वपरद्रव्यकृतरागत्यागशीलत्वे सति तदलेपस्वभावत्वात्। यथा लोहं कर्दममध्यगतं सत्कर्दमेन लिप्यते तल्लेपस्वभावत्वात् तथा किलाज्ञानी कर्ममध्यगतः सन् कर्मणा लिप्येत सर्वपरद्रव्यकृतरागोपादानशीलत्वे सति तल्लेपस्वभावत्वात्।

अर्थ—जो ज्ञानी है सो सर्वद्रव्यनिविषैं रागका छोडनेवाला है, सो कर्मके मध्यगत होय रह्या है, तौऊ कर्मरूप रजकरि नाहीं लिपे है, जैसैं कर्दम कहिये कीच, तामैं पड्या सुवर्णके काई न लागै तैसें। वहुरि अज्ञानी है सो सर्वद्रव्यनिविषैं रक्त है--रागी है, तातैं कर्मके मध्यगत भया संता कर्मरजकरि लिपे है। जैसैं कर्दम कीचमें पड्या लोहकै काई लागै तैसें।

टीका—जैसैं निश्चयकरि सुवर्ण है सो कर्दमके वीचि पड्या है तौऊ कर्दमकरि लिपे नाहीं,

सोनाकै काई लागै नाहीं, जातैं सुवर्णका स्वभाव कर्दमका लेप न लागनेस्वरूप ही है, तैसैं प्रगटपणैं ज्ञानी कर्मके वीचि पड्या है तौऊ कर्मकरि लिपै नाहीं, जातैं ज्ञानी सर्व परद्रव्यगत रागका त्यागका स्वभावपणाकूं होते संते कर्मका लेपरूप स्वभाव नाहीं हैं। बहुरि जैसैं लोह है सो कर्दममध्य पड्या हुवा कर्दमकरि लिपै है, जातैं लोहका स्वभाव कर्दमतैं लिपनेहीरूप है, तैसैं ही प्रगटपणैं अज्ञानी है सो कर्मके वीचि पड्या संता कर्मकरि लिपै है, जातैं अज्ञानी सर्वपरद्रव्य विषैं कीया जो राग ताका उपादानस्वभाव होते संते तिस कर्म लिपनेका स्वभावस्वरूप है।

भावार्थ—जैसे कादामें पड्या सुवर्णकै काई न लागै, अर लोहकै कोई लागै। तैसैं ज्ञानी कर्मके मध्यगत है, तौऊ ज्ञानी कर्मतैं लिपै नाहीं—बांधे नाहीं। अर अज्ञानी कर्मतैं लिपै है—बांधे है। यह ज्ञान अज्ञानका महिमा है। अब इस अर्थका तथा अगिले कथनकी सूचनिकाका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

याद्दक् ताद्दगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्याद्दशः शक्यते।
अज्ञानं न कथंचनापि हि भवेत् ज्ञानं भवत्सन्ततं ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ॥१८॥

अर्थ—जिस वस्तुका जैसा इस लोकमें जो स्वभाव है, ताका तैसा ही स्वाधीनपणा है, यह निश्चय है। सो तिस स्वभावकूं अन्य कोऊ अन्य सारिखा किया चाहै, तौ कदाचित् हू अन्यसारिखा करि सकै नाहीं। इस न्यायतैं ज्ञान है सो निरन्तर ज्ञानस्वरूप ही होय है। ज्ञानका अज्ञान कदाचित् भी होय नाहीं है, यह निश्चय है। तातैं हे ज्ञानी! तू कर्मके उदयजनित उपभोगकूं भोगि। तेरै परकै अपराध करि उपज्या ऐसा इस लोकमें बंध नाहीं है।

भावार्थ—वस्तु स्वभाव मेटनेकूं कोई समर्थ नाहीं, तातैं ज्ञान भये पीछे ताकूं अज्ञान करनेकूं कोई समर्थ नाहीं, यह निश्चयनय है। तातैं ज्ञानीकूं कह्या है, जो तेरे परके किये अपराधतैं तौ बंध नाहीं है, तौ तू उपभोगकूं भोगि। उपभोगनिके भोगनेकी शंका मति करै। शंका करेगा तौ

परद्रव्यतैं बुरा होना माननेका प्रसंग आवेगा। ऐसैं परद्रव्यतैं अपना बुरा होना माननेकी शंका मेटी है। ऐसा मति जानूं—जो भोग भोगनेकी प्रेरणा करि स्वच्छन्द किया है। स्वेच्छाचारी होना तौ अज्ञानभाव है, सो आगे कहेंगे। आगैं इसही अर्थकूं दृष्टान्त करि दृढ करे हैं।—गाथा—

नीचे लिखी तीन गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नाहीं है इसलिये नाहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण।
णागं होइ सुवण्णं धम्मं तं भच्छवाएण॥

नागफण्या मूलं नागिनीतोयेन गर्भनागेन।
नागं भवति सुवर्णं धम्यमानं भस्त्रावायुना॥

तात्पर्यवृत्तिः—नागफणी नामौषधी तस्या मूलं नागिनी हस्तिनी तस्यास्तोयं मूत्रं गर्भनागं सिन्दूरद्रव्यं नागं सीसकं। अनेन प्रकारेण पुण्योदये सति सुवर्णं भवति न च पुण्याभावे। कथंभूतः सन् भस्त्रया धम्यमानमिति दृष्टांतगाथागता।

अथ दार्ष्टांतमाह—

कम्मं हवेइ किट्टं रागादी कालिया अह विभाओ।
सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि॥

कर्म भवति किट्टं रागादयः कालिका अथ विभावाः।
सम्यक्त्वज्ञानदर्शनचारित्रं परमौषधमिति विजानीहि॥

तात्पर्यवृत्तिः—द्रव्यकर्म किट्टसंज्ञं भवति रागादिविभावपरिणामाः कालिकासंज्ञा ज्ञातव्याः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भेदाभेदरूपं परमौषधं जानीहि इति।

भुंजतस्सवि दव्वे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये विविहे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्हगो कादुं ॥२८॥
तह णाणिस्स दु विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजत्तस्सवि णाणं णवि सक्कदि रागदो णेदुं ॥२९॥
जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥३०॥

झाणं हवेइ अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो ।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परमजोईहिं ॥

ध्यानं भवत्यग्निः तपश्चरणे भस्त्रा समाख्याते ।
जीवो भवति लोहं धमितव्यः परमयोगिभिः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपं ध्यानमग्निर्भवति । द्वादशविधतपश्चरणं भस्त्रा ज्ञातव्या । आसन्नभव्यजीवो लोहं भवति । स च भव्यजीवः पूर्वोक्तसम्यक्त्वाद्यौषधध्यानाग्निभ्यां संयोगं कृत्वा द्वादशविधतपश्चरणभस्त्रया परमयोगिभिः धमितव्यो ध्यातव्यः । इत्यनेन प्रकारेण यथा सुवर्णं भवति तथा मोक्षो भवतीति संदेहो न कर्तव्यो भट्टचार्वाकमतानुसारिभिरिति ।

अर्थ—जिस प्रकार पुण्यका बल हो तो नागफणी नामक औषधीकी जड, हथिनीका मूत्र, सिन्दूर द्रव्य और सीसा इनको भस्त्रा (धोंकनी) की पवनसे अग्निमें पकानेपर लोहा सोना

तह णाणी विय जइया णाणसहावत्तायं पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥३१॥ चउक्कं ॥

भुञ्जानस्यापि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
शंखस्य श्वेतभावो नापि शक्यते कृष्णकः कर्तुम् ॥२८॥
तथा ज्ञानिनोऽपि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
भुञ्जानस्यापि ज्ञानं नापि शक्यते रागतां नेतुम् ॥२९॥
यदा स एव शंखः श्वेतस्वभावं तकं प्रहाय ।
गच्छेत्कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥३०॥

वन जाता है उसी प्रकार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपी ओषधिसे तपश्चरणरूपी भिस्त्रा द्वारा ध्यानाग्नि प्रज्वलित करनेपर कर्म कलंक मिटकर आत्मा शुद्ध वन जाता है।

नीचे लिखी एक गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥

यथा शंखः पौद्गलिकः यदा शुक्लत्वं प्रहाय ।
गच्छेत् कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥

तात्पर्यवृत्तिः---तथैव च यथा निर्जीवशंखः कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अंतरंगोपादानपरिणामाधीनः सन् श्वेतस्वभावत्वं विहाय कृष्णभावं गच्छेत तदा शुक्लत्वं त्यजति। इति निर्जीवशंखनिमित्तं द्वितीयान्वयदृष्टांतगाथा गता।

तथा ज्ञान्यपि यदि ज्ञानस्वभावं तकं प्रहाय ।
अज्ञानेन परिणतस्तदा अज्ञानतां गच्छेत् ॥३१॥ चतुष्कम् ॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु शंखस्य परद्रव्यमुपभुंजानस्यापि न परेण श्वेतभावः कृष्णीकर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः ।

तथा किल ज्ञानिनः परद्रव्यमुपभुञ्जानस्यापि न परेण ज्ञानमज्ञानं कर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः । ततो ज्ञानिनः परापराधनिमित्तो नास्ति बंधः ।

यथा च यदा स एव शंखः परद्रव्यमुपभुञ्जानोऽनुपभुञ्जानो वा श्वेतभावं प्रहाय स्वयमेव कृष्णभावेन परिणमते तदास्य श्वेतभावः स्वयंकृतः कृष्णभावः स्यात् ।

तथा यदा स एव ज्ञानी परद्रव्यमुपभुञ्जानोऽनुपभुञ्जानो वा ज्ञानं प्रहाय स्वयमेवाज्ञानेन परिणमेत तदास्य ज्ञानं स्वयंकृतमज्ञानं स्यात् । ततो ज्ञानिनो यदि (?) स्वापराधनिमित्तो बंधः ।

अर्थ—जैसा शंखोंका श्वेत स्वभाव है, सो शंख सचित्त अचित्त मिश्रित अनेक प्रकार द्रव्यनिकूं भक्षण करे है, तौऊ ताका श्वेत स्वभाव कृष्ण करनेकूं समर्थ नाहीं हूजिये है। तैसा ज्ञानी भी अनेक प्रकारके सचित्ताचित्तमिश्र द्रव्यनिकूं भोगवे है, तौऊ ताका ज्ञान अज्ञानपणाकूं प्राप्त करनेकूं समर्थ न हूजिये है। बहुरि जैसा सो ही शंख जिस काल अपने तिस श्वेतभावकूं छोडि कृष्णभावकूं प्राप्त होय, तब शुक्लपणाकूं छोडै तैसा ज्ञानी भी अपना तिस ज्ञान स्वभावकूं जिस काल छोडि अज्ञानकरि परिणमै, तिस काल अज्ञानताकूं प्राप्त होय।

टीका—जैसा शंख परद्रव्यकूं भक्षण करता रहे है, ताका श्वेतभावकूं परकरि कृष्णस्वभावस्वरूप करनेकूं समर्थ न हूजिये है। जातैं परकै परभावस्वरूप करनेका निमित्तपणाकी अप्राप्ति है तैसा परद्रव्यकूं भोगवता जो ज्ञानी, ताका ज्ञानकूं अज्ञानता स्वरूप करनेकूं निश्चय करि परकरि नाहीं समर्थ हूजिये है। जातैं परकै परभावस्वरूप करनेका निमित्तपणाकी अप्राप्ति है, तातैं ज्ञानीकै परकै परभावस्वरूपकरने किये अपराधके निमित्ततैं बंध नाहीं है। बहुरि जिस

काल सो ही शंख परद्रव्यकूं भोगता संता होऊ अथवा न भोगता संता होऊ अपना श्वेतभावकूं छोडि आपही कृष्णभावस्वरूप परिणमै, तिस काल तिस शंखका श्वेतभाव अपना ही किया कृष्णभावस्वरूप होय। तैसा ही सोही ज्ञानी परद्रव्यकूं भोगता संता होऊ तथा न भोगता संता होऊ जिस काल अपना ज्ञानकूं छोडि स्वयमेव आप ही अज्ञान करि परिणमै, तिस काल याका ज्ञान अपना ही किया निश्चय करि अज्ञानरूप होय है। तातैं ज्ञानीकै परका किया बंध नाहीं, आपही अज्ञानी होय तव अपनो अपराधके निमित्ततैं बंध होय है।

भावार्थ—जैसा शंख श्वेत है, सो परके भक्षणेतैं तौ काला होय नाहीं। जव आप ही कालिमारूप परिणमै, तब काला होय। तैसा ही ज्ञानी उपभोग करता तौ अज्ञानी होय नाहीं। जव आपही अज्ञानरूप परिणमै तव अज्ञानी होय, तव बंध करे है। याका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

कर्त्तारं स्वफलेन यत्किल वलात्कर्मैव नो योजयेत् कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो वध्यते कर्मणा कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥२०॥

अर्थ—निश्चय करि यह जानूं—जो कर्म है सो अपने करनेवाले कर्ताकूं अपना फल करि बरजोरीतैं तौ नाहीं जोडे है। सो मेरा फलकूं तूं भोगि। जो कर्मकूं करता संता तिस फलका इच्छुक हुवा करे है, सोही तिस कर्मका फल पावे है। तातैं ज्ञानरूप हुवा संता कर्मविषैं दूरी भया है रागकी रचना जाकी ऐसा मुनि है, सो कर्मकूं करता संता भी, कर्मकरि नाहीं बंधे है। जातैं कैसा है यह मुनि? तिस कर्मके फलका परित्यागरूप ही एक स्वभाव जाका।

भावार्थ—कर्म तौ कर्ताकूं जबरीतैं अपना फलतैं जोडै नाहीं। अर जो कर्मकूं करता संता, ताका फलकी इच्छा करै, सोही ताका फल पावे है। तातैं जो ज्ञानी ज्ञानरूप हुवा प्रवर्तै अर कर्मके करने विषैं राग न करै अर तिसका फलकी आगामी इच्छा न करै, सो मुनि कर्मकरि बंधे नाहीं है। आगै इस अर्थकूं दृष्टांतकरि दृढ करे हैं। गाथा—

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं ।
तो सोवि देदि राया विविहे भोगे सुहप्पादे ॥३२॥
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोवि कम्मरायो देदि सुहप्पादगे भोगे ॥३३॥
जह पुण सो चैव णरो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं ।
तो सो ण देदि राया विविहसुहप्पादगे भोगे ॥३४॥
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं ।
तो सो ण देदि कम्मं विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥३५॥

पुरुषो यथा कोपीह वृत्तिनिमित्तं तु सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३२॥
एवमेव जीवपुरुषः कर्मरजः सेवते सुखनिमित्तं ।
तत्सोपि ददाति कर्मराजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३३॥
यथा पुनः स एव पुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि न ददाति राजा विविधान सुखोत्पादकान् भोगान् ॥३४॥
एवमेव सम्यग्दृष्टिः विषयार्थं सेवते न कर्मरजः ।
तत्तन्न ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥३५॥

आत्मख्यातिः—यथा कश्चित्पुरुषो फलार्थं राजानं सेवते ततः स राजा तस्य फलं ददाति । तथा जीवः फलार्थं कर्म सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं ददाति । यथा च स एव पुरुषः फलार्थं राजानं न सेवते ततः स राजा तस्य फलं न ददाति । तथा सम्यग्दृष्टिः फलार्थं कर्म न सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं न ददातीति तात्पर्यं ।

अर्थ—जैसें इस लोकमें कोई पुरुष आजीविकानिमित्त राजाकूं सेवे, तौ सो राजा भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोगनिकूं दे है। ऐसें ही जीवनामा पुरुष सुखके निमित्त कर्मरूप रजकूं सेवे, तौ सो कर्म भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोगनिकूं दे है। बहुरि जैसें सो ही पुरुष आजीविकानिमित्त राजाकूं न सेवे, तौ सो राजा भी ताकूं सुखके उपजावनहारे अनेक प्रकारके भोग नाहीं दे है। ऐसें ही सम्यग्दृष्टि है सो कर्मरूप रजकूं विषयनिके अर्थि नाहीं सेवे है, तौ सो कर्म भी ताकूं सुखके उपजावनहारे नाना प्रकारके भोग नाहीं दे है।

टीका—जैसें कोई पुरुष फलके अर्थि राजाकूं सेवे है, तातें राजा ताकूं फल दे है। तैसें जीव है सो फलके अर्थि कर्मकूं सेवे है, तातें सो कर्म ताकूं फल दे है। बहुरि जैसें सो ही पुरुष फलके अर्थि राजाकूं नाहीं सेवे है, तातें सो राजा ताकूं फल नाहीं दे है। तैसें सम्यग्दृष्टि फलके अर्थि कर्मकूं नाहीं सेवे है, तातें सो कर्म ताकूं फल नाहीं दे है, ऐसा तात्पर्य है।

भावार्थ—फलकी वांछा करि कर्म करै, ताका फल पावै, वांछाविना कर्म करै, ताका फल न पावै। अब इहां आशंका उपजी है—जो फलकी वांछाविना कर्म काहेकूं करै? ऐसी आशंका दूरि करनेकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ॥२१॥

अर्थ—जानै कर्मका फल तौ छोड्या अर कर्मकूं करे है यह तौ हम नाहीं प्रतीतिरूप करे हैं, परन्तु यामैं किछू विशेष है—जो या ज्ञानीकै भी कोई कारणतैं किछू सो कर्म याके वशविना आय पडे है, ताकूं आय पडते संते भी यह ज्ञानी निश्चल परमज्ञानस्वभावकेविषैं तिष्ठ्या किछू कर्म करे है कि नाहीं करे है यह कौन जाने?

भावार्थ—ज्ञानीकै परवशतैं कर्म आय पडे है, ताविषैं भी ज्ञानी ज्ञानतैं चलायमान न होय

है। तहां यह ज्ञानी है सो न जानिये कर्म करे है कि नाहीं करे है, यह कौन जानैं? ज्ञानीकी ज्ञानीही जाने। अज्ञानीका ज्ञानीके परिणामकूं जाननेकूं बल नाहीं, इहां ऐसा जानना, जो ज्ञानी कहनेतैं अविरत सम्यग्दृष्टीतैं लगाय ऊपरके सर्व ही ज्ञानी हैं, तहां अविरतसम्यग्दृष्टि तथा देशविरत तथा आहारविहार करते मुनि तिनिके बाह्यक्रियाकर्म प्रवर्तें हैं, तौऊ अन्तरङ्गमिथ्यात्वके अभावतैं तथा ते यथासंभव कषायके अभावतैं उज्वल हैं। तातैं तिनिकी उजलाईकूं तेही जाने हैं। मिथ्यादृष्टि तिनिकी उजलाईकूं जाने नाहीं। मिथ्यादृष्टि तौ बहिरात्मा है, बाह्यहोतैं भला बुरा माने हैं। अन्तरात्माकी गति मिथ्यादृष्टि कहा जानैं? आगे इस ही अर्थका समर्थनरूप कहे हैं। जो ज्ञानीके निःशंकित नामा गुण होय है, ताकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ॥२२॥

अर्थ—यह साहस केवल एक सम्यग्दृष्टि हैं तेही करनेकूं समर्थ हैं। जो भयकरि चलायमान भया जो तीन लोकका जन, तिनने छोड्या है अपना मार्ग ज्याकरि ऐसा वज्रपात पडते संते भी अपने ज्ञानतैं नाहीं चलायमान होय हैं। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि? स्वभाव ही करि निर्भयपणातैं सर्व ही शंका छोडि करि अपना आत्माकूं ऐसा जाने हैं—जो नाहीं बाध्या जाय है ज्ञानरूप शरीर जाका, ऐसा आप ही करि जानते संते प्रवर्तें हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि निःशंकित गुण सहित होय है। सो ऐसा वज्रपात पडे, जो जाके भय करि तीन लोकके जन मार्ग छोडि दे तौऊ सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपकूं निर्बाध ज्ञानशरीर मानता ज्ञानतैं चलायमान न होय है। ऐसी शंका नाहीं ल्यावै है, जो इस वज्रपाततैं मेरा विनाश होयगा। पर्याय विनसे तौ याका विनाशीक स्वभाव ही है। आगे इस अर्थकूं गाथा करि कहे हैं। गाथा—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका हौंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥३६॥

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शङ्का भवन्ति निर्भयास्तेन ।
सप्तभयविप्रमुक्ता यस्मात्तस्मात्तु निश्शङ्का ॥३६॥

आत्मख्यातिः—येन नित्यमेव सम्यग्दृष्टयः सकलकर्मनिरभिलाषाः संतः, अत्यन्तकर्मनिरपेक्षतया वर्तते तेन नूनमेते, अत्यन्त निश्शङ्कदारुणाध्यवसायाः संतोऽत्यंतनिर्भयाः संभाव्यंते ।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव हैं ते निःशङ्क होय हैं, तिस कारण करि निर्भय होय हैं। जातैं सप्तभय करि रहित होय हैं, तातैं निःशंक होय हैं।

टीका—जाकारण करि सम्यग्दृष्टि हैं ते नित्य ही समस्त कर्मके फलकी अभिलाषातैं रहित भये संते कर्मकी अपेक्षातैं सर्वथा रहितपणा करि वर्ते हैं, ताकारण करि निश्चयतैं अत्यन्त निःशंक दारुण उत्कट तीव्र निश्चयरूप दृढ आशयरूप भये संते अत्यन्त निर्भय हैं। ऐसे संभावना कीजिये हैं। अब सप्त भयके कलशरूप काव्य कहे हैं। तहां इस लोकका अर परलोकका ए दोय भय है, ताकी एक काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

लोकः शाश्वत एक एप सकलव्यक्तो विविक्तात्मनः चिल्लोकं स्वयमेव मेवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तवापरस्तव परस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो निश्शंकं सततं स्वय स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२३॥

अर्थ—यह भिन्न आत्माका चैतन्यस्वरूप लोक है सो शाश्वत है, एक है, सकलजीवनिकै प्रगट है, जाकूं यह ज्ञानी आत्मा ही स्वयमेव एकाकी केवल अवलोकन करे है। तहां ज्ञानी ऐसैं विचारे है, जो यह चैतन्यलोक है, सो तेरा है बहुरि तिसतैं अन्य लोक है सो परलोक है, तेरा नाहीं। ऐसा विचारता तिस ज्ञानीकै इस लोक अर परलोकका भय काहेतैं होय? नाहीं होय। तातैं सो ज्ञानी है सो निःशंक भया संता निरंतर आपकूं स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप अनुभवै है।

भावार्थ—जो इस भवमें लोकनिका डर होय, जो यह लोक मेरा न जानिये कहा बिगाड करेगा ! सो ऐसा तो इह लोकका भय है। बहुरि परभवमें न जानिये, कहा होयगा ? ऐसा भय रहे सो परलोकका भय है। सो ज्ञानी ऐसैं जाने—जो मेरा लोक तौ चैतन्यस्वरूपमात्र एक नित्य है, यह सर्वकै प्रगट है। बहुरि इस लोक सिवाय है सो परलोक है; सो मेरा लोक तौ काहूका बिगाड्या बिगडे नाहीं। ऐसैं विचारता ज्ञानी आपकूं स्वाभाविक ज्ञानरूप अनुभवै, ताकै इस लोकका भय काहेतैं होय ? कदाचित् न होय। अब वेदनाका भयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितछंदः

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते निर्भेदोदितवेद्यवेदकवलादेकं सदानाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२४॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषनिकै याही एक वेदना है जो निराकुल होय करि अपना एक ज्ञानस्वरूपकूं आप अपना ज्ञानभावहीतैं वेदने योग्य है अर आपही वेदनेवाला ऐसा अभेदस्वरूप वेद्यवेदकभावके बलतैं निरन्तर निश्चल वेदिये है—अनुभवन कीजिये है। बहुरि ज्ञानीकै अन्यतैं आई ऐसी वेदना ही नाहीं है तातैं तिसकै तिस वेदनाका भय काहेतैं होय ? नाहीं होय। यातैं ज्ञानी निःशंक भया संता अपना स्वाभाविक ज्ञानभावकूं सदा निरन्तर अनुभवे है।

भावार्थ—वेदना नाम सुखदुःखका भोगनेका है सो ज्ञानीकै एक अपना ज्ञानमात्रस्वरूपका भोगना ही है। यह अन्यकरि आईकूं वेदना ही नाहीं जाने है। तातैं अन्यागतवेदनाका भय नाहीं है। तातैं सदा निर्भय भया ज्ञानका अनुभवन करे है। अब अरक्षाका भयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यत्सन्नाशमुपैति यन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२५॥

अर्थ—ज्ञानी ऐसैं विचारे है, जो सत्स्वरूप वस्तु है, सो नाशकूं प्राप्त नाहीं होय है, यह

नियमतैं वस्तूकी मर्यादा है। बहुरि ज्ञान है सो आप सत्स्वरूप वस्तु है, ताका निश्चयकरि अन्यकरि कहा राख्या? तातैं तिस ज्ञानकै अरक्षा करनेस्वरूप किछू भी नाहीं है। तातैं तिस अरक्षाका भय ज्ञानीकै काहेतैं होय? नाहीं होय है। ज्ञानी तौ अपना स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता सदा आप अनुभवै है।

भावार्थ—ज्ञानी ऐसैं जाने है, जो सत्तारूप वस्तूका कदाचित् नाश नाहीं अर ज्ञान आप सत्तास्वरूप है। सो याका किछू ऐसा नाहीं है—जाकी रक्षा किये रहे; नातरि नष्ट होय जाय। तातैं ज्ञानीकै अरक्षाका भय नाहीं, निःशंक भया संता आप स्वाभाविक अपना ज्ञानकूं सदा अनुभवै है। अब अगुप्तिभयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यच्छक्तः कोऽपि परप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२६॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे है, जो वस्तूका निजरूप है सो ही परमगुप्ति है। सो ताविषैं पर है सो कोई भी प्रवेश करनेकूं समर्थ नाहीं है। बहुरि ज्ञान है सो पुरुषका स्वरूप है सो अकृत्रिम है, यातैं याकै अगुप्ति किछू भी नाहीं है। तातैं तिन अगुप्तिका भय ज्ञानीकै नाहीं है। याहीतैं ज्ञानी निःशंक भया संता निरंतर आप स्वाभाविक अपना ज्ञानभावकूं सदा अनुभवे है।

भावार्थ—गुप्ति नाम जामैं काहूका प्रवेश नाहीं ऐसा गढ दुर्गादिकका है। तहां यह प्राणी निर्भय होय वसै। ऐसा गुप्त प्रदेश न होय चौडा होय ताकूं अगुप्ति कहिये। तहां बैठे प्राणीकै भय उपजे। तहां ज्ञानी ऐसा जाने है, जो वस्तूका निजस्वरूप है, तामैं परमार्थकरि दूजे वस्तूका प्रवेश नाहीं, यह ही परमगुप्ति है। सो पुरुषका स्वरूप ज्ञान है। तामैं काहूका प्रवेश नाहीं तातैं ज्ञानीका काहेतैं भय होय? स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरंतर अनुभवे है। अब मरणभयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नो छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२७॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे है, जो प्राणनिका उच्छेद होना, तिसकूं मरण कहे हैं। सो आत्माका ज्ञान है सो निश्चयकरि प्राण है सो ज्ञान है सो स्वयमेव शाश्वता है, यातैं याका कदाचित् भी उच्छेद नाहीं होय है। यातैं तिस आत्माकै मरण किछू भी नाहीं है सो ज्ञानीकै ऐसैं विचारतैं तिस मरणका भय काहेतैं होय? तातैं सो ज्ञानी निःशंक भया संता, निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञानभावकूं आप सदा अनुभवे है।

भावार्थ—इंद्रियादिक प्राण विनसैं ताकूं लोक मरण कहे हैं। सो आत्माकै इंद्रियादिक प्राण परमार्थस्वरूप नाहीं निश्चयकरि ज्ञान प्राण है, सो अविनाशी है, ताका विनाश नाहीं। तातैं आत्माकै मरण नाहीं यातैं ज्ञानीकै मरणका भय नाहीं। यातैं ज्ञानी अपना ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरंतर आप अनुभवे है। अब आकस्मिक भयका काव्य है।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो नि.शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२८॥

अर्थ—ज्ञानी विचारे है जो ज्ञान है सो एक है, अनादि है, अनंत है, अचल है, सो यह आपहीतैं सिद्ध है। सो जेतैं है तेतैं सदा सो ही है, याविषैं दूजेका उदय नाहीं है, तातैं याविषैं अकस्मात् नवा किछू उपजे ऐसा किछू भी नाहीं है। ऐसैं विचारतैं तिस अकस्मात् होनेका भय काहेतैं होय? नाहीं होय है। यातैं सो ज्ञानी निःशंक भया संता निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञानस्वभावकूं सदा अनुभवे है

भावार्थ—जो कबहु अनुभवमें न आया ऐसा किछू अकस्मात प्रगट हुवा भयानक पदार्थ,

ताकरि प्राणीकै भय उपजे, सो आकस्मिकभय है। सो आत्माका ज्ञान है सो अविनाशी अनादि अनंत अचल एक है। सो याविषैं दूजेका प्रवेश नाहीं, नवीन अकस्मात् कछू होय नाहीं, सो ऐसा ज्ञानी आपकूं जाने, ताकै अकस्मात भय काहेतैं होय ?। तातैं ज्ञानी अपना ज्ञानभावकूं निःशंक निरंतर अनुभवे है। ऐसे सप्त भय ज्ञानीकै नाहीं हैं। इहां प्रश्न—जो अविरतसम्यग्दृष्टि आदिककूं भी ज्ञानी कहे हैं, अर तिनिकै भयप्रकृतिका उदय है, ताके निमित्ततैं भय भी देखिये है। सो ज्ञानी निर्भय कैसा है ? ताका समाधान—जो भयप्रकृतिके उदयके निमित्ततैं भय उपजे है ताकी पीडा न सही जाय है। जातैं अंतरायके प्रबल उदयतैं निर्बल है, तातैं तिस भयका इलाज भी करे है। परंतु ऐसा भय नाहीं--जाकरि स्वरूपका ज्ञान श्रद्धानतैं चिगि जाय। बहुरि भय उपजे है सो मोहकर्मकी भयनामा प्रकृतिका उदयका दोष है, ताका आप स्वामी होय, कर्ता न बने है ज्ञाता ही है। आगे कहे हैं, सम्यग्दृष्टीकै निःशंकितादि चिन्ह हैं, ते कर्मकी निर्जरा करे हैं। शंकादिक करि किया बंध नाहीं होय है। ताकी सूचनिकाका काव्य है।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बन्धः पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥२९॥

अर्थ--जातैं सम्यग्दृष्टिके निःशंकित आदि चिन्ह हैं ते समस्तकर्मकूं हणै हैं--निर्जरा करे हैं। तातैं फेरि भी इसका उदय होतैं नवीन कर्मका किञ्चिन्मात्र भी बंध नाहीं होय है। तिस कर्मका पहलै बंध भया था, ताके उदयकूं भोगवता संताकै ताकी नियमकरि निर्जरा ही होय है। कैसा है सम्यग्दृष्टि ? टंकोत्कीर्णवत् एक स्वभावरूप जो अपना निजरस, तिसकरि परिपूर्ण भया जो ज्ञान, ताका सर्वस्वका भोगनहारा है--आस्वादक है।

भावार्थ--सम्यग्दृष्टि पहलै भयादिप्रकृति बांधी थी ताका उदयकूं भोगवे है, तौऊ ताके निःशंकितादि गुण प्रवर्तें हैं, ते पूर्वकर्मकी निर्जरा करे हैं। अर शंकादिक करि कीया बंध नाहीं होय

है। अब इस कथनकूं गाथामैं कहे हैं। तहां प्रथम ही निःशंकित अंगकी गाथा-

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्ममोहबाधकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३७॥

यश्चतुरोपि पादान् छिनत्ति तान् कर्ममोहबाधाकरान्।
स निश्शंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३७॥

आत्मख्यातिः---यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन कर्मबंधशंकाकरमिथ्यात्वादिभावाभावान्निश्शंकः, ततोऽस्य शंकाकृतो नास्ति बंधः। किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो आत्मा कर्मके बंधका कारण जो मोह, ताके करनेवाले मिथ्यात्वादि भावरूप च्यारि पाय, तिनिकूं निःशंक भया संता काटे है, सो आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमय है, तिस भावकरि कर्मबंधका कारण शंकाके करनेवाले ऐसे मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए च्यारि भाव, तिनिका याकै अभाव है, तातैं निःशंक है, तातैं याकै शंकाकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके कर्म उदय आवे है ताका आप स्वामीपणाका अभावतैं कर्ता न होय है। तातैं भयप्रकृतिका उदय आवतैं भी शंकाका अभावतैं स्वरूपतैं च्युत नाहीं होय है, निःशंक है। तातैं याकै शंकाकृत बंध नाहीं होय है, कर्म रस दे खिरि जाय है। आगैं निष्कांक्षित गुणकी गाथा है—

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३८॥

योन करोति तु कांक्षां कर्मफलेषु तथा च सर्वधर्मेषु ।
स निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३८॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि कर्मफलेषु सर्वेषु वस्तुधर्मेषु च कांक्षाभावान्निष्कांक्षस्ततोऽस्य कांक्षाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ—जो आत्मा कर्मके फलनिविषैं तथा सर्व धर्मनिविषैं वांछा नाहीं करे है, सो चेतयिता आत्मा निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही कर्मके फलनिविषैं तथा सर्व ही वस्तुके धर्मनिविषैं वांछाके अभावतैं निष्कांक्ष है—निर्वांछक है । तातैं याकै कांक्षाकरि किया हुवा बंध नाहीं है । तौ कहा है ? निर्जरा ही है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै कर्मका फलकेविषैं तथा सर्व धर्म कहिये कांच कंकणपणा आदि तथा निंदा प्रशंसा आदिके वचनरूप पुद्गलके परिणमन इत्यादि अथवा सर्वधर्म कहिये अन्यमतीनिकरि माने अनेक प्रकार सर्वथा एकांतरूप व्यवहार धर्मके भेद, तिनिविषैं वांछा नाहीं है । तातैं वांछाकरि होता जो बंध, सो याकै नाहीं है । वर्तमानकी पीडा नहीं सही जाय ताके मेटनेके इलाजकी वांछा चारित्रमोहके उदयतैं है यह ताका आप कर्ता न होय है, कर्मका उदय जाणि ताका ज्ञाता है, तातैं वांछाकरि किया बंध नाहीं है । आगै निर्विचिकित्सागुणकी गाथा है ।

जो ण करेदि दु गुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥३९॥

यो न करोति जुगुप्सां सर्वेषामेव धर्माणां ।
स खलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३९॥

आत्मख्यातिः—यतोहि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन सर्वेष्वपि वस्तुधर्मेषु जुगुप्साऽभावान्निर्विचिकित्सः ततोऽस्य विचिकित्साकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ--जो जीव सर्व ही वस्तूके धर्मनिकी जुगुप्सा कहिये ग्लानि, ताहि न करे है, सो निश्चयकरि आत्मा निर्विचिकित्स कहिये विचिकित्सादोषरहित सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका--जातैं सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही वस्तुधर्मनिविषैं जुगुप्साके अभावतैं निर्विचिकित्स है, ग्लानितारहित है । तातैं याके विचिकित्साकरि किया बंध नाहीं होय है । तौ कहा है ? निर्जरा ही होय है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि वस्तूके धर्म जे क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदि भाव तथा विष्टा आदि मलिनद्रव्य, तिनिकेविषैं ग्लानि नाहीं करे हैं । जुगुप्सानामा कर्मप्रकृतिका उदय आवे ताका आप कर्ता न होय है । तातैं जुगुप्साकरि किया याकै बंध नाहीं है । प्रकृति रस दे खिरि जाय है । तातैं निर्जरा ही है । आगे अमूढदृष्टि अंगकी गाथा है ।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४०॥

यो भवति, असंमूढः चेतयिता सर्वेषु कर्मभावेषु ।
स खलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४०॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि भावेषु मोहाभावादमूढदृष्टिः ततोऽस्य मूढदृष्टिकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ—जो जीव सर्वभावनिविषैं असंमूढ कहिये मूढ नाहीं होय है, यथार्थवस्तुकूं जाने है, सो सम्यग्दृष्टि चेतयिता निश्चयकरि अमूढदृष्टि जानना ।

टीका--जातैं जो निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व-

भावनिविषैं मोहके अभावतैं अमूढदृष्टि है। तातैं याकै मूढदृष्टिकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि सर्वपदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जाने है. तिनिपरि राग द्वेष मोहके अभावतैं अयथार्थदृष्टि नाहीं पडे है, अर चारित्रमोहके उदयतैं इष्टानिष्टभाव उपजे, ताकूं उदयकी वरजोरी जानि तिनि भावनिका कर्ता न होय है। तातैं मूढदृष्टिकरि किया हुवा बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही है। प्रकृति रस दे खिरि जाय है। सो निर्जरा ही है। अत्र उपगूहनगुणकी गाथा है।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४१॥

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहनकस्तु सर्वधर्माणां।
स उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४१॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन समस्तात्मशक्तीनामुपबृंहणादुपबृंहकः, ततोऽस्य जीवस्य शक्तिदौर्बल्यकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव सिद्धनिकी भक्तिकरि संयुक्त होय अर अन्य वस्तुके सर्वधर्मनिका उपगूहक कहिये गोपनेवाला होय, सो उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावमयपणा करि आत्माकी समस्तशक्तिका उपबृंहण कहिये बधावनेतैं उपबृंहक होय है। तातैं याकै जीवकी शक्तीका दुर्बलपणाकरि किया बंध नाहीं है। तौ कहा है? निर्जरा ही होय है।

भावार्थ--सम्यग्दृष्टि उपगूहनगुणकरि संयुक्त होय है। सो उपगूहन नाम छिपावनेका है। सो निश्चयनय प्रधानकरि ऐसा कह्या—जो अपना उपयोग सिद्धभक्तिमैं लगावे अर सर्वधर्मनिका

उपगूहक होय, सो सिद्धभक्तिमें उपयोग लगाया तब अन्य धर्मपरि दृष्टि ही न रही, तब सर्व ही छिपाये अर दूजा नाम उपगूहन कह्या। सो अपना उपयोग सिद्धनिके स्वरूपमें लगाया तब अपना आत्माकी सर्व शक्ति बधाई, आत्मा पुष्ट भया सो दुर्बलताकरि बंध होय था, सो न होय है, तब निर्जरा ही होय। बहुरि जेतैं अंतरायका उदय है, तेतैं निबलाई है। परंतु याके अभिप्रायमें निबलाई नाहीं है। कर्मके उदयकूं जीतनेका अपनी शक्तिसारू महान् उद्यम होय है। आगैं स्थितीकरण गुणकी गाथा है।—

उम्मंगं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सोठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४२॥

उन्मार्गं गच्छंतं शिवमार्गे यः स्थापयत्यात्मानं।
स स्थितिकरणेन युक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४२॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन मार्गे एव स्थितिकरणात् स्थितिकारी ततोऽस्य मार्गच्यवनकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव अपने आत्माकूं भी उन्मार्ग चालतेकूं मार्गविषैं स्थापन करै, सो चेतयिता स्थितीकरणगुणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं सम्यग्दृष्टि है सो निश्चयकरि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावमय है, तातैं जो अपना आत्मा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षका मार्ग, तातैं छूटै तौ ताकूं तिस ही मार्ग-विषैं स्थापै, सो स्थितिकारी है। तातैं मार्गतैं छूटनेकरि किया याकै बंध नाहीं होय। तौ कहा होय है? निर्जरा ही होय है।

भावार्थ—जो अपना आत्मा अपने स्वरूपरूप मोक्षमार्गतैं चिगै, ताकूं तिस ही मार्गविषैं

स्थापै, सो स्थितीकरणगुणयुक्त है। ताके मार्गतैं छूटनेकरि वंध होय सो वंध नाहीं होय। उदय आये कर्म रस देकरि खिरि जाय है, तातैं निर्जरा ही है। आगे वात्सल्यगुणकी गाथा है—

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्ह साधूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४३॥

यः करोति वत्सलत्वं त्रयाणां साधूनां मोक्षमार्गे।
स वात्सल्यभावयुक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४३॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां स्वस्मादभेदबुद्ध्या सम्यग्दर्शनान्मार्गवत्सलः, ततोऽस्य मार्गानुपलंभकृतो नास्ति वंधः किं तु निर्जरैव।

अर्थ—जो जीव तीन जे साधु कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अथवा आचार्य उपाध्याय साधुपदसहित आत्मा, तिनिका रूप जो मोक्षमार्ग, ताविषैं वात्सल्यभाव करै सो वत्सलभावकरि युक्त सम्यग्दृष्टि जानना।

टीका—जातैं निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि है सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं आपतैं अभेदबुद्धि करि भलै प्रकार देखनेतैं मोक्षमार्गका वत्सल है अतिप्रीतियुक्त है तातैं याकै मार्गकी अप्राप्ति करि किया कर्मका वंध नाहीं है। तौं कहा है? निर्जरा है।

भावार्थ—वत्सलपणा नाम प्रीतिभावका है, सो मोक्षमार्गरूप अपना स्वरूपविषैं अनुरागयुक्त होय, ताकै मार्गकी अप्रीति करि किया कर्मका वंध नाहीं, कर्म रस देकरि खिरि जाय है, तातैं निर्जरा ही है। आगे प्रभावनागुणकी गाथा है—

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥४४॥

विद्यारथमारूढः मनोरथरयान् हंति यश्चेतयिता ।
स जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥४४॥

आत्मख्यातिः—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञानभावमयत्वेन ज्ञानस्य समस्तशक्तिप्रबोधेन प्रभावजननात्प्रभावनकरः ततोस्य ज्ञानप्रभावनाप्रकर्षकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ।

अर्थ—जो जीव विद्यारूप रथविषैं चढ्या मनरूप जो रथ चलनेका मार्ग, ताविषैं भ्रमे है, सो जिनेश्वरका ज्ञानका प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना ।

टीका—जातैं जो निश्चय करि सम्यग्दृष्टि है, सो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणा करि ज्ञानकी समस्तशक्तिका फैलावने करि प्रभावके उपजावनेतैं प्रभावना करनेवाला है । तातैं याकै ज्ञानकी प्रभावनाका अप्रकर्ष कहिये वधावना नाहीं, ताकरि किया बंध नाहीं होय है । तौ कहा है ? निर्जरा ही है ।

भावार्थ—प्रभावना नाम उद्योत करना प्रगट करना इत्यादिकका है, सो जो अपना ज्ञानकूं निरंतर अभ्यास करि प्रगट करे वधावे, ताकै प्रभावना अंग होय है । ताकै अप्रभावनाकृत कर्मका बंध नाहीं है, कर्म रस दे खिरि जाय है । तातैं निर्जरा ही है । इहां गाथामैं ऐसैं कह्या—जो विद्यारूपी रथविषैं आत्माकूं थापि भ्रमे, सो ज्ञानकी प्रभावनायुक्त सम्यग्दृष्टि है । सो यह निश्चय प्रभावना है । जैसैं व्यवहार करि जिनबिम्बकूं रथविषैं स्थापि नगर वन आदि विषैं भ्रमाय प्रभावना करै, तैसैं जानना । ऐसैं सम्यग्दृष्टिज्ञानीकै निःशंकित आदिक आठ गुण कर्मकी निर्जराके कारण कहे । ऐसे ही और भी सम्यक्त्वके गुण निर्जराके कारण जानना ।

बहुरि इहां निश्चयनयप्रधान कथन है, तातैं आत्माहीके परिणाम निःशंकारूप आदिक करि कहे । ताका संक्षेप ऐसा—जो सम्यग्दृष्टि आत्मा अपना ज्ञानश्रद्धानविषैं निःशंक होय भयके निमित्ततैं स्वरूपतैं चिगे नाहीं अथवा सन्देहयुक्त न होय, ताकै निःशंकित गुण कहिये ॥१॥ बहुरि जो कर्मका फलकी वांछा न करैं तथा अन्य वस्तुके धर्मनिकी वांछा न करै, ताकै निष्कांक्षितगुण होय

॥५॥ वहुरि जो वस्तुके धर्मनिविषैं ग्लानि न करै, ताकै निर्विचिकित्सा गुण होय है ॥३॥ वहुरि जो स्वरूपविषैं मूढ न होय यथार्थ जानै; ताकै अमूढदृष्टिगुण होय है ॥४॥ वहुरि आत्माकूं स्वरूपतैं चिगताकूं स्थापै, ताकै स्थितीकरण गुण होय है ॥५॥ वहुरि जो आत्माकूं शुद्धस्वरूपमें लगावै आत्माकी शक्ति वधावै अन्य धर्मनिकूं गौण करै, ताकै उपगूहन गुण होय है ॥६॥ वहुरि जो अपना स्वरूपविषैं विशेष अनुराग राखै, ताकै वात्सल्य गुण होय है ॥७॥ वहुरि जो आत्माका ज्ञानगुणकूं प्रकाशरूप प्रगट करै, ताकै प्रभावना गुण होय है ॥८॥ सो ए सर्व ही गुण इनिके प्रतिपक्षी दोषनि करि कर्मका वंध होय था, ताकूं न होने दे हैं अर इनिकूं होतें चारित्रमोहका उदयरूप शंकादि प्रवर्तें तौ, तिनिकी निर्जरा ही होय है, वन्ध नाहीं है। जातें वन्ध तौ मिथ्यात्वसहित ही प्रधानता करि कह्या है।

जो चारित्रमोहके उदयनिमित्ततैं सम्यग्दृष्टीकै सिद्धान्तमें गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं वन्ध कह्या है, सो वह भी वन्ध निर्जरारूप ही जानना। जातैं सम्यग्दृष्टीकै जैसैं मिथ्यात्वके उदयमें वांध्या कर्म क्षरे है, तैसैं ही नवीन वन्ध्या भी क्षरे है, याकै तिसका स्वामीपणाका अभाव है। तातैं आगामी वन्धरूप नाहीं, निर्जरारूप ही है। जैसे कोई पुरुष पराया द्रव्य उधार ल्यावै तिसतैं आपकै ममत्ववुद्धि नाहीं, वर्तमानमें तिस द्रव्यतैं किछू कार्य करि लेना होय सो करि पैलेकूं करारकै करार दे है। जेतैं अपने घरमें भी पड्या रहे तौ तिसतैं ममत्व नाहीं। तातैं तिस पुरुषके तिस द्रव्यका वन्धन नाहीं है। परकूं दिया वरावर ही है। तैसैं ही ज्ञानी कर्मद्रव्यकूं जाने है, तातैं ममत्व नाहीं है। सो छता भी निर्जरा सारिखा ही है ऐसैं जानना।

वहुरि ए निःशंकित आदिक आठ गुण व्यवहारनयकरि व्यवहार मोक्षमार्गपरि लगाय लेणे। तहां जिनवचनविषैं सन्देह नाहीं, भय आये व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्रतैं चिगना नाहीं, सो निःशंकितपणा है ॥१॥ वहुरि संसार देह भोगकी वांछाकरि तथा परमतकी वांछाकरि व्यवहारमोक्षमार्गतैं चिगै नाहीं, सो निष्कांक्षितपणा है ॥२॥ वहुरि अपवित्र दुर्गन्धादिक वस्तुकै निमित्ततैं

व्यवहारमोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमैं ग्लानि न करै, सो निर्विचिकित्सा है ॥३॥ बहुरि देव शास्त्र गुरु लोककी प्रवृत्ति अन्यमतादिक तत्त्वार्थका स्वरूपविषैं मूढता न राखै, यथार्थ जानि प्रवर्तै सो अमूढदृष्टि है ॥४॥ बहुरि धर्मात्मामैं कर्मके उदयतैं दोष उपजै, ताकूं गौण करै अर व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकूं बधावै सो उपगूहन तथा उपबृंहण है ॥५॥ बहुरि व्यवहारमोक्षमार्गतैं चिगतेकूं थिरता करै सो स्थितिकरण है ॥६॥ बहुरि व्यवहार मोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवालेतैं विशेष अनुराग होय, सो वात्सल्य है ॥७॥ बहुरि व्यवहारमोक्षमार्गका अनेक उपाय करि उद्योत करै, सो प्रभावना है ॥८॥ सो ए व्यवहारनय प्रधान करि कहे हैं। सो इहां निश्चयप्रधान कथनविषैं इनिकी गौणता है। सम्यग्ज्ञानरूप प्रमाणदृष्टीमैं दोऊ ही प्रधान हैं, स्याद्वादमतमें किछू विरोध नाहीं है। अब निर्जरा अधिकारकूं पूर्ण किया, सो निर्जराका स्वरूप यथार्थ जाननेवाला अर कर्मका नवीन बन्ध रोकि निर्जरा करनेवाला जो सम्यग्दृष्टि, ताकी महिमा करे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः।

रुन्धन् बन्धं नवमिति निजैः सङ्गतोऽष्टाभिरंगैः प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरङ्गं विगाह्य ॥३०॥

इति निर्जरा निष्क्रांता।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ षष्ठोऽङ्कः।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव है सो आप स्वयमेव अपने निजरसमें मस्त भया संता आदि मध्य अन्तकरि रहित सर्वव्यापक एकप्रवाहरूप धारावाहीज्ञानरूप होय करि अर आकाशका मध्यरूप जो रङ्गभूमि अतिनिर्मल ताविषैं अवगाहन करि नृत्य करे है। कैसा है सम्यग्दृष्टि? नवीन बंधकूं तौ पूर्वोक्त प्रकार रोकता संता है, बहुरि पहिली बांध्या था ताकूं अपने अष्ट अङ्गनिकरि सहित भया संता निर्जराके प्रगट होनेकरि नाशकूं प्राप्त करता संता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै शंकादिक करि किया नवीन बंध तौ होय नाहीं अर आठ अंगनि

करि सहित है, तातैं निर्जराका उदय होनेकरि पूर्ववंधका नाश होय है। सो एक प्रवाहरूप ज्ञानरूप रसका आप पान करि 'जैसे कोई मद पीयकरि मग्न भया नृत्यके अखाडेमैं नृत्य करे है' तैसैं निर्मल आकाशरूप रंगभूमिमैं नृत्य करे है।

इहां कोई कहे—सम्यग्दृष्टिकै निर्जरा होना तौ कहते आये अर वन्ध होना न कह्या। सो गुणस्थाननिकी परिपाटीमैं सिद्धान्तमें अविरतसम्यग्दृष्टीतैं लगाय वंध कह्या है, अर घातिकर्मनिका कार्य आत्माका गुण घात करना है, सो दर्शन ज्ञान सुख वीर्य इनि गुणनिका घात भी विद्यमान है, सो चरित्रमोहका उदय नवीन वन्ध भी करे ही है, अर मोहके उदयमें भी वन्ध न मानिये तौ मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व अनन्तानुवन्धीका उदय होते भी वंधका न होना क्यों न मानिये? ताका समाधान—जो वन्ध होनेमें प्रधान मिथ्यात्व अनंतानुवंधीका उदय ही है अर सम्यग्दृष्टीकै तिनिका उदयका अभाव है, सो चारित्रमोहके उदयतें यद्यपि सुखगुणका घात है अर अल्प स्थिति अनुभाग लिये मिथ्यात्व अनंतानुवंधी विना तथा तिनिका लारकी अन्य प्रकृतिविना घातिकर्मकी प्रकृतिनिका तथा अघातिकर्मकी प्रकृतिनिका वन्ध भी होय है। तोऊ जैसा मिथ्यात्व अनंतानुवंधीसहित होय तैसा होय नाहीं। अनन्तसंसारका कारण तौ मिथ्यात्व अनंतानुवन्धी है, तिनिका अभाव भये पीछे तिनिका वन्ध होय नाहीं। अर आत्मा ज्ञानी भया तव अन्य वंधकी कौन गिनती करे? वृक्षकी जड कटै पीछे हरे पान रहनेका कहा अवधि? तातैं इस अध्यात्मशास्त्रविषैं तौ सामान्यपणै ज्ञानी अज्ञानी होनेहोका प्रधान कथन है। ज्ञानी भये पीछे किछू कर्म रहे हैं ते सहज ही मिटते जायगे। जैसे कोई पुरुष दरिद्री था, सो झोपडीमैं वसै था, ताकूं भाग्य उदयकरि वडा महलकी धनसहित प्राप्ति भई। तामैं वहुत दिनका कजोडा भरया था, सो या पुरुषने आय प्रवेश किया तिसही दिनतैं यह तौ महलका धनी सम्पदावान् वणि गया। अब कजोडा झाडना है, सो अनुक्रमतैं अपना वलकै अनुसार झाडे है। जव सब झाडि जायगा उज्वल होय जायगा, तव परमानन्द भोगेहीगा, ऐसैं जानना। ऐसैं रंगभूमिमैं

निर्जराका प्रवेश भया था सो अपना स्वरूप प्रगट दिखाय निकसि गया । इहां ताई गाथा २३६ भई कलश १६२ भये ।

ऐसैं समयसार नाम ग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी वचनिकाविषैं
छठा निर्जरा अधिकार पूर्ण भया ॥६॥

सवैया तेईसा

सम्यकवंत महंत सदा समभाव रहै दुख संकट आये ।
कर्म नवीन बंधे न तवै अर पूरव बंध झडे विन भाये ॥
पूरण अङ्ग सुदर्शनरूप धरै निति ज्ञान बढै निज पाये ।
यों शिवमारग साधि निरंतर आनंदरूप निजातम थाये ॥ १ ॥



अथ बंधाधिकारः ।

दोहा—रागादिकतैं कर्मको बंध जानि मुनिराय । तजै तिनहि समभाव करि नमूं सदा तिनि पाय ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशति बंधः ।

अब टीकाकारके वचन हैं, जो अब बंध प्रवेश करे है । जैसैं नृत्यके अखाडेमैं स्वांग प्रवेश करे है, तैसैं रंगभूमिमैं बंधतत्त्वका स्वांग प्रवेश करे है । तहां प्रथम ही सर्व तत्त्वका यथार्थ जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान, सो बंधकूं दूरि करता संता प्रगट होय है ऐसैं अर्थकूं ले मंगलरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ।

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत् क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाटयेन बन्धं धुनत् ।
आनन्दामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटं नाटयद्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥१॥

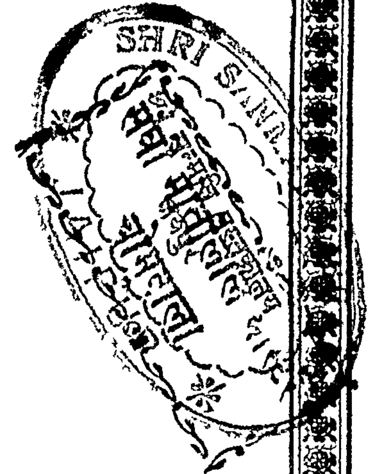
अर्थ—ज्ञान है सो उदय होय है। कहा करता संता उदय होय है? बंध है ताहि उडावता संता उदय होय है। कैसा है बंध? रागका उद्‌गार जो उगलना उदय होना सो ही भया महा-रस, ताकरि समस्त जगतकूं प्रमत्त—प्रमादी—मतवाला करिकै अर रसके भावकरि भरया जो बडा नृत्य, ताकरि नाचता है, ऐसा बंधकूं उडावता है। बहुरि आप ज्ञान कैसा है? आनंदरूप अमृतका नित्य भोजन करनेवाला है। बहुरि अपनी ज्ञानक्रियारूप स्वाभाविक अवस्था ताकूं प्रगटरूप नचावता संता उदय होय है। बहुरि धीर है, उदार है, निश्चल है, बडा जाका विस्तार है। बहुरि अनाकुल है—जामैं किछू आकुलताका कारण नाहीं रहे हैं। बहुरि निरुपधि है—परि-ग्रहतैं रहित है--किछू परद्रव्यसंबंधी ग्रहणत्याग नाहीं है। ऐसा ज्ञान उदयकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—बंधतत्त्व रंगभूमामैं प्रवेश करे है, ताकूं ज्ञान उडायकरि आप प्रगट होय नृत्य करैगा, ताकी महिमा या काव्यमें प्रगट करी है। ऐसा ज्ञान अनंतस्वरूप आत्मा सदा प्रगट रहौ। आगैं बंधतत्त्वका स्वरूप विचारे हैं। तहां प्रथम बंधका कारणकूं प्रगट कहे हैं। गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तोदु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूणय करेदि सत्थेहि वायामं ॥१॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकदलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥२॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जदु किं पच्चयगोदु तस्स रयबंधो ॥३॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥४॥

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चेट्ठासु ।
रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ॥५॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः स्नेहाभ्यक्तस्तु रेणुबहुले ।
स्थाने स्थित्वा करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥१॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीफलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातं ॥२॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतश्चिंत्यतां किंप्रत्ययकस्तु तस्य रजोबन्धः ॥३॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबन्धः ।
निश्चयो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥४॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्वर्तमानो बहुविधासु चेष्टासु ।
रागादीनुपयोगे कुर्वाणो लिप्यते रजसा ॥५॥



आत्मख्यातिः—इह खलु यथा कश्चित् पुरुषः स्नेहाभ्यक्तः स्वभावत एव रजोबहुलायां भूमौ स्थितः शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणः, अनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् रजसा बध्यते। तस्य कतमो बन्धहेतुः ? न तावत्स्वभावत एव रजोबहुला भूमिः, स्नेहानभ्यक्तानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात्। न शस्त्रव्यायामकर्म, स्नेहानभ्यक्तानामपि तस्मात् तत्प्रसंगाद्। नानेकप्रकारकरणानि, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तैस्तत्प्रसंगात्। न सचित्ताचित्तवस्तूपघातः, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तस्मिंस्तत्प्रसंगात्। ततो न्यायबलेनैवैतदायातं यत्तस्मिन् पुरुषे स्नेहाभ्यंगकरणं सम्बन्धहेतुः। एवं मिथ्यादृष्टिः, आत्मनि रागादीन् कुर्वाणः स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणोऽनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा बध्यते। तस्य कतमो बन्धहेतुः ? न तावत्स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुलो लोकः, सिद्धानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात्। न कायवाङ्मनःकर्म, यथाख्यातसंयतानामपि तत्प्रसंगात्। नानेकप्रकार-

करणानि, केवलज्ञानिनामपि तत्प्रसंगात् । न सचित्ताचित्तवस्तूपघातः, समितितत्पराणामपि तत्प्रसंगात् । ततो न्यायवलेनैतदेवायातं यदुपयोगे रागादिकरणं संबंधहेतुः ।

अर्थ—नाम कहिये प्रगटकरि कहे हैं, जो जैसे कोई पुरुष अपने देहकै स्नेह कहिये तैलादिक लगायकरि, अर रज जहां बहुत ऐसे स्थानविषैं तिष्ठिकरि अर शस्त्रनिकरि व्यायाम करे है अभ्यास करे है। तहां तालवृक्षका पेड तथा केलीका पेड तथा वांसका पिंड इत्यादिकूं छेदे है भेदे है। बहुरि सचित्त अचित्त द्रव्यनिका उपघात करे है। ऐसे नानाप्रकारके करणनिकरि उपघात करता तिस पुरुषकै निश्चयतैं विचारो, ताकै रजका बंध लगे है, सो कौनसे कारणकरि लगे है ? तहां तिस नरका जो तैल आदिका सचिक्कणभाव है, तिसकरि ताका बंध लगे है, यह निश्चयतैं जानना। बहुरि वाकी कायकी चेष्टा हैं, तिनिकरि सो रजका बंध नाहीं है, यह निश्चय है। ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव बहुत प्रकारकी चेष्टाविषैं वर्तमान है। सो अपना उपयोगविषैं रागादिक भावनिकूं करता संता कर्मरूप रजकरि लिपे है, बंध करे है।

टीका—इस लोकमें निश्चयकरि जैसे कोई पुरुष स्नेह तैल आदिक, ताकरि अभ्यक्त कहिये मर्दनयुक्त भया संता, जामैं अपने स्वभावतैं ही रज बहुत होय ऐसी भूमिविषैं तिष्ठ्या शस्त्रनिका व्यायाम कहिये अभ्यासरूप कार्यकूं करता संता अनेक प्रकारके कारणनिकरि सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं खापता संता, तिस भूमीकी रजकरि बंधे है, लिपे है, ताकैं विचारिये—जो बंधका कारण इनिमैं कौन है ? तहां प्रथम तौ स्वभावहोतैं जामैं रज बहुत ऐसी भूमि सो रजके बंधनेकूं कारण नाहीं है। जो भूमि ही कारण होय तौ जिनिकै तैल आदिक नाहीं लग्या अर तिस भूमीविषैं तिष्ठै तिनिकै भी तिस रजका बंध लग्या चाहिये, सो है नाहीं है। बहुरि शस्त्रनिका अभ्यास करना कर्म है, सो भी तिस रजके बंध लगनेकूं कारण नाहीं है। जो शस्त्रनिका अभ्यास बंधनेका कारण होय, तौ जिनिकै तैल आदि लग्या नाहीं, तिनिकै भी तिस शस्त्राभ्यास करनेतैं रजका बंध लागै। बहुरि अनेक प्रकार करण ते भी तिस रजके बंधनेकूं कारण नाहीं

है। जो ऐसे होय, तौ जिनिकै तैल आदि न लग्या होय, तिनिकै भी तिनि करणनिकरि रजका बंध लागै। बहुरि सचित्त अचित्त वस्तूनिका उपघात है, सो भी तिस रजके लगनेकूं कारण नाहीं है। जो ऐसैं होय तौ जिनिकैं तैल आदि लग्या नाहीं तिनिकै भी सचित्त अचित्तका घात करते संते रजका बंध लागै। तातैं न्यायका बलकरि ही यह आया, जो तिस पुरुषविषैं तैल आदि सचिक्कणका मर्दन करना है सो बंधका कारण है। ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव अपना आत्माविषैं राग आदि भावनिकूं करता संता स्वभावहीतैं कर्मके योग्य जे पुद्गल तिनिकरि भर्‍या जो लोक, ताविषैं काय वचन मनकी क्रियाकूं करता संता अनेक प्रकारके करणनिकरि सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं घातता संता, कर्मरूप रजकरि बंधे है। तहां विचारिये, बंधका कारण अतिशयवान् कौन है ? तहां प्रथम तौ स्वभावहीतैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि बहुत भर्‍या लोक बंधका कारण नाहीं है। जो तिनितैं बंध होय तौ लोकमें सिद्ध भी तिष्ठे हैं, तिनिका भी बंधका प्रसंग आवे है। बहुरि काय वचन मनका क्रियास्वरूप योग हैं, ते भी बंधके कारण नाहीं हैं। जो तिनितैं बंध होय यथाख्यातसंयमीनिकी काय वचन मनकी क्रिया हैं, तिनिके भी बंधका प्रसंग आवै है। बहुरि अनेक प्रकारके करण है, ते भी बंधके कारण नाहीं हैं। जो तिनितैं बंध होय, तौ केवलज्ञानीनिकै भी तिनिकरणनिकरि बंधका प्रसंग आवे है। बहुरि सचित्त अचित्त वस्तूनिका उपघात है, सो भी बंधका कारण नाहीं है। जो तातैं बंध होय, तौ जे साधु समिति-विषैं तत्पर हैं, यत्नरूप प्रवर्तें हैं, तिनिके भी सचित्त अचित्तके घाततैं बंधका प्रसंग आवै है, तातैं न्यायका बलकरि ही यह आया—जो उपयोगविषैं रागादिकका करना है, सो ही बंधका कारण है।

भावार्थ—इहां निश्चयनय प्रधान करि कथन है। सो जहां निर्बाध हेतुकरि सिद्ध होय, सो ही निश्चय, सो बंधका कारण विचारिये, सो निर्बाध यह ही सिद्ध भया—जो मिथ्यादृष्टि पुरुष राग द्वेष मोह भावनिकूं अपने उपयोगविषैं करे है सो ये रागादिक ही बंधके कारण हैं। अर अन्य

जो कर्मयोग्य पुद्गलनितैं भर्‍या लोक तथा मन वचन कायके योग तथा अनेक कारण तथा चेतन अचेतनका घात ये बंधके कारण नाहीं हैं। जो इनितैं बंध होय, तौ सिद्धनिके तथा यथाख्यातचारित्रवालेकै तथा केवलज्ञानीनिकै तथा समितिरूप प्रवर्तते मुनिनिकै बंधका प्रसंग आवै है, अर तिनिकै बंध है नाहीं, तातैं यह हेतुमैं व्यभिचार भया। तातैं बंधका कारण रागादिक ही हैं यह निश्चय है। इहां समितिरूप प्रवर्तनेवाले मुनिका नाम तौ लिया अर अविरत देशविरतका नाम न लिया। सो इनिके बाह्यसमितिरूप प्रवृत्ति नाहीं। तातैं चारित्रमोहसंबंधी रागतें किंचित् बंध होय है, तातैं सर्वथा बंधके अभावकी अपेक्षामैं इनिका नाम न लिया, सो अंतरंग अपेक्षा ये भी निर्बन्ध ही जानने। आगै इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

पृथ्वीछन्दः

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो न बन्धकृत्।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥२॥

अर्थ—कर्मबंधका करनेवाला कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि बहुत भर्‍या जो जगत् कहिये लोक सो कारण नाहीं है। बहुरि चलनेस्वरूप जे कायवचनमनकी क्रिया कर्मरूप योग, ते भी कारण नाहीं हैं। बहुरि अनेक रीतिके करण, ते भी कारण नाहीं हैं। बहुरि चेतन अचेतनका वध कहिये घात सो भी कारण नाहीं है। तौ कहा है? जो उपयोगभू कहिये आत्मा, सो रागादिकनिकरि सहित एकताका भावकूं प्राप्त होय है, सो ही एक पुरुषनिकै बंधका कारण है।

भावार्थ—इहां निश्चयनयकरि एक रागादिकहीकूं बंधका कारण कह्या है। आगै सम्यग्दृष्टि उपयोगविषैं रागादिककूं नाहीं करे है, उपयोगके अर रागादिकके भेद जानि रागादिकका स्वामी नाहीं होय है, तातैं ताकै पूर्वोक्त चेष्टातैं बंध नाहीं होय है ऐसैं कहे हैं। गाथा—

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायामं ॥६॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकदलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥७॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो ण तस्स रयबंधो ॥८॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥९॥
एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागादी णेव बज्झदि रयेण ॥१०॥

यथा पुनः स चैव नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति ।
रेणुबहुले स्थाने करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥६॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीतलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातं ॥७॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतो विज्ञेयं किंप्रत्ययको न रजोबंधः ॥८॥
यः स, अस्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबंध ।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥९॥
एवं सम्यग्दृष्टिर्वर्तमानो बहुविधेषु योगेषु ।
अकुर्वन्नुपयोगे रागादीन्न न लिप्यते रजसा ॥१०॥

आत्मख्यातिः—यथा स एव पुरुषः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति तस्यामेव स्वभावात् एव रजोबहुलायां भूमौ तदेव शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणस्तैरेवानेकप्रकारकरणैस्तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि विघ्नन् रजसा न बध्यते स्नेहाभ्यङ्गस्य बन्धहेतोरभावात् । तथा सम्यग्दृष्टिः, आत्मनि रागादीनकुर्वाणः सन् तस्मिन्नेव स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके तदेव कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणः, तैरेवानेकप्रकारकरणैः, तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा न बध्यते रागयोगस्य बंधहेतोरभावात् ।

अर्थ—बहुरि सो ही नर जैसे तिस स्नेह तैलादिक सर्वकूं दूरि किये संते बहुत रजके स्थानविषैं शस्त्रनिको अभ्यास करे है, बहुरि तैसे ही तालवृक्षके तलकूं तथा केलीकूं तथा वांसका विडाकूं छेदे है, भेदे है, सचित्त अचित्त द्रव्यनिका उपघात करे है, तहां उपघात करतेके ताके नाना प्रकार करणनिकरि करताकै निश्चयतैं जानना, जो रजका बंधना कौन कारणतैं नाहीं होय है ? तिस नरके जो सचिक्कणतासूं रहितपणा है सो ही निश्चयतैं वाकी कायसंबंधी अन्य चेष्टाविना रजका नाहीं बंधनेका कारण है । ऐसे ही सम्यग्दृष्टि बहुत प्रकार योगनिविषैं वर्तमान है, सो उपयोगविषैं रागादिककूं नाहीं करता संता वर्ते है, यातैं कर्मरजकरि नाहीं लिपे है ।

टीका—जैसें सो ही पुरुष स्नेह कहिये तैलादिककी चिकणाई सर्व ही दूरि किये संते, स्वभावहीतैं जामैं रजकी बहुलता ऐसी तिस ही भूमिविषैं, तिनि ही शस्त्रनिका अभ्यासकूं करता संता, तिनि ही अनेक प्रकारके करणनिकरि, तिनि ही सचित्त अचित्त वस्तूनिकूं हणता घात करता संता रजकरि नाहीं बंधे है । जातै याकैं बंधका हेतु जो सचिक्कणपणाका मर्दन, ताका अभाव है । तैसें ही सम्यग्दृष्टि पुरुष है सो आत्माविषैं रागादिककूं नाहीं करता संता, स्वभावहीतैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकरि भरया ऐसा तिस ही लोकविषैं, तिस ही काय वचन मनकी क्रियाकूं करता संता, तिनि ही अनेक प्रकारके करणनिकरि, तिनि ही सचित्त अचित्त वस्तुनिका घात करता संता कर्मरूप रजकरि नाहीं बंधे है । जातैं याकै बंधका कारण जो रागका योग, ताका अभाव है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिकै पूर्वोक्त सर्व संबंध होते भी रागका संबंधका अभाव है, तातैं कर्मबंध नाहीं होय है। याका समर्थन पूर्वैं कह ही आये हैं अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु न परिस्पन्दात्मकं कर्म तत् तान्यस्मिन्करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत्।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञ नं भवन्केवलं बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवः॥३॥

अर्थ—तिस कारणतैं सो कर्मनिकरि भरया पूर्वोक्त लोक है सो होहू, बहुरि सो मन वचन कायके चलनस्वरूप कर्मरूप योग है सो होहू, बहुरि ते पूर्वोक्त करण होहू, बहुरि सो पूर्वोक्त चैतन्य अचैतन्यका व्यापादान कहिये घात करना होहू, यह सम्यग्दृष्टि है सो रागादिककूं उपयोग-भूमिमैं नाहीं प्राप्त करता संता अर केवल एक ज्ञानरूप होता संता, तिनि पूर्वोक्त कोई ही कारणतैं बंधकूं प्राप्त नाहीं होय है, यह निश्चल सम्यग्दृष्टि है, अहो! देखो!! यह सम्यग्दर्शनकी अद्भुत महिमा है।

इहां सम्यग्दृष्टिका अद्भुत माहात्म्य कह्या है। अर लोक, योग, करण, चैतन्य अचैतन्यका घात ए बंधके कारण न कहे हैं। तहां ऐसा मति जानूं—जो परजीवकी हिंसातैं बंध न कह्या, तातैं स्वच्छंद होय हिंसा करना। इहां अबुद्धिपूर्वक कदाचित् परजीवका घात भी होय, तातैं बंध न होय है। अर जहां बुद्धिपूर्वक जीव मारनेके भाव होहिंगे तहां तौ अपने उपयोगतैं रागादिकका सद्भाव आवैगा, तहां हिंसातैं बंध होयहीगा। जहां जीवकूं जीवावनेका अभिप्राय होय, ताकूं भी निश्चयनयमें मिथ्यात्व कहे हैं, तौ मारनेका अभिप्राय मिथ्यात्व क्यों न होगा? तातैं कथ-नकूं नयविभागकरि यथार्थ समझि श्रद्धान करना। सर्वथा एकांत तौ मिथ्यात्व है। अब इस अर्थकूं दृढ करनेकूं व्यवहारनयकी प्रवृत्ति करावनेकूं काव्य कहे हैं।

पृथ्वीछन्दः

तथाऽपि न निरर्गलं चरितमीक्षते ज्ञानिनां तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च॥४॥

अर्थ—तथापि कहिये लोक आदि कारणनितैं बंध कह्या नाहीं अर रागादिकहीतैं बंध कह्या, तौऊ ज्ञानीनिकूं निरर्गल कहिये मर्यादरहित स्वच्छंद प्रवर्तना योग्य न कह्या है। जातैं निरर्गल प्रवर्तना है सो बंधका ही ठिकाना है, ज्ञानीनिकै विनावांछा कर्म कार्य होय है, सो बंधका कारण न कह्या है, जातैं जानै भी है अर कर्मकूं करै भी है, यह दोऊ क्रिया कहां विरोधरूप नाहीं है? करना अर जानना तो निश्चयतैं विरोधरूप ही है।

भावार्थ–पहली काव्यमें लोक आदि बंधके कारण न कहै तहां ऐसैं मति जानिये—जो बाह्यव्यवहारप्रवृत्ति बंधके कारणनिमें सर्वथा ही निषेधी है, जो ज्ञानीनिकै अबुद्धिपूर्वक वांछा-विना प्रवृत्ति होय है, तातैं बंध न कह्या है। तातैं ज्ञानीनिकूं स्वच्छंद प्रवर्तना तौ न कह्या है, वेमर्याद प्रवर्तना तौ बंधका ही ठिकाना है। जाननेमें अर करनेमें तौ विरोध है, ज्ञाता रहैगा तौ बंध न होगा, कर्ता होगा तौ बंध होयहोगा। अब कहे हैं–जो जाने है सो करे नाहीं है अर जो करे है सो जाने नाहीं है, जो करे है सो कर्मका राग है अर राग है सो अज्ञान है अर अज्ञान है सो बंधका कारण है। ऐसैं काव्यमें कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहुर्मिथ्यादृशः स नियतं स हि बन्धहेतुः ॥५॥

अर्थ—जो जाने है, सो करे नाहीं है। बहुरि जो करे है, सो जाने नाहीं है। बहुरि जो करे है, सो निश्चयतैं यह कर्मराग है बहुरि जो राग है, ताकूं मुनि हैं ते अज्ञानमय अध्यवसाय कहे हैं। सो यह मिथ्यादृष्टीकै होय है, सो नियमतैं बंधका कारण है। अब मिथ्यादृष्टिका आशयकूं गाथामें प्रगटकरि कहे हैं। गाथा—

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥११॥

यो मन्यते हिनस्मि हिंस्ये च परैः सत्वैः ।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥११॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं हिनस्मि परजीवैर्हिंस्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः । यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात्सम्यग्दृष्टिः ।

कथमयमध्यवसायोऽज्ञानं ? इति चेत्—

अर्थ—जो पुरुष ऐसैं माने है, मैं परजीवकूं हणूं हूं, मारूं हूं, बहुरि परजीवनिकरि मैं हण्या जाऊं हूं, पर मोकूं मारे है, सो पुरुष मूढ है, मोही है, अज्ञानी है । बहुरि ज्ञानी यातैं विपरीत है, ऐसैं नाहीं माने है ।

टीका—परजीवनिकूं मैं हणूं हूं । बहुरि परजीवनिकरि मैं हण्या जाऊं हूं । ऐसा अध्यवसाय कहिये निश्चयरूप जाका आशय है, सो निश्चयतैं अज्ञान है । सो ऐसा अध्यवसाय जाकै होय सो अज्ञानी है । इस अज्ञानीपणातैं मिथ्यादृष्टि है । बहुरि जाकै ऐसा आशयरूप अज्ञान नाहीं है सो ज्ञानीपणातैं सम्यग्दृष्टि है ।

भावार्थ—जाकै ऐसा आशय है "जो परजीवकूं मैं मारूं हूं, अर पर मेरेतांई मारे हैं" सो ऐसा आशय अज्ञान है । तातैं सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है । अर जाकै यह आशय नाहीं, सो ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है । यहां ऐसा जानना—जो निश्चयनयकरि कर्ताका स्वरूप यह है, जो आप स्वाधीन जिस भावरूप परिणमै ताकूं तिस भावका कर्ता कहिये । सो परमार्थकरि कोऊ काहूकै मरण करे नाहीं है । जो परकरि परका मरण माने है, सो अज्ञानी है । निमित्तनैमित्तिकभावतैं कर्ता कहना व्यवहारनयका वचन है, सो यथार्थ मानना सम्यग्ज्ञान है । आगे पूछे है, यह अध्यवसाय अज्ञान कैसा है ? ताका उत्तररूप गाथा कहे हैं । गाथा—

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं ॥१२॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणां जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुह कह ते मरणं कदं तेहिं ॥१३॥

आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरसि त्वं कथं त्वया मरणं कृतं तेषां ॥१२॥
आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरन्ति तव कथं ते मरणं कृतं तैः ॥१३॥

आत्मख्यातिः—मरणं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मक्षयेणैव तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात् स्वायुःकर्म च नान्येनान्यस्य हर्तुं शक्यं तस्य स्वोपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात् । ततो न कथंचनापि, अन्योऽन्यस्य मरणं कुर्यात् । ततो हिनस्मि हिंस्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं ।

जीवनाध्यवसायस्य तद्विपक्षस्य का वार्ता ? इति चेत्—

अर्थ—जीवनिकै मरण है सो आयुकर्मके क्षयतैं होय है । यह जिनेश्वरदेवने कह्या है । सो हे भाई, तू माने है "जो मैं परजीवकूं मारूं हूं" सो यह अज्ञान है । जातैं तू परजीवका आयुकर्म हरे नाहीं है । तातैं तिनिकै मरणकूं तूनें कैसे किया ? बहुरि जीवनिकै मरण आयुकर्मके क्षयकरि होय है । ऐसैं जिनेश्वरदेवने कह्या है । अर हे भाई ! तू ऐसैं माने है "जो मैं परजीवनिकरि मारया जाऊं हूं" सो यह तेरा अज्ञान है । जातैं परजीव तेरा आयुकर्म हरे नाहीं । तातैं तिनितैं तेरा मरण कैसा किया ?

टीका—निश्चयकरि जीवनिकै मरण है सो अपने आयुकर्मके क्षयहीकरि होय है, जो आयुका

क्षय न होय, तौ तिसकै मरण करनेकूं कोऊ न समर्थ होय। बहुरि अपना आयुकर्म अन्यके अन्यकरि हरनेका असमर्थपणा है। आयुकर्म तौ अपना उपभोगहीकरि क्षयरूप होय है, तातैं अन्य है सो अन्यके मरण काहू प्रकार भी करे नाहीं है। तातैं जो ऐसा माने है, अभिप्राय करे है, जो मैं परजीवकूं हणूं हूं, तथा परजीव मोकूं हणे हैं, सो यह अध्यवसाय निश्चयकरि अज्ञान है।

भावार्थ—जो जीवकै मान्य होय अर तिस मान्यरूप कार्य न होय सो ही अज्ञान,सो मरण आपकै परका किया होय नाहीं, परकै आपका किया होय नाहीं, अर यह प्राणी माने सो ही अज्ञान है, यह निश्चयनय प्रधान कथन है। बहुरि परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावकरि पर्यायका उत्पाद व्यय होय ताकूं जन्ममरण कहिये है। तहां जाके निमित्ततैं होय ताकूं ऐसैं कहिये, जो याने याकूं मार्‍या, सो यह कहना व्यवहार है। सो इहां ऐसा मति जानूं—जो व्यवहारका सर्वथा निषेध है। जे निश्चयकूं न जाने तिनिका अज्ञान मेटनेकूं कह्या है। याकूं जाने पीछे दोऊ नयके अविरोध जानि यथायोग्य नय मानना। फेरि पूछे है, जो मरणके अध्यवसायकूं तौ अज्ञान कह्या सो जान्या, अर तिस मरणका प्रतिपक्षी जो जीवनेका अध्यवसाय, ताकी कहा वार्ता है? ऐसैं पूछै उत्तर कहे हैं। गाथा—

जो मण्णदि जीवेमिय जीविज्जामिय परेहि सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥१४॥

यो मन्यते जीवयामि जीव्ये चापरैः सत्वैः।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥१४॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं जीवयामि परजीवैर्जीव्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः। यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः।

कथमयमध्यवसायो ज्ञानमिति चेत् ?

अर्थ—जो जीव ऐसैं माने है, जो मैं परजीवनिकूं जीवाऊं हौं, बहुरि परजीव मोकूं जीवावे हैं, सो मूढ है, मोही है, अज्ञानी है। बहुरि ज्ञानी यातैं विपरीत है, ऐसैं नाहीं माने, यातैं उलटा माने है।

टीका—परजीवनिकूं मैं जीवाऊं हौं, बहुरि परजीव मेरे तांई जीवावे हैं, ऐसा अध्यवसाय कहिये निश्चयरूप आशय है, सो निश्चयकरि अज्ञान है। सो यह जाकै होय सो जीव अज्ञानीपणातैं मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जाकै यह अध्यवसाय नाहीं है सो जीव ज्ञानीपणातैं सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ—जो ऐसैं माने हैं, जो मोकूं पर जीवावे हैं, अर मैं परकूं जीवाऊं हौं, सो यह अज्ञान है, जाकै यह अज्ञान है सो मिथ्यादृष्टि है। जाकै यह अज्ञान नाहीं सो सम्यग्दृष्टि है। आगै पूछे है, जो यह जीवावनेका अध्यवसाय अज्ञान कैसा है? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

आउउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं ॥१५॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दित्ति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं ॥१६॥

आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददासि त्वं कथं त्वया जीवितं कृतं तेषां ॥१५॥
आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददाति तव कथं तु ते जीवितं कृतं तैः ॥१६॥

आत्मख्यातिः—जीवितं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मोदयेनैव, तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात्। आयुः कर्म

च नान्येनान्यस्य दातुं शक्यं तस्य स्वपरिणामेनैव, उपार्ज्यमाणत्वात्। ततो न कथंचनापि अन्योऽन्यस्य जीवितं कुर्यात्। अतो जीवयामि जीव्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं।

दुःखसुखकरणाध्यवसायस्यापि, एषैव गतिः—

अर्थ—जीव है सो अपनी आयुके उदयकरि जीवे है, ऐसैं सर्वज्ञ देव कहे हैं। तहां हे भाई, परजीवकूं तू आयूकर्म नाहीं दे है, तौ तैनैं तिनि परजीवनिका जीवित कैसा किया? बहुरि जीव है सो अपना आयुकर्मके उदयतैं जीवे है, ऐसैं सर्वज्ञ देव कहे हैं। तहां हे भाई, परजीव तोकूं आयुकर्म नाहीं दे हैं, तौ तिनिनैं तेरा जीवित कैसा किया?

टीका—जीवनिका जीवित है सो अपना आयुकर्मके उदयहीकरि है जो आयुका उदयका अभाव होय, तौ तिस जीवितका होनेका अशक्यपणा है। बहुरि अपना आयुकर्म अन्यके अन्यकरि देनेका असमर्थपणा है तिस आयुकर्मका अपने परिणामहीकरि उपजायवापणा है तातैं अन्य है सो अन्यके जीवितकूं कोई प्रकार भी नाहीं करे है। यातैं परकूं मैं जीवाऊं हौं तथा पर मोकूं जीवावै हैं ऐसा अध्यवसाय है सो निश्चयकरि अज्ञान है।

भावार्थ—पूर्वैं मरणके अध्यवसायमें कह्या सो ही जानना। आगे कहे हैं, जो दुःखसुख करनेका अध्यवसायकी भी याही गति है। गाथा—

जो अप्पणादु मगणदि दुःखिदसुखिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तोदु विवरीदो ॥१७॥

य आत्मना तु मन्यते दुःखितसुखितान् करोमि सत्वानिति।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥१७॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं दुःखितान् सुखितांश्च करोमि। परजीवैर्दुःखितः सुखितश्च क्रियेहं, इत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं। स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः। यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः।

कथमध्यवसायोऽज्ञानमिति चेत्—

दृष्टिमें गौण है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

वसन्ततिलका छन्दः

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

अर्थ—इस लोकमें जीवनिके मरण जीवित दुःख सुख हैं ते सर्व ही सदाकाल नियमतैं अपने अपने कर्मके उदयतैं होय हैं। वहुरि जो परपुरुष है सो परके मरण जीवित दुःख सुख करे है यह मानना है सो अज्ञान है। फेरि इस ही अर्थकूं दृढ करते संते अगिले कथनकी सूचनिका रूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलका छन्दः

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवंति ॥७॥

अर्थ—यह पूर्वोक्त मानना अज्ञान है, ताही प्राप्त होय करि जे पुरुष परतैं परकैं मरण जीवित सुख दुःख होना देखें हैं, माने हैं, ते पुरुष "मैं इनि कर्मनिकूं करूं हूं" ऐसा अहंकाररूप रसकरि कर्मनिकूं करनेके इच्छुक हैं, कर्म करनेकी मारने जीवावनेकी सुखी दुःखी करनेकी वांछा करे हैं ते नियमकरि मिथ्यादृष्टि हैं। आप ही करि अपना घात जिनिकै पाइये है ऐसे हैं।

भावार्थ—जे परकूं मारने जीवावनेका तथा सुखदुःख करनेका अभिप्राय करे हैं, ते मिथ्या-दृष्टि हैं। अर अपना स्वरूपतैं च्युत भये रागी द्वेषी मोही होय आपही करि आपका घात करे हैं, तातैं हिंसक हैं। आगे इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं। गाथा—

जो मरदि जोय दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।
तह्मा दु मारिदोदे दुहाविदो चेदि णहु मिच्छा ॥२१॥

जो ण मरदि णय दुहिदो सोविय कम्मोदयेण खलु जीवो।
तह्मा ण मरिदोदे दुहाविदो चेदि णहु मिच्छा ॥२२॥

यो म्रियते यश्च दुःखितो जायते कर्मोदयेन स सर्वः।
तस्मात्तु मारितस्ते दुःखितो वेति न खलु मिथ्या ॥२१॥
यो न म्रियते न च दुखितो भवति सोपि च कर्मोदयेन खलु जीवः।
तस्मान्न मारितो नो दुःखितो वेति न खलु मिथ्या ॥२२॥

आत्मख्यातिः—यो हि म्रियते जीवति वा दुःखितो भवति सुखितो भवति च स खलु कर्मोदयेनैव तदभावे तस्य तथा भवितुमशक्यत्वात् ततः, मयायं मारितः, अयं जीवितः अयं दुःखितः कृतः, अयं सुखितः कृतः, इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः।

अर्थ—जो मरै है बहुरि दुःखी होय है सो सर्व कर्मके उदय करि होय है। तातैं तेरै "मैं मारया, मैं दुःखी किया" ऐसा अभिप्राय है, सो मिथ्या नाहीं है कहा? मिथ्या ही है। बहुरि जो मरे नाहीं है बहुरि दुःखी नाहीं होय है सो भी कर्मके उदयही करि होय है। तातैं तेरै यह अभिप्राय है "जो मैं मारया नाहीं अर दुःखी न किया" सो यह भी अभिप्राय कहा मिथ्या नाहीं है? मिथ्या ही है।

टीका—निश्चयकरि मरे है तथा जीवे है अथवा दुःखी होय है तथा सुखी होय है सो अपने कर्मके उदयकरि होय है। तिस कर्मके उदयका अभाव होतैं तिस जीवकै तैसैं मरण जीवन सुख दुःख होनेका असमर्थपणा है। तातैं मैं यह मारया, यह मैं जीवाया, यह मैं दुःखी किया, यहै मैं सुखी किया ऐसैं मानता संता जीव मिथ्यादृष्टि है।

भावार्थ—कोऊ काहूका मारया मरे नाहीं, जीवाया जीवे नाहीं, सुखी दुःखी किया सुखी

दुःखी होय नाहीं। यातैं मारने जीवावने आदिका अभिप्राय करे सो तौ मिथ्यादृष्टि ही होय, यह निश्चयका वचन है। इहां व्यवहारनय गौण है। याका कलशरूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्ययात्। य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥८॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टिका जो यह अध्यवसाय है सो अज्ञानरूप प्रत्यक्ष दीखे है, सो ही यह अभिप्राय मिथ्या विपर्ययस्वरूप है तातैं बंधका कारण है।

भावार्थ–झूठा अभिप्राय सो ही मिथ्यात्व, सो ही बंधका कारण ऐसैं जानना। आगे यह ही अध्यवसाय बंधका कारण है ऐसैं गाथामैं कहे हैं। गाथा–

एसा दु जा मदी दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥२३॥

एषा तु या मतिस्ते दुःखितसुखितान् करोमि सत्वानिति।
एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं बध्नाति कर्म ॥२३॥

आत्मख्यातिः—परजीवानहं हिनस्मि न हिनस्मि दुःखयामि सुखयामि इति य एवायमज्ञानमयोऽध्यवसायो मिथ्यादृष्टेः स एव स्वयं रागादिरूपत्वात्तस्य शुभाशुभबंधहेतुः।

अथाध्यवसायं बंधहेतुत्वेनावधारयति—

अर्थ–हे आत्मन्! तेरी जो यह बुद्धि है जो मैं जीवनिकूं सुखी दुःखी करूं हूं, सो यह तेरी मूढबुद्धि है, मोहस्वरूप है। सो यह ही बुद्धि शुभ अर अशुभ कर्मनिकूं बांधे है।

टीका–परजीवनिकूं मैं हणूं हूं, दुःखी करूं हूं, सुखी करूं हूं ऐसा जो यह अज्ञानमय अध्यवसाय है, सो यह मिथ्यादृष्टिकै होय है। सो ही स्वयं रागादिरूपपणातैं तिसके शुभाशुभ-बंधका कारण है।

भावार्थ—मिथ्या अध्यवसाय बंधका कारण है। आगै मिथ्या अध्यवसायकूं बंधका कारणपणा-करि नियमरूप कहे हैं। गाथा—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एस मज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि ॥२४॥
मारमि जीवावेमिय सत्तो जं एव मज्झवसिदंते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि ॥२५॥

दुःखितसुखितान् सत्वान् करोमि यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य च बंधकं वा भवति ॥२४॥
मारयामि जीवयामि च सत्वान् यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबन्धकं वा पुण्यस्य बन्धकं वा भवति ॥२५॥

आत्मख्यातिः—य एवायं मिथ्यादृष्टेरज्ञानजन्मा रागमयोध्यवसायः स एव बंधहेतुः, इत्यवधारणीयं न च पुण्यपापत्वेन द्वित्वाद्बंधस्य तद्द्वित्वंतरसन्वेष्टव्यं ? एकेनैवानेनाध्यवसायेन दुःखयामि, मारयामि, इति सुखयामि, जीवयामीति च द्विधा शुभाशुभाहंकाररसनिर्भरतया द्वयोरपि पुण्यपापयोर्बन्धहेतुत्वस्याविरोधात्।

एवं हि हिंसाध्यवसाय एव हिंसेत्यायातं---

अर्थ—हे आत्मन्! तेरा यह अध्यवसित है-अभिप्राय है, जो मैं जीवनिकूं दुःखी सुखी करूं हूं, सो ही यह अभिप्राय पापबंधक है तथा पुण्यका बंधक है। बहुरि मैं जीवनिकूं मारूं हूं अथवा जीवाऊं हूं जो तेरा यह अध्यवसित है—अभिप्राय है, सो भी पापका बंधक है तथा पुण्यका बंधक है।

टीका—जो यह मिथ्यादृष्टिके अज्ञानतैं जाका जन्म भया ऐसा रागमय अध्यवसाय है सो ही यह बंधका कारण है, ऐसैं अवधारण करना नियम जानना। बहुरि बंधके पुण्यपापपणाकरि

दोयपणाकरि दोयपणा है, सो याके दोयपणेतैं कारणका भेद नाहीं हेरणा जो पुण्यबंधका कारण तौ अन्य है अर पापबंधका कारण किछू और है। एक ही इस अध्यवसायकरि दुःखी करूं हूं, मारूं हूं ऐसा तथा सुखी करूं हूं, जीवाऊं हूं ऐसा दोय प्रकार शुभ अशुभ अहंकाररसकरि भरयापणाकरि पुण्यपाप दोऊहीनिका बंधका कारणपणाका अवरोध है। एक ही अध्यवसायकरि पुण्यपाप दोऊका बंध है।

भावार्थ—यह अज्ञानमय अध्यवसाय ही बंधका कारण है। तहां शुभ अध्यवसाय तौ जीवावना सुखी करना ऐसा है बहुरि मारना दुःखी करना यह अशुभ अध्यवसाय है। सो अहंकाररूप मिथ्याभाव दोऊहीमैं है, तातैं ऐसा न जानना, जो शुभका कारण तौ और है अर अशुभका कारण तौ और है। अज्ञानमयपणाकरि दोऊ अध्यवसाय एक ही है। आगे कहे हैं जो ऐसैं होतैं अध्यवसाय ही बंधका कारण होतैं जो यह हिंसाका अध्यवसाय है, सो ही हिंसा है, यह आया। गाथा—

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारे हि माव मारे हि।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥२६॥

अध्यवसितेन बन्धः सत्वान् मारयतु मा वा मारयतु।
एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयनयस्य ॥२६॥

आत्मख्यातिः—परजीवानां स्वकर्मोदयवैचित्र्यवशेन प्राणव्यपरोपः कदाचिद् भवतु, कदाचिन्मा भवतु। य एव हिनस्मीत्यहंकाररसनिर्भरो हिंसायामध्यवसायः स एव निश्चयतस्तस्य बंधहेतुः, निश्चयेन परभावस्य प्राणव्यपरोपस्य परेण कर्तुमशक्यत्वात्।

अथाध्यवसायं पापपुण्योर्वन्धहेतुत्वेन दर्शयति—

अर्थ—निश्चयनयका यह पक्ष है, जो जीवनिकूं मारो अथवा मति मारो, यह जीवनिकै कर्मबंध है सो अध्यवसायहीकरि है, यह ही बंधका संक्षेप है।

टीका—परजीवनिके प्राणनिका वियोग है सो अपना कर्मका उदयका विचित्रपणाका वशिकरि है। सो कदाचित् होऊ अथवा कदाचित् मति होऊ जो "यह मैं हणूं हौं" ऐसा अहंकाररसकरि भरया हिंसाके विषैं अध्यवसाय है—अभिप्राय है सो ही निश्चयतैं तिस अभिप्रायवाले पुरुषके बंधका कारण है, जातैं निश्चयनयकी पक्षमें परका भाव जो प्राणनिका वियोग करना, सो परके करनेकूं असमर्थपणा है।

भावार्थ—निश्चयनयकरि परका प्राणनिका वियोग करना परका किया होय नाहीं, ताके कर्मके उदयकी विचित्रताकरि कदाचित् होय है, कदाचित् नाहीं होय है तातैं जो ऐसा माने है—अहंकार करे है "जो मैं परजीवकूं मारूं हूं" सो यह अहंकाररूप अध्यवसाय है। सो अज्ञानमय है। सो यह ही हिंसा है, अपना विशुद्धचैतन्य प्राणका घात है अर यह ही बंधका कारण है, यह निश्चयनयका मत है। इहां व्यवहारनयकूं गौणकरि कह्या जानना, सो कथंचित् जानना। सर्वथा एकांतपक्ष है सो मिथ्यात्व है। आगै यह हिंसाका अध्यवसाय कह्या तैसैं ही तिसहीकूं अन्य कार्यनिविषैं भी पुण्यपापका बंधका कारणपणाकरि प्रत्यक्ष दिखावे है। गाथा—

एवमलिये अदत्ते अवह्मचेरे परिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झदे पावं ॥२७॥
तहय अचोज्जे सच्चे वंभे अपरिगहत्तणो चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झदे पुण्णं ॥२८॥

एवमलीकेऽदत्तेऽब्रह्मचर्ये परिग्रहे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पापं ॥२७॥
तथापि च सत्ये दत्ते ब्रह्मणि, अपरिग्रहत्वे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पुण्यं ॥२८॥

आत्मख्यातिः—एवमयमज्ञानात् यो यथा हिंसायां विधीयतेऽध्यवसायः, तथा असत्यादत्ताब्रह्मपरिग्रहेषु यश्च विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पापबंधहेतुः यस्तु अहिंसायां यथा विधीयते, अध्यवसायः । तथा यश्च सत्यदत्तब्रह्मापरिग्रहेषु विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पुण्यबंधहेतुः ।

न च वाह्यवस्तु द्वितीयोऽपि बंधहेतुरिति शक्यं वक्तुं—

अर्थ--एवं कहिये पूर्वें हिंसाका अध्यवसाय कह्या तैसे ही अलीक कहिये असत्य अदत्त कहिये चोरी आदिकरि विना दिया परधनका लेना, अब्रह्मचर्य कहिये स्त्रीका संसर्ग, परिग्रह कहिये धन-धान्यादिक इनिविषैं जो अध्यवसान कीजिये; तिसकरि तौ पापका बंध होय है। वहुरि तैसे ही सत्यविषैं, दिया लेनेविषैं, ब्रह्मचर्यविषैं, अपरिग्रहविषैं जो अध्यवसान कीजिये, तिसकरि पुण्यका बंध होय है।

टीका—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार यह अज्ञानतैं जो जैसें हिंसाविषैं अध्यवसाय करिये तैसैं ही असत्य, अदत्त, अब्रह्म, परिग्रह इनिविषैं जो अध्यवसाय कीजिये, सो सर्व ही केवल एक पाप-बंधहीका कारण है। वहुरि जो अहिंसाविषैं जैसे कीजिये तैसें ही सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरि-ग्रह इनिविषैं भी अध्यवसाय कीजिये, सो सर्व ही केवल एक पुण्यबंधहीका कारण है।

भावार्थ–जैसा हिंसाविषैं अध्यवसाय पापबंधका कारण कह्या, तैसा असत्य, अदत्त, अब्रह्म परिग्रह इनिविषैं अध्यवसाय पापबंधका कारण है। वहुरि जैसा अहिंसाविषैं अध्यवसाय पुण्यका कारण है, तैसा सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहपणा इनिविषैं पुण्यबंधका कारण है। ऐसें पांच पापका अभिप्राय तौ पापबंध करे है अर पांच व्रत एकदेश सर्वदेशविषैं अभिप्राय है सो पुण्यबंध करे है। आगैं कहे हैं 'जो वाह्यवस्तु है, सो दूसरा बंधका कारण है नाहीं' कोई जानेगा कि, जैसा अध्यवसान बंधका कारण है, तैसा वाह्यवस्तु है सो भी दूसरा बंधका कारण है' सो ऐसें नाहीं है। एक अध्यवसाय ही बंधका कारण है। गाथा—

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं ।
ण हि वत्थुदो दु वंधो अज्झवसाणेण वंधोत्ति ॥२९॥

वस्तु प्रतीत्य यत्पुनरध्यवसानं तु भवति जीवानां ।
न च वस्तुतस्तु बंधोऽध्यवसानेन बन्धोस्ति ॥२९॥

आत्मख्यातिः---अध्यवसानमेव बंधहेतुर्न तु वाह्यवस्तु तस्य बंधहेतोरध्यवसानस्य हेतुत्वेनैव चरितार्थत्वात् । तर्हि किमर्थो वाह्यवस्तुप्रतिषेधः ? अध्यवसानप्रतिषेधार्थः । अध्यवसानस्य हि वाह्यवस्तु, आश्रयभूतं । न हि बाह्यवस्त्वनाश्रित्य, अध्यवसानमात्मानं लभते । यदि बाह्यवस्त्वनाश्रित्यापि, अध्यवसानं जायेत तदा यथा वीरसूसुतस्याश्रयभूतस्य सद्भावे वीरसूनुं हिनस्मीत्यध्यवसायो जायते, तथा वंध्यासुतस्याश्रयभूतस्यासद्भावेऽपि वंध्यासुतं हिनस्मीत्यध्यवसायो जायेत । न च जायते । ततो निराश्रयं नास्त्यध्यवसानमिति नियमः । तत एव चाध्यवसानाश्रयभूतस्य वाह्यवस्तुनोऽत्यंतप्रतिषेधः, हेतुप्रतिषेधनैव हेतुमत्प्रतिषेधात् । न च बंधहेतुहेतुत्वे सत्यपि बाह्यं वस्तु बंधहेतुः स्यात् ईर्यासमितिपरिणतयतींद्रपदव्यापाद्यमानवेगापतत्कालचोदितकुलिङ्गवत् बाह्यवस्तुनो बन्धहेतुहेतोरबन्धहेतुत्वेन बन्धहेतुत्वस्यानैकान्तिकत्वात् । अतो न बाह्यवस्तु जीवस्यातद्भावो बन्धहेतुः । अध्यवसानमेव तस्य तद्भावो बन्धहेतुः ।

एवंविधहेतुत्वेन निर्धारितस्याध्यवसानस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावेन मिथ्यात्वं दर्शयति—

अर्थ—जीवनिकै अध्यवसान होय है सो वस्तूकूं प्रतीत्यकरि अवलंब्यकरि होय है। बहुरि वस्तुतैं बंध नाहीं है, अध्यवसानहीकरि बंध है।

टीका—अध्यवसान है सो ही बंधका कारण है। बहुरि बाह्यवस्तु है सो बंधका कारण नाहीं है । जातैं बंधका कारण जो अध्यवसान, ताका कारणपणाकरि ही बाह्यवस्तुकै चरितार्थपणा है बाह्य वस्तु तौ अध्यवसानहीका कारण है बंधका कारण नाहीं । तहां पूछे है जो बाह्यवस्तु बंधका कारण नाहीं ; तौ ताका निषेध कौन अर्थी कीजिये है ? जो बाह्यवस्तुका प्रसंग मति करो त्याग करौ । ताका समाधान करै है—जो अध्यवसानका प्रतिषेधके अर्थि बाह्यवस्तुका प्रतिषेध है-त्याग कराईए है । जातैं बाह्यवस्तु है सो अध्यवसानका आश्रयभूत है । बाह्यवस्तुका आश्रयविना अध्यवसान

अपना स्वरूपकूं नाहीं पावे है—नाहीं उपजे है। जो बाह्यवस्तूका आश्रय न लेकरि भी अध्यवसान उपजै, तौ जैसैं सुभटकी माताका पुत्र जो सुभट, ताका सद्भाव होतैं, तिसका आश्रय लेकरि काहूकै अध्यवसान होय है, जो सुभटकी माताका पुत्रकूं मैं हणूं हूं, तैसैं ही वांझका पुत्रका सद्भाव न होते भी तिसके आश्रय भी "मैं वंध्यासुतकूं मारूं हूं" ऐसा अध्यवसान उपजै? सो तो नाहीं उपजे है। सो ऐसैं विना आश्रय अध्यवसान उपजे नाहीं। वंध्याका पुत्र ही नाहीं, तौ मारनेका अध्यवसाय कैसा उपजै? तातैं. यह नियम है—जो बाह्यवस्तु विना निराश्रय अध्यवसान उपजै नाहीं, याहीतैं अध्यवसानका आश्रयभूत जो बाह्यवस्तु, ताका अत्यंत प्रतिषेध है, तातैं हेतु जो कारण, ताका प्रतिषेधकरि ही हेतुमान् जो कार्य, ताका प्रतिषेध है यह न्याय है। बाह्यवस्तु अध्यवसानका हेतु है, तातैं ताका प्रतिषेधकरि अध्यवसानका प्रतिषेध होय है। वहुरि बाह्यवस्तूके बंधका हेतु जो अध्यवसान, ताका हेतुपणा होतैं भी बाह्यवस्तु बंधका हेतु नाहीं है. यामैं व्यभिचार है। जातैं कोई मुनींद्र ईर्यासमितिरूप प्रवर्ते है ताके चरणकरि हण्या गया जो कालका प्रेर्या अतिवेगकरि शीघ्र आय पड्या कोई उडता जीव, ताके मरनेतैं मुनींद्रकूं हिंसा न लागै; तैसे अन्य वस्तु भी बंधके कारण मानै, ते अबंधके भी कारण हैं, तातैं बाह्यवस्तुकै बंधका कारणपणा माननेविषैं अनैकांतिक हेत्वाभासपणा है व्यभिचार आवै है। यातैं निश्चयकरि बाह्यवस्तुकै बंधका कारणपणा निर्बाध सिद्ध होय नाहीं। यातैं जीवकै बाह्यवस्तु अतद्भावरूप है, सो बंधका कारण नाहीं। तद्भावरूप अध्यवसान है सो ही बंधका कारण है।

भावार्थ—बंधका कारण निश्चयनयकरि अध्यवसान ही है। अर बाह्यवस्तु है सो अध्यवसानका आलंबन है। तिनिकूं आलंब्यकरि अध्यवसान उपजै है, तातैं अध्यवसानका कारण कहिये है। विनाबाह्यवस्तु निराश्रय अध्यवसान उपजे नाहीं, याहीतैं बाह्यवस्तुका त्याग कराया है। अर बंधका कारण बाह्यवस्तु कहिये, तौ यामैं व्यभिचार आवै है। जो कोई जायगां कारण

अर कोई जायगा न दीखे, ताकूं व्यभिचार कहिये । जैसैं कोई मुनि ईर्यासमितितैं यत्नतैं गमन करै था, अर ताके पादतलै कोई उडता जीव आय पड्या मरि गया, तौ ताकी हिंसा मुनींद्रकूं न लागै । सो इहां बाह्यदृष्टिकरि देखिये तौ हिंसा भई, परंतु मुनीकै हिंसाका अध्यवसान नाहीं, तातैं बंधका कारण नाहीं तैसैं अन्य भी बाह्यवस्तु जानना । अर बाह्यवस्तुविना निराश्रय अध्यवसान न होय, तातैं ताका निषेध है ही । आगै कहे हैं—जो या प्रकार बंधका कारणपणा करि निश्चयकिया जो अध्यवसान, ताकै अपनी अर्थक्रियाका करनेवालापणा नाहीं है, तातैं याकै मिथ्यापणा है । जाकै अर्थक्रियाकारिपणा नाहीं, सो ही मिथ्या जो किया चाहिये सो होय नाहीं, सो चाहि करना झूठा है, ऐसा दिखावे हैं । गाथा—

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा तुज्झ मदी णिरच्छया सा हु दे मिच्छा ॥३०॥

दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि बध्नामि तथा विमोचयामि ।
सा एषा तव मतिः निरर्थिका सा खलु अहो मिथ्या ॥३०॥

आत्मख्यातिः—परान् जीवान् दुःखयामि सुखयामीत्यादि बंधयामि वा यदेतदध्यवसानं तत्सर्वमपि परभावस्य परस्मिन्नव्याप्रियमाणत्वेन स्वार्थक्रियाकारित्वाभावात् खकुसुमं लुनामीत्यध्यवसानवन्मिथ्यारूपं केवलमात्मनोऽनर्थायैव ।

कुतो नाध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि ? इति चेत्—

अर्थ—हे भाई, तेरी ऐसी बुद्धि है, जो मैं जीवनिकूं दुःखी सुखी करूं हूं तथा बंधावूं हूं, छुडावूं हुं सो यह बुद्धि मूढमति है--मोहस्वरूप है, निरर्थक है-जाका विषय सत्यार्थ नाहीं, तातैं निश्चय करि मिथ्या है ।

टीका—परजीवनिकूं दुःखी करूं हूं, सुखी करूं हूं, इत्यादि तथा बंधाऊं हूं छुडावूं हूं इत्यादि जो यह अध्यवसान है, सो सर्व ही मिथ्या है । जातैं परभावका परविषैं व्यापार न होने-

पणाकरि स्वार्थ क्रियाकारिपणाका अभाव है। परभाव परविषैं प्रवेश करै नाहीं। तातैं जैसैं कोई कहै 'मैं आकाशका फूलकूं चूटूं हूं' ऐसा अध्यवसान करै सो झूठा होय, तैसैं मिथ्यारूप है सो केवल आपके अनर्थहीके अर्थि है, परकै किछू भी करनेवाला नाहीं है।

भावार्थ—जाका विषय नाहीं सो निरर्थक है। सो परकूं दुःखी सुखी आदि करनेकी बुद्धि करै, सो पर याका किया दुःखी सुखी होय नाहीं, तब बुद्धि निरर्थक भई, सो यह बुद्धि मिथ्या है। आगै फेरि पूछे है जो यह अध्यवसान अपनी अर्थ क्रियाका करनेवाला कैसैं नाहीं? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुचंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते किंकरोसि तुमं ॥३१॥

अध्यवसाननिमित्तं जीवा बध्यन्ते कर्मणा यदि हि।
मुच्यन्ते मोक्षमार्गे स्थिताश्च तत् किंकरोषि त्वं ॥३१॥

आत्मख्यातिः—यत्किल बंधयामि मोचयामीत्यध्यवसानं तस्य हि स्वार्थक्रिया यद्बन्धनं मोचनं जीवानां। जीवस्तु, अस्याध्यवसायस्य सद्भावेऽपि सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः, अभावान्न बध्यते न मुच्यते। सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः सद्भावात्तस्याध्यवसायस्याभावेऽपि बध्यते मुच्यते च, यतः परत्राकिंचित्करत्वान्नेदमध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि ततश्च मिथ्यैवेति भावः।

अर्थ—हे भाई! जो जीव हैं ते अध्यवसान है निमित्त जिनिकूं ऐसे कर्मकरि बंधे हैं। बहुरि मोक्षमार्गविषैं तिष्ठ्या कर्मकरि छूटे हैं। जो ऐसैं है, तौ तू कहा करेगा? तेरा तौ बांधने छोडनेका अभिप्राय विफल गया।

टीका—हे भाई! तेरी यह बुद्धि है, जो मैं प्रगटपणैं बंधाऊं हूं छुडावूं हूं ऐसा अध्यवसान है ताकी अर्थक्रिया जीवनिका बांधना छोडना है। सो जीव तौ इस अध्यवसायका सद्भाव

होते भी अपना सरागवीतरागपरिणामके अभावतैं न बंधे हैं न छूटे हैं। बहुरि अपना सरागवीतराग परिणामके सद्भावतैं तिस तेरे अध्यवसायका अभाव होते भी बंधे हैं तथा छूटे हैं, तातैं परविषैं तौ यह अकिंचित्कर है—किछू भी करनेवाला नाहीं। तातैं यह अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारि नाहीं है। तातैं मिथ्या ही है, ऐसा भाव है।

भावार्थ—जो हेतु किछू भी न करै ताकूं अकिंचित्कर कहिये है, सो यहू बांधने छोडनेका अध्यवसानतैं परविषैं किछू भी न किया। जातैं याकै नाहीं होतै तौ जीव अपने सरागवीतरागपरिणामकरि बंधमोक्षकूं प्राप्त होय। बहुरि याकै होतै भी जीव अपने सरागवीतराग परिणामके अभाव होतैं बंधमोक्षकूं नाहीं प्राप्त होय। तातैं अध्यवसान परविषैं अकिंचित्कर है, तातैं स्वार्थक्रियाकारी नाहीं, मिथ्या है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है तथा अगिले कथनकी सूचनिका रूप श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः। तत्किञ्चनापि नैवास्ति नात्माऽऽत्मानं करोति यत् ॥१॥

अर्थ—आत्मा है सो इस निष्फल निरर्थक अध्यवसायकरि मोह्या हुवा आपकूं अनेकरूप करे है। सो ऐसा पदार्थ कोई जगतमें नाहीं है—जिसरूप आपकूं नाहीं करै, सर्वहीरूप करे है।

भावार्थ--यह आत्मा मिथ्या अभिप्रायकरि भूल्या हुवा चतुर्गतिसंसारमें जेती अवस्था हैं, जेते पदार्थ हैं, तिनि सर्वस्वरूप आपकूं भया माने है। अपना शुद्धस्वरूपकूं नाहीं पहिचाने है। आगे इस अर्थकूं प्रगटरूप गाथामैं कहे हैं। गाथा--

---

नीचे लिखी पांच गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥१॥

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए ।
देवमणुवेपि सव्वे पुरणं पावं अरणेयविहं ॥३२॥

वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥२॥
मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥३॥
सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥४॥

कायेन दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ॥
वाचा दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ॥
मनसा दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्वाः ।
शस्त्रेण दुःखयामि सत्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि ।
सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि जीवाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—कायेण इत्यादि स्वकीयपापोदयेन जीवाः दुःखिताः भवंति यदि चेत् । तेषां जीवानां स्वकीयपाप-कर्मोदयभावे भवतो किमपि कर्तुं नायाति इति हेतोः मनोवचनकायैः शस्त्रैश्च जीवान् दुःखितान् करोमि इति रे

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥३३॥

दुरात्मन् त्वदीया मतिर्मिथ्या । परं किं तु स्वस्थभावच्युतो भूत्वा त्वं पापमेव बध्नासि इति ।

अर्थ—ये जीव अपने पापकर्मके उदयसे दुःखित होते हैं इसलिये हे जीव ! तेरी जो यह भावना है कि—मैंने मन वचन काय या शस्त्रसे इन्हें दुःखित किया है सो सर्व मिथ्या है कारण—यदि उनके पापकर्मका उदय नहीं हो तो तेरे प्रयत्नसे भी उनको दुःख नहीं पहुंच सक्ता ।

अथ सुखिता अपि निश्चयेन स्वकीयशुभकर्मोदये सति भवंतीति कथयति--

कायेण च वायाइव मणेण सुहिदे करेमि सत्तेति ।
एवंपि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥५॥

कायेन च वाचा वा मनसा सुखितान् करोमि सत्त्वानिति ।
एवमपि भवति मिथ्या सुखिनः कर्मणा यदि सत्वाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—स्वकीयकर्मोदयेन जीवा यदि चेत् सुखिता भवंति न च त्वदीयपरिणामेन तर्हि मनोवचनकायै-र्जीवान् सुखितानहं करोमि इति भवदीया मतिर्मिथ्या । एवं तवाध्यवसानं स्वार्थकं न भवति । परं किं तु निरुपराग-परमचिज्ज्योतिःस्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वमश्रद्दधानः, तथैवाजानन् अभावयंश्च तेन शुभपरिणामेन पुण्यमेव बध्नाति इत्यर्थः ।

अर्थ—जीव अपने शुभकर्मोदयसे सुखी होते हैं किसी दूसरे जीवके प्रयत्नसे नहीं इसलिये हे जीव ! तेरा यह सोचना कि मैंने इन्हें सुखी किया है, मिथ्या है ।

अथ स्वस्थभावप्रतिपक्षभूतेन च रागाद्यध्यवसानेन मोहितः सन्नयं जीवः समस्तमपि परद्रव्यमात्मनि नियोजयति इत्युपदिशति—

सर्वान् करोति जीवानध्यवसानेन तिर्यङ्नैरयिकान् ।
देवमनुजांश्च सर्वान् पुण्यं पापं च नैकविधं ॥३२॥
धर्माधर्मं च तथा जीवाजीवौ अलोकलोकं च ।
सर्वान् करोति जीवः अध्यवसानेन आत्मानं ॥३३॥

आत्मख्यातिः—यथायमेव क्रियागर्भहिंसाध्यवसानेन हिंसकं, इतराध्यवसानैरितरं च; आत्मात्मानं कुर्यात्, तथा
विपच्यमाननारकाध्यवसानेन नारकं, विपच्यमानतिर्यगध्यवसानेन तिर्यंचं, विपच्यमानमनुष्याध्यवसानेन मनुष्यं, विपच्य-
मानदेवाध्यवसानेन देवं, विपच्यमानसुखादिपुण्याध्यवसानेन पुण्यं, विपच्यमानदुःखादिपापाध्यवसानेन पापमात्मानं
कुर्यात् । तथैव च ज्ञायमानधर्माध्यवसानेन धर्मं, ज्ञायमानाधर्माध्यवसानेनाधर्मं, ज्ञायमानाजीवाध्यवसानेन जीवं, ज्ञाय-
मानाजीवाध्यवसानेनाजीवं, ज्ञायमानलोकाध्यवसानेन लोकं, ज्ञायमानालोकाकाशाध्यवसानेनालोकाकाशमात्मानं कुर्यात् ।

अर्थ—जीव है सो अध्यवसानकरि आपकै तिर्यंच नारक देव मनुष्य ए सर्व ही पर्याय हैं
तिनिकूं करे है। बहुरि पुण्य पाप हैं तिनि सर्वहीकूं अनेक प्रकार आपकै करे है। बहुरि धर्म
अधर्म तथा जीव अजीव तथा लोक अलोक इनि सर्वहीकूं इस अध्यवसानकरि आपरूप करे है ।

टीका—जैसैं यह आत्मा पूर्वोक्त क्रिया है गर्भ कहिये मध्य जाकै ऐसा हिंसाका अध्यवसानकरि
आपकूं हिंसक करे है। बहुरि अहिंसाका अध्यवसानकरि अहिंसक करे है। बहुरि अन्य अध्य-
वसानकरि अन्य बहुत प्रकार करे है। तैसैं ही विपच्यमान कहिये उदयमें आया जो नारकका
अध्यवसान, ताकरि आपकूं नारकी करे है। बहुरि उदय आया जो तिर्यंचका अध्यवसान, ताकरि
आपकूं तिर्यंच करे है। बहुरि उदय आया जो मनुष्यका अध्यवसान, ताकरि आपकूं मनुष्य करे
है। बहुरि उदय आया जो देवका अध्यवसान, ताकरि आपकूं देव करे है। बहुरि उदय आया
जो सुख आदि पुण्यका अध्यवसान, ताकरि पुण्यरूप आपकूं करे है। बहुरि उदय आया जो दुःख
आदि पापका अध्यवसान, ताकरि आपकूं पापरूप करे है। तैसैं ही जाननेमें आया जो धर्म,
ताका अध्यवसानकरि आपकूं धर्मरूप करे है। बहुरि जाण्या हुवा अधर्मका अध्यवसानकरि

आपकूं अधर्मरूप करे है। बहुरि जाण्या हुवा अन्य जीवका अध्यवसानकरि आपकूं अन्यजीवरूप करे है। बहुरि जाण्या हुवा पुद्गलका अध्यवसानकरि आपकूं पुद्गल करे है। बहुरि जाण्या हुवा लोकाकाशका अध्यवसानकरि आपकूं लोकाकाश करे है। बहुरि जाण्या हुवा अलोकाकाशका अध्यवसानकरि आपकूं अलोकाकाश करे है। ऐसैं सर्वस्वरूप आपकूं अध्यवसानकरि करे है।

भावार्थ--यहू अध्यवसान अज्ञानरूप है, तातैं अपना परमार्थरूप नाहीं जानना। आत्मा आपकूं अनेक अवस्थारूप करे है, तिनिविषैं आपा मानि प्रवर्ते है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं तथा अगिले कथनकी सूचनिका है।

इन्द्रवज्राछन्दः

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावादात्मानमात्मा विदधाति विश्वम्।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०॥

अर्थ--यह आत्मा समस्त द्रव्यनितैं भिन्न है, तौऊ जिस अध्यवसायके प्रभावतैं आपकूं समस्तस्वरूप करे है, सो यह अध्यवसाय कैसा है? मोह है एक कंद जाका। सो यह अध्यवसाय जिनिकै नाहीं है, ते यति हैं मुनि हैं। आगे कहे हैं यह अध्यवसाय जिनिकै नाहीं ते मुनि कर्मतैं नाहीं लिपे हैं। गाथा--

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥३४॥

एतानि न संति येषामध्यवसानान्येवमादीनि।
तेऽशुभेन शुभेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्यंति ॥३४॥

आत्मख्यातिः--एतानि किल यानि त्रिविधान्यध्यवसानानि समस्तान्यपि शुभाशुभकर्मबन्धनिमित्तानि स्वयमज्ञानादिरूपत्वात्। तथा हि यदिदं हिनस्मीत्याद्यध्यवसानं तत्त्वज्ञानमयत्वेन आत्मनः सदहेतुकज्ञप्त्यैकक्रियस्य रागद्वेष-

विपाकमयीनां, हननादिक्रियाणां च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्माऽदर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं, विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं । यत्पुनरेष धर्मो ज्ञायत इत्याद्यध्यवसानं तदप्यज्ञानमयत्वेनात्मनः सदहेतुकज्ञानैकरूपस्य ज्ञेयमयानां धर्मादिरूपाणां च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्मादर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं । ततो बंधनिमित्तान्येवैतानि समस्तान्यध्यवसानानि । येषामेवैतानि न विद्यंते त एव मुनिकुञ्जराः । केचन सदहेतुकज्ञप्त्येकक्रियं सदहेतुकज्ञायकैकभावं सदहेतुकज्ञानैकरूपं च विविक्तात्मानं जानंतः सम्यक्पश्यंतोऽनुचरंतश्च स्वच्छस्वच्छंदोद्यदमंदांतर्ज्योतिषोऽत्यंतमज्ञानादिरूपत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा कर्मणा खलु न लिप्येरन् ।

अर्थ--ए पूर्वोक्त अध्यवसान जिनिकै नाहीं हैं तथा या प्रकारके अन्य भी अध्यवसान जिनिकै नाहीं हैं, ते मुनिराज अशुभ तथा शुभकर्मकरि नाहीं लिपे हैं ।

टीका–ए पूर्वोक्त अध्यवसान हैं ते तीन प्रकार हैं । अज्ञान अदर्शन अचारित्र । ऐसे ते समस्त ही शुभ अशुभ कर्मबंधके निमित्त हैं । जातैं ए आप स्वयं अज्ञानादिरूप हैं । कैसे हैं :सो कहिये हैं । जो यह मैं परजीवकूं हणूं हूं इत्यादिक अध्यवसाय है सो अज्ञानादिरूप होय है । जातैं आत्मा तौ ज्ञायक है, तिसपणाकरि ज्ञप्तिक्रियामात्र ही है, तातैं सद्रूपद्रव्यदृष्टिकरि अहेतुक काहूतैं उपज्या नाहीं ऐसा नित्यरूप ज्ञप्ति कहिये जाननेमात्र ही है एक क्रिया जाकै ऐसा: है । बहुरि हनना घातना आदि क्रिया हैं ते राग द्वेषका उदयमय हैं । ऐसैं आत्माके अर घातने आदि क्रियाके विशेष न जाननेकरि भिन्न आत्माकूं जान्या नाहीं, तातैं मैं परजीवकूं घातूं हूं ऐसा अध्यवसान अज्ञान है । बहुरि ऐसे ही भिन्न न्यारा आत्माका न देखना, श्रद्धान न होना तातैं अध्यवसान मिथ्यादर्शन है । बहुरि ऐसे ही भिन्न न्यारा आत्माका अनाचरणतैं अध्यवसान ही अचारित्र है । बहुरि यह धर्मद्रव्य है सो मोकरि जानिये है ऐसा अध्यवसाय है, सो भी अज्ञानादिरूप ही है । जातैं आत्मा तौ ज्ञानमय है, तिसपणा करि ज्ञानमात्र ही है । जातैं सद्रूपद्रव्यदृष्टिकरि अहेतुक कहिये जाका कारण कोऊ नाहीं ऐसा ज्ञानमात्र हो है एकरूप जाका ऐसा है ।

बहुरि धर्मादिकरूप हैं ते ज्ञेयमय हैं। ऐसैं ज्ञानज्ञेयका विशेष न जाननेकरि भिन्न न्यारा आत्माका अज्ञानतें मैं धर्मकूं जानूं हूं ऐसा भी अज्ञानरूप अध्यवसान है। बहुरि भिन्न आत्माका न देखनेकरि श्रद्धान न होनेकरि यह अध्यवसान मिथ्यादर्शन है। बहुरि भिन्न आत्माका अनाचरणतें यह अध्यवसान अचारित्र है। तातैं ए अध्यवसान हैं ते समस्त ही बंधके निमित्त हैं। सो जिनिकै ए अध्यवसान विद्यमान नाहीं हैं, तेही मुनि प्रधान हैं। तिनिकूं मुनिकुञ्जर कहिये। ते केई विरले हैं। ते कैसे हैं ? सर्व अन्यद्रव्यभावनितैं भिन्न आत्मा सत्तारूप द्रव्यदृष्टीकरि काहूंतैं उपज्या नाहीं, तातैं अहेतुक एक ज्ञायकभावस्वरूप अर सत्ता अहेतुक एकज्ञानरूप ऐसा आत्माकूं जानते संते हैं। बहुरि तिसहीकूं सम्यक्प्रकार देखते श्रद्धान करते संते हैं। बहुरि तिसहीकूं आचरते संते हैं। बहुरि निर्मल स्वच्छंद स्वाधीनप्रवृत्तिरूप उदयकूं प्राप्त होता अमंदप्रकाशरूप है अंतरंगज्योतिःस्वरूप जिनिकै ऐसे हैं। तातैं अज्ञान आदिके अत्यंत अभावतैं शुभ तथा अशुभकर्मकरि ते नाहीं लिपे हैं।

भावार्थ—यह अध्यवसान हैं ते मैं परकूं हणूं हूं ऐसे हैं, तथा मैं परद्रव्यकूं जानूं हूं ऐसे हैं, सो आत्माके अर रागादिकके तथा आत्माके अर ज्ञेयरूप अन्यद्रव्यके जेतैं भेद न जाने, तेतैं प्रवर्तें हैं। सो भेदविज्ञानविना मिथ्याज्ञानरूप हैं तथा मिथ्यादर्शनरूप हैं तथा मिथ्याचारित्ररूप हैं। ऐसे तीन प्रकार प्रवर्तें हैं। सो जिनिकै नाहीं ते मुनिकुंजर हैं। ते आत्माकूं सम्यक् जाने हैं, सम्यक् श्रद्धे हैं, सम्यक् आचरे हैं। तातैं अज्ञानके अभावतैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप भये संते कर्मनितैं नाहीं लिपे हैं। आगे पूछे है कि अध्यवसान बारबार कहते आये, सो यह अध्यवसान कहा है ? याका रूप नीकै समझे नाहीं ऐसैं पूछे अध्यवसानका रूप प्रगटकरि दिखावे हैं। गाथा—

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मदीय विण्णाणं ।
इक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥३५॥

बुद्धिर्व्यवसायोऽपि वा अध्यवसानं मतिश्च विज्ञानं ।
एकार्थमेव सर्वं चित्तं भावश्च परिणामः ॥३५॥

आत्मख्यातिः—स्वपरयोरविवेके सति जीवस्याध्यवसितिमात्रमध्यवसानं । तदेव च बोधनमात्रत्वाद् बुद्धिः । व्यवसानमात्रत्वाद् व्यवसायः । मननमात्रत्वान्मतिज्ञानं । चेतनामात्रत्वाच्चित्तं । चितोभवनमात्रत्वाद् भावः । चितः परिणमनमात्रत्वात् परिणामः ।

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई । तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है ।

जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणद असुहसुहजणायं ।
अप्पसरूवा रिद्धी जाय ण हियए परिप्फुरइ ॥

यावत्संकल्पविकल्पौ तावत्कर्म करोत्यशुभशुभजनकं ।
आत्मस्वरूपा ऋद्धिः यावत् न हृदये परिस्फुरति ॥

तात्पर्यवृत्तिः—यावत्कालं बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेतिरूपं संकल्पं करोति अभ्यंतरे हर्षविषादरूपं विकल्पं च करोति तावत्कालमनंतज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मानं हृदये न जानाति । यावत्कालमित्थंभूत आत्मा हृदये न परिस्फुरति, तावत्कालं शुभाशुभजनकं कर्म करोतीत्यर्थः ।

अर्थ—जब तक आत्मा आत्मासे भिन्न शरीर पुत्र और स्त्री आदिमें यह मेरे हैं इस प्रकार संकल्प करता है तथा अन्तरंगमें हर्ष विषादरूप विकल्प करता है तबतक अनंतज्ञानादि संपत्तिरूप आत्माको हृदयमें नहीं जानता है और तबतक शुभाशुभ कर्मको करता रहता है ।

अर्थ—बुद्धि व्यवसाय बहुरि अध्यवसान बहुरि मति विज्ञान चित्त भाव बहुरि परिणाम ए सर्व एकार्थ ही हैं, नाम भेद है, इनिका अर्थ न्यारा नाहीं।

टीका—आपका अर परका दोऊका भेदज्ञान न होते संते जो जीवकी अध्यवसिति कहिये निश्चितमात्र होय सो अध्यवसान है। सो ही बोधनमात्रपणातैं बुद्धि है बहुरि सो ही व्यवसान कहिये निश्चयमात्रपणातैं व्यवसाय है। सो ही जाननेमात्रपणातैं मति है। बहुरि सो ही विज्ञप्ति-मात्रपणातैं विज्ञान है। बहुरि सो ही चेतनमात्रपणातैं चित्त है। बहुरि सो ही चेतनका भवन-मात्रपणातैं भाव है। बहुरि सो ही परिणमनमात्रपणातैं परिणाम है। ए सर्व ही एकार्थ हैं।

भावार्थ—ए बुद्धि आदि आठ नाम कहे, ते सर्व ही चेतन आत्माके परिणाम हैं। सो जेतैं आपापरका भेदज्ञान न होय तेतैं परविषैं अर आपविषैं एकपणाका निश्चयरूप बुद्धि आदिक होय हैं। सो ही अध्यवसान नाम है। आगै अगिले कथनकी सूचनिकाके अर्थरूप काव्य कहे हैं, "जो अध्यवसान त्यागनेयोग्य कह्या है, सो तहां ऐसी संभावना है, जो व्यवहारका त्याग कराया है, निश्चयनयका ग्रहण कराया है" ऐसैं कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥११॥

अर्थ—सर्व ही वस्तुनिविषैं जो समस्त अध्यवसान है, सो जिनभगवान् त्यागने योग्य कह्या है। सो आचार्य कहे हैं, हम ऐसे माने हैं "जो परके आश्रय प्रवर्तता जो व्यवहार सो सर्व ही छुडाया है" तातैं हम उपदेश करे हैं—जो सत्पुरुष हैं, ते सम्यक्प्रकार एक निश्चयहीकूं निष्कम्प जैसैं होय तैसैं निश्चल अंगीकार करिके अर शुद्धज्ञानघनस्वरूप अपना महिमा आत्मस्वरूप, ताविषैं थिरता क्यों नाहीं धारे हैं ?

भावार्थ—जिनेश्वर देव अन्य पदार्थनिविषैं आत्मबुद्धिरूप अध्यवसान छुडाया है, सो यह

पराश्रित सर्व ही व्यवहार छुडाया है ऐसें जानूं, तातें शुद्धज्ञानस्वरूप अपना आत्मा, ताविषें थिरता राखियो, ऐसा शुद्धनिश्चयका ग्रहणका उपदेश है । आचार्य आश्चर्य भी किया है—जो भगवान् अध्यवसानकूं छुडाया, तो अब सत्पुरुष याकूं छोडि अपने स्वरूपविषें क्यों नाहीं तिष्ठे हैं ? यह हमारे अचिरज है । आगे इस अर्थकूं गाथामें कहे हैं गाथा—

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥३६॥

एवं व्यवहारनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन ।
निश्चयनयसंलीना मुनयः प्राप्नुवन्ति निर्वाणं ॥३६॥

आत्मख्यातिः—आत्माश्रितो निश्चयनयः, पराश्रितो व्यवहारनयः । तत्रैवं निश्चयनयेन पराश्रितं समस्तमध्यवसानं बंधहेतुत्वेन मुमुक्षोः प्रतिषेधयता व्यवहारनय एव किल प्रतिषिद्धः, तस्यापि पराश्रितत्वाविशेषात् । प्रतिषेध्य एवं चायं, आत्माश्रितनिश्चयनयाश्रितानामेव मुच्यमानत्वात्, पराश्रितव्यवहारनयस्यैकांतेनामुच्यमानेनाभव्येनाश्रियमाणत्वाच्च ।

कथमभव्येनाश्रियते व्यवहारनयः ? इति चेत्—

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार अध्यवसानरूप व्यवहारनय है, सो निश्चयनयकरि प्रतिषेधरूप जानूं । जे मुनिराज निश्चयके आश्रित हैं, ते निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ।

टीका—इहां निश्चयनय है सो तो आत्माकूं आश्रित है । बहुरि परकूं आश्रित है सो व्यवहारनय है । सो जैसें परके आश्रित समस्त अध्यवसान परकूं अर आपकूं एक मानना सो बंधका कारणपणाकरि मोक्षके इच्छककूं छुडावता जो निश्चनय, ताकरि तैसें ही निश्चयतें व्यवहारनय ही प्रतिषेध्या है छुडाया है । जातें जैसें अध्यवसान पराश्रित है, तैसें व्यवहारनय भी पराश्रित है, यामें विशेष नाहीं । जातें ऐसा सिद्ध होय है, जो यह व्यवहारनय प्रतिषेधनेयोग्य ही है ।

जातैं जे आत्माश्रित निश्चयनयकूं आश्रितपुरुष हैं, तिनिकै ही कर्मतैं छूटवापना है। बहुरि पराश्रित जो व्यवहारनय ताकै तौ एकांतकरि कर्मतैं नाहीं छूटता जो अभव्य, ताकरि भी आश्रीयमाणपणा है।

भावार्थ—आत्माकै परके निमित्ततैं अनेक भाव होय हैं, ते सर्व व्यवहारनयके विषय हैं, तातैं व्यवहारनय तौ पराश्रित है। अर जो एक अपना स्वाभाविकभाव है, सो निश्चयनयका विषय है। तातैं निश्चयनय आत्माश्रित है। सो अध्यवसान भी व्यवहारनयका ही विषय है। तातैं अध्यवसानका त्याग सो व्यवहारनयका ही त्याग है। सो निश्चयनयकूं प्रधानकरि व्यवहार-नयका त्यागका उपदेश है। जातैं जे निश्चयके आश्रय प्रवर्तें हैं, ते तौ कर्मतैं छूटे हैं अर जे एकांतकरि व्यवहारनयहीके आश्रय प्रवर्तें हैं, ते कर्मतैं कबहू नाहीं छूटे हैं। आगे पूछे है, जो अभव्यकरि भी व्यवहारनय कैसैं आश्रय कीजिये है? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

वदसमिदी गुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहिं पणत्तं।
कुव्वंतोवि अभविओ अण्णाणी मिच्छदिट्ठीय ॥२७॥

व्रतसमितिगुप्तयः शीलतपो जिनवरैः प्रज्ञप्तं।
कुर्वन्नप्यभव्योऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु ॥२७॥

आत्मख्यातिः—शीलतपःपरिपूर्णं त्रिगुप्तिपञ्चसमितिपरिकलितमहिंसादिपंचमहाव्रतरूपं, व्यवहारचारित्रं, अभव्योऽपि कुर्यात् तथापि स निश्चारित्रोऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिरेव निश्चयचारित्रहेतुभूतज्ञानश्रद्धाशून्यत्वात्।

तस्यैकादशांगज्ञानमस्ति ? इति चेत्

अर्थ—व्रत समिति गुप्ति शील तप जिनेश्वरदेवने कहे हैं। तिनिकूं करता संता भी अभव्य-जीव है सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

टीका—शीलतपकरि परिपूर्ण, तीन गुप्ति पांच समितिकरि संयुक्त, अहिंसादिक पांच महा-

व्रतरूप ऐसा व्यवहारचारित्रकूं अभव्य भी करे है। तौऊ सो अभव्य चारित्रकरि रहित ही है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। जातैं निश्चयचारित्रका कारण स्वरूप जो ज्ञान श्रद्धान, ताकरि ताकै शून्यपणा है।

भावार्थ—अभव्य जीव महाव्रत समिति गुप्तिरूप व्यवहारचारित्र पालै तौऊ निश्चयसम्यग्ज्ञान श्रद्धान विना सो सम्यक्चारित्र नाम न पावे है। तातैं सो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही रहे है। आगै शिष्य कहे है, "जो ताकै ग्यारह अंगका ज्ञान होय है," ताकूं अज्ञानी कैसैं कह्या? ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥३८॥

मोक्षमश्रद्दधानोऽभव्यसत्त्वस्तु योधीयीत।
पाठो न करोति गुणमश्रद्दधानस्य ज्ञानं तु ॥३८॥

आत्मख्यातिः—मोक्षं हि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते, ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः, ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

तस्य धर्मश्रद्धानमस्तीति चेत्—

अर्थ—जो अभव्यजीव है, सो शास्त्रका पाठ पढे है परंतु मोक्षतत्त्वका श्रद्धानकूं नाहीं करता संता है, तातैं सो ज्ञान श्रद्धान नाहीं करता पुरुषकै गुण नाहीं करे है।

टीका—अभव्यजीव है सो प्रथम तो निश्चयकरि मोक्षकूं नाहीं श्रद्धान करे है। जातैं शुद्धज्ञानमय जो आत्मा, ताका ज्ञानकरि अभव्यकै शून्यपणा है, अभव्यकै शुद्धात्माका ज्ञान होय

नाहीं तातैं अभव्य ज्ञानकूं भी नाहीं श्रद्धानरूप करे है। बहुरि ज्ञानकूं नाहीं श्रद्धान करता संता अभव्य है सो आचारांगकूं आदि लेकरि ग्यारह अंगरूप श्रुतकूं पढता संता भी शास्त्रका पढनेका जो गुण है, ताका अभावतैं ज्ञानी नाहीं होय है। शास्त्र पढनेका यह गुण है, जो भिन्न वस्तुभूत ज्ञानमय आत्माका ज्ञान होय सो तिस भिन्नवस्तुभूत ज्ञानकूं नाहीं श्रद्धान करता जो अभव्य, ताकै शास्त्रके पढनेकरि आत्मज्ञान करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है। तातैं ताकै शास्त्र पढनेका सो भिन्न आत्माका जानना गुण है सो नाहीं है। तातैं सांचे ज्ञानश्रद्धानके अभावतैं सो अभव्य अज्ञानी ही है, यह नियम है।

भावार्थ—अभव्य जीव ग्यारह अंग पढै तौऊ ताकै शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान न होय, तातैं ताकै शास्त्र पढना गुण न किया, तातैं सो अज्ञानी ही है। आगे शिष्य फेरि कहे हैं 'तिस अभव्यके धर्मका तौ श्रद्धान होय है, सो कैसैं निषेधिये ?' ताका उत्तर कहे हैं। गाथा—

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणोवि फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं णहु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥३९॥

श्रद्दधाति प्रत्येति च रोचयति तथा पुनश्च स्पृशति।
धर्मं भोगनिमित्तं न खलु स कर्मक्षयनिमित्तं ॥३९॥

आतमख्यातिः—अभव्यो हि नित्यकर्मफलचेतनारूपं वस्तु श्रद्धत्ते, नित्यज्ञानचेतनामात्रं न तु श्रद्धत्ते नित्यमेव भेदविज्ञानानर्हत्वात्। ततः स कर्ममोक्षनिमित्तं ज्ञानमात्रं भूतार्थं धर्मं न श्रद्धत्ते भोगनिमित्तं शुभकर्ममात्रमभूतार्थमेव श्रद्धत्ते। तत एवासौ, अभूतार्थधर्मश्रद्धानप्रत्ययनरोचनस्पर्शनैरुपरितनग्रैवेयकभोगमात्रमास्कंदन्न पुनः कदाचनापि विमुच्यते ततोऽस्य भूतार्थधर्मश्रद्धानाभावात्, श्रद्धानमपि नास्ति एवं सति तु निश्चयनयस्य व्यवहारनयप्रतिषेधो युज्यत एव।

कीदृशौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत्—

अर्थ—सो अभव्य जीव धर्मकूं श्रद्धान करे है, प्रतीति करे है, रोचे है, तथा स्पर्शे है। परंतु

संसारके भोगके निमित्त धर्म है ताकूं ही श्रद्धे है, ताहीकूं प्रतीति करे है, ताहीकूं रोचे है, ताहीकूं स्पर्शे है। अर कर्मक्षयका निमित्त धर्म है ताकूं नाहीं श्रद्धे है, नाहीं प्रतीति करे है, अर कर्मक्षयका निमित्त धर्म है ताकूं नहीं रोचे है, नाहीं स्पर्शे है।

टीका—अभव्य जीव है सो नित्य ही कर्मफलचेतनारूप वस्तूकूं श्रद्धे है। बहुरि नित्यज्ञानचेतनामात्र वस्तूकूं नाहीं श्रद्धे है। जातैं अभव्य जीव नित्य ही आपापरका भेदविज्ञानके योग्य नाहीं है; तातैं सो अभव्य ज्ञानमात्र भूतार्थ सत्यार्थ धर्म जो कर्मक्षयका निमित्त है, ताकूं नाहीं श्रद्धे है। अर शुभकर्ममात्र असत्यार्थ धर्म है, सो भोगका निमित्त है, ताकूं श्रद्धे है; तातैं ही यहू अभव्य अभूतार्थ धर्मका श्रद्धान प्रतीति रोचना स्पर्शना इनिकरि उपरिले ग्रैवेयकताईंके भोगमात्रनिकूं पावे है, बहुरि कर्मतैं कदाचित् भी नाहीं छूटे है। तातैं याकै भूतार्थ सत्यार्थ धर्मका श्रद्धानका अभावतैं साचा श्रद्धान भी नाहीं है। ऐसैं होतैं निश्चयनयकै व्यवहारनयका प्रतिषेध युक्त ही है।

भावार्थ—अभव्यजीव कर्मफलचेतनाकूं जाने है अर ज्ञानचेतनाकूं जाने नाहीं, जातैं याकै भेदज्ञान होनेकी योग्यता नाहीं है, तातैं शुद्ध आत्मिकधर्मका श्रद्धान याकै नाहीं अर शुभकर्महीकूं धर्म श्रद्धे है, ताका फल ग्रैवेयकताईंके भोग पावे है, अर कर्मका क्षय नाहीं होय है, तातैं याकै सत्यार्थधर्मका भी श्रद्धान न कहिये अर याहीतैं निश्चयनयकै व्यवहारनयका निषेध है। इहां एता और जानना—जो यह हेतुवादरूप अनुभवप्रधान ग्रंथ है, तातैं भव्य अभव्यका अनुभवकी अपेक्षा निर्णय है अर यह ही अहेतुवाद आगमतैं मिलाइये तब अभव्यके सूक्ष्म केवलीगम्य ऐसा ही व्यवहारनयकी पक्षका आशय रहिजाय है, सो छद्मस्थके अनुभवगोचर नाहीं भी होय है, परंतु सर्वज्ञदेव जाने है। ताकै केवलव्यवहारकी पक्षतैं सर्वथा एकांतरूप मिथ्यात्व रहै, तातैं अभव्यका यहै आशय सर्वथा न मिटै, तातैं अभव्य ही है। आगे पूछे हैं, जो निश्चयनय तौ व्यवहारका प्रतिषेधक कह्या अर निश्चयके व्यवहारनय प्रतिषेधनेयोग्य कह्या, सो

ए दोऊ ही कैसैं हैं ? ऐसैं पूछे निश्चयव्यवहारका स्वरूप प्रगट कहे हैं । गाथा—

आयारादीणाणं जीवादीदंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥४०॥
आदा खु मज्झणाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥४१॥

आचारादिज्ञानं जीवादिदर्शनं च विज्ञेयं ।
षट्जीवानां रक्षा भणति चरित्रं तु व्यवहारः ॥४०॥
आत्मा खलु मम ज्ञानमात्मा मे दर्शनं चरित्रं च ।
आत्मा प्रत्याख्यानं आत्मा मे संवरो योगः ॥४१॥

आत्मख्यातिः—आचारादिशब्दश्रुतं ज्ञानस्याश्रयभूतत्वात् ज्ञानं, जीवादयो नवपदार्था दर्शनस्याश्रयत्वाद्दर्शनं, षट्जीवनिकायश्चारित्रस्याश्रयत्वात् चारित्रं, व्यवहारः । शुद्ध आत्मा ज्ञानाश्रयत्वाद् ज्ञानं, शुद्ध आत्मा दर्शनाश्रयत्वा-द्दर्शनं, शुद्ध आत्मा चारित्राश्रयत्वाच्चारित्रमिति निश्चयः । तत्राचारादीनां ज्ञानाश्रयत्वस्यानैकांतिकत्वाद् व्यवहारनयः प्रतिषेध्यः । निश्चयनयस्तु शुद्धस्यात्मनो ज्ञानाद्याश्रयत्वस्यैकांतिकत्वात् तत्प्रतिषेधकः । तथाहि—नाचारादिशब्दश्रुतं एकांतेन ज्ञानस्याश्रयः, तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन ज्ञानस्याभावात् । न जीवादयः पदार्था दर्शनस्याश्रयाः तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन दर्शनस्याभावात् । न षट्जीवनिकायः चारित्रस्याश्रयस्तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धा-त्माभावेन चारित्रस्याभावात् । शुद्ध आत्मैव ज्ञानस्याश्रयः, आचारादिशब्दश्रुतसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव ज्ञानस्य सद्भावात् । शुद्ध आत्मैव दर्शनस्याश्रयः, जीवादिपदार्थसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव दर्शनस्य सद्भा-वात् । शुद्ध आत्मैव चारित्रस्याश्रयः षड्जीवनिकायसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव चारित्रस्य सद्भावात् ।

अर्थ—आचारांग आदि शास्त्र है सो तौ ज्ञान है, बहुरि जीवादि तत्त्व है सो दर्शन है, बहुरि छह कायकी जीवनिकी रक्षा है सो चारित्र है; ऐसैं तौ व्यवहारनय कहे है। बहुरि निश्चय-

करि मेरा आत्मा ही ज्ञान है, वहुरि मेरा आत्मा ही दर्शन है, वहुरि मेरा आत्मा ही चारित्र है, बहुरि मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है, बहुरि मेरा आत्मा ही संवर है, बहुरि मेरा आत्मा ही योग है, समाधि है, ध्यान है ऐसैं निश्चयनय कहे है।

टीका—आचारांगकूं आदि लेकरि शब्दश्रुत है, सो ज्ञान है, जातैं यह ज्ञानका आश्रय है। बहुरि जीवकूं आदि लेकरि नव पदार्थ हैं, ते दर्शन हैं, जातैं ए दर्शनके आश्रय हैं। बहुरि छह जीवनिकी रक्षा है, सो चारित्र है, जातैं यह चारित्रका आश्रय है। ऐसैं तौ व्यवहारनयके वचन हैं। बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ज्ञान है, जातैं ज्ञानका आश्रय आत्मा ही है। बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही दर्शन है. जातैं दर्शनका आश्रय आत्मा ही है। बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही चारित्र है, जातैं चारित्रका आश्रय आत्मा ही है। ऐसैं निश्चयनयके वचन हैं। तहां आचारांग आदिककै ज्ञानादिकका आश्रयपणाका अनैकांतिकपणा है, व्यभिचार है। आचारांग आदिक तौ होय अर ज्ञान आदिक नाहीं भी होय, तातैं व्यवहारनय प्रतिषेधने योग्य है। बहुरि निश्चयनय है, सो शुद्ध आत्माके ज्ञानादिकका आश्रयपणाका ऐकांतिकपणा है, जहां शुद्ध आत्मा है, तहां ही ज्ञानदर्शनचारित्र है। तातैं तिस व्यवहारनयका प्रतिषेध करनेवाला है। सो ही हेतुकरि कहे हैं, आचारादि शब्दश्रुत है, सो एकांतकरि ज्ञानका आश्रय नाहीं है, जातैं आचारांगादिकका अभव्य जीवकै सद्भाव होतैं भी शुद्ध आत्माका अभावकरि ज्ञानका अभाव है। बहुरि जीव आदि नवपदार्थ हैं ते दर्शनका आश्रय नाहीं है, जातैं अभव्यकै तिनिका सद्भाव होतैं भी शुद्धात्माका अभावकरि दर्शनका अभाव है। बहुरि छह जीवनिकी रक्षा है, सो चारित्रका आश्रय नाहीं है, जातैं ताका सद्भाव होतैं भी अभव्यकै शुद्धात्माका अभावकरि चारित्रका अभाव है। बहुरि शुद्ध आत्मा है, सो ही ज्ञानका आश्रय है, जातैं आचारांगादि शब्दश्रुतका सद्भाव होतैं तथा असद्भाव होतैं भी शुद्धात्माका सद्भावहीकरि ज्ञानका सद्भाव है। शुद्ध आत्मा है सो ही दर्शनका आश्रय है, जातैं जीवादि पदार्थनिका सद्भाव होतैं तथा असद्भाव होतैं भी शुद्धात्माका

सद्भावहीकरि दर्शनका सद्भाव है। बहुरि शुद्ध आत्मा ही चारित्रका आश्रय है, जातैं छह जीवनिकी रक्षाका सद्भाव होतैं तथा असद्भाव होतैं भी शुद्धात्माका सद्भावहीकरि चारित्रका सद्भाव है।

भावार्थ—आचारांगादि शब्दश्रुतका जानना तथा जीवादिपदार्थका जानना तथा छह कायके जीवनिकी रक्षा इनिके होतैं भी अभव्यके ज्ञानदर्शनचारित्र न होय है, तातैं व्यवहारनय तौ प्रतिषेध्य है। बहुरि शुद्धात्माके होतै ज्ञानदर्शनचारित्र होय ही हैं, तातैं निश्चयनय याका प्रतिषेधक है, तातैं शुद्धनय उपादेय कह्या है। आगैं अगिले कथनकी सूचनिकाका काव्य कहे हैं।

उपजातिच्छन्दः

रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः

आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१२॥

अर्थ—इहां शिष्य फेरि पूछे है, जो रागादिक हैं ते तौ बंधके कारण कहे, बहुरि ते शुद्ध-चैतन्यमात्र मह जो आत्मा तातैं अतिरिक्त कहिये भिन्न कहै—न्यारे कहै, तहां तिनिके होनेमें आत्मा निमित्त है कि पर कोई निमित्त है? ऐसैं प्रेरे हुए आचार्य फेरि आगाने याका उत्तर दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

नीचे लिखी गाथाओंकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्चं ॥
आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा ॥

**जह फलियमणि विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादियेहिं दव्वेहिं ॥४२॥**

आधाकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य ये इमे दोषाः ।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणाः खलु ये नित्यं ॥
आधाकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य ये इमे दोषाः ।
कथमनुमन्यते अन्येन क्रियमाणाः परस्य गुणाः ॥

तात्पर्यवृत्तिः—स्वयं पाकेनोत्पन्न आहार आधाकर्मशब्देनोच्यते तत्प्रभृतिव्याख्यानं करोति—आधाकर्माद्या ये इमे दोषाः, कथंभूताः ? शुद्धात्मनः सकाशात्परस्याभिन्नस्याहाररूपपुद्गलद्रव्यस्य गुणाः । पुनरपि कथंभूताः ? तस्यैवाहार-पुद्गलस्य पचनपाचनादिक्रियारूपाः तान्निश्चयेन कथं करोतीति ज्ञानीति प्रथमगाथार्थः । अनुमोदयति वा कथमिति द्वितीय गाथार्थः परेण गृहस्थेन क्रियमाणान्, न कथमपि । कस्मात् ? निर्विकल्पसमाधौ सति आहारविषयमनोवचन-कायकृतकारितानुमननाभावात् इत्याधाकर्मव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं ।

अर्थ—अपने आप पाकसे उत्पन्न हुये आहारको "आधाकर्म" नामसे कहा गया है । आधा-कर्म आदि पुद्गलद्रव्यके गुण हैं उनको यह ज्ञानी आत्मा स्वयं कैसे कर सकता है तथा किस प्रकार दूसरोंसे किये हुये उन दोषोंकी अनुमोदना कर सकता है अर्थात् ज्ञानी शुद्ध आत्मासे भिन्न पुद्गलद्रव्यके गुण आधाकर्म आदिको न तो स्वयं करता है और न दूसरोंसे किये हुओंकी अनुमोदना ही करता है ।

आहारग्रहणात्पूर्वं तस्य पात्रस्य निमित्तं यत्किमप्यशनपानादिकं कृतं तदौपदेशिकं भण्यते तेनौपदेशिकेन सह तदेवाधाकर्म पुनरपि गाथाद्वयेन कथ्यते—

**आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥**

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥४३॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥

आधाकर्मौपदेशिकं च पुद्गलमयमेतद्द्रव्यं।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥
आधाकर्मौपदेशिकं च पुद्गलमयमेतद् द्रव्यं ।
कथं तन्मम कारितं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥

तात्पर्यवृत्तिः—यदिदमाहारकपुद्गलद्रव्यमाधाकर्मरूपमौपदेशिकं च चेतनशुद्धात्मद्रव्यपृथक्त्वेन नित्यमेवाचेतनं भणितं तत्कथं मया कृतं भवति कारितं वा कथं भवति ? न कथमपि । कस्माद्धेतोः ? निश्चयरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञाने सति आहारविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमानाभावात् । इत्यौपदेशिकव्याख्यानमुख्यत्वेन च गाथाद्वयं गतं ।

अयमत्राभिप्रायः पश्चात्पूर्वं संप्रतिकाले वा योग्याहारादिविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमतरूपैर्नवभिर्विकल्पैः शुद्धास्तेषां परकृताहारादिविषये बंधो नास्ति यदि पुनः परकीयपारिणामेन बंधो भवति तर्हि क्वापि काले निर्वाणं नास्ति । तथा चोक्तं ।

णावकोडिकम्मसुद्धो पच्छापुरदोय संपदिय काले ।
परसुहदुक्खणिमित्तं वज्झदि जदि णत्थि णिव्वाणं ॥

अर्थ—आधाकर्म आहारक पुद्गलद्रव्यरूप हैं इसलिये चेतनशुद्धात्मद्रव्यसे पृथक् है अतः वे कैसे मेरे होसक्ते हैं या मैं उनरूप कैसे हो सक्ता हूं ? अर्थात् नहीं हो सक्ता हूं क्योंकि मेरा उनका लक्षण भिन्न भिन्न है और इसीलिये आधाकर्म आदि अचेतनको न करा सकता हूं और न उनकी अनुमोदना ही कर सकता हूं। यहांपर यह अभिप्राय समझना चाहिये कि

यथा स्फटिकमणिः शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रक्तादिभिर्द्रव्यैः ॥४२॥
एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रागादिभिर्दोषैः ॥४३॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु केवलः स्फटिकोपलः परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते । परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्यते । तथा केवलः किलात्मा परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्येत, इति तावद्वस्तुस्वभावः ।

अर्थ—जैसा स्फटिकमणि आप शुद्ध है, सो रागादि कहिये ललाई आदि रंगरूप आप ही तौ नाहीं परिणमे है, अन्य लाल काला आदि द्रव्यनिकरि ललाई आदि रंगरूप परिणमे है। तैसा ही याही प्रकार ज्ञानी है सो आप शुद्ध है, सो रागादि भावनिकरि आप ही तौ नाहीं परिणमे है, अन्य जे रागादि दोष, तिनिकरि रागादिरूप कीजिये है ।

टीका—जैसा निश्चयकरि केवल एकला स्फटिकपाषाण है सो आप परिणामस्वभावरूप होतै संते भी अपना शुद्धस्वभावपणाकरि तौ रागादिनिमित्तपणाका अभावतैं रागादिकरि आप नाहीं परिणमे है, आप ही आपके रागादिपरिणाम होनेका निमित्त नाहीं है। बहुरि परद्रव्य स्वयं रागादिभावकूं प्राप्त हुवापणाकरि स्फटिकके रागादि निमित्तभूत है । ताकरि, शुद्धस्वभावतैं च्युत होता संता ही रागादिककरि परिणमिये है । तैसा केवल एकला आत्मा है सो परिणाम-

वर्तमान भूत भविष्यत कालमें वा योग्य आहारादि विषयमें नवकोटि विकल्पसे मेरा आत्मा शुद्ध है, उसके परकृत आहारादिके विषयमें बन्ध नहीं होता है । यदि उसके भी बन्ध माना जायगा तो किसी भी कालमें आत्माका निर्वाण नहीं हो सक्ता है ।

स्वभावरूप होतै संते भी आपके शुद्धस्वभावपणाकरि रागादिनिमित्तपणाका अभावतैं आप ही रागादि भावनिकरि नाहीं परिणमे है आपके आप ही रागादि परिणामका निमित्त नाहीं है, परद्रव्य स्वयं रागादिभावकूं प्राप्त हुवापणाकरि आत्माके रागादिकका निमित्तभूत है, ताकरि शुद्धस्वभावतैं च्युत होता संता ही रागादिककरि परिणमिये है। ऐसा ही वस्तूका स्वभाव है।

भावार्थ—आत्मा एकाकी तौ शुद्ध ही है, परंतु परिणामस्वभाव है। जैसा परका निमित्त मिलै तैसा परिणमे भी है। तातैं रागादिकरूप परिणमे है। सो परद्रव्यका निमित्तकरि परिणमे है। तहां स्फटिकमणिका दृष्टांत है—जो स्फटिकमणि आप तौ केवल एकाकार शुद्ध ही है, परंतु परद्रव्यका ललाई आदिका डंक लागै तब ललाई आदिरूप परिणमे है, सो यह वस्तूहीका स्वभाव है। यहां किछू अन्य तर्क नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप श्लोक है।

उपजातिछन्दः

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्माऽऽत्मनो याति यथाऽर्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥१३॥

अर्थ—आत्मा है सो आपके रागादिकका निमित्तभावकूं कदाचित् न प्राप्त होय है, तिस आत्माविषैं रागादिकका निमित्त परद्रव्यका संग ही है, इहां सूर्यकांतमणिका दृष्टांत है—जैसैं सूर्यकांतमणि आप ही तौ अग्निरूप नाहीं परिणमे है, तिसविषैं सूर्यका बिंब अग्निरूप होनेकूं निमित्त है, तैसैं जानना। यह वस्तूका स्वभाव उदयकूं प्राप्त है काहूका किया नाहीं है। आगै कहे हैं, जो ऐसा वस्तूका स्वभावकूं जानता संता ज्ञानी रागादिककूं आपके नाहीं करे है ऐसा सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः। रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः॥१४॥

अर्थ—जैसैं अपने वस्तुस्वभावकूं ज्ञानी है सो जाने है, तिस कारणकरि सो ज्ञानी रागादिककूं

आपकै नाहीं करे है, तातैं रागादिकका कारक नाहीं है। आगै ऐसैं ही गाथामैं कहे हैं। गाथा--

णवि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥४४॥

नापि रागद्वेषमोहं करोति ज्ञानी कषायभावं वा ।
स्वयमेवात्मनो न स तेन कारकस्तेषां भावानां ॥४४॥

आत्मख्यातिः—यथोक्तवस्तुस्वभावं जानन् ज्ञानी शुद्धस्वभावादेव न प्रच्यवते, ततो रागद्वेषमोहादिभावैः स्वयं न परिणमते न परेणापि परिणम्यते, ततष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावो ज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानामकर्तैवेति नियमः ।

अर्थ—ज्ञानी है सो आप ही आपकै राग द्वेष मोह तथा कषायभाव नाहीं करे है, तिस कारणकरि सो ज्ञानी तिनि भावनिका कारक कहिये करनेवाला—कर्ता नाहीं है ।

टीका—जैसा कह्या तैसा वस्तूका स्वभाव जानता संता ज्ञानी है सो अपना शुद्धस्वभावतैं ही नाहीं छुटे है, तातैं राग द्वेष मोह आदि भावनिकरि आपैआप नाहीं परिणमे है अर परकरि भी नाहीं परिणमिये है, तातैं टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वरूप ज्ञानी राग द्वेष मोह आदि भावनिका अकर्ता ही है, ऐसा नियम है ।

भावार्थ—ज्ञानी भया, तब वस्तूका ऐसा स्वभाव जान्या, जो आप तौ आत्मा शुद्ध है—द्रव्यदृष्टिकरि अपरिणमनस्वरूप है, पर्यायदृष्टिकरि परद्रव्यके निमित्ततैं रागादिरूप परिणमे है, सो अब आप ज्ञानी तिनिभावनिका कर्ता न हो है, उदय आवै तिनिका ज्ञाता ही है। आगै कहे हैं "अज्ञानी ऐसा वस्तूका स्वभाव नाहीं जाने है, तातैं रागादिक भावनिका कर्ता होय है," याको सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुप्छन्दः

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः । रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥१५॥

अर्थ—अज्ञानी है सो ऐसा अपना वस्तुस्वभावकूं नाहीं जाने है, तिस कारणकरि सो अज्ञानी रागादिकभावनिकूं आपकै करे है, यातैं तिनिका कारक होय है। अब इस अर्थकी गाथा कहे हैं। गाथा—

रागह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणममाणो रायादी बंधदि पुणोवि ॥४५॥

रागे दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति पुनरपि ॥४५॥

आत्मख्यातिः—यथोक्तं वस्तुस्वभावमजानंस्त्वज्ञानी शुद्धस्वभावादासंसारं प्रच्युत एव। ततः कर्मविपाकप्रभवै रागद्वेषमोहादिभावैः परिणममानोऽज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानां कर्ता भवन् बध्यत एवेति प्रतिनियमः। वतः स्थितमेतत्—

अर्थ—राग बहुरि द्वेष बहुरि कषायकर्म इनिकूं होते संते जे भाव होय हैं, तिनिकरि परिणमता संता, अज्ञानी रागादिककूं फेरि फेरि बांधे है।

टीका—जैसा कह्या तैसा वस्तूका स्वभावकूं नाहीं जानता संता अज्ञानी है सो अपना शुद्धस्वभावतैं अनादिसंसारतैं लगाय च्युत ही है, छूटि रह्या है तातैं कर्मके उदयकरि भये जे राग द्वेष मोहादिक भाव, तिनिकरि परिणमता संता, अज्ञानी राग द्वेष मोहादि भावनिका कर्ता होता संता कर्मनिकरि बंधे ही है ऐसा नियम है।

भावार्थ—अज्ञानी वस्तूका स्वभाव तौ यथार्थ जाने नाहीं अर कर्मका उदयकरि जैसा भाव होय, तिसकूं आपा जानि परिणमै, तब तिनिका कर्ता भया संता आगामी फेरि फेरि कर्म बांधे है यह नियम है। आगैं कहे हैं, जो इस हेतुतैं यह ठहरी, ताकी गाथा—

रागह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
ते मम दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा ॥४६॥

रागे च दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः ।
तन्मम तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति चेतयिता ॥४६॥

आत्मख्यातिः—य इमे किलाज्ञानिनः पुद्गलकर्मनिमित्ता रागद्वेषमोहादिपरिणामास्त एव भूयो रागद्वेषमोहादिपरिणामनिमित्तस्य पुद्गलकर्मणो बंधहेतुरिति ।

कथमात्मा रागादीनामकारकः ? इति चेत्—

अर्थ—राग बहुरि द्वेष बहुरि कषाय कर्म इनिकूं होते संते जे भाव होय तिनिकरि परिणमता संता, आत्मा रागादिकनिकूं बांधे है ।

टीका—निश्चयकरि जे ए अज्ञानीके पुद्गलकर्म हैं निमित्त जिनिकूं ऐसे राग द्वेष मोह आदि भावनिका कर्ता होता संता कर्मनिकरि बंधे ही है, ऐसा परिणाम है; ते ही फेरि राग द्वेष मोह आदि परिणामकूं निमित्त जो पुद्गलकर्म, ताके बंधके कारण होय हैं ।

भावार्थ—अज्ञानीकै कर्मके निमित्ततैं राग द्वेष मोह आदिक परिणाम होय हैं, ते फेरि आगामी कर्मबंधके कारण होय हैं । आगैं फेरि पूछे है, ऐसैं है, जो अज्ञानीके रागादिक फेरि कर्मबंधके कारण हैं, तौ आत्मा रागादिकका अकारक ही है, ऐसें कैसैं कह्या है? ताका समाधान कहे हैं । गाथा—

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥४७॥
अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चखाणंपि ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥४८॥

जाव ण पच्चक्खाणं अपडिक्कमणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वं ॥४९॥

अप्रतिक्रमणं द्विविधमप्रत्याख्यानं तथैव विज्ञेयं ।
एतेनोपदेशेनाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥४७॥
अप्रतिक्रमणं द्विविधं द्रव्ये भावे तथैवाप्रत्याख्यानं ।
एतेनोपदेशेनाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥४८॥
यावन्नप्रत्याख्यानमप्रतिक्रमणं च द्रव्यभावयोः ।
करोत्यात्मा तावत्तु कर्ता स भवति ज्ञातव्यः ॥४९॥

आत्मख्यातिः—आत्मा अनात्मनां रागादीनामकारक एव, अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्वैविध्योपदेशान्यथानुपपत्तेः। यः खलु, अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्रव्यभावभेदेन द्विविधोपदेशः स द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावं प्रथयन्नकर्तृत्वमात्मनो ज्ञापयति । तत एतत् स्थितं परद्रव्यं निमित्तं नैमित्तिका आत्मनो रागादिभावाः। यद्येवं नेष्येत तदा द्रव्याप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोः कर्तृत्वनिमित्तत्वोपदेशोऽनर्थक एव स्यात् तदनर्थकत्वे त्वेकस्यैवात्मनो रागादिभावनिमित्तत्वापत्तौ नित्यकर्तृत्वानुषंगान्मोक्षाभावः प्रसजेच्च ततः परद्रव्यमेवात्मनो रागादिभावनिमित्तमस्तु तथा सति तु रागादीनामकारक एवात्मा, तथापि यावन्निमित्तभूतं द्रव्य न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च तावन्नैमित्तिकभूतं भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च, यावत्तु भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे तावत्कर्तैव स्यात् । यदैव निमित्तभूतं द्रव्यं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदैव नैमित्तिकभूतं भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च । यदा तु भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदा साक्षादकर्तैव स्यात् ।

द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावोदाहरणं चैतत् ।

अर्थ—अप्रतिक्रमण दोय प्रकार जानना, तैसें ही अप्रत्याख्यान दोय प्रकार जानना, इस उपदेशकरि चेतयिता--आत्मा अकारक कह्या है । सो अप्रतिक्रमण दोय प्रकार--एक तौ द्रव्यविषैं, एक भावविषैं, बहुरि तैसें ही अप्रत्याख्यान दोय प्रकार—एक द्रव्यविषैं, एक भावविषैं, इस

उपदेशकरि चेतयिता–आत्मा अकारक कह्या है, जेतैं आत्मा द्रव्यविषें अर भावविषें अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यान करे है, तेतैं सो आत्मा कर्ता होय है यह जानना।

टीका–आत्मा है सो आपहीकरि रागादिभावनिका अकारक ही है। जातैं आप ही कारक होय तौ अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यान इनिका द्रव्यभावकरि दोय प्रकारका उपदेशकी अप्राप्ति आवे है–जो निश्चयकरि अप्रतिक्रमण अर अप्रत्याख्यानका दोय प्रकार भेदका उपदेश है, सो यह उपदेश द्रव्यके अर भावके निमित्तनैमित्तिकभावकूं विस्तारता संता, आत्माके अकर्तापणाकूं जनावे है, तातैं यह ठहऱ्या, जो परद्रव्य तौ निमित्त है अर नैमित्तिक आत्माके रागादिकभाव हैं, जो ऐसें न मानिये तौ द्रव्य अप्रतिक्रमण अर द्रव्य अप्रत्याख्यान इनिके कर्तापणाका निमित्तपणाका उपदेश है सो अनर्थक ही होय, अर इस उपदेशके अनर्थकपणा होतै संतै एक आत्माहीकै रागादिभावका निमित्तपणाकी प्राप्ति होतै सदा नित्यकर्तापणाका प्रसंग आवै, तातैं मोक्षका अभाव ठहरै, तातैं आत्माके रागादिभावनिका निमित्त परद्रव्य ही होऊ, तैसें होतैं आत्मा रागादिभावनिका अकारक ही है, यह सिद्ध भया तोऊ जेतैं रागादिकका निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान नाहीं करे, तेतैं नैमित्तिकभूत रागादिकभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान न होय, बहुरि जेतै इनि भावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान न होय, तेतैं रागादि भावनिका कर्ता ही है, बहुरि जिसकाल रागादिभावनिका निमित्तभूत द्रव्यनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करे है, तिसही काल नैमित्तिकभूत रागादिभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय है, बहुरि जिसकाल इनि भावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान भया, तिस काल साक्षात् अकर्ता ही है।

भावार्थ–प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानका द्रव्यभावके भेदकरि दोय प्रकारका उपदेश है। सो इहां शुद्धनयप्रधान कथन है। तातैं निषेधप्रधानकरि वर्णन है। तहां अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान ऐसा कह्या है. सो अतीतकालमैं परद्रव्यका ग्रहण किया, ताकूं अब भला जानै, ताका संस्कार रहै, ममत्व रहै, सो तौ द्रव्य अप्रतिक्रमण है। अर तिस परद्रव्यके ग्रहणके निमित्ततैं रागादिकभाव

भये थे, तिनिकूं वर्तमानमैं भला जानै, तिनिसूं ममत्व संस्कार रहै, सो भाव अप्रतिक्रमण है। बहुरि आगामी कालमैं परद्रव्यकी वांछाकरि ममत्व राखे सो द्रव्य अप्रत्याख्यान है। बहुरि तिनिके निमित्ततैं आगामी कालमैं रागादिभाव होयंगे तिनिकी वांछा राखै, ममत्व राखै, सो भाव अप्रत्याख्यान है। सो यह द्रव्य अप्रतिक्रमण भाव अप्रतिक्रमण, बहुरि द्रव्य अप्रत्याख्यान भाव अप्रत्याख्यान ऐसा दोय प्रकारका उपदेश है, सो द्रव्यभावके निमित्तनैमित्तिक भावकूं जनावे है। परद्रव्य तौ निमित्त है अर नैमित्तिक रागादिक भाव हैं; सो जेतैं निमित्तभूत परद्रव्यका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान या आत्माकै है, तेतैं तौ रागादिभावनिका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है। अर जेतैं रागादिभावनिका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है, तेतैं रागादिभावनिका कर्ता ही है। अर जिस काल निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करै, तिसकाल नैमित्तिक रागादिभावनिका भी प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय। बहुरि रागादिभावनिका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होय तब साक्षात् अकर्ता ही है। ऐसैं आत्मा स्वयमेव तौ रागादिभावनिका अकर्ता ही है। यह परद्रव्यका निमित्त कहनेतैं जानिये है। आगै द्रव्यके अर भावके निमित्तनैमित्तिक भावका उदाहरण यह है, सो गाथामैं कहे हैं। गाथा—

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणादु जे णिच्चं ॥५०॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होदि कयं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥५१॥

अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः।
कथं तान्करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यं ॥५०॥

अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं ।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥५१॥

आत्मख्यातिः--यथाधःकर्मनिष्पन्नमुद्देशनिष्पन्नं च पुद्गलद्रव्यनिमित्तभूतमप्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं न प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यमप्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तकं भावं न प्रत्याचष्टे । यथा चाधःकर्मादीन् पुद्गलद्रव्यदोषान्न नाम करोत्यात्मा परद्रव्यपरिणामत्वे सति, आत्मकार्यत्वाभावात् ततोऽधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलद्रव्यं न मम कार्यं नित्यमचेतनत्वे सति मत्कार्यत्वाभावात् इति तत्त्वज्ञानपूर्वकं पुद्गलद्रव्यं निमित्तभूतं प्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यं प्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तं भावं प्रत्याचष्टे एवं द्रव्यभावयोरस्ति निमित्तनैमित्तिकभावः ।

अर्थ—अधःकर्मकूं आदि लेकरि जे ए पुद्गलद्रव्यके दोष हैं, तिनिकूं ज्ञानी कैसें करे ? जातैं ए नित्य ही सदा पुद्गलद्रव्यके गुण हैं । बहुरि यह अधःकर्म अर उद्देशिक है सो पुद्गलमय द्रव्य है, ज्ञानी यह जाने है, जो यह मेरा किया कैसें होय ? जो सदा अचेतन कह्या है ।

टीका—जैसें अधःकर्मकरि निपज्या बहुरि उद्देशकरि निपज्या जो आहार आदिक पुद्गल द्रव्य, सो भावनिकूं निमित्तभूत है । जैसा भक्षण करै तैसा भाव होय, सो ऐसें द्रव्यकूं अप्रत्याख्यानरूप करता त्याग न करता जो मुनि, सो तिस द्रव्यके नैमित्तिकभूत जे भाव, ते बंधके साधक हैं, तिनिकूं भी त्याग न करे है; तैसें ही समस्त परद्रव्यकूं जो त्यागे नाहीं है, सो तिसके निमित्ततैं होते भावनिकूं भी नाहीं त्यागे है । बहुरि जैसें अधःकर्म आदिक पुद्गलद्रव्यनिकूं आत्मा नाहीं करे है, जातैं ए पर पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, तिसपणाकूं होतैं आत्माके कार्यपणाका इनिकै अभाव है; तातैं ज्ञानी ऐसें जानै "जो अधःकर्म उद्देशिक पुद्गलद्रव्य हैं, ते मेरे कार्य नाहीं हैं, जातैं ए नित्य ही अचेतनपणाके होतैं मेरे कार्यपणाका इनिकै अभाव है" ऐसें तत्त्वज्ञानपूर्वक निमित्तभूत पुद्गलद्रव्यकूं त्याग करता संता मुनि बंधका साधक जो नैमित्तिकभूतभाव, ताकूं भी त्यागे है, तैसें ही समस्त परद्रव्यकूं त्याग करता संता तिस परद्रव्यके

निमित्ततैं होते भावनिकूं भी त्यागे है, ऐसैं द्रव्यभावके निमित्तनैमित्तिकभाव हैं।

भावार्थ—यह द्रव्यकै अर भावकै निमित्तनैमित्तिकपणा उदाहरणकरि दृढ किया है। जैसैं लौकिकजन कहे हैं—जो जैसा दाणा खाय, तैसी बुद्धि उपजै। तैसैं ही शास्त्रमें उदाहरण है—जो पापकर्मकरि आहार निपजै, ताकूं अधःकर्मनिष्पन्न कहिये तथा जो आहार किसीके निमित्त निपजै, ताकूं उद्देशिक कहिये। सो ऐसा आहार जो पुरुष सेवै, ताके तैसे ही भाव होय। ऐसा द्रव्यभावका निमित्तनैमित्तिकभाव है, तैसा ही समस्तद्रव्यनिका निमित्तनैमित्तिकभाव जानना। ऐसैं होते जो परद्रव्यकूं ग्रहण करे है ताकै रागादिभाव भी होय हैं, तिनिका कर्ता भी होय है, तब कर्मका बंध भी करै है। बहुरि जब ज्ञानी होय है, तब काहूके ग्रहण करनेका राग नाहीं, तब रागादिरूप परिणमन भी नाहीं, तब आगामी बंध भी नाहीं, ऐसैं ज्ञानी परद्रव्यका कर्ता नाहीं है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहि परद्रव्यके त्यागनेका उपदेश करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं वलात्तन्मूलं वहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तु कामः समम् ॥
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं येनोन्मूलितवन्ध एप भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१६॥

अर्थ—जो पुरुष ऐसैं परद्रव्यके अर अपने भावके निमित्तनैमित्तिकपणा विचारिकरि, तिस परद्रव्यसमस्तकूं अपना बल—पराक्रम--उद्यमकरि, त्याग करिके, अर सो परद्रव्य है मूल जाका ऐसी बहुत भावनिकी संतति--परिपाटीकूं दूरि युगपत् उडावनेकूं चाहता संता अतिशयकरि वहता प्रवाहरूप धारावाही पूर्ण एकसंवेदन, तिसकरि युक्त जो अपना आत्मा, ताहि प्राप्त होय है। जिस कारणकरि उन्मूलित किये हैं—मूलतैं उपाडे हैं कर्मके बंधन जानै ऐसा भगवान् यह आत्मा आपहीविषैं स्फुरायमान प्रगट होय है।

भावार्थ—परद्रव्यके अर अपने भावके निमित्तनैमित्तिकभाव जानि, समस्त परद्रव्यकूं त्यागै, तब समस्तरागादि भावनिकी संतति कटि जाय, अब आत्मा अपना ही अनुभव करता संता

कर्मके बंधनकूं काटि आपहीविषैं प्रकाशरूप प्रगटे है। तातैं अपना हित चाहे हैं ते ऐसैं करो।
अब बंध अधिकार पूर्ण किया, ताके अंतमंगलरूप ज्ञानकी महिमाका अर्थरूप कलशकाव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत् तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्या वृणोति ॥१७॥

इति बंधो निष्क्रांतः।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ सप्तमोऽङ्कः।

अर्थ—यह ज्ञानज्योति है सो क्षेप्या है—दूरि किया है अज्ञानरूप अंधकार जानैं सो तैसैं सम्यक्प्रकार सज्या जैसैं याका प्रसर कहिये फैलना अवर कोई आवरे नाहीं सो यह ऐसा पहलै कहा करिकै सज्या सो कहे हैं। पहलै तो बंधके कारण जे रागादिकभाव, तिनिका उदयकूं जैसैं निर्दयी काहूकूं विदारे तैसैं तिनिकूं विदारता संता प्रगट्या, पीछैं जब कारण दूरी भये, तब तिनिका कार्य जो कर्मका ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार बंध ताकूं अब तत्काल ही दूरि करिके अर सज्या है।

भावार्थ—ज्ञान प्रगट होय है जब रागादिक न रहै, तिनिका कार्य बंध न रहै, तब फेरि याकूं आवरणेवाला कोई न रहै, सदाकाल प्रकाशरूप रहै। ऐसैं रंगभूमिमैं बंधका स्वांग प्रवेश किया था, सो ज्ञानज्योति प्रगट भया, तब बंध स्वांग दूरि करि निकसि गया।

सवैया तेईसा

जो नर कोय परै रजमाहि सचिक्कण अंग लगै वह गाढै, त्यौं मतिहीन जु राग विरोध लिये विचरे तब बंधन बाढै।
पाय समै उपदेश यथारथ रागविरोध तजै निज चाटै, नाहि बंधै तब कर्मसमूह जु आप गहै परभावनि काटै ॥१॥

ऐसैं इस समयसारनाम ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीकाकी वचनिकाविषैं बंध नामा सातमां अधिकार पूर्ण भया। इहां तांई गाथा २८७ भई। कलश १७९ भये॥

अथ मोक्षाधिकारः ।

दोहा—कर्मबंध सब काटिकै पहुंचै मोक्ष सुथान । नमूं सिद्ध परमात्मा करूं ध्यान अमलान ॥१॥

आत्मख्यातिः—अथ प्रविशति मोक्षः ।

अब टीकाकारके वचन हैं, जो इहां मोक्षतत्त्व प्रवेश करे है । प्रबंध—जैसैं नृत्यके अखाडेमैं स्वांग प्रवेश करे है । तहां ज्ञान सर्व स्वांगका जाननेवाला है, तातैं सम्यग्ज्ञानकी महिमारूप मंगल अधिकारका आदिविषैं काव्य कहे हैं ।

शिखरिणीछन्दः

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद् बन्धपुरुषौ नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम् ।
इदानीमुन्मज्जन् सहजपरमानन्दसरसं परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१॥

अर्थ—अब बंधपदार्थके अनंतर पूर्णज्ञान है सो प्रज्ञारूप करोतकरि दलन कहिये विदारणतैं बंध अर पुरुषकूं द्विधा कहिये न्यारे न्यारे दोय करि अर पुरुषकूं साक्षात् मोक्षकूं प्राप्त करता संता जयवंत प्रवर्तै है । कैसा है पुरुष ? उपलंभ कहिये अपना स्वरूपका साक्षात् अनुभवन, ताहीकरि निश्चित है । बहुरि ज्ञान कैसा है ? उदय होता जो अपना स्वाभाविक परम आनंद, ताकरि सरस है रस भरया है, बहुरि पर कहिये उत्कृष्ट है, बहुरि कीये हैं समस्त करने योग्य कार्य जानें—अब कछु करना न रह्या है ।

भावार्थ—ज्ञान है सो बंधपुरुषकूं जुदे करि पुरुषकूं मोक्ष प्राप्त करता संता अपना संपूर्णरूप प्रगटकरि जयवंत प्रवर्तै है, याका सर्वोत्कृष्टपणा कहना यह ही मंगलवचन है । आगैं कहे हैं, जो मोक्षकी प्राप्ति कैसैं होय है । तहां प्रथम तौ जो बंधका छेद न करै हैं अर बंधका स्वरूप ही जाणि संतुष्ट हैं, ते मोक्ष न पावे हैं । गाथा—

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणियह्मि चिरकालपडिवद्धो ।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स ॥ १ ॥
जइ णवि कुव्वदि छेदं ण मुंचदि तेण कम्मबंधेण ।
कालेण वहुएणवि ण सो णरो पावदि विमोक्खं ॥ २ ॥
इय कम्मबंधणाणं पयेसपयडिट्ठिदीयअणुभागं ।
जाणंतोवि ण मुंचदि मुंचदि सव्वेज्ज जदि सुद्धो ॥३॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषो बंधनके चिरकालप्रतिबद्धः ।
तीव्रं मंदस्वभावं कालं च विजानाति तस्य ॥१॥
यदि नापि करोति छेदं न मुच्यते तेन कर्मबंधेन ।
कालेन बहुकेनापि न स नरः प्राप्नोति विमोक्षं ॥२॥
इति कर्मबंधानां प्रदेशस्थितिप्रकृतिमेवमनुभागं ।
जानन्नपि न मुंचति मुंचति सर्वान् यदि विशुद्धः ॥३॥

आत्मख्यातिः–आत्मबंधयोर्द्विधाकरणं मोक्षः, बंधस्वरूपज्ञानमात्रं तद्धेतुरित्येके तदसत् न कर्मबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रं मोक्षहेतुः अहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रवत् एतेन कर्मबंधप्रपंचरचनापरिज्ञानमात्रसंतुष्टा उत्थाप्यंते–

अर्थ–अहो देखो ! जैसैं कोऊ पुरुष बंधनविषैं बहुत कालका बंध्या, तिस बंधनका तीव्र मंद गाढा ढीला स्वभावकूं जाने है, बहुरि तिसका कालकूं जानें है, जो एता कालका बंध्या है, अर जो तिस बंधनकूं आप काटै नाहीं है तौ तिस बंधनकै वशी भया ही रहे है, तिसकरि छूटै नाहीं है, बहुत भी कालकरि सो पुरुष बंधतैं छूटना ऐसा मोक्ष नाहीं पावे है। तैसैं ही जो पुरुष कर्मके

बंधनका प्रदेशबंध स्थितिबंध प्रकृतिबंध अनुभागबंध याप्रकार है ऐसैं जानता संता है, सो भी कर्मतैं नाहीं छूटै है, बहुरि जो आप रागादिकूं दूरि करि शुद्ध होय, तौ छूटै है।

टीका—आत्माका अर बंधका द्विधाकरण कहिये न्यारा न्यारा करना सो मोक्ष है। तहां केई ऐसैं कहे हैं जो बंधका स्वरूपका ज्ञानमात्रहीतैं मोक्ष है, बंधका स्वरूप जानना सो ही मोक्षका कारण है सो यह कहना असत्य है, जातैं ऐसा अनुमानका प्रयोग है जो कर्मकरि बंधे पुरुषकै बंधका स्वरूपका ज्ञानमात्र ही मोक्षका कारण नाहीं है। जातैं यह जानना ही कर्मतैं छूटनेका कारण नाहीं है, जैसैं बेडी आदि करि बंध्या पुरुषकै तिस बेडी आदि बंधनका स्वरूपका जाननेमात्रपणा ही बेडी आदि काटनेका कारण नाहीं होय है, तैसैं ही कर्मका बंधका स्वरूप जाननेमात्रहीतैं कर्मबंधतैं छुटै नाहीं है। इस कथनकरि कर्मके बंधका प्रपंच कहिये विस्तार तिसकी रचना अनेक प्रकार होना तिसका जाननेमात्रकरि जे केई अन्यमती आदि मोक्ष माने हैं, ते इसका ज्ञानमात्रहीविषैं संतुष्ट हैं, तिनिका उत्थापन कीजिये हैं।

भावार्थ—केई अन्यमती ऐसैं माने हैं, जो बंधका स्वरूप जानतेतैं ही मोक्ष है तिनिका कहनेका इस कथनकरि निराकरण जानना। जाननेमात्रतैं बंध कटै नाहीं। बंध तौ काट्या कटै। आगे कहे हैं, जो बंधकी चिंता किये भी बंध कटै नाहीं। गाथा—

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावदि विमोक्खं ॥४॥

यथा बंधं चिंतयन् बंधनबद्धो न प्राप्नोति विमोक्षं।
तथा बंधं चिंतयन् जीवोऽपि न प्राप्नोति विमोक्षं ॥४॥

आत्मख्यातिः—बंधचिंताप्रबंधो मोक्षहेतुरित्यन्ये तदप्यसत् न कर्मबद्धस्य बंधचिंताप्रबंधज्ञानमात्रं मोक्षहेतुरहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधचिंताप्रबंधवत्। एतेन कर्मबंधविषयचिंताप्रबंधात्मकविशुद्धधर्मध्यानांधबुद्धयो बोध्यंते।

कस्तर्हि मोक्षहेतुः इति चेत्—

अर्थ—जैसैं कोई बंधनकरि बंध्या पुरुष है सो तिनिबंधनकूं चिंतवता संता तिसका सोच करतासंता भी मोक्षकूं नाहीं पावे है, तैसैं कर्मबंधकी चिंता करता जीव है सो भी मोक्षकूं नाहीं पावे है।

टीका—अन्य केई ऐसैं माने हैं जो बंधकी चिंताका प्रबंध है, सो मोक्षका कारण है सो भी मानना असत्य है। इहां भी अनुमानका प्रयोग ऐसा ही है, जो कर्मबंधनकरि बंध्या जो पुरुष, ताकै तिस बंधकी चिंताका प्रबंध है—जो यह बंध कैसैं छूटेगा ? या रीति मनकूं लगाय राखै सो भी बंधका अभावरूप जो मोक्ष ताका कारण नाहीं है। जातैं यह चिंताप्रबंध बंधतैं छूटनेका कारण नाहीं। जैसैं कोई बेडी सांखलतैं बंध्या पुरुष तिस बंधकी चिंता करवो करै, छूटनेका उपाय न करै, सो तिस बेडी आदिके बंधनतैं छूटै नाहीं। तैसैं कर्मबंधकी चिंताप्रबंधतैं मोक्ष नाहीं। इस कथनकरि कर्मबंधविषैं चिंताप्रबंधस्वरूप विशुद्ध धर्मध्यानकरि अंध है बुद्धि जिनिकी तिनिकूं समझाईए हैं।

भावार्थ—कर्मबंधकी चिंतामैं मन लग्या रहै, सोच करवो करै तौ भी मोक्ष होय नाहीं। यह धर्मध्यानरूप शुभपरिणाम है, सो केवल शुभपरिणामहीतैं मोक्ष माने हैं, तिनिकूं उपदेश है। जो शुभपरिणामतैं मोक्ष नाहीं। आगे पूछे हैं "जो बंधके स्वरूपका ज्ञानतैं मोक्ष नाहीं, तिसका सोच कीये मोक्ष नाहीं, तौ मोक्षका कारण क्या है ?" ऐसैं पूछै मोक्ष होनेका उपाय कहे हैं। गाथा—

जह बंधे छित्तूणय बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं। ४३६
तह बंधे छित्तूणय जीवो संपावदि विमोक्खं॥५॥

यथा बंधांश्छित्वा च बंधनबद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षं ।
तथा बंधांश्छित्वा च जीवः सम्प्राप्नोति विमोक्षं ॥५॥

आत्मख्यातिः—कर्मबद्धस्य बंधच्छेदो मोक्षहेतुः, हेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधच्छेदवत् एतेन उभयेऽपि पूर्वे आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे व्यापार्यंते ।

किमयमेव मोक्षहेतुः ? इति चेत् ।

अर्थ—जैसें बंधनतें बंध्या पुरुष है सो बंधनकूं छेदिकरि मोक्षकूं पावे है, तैसें ही कर्मके बंधनकूं छेदिकरि, जीव मोक्षकूं पावे है ।

टीका—कर्मके बंधका बंधनकूं छेदना मोक्षका कारण है, जातैं यह छेदना ही तहां कारण है। जैसें बेडी सांकल आदिकरि बंध्या पुरुषकै सांकलका बंध काटना छूटनेका कारण है, तैसें इस कथनकरि पहिले कहे थे जे दोय पुरुष—एक तौ बंधका स्वरूप जाननेवाला अर एक बंधकी चिंता करनेवाला—तिनि दोऊनिकूं आत्माका अर बंधका न्यारा न्यारा करनेविषैं प्रेरणा करि व्यापार कराइए है—उपदेशकरि उद्यम कराया है। फेरि पूछे है जो कर्मबंधनका छेदना मोक्षका कारण कह्या, सो एतावान्मात्र ही मोक्षका कारण है, कहा ? ऐसें पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमुक्खणं कुणदि ॥६॥

बंधानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च ।
बंधेषु यो न रज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥६॥

आत्मख्यातिः—य एव निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावं तद्विकारकारकं बंधानां च स्वभावं विज्ञाय बंधेभ्यो विरमति स एव सकलकर्ममोक्षं कुर्यात् । एतेनात्मबंधयोर्द्विधाकरणस्य मोक्षहेतुत्वं नियम्यते ।

केनात्मबंधो द्विधा क्रियते ? इति चेत्—

अर्थ—बंधनिका स्वभावकूं जानिकरि बहुरि आत्माका स्वभावकूं जानिकरि अर जो पुरुष बंधनिविषैं विरक्त होय है, सो पुरुष कर्मनिका विमोक्षण करे है।

टीका—जो पुरुष निश्चयकरि निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र तौ आत्माका स्वभाव अर तिस आत्माके विकारका करनेवाला बंधनिका स्वभाव इनि दोऊनिकूं विशेषकरि जानिकरि अर तिनि बंधनितैं विरक्त होय है, सो ही पुरुष समस्त कर्मका मोक्षकूं करे है। इस कथनकरि आत्माका अर बंधका न्यारा न्यारा द्विधा करनेके मोक्षका कारणपणाका नियम किया है। दोऊका न्यारा न्यारा करना ही मोक्षका कारण नियमकरि है। ऐसैं नियमकरि कह्या है। आगै फेरि पूछे हैं, जो आत्मा अर बंध ए दोऊ किसकरि द्विधा कहिये न्यारे कीजिये? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

जीवो बंधोय तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएणदु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥७॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
प्रज्ञाछेदकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ ॥७॥

आत्मख्यातिः—आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे कार्ये कर्तुरात्मनः करणमीमांसायां निश्चयतः स्वतो भिन्नकरणासंभवात् भगवती प्रज्ञैव छेदनात्मकं करणं। तया हि तौ छिन्नौ नानात्वमवश्यमेवापद्येते ततः प्रज्ञैवात्मबंधयोर्द्विधाकरणं। ननु कथमात्मबंधौ चेत्यचेतकभावेनात्यंतप्रत्यासत्तेरेकीभूतौ भेदविज्ञानाभावादेकचेतकवद् व्यवह्रियमाणौ प्रज्ञया छेत्तुं शक्येते? नियतस्वलक्षणसूक्ष्मांतःसंधिसावधाननिपातनादिति बुध्येमहि। आत्मनो हि समस्तशेषद्रव्यासाधरणत्वाच्चैतन्यं स्वलक्षणं तत्तु प्रवर्तमानं यद्यदभिव्याप्य प्रवर्त्तते निवर्तमानं च यद्यदुपादाय निवर्तते तत्तत्समस्तमपि सहप्रवृत्तं क्रमप्रवृत्तं वा पर्यायजातमात्मेति लक्षणीयं तदेकलक्षणलक्ष्यत्वात्, समस्तसहक्रमप्रवृत्तानंतपर्यायाविनाभावित्वाच्चैतन्यस्य चिन्मात्र एवात्मा निश्चेतव्यः, इति यावत्। बंधस्य तु आत्मद्रव्यासाधरणा रागादयः स्वलक्षणं। न च रागादय आत्म-

द्रव्यासाधारणतां बिभ्राणाः प्रतिभासंते नित्यमेव चैतन्यचमत्कारादतिरिक्तत्वेन प्रतिभासमानत्वात् । न च यावदेव समस्तस्वपर्यायव्यापि चैतन्यं प्रतिभाति ? रागादीनंतरेणापि चैतन्यस्यात्मलाभसंभावनात् । यत्तु रागादीनां चैतन्येन सहैवोत्प्लवनं तच्चेत्यचेतकभावप्रत्यासत्तेरेव नैकद्रव्यत्वात्, चेत्यमानस्तु रागादिरात्मनः प्रदीप्यमानो घटादिः प्रदीपस्य प्रदीपकतामिव चेतकतामेव प्रथयेन्न पुनारागादीनां, एवमपि तयोरत्यंतप्रत्यासत्त्या भेदसंभावनाभावनादिरस्त्येकत्वव्यामोहः स तु प्रज्ञयैव छिद्यत एव ।

आत्मबंधौ द्विधाकृत्वा किं कर्तव्यं ? इति चेत् ।

अर्थ—जीव अर बंध दोऊ अपने अपने निश्चतस्वलक्षणनिकरि बुद्धिरूपी छैनीकरि जैसें छेदे तैसें छेदिये हुये नानापणाकूं प्राप्त होय जाय न्यारे न्यारे होय जांय ।

टीका—आत्मा अर बंधका द्विधाकरण कहिये न्यारा न्यारा करना नामा जो कार्य, ताविषें करनेवाला जो कर्ता आत्मा, ताकै करणका विचार कीजिये तब निश्चयनयथकी आपतैं न्यारा करण नामा कारकका तौ असंभव है । तातैं भगवती कहिये ज्ञानस्वरूप जो प्रज्ञा बुद्धि, सो ही छेदनस्वरूप करण है, तिस प्रज्ञाहीकरि ते दोऊ आत्मा अर बंध छेदे हुये नानापणाकूं अवश्य प्राप्त होय हैं—अवश्य न्यारे न्यारे होय जाय हैं । तातैं प्रज्ञाहीकरि आत्मा अर बंधका न्यारा न्यारा करना है । इहां प्रश्न है--जो आत्मा अर बंध ए दोऊ तौ चेतकचेत्यभावकरि अत्यंत प्रत्यासत्ति कहिये निकटताकरि एकसे होय रहे है । आत्मा तौ चेतक है अर बंध चेत्य है । सो दोऊ एकरूप भये अनुभवमें आवे है । सो भेदविज्ञानके अभावतैं एक चेतक ही जो व्यवहारमैं प्रवर्तते देखिये हैं, ते प्रज्ञाकरि कैसैं छेदनेकूं समर्थ हूजिये ? ताका समाधान आचार्य करे हैं--जो हम ऐसैं जाने हैं, आत्मा अर बंधका निश्चितस्वलक्षणकी सूक्ष्म जो अन्तःसन्धि कहिये अन्तरंगकी मिली हुई सन्धि, ताविषैं इस प्रज्ञा छैनीकूं सावधान होयकरि पटकनेतैं दोऊ न्यारे न्यारे होय जाय है । तहां आत्माका तौ निजलक्षण निश्चयकरि समस्त अन्य द्रव्यनितैं असाधारणपणातैं जो अन्यमें न पाइये है ऐसा चैतन्य स्वलक्षण है, सो यह चैतन्य स्वलक्षण है, सो प्रवर्तता संता जिस जिस

पर्यायकूं व्याप्यकरि प्रवर्तते है बहुरि निवृत्तता संता जिस जिस पर्यायकूं ग्रहणकरि निवृत्त होय है, सो सो समस्त सहवर्ती अर क्रमवर्ती पर्यायनिका समूह, सो आत्मा है ऐसा लखने योग्य है, यह लक्षण समस्त गुणपर्यायनिमैं व्यापक है। सो सर्व ही गुणपर्यायनिका समुदाय आत्मा है ऐसा इस लक्षणतैं जानना । जातैं आत्मा तिस ही एक लक्षणतैं लक्ष्य है। बहुरि चैतन्यके समस्त सहवर्ती अर क्रमवर्ती जे अनंतपर्याय, तिनितैं अविनाभावीपणा है । तातैं चिन्मात्र ही आत्मा है, ऐसा निश्चय करना, ऐसा दूसरा व्याख्यान है ।

बहुरि बंधका स्वलक्षण आत्मद्रव्यतैं असाधारण रागादिक हैं । जातैं ए रागादिक हैं ते आत्मद्रव्यतैं साधारणपणाकूं धारते नाहीं प्रतिभासे हैं । इनिके सदा ही चैतन्यचमत्कारतैं भिन्नपणाकरि प्रतिभासमानपणा है । बहुरि जेता कछु समस्त अपने पर्यायनिमैं व्यापनेस्वरूप चैतन्य-प्रतिभासे है, तेते ही रागादिक नाहीं प्रतिभासे हैं, रागादिकविना भी चैतन्यका आत्मलाभ कहिये स्वरूप पावना संभवे है । बहुरि जो रागादिकका चैतन्यकरि सहित ही उपजना दीखे है, सो यह चेत्यचेतकभाव कहिये ज्ञेयज्ञायकभाव, ताके अत्यंत प्रत्यासत्ति कहिये अतिनिकटता, तातैं दीखे है, एकद्रव्यपणातैं नाहीं है । तहां चेत्यमान कहिये ज्ञेयरूपज्ञानमैं आवते जे रागादिक, ते आत्माके चेतकता कहिये ज्ञायकपणाहीकूं विस्तारे हैं । बहुरि रागादिकपणाकूं नाहीं विस्तारे हैं । जैसैं दीपकके घटादिक प्रकाशने योग्य होते प्रदीपकपणाहीकूं विस्तारे हैं, बहुरि घटादिक-पणाकूं नाहीं विस्तारे हैं, तैसैं जानना । बहुरि ऐसैं होते भी आत्मा अर बंध दोऊकै अत्यंत प्रत्यासत्ति—निकटताकरि भेदकी संभावनाका अभाव है—भेद दीखे नाहीं है, तातैं इस अज्ञानीकै अनादिकालतैं एकपणाका व्यामोह है—भ्रम है, सो ऐसा व्यामोह प्रज्ञाहीकरि छेद्या ही जाय है ।

भावार्थ—आत्मा अर बंध दोऊकूं लक्षणभेदकरि पहिचानि बुद्धिरूपी छैनीकरि छेदि न्यारे न्यारे करने । जातैं आत्मा तौ अमूर्तिक, अर बंध सूक्ष्मपुद्गलपरमाणुनिका स्कंध, यातैं दोऊ

ही न्यारे छद्मस्थके ज्ञानमें आवै नाहीं। एक स्कंध दीखे, याहीतैं अनादि अज्ञान है। सो श्रीगुरुनिका उपदेश पायकरि इनिका लक्षण न्यारा न्यारा ही अनुभवकरि जानना। जो चैतन्यमात्र तौ आत्माका लक्षण है अर रागादिक बंधका लक्षण है, ते भी ज्ञेयज्ञायकभावकी अतिनिकटताकरि एकसे होय रहे दीखे हैं, सो तीक्ष्णबुद्धिरूपी छैनी इनिकूं भेदि न्यारे न्यारे करनेका शस्त्र है, ताकूं इनिकी सूक्ष्मसंधीकूं हेरि सावधान निष्प्रमाद होय पटकणी, तिसकूं पडते ही दोऊ न्यारे न्यारे दीखने लागै, तब आत्माकूं ज्ञानभावमें ही राखना अर बंधकूं अज्ञानभावमें राखना। ऐसैं दोऊकूं भिन्न करना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहै हैं।

स्रग्धराछन्दः

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिवन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ॥
आत्मानं मग्नमन्तः स्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे वन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥२॥

अर्थ—आत्मा अर बंधकूं भिन्न करनेकूं यह प्रज्ञा है सो तीक्ष्ण छैनी है। सो जे प्रवीण पुरुष हैं ते सावधान प्रमादरहित भये संते आत्मा अर कर्म इनि दोऊनिका सूक्ष्म जो अन्तः कहिये मांहिला संधीका बंधन, ताविषैं याकूं कोई प्रकार यत्नकरि ऐसैं पटके है सो यह बुद्धिरूपी छैनी तहां पडी हुई शीघ्र ही समस्तपणैं भिन्न भिन्न करती पडे है। सो आत्माकूं तौ अंतरंगविषैं स्थिर अर विशदलसत् कहिये स्पष्ट प्रकाशरूप दैदीप्यमान है धाम कहिये तेज जाका ऐसा जो चैतन्यका पूर प्रवाह, ताविषैं मग्न करती संती पडै है। बहुरि बंधकूं अज्ञानभावविषैं निश्चल नियमतैं करती संती पडे है।

भावार्थ—इहां आत्मा अर बंधका भिन्न भिन्न करना नामा कार्य है। ताका कर्ता आत्मा है। अर करणविना कर्ता काहेकरि कार्य करै? तातैं करण चाहिये। अर निश्चयनयकरि कर्तातैं भिन्न करण होय नाहीं। तातैं आत्मातैं अभिन्न यह बुद्धि, इस कार्यविषैं करण है। सो आत्माकै अनादि बंध ज्ञानावरणादि कर्म हैं। तिनिका कार्य भावबंध तौ रागादिक हैं। अर

नोकर्म शरीरादिक हैं। सो बुद्धिकरि आत्माकूं शरीरतैं तथा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मतैं तथा रागादिक भावकर्मतैं भिन्न एक चैतन्यभावमात्र अनुभवकरि ज्ञानहीमैं लीन राखना, यह ही भिन्न करना याहीतैं सर्व कर्मका नाश होय, सिद्धपदकूं प्राप्त होय है, ऐसैं जानना। आगे फेरि पूछे है, जो आत्मा अर बंधकूं द्विधा करि अर कहा करना ? ऐसैं पूछे उत्तर कहे हैं। गाथा—

जीवो बंधोय तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पाय घेत्तव्वो ॥८॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
बंधश्छेत्तव्यः शुद्ध आत्मा गृहीतव्यः ॥८॥

आत्मख्यातिः—आत्मबंधौ हि तावन्नियतस्वलक्षणविज्ञानेन सर्वथैव छेत्तव्यौ ततो रागादिलक्षणः समस्त एव बंधो निर्मोक्तव्यः, उपयोगलक्षणशुद्ध आत्मैव गृहीतव्यः। एतदेव किलात्मबंधयोर्द्विधाकरणस्य प्रयोजनं यद्बंधत्यागेन शुद्धात्मोपादानं।

अर्थ—जीव अर बंध ए दोऊ अपने अपने निश्चित निजलक्षणनिकरि तैसैं भिन्न कीजिये, जैसैं बंध तौ छेदि भिन्न करना अर शुद्ध आत्माकूं ग्रहण करना।

टीका—आत्मा अर बंध दोऊ प्रथम तौ अपना अपना निश्चित निजलक्षण है ताका विज्ञानकरि सर्वप्रकार ही भिन्न करने, पीछे रागादिक हैं लक्षण जाका ऐसा समस्त ही बंधकूं तौ छोडना, अर उपयोग है लक्षण जाका ऐसा शुद्ध आत्मा एकला ही ग्रहण करना। यह ही निश्चयकरि आत्मा अर बंधका द्विधाकरणका प्रयोजन है; जो बंधका त्याग करि शुद्ध आत्माका ग्रहण करना।

भावार्थ—शिष्य पूछा था, जो आत्मा अर बंधकूं द्विधा करि कहा करना ? ताका यह उत्तर दिया, जो बंधका तौ त्याग करना अर शुद्धात्माका ग्रहण करना। आगैं पूछे है—आत्मा अर

बंधकूं प्रज्ञाकरि तो भिन्न किये अर आत्माकूं ग्रहण काहेकरि कीजिये ? ताका प्रश्नोत्तरकी गाथा कहे हैं ।

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाए विभत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥९॥

कथं स गृह्यते आत्मा प्रज्ञया स तु गृह्यते आत्मा ।
यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥९॥

आत्मख्यातिः—ननु केन शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः ? प्रज्ञयैव शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः, शुद्धस्यात्मनः स्वयमात्मानं गृह्णतो विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात् अतो यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ।

कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्यः इति चेत्—

अर्थ—शिष्य पूछे है, सो यह शुद्ध आत्मा काहेकरि ग्रहण कीजिये ? आचार्य उत्तर कहे हैं—प्रज्ञाहीकरि यह शुद्ध आत्मा ग्रहण कीजिये । जैसें पहलै प्रज्ञाकरि भिन्न किया, तैसें प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना ।

टीका—शिष्यका प्रश्न, जो यह शुद्ध आत्मा काहेकरि ग्रहण करना ? गुरु उत्तर कहे हैं—जो यह शुद्ध आत्मा प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना । आप स्वयं शुद्ध आत्माकूं ग्रहण करता जो शुद्ध आत्मा, ताकै पहलै भिन्न करताकै प्रज्ञा ही एक करण था, तैसैं ही ग्रहण करताकैं भी सो ही प्रज्ञा एक करण है, भिन्न करण नाहीं । यातैं जैसैं पहलै प्रज्ञाकरि भिन्न किया था, तैसैं प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना ।

भावार्थ—भिन्न करनेमें अर ग्रहण करनेमें न्यारा करण नाहीं है । तातैं प्रज्ञाहीकरि तौ भिन्न किया अर प्रज्ञाहीकरि ग्रहण करना । आगै फेरि पूछै है "जो यह आत्मा प्रज्ञाकरि कौन प्रकार ग्रहण करना ?" ताका उत्तर कहे हैं । गाथा—

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झपरित्त णादव्वा ॥१०॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥१०॥

आत्मख्यातिः—योहि नियतस्वलक्षणावलंबिन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमहं । ये त्वमी अवशिष्टा अन्यस्वलक्षणलक्ष्या व्यवह्रियमाणा भावाः, ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकस्य व्याप्यत्वमनायांतोऽत्यंतं मत्तो भिन्नाः । ततोऽहमेव मयैव मह्यमेव मत्त एव मय्येव मामेव गृह्णामि । यत्किल गृह्णामि तच्चेतनैकक्रियत्वादात्मनश्चेतये, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमाने एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये । अथवा न चेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमानं चेतये । किंतु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि ।

अर्थ—जो चेतयिता कहिये चेतनस्वरूप आत्मा है, सो निश्चयतें मैं हों ऐसें प्रज्ञाकरि ग्रहण करने योग्य है । अवशेष जे भाव हैं, ते मेरे पर हैं, इस प्रकार आत्माकूं ग्रहण करना जानना ।

टीका—निश्चयकरि जो नियतस्वलक्षण कहिये निश्चित निजलक्षणकूं अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा है, तिसकरि चैतन्यस्वरूप आत्माकूं भिन्न किया था, सो ही यह मैं हों, बहुरि जे यह अवशेष अन्य अपने स्वलक्षणकरि लखने योग्य व्यवहाररूप भाव हैं, ते सर्व ही चेतयिता आत्माका व्यापक जो चेतकपणा, ताका व्याप्यपणामें नाहीं आवते भाव हैं, ते मोतें अत्यंत भिन्न हैं, तातें मैं ही मुझहीकरि मेरे ही अर्थि मुझहीतें मोविषैं ही मोहीकूं ग्रहण करो हों, बहुरि प्रगट ग्रहण करो हों । सो आत्माके चेतना ही है एक क्रिया जाकै तिसपणाकरि चेतूं ही हों । चेतता संताही चेतूं हों । चेतता संता ही करि चेतूं हों । चेतता संताहीके अर्थि चेतूं हों । चेतता संताहीतें चेतूं हों । चेतता संताहीविषैं चेतू हों । चेतता संताहीकूं चेतूं हों । अथवा न चेतूं हों । न चेतता

संता चेतूं हौं। न चेतता संताहीकरि चेतूं हौं। न चेतता संताके अर्थि चेतूं हौं। न चेतता संतातैं चेतूं हौं। न चेतता संताविषैं चेतूं हौं। न चेतता संताकूं चेतूं हौं। तौ कहा हौं? सर्व विशुद्ध चैतन्यमात्र भाव हौं।

भावार्थ—जिस प्रज्ञाकरि आत्माकूं बंधतैं भिन्न किया था, तिसहीकरि यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हौं, अन्य अवशेष भाव हैं ते मोतैं न्यारे—पर हैं, ऐसैं ग्रहण करना सो अभिन्न षट्कारक लगावनेमैं मोकूं, मोहीकरि, मेरे ही अर्थि, मोतैं, मोविषैं ग्रहण करूं हौं। सो ग्रहण करना कहा है? चेतनकी चित्स्वरूप क्रिया ही है। ताकरि चेतूं हौं—जानूं हौं अनुभवूं हौं ऐसैं लगाय, फेरि इनि कारकनिके भेदका भी निषेध किया। जो मैं शुद्ध चैतन्यमात्र भाव हौं, सो एक अभेद हौं–द्रव्यदृष्टिकरि कर्ता कर्म आदि षट्कारकका भी भेद मोविषैं नाहीं है। तातैं नाहीं चेतूं हौं इत्यादि लगावना। ऐसैं बुद्धिकरि ग्रहण करना। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

भित्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद् भेत्तुं कियच्छक्यते चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम्।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि भिद्यन्तां न भिदाऽस्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥३॥

अर्थ—ज्ञानी कहे है। जो भेदनेकूं—न्यारे करनेकूं समर्थ हूजिये, तिस सर्वकूं निजलक्षणके बलतैं भेदिकरि अर मैं चैतन्यचिह्नकरि चिह्नित विभागरहित है महिमा जाकी ऐसा शुद्ध चैतन्य ही हौं। बहुरि जो कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण ये षट्कारक अर सत्त्व असत्त्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व आदिक धर्म अर ज्ञान दर्शन आदिक गुण ए भेदरूप हैं, तौ भेदरूप होऊ। विशुद्ध समस्त विभाववत्तितैं रहित एक अर विभु कहिये सर्व गुणपर्यायनिमैं व्यापक ऐसा चैतन्यभावविषैं तौ किछू भेद है नाहीं।

भावार्थ–जो इस चैतन्यभावतैं अन्य अपने स्वलक्षणकरि भेदे गये ते तौ भेदरूप किये अर

ज्ञानपरि पट्कारक भेदरूप लगाय, फेरि अभेदरूप करनेकूं कारकभेदका निषेध करि, एक ज्ञानमात्र आपका अनुभवन करना ।

भावार्थ—पहले तौ सामान्य चेतनाका अनुभवन कराया । सो आत्माकूं प्रज्ञाकरि ग्रहण करना पहले कह्या था, सो चेतनाका अनुभवन करना ही ग्रहण करना है—किछू अन्य वस्तूका ग्रहण करना नाहीं है । वहुरि अनुभवन करना, अनुभवन करनेवाला, अनुभवन जाकरि कीजिये इत्यादि पट्कारक भेदरूप कहिकरि अभेदविवक्षामैं कारकभेदका निषेध किया, एक शुद्ध चेतनामात्र ही कह्या था । अर अब इहां चेतनासामान्य है सो दर्शनज्ञानविशेषकूं नाहीं उल्लंघि वर्तै है । तातैं द्रष्टा अर ज्ञाताका अनुभवन कराया । तहां भी पट्कारकरूप भेद अनुभवनकरि पीछे अभेद अनुभवन अपेक्षा कारकभेद दूरि करि द्रष्टा ज्ञातामात्रका अनुभवन कराया है ।

इहां शिष्य पूछे है, जो चेतना दर्शनज्ञानभेदकूं कैसैं नाहीं उल्लंघे है ? जाकरि चेतयिता आत्मा द्रष्टा ज्ञाता होय । ताका उत्तर कहे हैं । प्रथम तौ चेतना है सो [प्रतिभासरूप है, सो ऐसी चेतना है सो दोयरूपपणाकूं नाहीं उल्लंघि वर्तै है । जातैं सर्व ही वस्तुका सामान्यविशेषरूप स्वरूप है । सो चेतना भी वस्तु है, सो सामान्य विशेषरूपकूं कैसैं उल्लंघे ? सो ताके दोयरूप हैं ते दर्शन ज्ञान हैं, तातैं सो चेतना तिनि दर्शन ज्ञान दोऊनिकूं नाहीं उल्लंघे है । वहुरि जो इनि दोयरूपकूं उल्लंघे तौ सामान्यविशेषरूपका उल्लंघवापणातैं चेतना ही न होय है । तिस चेतनाके अभावतैं दोय दोष आवै—एक तौ अपने गुणका उच्छेद होनेतैं चेतनकै अचेतनपणाकी प्राप्ति आवै, अर दूसरा व्यापक जो चेतना, ताका अभाव होतैं, व्याप्य जो चेतन आत्मा ताका अभाव होय है । तातैं तिनि दोषनिके भयतैं चेतना दर्शनज्ञानस्वरूप ही अंगिकार करनी । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

अद्वैताऽपि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्माऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकादात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥४॥

अर्थ—जगतविषैं निश्चयकरि चेतना अद्वैत है तौऊ जो दर्शनज्ञानरूपकूं छोडै तौ सामान्यविशेषरूपके अभावतैं सो चेतना अपना अस्तिपनाहीकूं छोडै। बहुरि जब चेतना अपना अस्तित्वकूं छोडै, तब चेतनके जडता होय है। बहुरि व्याप्य जो आत्मा, सो व्यापक जो चेतना, तिसविना अंतकूं प्राप्त होय। आत्माका नाश होय। तातैं नियमतैं चेतना है सो दर्शनज्ञानस्वरूप ही होऊ।

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप है, सो चेतना भी वस्तु है, सो दर्शनज्ञानविशेषकूं छोडै, तौ वस्तुपणाका नाश होय, तब चेतनाका अभाव होतैं, कै तौ चेतनके जडपणा आवै, कै चेतना आत्माकी सर्व अवस्थामैं पावै ? तातैं व्यापक है अर आत्मा चेतना ही है। तातैं चेतनाके व्याप्य है सो व्यापकके अभावतैं व्याप्य जो चेतन आत्मा ताका अभाव होय है। तातैं चेतना दर्शनज्ञानस्वरूप ही माननी। इहां तात्पर्य ऐसा—जो सांख्यमती आदि केई सामान्यचेतनाहीकूं मानि एकांत कहे हैं, तिनिका निषेध करनेकूं वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषरूप है, सो चेतनाकूं सामान्यविशेषरूप अंगीकार करनी ऐसा जनाया है। आगै कहे हैं, चेतनाका तौ चिन्मय एक भाव है अर अन्य परभाव हैं, सो चिन्मयभाव तौ उपादेय है अर परभाव हेय है, सो यह सूचनिका अगिले कथनकी है, ताका श्लोक है।

इन्द्रवज्राछन्दः

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥५॥

अर्थ—चैतन्यका तौ एक चिन्मय ही भाव है, अर अन्य भाव हैं, ते प्रगटपणै परके भाव हैं। तातैं एक चिन्मयभाव है सो ही ग्रहण करनेयोग्य है, बहुरि जे परभाव हैं, ते सर्व ही त्यागनेयोग्य हैं। अब इस उपदेशकी गाथा कहे हैं। गाथा—

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे परोदये भावे ।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥१३॥

को नाम भणेद् बुधः ज्ञात्वा सर्वान् परोदयान् भावान् ।

ममेदमिति वचनं जानन्नात्मानं शुद्धं ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यो हि परात्मनोर्नियतस्वलक्षणविभागपातिन्या प्रज्ञया ज्ञानी स्यात् स खल्वेकं चिन्मात्रं भावमात्मीयं जानाति शेषांश्च सर्वानेव भावान् परकीयान् जानाति । एवं जानन् कथं परभावान्ममामी इति ब्रूयात् परात्मनोर्निश्चयेन स्वस्वामिसंबंधस्यासंभवात् । अतः सर्वथा चिद्भाव एव गृहीतव्यः शेषाः सर्वे एव भावाः प्रहातव्या इति सिद्धांतः ।

अर्थ—ज्ञानी है सो अपना स्वरूपकूं जानिकरि अर सर्व ही परके भावनिकूं जानिकरि अर ए मेरे हैं ऐसा वचन कौन कहै ? ज्ञानी पंडित तो नाहीं कहै । कैसा है ज्ञानी ? अपना शुद्ध आत्माकुं जानता संता है ।

टीका—जो पुरुष आत्मा अर परका निश्चितस्वलक्षणके विभागविषैं पडनेवाली जो प्रज्ञा ताकरि ज्ञानी होय है, सो पुरुष निश्चयकरि एक चैतन्यमात्र अपना भाव ताकूं तो अपना जानै है । बहुरि बाकीके सर्व ही भावनिकूं परके जानै है । ऐसैं जानता संता परके भावनिकूं "ए मेरे हैं" ऐसैं कैसैं कहै ? ज्ञानी तो नाहीं कहै । जातैं परके अर आपके निश्चयकरि स्वस्वामिपणाका संबंधका असंभव है । यातैं सर्वथा चिद्भाव ही एक ग्रहण करने योग्य है । अवशेष सर्व ही भाव त्यागने योग्य हैं ऐसा सिद्धांत है ।

भावार्थ—लोकमें भी यह न्याय है, जो सुबुद्धि न्यायवान होय, सो परके धनादिककूं अपना न कहै । तैसें ही सम्यग्ज्ञानी है सो समस्त ही परद्रव्यकूं अपना बनावै नाहीं । अपना निजभावहीकूं अपना जानि ग्रहण करे है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहै हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणाः तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥६॥

अर्थ—उज्वल है उत्कट है चित्तका चरित्र जिन्का ऐसे मोक्षके अर्थि पुरुष हैं, ते यह सिद्धांत सेवन करो—जो मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदा ही हौं, अर ए जे अनेक प्रकारके भिन्नलक्षणरूप भाव हैं, ते मैं नाहीं हौं। जातैं ते समग्र कहिये सारे ही मेरे परद्रव्य हैं। भावार्थ सुगम है। आगै कहे हैं, जो परद्रव्यकूं ग्रहण करे है, सो अपराधवान है, बंधमें पडे है। अर जो निजद्रव्यमें संतुष्ट है सो निरपराधी है, बंधे नाहीं है। ऐसी सूचनिकाका अगिले कथनका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्यते चापराधवान् । बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो यतिः ॥७॥

अर्थ—जो परद्रव्यकूं ग्रहण करता संता है, सो तौ अपराधवान् है, सो बंधमें पडे है। बहुरि अपने ही द्रव्यविषैं संवररूप है संतुष्ट है परद्रव्यकूं नाहीं ग्रहण करे है सो यतीश्वर अपराधरहित है, सो बंधे नाहीं। आगै इस कथनकूं दृष्टांतपूर्वक गाथामें कहे हैं। गाथा—

तेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि ।
मा वज्झेऽहं केणवि चोरोत्ति जणम्मि विवरंतो ॥१४॥
जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि ।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उपज्जदि कयावि ॥१५॥
एवं हि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेदा ।
जो पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥१६॥

स्तेयादीनपराधान् करोति यः स शंकितो भवति ।
मा वध्ये केनापि चौर इति जने विचरन् ॥१४॥
यो न करोत्यपराधान् स निश्शंकस्तु जनपदे भवति ।
नापि तस्य बद्धुं अहो चिंतोत्पद्यते कदाचित् ॥१५॥
एवं हि सापराधो वध्येऽहं तु शंकितश्च तयिता ।
यदि पुनर्निरपराधो निश्शंकोऽहं तु वध्ये ॥१६॥

आत्मख्यातिः—यथात्र लोके य एव परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति । यस्तु शुद्धः सन् तं न करोति तस्य सा न संभवति । तथात्मापि य एवाशुद्धः सन् परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति यस्तु शुद्धः संस्तं न करोति तस्य सा न संभवति, इति नियमः । अतः सर्वथा सर्वपरकीयभावपरिहारेण शुद्ध आत्मा गृहीतव्यः, तथा सत्येव निरपराधत्वात् ।

कोहि नामायमपराधः ?--

अर्थ—जो पुरुष चोरी आदि अपराधनिकूं करे है, सो ऐसें शंकासहित हुवा भ्रमे है, जो यह चोर है ऐसैं जानि मोकूं कोई मति वांधी ल्यो । ऐसी शंकासहित लोकके‌विषैं विचरे है । वहुरि जो किछू अपराध नाहीं करे है, सो पुरुष देशविषैं निःशंक भ्रमे है । ताकै वंधनेकी चिंता कदाचित् नाहीं उपजी है । ऐसें मैं जो अपराध सहित हौं तौ मेरी शंका है, जो 'मैं वंधूं' ऐसी शंकायुक्त आत्मा होय है । वहुरि जो मैं निरपराध हौं तौ निशंक हौं, न वंधूगा, ऐसैं ज्ञानी विचारे है ।

टीका—जैसैं या लोकविषैं जो पुरुष परद्रव्यका ग्रहण है लक्षण जाका ऐसा अपराधकूं करे है तिसहीके बंधकी शंका संभवे है । वहुरि जो अपराध नाहीं करे है, ताकै तौ शंका नाहीं संभवे है । तैसैं आत्मा भी जो अशुद्ध हुवा संता परद्रव्यका ग्रहण है लक्षण जाका ऐसा अपराधकूं करे है, तिसहीकै बंधकी शंका संभवे है । वहुरि जो आत्मा शुद्ध भया संता तिस अप-

राधकूं नाहीं करे है ताकै सो शंका नाहीं संभवे है, यह नियम है। यातैं सर्वथा सर्वपरद्रव्यके भावका परिहार करि शुद्ध आत्मा ग्रहण करना। तैसैं किये ही निरपराधपणा है।

भावार्थ—चोरी आदि अपराध करै, तौ बंधनकी शंका होय। निरपराधकै शंका काहेकूं होय? तैसैं ही आत्मा परद्रव्यका ग्रहणरूप अपराध करै, तौ बंधकी शंका होय ही। आपकूं शुद्ध अनुभवै परकूं नाहीं ग्रहै तौ बंधकी शंका काहेकूं होय? तातैं परद्रव्यकूं छोडि शुद्ध आत्माका ग्रहण करना तब निरपराध होय है। आगै पूछे है, जो यह अपराध कहा है? ताका उत्तर अपराधका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

संसिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिदं च एयट्ठो।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराहो ॥१७॥
जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिओ दु सो होदि।
आराणाए णिच्चं वट्टेहिं अहं तु जाणंतो ॥१८॥

संसिद्धिराधसिद्धं साधितमाराधितं चैकार्थं।
अपगतराधो यः खलु चेतयिता स भवत्यपराधः ॥१७॥
यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति।
आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति जानन् ॥१८॥

आत्मख्यातिः—परद्रव्यपरिहारेण शुद्धस्यात्मनः सिद्धिः साधनं वा राधः, अपगतो राधो यस्य भावस्य सोऽपराधस्तेन सह यश्चेतयिता वर्तते स सापराधः स तु परद्रव्यग्रहणसद्भावेन शुद्धात्मसिद्ध्यभावाद्बंधशंकासंभवे सति स्वयमशुद्धत्वादनाराधक एव स्यात्। यस्तु निरपराधः स समग्रपरद्रव्यपरिहारेण शुद्धात्मसिद्धिसद्भावाद् बंधशंकाया असंभवे सति,

उपयोगैकलक्षणशुद्ध आत्मैक एवाहमिति निश्चिन्वन् नित्यमेव शुद्धात्मसिद्धिलक्षणयाराधनया वर्तमानत्वादाराधक एव स्यात् ।

अर्थ—संसिद्धि राध सिद्ध साधित आराधित ए शब्द एकार्थ हैं, तातैं जो चेतयिता आत्मा अपगतराध कहिये राधसूं रहित होय सो आत्मा अपराध है । बहुरि जो आत्मा अपराध नाहीं निरपराध है, सो निःशंक है—शंकारहित है । आपकूं मैं हों ऐसैं जानता संता आराधनाकरि वर्ते है ।

टीका—परद्रव्यका परिहार करिके जो शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधन सो राध कहिये, तहां जिस चेतयिता आत्माके राध कहिये शुद्ध आत्माकी सिद्ध अथवा साधन अपगत कहिये दूरिवर्ती होय सो आत्मा अपराध है । अथवा याका दूसरा समासविग्रह ऐसा—जिस भावका राध दूरवर्ती होय, तिस भावकूं अपराध कहिये सो तिस अपराधकरि जो आत्मा वर्ते सो आत्मा सापराध है, सो ऐसा आत्मा परद्रव्यके ग्रहणका सद्भावतैं शुद्ध आत्माकी सिद्धीके अभावतैं ताके बंधकी शंकाका संभव होतैं आप स्वयं अशुद्धपणातैं अनाराधक ही है—आराधना करनेवाला नाहीं है । बहुरि जो आत्मा अपराधरहित निरपराध है, सो समस्त परद्रव्यपरिग्रहका परिहार करिके शुद्ध आत्माकी सिद्धीके सद्भावतैं ताके बंधकी शंकाका असंभवकूं होतैं ऐसा निश्चय करता वर्ते--जो मैं उपयोग ही है एक लक्षण जाका ऐसा एक शुद्ध आत्मा ही है । सो आत्मा नित्य ही शुद्ध आत्माकी सिद्धि है लक्षण जाका ऐसी आराधनाकरि वर्तमान होय है तातैं आराधक ही है ।

भावार्थ—संसिद्धि राध सिद्धि साधित आराधित इनि शब्दनिका अर्थ एक ही है । सो इहां राध नाम शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधनका है, सो जाकै यह नाहीं, सो आत्मा सापराध है । अर यह जाकै होय, सो निरपराध है । सो सापराध है ताकै बंधकी शंका संभवे है, तातैं अनाराधक है । अर निरपराध है सो निःशंक भया अपने उपयोगमैं लीन होय, तब

बंधकी शंका नाहीं । अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपका एक भावरूप निश्चय आराधनाका आराधक ही है । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मालिनीवृत्तम्

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः स्पृशति निरपराधो बन्धनं जातु नैव ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो भवति निरपराधः साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

अर्थ—जो आत्मा सापराध है, सो तौ निरंतर अनंतपुद्गलपरमाणुरूप कर्मनिकरि बंधै है । बहुरि जो निरपराध है, सो बंधनकूं कदाचित् नाहीं स्पर्शे है । बहुरि यह सापराध आत्मा है, सो तौ अपने आत्माकूं नियमकरि अशुद्ध ही सेवता सापराध ही होय है । बहुरि जो निरपराध है, सो भले प्रकार शुद्ध आत्माका सेवनेवाला होय है । आगै व्यवहारनयका आलंबी तर्क करे है—जो इस शुद्ध आत्माका सेवनका प्रयास कहिये खेद ताकरि कहा है ? जातैं प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त है, ताकरि ही आत्मा निरपराध होय है । जातैं सापराधके तौ अप्रतिक्रमणादि हैं, सो अपराधके दूरि करनेवाले नाहीं हैं, तातैं तिनिकूं विषकुंभ कहे हैं । बहुरि निरपराधके प्रतिक्रमणादिक हैं ते तिस अपराधके दूरि करनेवाले हैं, तातैं तिनिकूं अमृतकुंभ कहे हैं । सो ही व्यवहारका कहनेवाला आचारसूत्रविषैं कह्या है । उक्तं च गाथा—अप्पडिकमणमपडिसरणं, अप्पडिहारो अधारणा चेव । अणियत्ती य अणिंदागरहा सोहीय विसकुंभो ॥१॥ पडिकमणं पडिसरणं परिहरणं धारणा णियत्तीय । णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो दु ॥२॥ अर्थ—अप्रतिक्रमण, अप्रतिशरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगर्हा, अशुद्धि ऐसैं आठ प्रकार करिके लगे दोषका प्रायश्चित्त करना, सो तौ विषकुंभ है--जहरका भरचा घडा है । बहुरि प्रतिक्रमण, प्रतिशरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा शुद्धि ऐसैं आठ प्रकारकरि लगे दोषका प्रायश्चित्त करना, सो अमृतकुंभ है । ऐसैं व्यवहारनयके पक्षीनैं तर्क किया, ताका समाधान आचार्य निश्चयनयकूं प्रधानकरि कहे हैं । गाथा—

पडिकमणं पडिसरणं परिहरणं धारणा णियत्तीय ।
णिंदा गरुहा सोहिय अट्ठविहो होदि विसकुंभो ॥१९॥
अपडिक्कमणं अपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्तीय अणिंदा अगरुहा विसोहिय अमयकुंभो ॥२०॥

प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारो धारणा निवृत्तिश्च ।
निंदा गर्हा शुद्धिः अष्टविधो भवति विषकुंभः ॥१९॥
अप्रतिक्रमोऽप्रतिसरणं परिहारोऽधारणा चैव ।
अनिवृत्तिश्चानिंदाऽगर्हाऽशुद्धिरमृतकुंभः ॥२०॥

आत्मख्यातिः—यस्तावदज्ञानिजनसाधारणोऽप्रतिक्रमणादिः स शुद्धात्मसिद्ध्यभावस्वभावत्वेन स्वयमेवापराधत्वाद्विषकुंभ एव किं विचारेण । यस्तु द्रव्यरूपः प्रतिक्रमणादिः स सर्वापराधविषापदाकर्पणसमर्थत्वेनामृतकुंभोऽपि प्रतिक्रमणादिविलक्षणाप्रतिक्रमणादिरूपां तार्तीयकीं भूमिमपश्यतः स्वकार्यकरणासमर्थत्वेन विपक्षकार्यकरित्वाद्विषकुंभ एव स्यात् । अप्रतिक्रमणादिरूपा तृतीयभूमिस्तु स्वयं शुद्धात्मसिद्धिरूपत्वेन सर्वापराधविषदोषाणां सर्वंकषत्वात् साक्षात्स्वयममृतकुंभो भवतीति व्यवहारेण द्रव्यप्रतिक्रमणादेरपि, अमृतकुंभत्वं साधयति । तयैव च निरपराधो भवति चेतयिता । तदभावे द्रव्यप्रतिक्रमणादेरप्यपराध एव । अतस्तृतीयभूमिकयैव निरपराधत्वमित्यवतिष्ठते तत्प्राप्त्यर्थ एवायं द्रव्यप्रतिक्रमणादिः, ततो मेति मंस्था यत्प्रतिक्रमणादीन् श्रुतिरूपा जयति किंतु द्रव्यप्रतिक्रमणादिना न मुंचति अन्यदीयप्रतिक्रमणाप्रतिक्रमणाद्यगोचराप्रतिक्रमणादिरूपं शुद्धात्मसिद्धिलक्षणमतिदुष्करं किमपि करिष्यति । वक्ष्यते चात्रैव—

अर्थ—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार धारणा बहुरि निवृत्ति, निंदा, गर्हा, शुद्धि ऐसे आठ प्रकार तौ विषकुंभ हैं । जातैं यामैं कर्तापणाकी बुद्धि संभवे है । अर कर्त्तापणा है सो बंधका कारण है । बहुरि अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, बहुरि अनिवृत्ति, अनिंदा,

अगर्हा, अशुद्धि ऐसे आठ प्रकार अमृतकुंभ हैं। जातैं इहां कर्त्तापणाका निषेध है, किछू ही न करना। तातैं बंधतें रहित है।

टीका—जो प्रथम अज्ञानी जन ते साधारण अप्रतिक्रमणादिक है, सो तौ शुद्धात्माकी सिद्धीका अभाव स्वभावरूप है, तातैं स्वयमेव अपराध दोषरूप ही है, तातैं ताका विचार करि तौ कहा? वह तौ पहले ही त्यागने योग्य है। बहुरि जो द्रव्य प्रतिक्रमणादिक है, सो सर्व अपराधरूपपणातैं विषके अनुक्रमकरि मेटनेविषैं समर्थपणाकरि अमृतकुंभ भी व्यवहार आचारसूत्रमें कह्या है। तौऊ प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदि दोऊते विलक्षण ऐसी अप्रतिक्रमण आदि स्वरूप तीसरी भूमिकूं नाहीं देखनेवाले पुरुषके दोषका काटना जो अपना कार्य, ताके करनेविषैं असमर्थपणाकरि विपक्ष जो बंध ताका कार्य करनेवालापणातैं प्रतिक्रमणादिक है, सो विषकुंभ ही है। बहुरि अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमि है, सो आप स्वयं शुद्धात्माकी सिद्धिरूप है, तिसपणाकरि सर्व अपराधरूप विषके दोष, तिनिकी सर्वकी मेटनेवाली है। तातैं साक्षात् आप स्वयं अमृतकुंभ है, सो ऐसे ही तीया भूमि व्यवहार करिकै द्रव्यप्रतिक्रमणादिकके भी अमृतकुंभपणाकूं साधे है। तिस तीसरी भूमीही करि चेतयिता आत्मा निरपराध होय है। इस तीसरी भूमीकाका अभाव होतैं द्रव्यप्रतिक्रमणादिक है, सो भी अपराध ही है। यातैं यह ठहरी—जो अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमीहीकरि निरपराधपणा है, ताकी प्राप्तिके अर्थि ही यह द्रव्यप्रतिक्रमणादिक है, तातैं ऐसें मति जानो, जो निश्चयनयका शास्त्र है, सो द्रव्य प्रतिक्रमणादिककूं छुडावै है, तौ कहा कहे है? द्रव्यप्रतिक्रमणादिकहीकरि आत्मा बंधतैं नाहीं छूटै है। इस सिवाय अन्य भी प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदिकै अगोचर अप्रतिक्रमणादिरूप शुद्धात्माकी सिद्धि है लक्षण जाका अर करना जाका अतिकठिन ऐसा किछू करावै है, सो इहां ही आगै कहसी, ताकी गाथा--कम्मं जं पुव्वकयं। सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं। तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो

पडिक्कमणं । इत्यादिक निश्चयप्रतिक्रमणादिक स्वरूप आगें कहसी । तहां इस गाथाका भी अर्थ लिखियेगा ।

भावार्थ—व्यवहारनयकै आलंबी कही जो लगै दोषका प्रतिक्रमणादिकरि ही आत्मा शुद्ध होय है, तौ पहले ही शुद्धात्माका आलंबनका खेदकरि कहा है ? शुद्ध भये पीछे ताका आलंबन होय, पहलै ही तौ आलंबनका खेद निष्फल है । ताकूं आचार्य समझावे हैं--जो द्रव्यप्रतिक्रमणादिक हैं ते दोषके मेटनेवाले हैं, परंतु शुद्ध आत्माका स्वरूप प्रतिक्रमणादिरहित है । ताका आलंबविना तौ द्रव्यप्रतिक्रमणादिक हैं ते दोप स्वरूप ही हैं । दोषकूं मेटनेकूं समर्थ नाहीं । जातैं निश्चयकी सापेक्षसहित तौ व्यवहारनय मोक्षमार्गमें है अर केवल व्यवहारहीका पक्ष तौ मोक्षमार्गमें नाहीं, वंधहीका मार्ग है । तातैं ऐसैं कह्या है, जो अज्ञानीके जे अप्रतिक्रमणादिक हैं, ते तौ विषकुंभ है ही, तिनिकी तौ कहा कथा ? परंतु जे व्यवहारचारित्रमें प्रतिक्रमणादिक कहे हैं ते भी निश्चयनयकरि विषकुंभ ही हैं । जातें आत्मा तौ प्रतिक्रमणादिककरि रहित शुद्ध अप्रतिक्रमणादिस्वरूप है ऐसैं जानना । अब इस कथनका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां प्रलीनं चापलमुन्मीलितमालंचनं— ।
आत्मन्येवालानितं च चित्तमासम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥६॥

अर्थ—इस कथनतें सुखकरि बैठनेपणाकूं प्राप्त भये ऐसे प्रमादीजीवनिकूं तौ ताडे हैं । जे निश्चयनयका आश्रय ले प्रमादी होय प्रवर्तें, तिनिकूं ताडिकरि उद्यम लगावे हैं । बहुरि चपलपणाका प्रलय किया है । जे स्वच्छंद वर्तें तिनिका स्वच्छंदपणा मेटया है । बहुरि आलंबनकूं उपाड्या है । जे व्यवहारकी पक्षकरि परद्रव्यका तथा द्रव्यप्रतिक्रमणादिका आलंबन ले संतुष्ट होय है, तिनिका आलंबन छुडाया है । बहुरि चित्तकूं आत्माहीविषैं आलानित किया है, थांभ्या है । व्यवहारके आलंबनमें अनेक प्रवृत्तीमें चित्त भ्रमे था, सो शुद्ध आत्माहीविषैं लगाया है । जहां तांई संपूर्ण विज्ञानघन आत्माकी प्राप्ति न होय, तहां तांई चैतन्यमात्र आत्माविषैं चित्त

लग्या रहै ऐसैं थांभ्या है, ऐसैं जानना । अब कहे हैं, जो इहां निश्चयनयकरि प्रतिक्रमणादिककूं तौ विषकुंभ कह्या अर अप्रतिक्रमणादिककूं अमृतकुंभ कह्या, ताकूं कोई उलटी समझि प्रतिक्रमणादिककूं छोडि प्रमादी होय ताकूं समझावनेकूं कलशरूप काव्य कहे हैं ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥१०॥

अर्थ—अहो भाई, जहां प्रतिक्रमणहीकूं विष कह्या, तहां काहेतैं अप्रतिक्रमण अमृत होय ? तातैं यह जन नीचै नीचै पडता संता प्रमादरूप क्यौं होय है ? निष्प्रमादी भया संता ऊंचा ऊंचा क्यौं नाहीं चढै है ।

भावार्थ—आचार्य कहे हैं, जो अज्ञानावस्थामैं जो अप्रतिक्रमणादिक था, ताकी तौ कथा ही कहा ? इहां तौ निश्चयनयकूं प्रधानकरि अर द्रव्यप्रतिक्रमणादिक शुभ प्रवृत्तिरूप थे, तिनिकी पक्ष छुडावनेकूं तिनिकूं तौ विषकुंभ कहे हैं । जातैं ए कर्म बंधके ही कारण हैं, बहुरि अप्रतिक्रमणप्रतिक्रमणतैं रहित तीसरी भूमि शुद्ध आत्मस्वरूप है, सो प्रतिक्रमणादितैं रहित है । तातैं तहांके अप्रतिक्रमणादिककूं अमृतकुंभ कह्या है । तिस भूमीविषैं चढावनेकूं उपदेश किया है सो प्रतिक्रमणादिककूं विषकुंभ कहे सुणिकरि जो प्रमादी होय है ताकूं कहे हैं यह जन नीचा नीचा क्यौं पडे है ? तीसरी भूमिमैं ऊंचा ऊंचा क्यौं नाहीं चढै है ? जहां प्रतिक्रमणकूं विषकुंभ कह्या, तहां तौ तिसका निषेधरूप अप्रतिक्रमण ही अमृतकुंभ होयगा । सो यह अप्रतिक्रमणादिक अज्ञानीकै होय, सो न जानना, तीसरी भूमिका शुद्ध आत्मामयी जाननी । आगैं इस अर्थकूं दृढ करते संते काव्य कहे हैं ।

पृथ्वीवृत्तम्

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते वाऽचिरात् ॥११॥

अर्थ—जातैं कषायका भर कहिये भार, ताका गौरव कहिये भारयापणा, तातैं अलसता कहिये आलसपणा, ताकूं प्रमाद कहिये है। सो ऐसैं प्रमादकरि युक्त अलसभाव होय, सो शुद्धभाव कैसैं होय ? यातैं आत्मिकरसकरि भरया स्वभावविषैं निश्चल होता संता मुनि है सो परमशुद्धताकूं प्राप्त होय है। बहुरि शीघ्र ही थोरे ही कालमें कर्मबंधतैं छूटे है।

भावार्थ—प्रमाद तौ कषायका गौरवतैं होय है सो प्रमादीकै शुद्धभाव होय नाहीं। जो मुनि उद्यमकरि स्वभावमें प्रवर्ते है सो शुद्ध होयकरि मोक्षकूं प्राप्त होय है। अत्र मुक्त होनेका अनुक्रमके अर्थरूप काव्य कहे हैं अर मोक्षका अधिकार पूर्ण करे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं स्वे द्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥१२॥

अर्थ—जो पुरुष निश्चयकरि अशुद्धताका करनेवाला जो परद्रव्य, ताकूं सर्वकूं छोडिकरि अर आप अपने निजद्रव्यविषैं रतीकूं प्राप्त होय है—लीन होय है, सो पुरुष नियमतैं सर्व अपराधतैं रहित भया संता, बंधका नाशकूं प्राप्त होयकरि नित्य उदयरूप भया संता अपना स्वरूपका प्रकाशरूप ज्योतिकरि निर्मल उछलता जो चैतन्यरूप अमृतका प्रवाह, ताकरि पूर्ण है महिमा जाकी ऐसा शुद्ध होता संता कर्मनितैं छूटे है।

भावार्थ—पहले समस्त परद्रव्यका त्याग करि अपना निजद्रव्य आत्मस्वरूपविषैं लीन होय है, सो सर्व रागादिक अपराधतैं रहित होय आगामी बंधका नाश करे है अर नित्य उदयरूप केवलज्ञानकूं पाय शुद्ध होय सर्व कर्मका नाशकरि मोक्षकूं प्राप्त होय है, यह मोक्ष होनेका अनुक्रम है। ऐसैं मोक्षका अधिकार पूर्ण भया, ताके अंत मंगलरूप ज्ञानकी महिमाका कलशरूप काव्य कहे हैं।

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेतन्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥१३॥

इति मोक्षो निष्क्रांतः ।

इति समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ अष्टमोंकः ।

अर्थ—यह ज्ञान है सो पूर्ण भया संता दैदीप्यमान प्रगट भया । कहा करता संता प्रगट भया ? कर्मका बंध था ताके छेदतैं अविनाशी अतुल जो मोक्ष, ताकूं प्राप्त होता संता । बहुरि कैसा प्रगट भया ? नित्य है उद्योत प्रकाश जाका ऐसी प्रफुल्लित भई है स्वाभाविक अवस्था जाकी । बहुरि कैसा प्रगट भया ? एकान्तशुद्ध कहिये ताकै कर्मका मैल न रह्या अत्यंत शुद्ध भया प्रगट भया । बहुरि कैसा प्रगट भया ? एक जो अपना ज्ञानमात्र आकार, ताका निजरसका भरतैं अत्यंत गंभीर है अर धीर है—जाकी थाह नाहीं अर जामैं किछू आकुलता नाहीं । बहुरि प्रगट होयकरि कहा किया ? अचल जो कोई प्रकार चलै नाहीं ऐसी आपकी महिमा, ताविषैं लीन भया ।

भावार्थ—यह ज्ञान प्रगट भया सो कर्मका नाश करि मोक्षरूप होता अपनी स्वाभाविक अवस्थारूप अत्यंत शुद्ध समस्त ज्ञेयाकारकूं गौण करि ज्ञानका प्रकाश "जाका थाह नाहीं जामैं आकुलता नाहीं" ऐसा प्रगट दैदीप्यमान होयकरि अपनी महिमाविषैं लीन भया । ऐसैं रंग-भूमिविषैं मोक्षतत्त्वका स्वांग आया था; सो ज्ञान प्रगट भया, मोक्षका स्वांग निसरि गया ।

सवैया—ज्यों नर कोय परचो दृढबंधन बंधस्वरूप लखै दुखकारी ।
चिंत करै निति कैम कटै यह तौऊ छिदै नहि नै कटिकारी ॥
छेदनकूं गहि आयुध धाय चलाय निशंक करै दुय धारी ।
यों बुध बुद्धि धसाय दुधा करि कर्मरु आतम आप गहारी ॥१॥

ऐसैं इस समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिनामा टीकाकी वचनिकाविषैं आठमा मोक्षनामा अधिकार पूर्ण भया ॥८॥ इहां तांई गाथा ३०७ भई । कलश १९२ भये ।

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ।

दोहा—सर्वविशुद्ध सुज्ञानमय सदा आतमाराम । परकूं करै न भोगवै जानै जपि तसु नाम ॥१॥

इहां मोक्षतत्त्वका स्वांग निकसनेके अनंतर सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करे है। रंगभूमिविषैं जीवाजीव, कर्ता कर्म, पुण्य पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए आठ स्वांग आये। तिनिका नृत्य भया। अपना अपना स्वरूप दिखाय निकसि गये। अव सर्व स्वांग दूरि भये एकाकार सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करे है। तहां प्रथम ही मंगलरूप ज्ञानपुंज आत्माकी महिमाका काव्य कहे हैं।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

नीत्वा सम्यक्प्रलयमखिलान्कर्तृभोक्त्रादिभावान् दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ॥१॥

अर्थ—ज्ञानका पुञ्ज आत्मा है, सो स्फुरायमान प्रगट होय है। कहा करि प्रगट होय है ? समस्त ही कर्ता अर भोक्ता इत्यादिक भाव हैं तिनि सर्वहीकूं भले प्रकार प्रलय कहिये नाशकूं प्राप्त करी प्रगट होय है। वहुरि कैसा है ? प्रतिपद कहिये वारंवार नाशकूं प्राप्त करि प्रगट होय है। कर्मके क्षयोपशमके निमित्ततैं अनेक अवस्था होय हैं, तिनिप्रति वंधमोक्षकी ज्यौं कल्पना प्रवृत्ति तातैं दूरीभूत है—दूरीवर्त्ती है। वहुरि शुद्ध है शुद्ध है। दोयवार कहनेतैं रागादिक मल अर आवरण दोऊतैं रहित है वहुरि कैसा है ? अपना निजरस जो ज्ञानरस, ताका विसर कहिये फैलना, ताकरि आपूर्ण कहिये भरया ऐसा पवित्र अर अचल है अर्चि कहिये दीप्ति—प्रकाश जाका। वहुरि कैसा है ? टंकोत्कीर्ण है प्रगट महिमा जाकी।

भावार्थ—शुद्धनयका विषय ज्ञान स्वरूप आत्मा है, सो कर्ताभोक्तापणाका भावसूं रहित है। वहुरि वंधमोक्षकी रचनाकरि रहित है, अर परद्रव्यतैं अर सर्व परद्रव्यके भावनितैं रहित है, तातैं शुद्ध है। अर अपने निजरसका प्रवाहकरि पूर्ण दैदीप्यमान ज्योतिरूप टंकोत्कीर्ण जाकी

महिमा है । सो ऐसा ज्ञानपुंज आत्मा प्रगट होय है । अब सर्व विशुद्धज्ञानकूं प्रगट करे है । तहां प्रथम ही कर्ता–भोक्ताभावतैं न्यारा दिखावे हैं, ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुपछन्दः

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् । अज्ञानादेव कर्ताऽयं तदभावादकारकः ॥२॥

अर्थ—इस चित्स्वरूप आत्माका कर्तापणा स्वभाव नाहीं है । जैसैं वेदयितृत्व कहिये भोक्तापणा स्वभाव नाहीं है, तैसैं सो यह आत्मा कर्ता मानिये है, सो अज्ञानतैं मानिये है । अर जब अज्ञानका अभाव होय है, तब अकारक कहिये कर्त्ता नाहीं है । आगे आत्माका अकर्तापणा दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करे हैं । गाथा —

दवियं जं उपज्जदि गुणेहि तंतेहि जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥१॥
जीवस्साजीवस्सय जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥२॥
ण कुदोवि विउप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण सो होदि ॥३॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पंजंतिय णियमा सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा ॥४॥

द्रव्यं यदुत्पद्यते गुणैस्तत्तैर्जानीह्यनन्यत् ।
यथा कटकादिभिस्तु पर्यायैः कनकमनन्यदिह ॥१॥

जीवस्याजीवस्य तु ये परिणामास्तु दर्शिताः सूत्रे ।
ते जीवमजीवं वा तैरनन्यं विजानीहि ॥२॥
न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात्कार्यं न तेन स आत्मा ।
उत्पादयति न किंचित्कारणमपि तेन न स भवति ॥३॥
कर्म प्रतीत्य कर्ता कर्तारं तथा प्रतीत्य कर्माणि ।
उत्पद्यंते नियमात्सिद्धिस्तु न दृश्यतेऽन्या ॥४॥

आत्मख्यातिः—जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः, एवमजीवोऽपि क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानोऽजीव एव न जीवः, सर्वद्रव्याणां स्वपरिणामैः सह तादात्म्यात् कंकणादिपरिणामैः कांचनवत् । एवं हि जीवस्य स्वपरिणामैरुत्पद्यमानस्याप्यजीवेन सह कार्यकारणभावो न सिद्ध्यति सर्वद्रव्याणां द्रव्यांतरेणोत्पाद्योत्पादकभावाभावात् । तदसिद्धौ चाजीवस्य जीवकर्मत्वं न सिद्ध्यति । तदसिद्धौ च कर्तृकर्मणोरनन्यापेक्षसिद्धत्वात्—जीवस्याजीवकर्तृत्वं न सिद्धति, अतो जीवोऽकर्ता अवतिष्ठते ।

अर्थ—जो द्रव्य अपना गुणनिकरि उपजे है, सो तिनि गुणनिकरि अन्य मति जानूं तिनि गुणमय ही है । जैसें सुवर्ण है सो अपना कटक आदि पर्यायनिकरि लोकमें अन्य नाहीं है—कटकादि है सो सुवर्ण ही है । तैसें ही द्रव्य जानूं । ऐसें जीवके अर अजीवके जे परिणाम सूत्रविषें कहे हैं, तिनि परिणामनिकरि तिस जीव अजीवकूं अनन्य जानूं—अन्य मति जानूं । परिणाम हैं ते द्रव्य ही हैं । यातें सो आत्मा कोईतें उपज्या नाहीं है, तातें तौ काहूका किया कार्य नाहीं है । बहुरि काहू अन्यकूं उपजावै नाहीं है, तातें काहूका कारण भी नाहीं है । बहुरि यह न्याय है जो कर्मकूं प्रतीत्यकरि कर्ता है तैसें ही कर्ताकूं प्रतीत्यकरि कर्म उपजे है यह नियम है । अन्यप्रकार कर्ताकर्मकी सिद्धि नाहीं देखिये है ।

टीका—जीव है सो तौ प्रथम ही क्रमकरि अर नियमित निश्चित अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता जीव ही है, अजीव नाहीं है । ऐसें ही अजीव है सो भी क्रमहीकरि अर

निश्चित जे अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता अजीव ही है, जीव नाहीं है। जातैं सर्व ही द्रव्यनिकै अपने परिणामनिकरि सहित तादात्म्य है, कोई ही अपने परिणामनितैं अन्य नाहीं, ऐसे परिणाम तिनिकूं छोडि अन्यमें जाय नाहीं। जैसैं कंकणादि परिणामनिकरि सुवर्ण उपजे है, सो कंकणादिकतैं अन्य नाहीं है तिनितैं तादात्म्यस्वरूप है; तैसैं सर्व द्रव्य हैं। ऐसैं ही अपने परिणामनिकरि उपजता जो जीव, ताकै अजीवकरि सहित कार्यकारणभाव नाहीं सिद्ध होय है। जातैं सर्व द्रव्यनिकै अन्य द्रव्यकरि सहित उत्पाद्य अर उत्पादकभावका अभाव है अर तिस कार्यकारणभावकी सिद्धि न होतैं अजीवकै जीवका कर्मपणा न सिद्ध होय है अर अजीवकै जीवका कर्मपणा न होतैं कर्ताकर्मके अनन्यापेक्षसिद्धपणातैं जीवकै अजीवका कर्तापणा न ठहर्‌या। यातैं जीव है सो परद्रव्यका कर्ता न ठहर्‌या अकर्ता ठहर्‌या।

भावार्थ—सर्वद्रव्यनिके परिणाम न्यारे न्यारे हैं। अपने अपने परिणामनिके सर्व कर्ता हैं। ते तिनिके कर्ता हैं, ते परिणाम तिनिके कर्म हैं। निश्चयकरि कोईकै काहूतैं कर्ताकर्मसंबंध नाहीं है। तातैं जीव अपने परिणामनिका कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। तैसैं ही अजीव अपना परिणामनिका कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। ऐसैं अन्यके परिणामनिका जीव अकर्ता है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं। अर जीव अकर्ता है, तौऊ याकै बंध होय है सो यह अज्ञानकी महिमा है, ऐसैं कहे हैं।

शिखरिणीछन्दः

अकर्त्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभुवनः।
तथाऽप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥३॥

अर्थ—ऐसैं जीव है सो अपने निजरसतैं विशुद्ध है। यातैं परद्रव्यका तथा परभावनिका अकर्ता ठहर्‌या। कैसा है जीव? स्फुरायमान होता—फैलता जो चैतन्यज्योति, तिनिकरि व्याप्त भया है भुवन कहिये लोकका आभोग कहिये मध्य जाकरि ऐसा है भवन कहिये होना जाका।

ऐसा है तौऊ याकै इस लोकविषैं प्रगट कर्मप्रकृतिनिकरि बंध होय है। सो यह निश्चयकरि अज्ञानका कोई ऐसा ही महिमा है, सो वडा गहन है—ताका थाह न पाइये।

भावार्थ—शुद्धनयकरि जीव परद्रव्यका कर्ता नाहीं अर सर्व ज्ञेयनिविषैं जाका ज्ञान व्यापनेवाला है, तौऊ याकै कर्मका बंध होय है सो यह कोई अज्ञानका वडा महिमा है। आगै इस अज्ञानका महिमाकूं प्रगट करे हैं। गाथा—

चेदा दु पयडिअट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि।
पयडीवि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ॥५॥
एवं बंधो दुण्हंपि अण्णोण्णपच्चयाण हवे।
अप्पणो पयडी एय संसारो तेण जायदे ॥६॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति।
प्रकृतिरपि चेतकार्थमुत्पद्यते विनश्यति ॥५॥
एवं बंधो द्वयोरन्योन्यप्रत्ययाद्भवेत्।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते ॥६॥

आत्मख्यातिः—अयं हि आ संसारत एव प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानेन परमात्मनोरेकत्वाध्यासस्य करणात्कर्ता सन् चेतयिता प्रकृतिनिमित्तमुत्पादविनाशावासादयति। प्रकृतिरपि चेतयितृनिमित्तमुत्पत्तिविनाशावासादयति। एवमनयोरात्मप्रकृत्योः कर्तृकर्मभावाभावेप्यन्योन्यनिमित्तनैमितिकभावेन द्वयोरपि बंधो दृष्टः, ततः संसारः, तत एव च तयोः कर्तृकर्मव्यवहारः—

अर्थ—चेतयिता कहिये चेतनेवाळा आत्मा है सो तौ प्रकृति कहिये ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृति ताके निमित्ततैं उपजे है तथा विनसे है। तथा प्रकृति भी तिस चेतनेवाले आत्माके

निमित्ततैं उपजे विनसे है, आत्माके परिणामके निमित्ततैं तैसैं ही परिणमे है। ऐसैं दोऊकै आत्माकै अर प्रकृतिकै परस्पर निमित्ततैं बंध होय है। बहुरि तिस बंधकरि संसार उपजे है।

टीका—यह चेतयिता आत्मा है सो अनादि संसारतैं लगाय अर आपका अर बंधका न्यारा न्यारा लक्षणका भेदज्ञान न होनेकरि परके अर आत्माके एकपणाका निश्चित अभिप्रायके करनेतैं परद्रव्यका कर्ता भया संता प्रकृति जो ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृति, ताके निमित्ततैं उपजना विनशना करे है। बहुरि प्रकृति भी आत्माके निमित्ततैं उत्पत्ति-विनाशकूं प्राप्त होय है—आत्माके परिणामके अनुसार परिणमे है। ऐसैं इनि आत्माकै अर प्रकृतिकै दोऊनिकै परमार्थतैं कर्ताकर्मपणाका भावका अभाव होतैं भी परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावकरि दोऊहीकै बंध देखिये है। बहुरि तिस बंधतैं संसार है, ताहीतैं दोऊकै कर्ताकर्मका व्यवहार प्रवर्तै है।

भावार्थ—आत्माकै अर प्रकृतिकै परमार्थतैं कर्ताकर्मपणाका अभाव है, तौऊ परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावतैं कर्ताकर्मका भाव है, तातैं बंध है, बंधतैं संसार है ऐसा व्यवहार है। आगे कहै कि जेतैं आत्मा प्रकृतिके निमित्ततैं उपजना विनशना न छोडै, तेतैं अज्ञानी मिथ्यादृष्टि असँयत है। गाथा—

जाएसो पयडियट्ठं चेदगो ण विमुंचदि ।
अयाणओ हवे तावं मिच्छादिट्ठी असंजदो ॥७॥
जदा विमुंचदे चेदा कम्मप्फलमणंतयं ।
तदा विमुत्तो हवदि जाणगो पस्सगो मुणी ॥८॥

यावदेष प्रकृत्यर्थं चेतयिता नैव विमुंचति ।
अज्ञायको भवेत्तावन्मिथ्यादृष्टिरसंयतः ॥७॥

यदा विमुंचति चेतयिता कर्मफलमनंतकं ।
तदा विमुक्तो भवति ज्ञायको दर्शको मुनिः ॥८॥

आत्मख्यातिः—यावदयं चेतयिता प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं न मुंचति तावत्स्वपरयोरेकत्वज्ञानेनाज्ञायको भवति । स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन मिथ्यादृष्टिर्भवति । स्वपरयोरेकत्वपरिणतया चासंयतो भवति । तावदेव परात्मनोरेकत्वाध्यासस्य करणात्कर्ता भवति । यदा त्वयमेव प्रतिनियतस्वलक्षणनिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं मुंचति तदा स्वपरयोर्विभागज्ञानेन ज्ञायको भवति । स्वपरयोर्विभागदर्शनेन दर्शको भवति स्वपरयोर्विभागपरिणत्या च संयतो भवति तदैव च परात्मनोरेकत्वाध्यासस्याकरणादकर्ता भवति ।

अर्थ--यह आत्मा चेतयिता जेतैं प्रकृतिके निमित्ततैं उपजना विनशना न छोडै तेतैं अज्ञायक भया संता मिथ्यादृष्टि असँयमी होय है । बहुरि जिस काल आत्मा अनंत जो कर्मका फल, ताकूं छोडे है, तिस काल बंधसूं रहित होय—विमुक्त होय, ज्ञायक दर्शक कहिये ज्ञाता द्रष्टा मुनि सँयमी होय है ।

टीका--जेतैं यह चेतयिता आत्मा अपना अर प्रकृतिका न्यारा न्यारा स्वभावरूप लक्षणका भेदज्ञानका अभावतैं आपके बंधका निमित्त जो प्रकृतिका स्वभाव, ताही न छोडे है, तेतैं अपना अर परका एकपणाका ज्ञानकरि अज्ञायक होय है । बहुरि अपना परका एकपणाका दर्शन श्रद्धानकरि मिथ्यादृष्टि होय है । बहुरि अपनी अर परकी एकपणाकी परिणतिकरि असँयत होय है । बहुरि तेतैं ही परका अर आत्माका एकपणाका अध्यवसान करनेतैं कर्ता होय है । बहुरि जिस काल यह ही आत्मा आपका अर प्रकृतिका न्यारा न्यारा स्वलक्षणका निर्णयरूप ज्ञानतैं आपके बंधका निमित्त जो प्रकृतिका स्वभाव ताहि छोडे है, तिस काल अपना अर परका विभागका ज्ञानकरि ज्ञायक होय है । बहुरि अपना अर परका विभागका दर्शन श्रद्धानकरि दर्शक होय है । बहुरि अपना अर परका विभागकी परिणतिकरि सँयत होय है । तिस ही काल परका अर आपका एकपणाका अभ्यास नाहीं करनेतैं अकर्ता होय है ।

भावार्थ—यह आत्मा जेतैं अपना अर परका निजलक्षण नाहीं जानै, तेतैं भेदज्ञानका अभावतैं कर्मप्रकृतिका उदयकूं अपना जाणि परिणमे है। तैसैं मिथ्यादृष्टि अज्ञानी असँयमी होय, कर्ता होय, कर्मका बंध करे है। अर भेदज्ञान होय तब ताका कर्ता न बने है, तब कर्मका बंध न करे है, ज्ञाता द्रष्टा हुवा परिणमे है। ऐसैं ही भोक्तापणा आत्माका स्वभाव नाहीं है ऐसैं कहे हैं। ताकी सूचनिकाका श्लोक—

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः। अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥४॥

अर्थ—इस आत्माका कर्तास्वभाव जैसैं नाहीं है, तैसैं ही भोक्तापणा भी स्वभाव नाहीं है, यह अज्ञानहीतैं भोक्ता होय है। बहुरि जब अज्ञानका अभाव होय है तब अवेदक है—भोक्ता नाहीं है। आगै इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं।

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ॥९॥

अज्ञानी कर्मफलं प्रकृतिस्वभावस्थितस्तु वेदयते।
ज्ञानी पुनः कर्मफलं जानाति—उदितं न वेदयते ॥९॥

आत्मख्यातिः—अज्ञानी हि शुद्धात्मज्ञानाभावात् स्वपरयोरेकत्वज्ञानेन, स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन, स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या च प्रकृतिस्वभावे स्थितत्वात् प्रकृतिस्वभावमप्यहंतया—अनुभवन् कर्मफलं वेदयते। ज्ञानी तु शुद्धात्मज्ञानसद्भावात्स्वपरयोर्विभागज्ञानेन, स्वपरयोर्विभागदर्शनेन स्वपरयोरेकत्वापरिणत्या च प्रकृति स्वभावादपसृतत्वात्—शुद्धात्मस्वभावमेकमेवाहंतयानुभवन् कर्मफलमुदितं ज्ञेयमात्रत्वात्—जानात्येव न पुनस्तस्याहंतयाऽनुभवितुमशक्यत्वाद् वेदयते।

अर्थ—अज्ञानी है सो तौ कर्मका फलकूं प्रकृतिके स्वभावविषैं तिष्ठया हुवा वेदे है—भोगवै है। बहुरि ज्ञानी है सो उदय आया कर्मका फलकूं जाने है अर वेदे नाहीं है—भोगवै नाहीं है।

टीका—अज्ञानी है सो निश्चयकरि शुद्ध आत्माका ज्ञानका अभावतैं अपना अर परका एक-

पणाका ज्ञानकरि वहुरि अपना अर परका एकपणाका दर्शन श्रद्धानकरि वहुरि अपनी अर परकी एकपणाकी परिणतिकरि प्रकृतिके स्वभावविषैं तिष्ठे है। तातैं प्रकृतिके स्वभावकूं अहंबुद्धिपणाकरि आप अनुभवता संता कर्मके फलकूं वेदे है—भोगवे है। वहुरि ज्ञानी है सो शुद्ध आत्माके ज्ञानके सद्भावतैं अपना अर परका विभागका ज्ञानकरि वहुरि अपना अर परका विभागका दर्शन श्रद्धान करि वहुरि अपनी परकी विभागरूप परिणतिकरि प्रकृतिके स्वभावतैं अपसृत भया है—दूरिवर्ती भया है अर अपना शुद्ध आत्माका स्वभावकूं एकहीकूं अहंबुद्धिपणाकरि आप अनुभवे है। सो ऐसैं अनुभवन करता संता उदय आया जो कर्मका फल, सो ज्ञेयमात्रपणातैं ताकूं जाने ही है। वहुरि ताकूं अहंपणाकरि अनुभवन करनेका असमर्थपणातैं वेदै नाहीं है भोगवै नाहीं है।

भावार्थ—अज्ञानीकै तौ शुद्ध आत्मा ज्ञान नाहीं है, तातैं जैसा कर्म उदय आवै तिसहीकूं आपा जानि भोगवै है। वहुरि ज्ञानीकै शुद्ध आत्मानुभव भया, तातैं प्रकृतीका उदय आवै ताकूं अपना स्वभाव जाने नाहीं, ताका ज्ञाता ही रहै—भोक्ता नाहीं होय है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको ज्ञानीतु प्रकृतिस्वभावनिरतो नो जातु चिद्वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां शुद्धैकात्ममये महस्याचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥५॥

अज्ञानी वेदक एवेति नियम्यते—

अर्थ—अज्ञानी जन है सो तौ प्रकृतिस्वभावविषैं रागी है लीन है, ताहीकूं अपना स्वभाव जाने है, तातैं सदाकाल ताका वेदक है—भोक्ता है। वहुरि ज्ञानी है सो प्रकृतिस्वभावविषैं विरागी है—विरक्त है, ताकूं परका स्वभाव जाने है, तातैं कदाचित् भी वेदक नाहीं है—भोक्ता नाहीं है। सो आचार्य उपदेश करे हैं—जो जे निपुण प्रवीण पुरुष हैं, ते ज्ञानीपणाका अर अज्ञानीपणाका

ऐसा नियम निरूपणकरि विचारिकरि अज्ञानीपणाकूं तौ छोडौ। अर शुद्ध आत्मामय जो एक मह—तेज-प्रताप, ताविषैं निश्चल होयकरि ज्ञानीपणाकूं सेवन करौ। आगै अज्ञानी है सो वेदक ही है—भोक्ता ही है ऐसा नियम कहे हैं। गाथा—

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइदूण सत्थाणि।
गुडदुद्धंपि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥१०॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठुप्यधीत्य शास्त्राणि।
गुडदुग्धमपि पिबंतो न पन्नगा निर्विषा भवंति ॥१०॥

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई। तात्पर्यवृत्ति टीका मिलती है वह छपी है।

जो पुण णिरावराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।
आराहणाय णिच्चं वट्ठदि अहमिदि वियाणंतो ॥

यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति।
आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति विजानन् ॥

तात्पर्यवृत्तिः—जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि—यस्तु चेतयिता ज्ञानी जीवः स निरपराधः सन् परमात्माराधनविषये निश्शंको भवति। निश्शंको भूत्वा किं करोति? आहारणायं णिच्चं वट्ठदि अहमिदि वियाणंतो-निर्दोषपरमात्माराधनारूपया निश्चयाराधनया नित्यं सर्वकालं वर्तते। किं कुर्वन्? अनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा शुद्धात्मानं सम्यग्जानन् परमसमरसी भावेन वानुभवति इति।

अर्थ—जो ज्ञानी जीव है वह निरपराध होता हुआ परमात्माके आराधनमें निःशंक होता है और मैं अनंतज्ञान स्वरूप हूं" ऐसी निर्विकल्प समाधीमें स्थित होकर परम समरसी भावका अनुभव करता है।

आत्मख्यातिः—यथात्र विषधरो विषभावं स्वयमेव न मुंचति, विषभावमोचनसमर्थसशर्करक्षीरपानाच्च न मुंचति। तथा किलाभव्यः प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव न मुंचति प्रमोचनसमर्थद्रव्यश्रुतज्ञानाच्च न मुंचति, नित्यमेव भावश्रुतज्ञानलक्षणशुद्धात्मज्ञानाभावेनाज्ञानित्वात्। अतो नियम्यते ज्ञानी प्रकृतिस्वभावे सुस्थितत्वाद्वेदक एव।

अर्थ—अभव्य है सो प्रकृति कहिये कर्मका उदयस्वभाव है ताहीं न छोडे है। जो भलैप्रकार अभ्यास करि शास्त्रनिकूं पढै है, तौऊ प्रकृति वदले नाहीं है। जैसें सर्प है सो गुडसहित दूधकूं पीवता संता भी निर्विष नाहीं होय है।

टीका—जैसैं इस लोकविषैं सर्प है, सो अपना विषभाव, ताहीं आपै आप भी नाहीं छोडे है। वहुरि विषभावके मेटनेकूं समर्थ ऐसा मिश्रीसहित दूधके पीवनेते भी नाहीं छोडे है। तैसैं प्रगटपणैं अभव्य है सो प्रकृतिका स्वभावकूं स्वयमेव भी नाहीं छोडे है, वहुरि प्रकृतिस्वभावके छुडावनेकूं समर्थ जो द्रव्यश्रुत शास्त्रका ज्ञान, तातें भी नाहीं छोडे है। जातें याकै नित्य ही भावश्रुतज्ञानस्वरूप जो शुद्धात्मज्ञान, ताका अभावकरि अज्ञानीपणा है। यातैं ऐसा नियम कीजिये है, जो अज्ञानी प्रकृतिस्वभावविषैं तिष्ठवापणातें वेदक हो है—कर्मका भोक्ता ही है।

भावार्थ—अज्ञानी कर्मका फलका भोक्ता ही है यह नियम कह्या। तहां अभव्यका उदाहरण युक्त है, जाका ऐसा स्वयमेव स्वभाव है, यह नियम कह्या। तहां अभव्य जो वाह्यकारण मिलै भी कर्मका उदयका भोगनेका स्वभाव नाहीं वदले है। तातैं अज्ञानीकै भोक्तापणाका नियम वणे है। आगैं कहे हैं, जो ज्ञानी कर्मफलका अवेदक ही है ऐसा नियम कीजीये है। गाथा—

णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणादि।
महुरं कडुवं बहुविहमवेदको तेण पण्णत्तो ॥११॥

निर्वेदसमापन्नो ज्ञानी कर्मफलं विजानाति।
मधुरं कटुकं वहुविधमवेदको तेन प्रज्ञप्तः ॥११॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी तु निरस्तभेदभावश्रुतज्ञानलक्षणशुद्धात्मज्ञानसद्भावेन परतोऽत्यंतविविक्तत्वात् प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव मुंचति ततो मधुरं मधुरं वा कर्मफलमुदितं ज्ञातृत्वात् केवलमेव जानाति, न पुनर्ज्ञाने सति परद्रव्यस्याहंतयाऽनुभवितुमयोग्यत्वाद्वेदयते। अतो ज्ञानी प्रकृतिस्वभावविरक्तत्वादवेदक एव।

अर्थ—ज्ञानी है सो निर्वेद कहिये वैराग्य, ताकूं प्राप्त है, सो कर्मके फलकूं जाने है। जो मधुर कहिये मीठा है तथा कटुक कहिये कडवा है ऐसें अनेक प्रकार है ताकूं जाने है, तातैं अवेदक है—भोक्ता नाहीं है।

टीका—ज्ञानी है सो दूरि भया है भेद जामैं, ऐसा जो अभेदरूप भावश्रुतज्ञान है, सो स्वरूप जाका ऐसा जो शुद्धात्मा, ताका ज्ञानका सद्भावकरि परतैं अत्यंत विरक्त है। तातैं ऐसा ज्ञानी प्रकृतिस्वभाव जो कर्मका उदयका स्वभाव, ताहि स्वयमेव छोडे है, तिसरूप नाही परिणमे है। तातैं मीठा कडवा जो सुखदुःखरूप कर्मका फल उदय आया, ताकूं, ताकूं केवल जाने ही है। जातैं ज्ञानीका ज्ञातापणा स्वभाव है, तातैं कर्ता नाहीं बने है। भोक्ता नाहीं बने है। ज्ञान होते संते परद्रव्यका अहंबुद्धिकरि अनुभवनेका अयोग्यपणा है, तातैं वेदक नाहीं है—भोक्ता नाहीं होय है। यातैं ज्ञानी प्रकृतिस्वभावतैं विरक्त है, तिसपणाकरि अवेदक ही—भोक्ता नाहीं है।

भावार्थ—जो जातैं विरक्त होय ताकूं अपने वश तौ भोगवै नाहीं अर परवशतैं भोगवै तौ ताकूं परमार्थकरि भोक्ता न कहिये। इस न्यायतैं ज्ञानी प्रकृतिस्वभाव जो कर्मका उदय, ताकूं अपना जानै नाहीं, तातैं विरक्त है, सो स्वयमेव तौ भोगवे ही नाहीं अर उदयकी वरजोरीतैं परवश हुवा अपनी निबलाईतैं भोगवे तौ ताकूं परमार्थकरि भोक्ता न कहिये, व्यवहारकरि भोक्ता कहिये। ताका इहां शुद्धनयतैं अधिकार नाहीं। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।

जानन्परं करणवेदनयोरभावात् शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥६॥

अर्थ–ज्ञानी है सो कर्मकूं स्वतंत्र होय करै नाहीं है। तैसैं ही वेदे नाहीं है। केवल तिस कर्मस्वभावकूं जाने ही है। ऐसैं केवल जानता संता करनेका अर वेदनेका अभावतैं शुद्धस्वभावके विषैं निश्चित है सो निश्चयकरि मुक्त ही है–कर्मनितैं छुटचा ही कहिये।

भावार्थ—ज्ञानी कर्मका स्वाधीनपणे कर्ता भोक्ता नाहीं केवल ज्ञाता ही है। तातैं शुद्ध स्वभावरूप भया संता मुक्त ही है। जो कर्म उदय आवै भी है तौ ज्ञानीका कहा करै? जेतैं निबलाई रहै जेतैं कर्म जोर चलावो, सबलाई क्रमतैं वधाय कर्मका निर्मूल नाश करैहीगा। आगै इस ही अर्थकूं फेरि दृढ करे हैं। गाथा–

णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माइ बहु पयाराइ ।
जाणदि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥१२॥

नापि करोति नापि वेदयते ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ।
जानाति पुनः कर्मफलं बंधं पुण्यं च पापं च ॥१२॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानी हि कर्मचेतनाशून्यत्वेन कर्मफलचेतनाशून्यत्वेन च स्वयमकर्तृत्वादवेदयितृत्वाच्च न कर्म करोति न वेदयते च। किंतु ज्ञानचेतनामयत्वेन केवलं ज्ञातृत्वात्कर्मबंधं कर्मफलं च शुभमशुभं वा केवलमेव जानाति।

कुत एतत्?

अर्थ–ज्ञानी है सो बहुत प्रकारके कर्मनिकूं करै नाहीं है, वेदे नाहीं है। बहुरि कर्मके फलकूं पुण्यकूं पापकूं जाने है।

टीका–ज्ञानी है सो कर्मचेतनाकरि शून्य है। बहुरि कर्मफलचेतनाकरि शून्य है। तिसपणाकरि स्वयं स्वतंत्र होय कर्ता नाहीं होय है। बहुरि स्वयं वेदक भी न होय है। तातैं कर्मकूं करै

नाहीं है, वेदै नाहीं है, तौ कहा है ? । ज्ञानी ज्ञानचेतनामय है, तिसपणाकरि केवल ज्ञाता ही है, तिसपणातैं कर्मका बंध बहुरि कर्मका शुभ तथा अशुभफल ताकूं केवल जाने ही है। आगै पूछे है, जो यह जानना कैसा है ? काहेतैं है ? ताका उत्तर दृष्टांतपूर्वक कहे हैं। गाथा—

दिट्ठी सयंपि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणादि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥१३॥

दृष्टिः स्वयमपि ज्ञानमकारकं यथाऽवेदकं चैव।
जानाति च बंधमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव ॥१३॥

आत्मख्यातिः—यथात्र लोके दृष्टिर्दृश्यादत्यंतविभक्तत्वेन तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात् दृश्यं न करोति न वेदयते च, अन्यथाग्निदर्शनात्संधुक्षणवत् स्वयं ज्वलनकरणस्य, लोहपिंडवत्स्वयमेवौष्ण्यानुभवनस्य च दुर्निवारत्वात्। किंतु केवलं दर्शनमात्रस्वभावत्वात् तत्सर्वं केवलमेव पश्यति तथा ज्ञानमपि स्वयं दृष्टित्वात् कर्मणोऽत्यंतविभक्तत्वेन निश्चयतस्तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात्कर्म न करोति न वेदयते च। किंतु केवलं ज्ञानमात्रस्वभावत्वात्कर्मबंधं मोक्षं वा कर्मोदयं निर्जरां वा, केवलमेव जानाति।

अर्थ--जैसैं दृष्टि कहिये नेत्र है सो देखनेयोग्य पदार्थकूं देखे है, तिनिका कर्ता भोक्ता नाहीं है। तैसैं ही ज्ञान है सो बंध, मोक्ष, कर्मका उदय, निर्जरा इनिकूं जाने ही है; करनेवाला भोगनेवाला नाहीं है।

टीका--जैसैं इस लोकमें दृष्टि कहिये नेत्र है सो दृश्य कहिये देखनेयोग्य पदार्थ तिनितैं अत्यंत भिन्नपणातैं तिनिके करनेकूं अर वेदनेकूं असमर्थ है; तिसपणाकरि दृश्यपदार्थकूं करै नाहीं है, वेदै नाहीं है। जो ऐसैं न होय तौ अग्नीकूं प्रज्वलित करनेवालाकीज्यौं अर लोहका पिंड अग्नीतैं प्रज्वलित तप्तायमान होय है ताकी ज्यौं अग्नीके देखनेतैं नेत्रकै कर्ता--भोक्तापणा अवश्य आवै तौ कहा है ? दृष्टीका केवल दर्शनमात्र स्वभाव है। तातैं तिस दृश्यकूं केवल देखे ही है। तैसैं ही

ज्ञान है सो भी आप दृष्टिवत् ही है, तातैं कर्मतैं अत्यंतभिन्नपणातैं निश्चयतैं तिस कर्मका करना अर भोगनाविषैं असमर्थ है. तिसपणातैं कर्मकूं करै नाहीं है, भोगवै नाहीं है। तौ कहा है? केवल ज्ञानमात्रस्वभावपणातैं कर्मके बंधकूं तथा मोक्षकूं तथा कर्मके उदयकूं तथा कर्मकी निर्जराकूं केवल जानै ही है।

भावार्थ--ज्ञानका स्वभाव नेत्रकीज्यों दूरितैं जाननेका है, तातैं करना भोगना ज्ञानकै नाहीं। जो करना भोगना मानै है, सो अज्ञान है। इहां कोई पूछै जो ऐसा तो केवलज्ञान है; अर जबताई मोहकर्मका उदय है तबतांई तौ सुखदुःखरागादिरूप परिणमै ही है; अर दर्शनावरण ज्ञानावरण वीर्यांतरायका उदय है तहांतांई अदर्शन अज्ञान असमर्थपणा होय ही है; केवलज्ञान पहले ज्ञाता द्रष्टा कैसें कहिये? ताका समाधान—जो पहले तौ कहते ही आवे है तौ स्वतंत्र होय करै भोगवै ताकूं परमार्थतैं कर्ता भोक्ता कहिये है, सो जब मिथ्यादृष्टिरूप अज्ञानका अभाव भया, तब परद्रव्यका स्वामीपणाका अभाव भया, तब आप ज्ञानी भया, स्वतंत्रपणें तौ काहूका कर्त्ता भोक्ता होय नाहीं। अर आपकी निबलाईकरि कर्मउदयकी बरजोरीकरि जो कार्य होय है, तातैं परमार्थदृष्टीमैं कर्ता भोक्ता न कहिये है। अर तिसके निमित्ततैं कछू नवीनकर्मरज लागे भी है, तौ ताकूं इहां बंधमें न गणिये है। जो संसार है सो तौ मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व गये पीछै संसारका अभाव ही होय है, समुद्रमें बूंदकी कहा गणती?

बहुरि एता और जानना—जो केवलज्ञानी तौ साक्षात् शुद्धात्मस्वरूपरूपही है अर श्रुतज्ञानी भी शुद्धनयके अवलंबनतैं आत्माकूं तैसा ही अनुभवै है, प्रत्यक्ष परोक्षका ही भेद है। सो याके ज्ञानश्रद्धानकी अपेक्षा तौ ज्ञाताद्रष्टापणा ही है, बहुरि चारित्रकी अपेक्षा प्रतिपक्षी कर्मका जेता उदय है तेता घात है; सो याका नाश करनेका उद्यम है। जब कर्मका अभाव होसी, तब साक्षात् यथाख्यात चारित्र होसी, तब केवलज्ञानकी प्राप्ती होसी। बहुरि सम्यग्दृष्टिकूं ज्ञानी कहिये है सो मिथ्यात्वका अभावहीकी अपेक्षा कहिये है। जो अपेक्षा न लीजिये, तौ ज्ञान सामान्य

करि तौ सर्व ही जीव ज्ञानी हैं बहुरि विशेष अपेक्षा ही लीजिये तौ जहां तांई कञ्चिन्मात्र भी अज्ञान रहै, जेतैं ज्ञानी न कह्या जाय, जैसैं सिद्धांतमें भाव लगाये है तहांतांई केवलज्ञान न उपजै, तेतैं बारमा गुणस्थानतांई अज्ञानभाव लगाया है। तातैं इहां ज्ञानी अज्ञानी कहना सम्यक्त्वमिथ्यात्व हीकी अपेक्षा जानना। आगै जे सर्वथा एकांतके आशयतैं आत्माकूं कर्ता ही माने हैं, तिनिकूं निषेधे हैं, ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः। सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—ये पुरुष अज्ञान अंधकारकरि आच्छादे हुये आत्माकूं कर्ताही माने हैं, ते मोक्षकूं चाहते हैं, तौऊ तिनिकै सामान्यजन—लौकिकजनकीज्यौं मोक्ष नाहीं होय है॥ अब इस अर्थकूं गाथाकरि कहे हैं॥ गाथा—

लोगस्स कुणदि विह्णू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणंपिय अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए ॥१४॥
लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाणं अप्पओ कुणदि ॥१५॥
एवं ण कोवि मुक्खो दीसइ दुण्हंपि समणलोयाणं।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणुआसुरे लोगे ॥१६॥

लोकस्य करोति विष्णुः सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान्।
श्रमणानामप्यात्मा यदि करोति षड्विधान् कायान् ॥१४॥

लोकश्रमणानामेवं सिद्धांतं प्रति न दृश्यते विशेषः ।
लोकस्य करोति विष्णुः श्रमणानामप्यात्मा करोति ॥१५॥
एवं न कोऽपि मोक्षो दृश्यते लोकश्रमणानां द्वयेषां ।
नित्यं कुर्वतां सदैव मनुजान् सुरान् लोकान् ॥१६॥

आत्मख्यातिः—ये त्वात्मानं कर्तारमेव पश्यंति ते लोकोत्तरिका अपि न लौकिकतामतिवर्तन्ते । लौकिकानां परमात्मा विष्णुः सुरनारकादिकार्याणि करोति, तेषां तु स्वात्मा तानि करोति इत्यपसिद्धांतस्य समत्वात् । ततस्तेषामात्मनो नित्यकर्तृत्वाभ्युपगमात्–लौकिकानामिव लोकोत्तरिकाणामपि नास्ति मोक्षः ।

अर्थ—देव नारक तिर्यंच मनुष्यप्राणी हैं तिनिकूं लोककै तौ विष्णु करे है ऐसी मान्य है । वहुरि श्रमण जे यति तिनिकैभी ऐसी मान्य होय, जो षट्कायके जीवनिकूं आत्मा करे है । तौ लोकका अर श्रमणनिका दोऊनिका एक सिद्धांत ठहर्या, किछू विशेष न देखिये है । जातैं लौकिकके विष्णु करे है, श्रमणनिकै आत्मा करे है ऐसें दोऊ कर्ताकी माननेमें समान भये । ऐसें लोकके अर श्रमणनिके दोऊनिके कोईभी मोक्ष नाहीं देखिये है । जातैं देव मनुष्य असुर सहित लोकनिकूं जीवनिकूं नित्य दोऊ करते संते प्रवर्तें हैं, तिनिकै काहेका मोक्ष होय ?

टीका—जे पुरुष आत्माकूं कर्ताही माने हैं, ते लोकोत्तरिक हैं–लोकतैं दूरिवर्ति वाह्य भये हैं । तौऊ लौकिकपणाकूं नाहीं उल्लंघि वर्तें हैं । जातैं लौकिकजननिकै तौ परमात्मा विष्णु सुरनारक आदि कायनिकूं करे हैं । वहुरि तैं लोकवाह्य भये ऐसे मुनि तिनिके अपना आत्मा तिनि सुरनारक आदिकूं करे हैं ऐसैं अपसिद्धांत कहिये अन्यथा माननेका दोऊकै समानपणा है । तातैं ते आत्माकूं नित्य कर्तापणाके माननेतैं लौकिकजनकीज्यों लोकोत्तरिक मुनि हैं तौऊ लौकिकजन ही हैं, तिनिकै मोक्ष नाहीं होय है ।

भावार्थ—जे आत्माकूं कर्ता माने हैं ते मुनि होय तौऊ लौकिकजनसारिखेही हैं । जातैं लोक

ईश्वरकूं कर्ता माने है तिनि मुनिनिनै आत्माकूं कर्ता मान्या ऐसैं दोऊकी माननी समान भई। तातैं जो लौकिकजनकै सो मोक्ष नाहीं, तैसैं तिस मुनिनिकै मोक्ष नहीं कर्ता होगा सो कार्यके फलकूं भोगवेहीगा जो फल भोगवेगा ताकै काहेका मोक्ष ? आगै कहे हैं, जो परद्रव्यका अर आत्माका किछूभी संवंध नाही है, तातैं कर्ताकर्मसंबंधभी नाही है, ऐसैं श्लोकमें कहे हैं।

अनुष्टुपछन्दः

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः। कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८॥

अर्थ—परद्रव्यका अर आत्मतत्त्वका सर्व ही संबंध नाही है, ऐसैं कर्त्ताकर्मपणाका संबंधका अभावकूं होतैं परद्रव्यका कर्तापणा काहेते होय ?

भावार्थ—परद्रव्यका अर आत्माका किछूभी संवंध नाही, तब कर्त्ताकर्मसंबंध काहेकूं होय ? ऐसैं होतैं कर्तापणा कहेकूं होय ? आगै व्यवहारनयके वचनकरि कहिये हैं, जो परद्रव्य मेरा है सो जे व्यवहारहीकूं निश्चय माने हैं, ते अज्ञानतैं माने हैं, याकूं दृष्टांतपूर्वक कहे हैं। गाथा—

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदत्था।
जाणंति णिच्छयेण दु णय इह परमाणुमित्त मम किंचि ॥१७॥
जह कोवि णरो जंपदि अह्माणं गामविसयपुररट्ठं।
णय होंति ताणि तस्स दु भणदिय मोहेण सो अप्पा ॥१८॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवदि एसो।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ॥१९॥
तह्मा ण मेति णच्चा दोह्नं एदाण कत्ति ववसाओ।
परदव्वे जाणंतो जाणे जो दिट्ठिरहिदाणं ॥२०॥

व्यवहारभाषितेन तु परद्रव्यं मम भणंत्यविदितार्थाः
जानंति निश्चयेन तु नचेह परमाणुमात्रमपि किंचित् ॥१७॥
यथा कोऽपि नरो जल्पति अस्माकं ग्रामविषयपुरराष्ट्रं ।
न च भवंति तस्य तानि तु भणति च मोहेन स आत्मा ॥१८॥
एवमेव मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निस्संशयं भवत्येषः ।
यः परद्रव्यं ममेति जानन्नात्मानं करोति ॥१९॥
तस्मान्न मे इति ज्ञात्वा द्वयेषामप्येतेषां कर्तृव्यवसायं ।
परद्रव्ये जानन् जानीयाद् दृष्टिरहितानां ॥२०॥

आत्मख्यातिः—अज्ञानिन एव व्यवहारविमूढा परद्रव्यं ममेदमिति पश्यंति । ज्ञानिनस्तु निश्चयप्रतिबुद्धाः परद्रव्यकणिकामात्रमपि न ममेदमिति पश्यंति । ततो यथात्र लोके कश्चिद् व्यवहारविमूढः परकीयग्रामवासी ममायं ग्राम इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः । तथा ज्ञान्यपि कथंचिद् व्यवहारविमूढो भूत्वा परद्रव्यं ममेदमिति पश्येत् तदा सोऽपि निस्संशयं परद्रव्यमात्मानं कुर्वाणो मिथ्यादृष्टिरेव स्यात् । अतस्तत्त्वं जानन् पुरुषः सर्वमेव परद्रव्यं न ममेति ज्ञात्वा लोकश्रमणानां द्वयेषामपि योऽयं परद्रव्ये कर्तृव्यवसायः, स तेषां सम्यग्दर्शनरहितत्वादेव भवति इति सुनिश्चितं जानीयात् ।

अर्थ—अविदितार्थ कहिये नाहीं जान्या है पदार्थका स्वरूप ज्यानैं, ते पुरुष व्यवहार कहे वचन लेकरि कहे हैं, जो परद्रव्य मेरा है । वहुरि जे निश्चयकरि पदार्थका स्वरूप जाने हैं, ते कहे हैं, जो परद्रव्य परमाणुमात्र भी किछू मेरा नाहीं है । व्यवहारका कहना ऐसा है—जैसैं कोई पुरुष कहें मेरा ग्राम है, मेरा देश है, मेरा नगर है, मेरा राजका देश है, तहां निश्चय विचारिये तौ ते ग्राम आदिक ताके नाहीं हैं; वह आत्मा मोहकरि मेरा मेरा कहे हैं । ऐसैं ही जो ज्ञानी होयकरि भी जो परद्रव्यकूं परद्रव्य जानता संता भी कहे है जो परद्रव्य मेरा है, ऐसैं आपकूं परद्रव्यमय करे है, सो निःसंदेह मिथ्यादृष्टि होय है । तातैं ज्ञानी है सो परद्रव्य मेरा नाहीं है

ऐसैं जानिकरि अर जो परद्रव्यविषैं लौकिकजनकै अर मुनिनिकै जो कर्तापणाका व्यापार होय तौ ऐसैं जानै, जो ए सम्यग्दर्शनकरि रहित है।

टीका—जे व्यवहारहीविषैं विमूढ है ते ही अज्ञानी हैं, ते ही यह परद्रव्य मेरा है ऐसैं देखे है कहे हैं। बहुरि ज्ञानो हैं ते निश्चयनयकरि प्रतिबुद्ध भये हैं, ते परद्रव्यकूं कणिकामात्रकूं भी यह मेरा है ऐसैं नाहीं देखे हैं, तातैं जैसैं या लोकमैं कोई व्यवहारविषैं विमूढ परके ग्राममैं वसनेवाला कहै " यह मेरा ग्राम है" ऐसैं देखतासंता मिथ्यादृष्टि कहिये। तैसैं जो ज्ञानी भी कोई प्रकारकरि व्यवहारविषैं विमूढ होयकरि 'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसैं देखे, तौ तिसकाल सो भी परद्रव्यकूं आप करता संता मिथ्यादृष्टि ही होय। यातैं जो तत्त्वकूं जानता पुरुष है, सो सब ही परद्रव्य मेरा नाहीं है ऐसैं जानिकरि अर लौकिकजन अर श्रमणजन इनि दोऊनिके भी जो यह परद्रव्यविषैं कर्तापणाका निश्चय है, तौ सो तिनिके सम्यग्दर्शनका रहितपणाहीतैं होय है, ऐसैं निश्चय जाने है।

भावार्थ—ज्ञानी भी होय अर फेरि व्यवहारकरि मोही होय, तौ, लौकिकजन होऊ तथा मुनिजन होऊ, दोऊके परद्रव्यका कर्तापणा आवै, तब मिथ्यादृष्टि होय है, ऐसैं ज्ञानी जानै है। अब इस ही अर्थके कलशरूपकाव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्धं सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
तत्कर्तृकर्मघटनाऽस्ति न वस्तुभेदे पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥६॥

अर्थ—जाकारणतैं एकवस्तुकै अन्यवस्तुकरि सहित इस लोकमैं संबंध है, सो समस्त ही निषेध्या है; तातैं जहां वस्तुभेद है तहां कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति ही नाहीं है। तातैं लौकिकजन भी अर मुनिजन भी वस्तुके तत्त्व कहिये यथार्थस्वरूप ऐसा ही देखो, जो कोई काहूका कर्ता नाहीं, परद्रव्य परका अकर्त्ता ही श्रद्धामैं ल्यावो। आगे कहे हैं जो पुरुष ऐसा वस्तुस्वभावका नियम

नाहीं जाने है; ते अज्ञानी भये कर्मकूं करे हैं, ते भावकर्मके कर्ता होय हैं, ऐसैं अपने भावकर्मका कर्ता अज्ञानतैं चेतन ही है, ताकी सूचनिकाका काव्य है।

वसन्ततिलकाछन्दः

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेममज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष वस्तुका स्वभावका पूर्वोक्त नियमकूं नाहीं जाने हैं, तिनिका आचार्य खेद करि कहे हैं। अहो अज्ञानविषैं मग्न भया है मह कहिये पुरुषार्थ—पराक्रमरूप तेज जिनिका ते वराक कहिये रांक भये संते कर्मकूं करे हैं, ज्ञानतैं छूटि गये हैं तातैं दूसरी तीसरी भावकर्मका आप चेतन ही कर्ता होय है, अन्य नाहीं है।

भावार्थ—जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है सो वस्तूका स्वरूपका नियम तौ जाने नाहीं अर परद्रव्यका कर्ता बनै, तब आप अज्ञानरूप परिणमैं, तब अपना भावकर्मका कर्ता अज्ञानी ही है, अन्य नाहीं है। आगैं इस कथनकूं युक्तिकरि साधै हैं। गाथा—

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्ता ॥२१॥

नीचे लिखी गाथाकी आत्मख्याति संस्कृत और हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है इसलिये नहीं छापी गई।

सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥

सम्यक्त्वं यदि प्रकृतिः सम्यग्दृष्टिं करोत्यात्मानं ।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारकः प्राप्तः ॥

अहवा एसो जीवो पोग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पोग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ॥२२॥
अह जीवो पयडी विय पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तह्मा दोहि कयं तं दोण्णिवि भुंजंति तस्स फलं ॥२३॥
अह ण पयडी ण जीवो पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पोग्गलदव्वं मिच्छत्तं तंतु ण हु मिच्छा ॥२४॥

मिथ्यात्वं यदि प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टिं करोत्यात्मानं ।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारकः प्राप्तः ॥२१॥
अथवैषः जीवः पुद्गलद्रव्यस्य करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः ॥२२॥
अथ जीवः प्रकृतिरपि पुद्गलद्रव्यं कुरुते मिथ्यात्वं ।
तस्मात् द्वाभ्यां कृतं द्वावपि भुंजाते तस्य फलं ॥२३॥
अथ न प्रकृतिर्न च जीवः पुद्गलद्रव्यं करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं तत्तु न खलु मिथ्या ॥२४॥

आत्मख्यातिः—जीव एव मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता तस्याचेतनप्रकृतिकार्यत्वे चेतनत्वानुषंगात् । स्वस्यैव जीवो मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता जीवेन पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादिभावकर्मणि क्रियमाणे पुद्गलद्रव्यस्य चेतनानुषंगात् । न च जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वादिभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ जीववदचेतनायाः प्रकृतेरपि तत्फलभोगानुषंगात् । न च जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादि—भावानुषंगात् । ततो जीवः कर्ता स्वस्य कर्म कार्यमिति सिद्धं ।

अर्थ—जीवकै मिथ्यात्वभाव होय है ताकूं विचारे है—जो निश्चयकरि यह कौन करे है? तहां जो मिथ्यात्वनामा मोहकर्मकी प्रकृति पुद्गलद्रव्य है, सो यह प्रकृति आत्माकूं मिथ्यादृष्टि करे है। ऐसें मानिये तौ सांख्यमतीकूं कहे हैं—प्रकृति तो तेरे मत। अचेतन है, सो, अहो सांख्यमती, अचेतन प्रकृति जीवकै मिथ्यात्वभावका करनेवाला ठहरचा। सो यह वने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये, जो यह जीव है सो पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वकूं करे है। तौ ऐसें मानै पुद्गलद्रव्यकी मिथ्यादृष्टि ठहरै, जीव मिथ्यादृष्टि न ठहरै, सो यह भी वने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये जो जीव अर प्रकृति ए दोऊ पुद्गलद्रव्यकै मिथ्यात्वकूं करे है। तौ दोऊकरि किया ताका फल दोऊ ही भोगवै ऐसें ठहरै, सो यह भी वने नाहीं। अथवा ऐसें मानिये, जो पुद्गलद्रव्यनामा मिथ्यात्वकूं प्रकृति भी न करे है अर जीव भी न करे है, तौ पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यात्व है। सो ऐसें मानना कहां मिथ्या झूठा नाहीं है। तातैं यह सिद्ध होय है—जो मिथ्यात्वनामा जीवका भावकर्म ताका कर्ता तौ अज्ञानी जीव है अर याके निमित्ततैं पुद्गल द्रव्यमें मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति निपजी है।

टीका—मिथ्यात्व आदि भाव कर्म है, ताका कर्त्ता जीव ही है। जातैं तिसकूं अचेतन जो प्रकृति, ताका कार्य मानिये तौ तिस भावकर्मकै भी अचेतनपणाका प्रसंग आवे है। वहुरि मिथ्यात्व आदि भावकर्मका कर्ता जीव आपके ही आप है। जो जीवकरि पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्व आदि भावकर्म किये मानिये, तौ भावकर्म चेतन है, सो पुद्गलद्रव्यकै चेतनपणाका प्रसंग आवे है। वहुरि जीव अर प्रकृति दोऊ ही मिथ्यात्व आदि भावकर्मके कर्ता नाहीं है, जातैं प्रकृति अचेतन है, ताकै भी जीवकी ज्यौं ताका फल भोगनेका प्रसंग आवे है। वहुरि ये दोनू अकर्ता भी नाहीं, जातैं पुद्गलद्रव्यकै अपने स्वभावहीतैं मिथ्यात्व आदि भावका प्रसंग आवे है। तातैं मिथ्यात्व आदि भावकर्मका जीव कर्ता है अर अपना भावकर्म है सो अपना कार्य है यह सिद्ध भया।

भावार्थ—भावकर्मका कर्ता जीव ही सिद्ध किया, सो इहां ऐसा जानना—जो परमार्थतैं अन्य द्रव्य अन्यद्रव्यका भावका कर्ता नाहीं है। तातैं जे चेतनके भाव हैं, तिनिका चेतन ही कर्ता होय। सो यह जीवकै अज्ञानतैं मिथ्यात्व आदि भावरूप परिणाम हैं ते चेतन हैं, जड नाहीं हैं। शुद्धनयकरि तिनिकूं चिदाभास भी कहे हैं। तातैं चेतनकर्मका कर्ता चेतन ही होय, यह परमार्थ है। तहां अभेददृष्टिमैं तौ शुद्धचेतनमात्र जीव है अर कर्मके निमित्ततैं परिणमे तब तिनि परिणामनिकरि युक्त होय। तब परिणामपरिणामीका भेददृष्टिमैं अपने अज्ञानभाव परिणाम हैं, तिनिका कर्ता जीव ही है। अर अभेददृष्टिमैं कर्ताकर्मभाव ही नाहीं है, शुद्धचेतनामात्र जीववस्तु है। या प्रकार यथार्थ समझना। जो चेतनकर्मका कर्त्ता चेतन ही है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयोरज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गा कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न तत्पुद्गलः ॥११॥

अर्थ—कर्म है सो कार्य है, तातैं विना किया होय नाहीं। बहुरि सो कर्म जीवका अर प्रकृतिका दोऊका किया नाहीं। जातैं प्रकृति तौ जड है, ताकै अपने अपने कार्यका फलका भोगनेका प्रसंग आवे है। बहुरि एक प्रकृतिकी ही कृति कहिये कार्य नाहीं है। जातैं प्रकृति तौ अचेतन है अर भावकर्म चेतन है। तातैं इस भावकर्मका कर्त्ता जीव ही है। यह जीवहीका कर्म है। जातैं चेतनके अनुग कहिये चेतनतैं अन्वयरूप हैं—चेतनके परिणाम हैं। अर पुद्गल है सो ज्ञाता नाहीं है। तातैं पुद्गलके नाहीं है।

भावार्थ—चेतनकर्म चेतनहीकै होय, पुद्गल जड है, ताकै चेतनकर्म कैसैं होय? आगै जे केई भावकर्मका भी कर्ता कर्महीकूं माने हैं, तिनिकूं समझावनेकूं स्याद्वादकरि वस्तुकी मर्यादा कहे हैं। ताकी सूचनिकाका काव्य है।

शार्दूलविक्रिडितच्छन्दः

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वाऽऽत्मनः कर्तृतां कर्त्ताऽऽत्मैव कथञ्चिदित्यचलिता कैश्चित् श्रुतिः कोपिता ।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुध्दये स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—केई आत्माके घातक सर्वथा एकान्तवादी तिनिनैं कर्महीकूं कर्त्ता विचारि अर आत्माके कर्तापणा दूरि करि अर यह आत्मा कथंचित् कर्त्ता है ऐसैं कहनेवाली निर्बाध श्रुति कहिये जिनेश्वरकी वाणी है, ताकूं कोप उपजाया, ऐसे सर्वथा एकान्तवादी हैं। ते कैसे हैं ? उद्धत उत्कट तीव्र उदय भया जो मोह मिथ्यात्व ताकरि मुद्रित भई है बुद्धि जिनकी तिनिका बोध कहिये ज्ञान ताकी सम्यक्प्रकार शुद्धिके अर्थि वस्तुकी मर्यादा कहिये है। कैसी कहिये है ? स्याद्वादके प्रतिबन्ध कहिये प्रबन्ध ताकरि पाइये है विजय कहिये निर्बाधसिद्धि जानैं।

भावार्थ—केई वादी सर्वथा एकान्तकरि कर्मका कर्त्ता कर्महीकूं कहे हैं। अर आत्माकूं अकर्त्ता ही कहे हैं। ते आत्माका स्वरूपके घातक हैं। अर जिनवाणी है सो स्याद्वादकरि वस्तुकूं निर्बाध साधे है, सो वाणी आत्माकूं कथंचित् कर्त्ता कहे है, सो तिनि सर्वथा एकान्तीनिपरि वाणीका कोप है। तिनिकी बुद्धि मिथ्यात्वकरि मूंदि रहे है। तिनिके मिथ्यात्वके दूरि करनेकूं आचार्य कहे हैं। स्याद्वादकरि जैसी वस्तुसिद्धि होय है, तैसैं कहिये है। गाथा—

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिं सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ॥२५॥
कम्मेहिं सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिय मिच्छत्तं णिज्जदि य असंजयं चेव ॥२६॥

कम्मेहिं भमाडिज्जदि उड्ढमहं चावि तिरियलोयम्मि ।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि ॥२७॥
जह्मा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदित्ति हरदि जं किंचि ।
तह्मा सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥२८॥
पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छी कम्मं च पुरिसमहिलसदि ।
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी ॥२९॥
तह्मा ण कोवि जीवो अबह्मचारी दु तुह्म मुवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेवाहि कम्मं अहिलसदि जं भणियं ॥३०॥
जह्मा घादेदि परं परेण घादिज्जदि सापयडी ।
एदेणच्छेण दुकिर भण्णदि परघादणामेत्ति ॥३१॥
तह्मा ण कोवि जीवो उवघादगो अत्थि तुह्म उवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेवाहि कम्मं घादेदि जं भणियं ॥३२॥
एवं संखुवदेसं जेदु परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारया सव्वे ॥३३॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाण अप्पणो कुणदि ।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एवं भणंतस्स ॥३४॥

अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि ।
णवि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियोव कादुं जे ॥३५॥
जीवस्स जीवरूवं विच्छरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो किं सो हीणो अहियोव कदं भणासि दव्वं ॥३६॥
जह जाणगोदु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मदं ।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि ॥३७॥

कर्मभिस्तु अज्ञानी क्रियते ज्ञानी तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिः स्वाप्यते जागर्यते तथैव कर्मभिः ॥२५॥
कर्मभिः सुखीक्रियते दुःखीक्रियते च कर्मभिः ।
कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते नीयतेऽसंयमं चैव ॥२६॥
कर्मभिर्भ्राम्यते उद्ध्र्वमधश्चापि तिर्यग्लोकं च ।
कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यावत्किंचित् ॥२७॥
यस्मात् कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरतीति किंचित् ।
तस्मात्तु सर्वजीवा अकारका भवंत्यापन्नाः ॥२८॥
पुरुषः स्त्र्यभिलाषी स्त्रीकर्म च पुरुषमभिलषति ।
एषाचार्यपरंपरागतेदृशी श्रुतिः ॥२९॥
तस्मान्न कोऽपि जीवोऽब्रह्मचारी युष्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्मैव हि कर्माभिलषतीति यद्भणितं ॥३०॥

यस्माद्धंति परं परेण हन्यते च सा प्रकृतिः ।
एतेनार्थेन भण्यते परघातं नामेति ॥३१॥
तस्मान्न कोऽपि जीव उपघातको युष्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्मैव हि कर्म हंतीति भणितं ॥३२॥

एवं सांख्योपदेशं ये तु प्ररूपयंतीदृश श्रमणाः ।
तेषां प्रकृतिः करोत्यात्मानश्चाकारकाः सर्वे ॥३३॥

अथवा मन्यसे ममात्मात्मानमात्मनः करोति ।
एष मिथ्यास्वभावस्तवैतन्मन्यमानस्य ॥३४॥

आत्मा नित्योऽसंख्येयप्रदेशो दर्शितस्तु समये ।
नापि स शक्यते ततो हीनोऽधिकश्च कर्तुं यत् ॥३५॥

जीवस्य जीवस्वरूपं विस्तरतो जानीहि लोकमात्रं हि ।
ततः स किं हीनोऽधिको वा कथं करोति द्रव्यं ॥३६॥

अथ ज्ञायकस्तु भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठतीति मतं ।
तस्मान्नाप्यात्मात्मानं स्वयमात्मनः करोति ॥३७॥

आत्मख्यातिः—कर्मैवात्मानमज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव ज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव स्वापयति निद्राख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव जागरयति निद्राख्यकर्मोदयक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव सुखयति सद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव दुःखयति असद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव मिथ्यादृष्टिं करोति मिथ्यात्वकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवासंयतं करोति चारित्रमोहाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवोर्द्ध्वाधस्तिर्यग्लोकं भ्रमयति आनुपूर्व्याख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः अपरमपि यद्यावत्किंचिच्छुभाशुभभेदं तत्तावत्सकलमपि कर्मैव करोति प्रशस्ताप्रशस्तरागाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । यत एवं समस्तमपि स्वतंत्रं कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरति च ततः सर्व एव जीवाः

नित्यमेवैकांतेनाकर्तार एवेति निश्चिनुमः। किंच—श्रुतिरप्येनमर्थमाह पुंवेदाख्यं कर्म स्त्रियमभिलषति स्त्रीवेदाख्यं कर्म पुमांसमभिलषति इति वाक्येन कर्मण एव कर्माभिलाषकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्याब्रह्मकर्तृत्वसमर्थनेन प्रतिषेधात्। तथा यत्परेण हंति, येन च परेण हन्यते तत्परघातकर्मेति वाक्येन कर्मण एव कर्मघातकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्य घातकर्तृत्वप्रतिषेधाच्च सर्वथैवाकर्तृत्वज्ञापनात्। एवमीदृशं सांख्यसमयं स्वप्रज्ञापराधेन सूत्रार्थमबुध्यमानाः केचिच्छ्रमणाभासाः प्ररूपयंति तेषां प्रकृतेरेकांतेन कर्तृत्वाभ्युपगमेन सर्वेषामेव जीवानामेकांतेनाकर्तृत्वापत्तेः–जीवः कर्तेति कोपो दुःशक्यः परिहर्तुं। यस्तु कर्म, आत्मनो ज्ञानादिसर्वभावान् पर्यायरूपान् करोति, आत्मा त्वात्मानमेवैकं करोति ततो जीवः कर्तेति श्रुतिकोपो न भवतीत्यभिप्रायः स मिथ्यैव। जीवो हि द्रव्यरूपेण तावन्नित्योऽसंख्येयप्रदेशो लोकपरिमाणश्च। तत्र न तावन्नित्यस्य कार्यत्वमुपपन्नं कृतकत्वनित्यत्वयोरेकत्वविरोधात्। न चावस्थिताऽसंख्येयप्रदेशस्यैकस्य पुद्गलस्कंधस्येव प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणद्वारेणापि कार्यत्वं प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणे सति तस्यैकत्वव्याघातात्। न चापि सकललोकवस्तुविस्तारपरिमितनियतनिजाभोगसंग्रहस्य प्रदेशसंकोचनविकाशद्वारेण तस्य कार्यत्वं, प्रदेशसंकोचविकाशयोरपि शुष्कार्द्रचर्मवत्प्रतिनियतनिजविस्ताराद्धीनाधिकस्य तस्य कर्तुमशक्यत्वात्। यस्तु वस्तुस्वभावस्य सर्वथापोढुमशक्यत्वात् ज्ञायको भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठति, तथा तिष्ठंश्च ज्ञायककर्तृत्वयोरत्यंतविरुद्धत्वान्मिथ्यात्वादिभावानां न कर्ता भवति। भवंति च मिथ्यात्वादिभावाः ततस्तेषां कर्मैव कर्तृ प्ररूप्यत इति वासनोन्मेषः स तु नितरामात्मानं करोतीत्यभ्युपगममुपहंत्येव ततो ज्ञायकस्य भावस्य सामान्यापेक्षया ज्ञानस्वभावावस्थितत्वेऽपि कर्मजानां मिथ्यात्वादिभावानां ज्ञानसमयेऽनादिज्ञेयज्ञानशून्यत्वात् परमात्मेति जानतो विशेषापेक्षया त्वज्ञानरूपस्य ज्ञानपरिणामस्य करणात्कर्तृत्वमनुमंतव्यं तावद्यावत्तदादिज्ञेयज्ञानभेदविज्ञानपूर्णत्वादात्मानमेवात्मेति जानतो विशेषापेक्षयापि ज्ञानरूपेणैव ज्ञानपरिणामेन परिणममानस्य केवलं ज्ञातृत्वात्साक्षादकर्तृत्वं स्यात्।

अर्थ—जीव है सो कर्मनिकरि अज्ञानी कीजिये है। वहुरि तैसैं ही कर्मनिकरि ज्ञानी कीजिये है। कर्मनिकरि सुवाईये है। तैसैं ही कर्मनिकरि जगाइये है। कर्मनिकरि सुखी कीजिये है। वहुरि तैसैं ही कर्मनिकरि दुःखी कीजिये है। कर्मनिकरि मिथ्यात्व प्राप्त कीजिये है। वहुरि कर्मनिकरि असंयम प्राप्त कीजिये है। कर्मनिकरि ऊर्ध्वलोकमें तथा अधोलोकमें तथा तिर्यग्लोकमें भ्रमाइये है। जो किछू शुभ अशुभ है, सो कर्मनिहीकरि कीजिये है। जातैं कर्म करे है, कर्म दे है, कर्म हरि ले है,

जो किछू करे है, सो कर्म ही करे है। तातैं सर्व जीव हैं ते अकारक प्राप्त भये—जीव कर्त्ता नाहीं। बहुरि यह आचार्यनिकी परंपराकरि चली आई श्रुति है, सो भी कहे हैं—जो पुरुष वेदकर्म है, सो तौ स्त्रीका अभिलाषी है बहुरि स्त्रीवेदनामा कर्म है, सो पुरुषकूं अभिलाषे है--चाहे है। तातैं कोई भी जीव अब्रह्मचारी नाहीं। हमारा उपदेशविषैं ऐसा है, जातैं कर्म है सो ही कर्मकूं अभिलाषे है—चाहे है ऐसैं कह्या है। जातैं परकूं हणे है परकरि हणिये है सो भी प्रकृति ही है। तिस ही अर्थकरि प्रगटकरि कहिये है—जो यह परघातनामा प्रकृति है। तातैं हमारा उपदेशविषैं कोई भी जीव उपघात करनेवाला नाहीं है। जातैं कर्म है सो ही कर्मकूं घाते है ऐसैं कह्या है। ऐसे जे केई श्रमण जति ऐसा सांख्यमतका उपदेशकूं प्ररूपे हैं, तिनिकै प्रकृति ही करे है, आत्मा हैं ते सर्व ही अकारक है ऐसा आया अथवा आचार्य कहे हैं—जो आत्माका कर्तापणाका पक्ष साधनेकूं तूं ऐसैं मानेगा जो मेरा आत्मा है सो आपके आपकूं करे है ऐसैं कर्तापणाका पक्ष भी मानू हौं। तौ तेरा ऐसैं जाननेका यह मिथ्या स्वभाव है। जातैं आत्मा नित्य असंख्यातप्रदेशी सिद्धांतविषैं कह्या है, तिसतैं हीन अधिक करनेकूं समर्थ नाहीं हूजिये है। जीवका जीवरूप विस्तार अपेक्षा निश्चयकरि लोकमात्र जानू। सो ऐसा जीवद्रव्य तिस परिणामतैं हीन तथा अधिक कैसैं करे है? बहुरि ऐसैं मानिये जो ज्ञायकभाव है सो ज्ञानस्वभावकरि तिष्ठे है, तौ ताही हेतूतैं ऐसा आया—जो आत्मा आपके आपकूं स्वयमेव नाहीं करे है। तातैं कर्तापणा साधनेकूं विवक्षा पलटिकरि पक्ष कह्या सो बन्या नाहीं, तातैं कर्मका कर्ता कर्महीकूं माने तौ स्याद्वादतैं विरोध ही आवेगा, तातैं कथंचित् अज्ञान अवस्थामैं अपने अज्ञानभावरूप कर्मका कर्ता मानै स्याद्वादतैं विरोध नाहीं है।

टीका—तहां पूर्वपक्ष ऐसा है—जो कर्म ही आत्माकूं अज्ञानी करे है, जातैं ज्ञानावरण कर्मका उदय विना तिस अज्ञानकी अप्राप्ति है, बहुरि कर्म ही आत्माकूं ज्ञानी करे है, जातैं ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम विना ज्ञानकी अप्राप्ति है। बहुरि कर्म ही आत्माकूं सुवाणै है, जातैं निद्रानामा

कर्मका उदय विना निद्राकी अप्राप्ति है, वहुरि कर्म ही आत्माकूं जगावे हैं, जातें निद्रानामा कर्मका क्षयोपशम विना जागनेकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं सुखी करे है जातें सातावेदनीयनामा कर्मका उदय विना सुखकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं दुःखी करे है, जातें असातावेदनीयनामा कर्मका उदय विना दुःखकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं मिथ्यादृष्टि करे है जातें मिथ्यात्वकर्मका उदय विना मिथ्यात्वकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं असंयमी करे है, जातें चारित्रमोहनामा कर्मका उदय विना असंयमकी अप्राप्ति है। वहुरि कर्म ही आत्माकूं उर्ध्वलोकमें अधोलोकमें तिर्यचलोकमें भ्रमावे है, जातें आनुपूर्वीनामा कर्मका उदय विना भ्रमणकी अप्राप्ति है। वहुरि और भी ज्यों क्यों जेता शुभ अशुभ है, सो तेता सर्व ही कर्म ही करे है, जातें प्रशस्त अप्रशस्त रागनामा कर्मका उदय विना तिनि शुभाशुभकी अप्राप्ति है। जातें या प्रकार समस्तहीकूं कर्म स्वतंत्र होय करे है, कर्म ही दे है, कर्म ही हरि ले है, तातें हम ऐसा निश्चय करे हैं, जो सर्व ही जीव हैं ते नित्य ही सदा ही एकांतकरि अकर्ता ही हैं वहुरि विशेष कहिये—जो श्रुति कहिये वाणी शास्त्र भी इस ही अर्थकूं कहे है, जो पुरुषवेदनामा कर्म है सो तो स्त्रीकूं अभिलाषे है—चाहे है, वहुरि स्त्रीवेदनामा कर्म है सो पुरुषकूं अभिलाषे है—चाहे है, ऐसें वाक्यकरि कर्मके ही कर्मका अभिलाषका कर्तापणाका समर्थनकरि जीवकै अब्रह्मचारीपणाका कर्तापणाका प्रतिषेधतें भी कर्महीकै कर्तापणा आया, जीव अकर्ता ही सिद्ध भया। वहुरि तैसें ही जो परकूं हणै है, वहुरि जो परकरि हणिये है, सो परघातनामा कर्म है, ऐसें वचनकरि कर्महीके कर्मका घातका कर्तापणाका समर्थनकरि जीवकै घातका कर्तापणाका प्रतिषेधतें सर्वथा जीवकै अकर्तापणा जनाया है। या प्रकर ऐसा सांख्यका मत केई "श्रमणाभास कहिये यति नाहीं अर यतीसे कहावे ते" अपनी बुद्धिके अपराधकरि सूत्रके अर्थकूं ऐसें विपरीत जानते संते सूत्रका अर्थ प्ररूपण करे हैं। ऐसा पूर्वपक्ष है।

अब आचार्य कहे हैं–जे ऐसे पक्ष करे हैं, तिनिकै एकांतकरि प्रकृतिका कर्तापणा माननेकरि

सर्व ही जीवनिके एकांतकरि अकर्तापणाकी प्राप्ति आवनेतैं जीव कर्ता है ऐसी जो श्रुति कहिये भगवन्तकी वाणी ताका कोप आवे है। सो दूरि करनेकूं योग्य नाहीं है। बहुरि वाणीका कोप दूरि करनेकूं जो ऐसैं कहै—जो कर्म है सो तौ आत्माके अज्ञानादि सर्वपर्यायरूप भाव हैं तिनिकूं करे है। बहुरि आत्मा है सो एक अपने आत्माहीकूं द्रव्यरूप करे है, तातैं जीव कर्ता है। ऐसा श्रुति कहिये वाणीका वचन मानिये है, तातैं वाणीका कोप नाहीं होय है, ऐसा अभिप्राय करै तौ सो यह अभिप्राय मिथ्या है। जातैं जीव है सो प्रथम तौ द्रव्यरूपकरि नित्य है, असंख्यात प्रदेशी है, लोकपरिमाण है, तहां नित्यका कार्यपणा बने नाहीं। जातैं कृत कहिये कृत्रिमवस्तूका अर नित्यपणाका परस्पर एकपणाका विरोध है; नित्य कृत्रिम होय नाहीं। बहुरि एक आत्मा अवस्थित असंख्यातप्रदेशी है ताके जैसैं पुद्गलके स्कंधमें परमाणु आय बैठे हैं अर निकसि जाय हैं, ताकै कार्यपणा बने है। तैसैं याकै कार्यपणा नाहीं बने है जातैं प्रदेशनिका आवना अर निकसि जाना होय तौ अवस्थित असंख्यातप्रदेशरूप एकपणाका व्याघात होय, बहुरि सकल लोकरूपी घरमात्र विस्तार परिमाण निश्चित अपना समस्तपणाका संग्रहरूप आत्माके प्रदेशनिका संकोचना अर फैलना तिस द्वारकरि भी ताकै कार्यपणा बने नाहीं। जातैं प्रदेशनिका संकोचना अर फैलना इनि दोऊनिकैभी सूके आले चामडेकी ज्यौं नियमरूप अपना जो प्रदेशनिका विस्तार है तातैं ताका हीनाधिक करनेका असमर्थपणा है। बहुरि जो ऐसे अभिप्रायमें वासना होय जो वस्तुका स्वभावका सर्वथा मेटनेका असमर्थपणा है, तातैं ज्ञायकभाव है सो तौ ज्ञानस्वभावहीकरि सदाकाल ही तिष्ठे है, सो तैसैं तिष्ठता आत्मा मिथ्यात्वादि भावनिका कर्ता न होय है। जातैं ज्ञायकपणाका अर कर्तापणाका अत्यंत विरुद्धपणा है, अर मिथ्यात्व आदिभाव हैं ते होय ही हैं, तातैं तिनिका कर्ता कर्म ही है ऐसी प्ररूपणा कीजिये है। तहां आचार्य कहे हैं—ऐसी वासनाका उघडना है सो ही पहलै कह्या था 'जो आत्मा आत्माकूं करे है तातैं कर्ता है' तिस माननेकूं अतिशयकरि हणे है घाते है। जातैं सदाकाल ज्ञायक मान्या तब आत्मा अकर्ता ही भया, तातैं

हम कहे हैं ऐसा अनुमान करना—जो ज्ञायकभावकै सामान्य अपेक्षाकरि ज्ञानस्वभावरूप अवस्थितपणा होतैं भी कर्मतैं उपजे जे मिथ्यात्व आदि भाव, तिनिका ज्ञानका समयविषैं अनादिहीतैं ज्ञेयका अर ज्ञानका भेदविज्ञानका शून्यपणातैं परकूं आत्मा जानता संताके विशेष अपेक्षाकरि अज्ञानस्वरूप जो ज्ञानका परिणाम, ताकै करनेतैं कर्तापणा है, यह अनुमान करने योग्य है, तौ कहांतांई करना ? जेतैं जिस कालतैं ज्ञेयज्ञानका भेदविज्ञानका पूर्णपणातैं आत्माहीकूं आत्मा जानताकै विशेष अपेक्षाकरि भी ज्ञानरूप ही ज्ञानपरिणामकरि परिणमता संताके केवल ज्ञातापणातैं साक्षात् अकर्तापणा होय, तेतैं कर्तापणाका अनुमान करना ।

भावार्थ—केई जैनके मुनि भी स्याद्वादवाणीमैं नीका न समझिकरि सर्वथा एकांतका अभिप्राय करै तथा विवक्षा पलटिकरि कहे—जो आत्मा तौ भावकर्मका अकर्त्ता ही है, कर्मप्रकृतिका उदय है सो ही भावकर्मकूं करे है । अज्ञान, ज्ञान, सोवना, जागना, सुख, दुःख, मिथ्यात्व, असँयम च्यारी गतिमैं भ्रमण जे किछू शुभ अशुभ जेतेक भाव हैं ते सर्व कर्म करे है । जीव तौ अकर्ता है । ऐसा ही शास्त्रका अर्थ करै—जो वेदका उदयतैं स्त्रीपुरुषका विकार होय है, वहुरि अपघात परघात प्रकृति उदयतैं परस्पर घात प्रवर्ते है । ऐसा एकांतकरि जैसैं सांख्यमती सर्व प्रकृतिका कार्य माने हैं पुरुषकूं अकर्ता माने हैं, तैसैं बुद्धिके दोषकरि जैनी मुनीनिका भी मानना आया । तब जैनवाणी स्याद्वाद है, तातैं सर्वथा एकांत माननेवालेपरि वाणीका कोप अवश्य होयगा । वहुरि वाणीके कोपके भयतैं विवक्षा पलटिकरि कहै—जो आत्मा अपना आत्माका कर्ता है, तातैं भावकर्मका कर्ता तौ कर्म ही है अर अपना कर्ता आत्मा है, ऐसैं कथंचित् कर्ता आत्माकूं कहैंते वाणीका कोप न होयगा, तौ वह कहना तौ मिथ्या है । आत्मा द्रव्यकरि नित्य है, लोकपरिमाण असंख्यातप्रदेशी है । सो यामैं तौ किछू नवीन करनेकूं है नाहीं । नाहीं काहूकूं करै अर भावकर्मरूप पर्याय हैं तिनिका कर्ता कर्म बतावै तौ आत्मा तौ अकर्ता ही रह्या, तब वाणीका कोप कैसैं मिटया ? तातैं आत्माकै कर्तापणा अर अकर्तापणाकी विवक्षा यथार्थ

मानना ही स्याद्वाद मानना सांचा होय है। सो ऐसा है—जो आत्माकै ज्ञायक स्वभाव तौ सामान्य अपेक्षाकरि है ही, परंतु ज्ञानविशेषकी अपेक्षा आपापरका भेदविज्ञान विना परकूं आत्मा जाने है, सो इस अज्ञानरूप अपना भावका कर्ता है। अर जब तिस ज्ञानविशेषकी अपेक्षा करि आपापरका भेदविज्ञान होय, तिस ही कालतैं लगाय भेदविज्ञानकी पूर्णता भये आपकूं आप जानै अर ज्ञानपरिणामकरि परिणमैं तब केवल ज्ञाता भया साक्षात् अकर्ता होय है ऐसैं मानना सत्यार्थ स्याद्वादका प्ररूपण है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

मा कर्त्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः कर्त्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदाववोधादधः।
ऊर्ध्वं तूद्धतवोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परं ॥१३॥

अर्थ—आर्हत कहिये अर्हतके मतके जैनी जन हैं ते आत्माकूं सर्वथा अकर्ता सांख्यमतीनिकी ज्यौं मति मानू। तिस आत्माकूं भेदविज्ञान भये पहलैं कर्ता मानू अर भेदज्ञान भये ताके उपरि उद्धत ज्ञानमंदिरविषैं निश्चत नियमरूप कर्त्तापणाकरि रहित निश्चल एक ज्ञाता ही आपैं आप प्रत्यक्ष देखो।

भावार्थ—सांख्यमती पुरुषकूं सर्वथा एकांतकरि अकर्ता शुद्ध उदासीन चैतन्यमात्र माने हैं। सो ऐसैं माननेतैं पुरुषकै संसारका अभाव आवे है। अर प्रकृतिकै संसार माने तौ प्रकृति तौ जड है, ताकै सुखदुःख आदिका संवेदन नाहीं। ताकै काहेका संसार? इत्यादि दोष आवे हैं। यातैं सर्वथा एकांत वस्तूका स्वरूप नाहीं। तातैं ते सांख्यमती मिथ्यादृष्टि हैं। तैसैं जैनी भी माने हैं तौ मिथ्यादृष्टि होय हैं। तातैं आचार्य उपदेश करे हैं—जो, सांख्यमतीनिकी ज्यौं जैनी आत्माकूं सर्वथा अकर्ता मति मान। जहांताई आपापरका भेदविज्ञान न होय, तहांताई तौ रागादिक अपने

विवक्षाके वशतैं सिद्ध होय हैं। यह स्याद्वादमत जैनीनिका है। अर वस्तुस्वभाव ऐसा ही है। कल्पना नाहीं है। ऐसैं मानै पुरुषकै संसार मोक्ष आदिकी सिद्धि है। सर्वथा एकांत माननेविषैं सर्व निश्चय व्यवहारका लोप होय है ऐसैं जानना। आगे बौद्धमती क्षणिकवादी हैं, ते ऐसैं माने हैं, जो, कर्ता तौ अन्य है अर भोक्ता अन्य है। तिनिके सर्वथा एकांत माननेमें दूषण दिखावे हैं। अर स्याद्वादकरि जैसैं वस्तुस्वरूप कर्त्ताभोक्तापणा है तैसैं दिखावे हैं। तहां प्रथम ही ताकी सूचनिकाका काव्य है।

मालिनीछन्दः

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदं।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः स्वयमयमभिषिंचंश्चिचमत्कार एव ॥१४॥

अर्थ—एक कहिये बौद्धमती क्षणिकवादी है सो आत्मतत्त्वकूं क्षणिक कल्पिकरि अर अपना मनविषैं कर्ता अर भोक्ताविषैं भेद माने है। करै और है, भोगवै और है ऐसैं माने है। ताका विमोह कहिये अज्ञानकूं यह चैतन्यचमत्कार है सो ही आप दूरी करे है। कहा करता संता? नित्यरूप अमृतका ओघनिकरि सिंचता संता।

भावार्थ—क्षणिकवादी कर्ताभोक्ताविषैं भेद माने हैं, पहिलै क्षण था सो दूजै क्षण नाहीं ऐसैं माने हैं। सो आचार्य कहे हैं। जो हम ताकूं कहा समझावें? यह चैतन्य ही ताका अज्ञान दूरी करेगा। जो अनुभवगोचर नित्यरूप है। पहिले क्षण आप है, सो ही दूजे क्षणमें कहे हैं। मैं पहलैं था, सो ही हौं, ऐसा स्मरणपूर्वक प्रत्यभिज्ञान, ताकी नित्यता दिखावे हैं। इहां बौद्धमती कहे, जो पहिलै क्षण था, सो ही मैं दूजे क्षण हौं, यह मानना तौ अनादि अविद्यातैं भ्रम है, यह मिटै तब तत्त्व सिद्ध होय, समस्त क्लेश मिटै। ताकूं कहिये, जो, हे बौद्ध, तैं प्रत्यभिज्ञानकूं भ्रम बताया, तौ जो अनुभवगोचर है सो भ्रम ठहरया। तौ तेरा मानना क्षणिक है। सो भी अनुभवगोचर है। सो यह भी भ्रम ही ठहऱ्या। जातैं अनुभव अपेक्षा दोऊ ही समान हैं

तातैं सर्वथा एकांत मानना तौ दोऊ ही भ्रम है—वस्तुस्वरूप नाहीं। हम कथंचित नित्यानित्यात्मक वस्तुस्वरूप कहे हैं, सो सत्यार्थ है। आगे ऐसे ही क्षणिक माननेवालेकूं युक्तिकरि निषेधे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्। अन्यः करोति भुंक्तेऽन्यः इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥१५॥

अर्थ—वृत्त्यंश कहिये क्षणक्षणप्रति अवस्थाभेद हैं, तिनिकूं वृत्त्यंश कहिये। तिनिके अत्यंत कहिये सर्वथा भेद न्यारे न्यारे वस्तु माननेतैं वृत्तिमत् कहिये जामैं अवस्था पाइयें ऐसा आश्रयरूप वृत्तिमान् वस्तु, ताका नाशकी कल्पनातैं ऐसैं माने हैं, जो करै और है अर भोगवै और है। सो आचार्य कहे हैं, जो ऐसा एकांत मति प्रकाशो। जहां अवस्थावान् पदार्थका नाश भया, तहां अवस्था कोनके आश्रय होय? ऐसा दोऊका नाश आवे है, तब शून्यका प्रसंग होय है। अब अनेकांतकूं प्रगट करि इस क्षणिकवादकूं स्पष्ट करि निषेधे हैं। गाथा—

केहि चिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥३७॥
केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि सोवा अण्णो व णेयंतो ॥३८॥
जो चेव कुणादि सो चेव वेदको जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहिदो ॥३९॥
अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥४०॥

कैश्चित्पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥३७॥
कैश्चित्पर्यायः-विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्माद्वेदयति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥३८॥
य एव करोति स एव वेदको यस्यैष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥३९॥
अन्यः करोत्यन्यः परिभुंक्ते यस्य एष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥४०॥

आत्मख्यातिः—यतो हि प्रतिसमय संभवदगुरुलघुगुणपरिणामद्वारेण क्षणिकत्वादचलितचैतन्यान्वयगुणद्वारेण नित्यत्वाच्च जीवः कैश्चित्पर्यायैर्विनश्यति, कैश्चित्तु न विनश्यतीति द्विस्वभावो जीवस्वभावः । ततो य एव करोति स एवान्यो वा वेदयते । य एव वेदयते स एवान्यो वा करोतीति नास्त्येकांतः । एवमनेकांतेऽपि यस्तत्क्षण वर्तमानस्यैव परमार्थसत्त्वेन वस्तुत्वमिति वस्त्वंशेऽपि वस्तुत्वमध्यास्य शुद्धनयलोभादृजुसूत्रैकांते स्थित्वा य एव करोति स एव न वेदयते । अन्यः करोति अन्यो वेदयते इति पश्यति स मिथ्यादृष्टिरेव द्रष्टव्यः । क्षणिकत्वेऽपि वृत्त्यंशानां वृत्तिमतश्चैतन्यचमत्कारस्य टंकोत्कीर्णस्यैवांतःप्रतिभासमानत्वात् ।

अर्थ—जातैं जीव नामा पदार्थ है सो केई पर्यायनिकरि तौ विनसे है । बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है । तातैं सो ही जीव कर्ता होय है अथवा सो ही कर्ता न होय है, अन्य कर्ता होय है । ऐसा स्याद्वाद है—एकांत नाहीं है । बहुरि जातैं जीव है सो केई पर्यायनिकरि विनसे है बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है । तातैं सो ही जीव भोगवे है—भोक्ता होय है अथवा सो ही भोक्ता न होय है, अन्य भोगवे है । ऐसा स्याद्वाद है—एकांत नाहीं है । बहुरि जाका ऐसा सिद्धांत है—मत है, जो जीव करे है, सो ही नाहीं भोगवे है, अन्य ही भोगवे है, सो जीव मिथ्यादृष्टि जानना, अरहंतका मतका नाहीं है । बहुरि जाका

ऐसा सिद्धांत है, जो अन्य करे है अर अन्य भोगवे है, सो जीव मिथ्यादृष्टि जानना, अरहंतका मतका नाहीं है।

टीका—जातैं जीव है सो समयसमयप्रति संभवता अगुरुलघुगुणका परिणाम तिसका द्वारकरि तौ क्षणिक है। बहुरि अचलित चेतन्यका अन्वयरूप गुणकरि द्वारकरि नित्य है तिसपणातैं केई पर्यायनिकरि तौ विनसे है बहुरि केई पर्यायनिकरि नाहीं विनसे है। ऐसैं दोय स्वभावरूप जीवका स्वभाव है। तातैं जो ही करे है सो ही भोगवे है अथवा सो ही नाहीं भोगवे है, अन्य भोगवे है अथवा जो ही भोगवे है, सो ही करे है, अथवा अन्य करे है एकांत नाहीं है। ऐसैं अनेकांत होतै भी जो ऐसैं माने है—जो जिस क्षणके विषैं वर्तमान है, ताहीके परमार्थरूप सत्त्वकरि वस्तूपणा है। ऐसैं वस्तूका अंशविषैं वस्तूपणाका निश्चय करि अर शुद्धनयके लोभतैं ऋजुसूत्र नयके एकांतविषैं तिष्ठिकारि अर जो ही करे है सो ही न भोगवे है अन्य करे है अर अन्य भोगवे है ऐसैं देखे है—श्रद्धान करे है सो जीव मिथ्यादृष्टि ही जानना। जातैं वृत्त्यंश जे पर्यायरूप अवस्था, तिनिके क्षणिकपणा होतै भी वृत्तिमान् जो चैतन्यचमत्कार, टंकोत्कीर्ण नित्यस्वरूपका अंतरंगविषैं प्रतिभासमानपणा है।

भावार्थ—वस्तूका स्वभाव रूप जिनवाणीमैं द्रव्यपर्यायस्वरूप कह्या है, सो पर्याय अपेक्षा तौ वस्तु क्षणिक है, बहुरि द्रव्य अपेक्षा नित्य है ऐसा अनेकांत स्याद्वादतैं सिद्ध होय है। सो जीवनामा वस्तु भी ऐसा ही द्रव्यपर्यायस्वरूप है, सो पर्याय अपेक्षाकरि देखिये, तब तौ कार्यकूं करै तौ और पर्याय हैं, अर भोगवे और पर्याय है। जैसैं मनुष्यपर्यायमें शुभाशुभकर्म किये, ताका फल देवादि पर्याय भोग्या। बहुरि द्रव्यदृष्टिकरि देखिये, तब जो करे है, सो ही भोगवे ऐसा सिद्ध होय है। जैसैं मनुष्यपर्यायमें जीवद्रव्य था, तिसने शुभाशुभ कर्म किये थे अर सो ही जीव देवादिपर्यायमें गया, तहां तिस ही जीवने अपना कियाका फल भोगया, सो ऐसैं वस्तूका स्वरूप अनेकांतरूप सिद्ध होते भी जे शुद्धनयमें तौ संशय नाहीं अर शुद्धनयके लोभतैं वस्तूका पर्याय वर्त-

मानकालमें एक अंश था, ताहीकूं वस्तु मानि ऋजुसूत्रनयका विषयका एकांत पकडि अर ऐसें माने है—जो करे है सो भोगवे नाहीं अन्य भोगवे है अर भोगवे है सो करे नाहीं अन्य करे है सो मिथ्यादृष्टि है, अरहंतका मतका नाहीं। जातैं पर्यायके क्षणिकपणा होते भी द्रव्यरूप चैतन्य चमत्कार तौ अनुभवगोचर नित्य है। जैसें प्रत्यभिज्ञानकरि ऐसें जाने जो बालक अवस्थामें मैं था सो ही अब तरुण अवस्थामें तथा वृद्ध अवस्थामें हों। ऐसें जो अनुभवगोचर स्वसंवेदनमें आवे अर जिनवाणी ऐसें ही गावै, ताकूं न माने, सो ही मिथ्यादृष्टि कहावै ऐसें जानना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यांधकैः कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रितैरात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥१६॥

अर्थ—आत्माकूं समस्तपणैं शुद्ध इच्छक जे पृथुक कहिये बौद्धमती, तिनिने तिस आत्माविषैं कालके उपाधिके बलतैं अधिक अशुद्धता मानिकरि अतिव्याप्ति पायकरि अर शुद्ध ऋजुसूत्रनयके प्रेरे हुये चैतन्यकूं क्षणिक कल्पिकरि आंधेनिनैं आत्माकूं छोड्या। जातैं आत्मा तौ द्रव्यपर्याय-स्वरूप था, सो सर्वथा क्षणिकपर्यायस्वरूप मानि छोडि दिया, तिनिकै आत्माकी प्राप्ति न भई। इहां हारका दृष्टांत है—जैसें मोतीनिका हार नामा वस्तु है, तामें सूत्रविषैं मोती पोये हैं, ते भिन्नभिन्न दीखे हैं। सो जे हार नामा वस्तूकूं सूत्रसहित मोती पोये नाहीं देखे हैं अर मोती-निहीकूं न्यारेन्यारे देखि ग्रहण करे हैं, तिनिकै हारकी प्राप्ति नाहीं होय है। तैसें ही जे आत्मा-का एक नित्य चैतन्यभावकूं नाहीं ग्रहण करे हैं अर समयसमय वर्तना परिणामरूप उपयोगकी प्रवृत्तीकूं देखि तिसकूं सदा नित्य मानि कालका उपाधीतैं अशुद्धपना मानि ऐसें जाने हैं—जो नित्य माने कालका उपाधि लागै तब आत्माकै अशुद्धपणा आवै तब अतिव्याप्ति दूषण लागै,

सो इस दूषणके भयतैं ऋजुसूत्रनयका विषय जो शुद्ध वर्तमानसमयमात्र क्षणिकपणा, तिस मात्र मानि आत्माकूं छोडि दीया।

भावार्थ—बौद्धमती आत्माकूं समस्तपणैं शुद्ध माननेका इच्छक होय अर विचारी—जो आत्माकूं नित्य मानिये तौ नित्यमें तौ कालकी अपेक्षा आवै तातें उपाधि लागै, तब बडी अशुद्धता आवै, तब अतिव्याप्ति दूषण लागै. इस भयतैं शुद्ध ऋजुसूत्रनयका विषय वर्तमान समयमात्र था, तिसमात्र क्षणिक आत्माकूं मान्या तब आत्मा नित्यानित्यस्वरूप द्रव्यपर्यायस्वरूप था, तिसका ग्रहण ताकै न भया, केवल पर्यायमात्रविषैं आत्माकी कल्पना भई, सो सत्यार्थ आत्मा नाहीं ऐसैं जानना। अब फेरि इस ही अर्थके समर्थनरूप वस्तूका अनुभवन करनेकूं काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

कर्त्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा कर्त्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिंत्यतां।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचिच्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोप्येका चकास्त्वेव नः ॥१७॥

अर्थ—कर्ताके अर भोक्ताके युक्तिके वशतैं भेद होऊ अथवा अभेद होऊ, अथवा कर्ता भोक्ता दोऊ ही मति होऊ, वस्तूहीका चिंतवन करौ। जातैं निपुण जे चतुर पुरुष, तिनिकरि सूत्रविषैं पोई हुई मणीनिकी माला जैसी भेदी न जाय, तैशी आत्माविषैं पोई हुई चैतन्यरूप चिंतामणीकी माला है, सो कहूं ही कोई करि भेदनेकूं समर्थ न हूजिये। ऐसी यह आत्मारूपी माला समस्तपणैं एक हमारे प्रकाशरूप प्रगट हो।

भावार्थ—वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक अनंतधर्मा है। ताविषैं विवक्षाके वशतैं कर्त्ता भोक्तापणाका भेद भी है। अर भेद नाहीं भी है। अर कर्त्ता भोक्ता भी काहेकूं कहना? केवल शुद्ध वस्तुमात्रका असाधारण धर्मके द्वारै अनुभवन करना। ऐसैं आत्मा नामा वस्तु सो असाधारण चैतन्यमात्रभावके द्वारै अनुभवन करते चैतन्यके परिणमनरूप पर्यायके भेदनिकी अपेक्षा कर्ता-

भोक्ताका भेद है। चिन्मात्र द्रव्य अपेक्षा भेद नाहीं है। ऐसें भेद अभेद होऊ तथा चिन्मात्र अनुभवनमें काहेकूं भेद अभेद कहना? कर्ताभोक्ता ही न कहना। वस्तुमात्र अनुभवन करना। जैसा मणिनिकी मालामें सूत्र मोतीनिका विवक्षातें भेद है। मालामात्रग्रहण करनेमें भेदाभेद-विकल्प नाहीं, तैसा आत्माविषैं चैतन्यके द्रव्यपर्याय अपेक्षा भेदाभेद है, तौऊ आत्मवस्तुमात्र अनुभव करते विकल्प नाहीं। सो आचार्य कहे हैं—ऐसा निर्विकल्प आत्माका अनुभव हमारे प्रकाशरूप है, ऐसा जैनीनिका वचन है। आगे इस कथनकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करे हैं, ताकी सूचनिकाकूं नयविभागका काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८॥

अर्थ—व्यवहारकी दृष्टिमें तौ केवल कर्ता अर कर्म भिन्न दीखे है, अर जब निश्चयकरि देखिये वस्तूकूं विचारिये तब कर्ता अर कर्म सदाकाल एक ही देखिये है।

भावार्थ—व्यवहारनय तौ पर्यायाश्रित है। सो यामैं तौ भेद ही दीखे। बहुरि शुद्धनिश्चयनय है सो द्रव्याश्रित है। तामैं अभेद ही दीखै, तातैं व्यवहारमैं तो कर्ताकर्मका भेद है। निश्चयमैं अभेद है। आगे इस कथनकूं दृष्टांतकरि गाथामैं कहे हैं।

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि णय सोदु तम्मओ होदि।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि णय तम्मओ होदि ॥४१॥
जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि णय सोदु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणेहिं कुव्वदि णय तम्मओ होदि ॥४२॥

जह सिप्पिउ करणाणि गिह्णदि णय सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणाणि य गिह्णदि णय तम्मओ होदि ॥४३॥
जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि णय सोदु तम्मओ होदि ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि णय सोवि तम्मओ होदि ॥४४॥
एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दंसणं समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि ॥४५॥
जह सिप्पिओ दु चिट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ॥४६॥
जह चिट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि ।
तत्तो सेय अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥४७॥

यथा शिल्पिकस्तु कर्म करोति न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति न च तन्मयो भवति ॥४१॥
यथा शिल्पिकः करणैः करोति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणैः करोति न च तन्मयो भवति ॥४२॥
यथा शिल्पिकस्तु करणानि गृह्णाति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणानि च गृह्णाति न च तमन्यो भवति ॥४३॥
यथा शिल्पिकः कर्मफलं भुंक्ते न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः कर्मफलं भुंक्ते न च तन्मयो भवति ॥४४॥

एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन ।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद् भवति ॥४५॥
यथा शिल्पिकस्तु चेष्टां करोति भवति च तथानन्यस्तस्याः ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति भवति चानन्यस्तस्मात् ॥४६॥
यथा चेष्टां कुर्वाणस्तु शिल्पिको नित्यदुःखितो भवति ।
तस्माच्च स्यादनन्यस्तथा चेष्टमानो दुःखी जीवः ॥४७॥

आत्मख्यातिः—यथा खलु शिल्पी सुवर्णकारादिः कुंडलादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कर्म करोति । हस्तकुट्टकादिभिः परद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति । हस्तकुट्टकादीनि परद्रव्यपरिणामात्मकानि करणानि गृह्णाति। ग्रामादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कुंडलादिककर्मफलं भुंक्ते नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः । तथात्मापि पुण्यपापादि पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म करोति । कायवाङ्मनोभिः पुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति कायवाङ्मनांसि पुद्गलपरिणामात्मककरणानि गृह्णाति सुखदुःखादिपुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकं पुण्यपापादिकर्मफलं भुंक्ते च नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः । यथा च स एव शिल्पी चिकीर्षुः चेष्टानुरूपमात्मपरिणामात्मकं कर्म करोति । दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टानुरूपकर्मफलं भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोऽनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणामिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः। तथात्मापि चिकीर्षुश्चेष्टारूपमात्मपरिणामात्मकं करोति । दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टारूपकर्मफलं भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणमिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः ।

अर्थ—जैसा शिल्पी कहिये सुनार आदि कारीगर है, सो आभूषणादिक कर्मकूं करे है, सो तिस आभूषणादिकतैं तन्मय नाहीं होय है । तैसा जीव भी पुद्गलकर्मकूं करे हे तथापि तातैं तन्मय नाहीं होय है। बहुरि जैसा शिल्पी हथोड़ा आदि करणनितैं कर्मकूं करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है तैसा जीव भी मन वचन काय आदि करणनितैं कर्मकूं करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है । बहुरि जैसा शिल्पिक करणनिकूं ग्रहण करे है तथापि तिनितैं

तन्मय नाहीं होय है। तैसा जीव भीं मन-वचन-कायरूप करणनिकूं ग्रहण करे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। बहुरि जैसा शिल्पिक आभूषणादि कर्मके फलकूं भोगवे है तथापि तातैं तन्मय नाहीं होय है। तैसा जीव भी सुखदुःख आदि कर्मके फलकूं भोगवे है तथापि तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। या प्रकार व्यवहारका दर्शन कहिये मत, सो संक्षेप कहने योग्य है अर निश्चयके वचन है सो अपने परिणामनिकरि किये होय है। सो कहिये है, सो सुणू। जैसा शिल्पिक है सो अपने परिणामरूप चेष्टारूप कर्मकूं करे है, सो शिल्पी तिस चेष्टातैं न्यारा नाहीं है-तन्मय है। तैसा जीव भी अपना परिणामरूप चेष्टास्वरूपकर्मकूं करे है, सो तिस चेष्टातैं न्यारा नाहीं है-तन्मय है। बहुरि जैसा शिल्पी चेष्टा करता संता निरंतर दुःखी होय है, तिस दुःखतैं न्यारा नाहीं है, तातैं तन्मय है। तैसा जीव भो चेष्टा करता संता दुःखी होय है।

टीका-जैसा निश्चयकरि शिल्पी सुवर्णकारादिक है सो कुंडल आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, हथोडा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करण तिनिकरि करे है, हथोडा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करण तिनिकूं ग्रहण करे है, बहुरि कुंडल आदि कर्मका फल ग्राम धन आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूपकूं पावे है, तिनिकूं भोगवे है तथापि ते सर्व ही भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं—सो तिसतैं अन्य है। तातैं तिनितैं तन्मय नाहीं होय है, तातैं तहां निमित्त-नैमित्तिक भावमात्रकरि ही तिनिके कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका व्यवहार है। तैसा आत्मा भी पुण्यपाप आदि पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मकूं करे है, बहुरि काय-मन-वचन-पुद्गलद्रव्य-स्वरूप करणनिकरि कर्मकूं करे है, बहुरि काय-वचन—मन-पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वरूप करण-निकूं ग्रहण करे है, बहुरि सुखदुःख आदि पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वरूप पुण्यपाप आदि कर्मका फलकूं भोगवे है, सो भिन्नद्रव्यपणातैं तिनितैं अन्य होते संते तिनितैं तन्मय नाहीं होय है। तातैं निमित्तनैमित्तिक भावमात्रकरि ही तहां कर्ताकर्मपणा—भोक्ताभोग्यपणाका व्यवहार है। बहुरि जैसा सो ही शिल्पी करनेका इच्छक भया संता अपना हस्त आदिकी चेष्टारूप अपना

परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, बहुरि दुःखस्वरूप अपना परिणामरूप चेष्टामय कर्मके फलकूं भोगवे है, तिनि परिणामनिकूं अपना एक ही द्रव्यपणाकरि अनन्य होते संते तिनितैं तन्मय होय है, तातैं तिनिविषैं परिणाम—परिणामिभावकरि कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका निश्चय है। तैसा आत्मा भी करनेका इच्छक भया संता अपना उपयोगकी तथा प्रदेशनिकी चेष्टारूप अपना परिणामस्वरूप कर्मकूं करे है, अर दुःख है लक्षण जाका ऐसा अपने परिणामरूप चेष्टारूप कर्मका फलकूं भोगवे है, तिनि परिणामनिके अपना एक ही द्रव्यपणाकरि अन्यपणा न होता संता तिनितैं तन्मय होय है। तातैं तिनि परिणाम निविषैं परिणाम परिणामी भावकरि कर्ताकर्मपणाका अर भोक्ताभोग्यपणाका निश्चय है।

नतु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥८॥

अर्थ—नतु कहिये अहो मुनि हौ, तुम यह निश्चय करौ, जो यह प्रगटपणै परिणाम है, सो तौ निश्चयतैं कर्म है। बहुरि सो परिणाम अपना आश्रय जो परिणामी द्रव्य, ताहीका होय है, अन्यका नाहीं होय है। जातैं परिणाम हैं ते अपने अपने द्रव्यके आश्रय हैं, अन्यके परिणामका अन्य आश्रय होय नाहीं। बहुरि जो कर्म है, सो कर्ता विना होय नाहीं। बहुरि वस्तु है सो द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। तातैं ताकी एक अवस्थारूप कूटस्थस्थिति आदि होय नाहीं, सर्वथा नित्यपणा बाधासहित है। तातैं अपना परिणामरूप कर्मका आप ही कर्ता है, यह निश्चय सिद्धांत है। अब इस ही अर्थके समर्थन कलशरूप काव्य कहे हैं।

पृथ्वीछन्दः

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं तथाऽप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥१९॥

अर्थ—यद्यपि वस्तु है सो आप प्रकाशरूप अनंतशक्तिस्वरूप है, तथापि अन्य वस्तु है, सो

अन्य वस्तुविषैं प्रवेश नाहीं करे है, बाहरि ही लोटे है। जातैं समस्त ही वस्तु अपने अपने विभावविषैं नियमरूप हैं ऐसैं मानिये है। सो आचार्य कहे हैं—जो ऐसैं होतैं भी यह जीव अपने स्वभावतैं चलायमान होय, आकुल हुवा मोही भया संता, क्यौं क्लेशरूप होय है।

भावार्थ—वस्तुस्वभाव तौ नियमरूप ऐसा है, जो काहू वस्तूमो कोई मिलै नाहीं अर यह प्राणी अपने विभावसूं चलायमान होय व्याकुल–क्लेशरूप होय है, सो यह बडा अज्ञान है। फेरि इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥२०॥

अर्थ—जातें यालोकविषैं एक वस्तु है सो अन्य वस्तुका नाहीं है, तिस ही कारणकरि वस्तु है सो वस्तु है, ऐसैं न होय तौ वस्तुका वस्तुपणा न ठहरै, यह निश्चय है। ऐसैं होतैं अन्य वस्तु है सो अन्यवस्तुके बाहरि लोटे है, तौऊ ताका कहा करै? किछू भी न करि सके है।

भावार्थ—वस्तूका स्वभाव तौ ऐसा है, जो अन्य कोई वस्तु पलटाय न सकै, तब अन्यके अन्य कहा किया? किछू भी न किया। जैसैं चेतन वस्तुके एक क्षेत्रावगाहरूप पुद्गल तिष्ठे है, तौऊ चेतनकूं जडकरि आपरूप तौ परिणमाय सक्या नाहीं, तब चेतनका कहा किया? किछू भी न किया, यह निश्चयनयका मत है। बहुरि निमित्तनैमित्तिकभावकरि अन्य वस्तुके परिणाम होय है, सो भी तिस वस्तुहीका है, अन्यका कहना व्यवहार है, सो ही कहे हैं—

रथोद्धताछन्दः

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

अर्थ—जो कोई वस्तु अन्यवस्तूकै किछू करे है ऐसा कहिये है सो वस्तु आप परिणामी है,

अवस्थातें अन्य अवस्थारूप होना वस्तूका पर्यायस्वभाव है, याहीतें परिणामी कहिये है। सो ऐसें परिणामी वस्तूकै अन्यके निमित्ततें परिणाम भया ताकूं कहैं, यह अन्यने कीया सो यह व्यवहारनयकी दृष्टिकरि कहिये है। वहुरि निश्चयतें तो अन्य किछू किया है नाहीं, परिणाम भया सो आपहीका भया, अन्यने तो तामैं किछू भी ल्याय धरया नाहीं ऐसें जानना। आगै इस निश्चयव्यवहारनयके कथनकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट कहे हैं। गाथा—

जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सोदु ॥४८॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह पस्सगो दु ण परस्स पस्सगो पस्सगो सोदु ॥४९॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सोदु ॥५०॥
जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तंतु ॥५१॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्सय वत्तव्वं से समासेण ॥५२॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि णादा विसएण भावेण ॥५३॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सादि जीवोवि सएण भावेण ॥५४॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विरमदि णादावि सएण भावेण ॥५५॥
जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण ॥५६॥
एसो ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो ॥५७॥

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु ॥४८॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका तु सा भवति ।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकस्तु स भवति ॥४९॥
यथा सेटिकास्तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु ॥५०॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु ॥५१॥
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
शृणु व्यवहारस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन ॥५२॥

यथा परद्रव्यं सेटयति खलु सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५३॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं पश्यति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५४॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५५॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्ते ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥५६॥
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयो ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः ॥५७॥

आत्मख्यातिः—सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादिपरद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते—यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवंती कुड्यादिरेव भवेत्, एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । नच द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः, ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः। यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति। ननु कतरान्या सेटिका ? यस्याः सेटिका भवति? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः। किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः। यथा दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः। चेतयितात्र तावद् ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण ज्ञेयं पुद्गलादि द्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य ज्ञेयस्य ज्ञायकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति, चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादेरेव भवेत् एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः। न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः। ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः। यदि न भवति चेतयिता पुद्गला-

... द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः । ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गला-

देस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? चेतयितुरेव चेतयिता भवति। ननु कतरोन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः, किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि तर्हि न कस्यापि ज्ञायकः । ज्ञायको ज्ञायक एवेति निश्चयः ।

किंच सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि परद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद् भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवति कुड्यादिरेव भवेत् एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वादे-स्त्युच्छेदः । ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः । यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति । ननु कतरान्या सेटिका सेटिकायाः यस्याः सेटिका भवति ? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः—चेतयितात्र तावद्दर्शनगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण दृश्यं पुद्गलादि परद्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य दृश्यस्य दर्शकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्व-संबंधो मीमांस्यते—यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद् भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधो जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत् एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यां-तरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः ? ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेःस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि दर्शकः, दर्शको दर्शक एवेति निश्चयः ।

अपि च सेटिका तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि परद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद् भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका

किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः। यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः—चेतयितात्र तावत् ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावं द्रव्यं। तस्य तु व्यवहारेणापोह्यं पुद्गलादिपरद्रव्यं। अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्यापोह्यस्यापोहकः किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते। यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथा मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत्। एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्यच्छेदः। न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद् द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः। ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः। यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ! चेतयितुरेव चेतयिता भवति। ननु कतरोऽन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ। किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि। तर्हि न कस्याप्यपोहकः, अपोहकोऽपोहक एवेति निश्चयः।

यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मस्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते तथा चेतयितापि ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन जानातीति व्यवह्रियते।

किंच यथा च सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयंती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन श्वेतयतीति व्यावाहियते। तथा चेतायितापि दर्शनगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन पश्यतीति व्यवह्रियते।

अपि च—यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन्ती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते

तथा चेतयितापि ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेनापोहतीति व्यवह्रियते। एवमयमात्मनो ज्ञानदर्शनचरित्रपर्यायाणां निश्चयव्यवहारप्रकारः। एवमेवान्येषां सर्वेषामपि पर्यायाणां दृष्टव्यः।

अर्थ—जैसी सेटिका कहिये सुपेदी करनेकी कली तथा खडी पांडु ऐसा द्रव्य है, सो, पर जो भींति आदि ताकी सुपेद करनेवाली है। यातैं सेटिका नाहीं है, सेटिका है सो आप ही सेटिका है। तैसा ज्ञायक कहिये जाननेवाला है सो परद्रव्यका जाननेवाला है। यातैं ज्ञायक नाहीं है, आप ही ज्ञायक है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परकी सेटिका नाहीं है, सो आप ही सेटिका है। तैसा दर्शक कहिये देखनेवाला है, सो परका देखनेवाला है। यातैं देखनेवाला नाहीं है, आप ही देखनेवाला है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परकी सेटिका नाहीं है, आप ही सेटिका है तैसा संयत है, सो परकूं त्यागे है। यातैं संयत नाहीं है, आप ही संयत है बहुरि जैसी सेटिका है, सो परकी नाहीं है, सेटिका आप ही सेटिका है। तैसा दर्शन कहिये श्रद्धान है, सो परका श्रद्धानतैं श्रद्धान नाहीं है आप ही श्रद्धान है। ऐसा दर्शन—ज्ञान—चारित्रविषैं निश्चयनयका भाषित है—कह्या वचन है। बहुरि तिस व्यवहारका वक्तव्य है, सो संक्षेपकरि कहिये है, सो सुणु—जैसी सेटिका अपने स्वभावकरि परद्रव्य जो भींति आदि तिनिकूं सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता कहिये जाननेवाला है सो परद्रव्यकूं अपना स्वभावकरि जाने है। बहुरि जैसी सेटिका अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं सुपेद्र करे है, तैसा ज्ञाता है सो अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं देखे है। बहुरि जैसी सेटिका है, सो अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता भी अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं त्यागे है। बहुरि जैसी सेटिका है सो परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि सुपेद करे है, तैसा ज्ञाता भी अपने स्वभावकरि परद्रव्यकूं श्रद्धे है। ऐसा जो दर्शनज्ञानचारित्रविषैं व्यवहारका विशेषकरि निश्चय कह्या है, सो ही अन्य पर्यायनिविषैं भी ऐसा ही जानना।

टीका–प्रथम ही दृष्टांत कहे हैं—इस लोकविषैं सेटिका है सो श्वेतगुणकरि भरया द्रव्य है, ताकूं लोक कली खडी पांडू इत्यादि कहे हैं। ताकै व्यवहारकरि श्वेत करनेयोग्य मंदिर कुटी भिंती आदि परद्रव्य हैं। अब इहां सेटिकाकै अर परद्रव्यकै दोऊकै परमार्थकरि संबंध कहा है? सो विचारिये हैं। श्वेत करनेयोग्य कुटी आदि परद्रव्य है, ताकी श्वेत करनेवाली सेटिका किछू है कि नाहीं है? जो ऐसैं मानिये, जो सेटिका कुटयादि परद्रव्यकी है, तौ ऐसा न्याय है—जो जाका जो होय, सो तिसस्वरूप ही होय। जैसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही स्वरूप है। ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधी जीवता विद्यमान होतैं, सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदिका स्वरूप होय—तिसतैं न्यारा द्रव्य न होय। ऐसैं होते संते सेटिकाका निजद्रव्यका तौ उच्छेद होय–अभाव होय, कुटी आदिक ही एकद्रव्य ठहरै। सो दूसरा द्रव्यका उच्छेद नाहीं युक्त है। जातैं द्रव्यका अन्यद्रव्य होना तौ पहलै ही प्रतिषेधरूप कहि आये हैं, अन्य द्रव्यका पलटि करि अन्य द्रव्य होय नाहीं। तातैं यह निश्चय भया—जो सेटिका कुटी आदि परद्रव्यकी नाहीं है।

इहां पूछे है—सो सेटिका कुटी आदिकी नाहीं है, तौ कौनकी सेटिका है? ताका उत्तर-जो सेटिका सेटिकाहीकी है। तहां फेरि पूछे है–जो वह अन्यसेटिका कौनसी है? जिस सेटिकाकी यह सेटिका है। ताका उत्तर—जो सेटिकातैं अन्य दूजी सेटिका तौ नाहीं है। तौ कहा है? सेटिकाकै स्वस्वामिभाव है। सो ये अंश हैं, तिनिकै अन्यपणा है। तहां कहे हैं–जो इहां निश्चय-नयके विषैं स्वस्वामिअंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो सेटिका अन्य काहूकी भी नाहीं। सेटिका है सो सेटिका ही है ऐसा निश्चय है। सो जैसा यह दृष्टांत है, तैसा ही यह दार्ष्टांतिक अर्थ है। तहां इस लोकविषैं प्रथम तौ चेतयिता कहिये चेतनेवाला आत्मा है, सो ज्ञानगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है। ताकै व्यवहारकरि ज्ञेय कहिये जानने योग्य पुद्गल आदिक परद्रव्य है, सो इहां तिस आत्माका अर

पुद्गल आदि परद्रव्य दोऊका परमार्थ तत्त्वरूप संबंध विचारिये है—जो पुद्गल आदि परद्रव्य हैं, तिनिका चेतयिता आत्मा है की नाहीं है ? तहां जो ऐसैं मानिये—चेतयिता आत्मा पुद्गल आदि परद्रव्यका है, तौ यहं न्याय है--जाका जो होय सो वह सो ही है-अन्य नाहीं है। ऐसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है, ज्ञान कछू न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं, आत्मा पुद्गलादिका होता संता, पुद्गलादिक ही होय, ऐसैं होतैं आत्माका स्वद्रव्यका उच्छेद होय--अभाव होय, पुद्गलद्रव्य ही ठहरै, आत्मा न्यारा द्रव्य न ठहरै सो ऐसैं होय नाहीं, द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्यद्रव्यकी पलटिकारी अन्यद्रव्य होनेका प्रतिषेध तौ पहलैही कही आये हैं। तातैं चेतयिता आत्मा पुद्गलादिक परद्रव्यका नाहीं होय हे। तहां पूछे है—जो चेतयिता आत्मा पुद्गलादि परद्रव्यका नाहीं है, तौ कौनका है? ताका उत्तर —जो चेतयिताहीका चेतयिता है। तहां फेरि पूछे है—जो वह दूसरा चेतयिता कौन सा है ? जाका यह चेतयिता है। ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य दूजा चेतयिता तौ नाहीं है। तौ कहा है ? तहां कहे हैं—जो स्वस्वामि अंश हैं ते अन्य कहिये हैं। तहां कहे हैं, इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं। तातैं यह ठहरी—जो ज्ञायक है सो निश्चयकरि अन्य काहूका नाहीं है, ज्ञायक है सो आप ही ज्ञायक है ऐसा निश्चय है।

अब जैसा ज्ञायक दृष्टांतदार्ष्टांतकरि कह्या, तैसा ही दर्शककूं कहे हैं। तहां सेटिका है सो प्रथम तौ श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है। ताकै व्यवहारकरि श्वेत करनेयोग्य कुटी आदि परद्रव्य है। सो सेटिका अर कुटी आदि परद्रव्यका इहां दोऊका परमार्थतत्त्वरूप संबंध विचारिये है। जो श्वेत करनेयोग्य कुटि आदि परद्रव्यके श्वेत करनेवाली सेटिका है कि नाहीं है ? तहां जो सेटिका कुटयादिककी है ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जाका जो होय सो वह ही है अन्य नाहीं। जैसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है। ऐसा परमार्थरूप संबंधकूं जीवता विद्यमान होता सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदिक ही होय।

एसैं होतैं सेटिकाका स्वद्रव्यका उच्छेद होय, सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं, जातैं द्रव्यका अन्य-द्रव्य पलटिकरि होनेका पहलै ही निषेध करि आये हैं। तातैं सेटिका कुटी आदिककी नाहीं है। इहां पूछे है—जो सेटिका कुट्यादिकी नाहीं है, तौ कौनकी है? ताका उत्तर—जो सेटिका सेटिकाहीकी है। फेरि पूछे है, वह दूजी सेटिका कौन सी है? जाकी यह सेटिका है। ताका उत्तर--जो अन्य दूजी सेटिका तौ नाहीं है, जाकी यह सेटिका होय। तौ कहा है? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे हैं, इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशके व्यवहारकरि कहा साध्य है? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो सेटिका काहूकी भी नाहीं, सेटिका है सो सेटिका ही है, ऐसा निश्चय है। जैसा यह दृष्टांत है, तैसा यह दार्ष्टांतिक है। जो इहां चेतयिता आत्मा प्रथम ही दर्शनगुणकरि भरचा है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है, ताकै व्यवहारकरि देखनेयोग्य पुद्गल आदि परद्रव्य है।

अब इहां दोऊका परमार्थभूत तत्त्वरूप संबंध विचारिये है। जो पुद्गल आदि परद्रव्य है ताका चेतयिता है कि नाहीं है? जो चेतयिता पुद्गल द्रव्यादिका है ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जो जाका होय, सो वह सो ही है, अन्य नाहीं है। जैसैं आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है ज्ञान न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं चेतयिता पुद्गल आदिका होता संता पुद्गल आदिक ही होय, न्यारा द्रव्य न होय। ऐसैं होतैं चेतयिताका स्वद्रव्यका उच्छेद होय--नाश होय। सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका पलटि-करि अन्यद्रव्य होनेका पहिलै ही निषेधकरि आये हैं। तातैं यह ठहरी, जो चेतयिता पुद्गलद्रव्य आदिका नाहीं है, तहां पूछे है—जो चेतयिता पुद्गलद्रव्य आदिकका नाहीं है तौ कौनका है? ताका उत्तर--जो चेतयिताका ही चेतयिता है। फेरि पूछे है, वह दूजा चेतयिता कौन सा है? जाका यह चेतयिता होय है, ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य तौ चेतयिता नाहीं है। तौ कहा है? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे है, इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यव-

हारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं तौ यह ठहरी, जो चेतयिता कोईका भी दर्शक नाहीं। दर्शक है सो दर्शक ही है। इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामि अंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं यह निश्चय है।

अब तैसैं ही चारित्रकूं कहे हैं। तहां जैसी सेटिका है, सो प्रथम ही श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका द्रव्य है। ताकै व्यवहारकरि श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है। अब यहां दोऊकै परमार्थकरि संबंध विचारिये है। श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है ताकी श्वेत करनेवाली सेटिका है कि नाहीं है ? तहां जो सेटिका कुटी आदिकी है, ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है, जो जाका होय सो वह सो ही है, अन्य नाहीं है। जैसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है, अन्य न्यारा द्रव्य नाहीं है, ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधकूं जीवता विद्यमान होतैं सेटिका कुटी आदिकी होती संती कुटी आदि ही होय, ऐसैं होतैं सेटिकाका स्वद्रव्यका उच्छेद होय, सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका पलटिकरि अन्यद्रव्य होनेका पहिले प्रतिषेध करि आये हैं, तातैं सेटिका कुट्यादिककी नाहीं है। तहां पूछे है, जो कुट्यादिकी नाहीं है तौ कौनकी सेटिका है ? ताका उत्तर—सेटिकाहीकी सेटिका है। फेरि पूछे है, वह दूजी सेटिका कौनसी है ? जाकी यह सेटिका है। ताका उत्तर—जो इस सेटिकातैं अन्य सेटिका तौ नाहीं है। तौ कहा है ? स्वास्वामि अंश हैं, ते ही अन्य हैं। तहां कहे हैं—स्वस्वामि-अंशकरि निश्चयनयविषैं कहा साध्य है ? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो सेटिका अन्य काहूकी भी नाहीं है, सेटिका है सो सेटिका ही है ऐसा निश्चय है। जैसा यह दृष्टांत है, तैसा दार्ष्टांतिक अर्थ है, जो चेतयिता आत्मा है, सो प्रथमही ज्ञानदर्शनगुणकरि भरया परका त्याग-रूप है स्वभाव जाका ऐसा द्रव्य है, ताकै व्यहारकरि त्यागने योग्य पुद्गल आदि परद्रव्य है।

अब इहां दोऊकै परमार्थतत्त्वरूप संबंध विचारिये है, जो त्यागने योग्य जो पुद्गल आदि परद्रव्य, ताका त्यागनेवाला चेतयिता है कि नाहीं है ? जो चेतयिता पुद्गल आदि परद्रव्यका

है। ऐसैं मानिये तौ यह न्याय है—जो जाका जो होय, सो वह सो ही है। ऐसा आत्माका ज्ञान होता संता आत्मा ही है अन्य न्यारा द्रव्य नाहीं ऐसा तत्त्वसंबंध जीवता विद्यमान होतैं चेतयिता पुद्गल आदिका होता संता पुद्गल आदिक ही होय। ऐसैं होतैं चेतयिताका स्वद्रव्यका उच्छेद होय. सो द्रव्यका उच्छेद होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका पलटिकरि अन्य द्रव्य होनेका प्रतिषेध पहलै ही कहि करि आये हैं। तातैं चेतयिता पुद्गलादिकका न होय है। इहां पूछे हैं—जो चेतयिता पुद्गल आदिका नाहीं है, तौ कौनका चेतयिता है? ताका उत्तर—जो चेतयिताका ही चेतयिता है। तहां फेरि पूछे हैं, वह दूजा चेतयिता कौनसा है? जाका यह चेतयिता है। ताका उत्तर—जो चेतयितातैं अन्य चेतयिता तौ नाहीं है। तौ कहा है? स्वस्वामि अंश ही अन्य है। तहां कहे हैं—इहां निश्चयनयविषैं स्वस्वामिअंशका व्यवहारकरि कहा साध्य है? किछू भी नाहीं। तौ यह ठहरी—जो त्यागनेवाला अपोहक है सो काहूका ही अपोहक नाहीं, अपोहक है सो अपोहक ही है ऐसा निश्चय है।

अब व्यवहारकूं कहे हैं—जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका सो आप कुटी आदि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमतो संती बहुरि कुड्यादिक परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती कुड्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना श्वेतगुणकरि भरया स्वभावका परिणामकरि उपजती संती कुड्यादि परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि सुफेद करे है। कैसा है परद्रव्य? सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संता है, ताकूं श्वेत करे है, ऐसा व्यवहार कीजिये हैं। तैसैं चेतयिता आत्मा भी ज्ञानगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है। सो स्वयं आप तौ पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमता संता है। अर पुद्गल आदि परद्रव्यकूं आपके स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। बहुरि पुद्गल आदि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना ज्ञानगुणकरि भरया स्वभाव ताका परिणामकरि उपजता संता है, सो पुद्गलादि परद्रव्य चेतयिता जाकूं निमित्त ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि

उपजता संता है, ताकूं अपने स्वभावकरि जाने है, ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसा तौ ज्ञानका व्यवहार है।

बहुरि दर्शनगुणका व्यवहार कहे हैं--जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है, सो आप स्वयं कुट्यादि परद्रव्यके स्वभावकरि तौ न परिणमती संती है; अर कुड्यादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती है; अर कुड्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा श्वेतगुणकरि भरया अपना स्वभाव, ताका परिणामकरि उपजती संती है। सो कुट्यादि परद्रव्य, सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संता है; ताकूं अपने स्वभावकरि सुफेद करे है; ऐसा व्यवहार कीजिये है। तैसैं चेतयिता है सो दर्शनगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसा है। सो स्वयं आप तौ पुद्गल आदि परद्रव्यका स्वभावकरि न परिणमता संता है। बहुरि पुद्गल आदि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। अर पुद्गल आदि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना दर्शनगुणकरि भरया स्वभावका परिणाम ताकरि उपजता संता है। सो पुद्गल आदि परद्रव्यकूं चेतयिता है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता संताकूं अपना स्वभावकरि देखे है, ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसा दर्शनगुणका व्यवहार है।

अब चारित्रका व्यवहार कहै हैं--जैसैं सो ही सेटिका श्वेतगुणकरि भरया है स्वभाव जाका ऐसी है, सो आप स्वयं कुट्यादि परद्रव्यके स्वभावकरि न परिणमती संती है, बहुरि कुट्यादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावती संती है, अर कुट्यादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा श्वेतगुणकरि भरया अपना स्वभाव ताका परिणामकरि उपजती संती है; सो कुट्यादि परद्रव्यकूं सेटिका है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजै ताकूं सेटिका अपने स्वभावकरि श्वेत करै है। ऐसा व्यवहार कीजिये है। तैसैं चेतयिता आत्मा भी ज्ञानदर्शनगुणकरि भरया परके अपोहन कहिये त्याग, तिस रूप स्वभाव है, सो स्वयं आप पुद्गलादि पर-

द्रव्यके स्वभावकरि न परिणमता संता है। बहुरि पुद्गलादि परद्रव्यकूं अपने स्वभावकरि नाहीं परिणमावता संता है। अर पुद्गलादि परद्रव्य है निमित्त जाकूं ऐसा अपना ज्ञानदर्शनगुणकरि भर्या परके त्याग करनेरूप स्वभावके परिणामकरि उपजता संता है, सो चेतयिता है निमित्त जाकूं ऐसा अपना स्वभावका परिणामकरि उपजता जो पुद्गलादि परद्रव्य ताकूं अपने स्वभावकरि त्यागै है। ऐसा व्यवहार कीजिये है। ऐसैं यह आत्माके ज्ञान दर्शन चारित्र तेही भये पर्याय तिनिका निश्चय व्यवहारका प्रकार है। ऐसे ही अन्य भी जे केई पर्याय हैं तिनि सर्व ही पर्यायनिका निश्चय व्यवहार जानना।

भावार्थ—आत्माका शुद्धनयकरि एक चेतनामात्र स्वभाव है। ताके परिणाम देखना, जानना, श्रद्धना, परद्रव्यतैं निवृत्त होना है। तहां निश्चयनयकरि विचारिये तब आत्मा परद्रव्यका ज्ञायक न कहिये, दर्शक न कहिये, श्रद्धान करनेवाला न कहिये, त्याग करनेवाला न कहिये। जातैं परद्रव्यकै अर आत्माकै निश्चयकरि किछू भी संबंध नाहीं है। जो ज्ञाता, द्रष्टा, श्रद्धान करनेवाला, त्याग करनेवाला, ए सर्व भाव हैं सो आप ही है। भावभावकका भेद कहना सो भी व्यवहार है। अर परद्रव्यका ज्ञाता, द्रष्टा, श्रद्धान करनेवाला, त्याग करनेवाला कहिये है। सोभी व्यवहारनयकरि कहिये हैं। जातैं परद्रव्यकै अर आत्माका निमितिनैमित्तिक भाव है। सो-परकै निमित्ततैं किछू भाव भये देखि व्यवहारी जन कहे हैं, जो परद्रव्यकूं जाने है, परद्रव्यकूं देखे है, परद्रव्यका श्रद्धान करे है, परद्रव्यकूं त्यागे है। ऐसें निश्चय व्यवहारका प्रकार जानि यथावत् श्रद्धान करना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं—

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ॥२२॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं--जो शुद्ध द्रव्यके निरूपणविषैं लगाई है बुद्धि जाने बहुरि तत्त्वकूं

अनुभवता है ऐसा पुरुषकै एक द्रव्यविषैं प्राप्त भया अन्यद्रव्य किछू भी न कदाचित् प्रतिभासे है। वहुरि ज्ञान है सो अन्य ज्ञेय पदार्थकूं जानै है सो यह ज्ञानका शुद्ध स्वभावका उदय है, सो यह जन लोक हैं ते अन्यद्रव्यके ग्रहणविषैं आकुल है बुद्धि जिनिकी ऐसै, भये संते शुद्धस्वरूपतैं क्यों चिगे हैं ?

भावार्थ–शुद्धनयकी दृष्टिकरि तत्त्वका स्वरूप विचारतैं अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यविषैं प्रवेश नाहीं दीखे है। अर ज्ञानविषैं अन्य द्रव्य प्रतिभासे है सो यह ज्ञानकी स्वच्छताका स्वभाव है। किछू ज्ञान तिनिकूं ग्रहण न कीये है। अर यह लोक अन्य द्रव्यका ज्ञानविषैं प्रतिभास देखि अर अपना ज्ञानस्वरूपतैं छूटि अर ज्ञेयके ग्रहण करनेकी बुद्धि करे हैं सो यह अज्ञान है। ताकी आचार्यनै करुणाकरि कह्या है। जो ए लोक तत्त्वतैं क्यों चिगे हैं ? फेरि इस ही अर्थकूं दृढ़ करे हैं—

मन्दाक्रान्ताछन्दः

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष–मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्तिभूमिर्ज्ञानं ज्ञयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२३॥

अर्थ—जिस द्रव्यका जो निज भाव होय सो स्वभाव है। सो आत्माका ज्ञानचेतना स्वभाव है। ताकै शुद्ध द्रव्य जो शुद्ध आत्मा ताका निजरस ज्ञानचेतना है। ताकै होतैं ते अन्य बाकी जा द्रव्य है सो कहां होय ? किछू भी न होय। परमार्थकरि संबंध नाहीं अथवा अन्य द्रव्य है ताकै यहू स्वभाव कहा होय ? किछू भी न होय। परमार्थकरि संबंध नाहीं। जैसैं ज्योत्स्ना जो चांदणी ताका रूप पृथ्वीकूं उज्वल करे है, तौ कहां पृथ्वी चांदणीकी होय जाय ? किछू भी न होय। तैसैं ज्ञान है सो ज्ञेयपदार्थकूं सदाकाल जाने है, तौ ज्ञेय ज्ञानका किछू कहा होय जाय ? किछू भी नाहीं है।

भावार्थ–शुद्धनयकी दृष्टिकरि देखिये तब कोई द्रव्यका स्वभाव काहू अन्यद्रव्यरूप होय नाहीं। जैसैं चांदणी पृथ्वीकूं उज्वल करे है परंतु चांदणीकी पृथ्वी किछू होय नाहीं है। तैसैं ज्ञान ज्ञेयकूं

जाने है परंतु ज्ञानका ज्ञेय किछू होय नाहीं है । आत्माका ज्ञान स्वभाव है सो याकी स्वच्छतामैं ज्ञेय स्वयमेव झलके है । तौऊ ज्ञानमैं तिनि ज्ञेयनिका प्रवेश नाहीं है । अब कहे हैं, जो ज्ञानमैं राग द्वेषका उदय कहां तांई है ? ताका काव्य—

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावद् ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यः ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं भावोभावो भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः ॥२४॥

अर्थ—यहु ज्ञान जेतैं ज्ञानरूप न होय है, अर बोध्य कहिये ज्ञेय सो ज्ञेयभावकूं प्राप्त न होय है, तेतैं राग द्वेष दोऊ उदय होय हैं । तातैं यह ज्ञान है सो ज्ञानरूप होऊ । कैसा होऊ ? दूरी किया है अज्ञानभाव जाने ऐसा होऊ । तिस कारणकरि भाव अभाव ज्ञानमैं होय हैं । तिनिकूं दूरी करता संता पूर्ण स्वभाव होय ।

टीका—जेतैं ज्ञान ज्ञानरूप न होय, ज्ञेय ज्ञेयरूप न होय, तेतैं राग द्वेष उपजे है । तातैं यह ज्ञान अज्ञानभावकूं दूरिकरि ज्ञानरूप होऊ । जिस कारणतैं ज्ञानमैं भाव अर अभाव ए दोय अवस्था होय हैं, सो तौ मिटि जाय । अर ज्ञान पूर्णस्वभावकूं प्राप्त होय जाय । यह प्रार्थना है। आगै कहे हैं कि, राग द्वेष मोहतैं दर्शनज्ञानचारित्रका घात होय है, सो दर्शन ज्ञान चारित्र पुद्गल द्रव्यमें तौ हैं नाहीं, आत्माहीमैं दर्शनज्ञानचारित्र हैं । अर आत्माहीमैं अज्ञानतैं राग द्वेष मोह हैं । सो अज्ञानतैं अपना ही घात होय है; ऐसा निर्णय करे हैं । गाथा—

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥५८॥
दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे कम्मे ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥५९॥

दसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे काये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥६०॥
णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स ।
णवि तह्मि कोऽवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ॥६१॥
जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तह्मा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ॥६२॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव दु अणण्ण परिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥६३॥

दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने विषये ।
तस्मात्किं घातयति चेतयिता तेषु कायेषु ॥५८॥
दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि ।
तस्मात्किं घातयति चेतयिता तेषु कर्मसु ॥५९॥
दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने काये ।
तस्मात् किं घातयति चेतयिता तेषु कायेषु ॥६०॥
ज्ञानस्य दर्शनस्य भणितो घातस्तथा चरित्रस्य ।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातो निर्दिष्टः ॥६१॥
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न संति खलु ते परेषु द्रव्येषु ।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु ॥६२॥

रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः ।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न संति रागादयः ॥६३॥

आत्मख्यातिः—यद्धि यत्र भवति तत्तद्घाते हन्यत एव यथा प्रदीपघाते प्रकाशो हन्यते। यत्र च यद्भवति तत्तद्घाते हन्यते यथा प्रकाशघाते प्रदीपो हन्यते। यत्तु यत्र न भवति तत्तद्घाते न हन्यते यथा घटप्रदीपघाते घटो न हन्यते। यथात्मनो धर्मा ज्ञानदर्शनचारित्राणि पुद्गलद्रव्यघातेऽपि न हन्यंते, न च दर्शनज्ञानचारित्राणां घातेऽपि पुद्गलद्रव्यं हन्यते, एवं दर्शनज्ञानचारित्राणि पुद्गलद्रव्ये न भवंतीत्यायाति अन्यथा तद्घाते पुद्गलद्रव्यघातस्य, पुद्गलद्रव्यघाते तद्घातस्य दुर्निवारत्वात्। यत एवं ततो ये यावंतः केचनापि जीवगुणास्ते सर्वेऽपि परद्रव्येषु न संतीति सम्यक् पश्यामः। अन्यथा अत्रापि जीवगुणघाते पुद्गलद्रव्यघातस्य पुद्गलद्रव्यघाते जीवगुणघातस्य च दुर्निवारत्वात्। यद्येवं तर्हि कुतः सम्यग्दृष्टेर्भवति रागो विषयेषु? न कुतोऽपि। तर्हि रागस्य कतरा खानिः रागद्वेषमोहादि जीवस्यैवाज्ञानमयाः परिणामास्ततः परद्रव्यत्वाद्विषयेषु न संति, अज्ञानाभावात्सम्यग्दृष्टौ तु न भवंति एवं ते विषयेष्वसंतः सम्यग्दृष्टेर्न भवंतो न भवंत्येव।

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो अचेतन जे विषय तिनिविषैं किछू भी नाहीं हैं। तातैं तिनि विषयनिविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै? घातनेकूं किछू भी नाहीं। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो अचेतन जो कर्म ताविषैं किछू भी नाहीं हैं। तातैं तिस कर्मविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै। किछू भी घातनेकूं नाहीं। दर्शन ज्ञान चारित्र है सो अचेतन जो काय ताविषैं किछू भी नाहीं है। तातैं तिनि कायनिविषैं चेतयिता आत्मा कहा घातै? किछू भी घातनेकूं नाहीं। बहुरि घात है सो ज्ञानका तथा दर्शनका तथा चारित्रका कह्या है तहां पुद्गलद्रव्यका किछू घात नाहीं कह्या है। बहुरि जे केई जीवके गुण हैं ते परद्रव्यनिविषैं नाहीं हैं। तातैं सम्यग्दृष्टीकै विषयनिविषैं राग नाहीं है। राग द्वेष मोह हैं ते जीवहीका अनन्य एकरूप: अभेदरूप परिणाम हैं। इस कारणकरि रागादिक हैं ते शब्दादिविषैं नाहीं हैं।

टीका—निश्चयकरि जो जाविषैं होय सो तिसके घात होतैं हण्याही जाय है। जैसैं दीपक-

विषैं प्रकाश है सो दीपकका घात होतैं प्रकाश भी हणिये ही है। बहुरि जाविषैं जो होय सो ताकै घात होतै हणिये ही है। जैसैं प्रकाशको घाते होतैं प्रदीप भी हणियो ही है। बहुरि जो जाविषैं न होय सो ताके घात होतै नाहीं हणिये है। जैसैं घटका घात होतैं घटका प्रदीपक है सो नाहीं हणिये है। बहुरि जाविषैं जो न होय सो ताके घाते नाहीं हणिये है। जैसैं घडेमें प्रदीपका घात होतै घट नाहीं हणिये है इस न्यायतैं कहे हैं—जो आत्माके धर्म दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते पुद्गलद्रव्यके घात होते भी नाहीं घातैं जाय हैं। बहुरि दर्शनज्ञानचारित्रका घात होतै भी पुद्गलद्रव्य घात्या न जाय है। ऐसैं दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते पुद्गलद्रव्यविषैं नाहीं हैं। यह आत्मा जो ऐसे न होय, तौ दर्शनज्ञानचारित्रका घात होतै तौ पुद्गलद्रव्यका घातका दुर्निवारपणा होय, अवश्य घात होय। अर पुद्गलद्रव्यका घात होतैं दर्शनज्ञानचारित्रका घात अवश्य होय। जातैं ऐसै है तातैं आचार्य कहे हैं, जेजे किछू जीवद्रव्यके गुण हैं ते सर्व ही परद्रव्यनिविषैं नाहीं हैं। ऐसे पुद्गल सम्यक् प्रकार हम देखे हैं। अर जो ऐसें न होय तो इहां भी जीवके गुणका घात होतै पुद्गल द्रव्यका घातका दुर्निवारपणा होय। अर पुद्गलद्रव्यका घात होतै जीवगुणका घातका दुर्निवारपणा होय। सो ऐसै है नाहीं। अब विचारे हैं—जो ऐसैं होतै सम्यग्दृष्टीके विषयनिविषैं राग कौन हेतूतैं होय है? तहां कहे हैं। काहू ही हेतूतैं नाहीं होय है। तब पूछे है—रागके उपजनेकी कौनसी खानी है? तहां कहे हैं—राग द्वेष मोह हैं ते जीव ही का अज्ञानमय परिणाम हैं। यह अज्ञान ही रागादिककै उपजनेकी खानी है। जातैं विषय हैं ते परद्रव्य हैं। तिनिविषैं रागादिक अज्ञानमय परिणाम नाहीं है। बहुरि जब अज्ञानका अभाव होय तब आत्मा सम्यग्दृष्टि होय, तब ताविषैं रागादि न होय हैं। ऐसैं ते रागादिक विषयनिविषैं न होतै संतै अर सम्यग्दृष्टीके न होतै संतै नाहीं है।

भावार्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र आदि जेते जीवके गुण हैं ते अचेतन पुद्गलद्रव्यमैं नाहीं हैं। तातैं आत्माके अज्ञानमय परिणामतैं राग द्वेष मोह होय हैं। तिनिकरि आपहीके दर्शन

ज्ञान चारित्र आदि गुण घातै जाय हैं । अर राग द्वेष मोह जीवहीके अस्तित्वमैं अज्ञानतैं उपजै हैं । जब अज्ञानका अभाव होय तब सम्यग्दृष्टि होय तब नाहीं उपजे है । ऐसे होतै शुद्धद्रव्यके दृष्टीमैं पुद्गलविषैं भी राग द्वेष मोह नाहीं सम्यग्दृष्टि जीवविषैं भी नाहीं । ऐसे दोऊ ही विषैं न होतै ए नाहीं ही हैं अर पर्यायदृष्टीमैं जीवके अज्ञान अवस्थामैं हैं ऐसा जानना । अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

मन्दाक्रान्ताछन्दः

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात् तौ वस्तुत्वं प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित् ।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटंतो ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥२५॥

अर्थ—इस आत्माविषैं ज्ञान है सो ही अज्ञान भावतैं राग द्वेष रूप परिणमे है । बहुरि ते रागादिक वस्तुपणाविषैं स्थापिदृष्टिकरि देखे हुये किछू भी नाहीं हैं, द्रव्यरूप न्यारे वस्तु नाहीं है । तातैं आचार्य प्रेरणा करे हैं, जो सम्यग्दृष्टि पुरुष है सो तत्त्वदृष्टिकरि तिनिकूं प्रगट देखि अर क्षेपो नाश करो । ज्यों स्वाभाविक ज्ञानज्योतिपूर्ण है प्रकाशरूप अचल दीप्ति जाकी ऐसी देदीप्यमान प्रकाशै ।

भावार्थ—राग द्वेष न्यारा ही तौ द्रव्य नाहीं । जीवके अज्ञान भावतैं होय है । तातैं सम्यग्दृष्टि होय तत्त्वदृष्टिकरि देखिये, किछू भी वस्तु नाहीं ऐसें देखे । घातिकर्मका नाश होय केवलज्ञान उपजे है । आगे कहे हैं, जो अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुण नाहीं उपजाइये है, ताकी सूचनिकाका काव्य है—

मालिनीछन्दः

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद् द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥२६॥

अर्थ—राग द्वेषका उपजावनेवाला तत्त्वदृष्टिकरि देखिये तब अन्य द्रव्य किछू भी नाहीं देखिये

है । चेतनहीके परिणाम हैं । जातैं यह न्याय है—जो सर्व द्रव्यनिकी उत्पत्ति है सो अपने ही निज स्वभावविषैं अंतरंगविषैं अत्यंत प्रगटरूप शोभे है । अन्य द्रव्यविषैं अन्यके गुणपर्यायनिकी उत्पत्ति नाहीं है । अब इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं गाथा—

अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो ।
तह्मा दु सव्वदव्वा उपज्जंते सहावेण ॥६४॥

अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यस्य न क्रियते गुणोत्पादः ।
तस्मात्तु सर्वद्रव्याण्युत्पद्यंते स्वभावेन ॥६४॥

आत्मख्यातिः—न च जीवस्य परद्रव्यं रागादीन्युत्पादयतीति शक्यं—अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यगुणोत्पादककरणस्यायोगात् । सर्वद्रव्याणां स्वभावेनैवोत्पादात् । तथा हि मृत्तिका कुंभभावेनोत्पद्यमाना किं कुंभकार स्वभावेनोत्पद्यते किं मृत्तिकास्वभावेन ? यदि कुंभकारस्वभावेनोत्पद्यते तदा कुंभकरणाहंकारनिर्भरपुरुषाधिष्ठितव्यापृतकरपुरुषशरीराकारः कुंभः स्यात्, न च तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात् । यद्येवं तर्हि मृत्तिका कुंभकारस्वभावेन नोत्पद्यते किंतु मृत्तिकास्वभावेनैव, स्वस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्य दर्शनात् । एवं च सति स्वस्वभावानतिक्रमान्न कुंभकारः कुंभस्योत्पादक एव मृत्तिकैव कुंभकारस्वभावमस्पृशंती स्वस्वभावेनोत्पद्यते । एवं सर्वाण्यपि द्रव्याणि स्वपरिणामपर्यायेणोत्पद्यमानानि किं निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते किं स्वस्वभावेन ? यदि निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते तदा निमित्तभूतपरद्रव्याकारस्तत्परिणामः स्यात् न च तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात् । यद्येवं तर्हि न सर्वद्रव्याणि निमित्तभूतपरस्वभावेनोत्पद्यंते किंतु स्वस्वभावेनैव, स्वस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्य दर्शनात् एवं च सति सर्वद्रव्याणां निमित्तभूतद्रव्यांतराणि स्वपरिणामस्योत्पादकान्येव सर्वद्रव्याण्येव निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावमस्पृशंति स्वस्वभावेन स्वपरिणामभावेनोत्पद्यंते अतो न परद्रव्यं जीवस्य रागादीनामुत्पादकमुत्पश्यामो यस्मै कुप्यामः ।

अर्थ—अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुणका उत्पाद नाहीं कीजिये है । तातैं यह सिद्धांत है, जो सर्व ही द्रव्य अपने अपने स्वभावकरि उपजे हैं ।

टीका—जीवद्रव्यकै परद्रव्य है सो रागादिक उपजावे है, ऐसी आशंका न करनी। जातैं अन्य द्रव्यकरि अन्य द्रव्यके गुणका उत्पाद करनेका अयोग्य है। सर्वद्रव्यविषैं स्वभावहीकरि उत्पाद है। सो ही दृष्टांतकरि दिखाइये हैं—मृत्तिका है सो कुंभभावकरि उपजती संती कहा कुंभकारके स्वभावकरि उपजे है, की मृत्तिका स्वभावकरि उपजै? ऐसे दोय पक्ष पूछी, तहां जो कहिये कुंभकारके स्वभावकरि उपजे है कुंभके करनेका अहंकारकरि भर्‌या जो पुरुष ताकरि आश्रयरूप अर व्यापाररूप है हस्त जामैं ऐसा पुरुषका शरीर ताका आकार कुंभ भया चाहिये कुंभकारका शरीरकी आकार घट वनाया चाहिये, सो ऐसें है नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका स्वभाव-करि अन्यद्रव्यका परिणामका उपजना न देखिये है। तातैं जो ऐसें है तौ मृत्तिका कुंभकारके स्वभावकरि तौ नाहीं उपजे है, तौ कैसैं उपजे है? मृत्तिका स्वभावहीकरि उपजे है। जातैं अपने स्वभावहीकरि द्रव्यका परिणामका उत्पाद देखिये है। ऐसैं होतैं मृत्तिकाका स्वभावकै नाहीं उल्लंघनेतैं कुंभकार है सो कुंभका उत्पादक कहिये उपजावनहारा नाहीं है, मृत्तिका ही कुंभकारके स्वभावकूं नाहीं स्पर्शती संती अपना ही स्वभावकरि कुंभभावकरि उपजे है। ऐसे ही सर्व ही द्रव्य हैं, ते अपने परिणामरूप पर्यायकरि उपजते संते हैं, ते कहा निमित्तभूत जे अन्य द्रव्य तिनिके स्वभावकरि उपजे है की अपने स्वभावहीकरि उपजे है? ऐसे दोय पक्ष पूछी, तहां जो कहिये निमित्तभूत अन्य द्रव्यके स्वभावकरि उपजे है, तौ निमित्तभूत परद्रव्यका आकार तिसका परिणाम होय, सो ऐसैं होय नाहीं। जातैं अन्य द्रव्यका स्वभावकरि अन्य द्रव्यका परि-णामका उपजनेका अदर्शन है—नाहीं देखिये है। तातैं जो ऐसे है तौ सर्व ही द्रव्य हैं ते निमित्तभूत जो परद्रव्य ताका स्वभावकरि नाहीं उपजे हैं, तौ कैसैं उपजे हैं अपने स्वभावहीकरि उपजे हैं। जातैं अपने स्वभावहीकरि सर्वद्रव्यनिका परिणामका उत्पाद देखिये है। ऐसे होतैं सर्व ही द्रव्यनिके निमित्तभूत जे अन्यद्रव्य ते अन्यद्रव्यके परिणामके उपजावनहारे नाहीं हैं। सर्व ही द्रव्य हैं ते निमित्तभूत जे अन्य द्रव्य तिनिके स्वभावकूं नाहीं स्पर्शते संते अपने स्वभावकरि

अपने परिणाम भावकरि उपजे हैं। या कारणतैं आचार्य कहे हैं—जो परद्रव्य है, सो जीवकै रागादिकका उपजावनहारा नाहीं देखे है, जापरि हम कोप करै।

भावार्थ—आत्माके रागादिक उपजे हैं ते अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चयनयकरि विचारिये तब इनिका उपजावनहारा अन्य द्रव्य नाहीं है। अन्य द्रव्य इनिका निमित्तमात्र हैं। जातैं अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्यगुणपर्याय उपजावे नाहीं यह नियम है। तातैं जे ऐसे माने हैं, जो मेरै रागादिक परद्रव्य ही उपजावे है, ऐसा एकांत करे है, ते नयविभागमें समझे नाहीं, मिथ्यादृष्टि हैं। ए रागादिक जीवकै सत्त्वमें उपजे हैं, परद्रव्य निमित्तमात्र है, ऐसैं मानना सम्यग्ज्ञान है। तातैं आचार्य ऐसैं कहे हैं—हम राग द्वेषके उत्पत्तिमैं अन्य द्रव्यपरि काहेकूं कोप करै ? राग द्वेषका उपजना आपहीका अपराध है। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

मालिनीछन्दः

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥२७॥

अर्थ—जो इस आत्माविषैं राग द्वेष दोषकी उत्पत्ति है तहां परद्रव्यकूं किछू भी दूषण नाहीं है। तिस आत्माविषैं यह अज्ञान आप अपराधी फैले है। यह कथन प्रगट होऊ, अर यह अज्ञान है सो अस्त होऊ। जातैं मैं तो ज्ञानस्वरूप हौं, ऐसैं मानना सम्यग्ज्ञान है।

भावार्थ—अज्ञानी जीव राग द्वेषकी उत्पत्ति परद्रव्यतैं मानि परद्रव्यतैं कोप करे है। जो मेरै परद्रव्य राग द्वेष उपजावे है ताकूं दूरी करूं। ताकूं समझावनेकूं कहे है। जो राग द्वेषकी उत्पत्ति अज्ञानतैं आपहीकेविषैं होय है। ते आपहीके अशुद्ध परिणाम हैं। सो यह अज्ञान नाशकूं प्राप्त होऊ, अर सम्यग्ज्ञान प्रगट होऊ आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा अनुभव करौ। राग द्वेषके उपजनेमैं परद्रव्यकूं उपजावनहारा मानि तिसपरि कोप मति करौ। ऐसा उपदेश है। अब इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं अर अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

रथोद्धताछन्दः

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते । उत्तरंति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥२८॥

अर्थ—जे पुरुष रागकी उत्पत्तिविषैं परद्रव्यहीका निमित्तपणा माने हैं, अपना किछू भी हेतु न माने हैं, ते मोहरूप नदीके पार नाहीं उतरे हैं । जातैं शुद्धनयका विषयभूत जो आत्माका स्वरूप ताका ज्ञानकरि रहित अंध है बुद्धि जिनिकी ते ऐसैं हैं ।

भावार्थ—शुद्धनयका विषय आत्मा अनंत शक्तीकूं लिये चैतन्यचमत्कारमात्र नित्य अभेद एक है । तामैं यह स्वच्छता है, जो जैसा निमित्त मिलै तैसे आप परिणमे है । ऐसा नाहीं, जो पैला परिणमावै तैसे परिणमे है । अपना किछू पुरुषार्थ नाहीं है । सो ऐसे आत्माका स्वरूपका जिनिकूं ज्ञान नाहीं है, ते ऐसे माने हैं, जो आत्माकूं परद्रव्य परिणमावै है, तैसे परिणमे है । ते ऐसे माननेवाले मोहकी वाहिनी जो सेना अथवा नदी, राग द्वेषादि परिणाम तिनितैं पार नाहीं होय है । तिनिके राग द्वेष नाहीं मिटे हैं । जातैं अपना पुरुषार्थ तिनिके होनेमैं होय तो तिनिके मेटनेमें भी होय । अर परहीके किये होय तो पैला किया ही करै । अपना मेटना काहेका ? तातैं अपना किया होय अपना मेट्या मिटै, ऐसैं कथंचित् मानना सम्यग्ज्ञान है । आगै इस कथनकूं प्रगट करे हैं—जो स्पर्शरसगंधवर्ण शब्दरूप पुद्गल परिणमे हैं, ते इंद्रियनिकरि आत्माके जाननेमैं आवे हैं तथापि ते जड हैं । आत्माकूं किछू कहे नाहीं हैं, जो हमकूं ग्रहण करो । आत्मा ही अज्ञानी होय तिनिकूं भले बुरे मानि रागी द्वेषी होय है । ऐसैं गाथामैं कहे हैं ।

णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि ।
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥६५॥
पोग्गलदव्वं सदुत्तह परिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिदो किंचिवि किं रूससे अबुहो ॥६६॥

असुहो सुहोव सद्दो ण तं भणदि सुणसु मंति सो चैव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं सोदु विसयमागदं सद्दं ॥६७॥
असुहं सुहं च रूवं ण तं भणादि पेच्छ मंति सो चेव ।
णाय एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रूवं ॥६८॥
असुहो सुहोय गंधो णा तं भणादि जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं ॥६९॥
असुहो सुहोय रसो ण तं भणादि रसय मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागदं तु रसं ॥७०॥
असुहो सुहोय फासो णा तं भणादि फासमंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागदं फासं ॥७१॥
असुहो सुहोय गुणो ण तं भणादि बुज्झ मंति सो चेव ।
णय एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं ॥७२॥
असुहं सुहं च दव्वं ण तं भणादि बुज्झमंति सो चेव ।
णाय एदि विणग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं ॥७३॥
एवं तु जणि दव्वस्स उपसमेणेव गच्छदे मूढो ।
णिग्गहमणा परस्साय सयंच बुद्धिं सिवमपत्तो ॥७४॥

निंदितसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमंति वहुकानि ।
तानि श्रुत्वा रूष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः ॥६५॥
पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः ।
तस्मान्न त्वां भणितः किंचिदपि किं रुष्यस्यबुद्धः ॥६६॥
अशुभः शुभो वा शब्दः न त्वां भणति शृणु मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दं ॥६७॥
अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपं ॥६८॥
अशुभः शुभोवा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव ।
नचेति विनिर्ग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधं ॥६९॥
अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु रसं ॥७०॥
अशुभः शुभोवा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं कायविषयमागतं तु स्पर्शं ॥७१॥
अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
नचेति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु गुणं ॥७२॥
अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
नचैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु द्रव्यं ॥७३॥
एवं तु ज्ञातद्रव्यस्य उपशमेनेव गच्छति मूढः ।
विनिर्ग्रहमनाः परस्य तु स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः ॥७४॥

आत्मख्यातिः—यथेह बहिरर्थो घटादिः, देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा 'मां प्रकाशय' इति स्वप्रकाशने न

प्रदीपं प्रयोजयति । नच प्रदीपोप्ययः कांतोपलकृष्टायः सूचीवत स्वस्थानात्प्रच्युत्य तं प्रकाशयितुमायाति। किं तु वस्तुस्वभावस्य परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्तत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्संनिधानेऽपि स्वरूपेणैव प्रकाशते । स्वरूपेणैव प्रकाशमानस्य चास्य वस्तुस्वभावादेव विचित्रां परिणतिमासादयन् कमनीयोऽकमनीयो वा घटपटादिर्न मनागपि विक्रियायै कल्पते । तथा बहिरर्थः शब्दो रूपं गंधो रसः स्पर्शो गुणद्रव्ये च देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा मां शृणु मां पश्य मां जिघ्र मां रसय मां स्पर्श मां बुध्यस्वेति स्वज्ञाने नात्मानं प्रयोजयति। नचात्माप्ययःकांतोपलकृष्टायःसूचीवत् स्वस्थानात्प्रच्युत्य तान् ज्ञातुमायाति । किंतु वस्तुस्वभावस्य परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्तत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्सन्निधानेऽपि स्वरूपेणैव जानीते। स्वरूपेण जानतश्चास्य वस्तुस्वभावादेव विचित्रां परिणतिमासादयंतः कमनीया अकमनीया वा शब्दादयो बहिरर्था न मनागपि विक्रियायै कल्प्येरन् । एवमात्मा परं प्रति उदासीनो नित्यमेवेति वस्तुस्थितिः, तथापि यद्रागद्वेषौ तदज्ञानं।

अर्थ—निंदाके अर स्तुतीके वचन हैं ते बहुत प्रकार पुद्गल परिणमे हैं तिनिकूं सुणिकरि यह अज्ञानी जीव ऐसैं माने है, जो मोकूं कह्या; ऐसैं मानि रूसे है रोस करे है तथा दोष करे है। शब्दरूप परिणया पुद्गल द्रव्य है, सो यह पुद्गल द्रव्यका गुण है, अन्य है । तातैं हे अज्ञानी जीव तोकूं तौ किछू ही न कह्या, तूं अज्ञानी भया काहेकूं रोस करे है ? अशुभ अथवा शुभ शब्द है, सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो मोकूं सुणि । बहुरि श्रोत्र इंद्रियके विषयमें आया जो शब्द, ताकूं ग्रहण करनेकूं अपने स्वरूपकूं छोडि सो आत्मा भी नाहीं प्राप्त होय है । बहुरि अशुभ अथवा शुभ रूप है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं देखि । बहुरि चक्षु इंद्रियके विषयमें आया जो रूप ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशनिकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है । बहुरि अशुभ अथवा शुभ गंध है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तूं मोकूं सूंघि । बहुरि घ्राण इंद्रियके विषयमें आया जो गंध ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ रस है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं आस्वाद करि । बहुरि रसन इंद्रियका विषयमें आया जो रस ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना,

प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ स्पर्श है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है जो तू मोकूं स्पर्शि। बहुरि स्पर्शन इंद्रियके विषयमें आया जो स्पर्श ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ द्रव्यका गुण है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं जाणि। बहुरि बुद्धिके विषयमें आया जो गुण ताकूं सो आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि अशुभ वा शुभ द्रव्य है सो तोकूं ऐसैं नाहीं कहे है, जो तू मोकूं जाणि। बहुरि बुद्धीके विषयमें आया जो द्रव्य ताकूं आत्मा भी ग्रहण करनेकूं अपना प्रदेशकूं छोडि नाहीं प्राप्त होय है। यह मूढ जीव है सो ऐसैं यहु जाणि करि उपशमभावकूं नाहीं प्राप्त होय है। अर परके ग्रहण करनेकूं मन करे है। जातैं आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान ताकूं नाहीं प्राप्त भया है।

टीका—तहां प्रथम दृष्टांत कहे हैं। जैसे बाह्यपदार्थ घट पट आदिक हैं, सो जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुष यज्ञदत्तनामा पुरुषकूं हाथ पकडि कहै, तैसे दीपककूं अपने प्रकाशने विषैं नाहीं प्रेरणा करै है, जो तू मोकूं प्रकाशि। बहुरि दीपक है सो भी अपने स्थानककूं छोडि—जैसैं चुंवक पाषाणकूं लोहकी सूई अपना स्थानककूं छोडि जाय लगै तैसैं नाहीं जाय लगे है। तौ कहा है? वस्तुका स्वभावके परकरि उपजावनेकूं अशक्यपणा है तथा परकूं उपजावनेका असमर्थपणा है। बहुरि घटपटादिक समीप नाहीं होतैं दीपक प्रकाशरूप है। तैसैं ही तिनिकूं समीप होतैं भी अपना स्वरूप ही करि प्रकाशरूप है। बहुरि अपना स्वरूप ही करि प्रकाशरूप होता दीपककै वस्तुस्वभावहीतैं विचित्र परिणतीकूं प्राप्त होता जो मनोहर अमनोहर घटपटादिपदार्थ सो किंचित्मात्र भी विक्रियाके अर्थी नाहीं कलिपये है। तैसा ही दार्ष्टांत है। जो बाह्य पदार्थ शब्द रूप, गंध, रस, स्पर्श गुण द्रव्य हैं, ते जैसैं देवदत्तनामा पुरुष यज्ञदत्तनामा पुरुषकूं हाथ पकडि कहै, तैसैं नाहीं कहे हैं। मोकूं सुणि, मोकूं देखि, मोकूं सूंघि, मोकूं आस्वादि, मोकूं स्पर्शि, मोकूं जाणि ऐसैं अपने ज्ञानकरि आत्माकूं नाहीं प्रेरे हैं। बहुरि

आत्मा है सो भी जैसैं चुंबकपाषाणकरि खैंची लोहकी सूई पाषाणकैं जाय लगी है तैसैं अपने स्थानक प्रदेशनितैं छूटि तिनिकूं जाननेकूं नाहीं जाय है। तौ कहा है? वस्तूका स्वभावकैं परकरि उपजावनेकूं अशक्यपणा है तथा परकूं उपजावनेका असमर्थपणा है। बहुरि जैसैं शब्दादिककूं समीप नाहीं होतैं तिनिकूं आत्मा अपने स्वरूपही करि जाने है, तैसैं ही तिनिकूं समीप होतैं भी अपने स्वरूपहीकरि तिनिकूं जाने है, बहुरि अपने स्वरूप ही करि शब्दादिककूं जानता आत्माके ते शब्द आदिक वस्तुस्वभावहीतैं विचित्रपरिणतीकूं प्राप्त होते मनोहर तथा अमनोहर बाह्यपदार्थ किंचिन्मात्र भी विक्रियाके अर्थी नाहीं कल्पिये हैं। ऐसैं आत्मा है सो दीपककी ज्यौं परद्रव्यप्रति नित्य ही उदासीन हैं। ऐसी ही वस्तुकी मर्यादा है, तौऊ जो राग द्वेष उपजे है सो अज्ञान है।

भावार्थ—आत्मा शब्दकूं सुणिकरि, रूपकूं देखिकरि, गंधकूं सूंघिकरि, रसकूं आस्वादकरि, स्पर्शकूं स्पर्शिकरि, गुणद्रव्यकूं जाणिकरि भला बुरा मानिकरि राग द्वेष उपजावे है, सो यह अज्ञान है। जातैं ते शब्दादिक तौ जड पुद्गलद्रव्यके गुण हैं। सो आत्माकूं कछू कहे नाहीं जो हमकूं ग्रहण करो। अर आप भी अपना प्रदेशनिकूं छोडि तिनिकूं ग्रहण करनेकूं तिनिविषैं जाय नाहीं है। जैसैं तिनिकूं समीप नाहीं होतैं जाने है, तैसैं ही समीप होतैं जाने है। आत्माके विकारके अर्थि किंचिन्मात्र भी नाहीं है। जैसैं दीपक घटपटादिककूं प्रकाशै है, तैसैं आत्मा तिनिकूं जाने है, ऐसा वस्तूका स्वभाव है। तौऊ आत्मा राग द्वेष उपजावे है सो यह अज्ञान ही है। अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे है।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं, यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो, रागद्वेषमयीं भवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥२२॥

अर्थ—यह बोद्धा कहिये ज्ञानी है सो पूर्ण अर एक जो च्युत नाहीं होय अर शुद्ध—विकारतैं

रहित ऐसा जो ज्ञान तिस स्वरूप है महिमा जाकी ऐसा है। सो ऐसा ज्ञानी बोध्य कहिये ज्ञेय पदार्थ तिनितैं किछू भी विक्रियाकूं नाहीं प्राप्त होय है। जैसैं दीपक है सो प्रकाशनेयोग्य घटपट आदि पदार्थ हैं तिनितैं विक्रियाकूं प्राप्त नाहीं होय है, तैसैं। सो ऐसे वस्तूकी मर्यादाका ज्ञानकरि रहित है धिषणा कहिये बुद्धि जिनकी ऐसे भये संते ए अज्ञानी जीव अपनी स्वाभाविक उदासीनताकूं क्यौं छोडे हैं ? अर राग द्वेषमय क्यौं होय हैं ? ऐसा आचार्यने शोच किया है।

भावार्थ—ज्ञानका स्वभाव ज्ञेयकूं जाननेहीका है। जैसा दीपकका स्वभाव घटपट आदिककूं प्रकाशनेका है। यह वस्तुस्वभाव है। ज्ञेयकूं जाननेमात्रतैं ज्ञानमें विकार नाहीं होय है। अर ज्ञेयकूं जानिकरि भला बुरा मानि आत्मा रागी द्वेषी विकारी होय है। सो यह अज्ञान है। सो आचार्य शोच किया है—जो वस्तूका स्वभाव तौ ऐसे, अर यह आत्मा अज्ञानी होयकरि रागद्वेषरूप क्यौं परिणमे है ? अपनी स्वाभाविक उदासीनता अवस्थारूप क्यौं रहै नाहीं ? सो यह आचार्यका शोच युक्त है, जातैं जेतैं शुभ राग है तेतैं प्राणीनिकूं अज्ञानतैं दुःखी देखि करुणा उपजै तब शोच होय है। अब अगिले कथनकी सूचनिकारूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं विन्दंति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम्॥३०॥

अर्थ—ज्ञानी है ते कैसे हैं ? राग द्वेष जे विभाव तिनिकरि रहित है मह कहिये तेज जिनिका। बहुरि कैसे हैं ? नित्य ही अपना चैतन्यचमत्कारमात्र स्वभाव है ताकूं स्पर्शनेवाले हैं। बहुरि कैसे हैं ? पूर्वे किये जे समस्त कर्म अर आगामी होयगे जे समस्त कर्म तिनितैं रहित हैं। बहुरि कैसे हैं ? तदात्व कहिये वर्तमानकालमें आवै जो कर्मका उदय तातैं भिन्न हैं। ऐसैं ज्ञानी हैं ते अतिशयकरि अंगीकार किया जो चारित्र ताका जो विभव समस्त परद्रव्यका त्याग ताके बलतैं ज्ञानकी

सम्यक्प्रकार चेतना ताकूं अनुभवे हैं। कैसो है ज्ञानचेतना? चञ्चत् कहिये चिमकती जागती जो चैतन्यरूप ज्योति तिसमयी है। बहुरि कैसी ह? अपना ज्ञानरूप रस ताकरि सिंच्या है भुवन कहिये तीन लोक जीहि।

भावार्थ—जिनिका राग द्वेष गया अर अपने चैतन्य स्वभावका अंगीकार भया अर अतीत अनागत वर्तमान कर्मका ममत्व गया ऐसे ज्ञानी सर्व परद्रव्यतैं न्यारे होय चारित्रकूं अंगीकार करे हैं। ताके बलतैं कर्मचेतना अर कर्मफलचेतनातैं न्यारी जो अपनी चैतन्यके परिणमनस्वरूप ज्ञान-चेतना ताकूं अनुभवन करे हैं। इहां तात्पर्य यह जानना—जो पहलै तौ कर्मचेतना अर कर्मफल चेतनातैं भिन्न अपनी ज्ञानचेतनाका स्वरूप आगम अनुमान स्वसंवेदन—प्रमाणतैं जानै अर ताका श्रद्धान—प्रतीति दृढ करै सो यह तौ अविरत देशविरत प्रमत्त अवस्थामैं भी होय है। बहुरि जब अप्रमत्त अवस्था होय है, तब अपना स्वरूपहीका ध्यान करे है। तब ज्ञानचेतनाका जैसा श्रद्धान किया तिसविषैं लीन होय है। तब श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजाय साक्षात् ज्ञान-चेतनारूप होय है, ऐसैं जानना। अब इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं। तहां अतीत कर्मतैं ममत्व छोडै सो प्रतिक्रमण है; आगामी न करनेकी प्रतिज्ञा करै सो प्रत्याख्यान है, वर्तमानकर्म उदय आया ताका ममत्व छोडै सो आलोचना है, ऐसा चारित्रका विधान है, ताकूं कहे हैं। गाथा—

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥७५॥
कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावेण वज्झदि भविस्सं।
तत्तो णियत्तदे जो सो पक्कक्खाणं हवे चेदा ॥७६॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडिय अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेददि स खलु आलोयणं चेदा ॥७७॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चंपि जो पडिक्कमदि ।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ॥७८॥

कर्म यत्पूर्वकृतं शुभाशुभमनेकविस्तरविशेषं ।
तस्मान्निवर्तयत्यात्मानं तु यः स प्रतिक्रमणं ॥७५॥
कर्म यच्छुभमशुभं यस्मिंश्च भावे बध्यते भविष्यत् ।
तस्मान्निवर्तते यः स प्रत्याख्यानं भवति चेतयिता ॥७६॥
यच्छुभमशुभमुदीर्णं संप्रति चानेकविस्तरविशेषं ।
तं दोषं चेतयते स खल्वालोचनं चेतयिता ॥७७॥
नित्यं प्रत्याख्यानं करोति नित्यमपि यः प्रतिक्रामति ।
नित्यमालोचयति स खलु चरित्रं भवति चेतयिता ॥७८॥

आत्मख्यातिः—यः खलु पुद्गलकर्मविपाकभवेभ्यो भावेभ्यश्चेतयितात्मानं निवर्तयति स तत्कारणभूतं पूर्वकर्म प्रतिक्रामन् स्वयमेव प्रतिक्रमणं भवति । स एव तत्कार्यभूतमुत्तरं कर्म प्रत्याचक्षाणः प्रत्याख्यानं भवति । स एव वर्तमानकर्मविपाकमात्मनोऽत्यंतभेदेनोपलभमानः, आलोचना भवति । एवमयं नित्यं प्रतिक्रामन्, नित्यं प्रत्याचक्षाणो नित्यमालोचयंश्च पूर्वकर्मकार्येभ्य उत्तरकर्मकरणेभ्यो भावेभ्योत्यंतं निवृत्तः, वर्तमानं कर्मविपाकमात्मनोऽत्यंतभेदेनोपलभमानः स्वस्मिन्नेव खलु ज्ञानस्वभावे निरंतरचरणाच्चारित्रं भवति । चारित्रं तु भवन् स्वस्य ज्ञानमात्रस्य चेतनात् स्वयमेव ज्ञानचेतना भवतीति भावः ।

अर्थ—पूर्वें अतीतकालमें किये जे शुभ अशुभ ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार

विशेषरूप कर्म तिनितैं जो चेतयिता आत्मा अपने आत्माकूं निवर्तन करै छुडावै सो आत्मा प्रतिक्रमणस्वरूप है। बहुरि जो आगामी कालमैं कर्म शुभ तथा अशुभ जिस भावके होतैं बंधे है तिस अपने भावतैं जो चेतयिता निवृत्त होय छूटै सो आत्मा प्रत्याख्यानस्वरूप है। बहुरि जो वर्तमानकालमैं शुभ तथा अशुभ कर्म अनेक प्रकार ज्ञानावरण आदि विस्ताररूप विशेषनिकूं लिये उदय आया ताकूं दोषकूं जो चेतयिता चेतरूप भया चेतै, वेदै–अनुभवै, तिसका स्वामिपणा कर्तापणा छोडै सो आत्मा आलोचनास्वरूप है। ऐसैं जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करे है, नित्य प्रतिक्रमण करे है, नित्य आलोचना करे है सो चेतयिता चारित्रस्वरूप है।

टीका—जो आत्मा पुद्गलकर्मके उदयतैं भये भावनितैं अपने आत्माकूं निवर्तन करै, छुडावै सो आत्मा तिस भावकूं कारणभूत जो पूर्वं अतीतकालमैं किये कर्मकूं प्रतिक्रमणरूप करता संता आप ही प्रतिक्रमणस्वरूप होय है। बहुरि सो ही आत्मा पूर्वकर्मका कार्यभूत जो आगामी बंधेगा कर्म ताकूं प्रत्याख्यानरूप करता–त्यागता संता आप ही प्रत्याख्यानस्वरूप होय है। बहुरि सो ही आत्मा वर्तमान जो कर्मका उदय तातैं आपकूं अत्यंत भेदकरि अनुभवन करता संता प्रवर्तै सो आप ही आलोचनास्वरूप होय है। ऐसैं यह आत्मा नित्य प्रतिक्रमण करता संता, नित्य प्रत्याख्यान करता संता, नित्य आलोचना करता संता, पूर्वकर्मके कार्यरूप अर उत्तर आगामी कर्मके कारणरूप जो भाव तिनितैं अत्यंत निवृत्तिस्वरूप भया संता, अर वर्तमान जो कर्मका उदय तातैं आपकूं अत्यंत भेदकरि पावता संता अपना जो ज्ञानस्वभाव तिस ही विषैं निरंतर प्रवर्तनेतैं आप ही चारित्रस्वरूप होय है। बहुरि ऐसैं चारित्ररूप होता संता आपकूं ज्ञानमात्र चेतनेतैं अनुभवनेतैं आप ही ज्ञानचेतनास्वरूप होय है, ऐसा भाव है।

भावार्थ—इहां निश्चयचारित्र प्रधानकरि कथन है। तहां चारित्रमैं प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचनाका विधान है। तहां लग्या दोषतैं आत्माकूं निर्वर्तन करना सो तौ प्रतिक्रमण है। अर आगामी दोष लगावनेका त्याग करना सो प्रत्याख्यान है। अर वर्तमान दोषतैं आत्माकूं न्यारा

करना सो आलोचना है। सो निश्चय विचारिये तब तीनू कालसंबंधि कर्मनितैं आत्माकूं भिन्न जानना, श्रद्धना, अनुभवना ऐसे किये आत्मा ही प्रतिक्रमण है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही आलोचना है। तीनों स्वरूप निरंतर आत्माका अनुभवन सो ही चारित्र है। अर निश्चय-चारित्र है सो ही ज्ञानचेतनाका अनुभवन है। इस ही अनुभवनतैं साक्षात् ज्ञानचेतनास्वरूप केवलज्ञानमय आत्मा प्रगट होय है। अब आगै ज्ञानचेतना अर अज्ञानचेतना जो कर्मचेतना अर कर्मफलचेतना ताका स्वरूप प्रकट करे हैं। ताकी सूचनिकाका काव्य कहै हैं।

उपजातिछन्दः

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्धम्।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥२१॥

अर्थ—ज्ञानकी संचेतनाकरि ही ज्ञान है सो अत्यंत शुद्ध निरंतर प्रकाशे है। बहुरि अज्ञानकी चेतनाकरि बंध है सो दोडता संता ज्ञानकी शुद्धताकूं रोके है, न होने दे है।

भावार्थ—संचेतना कहिये जो जहां जिसतैं एकाग्र होय तिस ही ओर अनुभवनरूप स्वाद लिया करै सो तिस स्वरूपचेतना कहिये। सो जब ज्ञानहीतैं एकाग्र उपयुक्त होय तिस ही ओर चेत राखै सो तौ ज्ञानचेतना है। सो यातैं तौ ज्ञान अत्यंत शुद्ध होय प्रकाशे है, केवलज्ञान उपजि आवै है तब संपूर्ण ज्ञानचेतना नाम पावे है। बहुरि अज्ञान जो कर्म अर कर्मका फलरूप उपयोगकूं करना सो तिस ही ओर एकाग्र होय अनुभव करना सो अज्ञानचेतना है। सो यातैं कर्मका बंध होय है। सो ज्ञानकी शुद्धताकूं रोके है। अब इस कथनकूं गाथाकरि कहे हैं। गाथा—

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥७९॥

वेदंतो कम्मफलं मयेकदं जो दु मुणादि कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधादि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥८०॥
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो दु हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणोवि बंधादि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥८१॥

वेदयमानः कर्मफलमात्मानं यस्तु करोति कर्मफलं ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥७९॥
वेदयमानः कर्मफलं मया कृतं यस्तु जानाति कर्मफलं ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥८०॥
वेदयमानः कर्मफलं सुखितो दुःखितश्च भवति चेतयिता ।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥८१॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानादन्यत्रेदमहमिति चेतनं अज्ञानचेतना । सा द्विधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च । तत्र ज्ञानादन्यत्रेदमहं करोमीति चेतनं कर्मचेतना । ज्ञानादन्यत्रेदं वेदयेऽहमिति चेतनं कर्मफलचेतना । सा तु समरसापि संसारबीजं । संसारबीजस्याष्टविधकर्मणो बीजत्वात् । ततो मोक्षार्थिना पुरुषेणाज्ञानचेतनाप्रलयाय सकलकर्मसन्यासभावनां सकलकर्मफलसन्यासभावनां च नाटयित्वा स्वभावभूता भगवती ज्ञानचेतनैवैका नित्यमेव नाटयितव्या ।

तत्र तावत्सकलकर्मफलसन्यासभावनां नाटयति—

अर्थ—जो आत्मा कर्मका फलकूं वेदता संता कर्मफलकूं आपरूप ही करै मानै, सो फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है । बहुरि कर्मका फलकूं वेदता संता आत्मा तिस कर्मफलकूं ऐसैं जाने है यह मैं किया है सो फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है । बहुरि कर्मका फलकूं वेदता संता आत्मा है सो सुखी दुःखी होय है । सो चेतयिता फेरि भी दुःखका बीज ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारका कर्मकूं बांधे है ।

टीका—ज्ञानतैं अन्य जो अन्यभाव ताविषैं ऐसैं चेतै अनुभवै मानै, यह जो मैं हौं, सो अज्ञानचेतना है। सो दोय प्रकार है। कर्मचेतना कर्मफलचेतना। तहां ज्ञानसिवाय अन्य भावनिविषैं ऐसैं चेतै अनुभवै मानै, जो याकूं मैं करूं हौं, सो तौ कर्मचेतना है। बहुरि ज्ञानसिवाय अन्य भावनिविषैं एसैं चेतै अनुभवै मानै जो याकूं मैं वेदूं हौं, भोगऊं हौं, सो कर्मफल चेतना है। सो यह दोऊ ही दोऊ प्रकारकी अज्ञानचेतना है। सो संसारका बीज है। जातैं संसारका बीज अष्टप्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म है। ताका यह अज्ञानचेतना बीज है। यातैं कर्म उपजे है बंधे है। तातैं जो मोक्षका अर्थी पुरुष है ताकरि अज्ञानचेतनाका नाशके अर्थी समस्तकर्मकी संन्यासभावना कहिये पटकी देणेकी भावनाकूं नचायकरि नृत्य करायकरि अर फेरि समस्त कर्मके फलकी संन्यासकी भावना त्यागकी भावनाकूं नचायकरि अर अपना स्वभावभूत जो ज्ञानवती भगवती एक ज्ञानचेतना ताहीकूं निरंतर नृत्य करावने योग्य है। तहां प्रथम ही सकलकर्मके संन्यासकी भावनाकूं नृत्य करावे हैं। ताका कलशरूप काव्य है।

आर्याछन्दः

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः। परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३२॥

अर्थ—अतीत अनागत वर्तमानकालसंबंधी सर्व ही कर्म है ताही कृत, कारित, अनुमोदना, अर मन वचन कायकरि परिहारकरि छोडिकरि उत्कृष्ट निष्कर्म अवस्था है, ताही मैं अवलंबन करौ हौं। ऐसैं सर्व कर्मका त्याग करनेवाला ज्ञानी प्रतिज्ञा करै है। अब सर्वकर्मका त्याग करनेका कृत कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि गुणचास भंग होय है। तहां अतीतकालसंबंधी कर्मके त्याग करनेकूं प्रतिक्रमण कहिये। ताके प्रथम ही गुणचास भंग करि कहे हैं। तहां टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति २ यदहमकार्षं यद-

चीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३ यदहमकार्षं यदचीकरं
यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंत-
मप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ५ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति ६ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे
दुष्कृतमिति ७ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ८ यदहमकार्षं यत्कुर्वं-
तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ९ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं
समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १० यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च वाचा च
तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ११ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृत-
मिति १२ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति १३ यदहमका-
र्षं यदचीकरं मनसा कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १४ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च
कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १५ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या
मे दुष्कृतमिति १६ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १७ यदहमकार्षं यत्कुर्वंत-
मप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १८ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १९ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २०
यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २१ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं
समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २२ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २३
यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २४ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं सम-
न्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २५ यदहमकार्षं यदचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २६ यदहम-
कार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २७ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं
कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २८ यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २९ यदची-
करं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ३० यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन
च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३१ यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३२ यदहमची-
करं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३३ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे

दुष्कृतमिति ३४ यदहमकार्षं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३५ यदहमचीकरं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३६ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३७ यदहमकार्षं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३८ यदहमचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३९ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४० यदहमकार्षं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४१ यदहमचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४२ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४३ यदहमकार्षं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४४ यदहमचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४५ तत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४६ यदहमकार्षं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४७ यदहमचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४८ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४९ ।

अर्थ—प्रतिक्रमण करनेवाला कहे है–जो मैं दुष्कृत कहिये पापकर्म अतीतकालमैं किया था, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया था, अर अन्यकूं करतेकूं अनुमोद्या था भला जाण्या था, मनकरि, वचनकरि, कायकरि, सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ ।

भावार्थ–पापकर्मकूं संसारका बीज जाणि हेयबुद्धि आई तब ममत्व छोड्या, यह ही मिथ्या करना । ऐसैं यह एक भंग भया । सो याकी समस्या ऐसी—जो कृत कारित अनुमोदना ए तीन है, ताका तो तीनका अंक स्थापिये । बहुरि मन वचन काय ए भी तीन यामैं लागै । तातैं याका दूसरा तीया स्थापिये तब तेतीसका अंक भया । सो इस भंगकूं तेतीसका है, ऐसा नाम कहिये। ३३।१। ऐसे ही टीकामें अन्यभंगनिका संस्कृत पाठ है, तिनिकी वचनिका करि लिखिये है । जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । ऐसा दूसरा भंग है । इहां समस्या—कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है । अर मन अर वचन दोय ही लागै । काय न लागै। तातैं दोयका अंक थापिये, तब तीया अर दूवा ऐसे बत्तीसका भंग नाम भया । ३२।२ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं कीया, अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या,

मनकरि अर कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा तीसरा भंग है इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही भया। अर मनकरि अर कायकरि ऐसैं दोय लागै। यातैं तीया दूवा ऐसैं याका नाम बत्तीसका भंग भया। इहां वचन न लाग्या। ३२। ३। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भी भला जाण्या, वचनकरि अर कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा चौथा भंग है। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है। अर वचन अर काय दोय लागै। मन न लाग्या। तातैं दूवा भया। तातैं याकूं भी बत्तीसका भंग कहिये। इहां ताईं बत्तीसके तीन भंग भये। ४।३२।

बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमें मैं किया अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया, अर करतेकूं भला जाण्या, मनहीकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा पांचमा भंग भया। यहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर एक मन ही लाग्या ताका एका भया। वचन काय न लाग्या। तातैं याका नाम इकतीसका भंग कह्या। ५।३१। बहुरि जो मैं अतीतकालमैं पापकर्म किया अर अन्यकूं प्रेरणा करि कराया अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा छट्ठा भंग भया। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर वचन ही एक लाग्या, मन काय न लाग्या। तातैं तीया एका ऐसैं इकतीसका भंग नाम भया। ६।३१। बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह सातवा भंग भया। इहां कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही है अर काय एक ही लाग्या। मन वचन न लाग्या। तातैं तीया एका ऐसा इकतीसका भंग नाम भया। ७।३१। ऐसे इकतीसके भी तीन ही भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर जो अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, मन वचन काय-करि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह आठवा भंग भया। इहां कृत कारित ए दोय

ही लगाये, अर मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं दूवा तीया ऐसा समस्यामैं तेईसका भंग नाम भया।८।२३। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या, मन वचन कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा नवमा भंग है। इहां कृत अनुमोदना ए दोय ही लीये। अर मन वचन काय तीनूं ही लागै। तातैं दूवा तीया ऐसी तेईसकी समस्या भई। तातैं तेईसका भंग नाम पाया।९।२३। बहुरि जो पापकर्म मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मन वचन कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह दशमा भंग है। इहां कारित अनुमोदना दोय ही लिये अर मन वचन काय तीनूं ही लागै। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया।१०।२३। ऐसे तेईसके भी तीन ही भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मन वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा यह ग्यारहमा भंग भया। यामें कृत कारित दोय लिये। अर मन वचन दोय लागे। तातैं दोय दोय ऐसी बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम कहिये। ११।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा बारवा भंग है। यामैं कृत अनुमोदना दोय लिये। मन वचन ए दोय लागै। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये।१२।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरि कराया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। ऐसा तेरवा भंग है। यामैं कृत कारित दोय लीये। मन वचन दोय लागै। तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम पाया।१३।२२। बहुरि जो मैं अतीतकालमें पापकर्म किया, अर अन्यकूं प्रेरि कराया मनकरि कायकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ। यह चौदवां भंग भया। यामैं कृत कारित दोऊ लिये। मन काय दोय लागै। तातैं बाइसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये।१४।२२। बहुरि जो पापकर्म मैं किया अतीतकालमैं, अर करतेकूं अन्यकूं भला जाण्या मनकायकरि ऐसा पंदरवां भंग है। यामैं कृत

अनुमोदना लिया । अर मन काय लागै । तातैं बाईसका भंग कहिये ।१५।२२ । बहुरि जो पापकर्म मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जान्या मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । ऐसा सोलवां भंग है । यामैं कारित अनुमोदना लिया। मन काय लागा । तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग नाम है । १६।२२ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह सतरावां भंग है। यामैं कृत कारित लिया । वचन काय लाग्या । तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये । १७।२२ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह अठारवा भंग है । यामैं कृत अनुमोदना लिया । वचन काय लागै । तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये । १८ २२ । बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि मैं कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह उगणीसवां भंग है । यामैं कारित अनुमोदना ए दोय लिये । अर वचन काय लागा । तातैं बाईसकी समस्यातैं बाईसका भंग कहिये । १९।२२ । ऐसे बाईसकी समस्याके नव भंग भये ।

बहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया एक मनहिकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह वीसवा भंग है । यामैं कृत कारित दोय लिया । अर एक मन ही लागा । तातैं दूवा एकातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये । २०।२१ । बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह इकईसवां भंग है । यामैं कृत अनुमोदना ए दोय लिये। एक मन लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये ।।२१।२१।। बहुरि जो पापकर्म किया मैं अतीतकालमैं अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि, सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ । यह बाईसवां भंग है । यामैं कारित अनुमोदना ए दोय लिये । अर एक

मन लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंगनाम है ॥२२।२१॥ वहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकालमैं कीया । अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ । यह तेईसवां भंग है । यामैं कृत कारित ए दोय लिये । अर वचन ही लागा ताका दूवा एका ऐसा इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये ।२३।२१ । वहुरि जो मैं पापकर्म अतीतकाल मैं किया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह चौवीसवां भंग है । यामैं कृत अनुमोदना ए दोय लिये । अर एक वचन ही लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये । २५।२१ । वहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर करतेकूं अन्यकूं ते भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह पचीसवां भंग भया । यामैं कारित अर अनुमोदना ए दोय लिये । अर एक वचन ही लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग भया । २५।२१ । वहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया अर अन्यकूं प्रेरिकरि कराया कायकरि सो मेरा पापकर्म मिथ्या होऊ । यह छवीसवां भंग है । यामैं कृत कारित दोय लिये । अर एक काय लगाया । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग कहिये । २६।२१ । वहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं किया, अर अन्य करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पाप कर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह सताईसवां भंग है । यामैं कृत अनुमोदना दोय लीये । अर एक काय लागा । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंगनाम कहिये ।२७।२१ । वहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया, अर अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह अठाईसवां भंग है । यामैं कारित अनुमोदना ए दोय ले, एक काय लगाया । तातैं इकईसकी समस्यातैं इकईसका भंग नाम है । २८।२१। ऐसे इकईसके नव भंग भये ।

वहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया, मनकरि वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह गुणतीसवां भंग है । यामैं कृत एकही ले, मन वचन काय तीनूं लगाये ।

तातैं तेराकी समस्यातैं तेराका भंग कहिये ॥२९।१३॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनवचनकायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तीसका भंग है। यामैं कारित एक ले, मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं एक तीयातैं तेराकी समस्यातैं तेराका भंग कहिये ॥३०।१३॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह इकतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं एका तीया तेराकी समस्यातैं तेराका भंग है ॥३१।१३॥ ऐसे तेराके समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया मनवचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह बत्तीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३२।१२॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीत कालमैं अन्यकूं प्रेरकरि कराया मनकरि वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तेतीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं एका दुवा ऐसी बारहकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३३।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि वचनकरि सो यह पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चौतीसवां भंग भया। यामैं अनुमोदना एक ले, मन वचन ए दोय लगाये। तातैं एका दूवा एसा बारहका भंग कहिये ॥३४।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह पैंतीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, मन अर काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्यातैं बाराका भंग कहिये ॥३५।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह छतीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, मन अर काय ए दोय लगाये तातैं बारहकी समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३६।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह

सैतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, मन अर काय लगाये। तातैं वारहकी समस्यातैं वारहका भंग कहिये ॥३७।१२॥ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकाल मैं किया वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह अठतीसवां भंग है। यामैं कृत एक ले, वचन अर काय दोय लगाये। तातैं बारहको समस्यातैं बारहका भंग कहिये ॥३८।१२॥ बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचन कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह गुणतालीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, वचन काय दोय लगाये, तातैं वारहको समस्यातैं वारहका भंग कहिये ॥३९।१२॥ वहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चालीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एक ले, वचन अर काय ए दोऊ लगाये। तातैं वारहकी समस्यातैं वारहका भंग कहिये ॥४०।१२॥ ऐसैं वारहकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया मनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह इकतालीसवां भंग है। यामैं एक कृत ले, एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ॥४१।११॥ वहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया मनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह बियालीसवां भंग है। यामैं एक कारित ले, एक मन लगाया, तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ॥४२।११॥ वहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या मनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह तियालिसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदना ले, एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग भया ४३।११ बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं किया वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह चवालीसवां भंग है। यामैं एक कृत ले, एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये। ४४।११। वहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया वचनकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ। यह पैतालीसवां भंग है। यामैं कारित एक ले, एक

वचन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ।४५।११। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या वचनकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह छियालीसवां भंग है । यामैं एक अनुमोदना ले एक वचन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४६।११ । बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमैं मैं किया कायकरि सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह सैंतालीसवां भंग है यामैं एक कृत ले, एक काय लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४७।११। बहुरि जो पापकर्म मैं अतीतकालमैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराया कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह अठतालीसवा भंग है । यामैं एक कारित ले, एक काय लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये ।४८।११। बहुरि जो पापकर्म अतीतकालमें मैं अन्यकूं करतेकूं भला जाण्या कायकरि, सो पापकर्म मेरा मिथ्या होऊ । यह गुणचासवां भंग है । यामें एक अनुमोदना ले, एक काय लगाया । तातैं एका एका ऐसैं ग्यारहकी समस्यातैं ग्यारहका भंग कहिये । ४९।११। ऐसे ग्यारहके नव भंग भये । ऐसे गुणचास भंग हैं । तिनिमैं तेतीसकी समस्याका एक १ । बत्तीसका तीन ३ । इकतीसका तीन ३ । तेईसका तीन ३ । बाईसका नव ९ । इकईसका नव ९ । तेराका तीन ३ । बारहका नव ९ । ग्यारहका नव ९ । ऐसे सब मिलि गुणचास भये ।

इनि गुणचास भंगनिका संक्षेपपाठ ऐसा जानना—कृत कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि । ३३ । ए तेतीसकी समस्याका भंग । १ । कृत कारित अनुमोदना मन वचनकरि । ३२ । कृतकारित अनुमोदना मन कायकरि ३२ । कृत कारित अनुमोदना वचनकायकरि ३२ । ए तीन बत्तीसकी समस्याका ३ । कृत कारित अनुमोदना मनकरि । ३१ । कृत कारित अनुमोदना वचनकरि । ३१ । कृत कारित अनुमोदना कायकरि । ३१ । ए इकतीसकी समस्याका तीन । ३ । कृत कारित मन वचन कायकरि । २३ । कृत अनुमोदना मन वचन कायकरि । २३ । कारित अनुमोदना मन वचन कायकरि । २३। ए तेईसकी समस्याका तीन ।३। कृत कारित मन

वचनकरि ।२२। कृत अनुमोदना मन वचनकरि । २२ । कारित अनुमोदना मन वचनकरि ।२२। कृत कारित मनकायकरि ।२२। कृत अनुमोदना मनकायकरि ।२२। कारित अनुमोदना मनकायकरि ।२२। कृत कारित वचनकायकरि । २२ । कृत अनुमोदना वचनकायकरि ।२२। कारित अनुमोदना वचन कायकरि ।२२। ए नव बाईसको समस्याको ।९। कृत कारित मनकरि ।२१। कृत अनुमोदना मनकरि ।२१। कारित अनुमोदना मनकरि ।२१। कृत कारित वचनकरि ।२१। कृत अनुमोदना वचन करि ।२१। कारित अनुमोदना वचनकरि ।२१। कृत कारित कायकरि । २१ । कृत अनुमोदना कायकरि । २१ । कारित अनुमोदना कायकरि । २१ । ए नव इकईसकी समस्याका है । ९ । कृत मन वचन कायकरि । १३ । कारित मन वचन कायकरि । १३ । अनुमोदना मन वचन कायकरि ।१३। ए तेराकी समस्याका तीन । ३ । कृत मन वचनकरि । १२ । कारित मन वचनकरि बारह ।१२। अनुमोदना मन वचनकरि ।१२। कृत मनकायकरि । १२ । कारित मनकायकरि ।१२। अनुमोदना मनकायकरि । १२ । कृत वचनकायकरि ।१२। कारित वचनकायकरि । १२ । अनुमोदना वचनकायकरि ।१२। ए नव बाराकी समस्याका है । ९ । कृत मनकरि । ११ । कारित मनकरि ।११। अनुमोदना मनकरि ।११। कृत वचनकरि ।११। कारित वचनकरि ।११। अनुमोदना वचनकरि ।११। कृत कायकरि ।११। कारित कायकरि ।११। अनुमोदना कायकरि ।११। ए नव ग्याराकी समस्याका है । ९ । ऐसे तेतीसका एक ।१। बत्तीसका ३ । इकतीसका ३ । तेईसका ३ । बाईसका ९ । इकईसका ९ । तेराका ३ । बाराका ९ । ग्याराका ९ । सब मिलि गुणचास भये । अब इस कथनका कलशरूप काव्य है सो लिखिये है ।

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य । आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३३॥

अर्थ—जो मैं मोहतैं अज्ञानतैं, अतीतकालविषैं कर्म किये तिनि समस्तहीकूं प्रतिक्रमणरूपकरि अर समस्त कर्मतैं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं आपहीकरि निरंतर वर्तौं हौं। ऐसैं ज्ञानी अनुभव करै ।

भावार्थ—अतीतकालमें किये कर्मका गुणचास भंगरूप मिथ्याकार प्रतिक्रमणकरि ज्ञानी ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं लीन होय निरंतर अनुभव करै। ताका यह विधान है। मिथ्या कहनेका प्रयोजन यहु जो जैसैं कोई पहलै धन कमाय घरमे धरचा था। पीछे तासूं ममत्व छोडया। तब ताका भोगनेका अभिप्राय नाहीं। कमाया था जैसा न कमाया। तैसैं कर्म बांध्या था, ताकूं अहित जानि ममत्व छोडया। ताका फलमें लीन न होयगा, तब बांध्या तैसा न बांध्या मिथ्या ही है। ऐसा जानना। ऐसा प्रतिक्रमणकल्प है। अब आलोचनाकल्प है। तहां संस्कृत टीका-का पाठ ऐसा—

न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति २ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति ३ करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा कायेन चेति ४ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ५ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ६ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ७ न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ८ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ९ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १० न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा चेति ११ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति १३ न करोमि न कारयामि मनसा च कायेन चेति १४ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १५ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १६ न करोमि न कारयामि वाचा च कायेन चेति १७ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १८ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १९ न करोमि न कारयामि मनसा चेति २० न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २१ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २२ न करोमि न कारयामि वाचा चेति २३ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २४ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २५ न करोमि न कारयामि कायेन चेति २६ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २७ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २८ न

करोमि मनसा च वाचा च कायेन चेति २९ न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३१ न करोमि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३२ न कारयामि मनसा च वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति ३४ न करोमि मनसा च वाचा चेति ३५ न कारयामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करोमि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारयामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति ४० न करोमि मनसा चेति ४१ न कारयामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ४३ न करोमि वाचा चेति ४४ न कारयामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ४६ न करोमि कायेन चेति ४७ न कारयामि कायेन चेति ४८ कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ४९ ।

याका अर्थ—यामैं वर्तमान कर्तापणाका निषेध है। जो मैं कर्मकूं न करौ हौं, न अन्यकूं प्रेरि कराऊं हौं, न अन्यकूं कर्ताकूं भी भला जानूं हौं, मनकरि वचनकरि कायकरि। ऐसा प्रथम भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन काय लगाये। तातैं तीन-तीनका अंकको समस्यातैं तेतीसका भंग कहिये। १।३३। ऐसे ही अन्यभंगनिके संस्कृत पाठ हैं; तिनिकी वचनिका लिखिये। तहां—वर्तमान कर्मकूं मैं न करौ हौं, न अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं हौं, न अन्यकूं करतेकूं भला जाणूं हौं, मनकरि वचनकरि। ऐसा दूसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं तीया दुवा ऐसैं बत्तीसकी समस्याका भंग कहिये।२।३२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करौ हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा तीसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदनापरि मन काय लगाये। तब बत्तीसकी समस्याका भंग भया।३।३२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करौ हौं, अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं, भला न जाणूं हौं वचनकरि कायकरि। ऐसा चौथा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि वचन काय ए दोय लगाये तब बत्तीसकी समस्याका भंग भया। ४।३२। ऐसैं बत्तीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला न जाणूं हौं मनकरि ऐसा पांचवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक मन लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग भया ॥५।३१॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं वचनकरि, ऐसा छठा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक वचन लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग कहिये ॥६।३१॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं कायकरि, यह सातमा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक काय लागा। तातैं इकतीसकी समस्याका भंग भया। ७।३१॥ ऐसैं इकतीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह आठवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग कहिये ॥८।२३॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह नवमां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया ॥९।२३॥ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, यह दशमा भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्याका भंग भया ॥१०।२३॥ ऐसैं तीन भंग तेईसकी समस्याके भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, मनकरि वचनकरि, ऐसा ग्यारवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये तातैं बाईसकी समस्याका भंग भया। ११।२२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं अन्य करतेकूं भला नाही

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि, यह इकईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२१।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं कराऊं नाहीं हौं, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि, यह बाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२२।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं वचनकरि, यह तेईसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एकवचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२३।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं करूं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं वचनकरि ऐसा चोईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। ऐसी इकईसकी समस्या भई २४।२१ बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं, वचनकरि ऐसा पचीसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२५।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं कायकरि, ऐसा छवीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२६।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं, कायकरि, ऐसा सताईसवां भङ्ग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२७।२१। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं, अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं कायकरि, ऐसा अठाईसवां भङ्ग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२८।२१। ऐसे इकईसके नव भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई॥२९।१३॥ बहुरि

वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि कराऊं नाहीं हौं मन वचन कायकरि, ऐसा तीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई ।३०।१३। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं अनुमोदूं नाहीं हौं मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा इकतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई ।३१।१३। ऐसे तेराकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि वचनकरि, ऐसा बत्तीसका भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३२।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं नाहीं कराऊं हौं मनकरि वचनकरि, ऐसा तेतीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३३।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं करताकूं मैं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि वचनकरि ऐसा चौतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३४।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि कायकरि ऐसा पैंतीसवां भंग है। यामैं कृत एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३५।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा छत्तीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३६।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि कायकरि, ऐसा सैंतीसवां भंग है। यामैं अनुमोदना एकपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३७।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं वचनकरि कायकरि ऐसा अठतीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि वचन काय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई ।३८।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई। ३९।१२। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला

नाहीं जानूं हौं, वचनकरि कायकरि, ऐसा चालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई। ४०।१२। ऐसे नव भंग बारहके भये।

बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं मनकरि, ऐसा इकतालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक मन लागा। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४१।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं अन्यकूं प्रेरि मैं नाहीं कराऊं हौं, मनकरि, ऐसा बियालीसवां भंग है। यामैं कारित एकपरि एक मन लागा तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४२।११। बहुरि वर्तमान कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं मनकरि ऐसा तियालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक मन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४३।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं वचनकरि, ऐसा चवालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि वचन एक लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४४।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊं हौं वचनकरि, ऐसा पैंतालीसवां भंग। यामैं एक कारितपरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४५।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूं हौं वचनकरि, ऐसा छियालीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४६।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं नाहीं करूं हौं कायकरि, ऐसा सैंतालीसवां भङ्ग भया। यामैं एक कृतपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई।४७।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊं हौं कायकरि, ऐसा अठतालीसवां भङ्ग है। यामैं एक कारितपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४८।११। बहुरि वर्तमानकर्मकूं मैं अन्यकूं करताकूं भला नाहीं जानूं हौं कायकरि, ऐसा गुणचासवां भङ्ग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४९।११। ऐसैं ग्यारहकी समस्याके नव भङ्ग भये। ऐसे आलोचनाके गुणचास भंग हैं। इनिमैं तेतीसकी समस्याका एक १। बत्तीसका तीन ३। इकतीसका तीन ३। तेईसका तीन ३। बाईसका नव ९। इकई—

सका नव ९ । तेराका तीन ३ । बाराका नव ९। ग्याराका नव ९ । ऐसैं सब मिलि गुणचास भये । अब याके अर्थका कलशरूप काव्य है ।

आर्याछन्दः

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य । आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३४॥

इत्यालोचनाकल्पः समाप्तः ।

अर्थ—निश्चयचारित्रकूं अंगीकार करनेवाला कहे है। जो मोहके विलासकरि फैल्या यह उदयकूं प्राप्त होता जो वर्तमानकर्म ताकू समस्तकूं आलोचनामैं लेकरि समस्तकर्मसूं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं मैं आपहीकरि निरंतर वर्तो हौं ।

भावार्थ—वर्तमानकालमैं कर्मका उदय आवै, ताकूं ज्ञानी ऐसे विचारे है। जो पूर्वे बांध्या था ताका यह कार्य है। मेरा तौ यह कार्य नाहीं मैं याका कर्ता नाहीं। मैं तौ शुद्धचैतन्यमात्र आत्मा हौं। ताकी दर्शनज्ञानरूप प्रवृत्ति है। ताकरि या उदय भये कर्मका देखने जाननेवाला हौं। मेरा स्वरूपहीमैं मैं वर्तौं हौं। ऐसा अनुभवन करना ही निश्चयचारित्र है। ऐसैं आलोचनाकल्प समाप्त किया। आगैं प्रत्याख्यानकल्प कहे हैं। ताकी टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति २ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति ५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्य समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ७ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा वाचा च कायेन चेति ८ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनमा च वाचा च कायेन च ९ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १० न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च वाचा चेति ११ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति १३ न

करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति १४ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १५ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा च कायेन चेति १७ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १८ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति १९ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा चेति २० न करिष्यामि न कुर्वंतमप्मयन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति २१ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति २२ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा चेति २३ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २४ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि कायेन चेति २६ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २७ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २८ न करिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति २९ न कारयिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं जनं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा कायेन चेति ३१ न करिष्यामि मनसा वाचा चेति ३२ न कारयिष्यामि मनसा वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा चेति ३४ न करिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३५ न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४० न करिष्यामि मनसा चेति ४१ न कारयिष्यामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति ४३ न करिष्यामि वाचा चेति ४४ न कारयिष्यामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ४६ न करिष्यामि कायेन चेति ४७ न कारयिष्यामि कायेन चेति ४८ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ४९ ।

याका अर्थ—प्रत्याख्यान करनेवाला कहे है, जो आगामी कालविषैं कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा, मनकरि वचनकरि कायकरि । ऐसा प्रथम भंग है । यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन काय ए तीनूं लगाये । तातैं तीया तीया तेतीसकी समस्याका भंग भया । १।३३ । ऐसैं ही अन्य भंगनिका टीकामैं संस्कृतपाठ भी है तिनिकी वचनिका लिखिये हैं । आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा मनकरि वचन-

करि, ऐसा दूसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। २।३२। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा तीसरा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदनाका तौ तीया ही भया। अर मनकरि अर कायकरि ऐसे दोय लागे। तातैं तीया दूवा। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। ३।३२। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अर अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं नाहीं अनुमोदूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा चौथा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बत्तीसकी समस्या भई। ४।३२। ऐसें बत्तीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि, ऐसा पांचवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक मन लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ५।३१। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि, ऐसा छठा भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक वचन लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ६।३१। बहुरि आगामी कालके कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि, ऐसा सातवां भंग है। यामैं कृत कारित अनुमोदना इनि तीननिपरि एक काय लगाया। तातैं इकतीसकी समस्या भई। ७।३१। ऐसे इकतीसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, आठवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई। ८।२३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं करतेकूं

भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि ऐसा नवमां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई।९।२३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि ऐसा दसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेईसकी समस्या भई।१०।२३। ऐसे तेईसकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि ऐसा ग्यारवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।११।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि ऐसा बारवां भंग है यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१२।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचनकरि, ऐसा तेरवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन वचन लगाये बाईसकी समस्या भई।१३।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि कायकरि ऐसा चौदवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि मन अर काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१४।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्य करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा पंदरवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१५।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा, मनकरि कायकरि ऐसा सोलवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि मन काय ए दोय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई।१६।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं करा-

ऊंगा वचनकरि कायकरि ऐसा सतरावां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि वचन काय लगाये। तातैं बाइसकी समस्या भई। १७।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाही जानूंगा वचनकरि कायकरि ऐसा अठारवां भंग भया। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि वचन काय लगाये। तातैं बाईसकी समस्या भई। १८।२२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा वचनकरि कायकरि ऐसा उगणीसवां भंग भया। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि वचन काय ए दोय लगाये। तातैं बाइसकी समस्या भई। १९।२२। ऐसे बाई-सकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि, ऐसा वीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २०।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि ऐसा इकईसवां भंग है। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि मन एक लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २१।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि ऐसा बाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना इनि दोयपरि एक मन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २२।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि ऐसा तेईसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २३।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि ऐसा चोईसवां भग है यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयनिपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २४।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला भी नाहीं जानूंगा वचनकरि ऐसा पचीसवां भंग है। यामैं कारित

अनुमोदना इनि दोयपरि एक वचन लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २५।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा कायकरि ऐसा छवीसवां भंग है। यामैं कृत कारित इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २६।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा सत्ताईसवां भंग भया। यामैं कृत अनुमोदना इनि दोयपरि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई।२७।२१। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा, अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा अठाईसवां भंग है। यामैं कारित अनुमोदना ईनि दोय-परि एक काय लगाया। तातैं इकईसकी समस्या भई। २८।२१। ऐसे इकईसकी समस्याके नव भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतीसवां भंग है। यामैं कृत एकपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई।२९।१३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि कायकरि, ऐसा तीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेराकी समस्या भई। ३०।१३। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि वचन-करि कायकरि ऐसा इकतीसवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि मन वचन काय तीनूं लगाये। तातैं तेरहकी समस्या भई। ३१।१३। ऐसे तेराकी समस्याके तीन भंग भये।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं न करूंगा मनकरि वचनकरि ऐसा बत्तीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बाराकी समस्या भई।३२।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि वचनकरि ऐसा तेतीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि मन वचन दोय लगाये। तातैं बारहकी समस्या भई।३३।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं नाहीं अनुमोदूंगा मनकरि वचनकरि, ऐसा चौतीसवां भंग है। यामैं एक

अनुमोदनापरि मन वचन दोय लगाये । तातैं बाराकी समस्या भई ।३४।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा पैंतीसवां भंग है । यामैं एक कृतपरि मन काय ए दोय लगाये । तातैं बाराकी समस्या भई ।३५।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि कायकरि, ऐसा छत्तीसवां भंग है । यामैं एक कारितपरि मन काय ए दोय लगाये । तातैं बारहकी समस्या भई ।३६।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि कायकरि, ऐसा सैंतीसवां भंग है । यामैं एक अनुमोदनापरि मन काय ए दोय लगाये । तातैं बारहकी समस्या भई ।३७।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं न करूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा अठतीसवां भंग है । यामैं एक कृतपरि वचन काय ए दोय लगाये । तातैं बारहकी समस्या भई ।३८।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा गुणतालीसवां भंग है । यामैं एक कारितपरि वचन काय ए दोय लगाये । तातैं बारहकी समस्या भई ।३९।१२। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि कायकरि, ऐसा चालीसवां भंग है । यामैं एक अनुमोदनापरि वचन काय ए दोय लगाये । तातैं बारहकी समस्या भई ।४०।१२। ऐसे नव भंग बारहकी समस्याके भये ।

बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा मनकरि ऐसा इकतालीसवां भंग है । यामैं एक कृतपरि एक मन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४१।११। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं मैं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा मनकरि ऐसा बियालीसवां भंग है । यामैं एक कारितपरि एक मन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४२।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा मनकरि, ऐसा तियालीसवां भंग है । यामैं एक अनुमोदनापरि एक मन लगाया । तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४३।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा वचनकरि, ऐसा चवालीसवां भंग है । यामैं एक कृतपरि एक वचन लगाया । तातैं ग्यारहकी सम-

स्या भई ।४४।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा वचनकरि, ऐसा पैंतालीसवां भंग है। यामैं एक कारितपरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४५।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा वचनकरि, ऐसा छियालीसवां भंग है यामैं एक अनुमोदनापरि एक वचन लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४६। ११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं नाहीं करूंगा कायकरि ऐसा सैंतालीसवां भंग है। यामैं एक कृतपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४७।११। बहुरि आगामी कर्मकूं मैं अन्यकूं प्रेरिकरि नाहीं कराऊंगा कायकरि, ऐसा अठतालीसवां भंग है। यामैं कारितपरि एक काय लगाया। तातैं ग्यारहकी समस्या भई ।४८।११। बहुरि आगामी कर्मकूं अन्यकूं करतेकूं भला नाहीं जानूंगा कायकरि ऐसा गुणचासवां भंग है। यामैं एक अनुमोदनापरि एक काय लगाया तातैं ग्यारहकी समस्या भई। ४९।११। ऐसैं ग्यारहकी समस्याके नव भंग भये। ऐसे गुणचास भंग प्रत्याख्यानके भये। तिनिमैं तेतीसकी समस्याका एक ।१। बत्तीसके तीन ।३। इकतीसके तीन ।३। तेईसके तीन ।३। बाईसके नव ।९। इकईसके नव ।९। तेराके तीन ।३। बाराके ।९। ग्याराके ।९। ऐसैं सब मिलि गुणचास भये। अब इस अर्थका कलशरूपकाव्य कहे हैं।

आर्याछन्दः

प्रत्याख्याय भविष्यत् कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥३५॥

इति प्रत्याख्यानकल्पः समाप्तः।

अर्थ—प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहे है। जो आगामी समस्त कर्मनिकूं मैं प्रत्याख्यानरूप त्याग करि, अर नष्ट भया है मोह जाका ऐसा भया संता कर्मसूं रहित चैतन्यस्वरूप जो आत्मा ताविषैं आपहीकरि वर्तूं हौं।

भावार्थ—निश्चयचारित्रमें प्रत्याख्यानका विधान ऐसा है, जो समस्त आगामी कर्मसूं रहित अपना शुद्धचैतन्यकी प्रवृत्तिरूप जो शुद्धोपयोग ताविषैं वर्तना है। सो ज्ञानी आगामी समस्त

कर्मका प्रत्याख्यान करि अपना चैतन्यस्वरूपविषैं वर्ते है। इहां तात्पर्य ऐसा जानना—जो व्यवहारचारित्रमें तो ज्यौं प्रतिज्ञामैं दोष लागे ताका प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान होय हैं। अर इहां निश्चयचारित्रका प्रधानपणें कथन है। सो शुद्धोपयोगसूं विपरीत समस्त ही कर्म आत्माके दोषस्वरूप है। तिनि सर्व ही कर्मचेतनास्वरूप परिणामका ज्ञानी तीन कालके कर्मका प्रतिक्रमण आलोचना प्रत्याख्यानकरि समस्तकर्म चेतनासूं न्यारा अपना शुद्धोपयोगस्वरूप आत्माका ज्ञान श्रद्धान करि, अर तिसमैं थिर होनेका विधान करि निष्प्रमाद दशाकूं प्राप्त होय। श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजावनेके सन्मुख होय है। यह ज्ञानीका कार्य है। ऐसा प्रत्याख्यानकल्प समाप्त किया। आगें सकलकर्मका संन्यास कहिये क्षेपणा, पटकी देना, ताको भावनाकूं नृत्य कराय कथन पूरण करनेका काव्य है।

उपजातिछन्दः

समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी। विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथावलम्बे ॥३६॥

अथ सकलकर्मफलसंन्यासभावनां नाटयति।

अर्थ—शुद्धनयका अवलंबन करनेवाला कहे है, जो इत्येवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार तीन काल-अतीत वर्तमान भविष्यत्–संबंधी कर्मकूं निराकरणकरि छोडिकरि अर शुद्धनयका अवलंबन करनेवाला ज्ञानीमैं हौं। सो विलय भया है मोह मिथ्यात्वकर्म जाका ऐसा भया संता अब समस्तविकारतें रहित चैतन्यमात्र आत्माकूं अवलंबूं हौं। अब सकल कर्मफलका संन्यासकी भावनाकूं नृत्य करावे हैं। ताका टीकामैं संस्कृतपाठ ऐसा है—तहां प्रथम तौ समुच्चय अर्थका काव्य है।

आर्याछन्दः

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव। सञ्चेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥३७॥

अर्थ—सकलकर्मफलकी संन्यासभावना करनेवाला कहे है, जो कर्मरूपी विषका वृक्षके फल

हैं ते मेरे भोगनेविना ही खिरि जावो। मैं चैतन्यस्वरूप जो मेरा आत्मा ताकूं निश्चल चेतूं हौं–अनुभवूं हौं।

भावार्थ—ज्ञानी कहे है, जो कर्मका फल उदय आवे है, ताकूं मैं ज्ञाता द्रष्टा हुवा देखूं हौं, ताका फलका भोक्ता नाहीं बनूं हौं, तातैं मेरे भोगेविना ही ते कर्म खिरि जावो। मैं मेरे चैतन्यस्वरूप आत्मामैं लीन भया तिनिका देखने जाननेवाला ही हौं। इहां इतना विशेष और जानना जो अविरतदशामैं तथा देशविरतप्रमत्तसंयतदशामैं तौ ऐसा ज्ञान श्रद्धान ही प्रधान है अर जब अप्रमत्तदशा होयकरि श्रेणी चढै है तब यह अनुभव साक्षात् होय है। अब सकलकर्मफलका संन्यासभावनाका पाठ संस्कृतटीकामैं ऐसा है—

नाहं मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १ नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्म फलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २ नाहमवधिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३ नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४ नाहं केवलज्ञानावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५ नाहं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६ नाहमचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७ नाहमवधिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८ नाहं केवलदर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ९ नाहं निद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १० नाहं निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ११ नाहं प्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२ नाहं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३ नाहं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४ नाहं सातवेदनीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १५ नाहमसातवेदनीयकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १६ नाहं सम्यक्त्वमोहनीयफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १७ नाहं मिथ्यात्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १८ नाहं सम्यक्त्वमिथ्यात्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १९ नाहं अनंतानुबंधिक्रोधकषायवेदनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २० नाहं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोधवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २१ नाहं प्रत्याख्यानावर-

णीयक्रोधवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २२ नाहं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २३ नाहं अनंतानुबंधिमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २४ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २५ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २६ नाहं संज्वलनमानकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २७ नाहमनंतानुबंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २८ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २९ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३० नाहं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३१ नाहमनंतानुबंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३२ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३३ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३४ नाहं संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३५ नाहं हास्यनोकषायवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३६ नाहं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३७ नाहमरतिनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३८ नाहं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३९ नाहं भयनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४० नाहं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४१ नाहं स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४२ नाहं पुंवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४३ नाहं नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४४ नाहं नरकायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४५ नाहं तिर्यगायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४६ नाहं मानुषायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४७ नाहं देवायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४८ नाहं नरकगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४९ नाहं तिर्यग्गतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५० नाहं मनुष्यगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५१ नाहं देवगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५२ नाहमेकेन्द्रियनामफलं भुंजे चैतन्या–

त्मानमात्मानमेव संचेतये ५३ नाहं द्वींद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५४ नाहं त्रींद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५५ नाहं चतुरिंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५६ नाहं पंचेंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५७ नाहमौदरिकादिशरीरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५८ नाहं वैक्रियकशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५९ नाहमाहारकशरीरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६० नाहं तैजसशरीनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६१ नाहं कार्माणशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६२ नाहमौदारिकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६३ नाहं वैक्रियकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे [illegible] संचेतये ६४ नाहमाहारकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६५ [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६६ नाहं वैक्रियकशरीरबंधननामफलं भुंजे [illegible] ६७ नाहमाहारकशरीरबंधननामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६८ नाहं [illegible] भुंजे [illegible]मात्मानमेव संचेतये ६९ नाहं कार्मणशरीरबंधननामफलं भुंजे चैतन्यात्मा[illegible] शरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७१ नाहं [illegible] संचेतये ७२ नाहमाहारकशरीरसंघातनामफलं भुंजे [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७४ [illegible] संचेतये ७५ नाहं समचतुरस्रसंस्थाननामफलं भुंजे [illegible] भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये [illegible] ७८ नाहं कुब्जसंस्थाननामफलं भुंजे [illegible] मात्मानमेव संचेतये ८० नाहं [illegible] नामफलं भुंजे चैतन्यात्मान-[illegible] ८३ नाहं नाराचनाम-[illegible] मात्मानमेव संचेतये [illegible] नामफलं भुंजे [illegible] ८८ नाहं सूक्ष्म-

सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाऽबुद्धिपूर्वककलंकविपाकसद्भावात् पुद्गलकर्मबंधः स्यात् । अतस्तावद्ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावद् ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात्।

अर्थ—दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते जो जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तिस कारणकरि ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गलकर्म करि बंधे है ।

टीका—जो निश्चयकरि ज्ञानी है सो बुद्धिपूर्वक रागद्वेष मोहरूप आस्रवभावके अभावतैं निरास्रव ही है । तहां यह विशेष है—सो ही ज्ञानी जेतैं ज्ञानकूं सर्वोत्कृष्टभावकरि देखनेकूं जाननेकूं आचरनेकूं असमर्थ है, अर जघन्यभाव ही करि ज्ञानकूं देखे है, जाने है, आचरे है, तेतैं तिस ज्ञानीके भी ज्ञानके जघन्यभावकी अन्यथा अप्राप्तिकरि अनुमानरूप कीया अबुद्धिपूर्वक कर्ममलकलंकका सद्भाव है । यातैं पुद्गलकर्मका बंध होय है । यातैं यह उपदेश है—जो, तेतैं ज्ञानकूं देखना जानना आचरण करना, जेतैं ज्ञानका पूर्णभाव जेता है तेता देख्या जान्या आचर्या भले प्रकार होय । तापीछे साक्षात् ज्ञानी भया संता सर्वथा निरास्रव ही होय है ।

भावार्थ—ज्ञानीकूं निरास्रव ऐसा कह्या है, जो, जेतैं याकै क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं तौ बुद्धिपूर्वक अज्ञानमय राग द्वेष मोहका अभाव है, तातैं निरास्रव कह्या है । अर जेतैं क्षयोपशमज्ञान है, तेतैं दर्शन ज्ञान चारित्र जघन्यभावकरि परिणमे हैं, तेतैं संपूर्णज्ञानकूं देख्या जान्या आचर्या जाय नाहीं है । सो इस जघन्यभाव ही करि ऐसा जानिये है—जो, याकै अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक विद्यमान है ताकरि बंध भी होय है, सो चारित्रमोहका उदयकरि है, अज्ञानमय भाव नाहीं है । तातैं ऐसा उपदेश है—जो, जेतैं ज्ञान संपूर्ण न होय--केवलज्ञान न उपजै, तेतैं ज्ञानहीका ध्यान निरंतर करना, ज्ञानहीकूं देखना, ज्ञानहीकूं जानना, ज्ञानहीकूं आचरना, इस ही मार्ग चारित्रमोहका नाश होय है, अर केवलज्ञान उपजे है । तब सर्वप्रकारकरि साक्षात् निरास्रव होय है, यह

त्मानमेव संचेतये १२७ नाहं दुःस्वरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२८ नाहं शुभनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२९ नाहमशुभनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३० नाहं सूक्ष्मशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३१ नाहं बादरशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३२ नाहं पर्याप्तनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३३ नाहमपर्याप्तनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३४ नाहं स्थिरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३५ नाहमस्थिरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३६ नाहमादेयनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३७ नाहमनादेयनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३८ नाहं यशःकीर्तिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३९ नाहमयशःकीर्तिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४० नाहं तीर्थकरत्वनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४१ नाहमुच्चैर्गोत्रनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४२ नाहं नीचैर्गोत्रनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४३ नाहं दानांतरायनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४४ नाहं लाभांतरायनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४५ नाहं भोगांतरायनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४६ नाहमुपभोगांतरायनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४७ नाहं वीर्यांतरायनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४८ ।

अर्थ—मैं ज्ञानी हौं, सो मतिज्ञानावरणीय नामा कर्मका फलकूं नाहीं भोगूं हौं, चैतन्य-स्वरूप आत्माहीकूं संचेतूं हौं—एकाग्र अनुभवूं हौं। इहां चेतना अनुभवना वेदना भोगना इनिका एक अर्थ जानना अर 'सं' उपसर्गतैं एकाग्र अनुभवना जानना यह, सर्वपाठमैं जानना ।१। ऐसे ही अन्य एकसो सैतालीस कर्मप्रकृतिनिके संस्कृत पाठ हैं, तिनिकी वचनिका लिखिये है । मैं श्रुतज्ञानावरणीय कर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं । चैतन्यस्वरूप आत्माहीकूं अनुभऊं हौं ।२। मैं अवधिज्ञानावरणीय कर्मका फलकूं नाहीं भोगऊं हौं। चैतन्य० ।३। मैं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्म० चैतन्य० ।४। मैं केवलज्ञानावरणीयकर्म० चैतन्य० । ५ । मैं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।६। मैं अचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।७। मैं अवधिदर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० ।८। मैं केवल-दर्शनावरणीयकर्म० । चैतन्य० ।९। मैं निद्रादर्शनावरणीयकर्म० चैत० ।१०। मैं निद्रानिद्रादर्शना—

वर्णीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं । चैतन्यस्वरूप आत्माहीकूं अनुभवूं हौं । ११ । मैं प्रचला-दर्शनावरणीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं । चैत० ।१२। मैं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म० चैत० ।१३। मैं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्म० चैत० । १४ । मैं सातावेदनीयकर्म० चैत० । १५ । मैं असातावेदनीयकर्म० चैत० । १६ । मैं सम्यक्त्वमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।१७। मैं मिथ्यात्वमोहनीय कर्म० चैतन्य० ।१८। मैं सम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।१९। मैं अनंतानुबंधिक्रोधकषाय-वेदनीयमोहनीयकर्मका फल नाहीं भोगऊं हौं । चैतन्यस्वरूप० ।२०। मैं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोध कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।२१। मैं प्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २२ । मैं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २३ । मैं अनंतानुबंधि-मानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य० । २४ । मैं अप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य० । २५ । मैं प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयकर्म० चैतन्य० । २६ । मैं संज्वलनमानकषायवेद-नीयकर्म चैतन्य० ।२७। मैं अनंतानुबंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २८ । मैं अप्र-त्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २९ । मैं प्रत्याख्यानावरणीयमाया-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३०। मैं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३१। मैं अनंतानुबंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३२। मैं अप्रत्याख्यानावरणीयलोभ-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३३। मैं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३४ । मैं संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म चैतन्य० । ३५ । मैं हास्यनोकषाय-वेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३६। मैं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३७। मैं अर-तिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३८। मैं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३९। मैं भयनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ४० । मैं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीय-कर्म० चैतन्य० । ४१ । मैं स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ४२ । मैं पुरुषवेदनो-कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ४२ । मैं नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य०

।४४। मैं नारकआयुकर्मका० चैतन्य० ।४५। मैं तिरयंचआयुकर्मका० चैतन्य० । ४६ । मैं मानुषआयुकर्म० चैतन्य० ।४७। मैं देवआयुकर्म० चैतन्य० । ४८ । मैं नरकगतिनामकर्म० चैतन्य० ।४९। मैं तिर्यंचगतिनामकर्म० चैतन्य० ।५०। मैं मनुष्यगति० चैतन्य० ।५१। मैं देवगतिनामकर्म० चैतन्य० ।५२। मैं एकेंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५३ । मैं द्वींद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५४ । मैं त्रींद्रियजातिनामकर्म० ।५५। मैं चतुरिंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० ।५६। मैं पंचेंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० ।५७। मैं औदारिकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ५८ । मैं वैक्रियकशरीरनामकर्म० चैतन्य० ।५९। मैं आहारकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६० । मैं तैजसशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६१ । मैं कार्मणशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६२ । मैं औदारिकशरीरअंगोपांगनामकर्म चैतन्य० । ६३ । मैं वैक्रियकशरीरअंगोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६४ । मैं आहारकशरीरांगोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६५ । मैं औदारिकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० ।६६। मैं वैक्रियकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६७ । मैं आहारकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६८ । मैं तैजसशरीरबंधननामकर्म० चैत० । ६९ । मैं कार्मणशरीरबंधननामकर्म० चैत० । ७० । मैं औदारिकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७१ । मैं वैक्रियकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७२ । मैं आहारकशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७३ । मैं तैजसशरीरसंघातनामकर्म० चैत० ।७४। मैं कार्मणशरीरसंघातनामकर्म० चैत० । ७५ । मैं समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७६। मैं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७७। मैं सातिकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७८। मैं कुब्जकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।७९। मैं वामनसंस्थाननामकर्म ० चैत० ।८०। मैं हुंडकसंस्थाननामकर्म० चैत० ।८१। मैं वज्रर्षभनाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८२। मैं वज्रनाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८३। मैं नाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८४। मैं अर्धनाराचसंहनननामकर्म० चैत० ।८५। मैं कीलिकासंहनननामकर्म० चैत० ।८६। मैं असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननामकर्म० चैत० ।८७। मैं स्निग्धस्पर्शनामकर्म० चैत० ।८८। मैं रूक्षस्पर्शनाम-

कर्म० चैत० ।८९। मैं शीतस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९०। मैं उष्णस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९१। मैं गुरुस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९२। मैं लघु स्पर्शनामकर्म० चैत० ।९३। मैं मृदुस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९४। मैं कर्कशस्पर्शनामकर्म० चैत० ।९५। मैं मधुररसनामकर्म० चैत० ।९६। मैं आम्लरसनामकर्म० चैत० ।९७। मैं तिक्तरसनामकर्म० चैत० ।९८। मैं कटुकरसनामकर्म० चैत० ।९९। मैं कषायरसनामकर्म० चैत० ।१००। मैं सुरभिगंधनामकर्म० चैत० ।१०१। मैं असुरभिगंधनामकर्म० चैत० ।१०२ शुक्लवर्णनामकर्म० चैत० ।१०३। मैं रक्तवर्णनामकर्म० चैत० ।१०४। मैं पीतवर्णनामकर्म० चैत० ।१०५। मैं हरितवर्णनामकर्म० चैत० ।१०६। मैं कृष्णवर्णनामकर्म० चैत० ।१०७। नरकगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१०८। मैं तिर्यं-चगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१०९। मैं मनुष्यगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।११०। मैं देव-गत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैत० ।१११। मैं निर्माणनामकर्म० चैत० ।११२। मैं अगुरुलघु नामकर्म० चैत० ।११३। मैं उपघातनामकर्म० चैत० ।११४। मैं परघातनामकर्म० चैत० ।११५। मैं आत-पनामकर्म० चैत० ।११६। मैं उद्योतनामकर्म० चैत० ।११७। मैं उच्छ्वासनामकर्म० चैतन्य० ।११८। मैं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।११९। मैं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।१२०। मैं साधारणशरीरनामकर्म० चैतन्य० ।१२१। मैं प्रत्येकशरीरनामकर्म० चैतन्य० ।१२२। मैं स्था-वरनामकर्म० चैत० ।१२३। मैं त्रसनामकर्म० चैत० ।१२४। मैं सुभगनामकर्म० चैत० ।१२५। मैं दुर्भगनामकर्म० चैत० ।१२६। मैं सुस्वरनामकर्म० चैत० ।१२७। मैं दुःस्वरनामकर्म० चैत० ।१२८। मैं शुभनामकर्म० चैत० ।१२९। मैं अशुभनामकर्म० चैत० ।१३०। मैं सूक्ष्मनामकर्म० चैत० ।१३१। मैं बादरशरीरनामकर्म० चैत० ।१३२। मैं पर्याप्तनामकर्म० चैत० ।१३३। मैं अपर्याप्तनामकर्म० चैत० ।१३४। मैं स्थिरनामकर्म० चैत० ।१३५। मैं अस्थिरनामकर्म० चैत० ।१३६। मैं आदेयनामकर्म० चैत० ।१३७। मैं अनादेयनामकर्म० चैत० ।१३८। मैं यशःकीर्तिनामकर्म चैत० ।१३९। मैं अयशः-कीर्तिनामकर्म० चैत० ।१४०। मैं तीर्थंकरनामकर्म० चैत० ।१४१। मैं उच्चैर्गोत्रकर्म० चैत०

।१४२। मैं नीचैर्गोत्र० चैत० ।१४३। मैं दानांतरायकर्म० चैत० ।१४४। मैं लाभांतरायकर्म० चैतन्य० ।१४५। मैं भोगांतरायकर्म० चैत० ।१४६। मैं उपभोगांतरायकर्म० चैत० ।१४७। मैं वीर्यांतराय कर्म० चैत० ।१४८। ऐसो ज्ञानी सकलकर्मकी फलकी संन्यासकी भावना करे। इहां भावना नाम फेरि फेरि चिंतवनकरि उपयोगका अभ्यास करनेका है ।

सो जब सम्यग्दृष्टि होय, ज्ञानी होय है, तब ज्ञानश्रद्धान तौ भया ही जो मैं शुद्धनयकरि समस्त कर्मतैं अर कर्मके फलतैं रहित हौं । परंतु पूर्वे बांधे कर्म उदय आवे तामैं तिनि भावनिका कर्तापणा छोडि अर पूर्वे तीन काल संबंधी गुणचास भंगकरि कर्मचेतनाका त्यागकी भावनाकरि बहुरि यह सर्वकर्मके फलका भोगवनेका त्यागकी भावनाकरि एक चैतन्य स्वरूप आत्माहीका भोगवना रह्या । सो अविरत देशविरत प्रमत्त अवस्थामैं तौ ज्ञानश्रद्धानमैं निरंतर भावना है ही । अर जब अप्रमत्तदशा होय एकाग्र चित्तकरि ध्यान करै तब केवल चैतन्यमात्र आत्माविषैं उपयोग लगावै, अर शुद्धोपयोगरूप होय, तब निश्चयचारित्ररूप शुद्धोपयोग भावतैं श्रेणी चढि केवलज्ञान उपजावै है । तब इस भावनाका फल कर्मचेतना अर कर्मफलचेतनातैं रहित साक्षात् ज्ञानचेतनारूप होना है । सो फेरि अनंत कालताईं ज्ञानचेतना ही रूप भया संता आत्मा परमानंदमैं मग्न रहे है । अब इस ही अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

निःशेषकर्मफलसन्न्यसनान्ममैवं सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३८॥

अर्थ—सकल कर्मके फलका त्यागकरि ज्ञानचेतनाकी भावना करनेवाला ज्ञानी कहे है । जो एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार सकल कर्मका फलका सन्न्यास करनेतैं मैं कैसा हौं ? चैतन्य है लक्षण जाका ऐसा आत्मतत्त्व, ताही अतिशयकरि भोगवता हौं । अर इस सिवाय अन्य जो उपयोगकी तथा बाह्यकी क्रिया, ताविषैं विहार कहिये प्रवर्तना तातैं रहित है वृत्ति जाकी ऐसा

अचल हौं। सो मेरे यह कालकी आवली प्रवाहरूप अनंत है सो इसहीकूं भोगनेरूप जावो। उपयोगकी प्रवृत्ति अन्य विषैं मति जावो।

भावार्थ—ऐसी भावना करनेवाला ज्ञानी ऐसा तृप्त भया है, जो, भावना करते मानूं साक्षात् केवली ही भया। सो ऐसा ही रहना अनंत काल चाहे है। सो सत्य है। याही भावनातैं केवली होय है केवलज्ञान उपजनेका परामर्थ उपाय यही है। वाह्य व्यवहार चारित्र है सो इसहीका साधनरूप है। अर इस विना व्यवहारचारित्र है सो शुभकर्मकूं वांधे है। मोक्षका उपाय नाहीं है। फेरि काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं निष्कर्म शर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष पूर्वे अज्ञान भावकरि किये जे कर्म तेही भये विषके वृक्ष तिनिका फल उदय आया ताकूं ताका स्वामी होय न भोगवे है। अर निश्चयकरि अपने आत्मस्वरूपहीतैं तृप्त है। अन्य किछू तृष्णा नाहीं करे है। सो पुरुष वर्तमान कालविषैं तौ सुन्दर रमनेयोग्य, अर आगामी कालविषैं जाका फल सुन्दर रमनेयोग्य ऐसा कर्मनितैं रहित स्वाधीन सुखमयी दशांतर कहिये ऐसी दशा संसार अवस्थामैं पूर्वे कबहू न भई ऐसी अन्य स्वरूप दशाकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—इस ज्ञानचेतनाकी भावनाका यहु फल है। याके भावनातें अत्यंत तृप्त रहे हैं, अन्य तृष्णा न रहे है। अर आगामी केवलज्ञान उपजाय सर्वकर्मनितैं रहित मोक्ष-अवस्थाकूं प्राप्त होय है। अब उपदेश करे हैं, जो ऐसें कर्मचेतना अर कर्मफल चेतनाका त्यागकी भावनाकरि अज्ञानचेतनाका अभावकूं प्रकट नचाय ज्ञानचेतनाका स्वभावकूं पूर्ण करि, ताकूं नचावतैं संतैं ज्ञानी जन हैं ते सदाकाल आनंदरूप रहैं। इस अर्थके कलशारूप काव्य हैं।

स्रग्धराछन्दः

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसञ्चेतनां स्वां सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिवन्तु ॥४०॥

अर्थ—ज्ञानी जन हैं ते कर्मतैं अर कर्मके फलतैं अत्यन्त विरक्त भावनाकूं निरंतर भावना करि, बहुरि समस्त अज्ञानचेतनाका नाशकूं स्पष्ट प्रकटपणैं नृत्य कराय अर अपना निज रसतैं पाया स्वभावरूप जो ज्ञानचेतना ताकूं, आनंद सहित जैसैं होय तैसैं पूर्ण करि नृत्य करावते संते इहांतैं आगे प्रशमरस जो कर्मका अभावरूप आत्मिकरस अमृतरस ताहि सदाकाल पीवो । यह ज्ञानी-जननिकूं प्रेरणा है ।

भावार्थ—यह पहलै तौ तीन कालसंबंधी कर्मका कर्तापणारूप कर्मचेतनाके गुणचास भंग-रूप त्यागकी भावना कराई । पीछै एक सौ अठतालीस कर्मप्रकृतिका उदयरूप कर्मका फलका त्यागकी भावना कराई है । ऐसैं अज्ञानचेतनाका प्रलय कराय अर ज्ञानचेतनामैं प्रवर्तनेका उपदेश किया है । यहं ज्ञानचेतना सदा आनंदरूप अपना स्वभावका अनुभवरूप है । ताकूं ज्ञानी जन सदा भोगवो । श्रीगुरुनिका उपदेश है । आगैं यह सर्व विशुद्धज्ञानका अधिकार है सो ज्ञानकूं कर्ताभोक्तापणातैं भिन्न दिखाया अब अन्य द्रव्य अर अन्य द्रव्यनिके भाव तिनितैं ज्ञानकूं न्यारा दिखावै हैं । ताकी सूचनिकाका काव्य है ।

वंशस्थच्छन्दः

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४१॥

अर्थ—इहांतैं आगैं इस ज्ञानके अधिकारविषैं समस्त वस्तुनितैं व्यतिरेक कहिये भिन्नका निश्चयतैं विवेचित कहिये न्यारा किया जो ज्ञान सो अवस्थान करे है, निश्चल तिष्ठे है । कैसा हुवा तिष्ठे है ? पदार्थकी जो प्रथना कहिये फैलना ताका अवगुंठन कहिये ज्ञेयज्ञानसंबंधकरि

५७९

एकसे दिखाना, तातैं भई जो अनेक रूप कृति कहिये कर्तृत्वभावरूप क्रिया, ताविना एक ज्ञान क्रियामात्र सर्व आकुलतातैं रहित दैदीप्यमान होता तिष्ठै है ।

भावार्थ—सर्ववस्तुनितैं न्यारा ज्ञानकूं प्रगट दिखावे हैं । सो ही गाथामें कहे हैं—

सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥८२॥
सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥८३॥
रूवं णाणं ण हवदि जह्मा रूवं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥८४॥
वण्णो णाणं ण हवदि जह्मा वण्णो ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥८५॥
गंधो णाणं ण हवदि जह्मा गंधो ण याणदे किंचि ।
तह्मा णाणं अण्णं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥८६॥
ण रसो दु होदि णाणं जह्मा दु रसो अचेदणो णिच्चं ।
तह्मा अण्णं णाणं रसं च अण्णं जिणा विंति ॥८७॥
फासो णाणं ण हवदि जह्मा फासो ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥८८॥

कम्मं णाणं ण हवदि जह्मा कम्मं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥८९॥
धम्मच्छिओ ण णाणं जह्मा धम्मो ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥९०॥
ण हवदि णाणमधम्मच्छिओ जं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥९१॥
कालोवि णत्थि णाणं जह्मा कालो ण याणदे किंचि ।
तह्मा ण होदि णाणं जह्मा कालो अचेदणो णिच्चं ॥९२॥
आयासंपि य णाणं ण हवदि जह्मा ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णायासं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥९३॥
अज्झवसाणं णाणं ण हवदि जह्मा अचेदणं णिच्चं ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥९४॥
जह्मा जाणदि णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणगो णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥९५॥
णाणं सम्मादिट्ठी दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वजं अज्झवंति वुहा ॥९६॥

शास्त्रं ज्ञानं न भवति यस्माच्छास्त्रं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यच्छास्त्रं जिना वदंति ॥८२॥
शब्दो ज्ञानं न भवति यस्माच्छब्दो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं शब्दं जिना वदंति ॥८३॥
रूपं ज्ञानं न भवति यस्माद्रूपं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना वदंति ॥८४॥
वर्णो ज्ञानं न भवति यस्माद्वर्णो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना वदंति ॥८५॥
गंधो ज्ञानं न भवति यस्माद्गंधो न जानाति किंचित् ।
तस्माज्ज्ञानमन्यदन्यं गंधं जिना वदंति ॥८६॥
न रसस्तु भवति ज्ञानं यस्मात्तु रसो अचेतनो नित्यं ।
तस्मादन्यज्ज्ञानं रसं चान्यं जिना वदंति ॥८७॥
स्पर्शो ज्ञानं न भवति यस्मात्स्पर्शो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना वदंति ॥८८॥
कर्म ज्ञानं न भवति यस्मात्कर्म न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत्कर्म जिना वदंति ॥८९॥
धर्मास्तिकायो न ज्ञानं यस्माद्धर्मो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना वदंति ॥९०॥
न भवति ज्ञानमधर्मास्तिकायो यस्मान्न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यमधर्मं जिना वदंति ॥९१॥

कालोऽपि नास्ति ज्ञानं यस्मात्कालो न जानाति किंचित् ।
तस्मान्न भवति ज्ञानं यस्मात्कालोऽचेतनो नित्यं ॥९२॥
आकाशमपि ज्ञानं न भवति यस्मान्न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्याकाशमन्यज्ज्ञानं जिना वदंति ॥९३॥
अध्यवसानं ज्ञानं न भवति यस्मादचेतनं नित्यं ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमध्यवसानं तथान्यत् ॥९४॥
यस्माज्जानाति नित्यं तस्माज्जीवस्तु ज्ञायको ज्ञानी ।
ज्ञानं च ज्ञायकादव्यतिरिक्तं ज्ञातव्यं ॥९५॥
ज्ञान सम्यग्दृष्टिं तु संयमं सूत्रमंगपूर्वगतं ।
धर्माधर्मं च तथा प्रव्रज्यामभ्युपयंति बुधाः ॥९६॥

आत्मख्यातिः—न श्रुतं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेकः । न शब्दो ज्ञानचेतनत्वात् ततो ज्ञानशब्दयोर्व्यतिरेकः । न रूपं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेकः । न वर्णो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेकः । न गंधो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगंधयोर्व्यतिरेकः । न रसो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरसयोर्व्यतिरेकः । न स्पर्शो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शयोर्व्यतिरेकः । न कर्म ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेकः । न धर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेकः । नाधर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेकः । न कालो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेकः । नाकाशं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेकः । नाध्यवसानं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेकः । इत्येवं ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यैः सह व्यतिरेको निश्चयसाधितो भवति । अथ जीव एवैको ज्ञानं चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेकः, न च जीवस्य स्वयं ज्ञानत्वात्ततो व्यतिरेकः कश्चनापि शंकनीयः । एवं तु सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टिः, ज्ञानमेव संयमः, ज्ञानमेवांगपूर्वरूपं सूत्रं, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः ।

अथैवं सर्वद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण वा अतिव्याप्तिमव्याप्तिं च परिहरमाणमनादिविभ्रम-

मूलं धर्माधर्मरूपं परमसमयमुद्गम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमापाद्य दर्शनज्ञानचरित्रस्थितित्वरूपं समयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणतं कृत्वा समवाप्तसंपूर्णविज्ञानघनभावं हानोपादानशून्यं साक्षात्समयसारभूतं शुद्धज्ञानमेकमेव स्थितं द्रष्टव्यं ।

अर्थ—शास्त्र है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं शास्त्र किछू जाने नाहीं है, जड है। तातैं ज्ञान अन्य है शास्त्र अन्य है, ऐसैं जिन भगवान् हैं ते जाने हैं कहे हैं। शब्द है सो ज्ञान नाहीं है जातैं शब्द किछू जाने नाहीं है तातैं ज्ञान अन्य है शब्द अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। रूप है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रूप किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है रूप अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। वर्ण है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वर्ण किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है वर्ण अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। गंध है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं गंध किछू जाने नाहीं है। तातैं ज्ञान अन्य है गंध अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। वहुरि रस है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रस किछू जाने नाहीं है, तातैं, ज्ञान अन्य है रस अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। स्पर्श है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं स्पर्श किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है स्पर्श अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। कर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं कर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है कर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। धर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं धर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है धर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। अधर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अधर्म किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है अधर्म अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। काल है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं काल किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है काल अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। आकाश भी ज्ञान नाहीं है जातैं आकाश किछू जाने नाहीं है, तातैं ज्ञान अन्य है आकाश अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। तैसैं ही अध्यवसान है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अध्यवसान अचेतन है, तातैं, ज्ञान अन्य है अध्यवसान अन्य है। यह जिनदेव कहे हैं। वहुरि जीव है सो ज्ञायक है, सो ही ज्ञान है। जातैं यह निरंतर जाने है। ज्ञान है सो ज्ञायकतैं अभिन्न है न्यारा नाहीं है, ऐसा जानना। वहुरि ज्ञान है सो ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान ही

संयम है, ज्ञान ही अंगपूर्वगत सूत्र है, धर्म अधर्म भी ज्ञान ही है, बहुरि प्रव्रज्या दीक्षा है सो भी ज्ञान है। ज्ञानी जन हैं ते ऐसैं अंगीकार करे हैं माने हैं।

टीका—श्रुत कहिये वचनात्मक द्रव्यश्रुत है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वचन है सो अचेतन है। तातैं ज्ञानके अर श्रुतके व्यतिरेक है भेद है। बहुरि शब्द है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं शब्द पुद्‌गलद्रव्यका पर्याय है अचेतन है, तातैं ज्ञानके अर शब्दके व्यतिरेक है। बहुरि रूप है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रूप पुद्‌गलका गुण है अचेतन है, तातैं रूपके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि वर्ण है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं वर्ण पुद्‌गलद्रव्यका गुण है, अचेतन है, तातैं वर्णके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि गंध है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं गंध पुद्‌गलद्रव्यका गुण है, अचेतन है, तातैं गंधके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि रस है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं रस पुद्‌गलद्रव्यका गुण है अचेतन है, तातैं रसके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि स्पर्श है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं स्पर्श पुद्‌गलद्रव्यका गुण है अचेतन है, तातैं स्पर्शके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि कर्म है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं कर्म अचेतन है, तातैं कर्मके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि धर्मद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं धर्म अचेतन है तातैं धर्मद्रव्यके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि अधर्मद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अधर्म अचेतन है, तातैं अधर्मद्रव्यके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि कालद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं काल अचेतन है, तातैं कालके अर ज्ञानके व्यतिरेक है। बहुरि आकाशद्रव्य है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं आकाश अचेतन है। तातैं ज्ञानके अर आकाशके व्यतिरेक है। बहुरि अध्यवसान है सो ज्ञान नाहीं है। जातैं अध्यवसान अचेतन है। तातैं ज्ञानके कर्मके उदयकी प्रवृत्तिरूप अध्यवसानके व्यतिरेक है। ऐसैं याप्रकार तौ ज्ञानके सर्व ही परद्रव्यनिकरि सहित व्यतिरेक भिन्नपणाका निश्चय साध्या हुवा देखना। अर अब कहे हैं, जो जीव है सो ही एक ज्ञान है जातैं जीव चेतन है, तातैं ज्ञानके अर जीवके अव्यतिरेक है अभेद है। बहुरि जीवके आपैआप ज्ञानपणा है। ज्ञानजीवके व्यतिरेक भेद

किछू ही आशंकारूप न करना। ऐसैं होतैं ज्ञान है सो ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान है सो ही संयम है, ज्ञान है सो ही अंगपूर्वगत सूत्र है। बहुरि धर्म अधर्म है सो भी ज्ञान ही है। बहुरि ज्ञान है सो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा है, निश्चयचारित्र है। ऐसैं जीवके पर्यायनिकरि सहित भी अव्यतिरेक अभेदका निश्चय साध्या हुवा देखना। अब कहे हैं। जो ऐसैं सर्वपरद्रव्यनिकरि तौ व्यतिरेक करि बहुरि जीवके सर्वदर्शनकूं आदि लेकरि स्वभावनिकरि अव्यतिरेक करि, तौ अतिव्याप्ति अर अव्याप्ति दूषणकूं दूरिकरता संता, अर अनादिकालतैं विभ्रम अविद्या है मूल जाका ऐसा धर्म अधर्म कहिये पुण्य पाप शुभ अशुभरूप परसमय ताकूं दूरि करि, अर आप प्रव्रज्या जो निश्चयचारित्ररूप दीक्षाकूं पायकरि, दर्शनज्ञानचारित्रविषैं स्थितिरूप जो स्वसंयम ताकूं व्याप्यकरि आत्माहीविषैं मोक्षमार्गकूं परिणामरूपकरि, अर पाया है संपूर्ण विज्ञानघन स्वभाव जानैं, अर हान उपादान कहिये त्याग ग्रहणकरि रहित साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्ध एक ज्ञान अवस्थित भया देखना, प्रत्यक्ष स्वसंवेदनकरि अनुभवन करना।

भावार्थ—अर सर्व परद्रव्यनितैं तौ न्यारा अर अपना पर्यायनितैं अभेद ऐसा ज्ञान एक दिखाया। सो यातैं अतिव्याप्ति अर अव्याप्ति नामा लक्षणके दोष हैं ते दूरि भये। जातैं आत्माका लक्षण उपयोग है। सो उपयोगमैं ज्ञान प्रधान है। सो यह अन्य अचेतनद्रव्यनिमैं नाहीं। तातैं तौ अतिव्याप्तिस्वरूप नाहीं। अर अपनी अवस्थामैं सर्वमैं है, तातैं अव्याप्तिस्वरूप नाहीं। अर इहां ज्ञान कहनेतैं आत्माही जानना। जातैं अभेदविवक्षामैं गुणगुणीके अभेद है। तातैं विरोध नाहीं। इहां ज्ञानहीकूं प्रधानकरि आत्माका अधिकार है। या ही लक्षणतैं सर्वपरद्रव्यनितैं भिन्न अनुभवगोचर होय है। यद्यपि आत्मामैं अनंतधर्म हैं तथापि तिनिमैं केई तौ छद्मस्थके अनुभवगोचर ही नाहीं, तिनिकूं कहे, छद्मस्थ ज्ञानी आत्माकूं कैसे पहिचाने? अर केई धर्म अनुभवगोचर हैं तिनिमैं केई अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादिक हैं ते अन्यद्रव्यनितैं साधारण हैं समान हैं। तिनिकूं कहे न्यारा आत्मा जान्या जाय नाहीं। बहुरि केई परद्रव्यके निमित्ततैं भये, तिनिकूं

कहे। परमार्थभूत आत्माका स्वरूप शुद्ध कैसैं जान्या जाय ? तातैं ज्ञान ही कहे। छद्मस्थ ज्ञानी आत्माकूं पहिचाने तातैं ज्ञानहीकूं आत्मा कहिकरि, अर इस ज्ञानमैं अनादि अज्ञानतैं शुभाशुभ उपयोगरूप परसमयकी प्रवृत्ति है ताकूं दूरि करि, अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रविषैं प्रवृत्तिरूप स्वसमयरूप परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गविषैं आत्माकूं परिणमाय, अर संपूर्ण ज्ञानकूं प्राप्त होय तब फेरि त्यागग्रहणकूं किछू न रहै। ऐसा साक्षात् समयसारस्वरूप पूर्णज्ञान परमार्थभूत शुद्ध ठहरै। ताकूं देखना।

तहां देखना ही तीन प्रकार जानना। एक तौ शुद्धनयका ज्ञानकरि याका श्रद्धान करना सो यह तौ अविरत आदि अवस्थामैं भी मिथ्यात्वके अभावतैं होय है। बहुरि दूसरा ज्ञानश्रद्धान भये पीछे बाह्य सर्व परिग्रहका त्यागकरि याका अभ्यास करना। उपयोगकूं ज्ञानहीविषैं थांभना सो जैसैं शुद्धनयकरि अपना स्वरूपकूं सिद्धसमान जान्या श्रद्धान किया, तैसा ही ध्यानविषैं ले एकाग्रचित्तकूं ठहरावना। फेरि फेरि याहीका अभ्यास करना। सो यह देखना अप्रमत्तदशामें होय है। सो जहां तांई ऐसे अभ्यासतैं केवलज्ञान उपजै तहां तांई यह अभ्यास निरंतर रहै। यह देखनेका दूसरा प्रकार है। सो इहां तांई तौ पूर्णज्ञान शुद्धनयके आश्रय परोक्ष देखना है। बहुरि तीसरा यहै है, जो केवलज्ञान उपजै तब साक्षात् देखना होय है। तब सर्वविभावनितैं रहित होय सर्वका देखनजाननहारा ज्ञान है सो यह पूर्णज्ञानका प्रत्यक्ष देखना ही सो यह ज्ञान है सो ही आत्मा है। अभेदविवक्षामें ज्ञान कहौ तथा आत्मा कहौ किछू विरोध न जानना। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथाऽवस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥४२॥

अर्थ—यह ज्ञान है सो तैसैं अवस्थित भया है, जैसैं याका महिमा निरंतर उदयरूप तिष्टै,

प्रतिप्रक्षी कर्म न रहै । कैसा अवस्थित भया है ? अन्य जे परद्रव्य तिनितैं व्यतिरिक्त कहिये न्यारा अवस्थित भया है । वहुरि कैसा है ? आत्मनियतं कहिये आपहीविषैं निश्चित है । वहुरि कैसा है ? पृथक् कहिये न्यारा ही वस्तुपणाकूं धारता संता है । वस्तूका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है, सो ज्ञान भी सामान्यविशेषपणाकूं धारया है । वहुरि कैसा है ? आदानोज्झन कहिये ग्रहणत्याग तिनिकरि शून्य है रहित है । ज्ञानमैं किछू त्याग ग्रहण नाहीं है । वहुरि कैसा है ? अमल कहिये रागादिक मलतैं रहित है ऐसा है । वहुरि याका महिमा नित्य उदयरूप तिष्ठै है सो कैसा है ? मध्य अर आदि अर अंत जे विभाग तिनिकरि मुक्त कहिये रहित, अर सहज कहिये स्वाभाविक, अर स्फार कहिये फैल्या विस्तरया जो प्रभा कहिये प्रकाश ताकरि दैदीप्यमान है । वहुरि शुद्धज्ञानका घन कहिये समूह है ऐसा जाका महिमा सदा उदयमान है । तैसैं अवस्थित भया है ठहरया है ।

भावार्थ—ज्ञानका पूर्णरूप सर्वकूं जानना है । सो जब यह प्रकट होय है तब तिनि विशेषणनिसहित प्रकट होय है । सो याकी महिमाकूं कोई बिगाडि सकै नाहीं सदा उदयमान रहे है । अब कहे हैं, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्माका धारणा सो ही कृतकृत्यपणा है ।

उपजातिछन्दः

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् । यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥४३॥

अर्थ—जो समेटी है सर्व शक्ति जानैं ऐसा जो पूर्णस्वरूप आत्मा, ताका आत्मा ही विषैं धारण करना सो ही जो उन्मोच्य कहिये छोडनेयोग्य था, सो तौ सर्व उन्मुक्त कहिये छोडया । अर जो आदेय कहिये लेने योग्य था, सो समस्त लिया ।

भावार्थ—जो पूर्णज्ञान स्वरूप सर्वशक्तिका समूहस्वरूप आत्मा, ताकूं धारणा सो ही त्यागनेयोग्य तौ सर्व ही त्यागा । अर ग्रहण करनेयोग्य था सो ग्रहण कीया । यह ही कृतकृत्यपणा है । आगे कहे हैं, जो ऐसे ज्ञानकै देह भी नाहीं है । ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुप्छन्दः

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितं । कथमाहारकं तत्स्यात्येन देहोऽस्य शंक्यते ॥४४॥

भावार्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार परद्रव्यतैं न्यारा ज्ञान अवस्थित भया ठहरया। सो ऐसा ज्ञान आहारक कहिये कर्मनोकर्मरूप आहार करनेवाला कैसा होय ? अर जब आहारक नाहीं तब याके देहकी संका कैसी करिये ? नाहीं करिये। अब इस अर्थकूं गाथामैं कहे हैं।

गाथा—

अत्ता जस्स अमुत्तो णहु सो आहारओ हवदि एवं।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ दु ॥९७॥
णवि सक्कदि घित्तुं जं ण मुंचदे चेव जं परं दव्वं।
सो कोवि य तस्स गुणो पाउग्गिय विस्ससो वापि ॥९८॥
तह्मा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिह्णदे किंचि।
णेव विमुंचदि किंचिवि जीवाजीवाणदव्वाणं ॥९९॥

आत्मा यस्यामूर्तो न खलु स आहारको भवत्येवं।
आहारः खलु मूर्तो यस्मात्स पुद्गलमयस्तु ॥९७॥
नापि शक्यते गृहीतुं यन्न मुंचति चैव यत्परं द्रव्यं।
स कोऽपि च तस्य गुणो प्रायोगिको वैस्रसो वापि ॥९८॥
तस्मात्तु यो विशुद्धश्चेतयिता स नैव गृह्णाति किंचित्।
नैव विमुंचति किंचिदपि जीवाजीवयोर्द्रव्ययोः ॥९९॥

आत्मख्यातिः—ज्ञानं हि परद्रव्यं किंचिदपि न गृह्णाति न मुंचति प्रायोगिकगुणसामर्थ्यात् वैस्रसिकगुणसाम-

र्थाद्वा ज्ञानेन परद्रव्यस्य गृहीतुं मोक्तुं चाशक्यत्वात् । परद्रव्यं च न ज्ञानस्यामूर्तात्मद्रव्यस्य मूर्तपुद्गलद्रव्यत्वादाहारः ततो ज्ञानं नाहारकं भवत्यतो ज्ञानस्य देहो नाशंकनीयः ।

अर्थ—याप्रकार जाका आत्मा अमूर्तिक है सो निश्चयकरि आहारक नाहीं है । जातैं आहार है सो मूर्तिक है । सो आहार पुद्गलमय है । वहुरि जो परद्रव्य है सो ग्रहण करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है । अर छोडनेकूं समर्थ न हूजिये है । सो कोई ऐसाही आत्माका गुण है, प्रायोगिक है तथा वैस्रसिक है । तातैं जो विशुद्ध चेतयिता आत्मा है सो किछू ही परद्रव्यकूं जीव अजीवकूं नाहीं ग्रहण करे है । वहुरि किछू ही परद्रव्यकूं नाहीं छोडै है ।

टीका—इहां आत्मा कहनेतैं ज्ञानका ग्रहण है, जातैं, अभेदविवक्षातैं लक्षणविषैं ही लक्ष्यका व्यवहार है । इस न्यायतैं आत्माकूं ज्ञान ही कहते आवै है । तातैं टीका करे हैं । जो, ज्ञान है सो परद्रव्यकूं किंचिन्मात्र भी नाहीं ग्रहण करे है, अर किंचिन्मात्र भी नाहीं छोडे है । जातैं प्रायोगिक गुण कहिये परनिमित्ततैं भया जो गुण ताकी सामर्थ्यतैं तथा वैस्रसिक कहिये स्वाभाविक गुणकी सामर्थ्यतैं दोऊ प्रकारतैं ज्ञानकरि परद्रव्यका ग्रहण करनेका अर छोडनेका असमर्थपणा है । वहुरि अमूर्तिक आत्मद्रव्य जो ज्ञान ताकै मूर्तिक पुद्गलद्रव्य आहार नाहीं है । अमूर्तिकके मूर्तिक आहार होय नाहीं । तातैं ज्ञान आहारक नाहीं है । यातैं ज्ञानके देहकी संका न करणी ।

भावार्थ—ज्ञानस्वरूप आत्मा अमूर्तिक है । अर आहार है सो कर्मनोकर्मरूप पुद्गलमय मूर्तिक है । तातैं परमार्थतैं आत्माके पुद्गलमय आहार नाहीं है । वहुरि आत्माका ऐसा ही स्वभाव है, सो परद्रव्यकूं तौ ग्रहण ही नाहीं करे है । स्वभावरूप परिणमू तथा विभावरूप परिणमू अपने ही परिणामका ग्रहण त्याग है । परद्रव्यका तौ ग्रहण त्याग किछू भी नाहीं है । तातैं आत्माकै पुद्गलमय देहस्वरूप जो लिंग है, वेष है, बाह्यचिन्ह है, सो मोक्षका कारण नाहीं है । ताकी सूचनिकाका श्लोक है ।

अनुष्टुप्छन्दः

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते । ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥४५॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकारकरि शुद्धज्ञानकै देह ही नाहीं विद्यमान है। तातैं ज्ञाताकै देहमय लिंग है, चिन्ह हैं, भेष है सो मोक्षका कारण नाहीं हैं। अब इस अर्थकूं गाथाकरि कहे हैं। गाथा—

पाखंडियलिंगाणि य गिहलिंगाणिय बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥१००॥
णय होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंति ॥१०१॥

पाखंडिलिंगानि च गृहलिंगानि च बहुप्रकाराणि ।
गृहीत्वा वदति मूढा लिंगमिदं मोक्षमार्ग इति ॥१००॥
न तु भवति मोक्षमार्गो लिंगं यद्देहनिर्ममका अर्हंतः ।
लिंगं मुक्त्वा दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवंते ॥१०१॥

आत्मख्यातिः—केचिद् द्रव्यलिंगमज्ञानेन मोक्षमार्गं मन्यमानाः संतो मोहेन द्रव्यलिंगमेवोपाददते। तदप्यनुपपन्नं सर्वेषामेव भगवतामर्हद्देवानां शुद्धज्ञानमयत्वे सति द्रव्यलिंगाश्रयभूतशरीरममकारत्यागात्। तदाश्रितद्रव्यलिंगत्यागेन दर्शनज्ञानचरित्राणां मोक्षमार्गत्वेनोपासनस्य दर्शनात्।

अथैतदेव साधयति—

अर्थ—पाखंडिलिंग बहुरि गृहिलिंग ऐसे बहुत प्रकार बाह्यलिंग हैं। तिनिकूं ग्रहणकरि मूढ अज्ञानी जन ऐसैं कहे हैं, यह लिंग है सो ही मोक्षका मार्ग है। आचार्य कहे हैं लिंग मोक्षका

मार्ग नाहीं है। जातैं, अर्हंतदेव हैं ते देहके विषैं निर्ममत्व भये संते लिंगकूं छोडिकरि दर्शनज्ञानचारित्रहीकूं सेवे हैं।

टीका—केईक जन अज्ञानकरि द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग मानते संते मोहकरि द्रव्यलिंगहीकूं अंगीकार करै हैं। सो यह द्रव्यलिंगकूं मोक्षमार्ग मानना अनुपपन्न है। जातैं सर्व ही भगवान् अरहंतदेव हैं तिनिकै शुद्धज्ञानमयीपणाकूं होतैं संतैं द्रव्यलिंगका आश्रयभूत जो शरीर ताका ममकारका त्यागतैं तिस शरीरके आश्रित जो द्रव्यलिंग ताका त्याग करि अर दर्शन ज्ञानचारित्रनिके मोक्षमार्गपणाकरि सेवना देखिये हैं।

भावार्थ—जो देहमय द्रव्यलिंग ही मोक्षका कारण होता तौ अरहंतादिक देहका ममत्व छोडि दर्शनज्ञानचारित्रकूं काहेकूं सेवतैं? द्रव्यलिंगहीतैं मोक्षकूं प्राप्त होते। तातैं यह निश्चय भया, जो देहमयलिंग मोक्षमार्ग नाहीं है। परमार्थकरि दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप आत्मा ही मोक्षका मार्ग है। आगै यह साधे हैं, जो दर्शनज्ञानचारित्र ही मोक्षमार्ग है। गाथा—

णवि एस मोक्खमग्गो पाखंडी गिहमयाणि लिंगाणि।
दंसणणाणचारित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥१०२॥

नाप्येष मोक्षमार्गः पाखंडिगृहमयानि लिंगानि।
दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गं जिना वदंति ॥१०२॥

आत्मख्यातिः—न खलु द्रव्यलिंगं मोक्षमार्गः शरीराश्रितत्वे सति परद्रव्यत्वात्। तस्माद्दर्शनज्ञानचारित्राण्येव मोक्षमार्गः, आत्माश्रितत्वे सति स्वद्रव्यत्वात्।

यत एवं—

अर्थ—पाखंडिलिंग अर गृहस्थलिंग ये मोक्षमार्ग नाहीं। दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते मोक्षमार्ग हैं। ऐसैं जिनदेव कहे हैं।

टीका—निश्चयकरि द्रव्यलिंग है सो मोक्षका मार्ग नाहीं है। जातैं याकै शरीरकै आश्रितपणा होतैं संतै यह परद्रव्य है। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते ही मोक्षमार्ग हैं। जातैं इनिकै आत्माके आश्रितपणा होतैं संतैं निज आत्मद्रव्यपणा है।

भावार्थ—मोक्ष है सो सर्व कर्मका अभावरूप आत्माका परिणाम है। सो याका कारण भी आत्माका परिणाम ही चाहिये। तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते आत्माका परिणाम हैं। तातैं ते ही मोक्षके मार्ग हैं, यह निश्चयकरि कह्या। बहुरि लिंग है सो देहमय है। देह है सो पुद्गलद्रव्यमय हैं। तातैं आत्माकै देह मोक्षका मार्ग नाहीं है। परमार्थकरि अन्यद्रव्यकै अन्यद्रव्य किछु करे नाहीं यह नियम है। आगै कहे हैं, जो जातैं ऐसैं है द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नाहीं, तातैं ऐसैं करना यह उपदेश करे हैं।

जह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारिएहि वा गहिदे।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥१०३॥

तस्मात्तु जहित्वा लिंगानि सागारैरनगारिकैर्वा गृहीतानि।
दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मानं युंक्ष्व मोक्षपथे ॥१०३॥

आत्मख्यातिः—यतो द्रव्यलिंगं न मोक्षमार्गः, ततः समस्तमपि द्रव्यलिंगं त्यक्त्वा दर्शनज्ञानचारित्रे चैव मोक्षमार्गत्वात् आत्मा योक्तव्य इति सूत्रानुमतिः।

अर्थ—जातैं द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नाहीं, तातैं सागार कहिये गृहस्थनिकरि, अर अनगार कहिये गृहकूं त्यागि मुनि होयकरि जे लिंग ग्रहे तिनिकूं छोडिकरि अपने आत्माकूं दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षमार्गविषैं युक्त करौ। यह श्रीगुरुनिका उपदेश है।

टीका—जातैं द्रव्यलिंग है सो मोक्षका मार्ग नाहीं है, तातैं समस्त ही द्रव्यलिंग हैं ताहि

छोडि अर दर्शनज्ञानचारित्रनिविषैं ही आत्माकूं युक्त करना। जातैं एही मोक्षका मार्ग है। ऐसा सूत्रका उपदेश है।

भावार्थ—इहां द्रव्यलिंगनकूं छुडाय दर्शनज्ञानचारित्रविषैं लगावनेका वचन है। सो यह सामान्य परमार्थवचन है। कोई जानैगा, कि मुनि श्रावककै व्रत छुडावनेका उपदेश है। सो ऐसा नाहीं है। जे केवल द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग जानि भेष धारै तिनिकूं पक्ष छुडाई है। जो भेषमात्रतैं मोक्ष नाहीं है। परमार्थरूप मोक्षमार्ग आत्माके परिणाम दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते ही हैं। अर व्यवहार आचारसूत्रमैं कहे तिस अनुसार मुनिश्रावककै वाह्य व्रत हैं ते व्यवहारकरि निश्चयमोक्षमार्गके साधक हैं। तिनिकूं छुडावै नाहीं ऐसा कहे हैं। जो तिनिका भी ममत्व छोडि परमार्थ मोक्षमार्गमैं लागै मोक्ष होय है। केवल भेषमात्रतैं मोक्ष नाहीं है ऐसा जानना। आगै इस ही अर्थकूं दृढ करे हैं ताकी सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप् छन्दः

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥४६॥

अर्थ—जातैं आत्माका तत्त्व कहिये यथार्थरूप दर्शनज्ञानचारित्रका त्रिकस्वरूप है तातैं मोक्षके इच्छुक पुरुषनिकरि एक ही यह मोक्षमार्ग सदा सेवने योग्य है। अब यह ही उपदेश गाथाकरि कहे हैं।

मुक्खपहे अप्पाणं ठवेहि वेदयदि झायहि तं चेव।
तत्थेव विहर णिच्चं माविरहसु अण्णदव्वेसु ॥१०४॥

मोक्षपथे आत्मानं स्थापय वेदय ध्याय हि तं चैव।
तत्रैव विहर नित्यं मा विहार्षीरन्यद्रव्येषु ॥१०४॥

आत्मख्यातिः—आ संसारात्परद्रव्ये रागद्वेषादौ नित्यमेव स्वप्रज्ञादोषेणावतिष्ठमानमपि स्वप्रज्ञागुणेनैव ततो व्यावर्त्य दर्शनज्ञानचारित्रेषु नित्यमेवावस्थापयंति निश्चितमात्मानं। तथा चिंतांतरनिरोधेनात्यंतमेकाग्रो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्रा-

ण्येव ध्यायस्व । तथा सकलकर्मकर्मफलचेतनासंन्यासेन शुद्धज्ञानचेतनामयोभूत्वा दर्शनज्ञानचारित्राण्येव चेतयस्व । तथा द्रव्यस्वभाववशतः प्रतिक्षणविजृंभमाणपरिणामतया तन्मयपरिणामो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्रेष्वेव विहर । तथा ज्ञानरूपमेकमेवाचलितमवलंबमानो ज्ञेयरूपेणोपाधितया सर्वत एव प्रधावत्स्वपि परद्रव्येषु सर्वेष्वपि मनागपि मा विहार्षीः ।

अर्थ—हे भव्य ! तू मोक्षमार्गकेविषैं अपने आत्माकूं स्थापि । बहुरि तिसहीकूं ध्याय । बहुरि तिसहीकूं चेति अनुभवगोचर करि । बहुरि तिस आत्माहीके विषैं निरंतर विहार करि । अन्यद्रव्यनिविषैं मति विहार करै ।

टीका—आचार्य उपदेश करे हैं, जो हे भव्य ! तू अनादि संसारतैं लगाय यह आत्मा अपनी बुद्धिके दोषकरि परद्रव्यविषैं रागद्वेषादिविषैं नित्य ही निरंतर तिष्ठता संता प्रवर्ते है तौऊ ताकूं अपनी बुद्धिहीके गुणकरि तिनि परद्रव्यनिविषैं राग द्वेषतें छुडाय अर दर्शनज्ञानचारित्रविषैं निरंतर तिष्ठता अति निश्चल स्थापन करि तैसैं ही समस्त अन्य चिंताका निरोध करि अत्यंत एकाग्रचित्त होय दर्शनज्ञानचारित्रहीकूं ध्याय ध्यान करि । तैसैं ही समस्त कर्म अर कर्मका फलरूप चेतनाका संन्यास करि, त्याग करि अर शुद्धज्ञानचेतनामय होयकरि, दर्शनज्ञानचारित्रहीकूं चेति अनुभवन करि । तैसैं ही द्रव्यके स्वभावके वशतैं क्षणक्षणप्रति उपजते उदय होते जे परिणाम, तिसपणाकरि तन्मयपरिणाम करि, दर्शनज्ञानचारित्रहीविषैं विहार करि । तैसैं ही तू एकज्ञानरूपहीकूं निश्चलरूप अवलंबन करता संता ज्ञेयरूपकरि ज्ञानके उपाधिपणाकरि सर्व तरफतैं आय पडते जे सर्व ही परद्रव्य तिनिविषैं किंचिन्मात्र भी विहार मति करै ।

भावार्थ—परमार्थरूप आत्माका परिणाम दर्शनज्ञानचारित्र है । ते ही मोक्षमार्ग है । तिनिहीविषैं आत्माकूं स्थापना । तिनिहीका ध्यान करना । तिनिका अनुभव करना । तिनिहीविषैं प्रवर्तना । अन्य द्रव्यनिविषैं नाहीं प्रवर्तना । यहु ही परमार्थकरि उपदेश है । केवल व्यवहारहीमैं मूढ न रहना । अब इस ही अर्थका कलशरूप काव्य कहे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकस्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।
तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन् सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥४७॥

अर्थ—जो दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप यह एक मोक्षका मार्ग है सो जो पुरुष तिस ही विषैं स्थितीकूं प्राप्त होय है तिष्ठे है, बहुरि जो तिसहीकूं निरंतर ध्यावे है, बहुरि जो तिसहीकूं चेते है, अनुभवे है, बहुरि जो तिसहीविषैं निरंतर विहार करे है प्रवर्ते है, कैसा भया संता ? अन्य द्रव्यनिकूं नाहीं स्पर्शता संता, सो पुरुष थोरे ही कालमें अवश्य समयसार जो परमात्माका रूप जाका नित्य उदय रहै ऐसा अनुभवे है पावे है ।

भावार्थ—निश्चयमोक्षमार्गके सेवनेतैं थोरे ही कालमें मोक्षकी प्राप्ति होय यह नियम है । आगै कहे हैं, जो द्रव्यलिंगहीकूं मोक्षमार्ग मानि ताविषैं ममत्वभाव राखे हैं ते मोक्ष नाहीं पावे हैं । ताकी सूचनिकाका काव्य है ।

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

ये त्वेनं परिहृत्य संवृत्तिपथप्रस्थापितेनात्मना लिङ्गे द्रव्यमये च हन्ति ममतां तत्त्वाववोधच्युताः ।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभाप्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥४८॥

अर्थ—जे पुरुष यहु पूर्वोक्त परमार्थस्वरूप मोक्षमार्ग ताकूं छोडिकरि अर व्यवहार मार्गविषैं वलाया स्थाप्या जो अपना आत्मा ताहीकरि, द्रव्यमय जो यह बाह्यलिंग भेष ताविषैं ममता करै है; जाने है, कि यह ही हमकूं मोक्ष प्राप्त करेगा; ते पुरुष तत्त्वके यथार्थ ज्ञानतैं रहित भये संते मुनिपद लीया है तौऊ इस समयसारकूं नाहीं अवलोकन करे हैं. नाहीं पावै हैं । कैसा है समयसार ? नित्य है उदय जाका, कोई प्रतिपक्षी होय ताका उदयका विच्छेद न करि सके है । बहुरि कैसा है ? अखंड है, जामैं अन्य ज्ञेय आदिके निमित्ततैं खंड नाहीं होय है । बहुरि कैसा है ? एक है, पर्यायनिकरि अनेक अवस्था होय हैं, तौऊ एकरूपपणाकूं नाहीं छोडे है । बहुरि कैसा

है ? अतुल कहिये जाके बराबरी अन्य नाहीं ऐसा है आलोक कहिये प्रकाश जाका, सूर्यादिकका प्रकाशकी ज्ञानप्रकाशकूं उपमा नाहीं लागै। बहुरि अपने स्वभावको जो प्रथा ताका प्राग्भार है, जाका भार अन्य सहारी शकै नाहीं। बहुरि अमल है, रागादिक विकारमलकरि रहित है। ऐसा परमात्माका स्वरूपकूं द्रव्यलिंगी नाहीं पावे है। अब इस अर्थकी गाथा कहे हैं। गाथा—

पाखंडियलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं ॥१०५॥

पाखंडिलिंगेषु वा गृहिलिंगेषु वा बहुप्रकारेषु।
कुर्वंति ये ममतां तैर्न ज्ञातः समयसारः ॥१०५॥

आत्मख्यातिः—ये खलु श्रमणोऽहं श्रमणोपासकोऽहमिति द्रव्यलिंगममकारेण मिथ्याहंकारं कुर्वंति तेऽनादिरूढव्यवहारविमूढाः प्रौढविवेकं निश्चयमनारूढाः परमार्थसत्यं भगवंतं समयसारं न पश्यंति।

अर्थ—जे पुरुष पाखंडिलिंगनिविषैं अथवा गृहस्थलिंगनिविषैं बहुत प्रकार हैं, तिनिविषैं ममता करे हैं, जो हमारे यह ही मोक्षके देनहारे हैं, तिनि पुरुषनिनैं समयसारकूं जान्या नाहीं।

टीका—जे पुरुष निश्चयकरि ऐसैं माने हैं, जो मैं श्रमण हौं, मुनि हौं अथवा श्रमणका उपासक हौं, सेवक हौं, श्रावक हौं, ऐसैं द्रव्यलिंगविषैं ममकारकरि मिथ्या अहंकार करे हैं, ते अनादिका प्रसिद्ध चल्या आया जो व्यवहार ताविषैं मूढ मोही भये संते प्रौढ कहिये बडा है भेदज्ञान जामैं ऐसा निश्चयनयकूं नाहीं प्राप्त भये संते परमार्थकरि सत्यार्थ जो भगवान् ज्ञानरूप समयसार ताहि नाहीं देखे हैं नाहीं पावे हैं।

भावार्थ—जे अनादिकालका परद्रव्यके संयोगतैं भया जो व्यवहार ताही विषैं मूढ मोही हैं, ते ऐसे जाने हैं, जो यह बाह्य महाव्रतादिरूप भेष है सो ही हमकूं मोक्ष प्राप्त करेगा। अर भेदज्ञानका जातैं जानना होय ऐसा निश्चयनयकूं नाहीं जाने हैं। तिनिकै सत्यार्थ परमात्मरूप

शुद्धज्ञानमय समयसारकी प्राप्ति नाहीं होय है। अब इस ही अर्थके कळशरूप काव्य कहे हैं।:

वियोगिनीछन्दः

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः। तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंडुलम् ॥४९॥

अर्थ—जे जन व्यवहारहीविषैं विमूढ मोही है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते परमार्थकूं नाहीं जाने हैं। जैसैं लोकविषैं जे तुसहीके ज्ञानविषैं विमुग्धबुद्धि जन हैं ते तुसहीकूं तंदुल जाने हैं। अर तंदुलकूं तंदुल नाहीं जाने हैं।

भावार्थ—जे परमार्थ आत्माका स्वरूप नाहीं जाने हैं अर व्यवहारहीविषैं मूढ होय रहे हैं. शरीरादि परद्रव्यहीकूं आत्मा जाने हैं ते परमार्थ आत्माकूं नाहीं जाने हैं। जैसैं तुष तंडुलका भेद तौ जाने नाहीं अर परालकूं कूटैं तिनिकै तंडुलकी प्राप्ति नाहीं। तुस तंडुलका भेदज्ञान भये संते तंडुल पावै। आगै इस ही अर्थकूं दृढ करनेकूं कहे हैं।

स्वागताछन्दः

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैर्दृश्यते समयसार एव न। द्रव्यलिङ्गमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥५०॥

अर्थ—द्रव्यलिंगके ममकारकरि मीलित हैं मो ही आंधे हैं तिनिकरि समयसार है सो देखिये ही नाहीं है। जातैं इस लोकविषैं द्रव्यलिंग है सो तौ अन्य द्रव्यतैं होय है। अर यह ज्ञान है सो आप आत्मद्रव्यतैं ही होय है।

भावार्थ—जे द्रव्यलिंगकूं ही आपा माने हैं ते आंधे हैं। तिनिकूं आपा पर सूझ्या नाहीं। आगै कहे हैं जो व्यवहारनय तौ मुनि श्रावकके भेदकरि लिंग दोय प्रकार हैं, तिनि दोऊकूं मोक्षमार्ग न कहे है अर निश्चयनय काहू ही लिंगकूं मोक्षमार्ग न कहे है। गाथा—

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ दु णिच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥१०६॥

व्यावहारिकः पुनर्नयो द्वे अपि लिंगे भणति मोक्षपथे ।
निश्चयनयस्तु नेच्छति मोक्षपथे सर्वलिंगानि ॥१०६॥

आत्मख्यातिः—यः खलु श्रमणश्रमणोपासकभेदेन द्विविधं द्रव्यलिंगं भवति मोक्षमार्ग इति प्ररूपणप्रकारः स केवलं व्यवहार एव न परमार्थस्तस्य स्वयमशुद्धद्रव्यानुभवनात्मकत्वे सति परमार्थत्वाभावात् । यदेव श्रमणश्रमणोपासकविकल्पानतिक्रांतं दृशिज्ञप्तिप्रवृत्तिमात्रं शुद्धज्ञानमेकमेवैकमिति निस्तुषसंचेतनं परमार्थः, तस्यैव स्वयं शुद्धद्रव्यानुभवात्मकत्वे सति परमार्थकत्वात् ततो ये व्यवहारमेव परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते समयसारमेव न संचेतयंते । य एव परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते एव समयसारं चेतयंते ।

अर्थ—व्यवहारनय है सो तौ मुनि श्रावकके भेदकरि दोय प्रकार लिंग हैं तिनि दोऊहोकूं मोक्षमार्ग कहे है । बहुरि निश्चयनय है सो सर्व ही लिंगकूं मोक्षमार्गविषैं नाहीं इष्ट करे है ।

टीका—निश्चयकरि श्रमण कहिये मुनि अर श्रमणके उपासक कहिये श्रावक ऐसैं दोय भेदकरि लिंग दोय प्रकार हैं । सो दोऊ ही लिंग मोक्षमार्ग है, ऐसा प्ररूपणका प्रकार है, सो केवल व्यवहार ही है । परामर्थ नाहीं है । जातैं इस व्यवहारनयके स्वयं अशुद्धद्रव्यका अनुभवस्वरूपपणा होतैं संतैं परमार्थपणाका अभाव है । बहुरि जो श्रमण अर श्रमणका उपासकके भेदतैं दूरिवर्ती दर्शनज्ञानचारित्रकी प्रवृत्तिमात्र निर्मलज्ञान ही एक है, ऐसा निर्मल अनुभवन सो परमार्थ है, सो ही मोक्षमार्ग है । जातैं ऐसैं ज्ञानहीके स्वयं शुद्धद्रव्यरूप होनेका स्वरूपपणा होते संतै परमार्थपणा है । तातैं जे पुरुष केवल व्यवहारहीकूं परमार्थबुद्धिकरि अनुभवे हैं ते समयसारकूं नाहीं चेते हैं, नाहीं अनुभवे हैं । बहुरि जे परमार्थहोकूं परमार्थकी बुद्धिकरि अनुभवे हैं, ते ही तिस सययसारकूं अनुभवे हैं ।

भावार्थ—व्यवहारनयका तौ विषय भेदरूप है । सो अशुद्ध द्रव्य है । सो परमार्थ नाहीं । अर निश्चयनयका विषय अभेदरूप शुद्धद्रव्य है सो परमार्थ है । सो जे व्यवहारहीकूं निश्चय मानि प्रवर्तें हैं तिनिकै समयसारकी प्राप्ति नाहीं है । अर जे परमार्थकूं परमार्थ जाने हैं

तिनिकै समयसारकी प्राप्ति होय है। ते ही मोक्षकूं पावे हैं। आगे कहे हैं, जो बहुत कहनेकरि पूरि पडौ, एक परमार्थहीका चिंतवन करना।

मालिनीछन्दः

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चिंत्यतां नित्यमेकः।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रान्न खलु समयसारादादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥५१॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं, जो अति बहुत कहनेकरि अर बहुत दुर्विकल्पनिकरि तौ पूरि पडो। इस अध्यात्मग्रन्थविषैं यह परमार्थ है, सो ही एक निरंतर अनुभवन करना। जातैं निश्चयकरि अपने रसका फैलावकरि पूर्ण जो ज्ञान ताका स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार परमात्मा तिसशिवाय अन्य किछू भी सार नाहीं है।

भावार्थ—पूर्णज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभवन करना। निश्चयकरि इस उपरांति किछू भी सार नाहीं है। आगैं इस समयसार ग्रंथकूं पूर्ण करे हैं। ताको सूचनिकाका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्। विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ॥५२॥

अर्थ—इदं कहिये यह समयप्राभृत है सो पूर्णताकूं प्राप्त होय है। कैसा है? अक्षय कहिये जाका विनाश न होय ऐसा जगतके अद्वितीय नेत्रसमान है। जातैं कहा करता है? विज्ञानघन जो शुद्ध परमात्मा समयसार आनंदमय ताकूं प्रत्यक्ष प्राप्त करता संता है।

भावार्थ—यह समयप्राभृत ग्रंथ है सो वचनरूप तथा ज्ञानरूप दोऊ ही प्रकार करि नेत्र-समान है। जातैं जैसैं नेत्र घटपटादिककूं प्रत्यक्ष दिखावे है तैसैं यह शुद्ध आत्माका स्वरूपकूं प्रत्यक्ष अनुभवगोचर दिखावे है। अब याकूं आचार्य पूर्ण करे हैं, सो याका महिमारूप पढनेका फलकी गाथा कहे हैं।

जो समयपाहुडमिणं पठिदूणय अच्छतच्चदो णादुं ।
अच्छे ठाहिदि चेदा सो पावदि उत्तमं सुक्खं ॥१०७॥

यः समयसारप्राभृतमिदं पठित्वाऽर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा ।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स प्राप्नोत्युत्तमं सौख्यम् ॥१०७॥

आत्मख्यातिः—यः खलु समयसारभूतस्य भवतः परमात्मनोऽस्य विश्वप्रकाशकत्वेन विश्वसमयस्य प्रतिपादनात् स्वयं शब्दब्रह्मायमाणं शास्त्रमिदमधीत्य विश्वप्रकाशनसमर्थपरमार्थभूतचित्प्रकाशरूपपरमात्मानं निश्चिन्वन् अर्थतस्तत्त्वतश्च परिच्छिद्य अस्यैवार्थभूतं भगवति एकस्मिन् पूर्णविज्ञानघने परमब्रह्मणि सर्वारंभेण स्थास्यति चेतयिता, स साक्षात्तत्क्षणविजृंभमाणचिदेकरसनिर्भरस्वभावसुस्थितनिराकुलात्मरूपतया परमानंदशब्दवाच्यमुत्तममनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं स्वयमेव भविष्यतीति ।

अर्थ—जो चेतयिता पुरुष भव्यजीव इस समयप्राभृतकूं पढिकरि अर अर्थतैं अर तत्त्वतैं जानिकरि अर याका अर्थविषैं तिष्ठेगा सो उत्तमसौख्यस्वरूप होयगा ।

टीका—जो चेतयिता भव्यपुरुष आत्मा निश्चयकरि इस शास्त्रकूं पढिकरि अर समस्तपदार्थनिका प्रकाशनेविषैं समर्थ ऐसा परमार्थभूत चैतन्यप्रकाशरूप आत्माकूं निश्चय करता संता अर्थतैं अर यथार्थ तत्त्वतैं जाणि, अर याहीका अर्थभूत जो भगवान् एक पूर्णविज्ञानघनस्वरूप परब्रह्म ताविषैं सर्वप्रकार उद्यम आरंभ करिकै अर तिष्ठेगा सो पुरुष, उत्तम अनाकुलता है लक्षण जाका ऐसे सुखरूप स्वयमेव आप ही होयगा । कैसा है यह शास्त्र समयसारभूत भगवान् परमात्मा ? समस्तका प्रकाशनेवालापणाकरि जाकूं विश्वसमय कहिये, ताके प्रकाशनेतैं आप स्वयं शब्दब्रह्मसारिखा है । बहुरि जिस सुखकूं प्राप्त होयगा सो सुख कैसा है ? तत्काल उदयरूप प्रगट होता एक चैतन्यरसकरि भरया अपने स्वभावविषैं भलै प्रकार तिष्ठया निराकुल आत्मस्वरूपपणाकरि परमानंद शब्दकरि कहने योग्य है ।

भावार्थ—इस शास्त्रका नाम समयप्राभृत है। सो समय नाम पदार्थका है ताका कहनेवाला है। तथा समय नाम आत्मा है ताका कहनेवाला है। सो आत्मा समस्त पदार्थनिका प्रकाशनेवाला है। ताकूं यह कहे है। सो समस्तपदार्थनिका कहनेवाला होय ताकूं शब्दब्रह्म कहिये। सो ऐसैं आत्माकूं कहनेतैं इस शास्त्रकूं शब्दब्रह्मसारिखा कहिये। शब्दब्रह्म तौ द्वादशांगशास्त्र है, ताकी उपमा याकूं भी है सो यह शब्दब्रह्म परब्रह्म जो शुद्धपरमात्मा ताकूं साक्षात् दिखावे है। जो इस शास्त्रकूं पढिकरि याके यथार्थ अर्थविषैं ठहरेगा सो परब्रह्मकूं पावेगा। याहीतैं उत्तमसौख्य जाकूं परमानंद कहिये ऐसा स्वात्मिक स्वाधीन जामें बाधा नाहीं विच्छेद नाहीं अविनाशी ऐसा सुख पावेगा याहीतैं भव्यजीव अपना कल्याणके अर्थी याकूं पढो, सुणू, निरंतर याहीका स्मरण ध्यान राखो ज्यौं अविनाशीसुखकी प्राप्ति होय। यह श्रीगुरुनिका उपदेश है। अब इस सर्वविशुद्धज्ञानका अधिकारकी पूर्णताका कलशरूप श्लोक कहे हैं।

अनुष्टुप् छन्दः

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्। अखण्डमकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥५३॥

अर्थ—इति कहिये याप्रकार आत्माका तत्त्व कहिये परमार्थभूत स्वरूप ज्ञानमात्र अवस्थित भया निश्चित ठहरया। कैसा है ज्ञानमात्रतत्त्व? अखंड है अनेक ज्ञेयाकारकरि तथा प्रतिपक्षि कर्मकरि खंड खंड दीखे है, तौऊ ज्ञानमात्रविषैं खंड नाहीं है। बहुरि याहीतैं एकरूप है। बहुरि अचल है ज्ञानरूपतैं चल न होय अर ज्ञेयरूप नाहीं है। बहुरि स्वसंवेद्य है आपहीकरि आप जाननेयोग्य है। बहुरि अबाधित है काहू खोटी युक्तिकरि बाध्या नाहीं जाय है।

भावार्थ—इहां आत्माका निजस्वरूप ज्ञान ही कह्या है। जातैं आत्मामैं अनंत धर्म हैं, तिनिमैं केई तौ साधारण हैं, ते तौ अतिव्याप्तिरूप हैं। तिनितैं आत्मा पिछाण्या जाय नाहीं। बहुरि केई पर्यायाश्रित हैं, कोई अवस्थामैं है कोईमैं नाहीं है, ते अव्याप्तिरूप हैं। तिनितैं भी आत्मा पिछाण्या जाय नाहीं। बहुरि चेतनता है सो यद्यपि लक्षण है तथापि शक्तिमात्र है, सो अदृष्ट

है। तातैं ताकी व्यक्ति दर्शन ज्ञान हैं। तिनिमैं ज्ञान साकार है, प्रकट अनुभवगोचर है। तातैं याहीके द्वारै आत्मा पहिचान्या जाय है। तातैं या ज्ञानहीकूं प्रधानकरि आत्मतत्त्व कह्या है। ऐसा मति जानूं, जो आत्माकूं ज्ञानमात्र तत्त्व कह्या है। सो एता ही परमार्थ है अन्य धर्म झूटे हैं आत्मामैं नाहीं हैं ऐसा सर्वथा एकांत किये मिथ्यादृष्टि होय है। विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धका मत आवे है। तथा वेदांतका मत आवे है। सो ऐसा एकांत बाधासहित है। ऐसा एकांत अभिप्रायकरि मुनिव्रत भी पालै, अर आत्माका ज्ञानमात्रका ध्यान भी करे तौ मिथ्यात्व कटै नाहीं। मन्दकषायनिके वशतैं स्वर्ग पावे तौ पावो, मोक्षका साधन तौ होय नाहीं। तातैं स्याद्वादकरि यथार्थ समजना। ऐसैं इहां तांई गाथाका व्याख्यान अर तिस व्याख्यानके कलशरूप तथा सूचनिकारूप काव्य टीकाकारनैं किये। अब इहां टीकाकार विचारे हैं—जो इस ग्रंथमैं ज्ञानकूं प्रधानकरि ज्ञानमात्र आत्मा कहते आये। तहां कोई ऐसा तर्क करै, जो जैनमत तौ स्याद्वाद है, ज्ञानमात्र कहनेमैं एकांत आया, स्याद्वादतैं विरोध आया। तथा एक ही ज्ञानमैं उपायतत्त्व अर उपेयतत्त्व ए दोय कैसैं बणैं? ऐसैं तर्कके निराकरणके अर्थि किछू कहिये हैं। ताका श्लोक है।

अनुष्टुप्छन्दः

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः। उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥५४॥

अर्थ—इहां इस अधिकारविषैं स्याद्वादके शुद्धताके अर्थि वस्तुतत्त्वकी व्यवस्था है सो विचारिये है तथा एक ही ज्ञानमैं उपायभाव अर उपेयभाव किछु एक फेरि भी विचारिये है।

भावार्थ—यद्यपि इहां ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व कह्या है तथापि वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक अनेक धर्मस्वरूप है, सो स्याद्वादतैं सधे है। सो ज्ञानमात्र आत्मा भी वस्तु है, ताकी व्यवस्था स्याद्वादकरि साधिये है। अर इस ज्ञानहीमैं उपायभाव अर उपेयभाव कहिये साध्यसाधकभाव विचारिये है। अब याकी व्यवस्था कहे हैं। स्याद्वाद है सो समस्तवस्तूका साधनेवाला एक निर्बाध अर्हत्सर्वज्ञका शासन है मत है। सो स्याद्वाद सर्ववस्तु अनेकांतात्मक हैं ऐसैं कहे है।

जातें सर्व ही वस्तूका अनेकांतात्मक कहिये अनेकधर्मरूप स्वभाव है। असत्यार्थ कल्पनाकरि नाहीं कहे है। जैसा वस्तूका स्वभाव है तैसा ही कहे हैं। सो इहां आत्मा नामा वस्तूकूं ज्ञानमात्रपणाकरि कहते संते स्याद्वादका परिकोप नाहीं है। ज्ञानमात्र आत्मवस्तूके भी स्वयमेव अनेकांतात्मकपणा है। सो कैसा है सो ही कहे हैं। तहां अनेकांतका ऐसा स्वरूप है, जो जोही वस्तु तत्स्वरूप है, सो ही वस्तु अतत्स्वरूप है। वहुरि जो ही वस्तु एकस्वरूप है सो ही वस्तु अनेकस्वरूप है।

वहुरि जो ही वस्तु सत्स्वरूप है सो ही वस्तु अतत्स्वरूप है। वहुरि जो ही वस्तु नित्यस्वरूप है सो ही वस्तु अनित्य स्वरूप है। ऐसें एकवस्तुविषें वस्तुपणाकी निपजावनहारी परस्परविरुद्ध दोय, शक्तिका प्रकाशना सो अनेकांत है। सो ऐसी विरुद्ध दोय शक्ति अपना आत्मवस्तूके ज्ञानमात्रपणा होतै भी पाइए हैं सो ही कहिये हैं। आत्माकै ज्ञानमात्रपणा होतै भी अंतरंगविषें चिमकता प्रकाशमान् जो ज्ञानस्वरूप ताकरि तौ तत्स्वरूपपणा है। वहुरि बाह्य उघडते अनंत ज्ञेयभावकूं प्राप्त अर ज्ञानस्वरूपतें भिन्न जे परद्रव्यनिके रूप, तिनिकरि अतत्स्वरूपपणा है। तिनि स्वरूपज्ञान नाहीं है। वहुरि सहभूत प्रवर्तते अर क्रमरूप प्रवर्तते जे अनंत चेतन्यके अंश तिनिका समुदायरूप अविभागरूप जो द्रव्यपणा ताकरि तौ एकपणा है। वहुरि अविभाग एकद्रव्यविषें व्याप्त जे सहभूत प्रवर्तते अर क्रमरूप प्रवर्तते चेतन्यके अनंत अंश, तिनिरूप पर्याय, तिनिकरि अनेकपणा है। वहुरि अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप होनेकी शक्तीका स्वभावपणाकरि सत्स्वरूप है। वहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावकी होनेकी शक्तीका स्वभावपणाकै अभावकरि असत्स्वरूप है। वहुरि अनादिनिधन अविभाग एकवृत्तिरूप जो परिणमन तिसपणाकरि नित्यपणा स्वरूप है। वहुरि क्रमकरि प्रवर्तते जे एकसमयपरिमाण अनेकवृत्तीके अंश तिनिकरि परिणमनेपणाकरि अनित्यपणा स्वरूप है। ऐसैं ततूपणा, अततूपणा, एकपणा अनेकपणा, सतूपणा, असतूपणा, नित्यपणा अनित्यपणा प्रकट प्रकाशै ही है। इहां तर्क, जो आत्मवस्तूके ज्ञानमात्रपणा होते

भी स्वमेव अनेकांत प्रकाशे है, तौ अर्हंत भगवान् तिसकें साधनपणाकरि अनेकांतकूं कौन अर्थी अनुशासन करे हैं—उपदेशरूप करे हैं ? ताका समाधान—जो अज्ञानी जन हैं तिनिके ज्ञानमात्र आत्मवस्तूका प्रसिद्ध करनेके अर्थी कहे हैं। निश्चयकरि अनेकांतविना ज्ञानमात्र आत्मवस्तु ही प्रसिद्ध नाहीं होय है। सो ही कहिये है। स्वभाव ही थकी बहुत भावनिकरि भरया जो यह लोक ताविषैं सर्वभावनिकै अपने अपने स्वभावकरि अद्वैतपणा है। तौऊ द्वैतपणाका निषेध करनेका असमर्थपणा है। तातैं समस्त ही वस्तु है सो स्वरूपविषैं प्रवृत्ति अर पररूपतैं व्यावृत्ति इनि दोऊ रीतिकरि दोऊ भावनिकरि आश्रित है, युक्त है. यह नियम है। सो ही ज्ञानमात्र भावविषैं लगावना। तहां ज्ञानभाव है सो अन्य बाकीके ज्ञेयभावनिकरि सहित अपना निजज्ञानरसका भरकरि प्रवर्त्या जो ज्ञाताज्ञेयका संबंध तिसपणाकरि अनादिहीतैं ज्ञेयाकार परिणमता ही दीखे है। तातैं जो अज्ञानी जन है सो ज्ञान तत्त्वकूं ज्ञेयरूप अंगीकार करि अज्ञानी होयकरि अर आप नाशकूं प्राप्त होय है। तिस काल यह अनेकांत है, सो अपना ज्ञानस्वरूपकरि ज्ञेयतैं भिन्न ज्ञानतत्त्वकूं प्रकट करि अर इस आत्माकूं ज्ञातापणाकरि परिणमनतैं ज्ञानी करता संता तिस आत्माकूं उदयरूप करे है। नाश न होने दे है ॥२॥

बहुरि अज्ञानी जन जिस काल ऐसैं माने हैं, जो यह सर्व जगत है सो निश्चयकरि एक आत्मा है। ऐसैं अज्ञानतत्त्वकूं अपना ज्ञानस्वरूपकरि अंगीकार करि अर समस्त जगतकूं आपा मानि ग्रहण करि, अपना भिन्न आत्माका नाश करे है। तिस काल परभावस्वरूपकरि अतत् कहिये सर्व जगत् एक ही आत्मा नाहीं है, ऐसैं भिन्न आत्मस्वरूपपणा प्रकट करि अर यहअनेकांत है सो समस्त जगत्तैं भिन्न ज्ञानकूं दिखावता संता आत्माका नाश नाहीं करने दे है। २।

बहुरि जिस काल अनेक ज्ञेयनिके आकारनिकरि खंड खंड रूप किया जो एक ज्ञानका आकार ताकूं देखि एकांतवादी ज्ञानतत्त्वकूं नाशकूं प्राप्त करे है। तिस काल यह अनेकांत है सो ज्ञानतत्त्वके द्रव्यकरि एकपणाकूं प्रकट करता संता ताकूं जीवावै है। नाश नाहीं होने देवे है।३।

बहुरि जिस काल एकांती ज्ञानका एक आकारका ग्रहण करनेके अर्थि अनेक ज्ञेयनिके आकार ज्ञानमैं आवै हैं, तिनिका त्याग करि अर ज्ञानस्वरूप आत्माका नाश करै है। तिस काल यह अनेकांत है सो ज्ञानके पर्यायनिकरि अनेकपणाकूं प्रकट करता संता आत्माका नाश नाहीं करने दे है।४।

बहुरि जिस काल एकांती है सो ज्ञायमान ज्ञानमैं आवते जे परद्रव्य तिनिके परिणमनतैं ज्ञाताद्रव्यकूं परद्रव्यपणाकरि अंगीकार करि आत्माका नाश करै है। तिस काल अपना स्वद्रव्यकरि आत्माका सत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही तिस आत्माकूं जीवावै है नाश नाहीं होने दे है।५।

बहुरि जिस काल एकांती है, सो सर्वद्रव्य है ते मेही हौं ऐसैं परद्रव्यनिकूं ज्ञाताद्रव्यकरि अंगीकार करि आत्माका नाश करै है, तिस काल परद्रव्यरूप आत्मा नाहीं है, ऐसैं परद्रव्यकरि आत्माका असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही नाश करने नाहीं दे है।६।

बहुरि परक्षेत्रविषैं प्राप्त जे ज्ञेय पदार्थ तिनिके आकार तिनिसारिखा परिणमनेतैं परक्षेत्रहीकरि ज्ञानकूं सद्रूप अंगीकार करि एकांती नाशकूं प्राप्त करै है, तिस काल अपना क्षेत्रकरि अस्तित्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही जीवावै है, नाश नाहीं होने दे है।७।

बहुरि अपने क्षेत्रविषैं होनेके अर्थि परक्षेत्रविषैं प्राप्त ज्ञेय तिनिका आकार ज्ञानका होना ताका त्यागकरि ज्ञानकूं ज्ञेयाकाररहित तुच्छ करता संता एकांती आत्माका नाश करै है तिस काल अनेकांत है सो ज्ञानकै अपना क्षेत्रविषैं परक्षेत्रविषैं प्राप्त जे ज्ञेय तिनिके आकाररूप परिणमनेका स्वभावपणा है, ऐसैं परक्षेत्रकरि नास्तिपणाकूं प्रगट करता संता नाश करने न दे है।८।

बहुरि जिस काल पूर्वे आलंबे थे ज्ञेय पदार्थ तिनिका विनाशका कालविषैं ज्ञानका असत्त्वकूं अंगीकार करि एकांती ज्ञानकूं नाशकूं प्राप्त करै है, तिस काल अपना ज्ञानहीका कालकरि अज्ञानका सत्त्वकूं प्रगट करता संता अनेकांत ही ज्ञानकूं जीवावै है, नाश न होने दे है।९।

बहुरि जिस काल अर्थका आलंबनका कालहीविषैं ज्ञानका सत्त्वकूं ग्रहणकरि एकांती आत्मा-का नाश करे है तिस काल परके कालकरि असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही नाश होने न दे है ।१०।

बहुरि जिस काल ज्ञायमान ज्ञाननेमैं आवता जो परभाव ताके परिणमनके आकार दिखता जो ज्ञायकभाव ताकूं परभावकरि ग्रहणकरि अर ज्ञानभावकूं एकांती नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल स्वभावकरि ज्ञानका सत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत ही ज्ञानकूं जीवावे है नाश न होने दे है ।११।

बहुरि जिस काल एकांती है सो ऐसा मनावे है 'जो सर्व भाव है ते मैं हौं' ऐसैं परभावकूं ज्ञायकपणाकरि अंगीकार करि अर आत्माका नाश करे है, तिस काल परभावनिकरि ज्ञान-का असत्त्वकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही आत्माका नाश न होने दे है ।१२।

बहुरि जिस काल अनित्य जे ज्ञानके विशेष तिनिकरि खंडित भया जो नित्यज्ञानसामान्य, सो नाशकूं प्राप्त होय है ऐसा एकांत स्थापैं, तिस काल ज्ञानका सामान्यरूपकरि नित्यपणाकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही नाश करने न दे है ।१३।

बहुरि जिस काल नित्य जो ज्ञानसामान्य ताका ग्रहण करनेके अर्थि अनित्य जे ज्ञानके विशेष तिनिका त्यागकरि एकांत है सो आत्माकूं नाशकूं प्राप्त करे है, तिस काल ज्ञानके विशेष-रूपकरि अनित्यपणाकूं प्रकट करता संता अनेकांत है सो ही तिस आत्माकूं जीवावे है, नाश होने न दे है ।१४।

ऐसैं चौदह भंगनिकरि ज्ञानमात्र आत्माकूं एकांतकरि तौ आत्माका अभाव होना अर अनेकांतकरि आत्माका ठहरना दिखाया । तहां तत् अतत्, अर एक अनेक, नित्य अनित्य, ऐसैं तौ छह भंग भये । अर सत्त्व असत्त्वके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि आठ भंग किये, ऐसे चौदह भंग जानने अब इनिके कलशरूप १४ काव्य हैं, सो कहिये हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत् विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुनर्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥२॥

अर्थ—पशु कहिये अज्ञानी तिर्यंचसमान सर्वथा एकांती, ताका ज्ञान है सो बाह्य ज्ञेय पदार्थनिकरि समस्तपणे पीया गया ऐसा होता संता छोडि जो अपनी व्यक्ति तिनिकरि रीता भया संता समस्तपणेकरि पररूपहीके विषैं विश्रांत भया रहि गया। अपना रूप किछू भी न रह्या, सो नष्ट भया। बहुरि स्याद्वादीका ज्ञान है सो जो अपने स्वरूपतैं जो है सो यत्स्वरूप ही है ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसैं तत्स्वरूप भया संता अतिशयकरि प्रकट भया जो ज्ञानका समूहरूप स्वभाव ताके भरतैं संपूर्ण उदयरूप प्रकट होय है।

भावार्थ–कोई सर्वथा एकांती तौ ज्ञानकूं ज्ञेयाकारमात्र ही माने है। ताके तौ ज्ञानकूं ज्ञेय पीय गये आप कछू न रह्या। बहुरि स्याद्वादी ज्ञान अपने स्वरूपकरि ज्ञान ही है, ज्ञेयाकार भया तौऊ ज्ञानपणाकूं नाहीं छोडे है, ऐसैं माने हैं। तातैं तत्स्वरूप ज्ञान प्रकट प्रकाशमान है। पुनः—

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया भूतो विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते ।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुनर्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥३॥

अर्थ—पशु कहिये अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है सो, समस्त ज्ञेयपदार्थ है सो ज्ञानमय है, ऐसैं विचारि करि, अर सकल जगतकूं निजतत्त्वकी आशाकरि देखि आप समस्त वस्तुमयी होय। अर तिर्यंचकी ज्यौं स्वच्छंद चेष्टा करे है। बहुरि स्याद्वादका देखनेवाला है सो तिस ज्ञानका निज स्वरूपकूं ऐसा देखे है, जो अपने ज्ञानस्वरूपतैं तत्स्वरूप है। सो पर जे ज्ञेयस्वरूप तिनितैं तत्स्वरूप नाहीं है। ऐसैं समस्त वस्तुतैं भिन्न अर समस्तज्ञेयवस्तुनिकरि घड्या तौऊ समस्त ज्ञेयस्वरूप नाहीं, ज्ञेयाकाररूप भया तौऊ न्यारा ऐसा ज्ञानका स्वरूप अनुभवे है।

भावार्थ–जो वस्तु अपना स्वरूपतैं तत्स्वरूप है सो ही वस्तु परका स्वरूपतैं अतत्स्वरूप है ऐसैं स्याद्वादी देखे है। सो ज्ञान अपना स्वरूपतैं तत्स्वरूप है। तैसैं ही पर ज्ञेयनिका आकाररूप भया है तौऊ तिनितैं भिन्न है। तातैं असत्स्वरूप है। अर एकांतवादी समस्तवस्तुरूप ज्ञानकूं मानि आपाकूं तिनि ज्ञेयमयी मानि अज्ञानी होय पशुकी ज्यौं स्वच्छंद प्रवर्तै है। ऐसा अतत्स्वरूपका भंग है। पुनः—

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदाऽप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥४॥

अर्थ–पशु कहिये अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है सो ज्ञानका स्वभाव बाह्य ज्ञेयपदार्थका ग्रहणरूप है ताके भरतैं समस्त अनेक उदय भये प्रकट ज्ञानमैं आये जे ज्ञेयनिके आकार तिनिकरि खण्ड खण्ड बिगडी है शक्ति जाकी ऐसा भया संता समस्तपणैंकरि तूटता खण्ड खण्ड होता आप नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि अनेकांतका जाननेवाला है सो सदा उदयरूप जो ज्ञानका एकद्रव्यपणा तिसकरि ज्ञेयनिके आकार होनेतैं भया जो सर्वथा भेदका भ्रम ताहि दूरि करता संता निर्बाध अनुभवन स्वरूप ज्ञानकूं एक देखे है।

भावार्थ–ज्ञान है सो ज्ञेयनिके आकार परिणमनेतैं अनेक दीखे है। ताकूं सर्वथा एकांतवादी अनेक खण्डखण्डरूप देखता संता ज्ञानमय जो आपा ताका नाश करे है। अर स्याद्वादी ज्ञानकूं ज्ञेयाकार भया है तौऊ सदा उदयरूप द्रव्यपणाकरि एक देखे है। यह एकस्वरूप भंग है। पुनः—

ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पयन्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन् पश्यत्यनेकान्तवित् ॥५॥

अर्थ—पशु अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी है। सो ज्ञेयनिके आकारनिकरि कलंककरि अनेकाकाररूप मलिन जो चैतन्य ताविषैं एक चैतन्यकामात्र आकार करनेकी इच्छा करि प्रक्षालन कहिये

धोवना कल्पता संता ज्ञान अनेकाकार प्रकट है तौऊ ताकूं नाहीं माने है एकाकार ही मानि ज्ञानका अभाव करे है। वहुरि अनेकांतका जाननेवाला है सो ज्ञेयाकारकरि ज्ञानका विचित्रपणा है तौऊ एकपणाकूं प्राप्त ज्ञान है सो आप स्वयमेव प्रक्षाल्या हुवा शुद्ध है, एकाकार है अर पर्यायनिकरि ताके अनेकताकूं अनुभवे है।

भावार्थ—एकांतवादी तो ज्ञानविषैं ज्ञेयाकारकूं मेल जाणि एकाकार करनेकूं ज्ञेयाकारकूं धोय दूरि करि ज्ञानका नाश करे है। वहुरि अनेकांती ज्ञानकूं स्वरूपकरि अनेकाकारपणा माने है। सो ऐसा वस्तुस्वभाव है सो सत्यार्थ है ऐसा अनेकस्वरूप भंग है। पुनः—

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन्जीवति ॥८॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो प्रत्यक्षप्रमाणकरि आलिखित कहिये चितरया हुवा दीखता स्फुट प्रकट स्थूल अर स्थिर कहिये निश्चल ऐसा परद्रव्यकूं देखि तिसका अस्तित्वकरि ठिग्या हुवा अपना निज आत्मद्रव्यका अस्तित्व नाहीं देखनेकरि समस्तपणें सर्वथाशून्य होता आपाका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी है सो अपना निजद्रव्यका अस्तिपणाकरि निपुण जैसें होय तैसें निज आत्मद्रव्यका निरूपणकरि तत्काल प्रकट होता जो विशुद्धज्ञानरूप तेज ताकरि पूर्ण होता जीवे है। नष्ट न होय है।

भावार्थ--एकांती बाह्य परद्रव्यकूं प्रत्यक्ष देखि ताहीका अस्तित्व मान्या। अर अपना आत्मद्रव्य इंद्रियप्रत्यक्षकरि दीख्या नाहीं। जाकूं शून्य मानि आत्माका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी ज्ञानरूप तेजकरि अपना आत्मद्रव्यका अस्तित्वके अवलोकनकरि आप जीवे है, आपाका नाश नाहीं करे है। यह स्वद्रव्यअपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः--

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥७॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो पुरुष जो आत्मा ताकूं सर्वद्रव्यमयी एक कल्पिकरि अर कुनयकी वासनाकरि वासित हुवा प्रकट परद्रव्यविषैं स्वद्रव्यका भ्रमकरि विश्रामकरे है। बहुरि स्याद्वादी है सो समस्त ही वस्तूविषैं परद्रव्यस्वरूप करि नास्तिताकूं जानता संता निर्मल है शुद्धज्ञानकी महिमा जाकी ऐसा हुवा स्वद्रव्यहीकूं आश्रय करे है।

भावार्थ—एकांतवादी तौ सर्वद्रव्यमय एक आत्माकूं मानि परद्रव्य अपेक्षा नास्तिता है ताका लोप करे है। अर स्याद्वादी समस्तविषैं परद्रव्य अपेक्षा नास्तिता मानि अपना निजद्रव्य-है रमे है। यह परद्रव्य अपेक्षा नास्तिताका भंग है। पुनः—

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा सीदत्येव बहिः पतन्तमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः ।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनि खातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥८॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो भिन्नक्षेत्रविषैं तिष्ठ्या जे ज्ञेयपदार्थ तिनिविषैं ज्ञेय-ज्ञायकसंबंधरूप निश्चितव्यापारविषैं तिष्ठ्या संता पुरुषकूं समस्तपणे बाह्यज्ञेयनिविषैं ही पडता संता ताकूं देखता संता कष्टहीकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादका जाननेवाला है सो अपने क्षेत्रविषैं अपना अस्तिपणाकरि रोक्या है अपना रभस ज्यानैं ऐसा भया संता आत्माहीविषैं आकाररूप भये जे ज्ञेय तिनिका निश्चयव्यापारकी शक्तिरूप होता संता अपने क्षेत्रहीविषैं अस्तित्वरूप तिष्ठे है।

भावार्थ—एकांतवादी तौ भिन्नक्षेत्रविषैं ज्ञेय पदार्थ तिष्ठे हैं तिनिके जाननेके व्यापाररूप होता पुरुषको बाह्य पडता ही मानि नष्ट करे है। बहुरि स्याद्वादी अपना क्षेत्रविषैं ही तिष्ठ्या पुरुष अन्यक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेयनिकूं जानता संता अपने क्षेत्रहीविषैं अस्तित्वकूं धारे है, ऐसा मानता संता आत्माहीविषैं तिष्ठे है। यह स्वक्षेत्रविषैं अस्तित्वका भंग है। पुनः—

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकाराद् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥९॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो अपना क्षेत्रविषैं तिष्ठनेके अर्थी न्यारे न्यारे परक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेय पदार्थ तिनिके छोडनेतैं तुच्छ होयकरि अपने चेतन्यके ज्ञेयरूप आकारनिकूं परज्ञेय अर्थकी साथि वमता संता जैसैं अर्थनिकूं छोडै तैसैं चैतन्यके आकारनिकूं भी छोडै। तव आपा तुच्छ रह्या। ऐसा आपका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी अपने क्षेत्रविषैं वसता संता परक्षेत्र विषैं अपनी नास्तिताकूं जानता संता यद्यपि परक्षेत्र ज्ञेय पदार्थनिकूं छोडे है तौऊ अपने चैतन्यके ज्ञेयरूप आकार भये तिनिकूं परतैं खेचनेवाला होता तुच्छताकूं नाहीं अनुभवे है नष्ट नाहीं होय है।

भावार्थ—एकांती तौ परक्षेत्रविषैं तिष्ठते ज्ञेयपदार्थनिके आकार चैतन्यके आकार भये तिनिकूं जैसैं अर्थनिकूं छोडे है तैसैं चैतन्यके आकारनिकूं भी छोडे है ऐसैं जाने है। चैतन्यके आकारनिकूं अपना करूंगा तौ अपना क्षेत्र छुटि जायगा। तातैं आप चैतन्यके आकाररहित होय तुच्छ होय है, नष्ट होय है। वहुरि स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थनिकूं छोडे है, तौऊ अपने चैतन्यके आकारनिकूं छोडे नाहीं है। अपने क्षेत्रविषैं वसता परक्षेत्रविषैं अपनी नास्तिताकूं जानता तुच्छ नाहीं होय है, नष्ट नाहीं होय है। यह परक्षेत्र अपेक्षा नास्तिताका भंग है। पुनः—

पूर्वालम्बितवोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन् सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः पूर्णस्तिष्ठति वाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥१०॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो पूर्वकालमैं आलंवे जे ज्ञेयपदार्थ तिनिका नाश होनेके समय विषैं ज्ञानका भी नाशकूं जानता संता किछू भी नाहीं जानता संता तुच्छ भया नाशकूं प्राप्त होय है। वहुरि स्याद्वादका वेदी है सो इस आत्माका अपने कालतैं अस्तित्वकूं जनता संता वाह्यवस्तु वारंवार होयकरि नष्ट होते संते भी आप पूर्ण हो तिष्ठे है।

भावार्थ—पहिले ज्ञेय पदार्थ जाने थे उत्तरकालमैं विनसि गये तिनिकूं देखि एकांती अपना ज्ञानका भी नाश मानि अज्ञानी हुवा आत्माका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थनिकूं

नष्ट होतैं भी अपना अस्तित्व अपना ही कालतैं मानता नष्ट न होय है। यह स्वकाल अपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः—

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहिर्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन् ॥११॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो ज्ञेयपदार्थके आलम्बनकाल ही ज्ञानका अस्तित्व जानता संता बाह्यज्ञेयका आलंबनविषैं चित्तकूं अनुरागसहित करि अर बाह्य भ्रमता संता नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादका वेदी है सो परकालतैं अपना आत्माका नास्तित्वकूं जानता संता आत्माविषैं उकिरथा जो नित्य स्वाभाविक ज्ञानपुंज तिस स्वरूप होता संता तिष्ठे है, नष्ट न होय है।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञेयके आलंबनके काल ही ज्ञानका सत्त्व जाने है सो ज्ञेयके आलंबनविषैं मन लगाय बाह्य भ्रमता संता नष्ट होय है। बहुरि स्याद्वादी ज्ञेयके कालतैं अपना अस्तित्व नाहीं जाने है, अपने ही कालतैं अपना अस्तित्व जाने है। तातैं ज्ञेयतैं न्यारा ही अपना ज्ञानका पुंजरूप होता नष्ट न होय है। यह परकाल अपेक्षा नास्तित्वका भंग है। पुनः—

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मिन्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन् स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥१२॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो परभावकूं ही अपना भाव जाननेतैं बाह्यवस्तुनिविषैं विश्राम करता संता अपना स्वभावकी महिमाविषैं एकांतकरि निश्चेतन भया जड होता संता आप नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि स्याद्वादी है सो सर्व ही वस्तुनिविषैं अपना निश्चित नियमरूप जो स्वभावभावका भवनस्वरूप ज्ञान तातैं सर्वतैं न्यारा होता संता सहजस्वभावका स्पष्ट प्रत्यक्ष अनुभवरूप किया है प्रत्यय कहिये प्रतीतिरूप जानपना जाने ऐसा भया नाशकूं प्राप्त नाहीं होय है।

भावार्थ—एकांती तौ परभावकूं निजभाव जानि वाह्यवस्तूहीविषैं विश्राम करता संता आत्माका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी अपना ज्ञानभाव यद्यपि ज्ञेयाकार होय है, तथापि ज्ञान–हीकूं अपना भाव जानता संता आपाका नाश नाहीं करे है। यह अपना भावकी अपेक्षा अस्तित्वका भंग है। पुनः—

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरादारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कम्पितः ॥१३॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो अपने आत्माविषैं सर्वज्ञेयपदार्थनिका होना निश्चय करि अर शुद्धज्ञानस्वभावतैं च्युत भया संता सर्वपदार्थनिविषैं निःशंक वर्जनारहित स्वेच्छाचारी भया क्रीडा करे है। अपना भावका लोप करे है। वहुरि स्याद्वादी है सो अपना ही भावविषैं सर्वथा आरूढ भया परभावका अपने भावविषैं अभावका प्रकटपणा है ताकरि निश्चय भया शुद्ध ही शोभायमान है।

भावार्थ—एकांती तौ परभावनिकूं आपा जानि अपने शुद्धस्वभावसूं च्युत भया सर्वत्र निःशंक स्वेच्छातैं प्रवर्तें है। वहुरि स्याद्वादी परभावनिकूं जाने है तौऊ तिनितैं न्यारा अपना आ-त्माकूं शुद्धज्ञानस्वभाव अनुभवता संता सोभै है। यह परभाव अपेक्षा नास्तित्वका भंग है। पुनः—

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्क्षणभङ्गसङ्गपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं टङ्कोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥१४॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो उत्पादव्ययकरि लक्षित प्राप्त होता जो ज्ञान ताके अंशनिकरि नानास्वरूपका निर्णयका ज्ञानतैं क्षणभंगका संगमैं पड्या वाहुल्यपणे आपाका नाश करे है। वहुरि स्याद्वादी है सो चैतन्यस्वरूपकरि चैतन्यवस्तूकूं नित्य उदयरूप अनुभवता संता टंकोत्कीर्णघनस्वभाव है महिमा जाकी ऐसा ज्ञानरूप होता संता जीवै है। आपाका नाश नाहीं करे है।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञेयके आकारवत् ज्ञानकूं उपजता विनसता देखि अर क्षणभंगकी संगतीवत् आपाका नाश करे है । बहुरि स्याद्वादी है सो ज्ञान ज्ञेयकी साथि उपजै विनशै है तौऊ चैतन्यभावका नित्य उदय अनुभवता संता ज्ञानी होता जीवे है, आपाका नाश नाहीं करे है । यह नित्यपणाका भंग है । पुनः—

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नः पशुः किंचन ।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ॥१५॥

अर्थ—पशु अज्ञानी एकांतवादी है सो टंकोत्कीर्ण निर्मलज्ञानका फैलावस्वरूप एक आकार जो आत्मतत्त्व, ताकी आशाकरि अर आपविषैं उछलती जो निर्मल चैतन्यकी परिणिति, तातैं न्यारा किछू आत्माकूं चाहे है । सो किछू है नाहीं । बहुरि स्याद्वादी है सो नित्य ज्ञान है सो अनित्यताकूं प्राप्त होते भी उज्वल देदीप्यमान चैतन्यवस्तुकी प्रवृत्तिके क्रमतैं ज्ञानके अनित्यताकूं अनुभवता संता ज्ञानकूं अंगीकार करे है ।

भावार्थ—एकांती तौ ज्ञानकूं एकाकार नित्य ग्रहण करनेकी वांछा करि अर ज्ञानचैतन्यकी परिणति उपजै विनशै है तातैं भिन्न किछू माने है, सो परिणामसिवाय परिणामी किछू न्यारा ही है नाहीं । बहुरि स्याद्वादी है सो यद्यपि ज्ञान नित्य है, तौऊ चैतन्यकी परिणति क्रमतैं उपजे विनशै है, ताके क्रमतैं ज्ञानकी अनित्यता माने है, वस्तुस्वभाव ऐसा ही है, यह अनित्यपणाका भंग है । अब कहे हैं, जो ऐसा अनेकांत है. सो जे अज्ञानकरि मोही मूढ हैं, तिनिकूं आत्मतत्त्वकूं ज्ञानमात्र साधता संता स्वयमेव अनुभवनमें आवे है ।

अनुष्टुप्छन्दः

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन् । आत्मतत्त्वमनेकांतः स्वयमेवानुभूयते ॥१६॥

अर्थ—ऐसे पूर्वोक्तप्रकार अनेकान्त है, सो जे अज्ञानकरि प्राणी मूढ भये हैं, तिनिकूं समझावनेकूं आत्मतत्त्वकूं ज्ञानमात्र साधता संता आपैआप अनुभवगोचर होय है ।

भावार्थ—अनादिकालके प्राणी स्वयमेव तथा एकांतवादका उपदेशकरि आत्मतत्त्वकूं ज्ञानका अनुभवनतैं अनेक प्रकार पक्षपातकरि आत्माका नाश करे है। तिनिकूं समझावनेकूं आत्माका स्वरूप ज्ञानमात्र ही कहिकरि, अर तिसकूं अनेकांतस्वरूप प्रकटकरि स्याद्वादतैं दिखाया है, सो यह असत्कल्पना नाहीं है। ज्ञानमात्र वस्तु अनेकधर्मसहित आपै आप अनुभवगोचर प्रत्यक्ष प्रतिभासमैं आवै है। सो प्रवीण पुरुष अपना आपाकी तरफ देखि अनुभवकरि देखो। ज्ञान तत्स्वरूप अतत्स्वरूप, एकस्वरूप अनेकस्वरूप, अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावतैं सत्स्वरूप, परके द्रव्यक्षेत्रकालभावतैं असत्स्वरूप, नित्यस्वरूप, अनित्यस्वरूप इत्यादि प्रत्यक्ष अनुभवगोचरकरि अनेकधर्म स्वरूप प्रतीतीमैं ल्यावो। यह ही सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा एकांत मानै मिथ्याज्ञान है, ऐसा जानना। अब अनेकांतकी महिमा करे हैं।

अनुष्टुप्छन्दः

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम्। अलङ्घ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७॥

अर्थ—याप्रकार तत्त्व कहिये वस्तूका यथार्थ स्वरूपकी व्यवस्थितिकरि अपने स्वरूपकूं आप ही स्थापन करता संता अनेकांत है सो व्यवस्थित भया निश्चत ठहऱ्या। सो कैसा है यह? अलंघ्य कहिये काहूकरि लंघ्या न जाय जीत्या न जाय ऐसा जिनदेवका शासन है, मत है, आज्ञा है।

भावार्थ—यह अनेकांत है सो ही निर्बाध जिनमत है। सो जैसैं वस्तूका स्वरूप है तैसैं स्थापता आपैआप सिद्ध भया है। असत्कल्पनाकरि वचनमात्र प्रलाप काहूने न कह्या है। निपुण पुरुषनिके विचारि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणकरि अनुभवकरि देखो। इहां कोई तर्क करे है, जो आत्मा अनेकांतमयी है, अनंतधर्मा है, तौऊ ताका ज्ञानमात्रपणाकरि नाम कौन अर्थी किया? ज्ञानमात्र कहनेमैं तौ अन्यधर्मनिका निषेध जान्या जाय है। ताका समाधान—जो इहां लक्षणकी प्रसिद्धिकरि लक्ष्यके प्रसिद्धिके अर्थी आत्माका ज्ञानमात्रपणाकरि नाम किया है, जो आत्मा ज्ञानमात्र है। सो ही कहे हैं, आत्माका ज्ञान लक्षण है। जातैं तिस आत्माका सो ज्ञान असाधारण गुण है।

यहु ज्ञान काहू अन्यद्रव्यमैं पाइए नाहीं, तिस कारणकरि इस ज्ञानलक्षणकी प्रसिद्धि करि, अर ताकरि लक्ष्य कहिये लखने योग्य जो आत्मा ताकी प्रसिद्धि होय है। लक्षण होय सो ज़ाकूं बाहुल्यपणैंकरि सर्व जाणे सो होय। अर लक्ष्य होय सो जाकूं प्रसिद्ध न जानिये सो होय। यातैं लक्षण कहनेतैं लक्ष्य प्रसिद्ध होय है। इहां फेरि तर्क करे है, जो इस लक्षगको प्रसिद्धिकरि कहा साध्य है? लक्ष्य ही साधने योग्य है, आत्माहीकूं साधना था। ताका समाधान—जो अप्रसिद्ध है लक्षण जाकै ऐसा अज्ञानी पुरुषकै लक्ष्यकी प्रसिद्धि नाहीं होय है। अज्ञानीकूं पहलै लक्षण दिखाइए तब लक्ष्यकूं ग्रहण करै। जातैं जाके लक्षण प्रसिद्ध होय ताहीके तिस लक्षणस्वरूप लक्ष्यकी प्रसिद्धि होय है।

फेरि पूछे है, जो वह लक्ष्य न्यारा ही कहा है; जो ज्ञानकी प्रसिद्धिकरि तिसतैं न्यारा ही सिद्ध होय है। ताका उत्तर—जो ज्ञानतैं न्यारा ही तौ लक्ष्य आत्मा नाहीं है। जातैं द्रव्यपणाकरि ज्ञानके अर आत्माके भेद नाहीं है--अभेद ही है। इहां फेरि पूछे है, जो ज्ञान आत्मा अभेदरूप है तौ लक्ष्यलक्षणका भेद काहेकरि कीया हुवा होय है? ताका उत्तर—जो प्रसिद्धकरि प्रसाध्यमानपणा है ताकरि किया भेद है। ज्ञान प्रसिद्ध है। जातैं ज्ञानमात्रके स्वसंवेदनकरि सिद्धपणा है। सर्व प्राणीनिके स्वसंवेदनरूप अनुभवमैं आवे है। तिस प्रसिद्धिकरि साध्या हुवा तिस ज्ञानतैं अविनाभावी जे अनंत धर्म तिनिका समुदायरूप अभिन्नप्रदेशरूप मूर्ति आत्मा है। तातैं ज्ञानमात्रविषैं अचलित निश्चल लगाई उकीरी जो दृष्टि ताकरि क्रमरूप अर अक्रमरूप—युगपद्रूप प्रवर्तता जो तिस ज्ञानतैं अविनाभूत अनंत धर्मका समूह जेता जो कछू लखिये है तेता सो कछू समस्त ही एक निश्चयकरि आत्मा है। इस ही प्रयोजनके अर्थी इस अध्यात्मप्रकरणविषैं इस आत्माका ज्ञानमात्रपणाकरि व्यपदेश किया है, नाम कह्या है। फेरि पूछे है, जो क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तें हैं अनंत धर्म जाविषैं ऐसा आत्माके ज्ञानमात्रपणा कैसा है? ताका समाधान—जो परस्पर व्यतिरिक्त कहिये न्यारा न्यारा स्वरूपकूं धारे जे अनंत धर्म तिनिका

समुदायरूप परिणाई जो एक ज्ञप्ति कहिये ज्ञानक्रिया तिसमात्र भावरूपकरि आपे आप स्वयमेव होनेतें आत्माकै ज्ञानमात्रपणा है। आत्माके जेते धर्म हैं तेते सर्व ही ज्ञानके परिणमनरूप हैं यद्यपि तिनिके लक्षणभेदकरि भेद है, तथापि प्रदेशभेद नाहीं है। तातैं एक असाधारण ज्ञानकूं कहते सर्व यामैं आय गये। याहीतैं इस आत्माका ज्ञानमात्र जो एकभाव ताके अंतःपातिनी कहिये याहीमैं आय पडनेवाली अनंतशक्ति उदय होय है उघडे है। तिनिकूं कईकनिकूं कहे हैं, तिनिका टीकामैं संस्कृत पाठ है सो लिखिकरि तिनिकी वचनिका लिखिये हैं।

आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।

अर्थ—प्रथम तौ जीवत्व नामा शक्ति है, सो कैसी है? आत्मद्रव्यकूं कारणभूत जो चैतन्यमात्रभाव सो ही भया भावप्राण ताका धारणा है लक्षण जाका ऐसी है।

अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः।

अर्थ—यह दूजी चिति शक्ति है सो कैसी है? अजडपणा कहिये जड नाहीं होय ऐसी चेतना जाका स्वरूप ऐसी है।

अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः।

अर्थ—यह तीसरी दर्शनक्रियारूप शक्ति है। कैसी है? अनाकार कहिये, जामैं ज्ञेयरूप आकारका विशेष नाहीं ऐसा जो दर्शनोपयोग सत्तामात्रपदार्थसूं उपयुक्त होना, तिसमयी है।

साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः।

अर्थ—यह चौथी ज्ञानशक्ति है, सो कैसी है? साकार कहिये ज्ञेयपदार्थका आकाररूप विशेषतैं जुडनेवाला उपयुक्त होनेवाला जो ज्ञान तिसमयी है।

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः।

अर्थ—यह पांचमो सुखशक्ति है। कैसी है? अनाकुलत्व कहिये आकुलतातें रहितपणा है लक्षण जाका ऐसी है।

स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः।

अर्थ—यह छठी वीर्यशक्ति है। कैसी है? अपना निज आत्मस्वरूप ताका निर्वर्तन कहिये निपजावना रचना तिसको सामर्थ्य तिसरूप है।

अखण्डितप्रतापस्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः।

अर्थ—यह सातमी प्रभुत्वशक्ति है। कैसी है? जो काहूकरि खंड्या न जाय ऐसा अखं-डित है प्रताप जाका ऐसा जो स्वाधीनपणा ताकरि शोभनीकपणा है लक्षण जाका ऐसी है।

सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः।

अर्थ—यह आठमी विभुत्व नामा शक्ति है। कैसी है? सर्वभावनिविषैं व्यापक जो एक भाव तिसरूप है जाका ज्ञान एक भाव सर्वभावनिविषैं व्यापे है।

विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः।

अर्थ—यह नवमी सर्वदर्शित्व नामा शक्ति है। कैसी है? विश्व कहिये समस्त पदार्थनिका समूहरूप जो लोकालोक ताका सामान्यभाव सत्तामात्र तिसके देखनेरूप परिणया है स्वरूप जाका ऐसा दर्शन कहिये देखना तिसमयी है।

विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्तिः।

अर्थ—विश्व कहिये समस्त पदार्थनिका समूहरूप लोकालोक, तिनिके समस्त जे विशेष भाव आकारनिसहित भाव, तिनिके जाननेरूप परिणया है स्वरूप जाका ऐसो ज्ञानमयी दशमी सर्वज्ञत्व नामा शक्ति है।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः।

अर्थ—अमूर्तिक आत्माका प्रदेशनिविषैं प्रकाशमान जो लोकालोकका आकारकरि मेचक कहिये अनेक आकाररूप दीखता उपयोग सो है लक्षण जाका ऐसी स्वच्छत्व नामा ग्यारमी शक्ति है। जैसी आरसाकी स्वच्छता प्रकाशरूप घटपटादि जामैं प्रकाशै, तैसी स्वच्छता है।

स्वयम्प्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः ।

अर्थ—स्वयमेव आपै आप प्रमाशमान विशद स्पष्ट स्वसंवित्ति कहिये अपना अनुभव, तिसमयी प्रकाश नामा शक्ति बारमी है ।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिकाऽसङ्कुचितविकासत्वशक्तिः ।

अर्थ—क्षेत्रकालकरि अमर्यादरूप जो चैतन्यका विलास तिसस्वरूप असंकुचितविकासत्व नामा तेरमी शक्ति है ।

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिकाऽकार्यकारणशक्तिः ।

अर्थ—अन्यकरि न करनेयोग्य अर अन्यका कारण नाहीं ऐसा एक द्रव्य तिस स्वरूप अकार्यकारणत्व नामा चौदमी शक्ति है ।

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामात्मकशक्तिः ।

अर्थ—पर अर आप है निमित्त जिनिका ऐसा ज्ञेयाकार अर ज्ञानाकार तिनिका ग्रहण करना अर ग्रहण करावना ऐसा स्वभाव है रूप जाका ऐसी परिणम्यपरिणामात्मक नामा पंदरमी शक्ति है । ज्ञेयाकार अर ज्ञानाकर आप ही परिणमे है यह शक्ति है ।

अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वस्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः ।

अर्थ—अन्यून कहिये घटता नाहीं, अर अनतिरिक्त कहिये बधता नाहीं ऐसें स्वरूपविषें नियतत्व कहिये नियमरूप जैसाका तैसा रहना तिसरूप त्यागोपादानशून्यत्व नामा सोलमी शक्ति है ।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः ।

अर्थ—षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप परिणया जो वस्तूका निजस्वरूपकी प्रतिष्ठाका कारण—विशिष्ठ अगुरुलघुत्वनामा गुण तिस स्वरूप अगुरुलघुत्व नामा सतरमी शक्ति है । इस षट्स्थान—पतितहानिवृद्धिका स्वरूप गोमटसारग्रंथतें जानना । यह ही अविभाग प्रतिच्छेदकी संख्यारूप जे

षट्स्थान तिनिकरि वस्तुस्वभावका घटना वधना वस्तूके स्वरूपकूं ठहरनेकूं कारण ऐसा ही कोई गुण है ताकूं अगुरुलघुगुण कहिये है। सो यह भी शक्ति आत्मामें है।

क्रमाक्रमवृत्तिवृत्तलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।

अर्थ—क्रमवृत्तिरूप पर्याय अक्रमवृत्तिरूप गुण तिनिका वर्तन सो है लक्षण जाका ऐसी उत्पादव्ययध्रुवत्व नामा अठारमी शक्ति है। क्रमवर्ती पर्याय तौ उत्पादव्ययरूप होय हैं। अर सहवर्ती गुण ध्रुवरूप रहे है।

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः।

अर्थ—द्रव्यके स्वभावभूत ऐसे ध्रौव्य व्यय उत्पाद तिनिकरि आलिंगित स्पर्शित जे समानरूप अर असमानरूप परिणाम तिनिस्वरूप एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति उगणीसमी है।

कर्मबन्धव्यपगमव्यञ्जितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिकाऽमूर्तत्वशक्तिः।

अर्थ—कर्मबंधका अभावकरि प्रकट व्यक्त भया जो स्वाभाविक स्पर्श रस गंध वर्णकरि शून्य रहित आत्माका प्रदेश तिसस्वरूप अमूर्तत्व नामा शक्ति वीसमी है।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिकाऽकर्तृत्वशक्तिः।

अर्थ—समस्तकर्मकरि किये ज्ञातापणामात्रतैं अतिरिक्त कहिये न्यारे परिणाम तिनिका करनेका उपरम कहिये अभाव तिसस्वरूप अकर्तृत्वशक्ति इकईसमी है। आत्मा ज्ञातापणासिवाय कर्मकरि किये परिणामका कर्ता नाहीं है, यह भी यामें शक्ति है।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिकाऽभोक्तृत्वशक्तिः।

अर्थ—सकलकर्मनिकरि कीया ज्ञातापणामात्रतैं अतिरिक्त न्यारे जे परिणाम तिनिका अनुभव कहिये भोगना तिसका अभावस्वरूप अभोक्तृत्व नामा बाईसमी शक्ति है। आत्मा ज्ञातापणासिवाय अन्य परिणाम कर्मके किये हैं, तिनिका भोक्ता नाहीं है यह भी यामें शक्ति है।

सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपानिष्क्रियत्वशक्तिः।

अर्थ—समस्तकर्मका अभावकरि प्रवर्त्या जो आत्माका प्रदेशका नैष्पन्द्य कहिये निश्चलपणा

तिसस्वरूप तेईसमी निष्क्रियत्वशक्ति है। सकलकर्मका अभाव होय तब प्रदेशनिका कंप मिटि जाय है। तातैं निष्क्रियत्वशक्ति भी यामैं है।

आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षणलक्षितकिञ्चिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थितलोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।

अर्थ—अनादिसंसारतैं लगाय संकोचविस्तारकरि चिन्हित अर किंचित् ऊन चरमशरीरपरिमाणकरि अवस्थित ऐसैं दोऊ भावकूं लिये लोकाकाशपरिमाणस्वरूप अवयवपणा है लक्षण जाका ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति चौवीसमी है। आत्माका लोकपरिमाण असंख्यात प्रदेश नियत है। सो संसार अवस्थामैं तौ संकुचे विस्तरे है। अर मोक्ष अवस्थामैं चरमशरीरसूं किछू घाटि अवस्थित है। ऐसी शक्ति है।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः।

अर्थ—सर्व ही शरीरनिमैं एकस्वरूपरूप रहना यह स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति पचीसमी है। शरीरके धर्मरूप न होना अपने धर्मनिमैं व्यापना यह शक्ति है।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—आप परके समानधर्म अर असमानधर्म अर समानासमान धर्म ऐसैं तीन प्रकारके भावधारणस्वरूप यह साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्व नामा शक्ति छवीसमी है।

विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणाऽनन्तधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—परस्पर भिन्नलक्षणस्वरूप जे अनंत स्वभाव तिनिकरि भावित मिल्या हुवा जो एक भाव सो है लक्षण जाका ऐसी अनंतधर्मत्वशक्ति सताईसमी है।

तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः।

अर्थ—तत्स्वरूप अर अतत्स्वरूप तिनिमयपणा है लक्षण जाका ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति अठाईसमी है।

तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः ।

अर्थ—तत्स्वरूप होना है स्वरूप जाका ऐसी तत्त्वशक्ति गुणतीसमी है । जो वस्तूका स्वभाव ताकूं तत्त्व कहिये । सो तत्त्वशक्ति है ।

अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः ।

अर्थ—तत्स्वरूप न होय रूप अतत्त्वशक्ति तीसमी है । जैसें चेतन जडरूप न होय यह शक्ति है ।

अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः ।

अर्थ—अनेक जे अपने पर्याय तिनिमैं व्यापक जो एक द्रव्य तिसमयी स्वरूप एकत्वशक्ति इकतीसमी है ।

एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपाऽनेकत्वशक्तिः

अर्थ—एकद्रव्यविषैं व्यापनेयोग्य जे अनेकपर्याय तिनिमय स्वरूप अनेकत्वशक्ति बत्तीसमी है ।

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः ।

अर्थ—भूत कहिये भये विद्यमान परिणामतें अवस्थित स्वरूप सो भावशक्ति है ये तेतीसमी है ।

शून्यावस्थत्वरूपाऽभावशक्तिः ।

अर्थ—जिस परिणामका अभाव है तिनिका शून्यपणातैं अवस्थितस्वरूप सो अभावशक्ति है । यह चौतीसमी है ।

भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान होसी जो पर्याय ताका व्यय होना तिसरूप भावाभावशक्ति पैतीसमी है ।

अभवत्पर्यायोदयरूपाऽभावभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान न होते पर्यायका उदय होना तिसरूप अभावभावशक्ति है ।

भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः ।

अर्थ—वर्तमान पर्यायका होना, तिसरूप रहना सो भावभावशक्ति है ।

अभवत्पर्यायाभवनरूपाऽभावाभावशक्तिः ।

अर्थ—न होते पर्यायका नाहीं होना तिसरूप अभावाभावशक्ति है यह अठतीसमी है ।

कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः ।

अर्थ—कारक जे कर्ता कर्म आदि तिनिविषैं अनुगत जो क्रिया तातैं रहित जो होनामात्रमयी सो भावशक्ति गुणतालीसमी है ।

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः ।

अर्थ—कारकके अनुगत अनुसार होना तिसरूप भावमयी क्रियाशक्ति चालीसमी है ।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः ।

अर्थ—पावनेमैं आवता है ऐसा सिद्धरूप बण्या बणाया जो भाव तिसमयी कर्मशक्ति इकतालीसमी है ।

भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृत्वशक्तिः ।

अर्थ—होवापणारूप जो सिद्धरूपभाव तिसके भाव कहिये होनेवाला तिसपणामयी कर्तृत्वशक्ति बियालीसमी है ।

भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः ।

अर्थ—होता जो भाव तिसका होना तिसविषैं अतिशयमान् जो साधक तिसपणामयी करणशक्ति तियालीसमी है ।

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः ।

अर्थ—आपहीकरि देनेमैं आवता जो भाव ताके प्राप्त होने योग्यपणा पावने योग्यपणामयी संप्रदानशक्ति चवालीसमी है ।

उत्पादव्ययालिङ्गितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः ।

अर्थ—उत्पादव्ययकरि स्पर्शित जो भाव ताका अपायके होतैं निरपाय कहिये नष्ट न होता ऐसा ध्रुवपणामयी अपादानशक्ति पैतालीसमी है ।

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः।

अर्थ---भाव्यमान कहिये भावनेमैं आवता जो भाव तिसका आधारपणामयी छियालीसमी अधिकरणशक्ति है।

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः।

अर्थ---अपना भाव तिस मात्र स्वस्वामिपणा तिस मयी संबंधशक्ति सैतालीसमी है। अपना भावनिका स्वामी आप है यह संबंध है ऐसै सैतालीस शक्तीके नाम लिये। इनकूं आदि लेकरि अनेकशक्तिकरि युक्त आत्मा है। तौऊ ज्ञानमात्रपणाकूं नाही छोडे है। अब इस अर्थका कलशरूप काव्य है।

वसन्ततिलकाछन्दः

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥१८॥

अर्थ—इति कहिये ऐसे ए सैतालीस शक्ति कहि तिनिकूं आदि लेकरि अनेक अपनी शक्तिनिकरि भलै प्रकार भया है तौऊ जो भाव ज्ञानमात्रमयीपणाकूं नाहीं छोडे है सो चैतन्य आत्मा द्रव्यपर्यायमयी इस लोकमैं वस्तु है। कैसा है? क्रमरूप अक्रमरूप विशेष वर्तनेवाले जे विवर्त कहिये परिणमनके विकाररूप अवस्था तिनिकरि चित्र कहिये नाना प्रकार होय प्रवर्ते है।

भावार्थ—कोई जानेगा कि ज्ञानमात्र कह्या सो आत्मा एकस्वरूप ही है। सो ऐसैं नाहीं है। वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायमयी है, अर चैतन्य भी वस्तु है, सो अनंतशक्तिकरि भरया है। सो क्रमरूप अर अक्रमरूप अनेक परिणामके विकारनिका समूहरूप अनेकाकार होय है। अर ज्ञान असाधारण भाव है ताकूं नाहीं छोडे है। सर्व अवस्था परिणामपर्यायी हैं ते ज्ञानमय हैं। अब इस अनेकस्वरूप वस्तूकूं जे जाने हैं श्रद्धे हैं, अनुभवे हैं तिनिके बडाईके अर्थ कलशरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

नैकान्तसङ्गतदृशां स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः ॥१९॥

अर्थ—वस्तु है सो स्वयमेव आपै आप अनेकान्तात्मक है ऐसें वस्तुतत्त्वकी व्यवस्थाकूं अनेकान्तविषैं संगत कहिये प्राप्तकरि जो दृष्टि ताकरि विलोकते देखते संते सत्पुरुष हैं ते स्याद्वादकी अधिकशुद्धीकूं अंगीकारकरिकै अर ज्ञानी होय हैं । कैसे भये संते ? जिनेश्वर देवका स्याद्वादन्याय ताकूं वादी उल्लंघन न करते हैं ।

भावार्थ-जे सत्पुरुष अनेकांतकूं लगाई दृष्टिकरि ऐसे अनेकांतरूप वस्तुतत्त्वकी मर्यादाकूं देखते हैं, ते स्याद्वादकी शुद्धिकूं पायकरि ज्ञानी होय हैं । अर जिनदेवके स्याद्वादन्यायकूं नाहीं उल्लंघे हैं । स्याद्वाद न्याय जेसें वस्तु तैसें कहे है । असत्कल्पना नाहीं करे है । ऐसें स्याद्वादका अधिकार पूर्ण किया ।

अब ज्ञानमात्रभावके उपाय अर उपेय ए दोऊ भाव विचारिये हैं । जातैं, उपाय तो जाकरि पावनेयोग्य भाव पाइये सो है । ताकूं मोक्षमार्ग भी कहिये । बहुरि उपेयभाव जो पावनेयोग्य आदरनेयोग्य भाव होय ताकूं कहिये । सो आत्माका शुद्ध सर्वकर्मनितैं रहित भाव है ताकूं मोक्ष भी कहिये । सो यद्यपि ज्ञानमात्र भाव एक है तथापि अनेकांतस्वरूप है । तामैं स्याद्वादतैं साध्या हूवा उपाय उपेय ए दोऊ भाव एकहीमैं बने हैं । सो विचारिये हैं ।

आत्मा जो वस्तु ताकै ज्ञानमात्रपणा होतैं भी उपाय—उपेयभाव विद्यमान है ही । जातैं ताकै एककै भी स्वयमेव आपैआप साधक अर सिद्ध इनि दोऊरूप परिणामीपणा है । आत्मा तो परिणामी है । अर साधकपणा अर सिद्धपणा ए दोऊ परिणाम हैं । तहां जो साधकरूप है सो तो उपाय है, बहुरि जो सिद्ध है सो उपेय है । यातैं इस आत्माकै अनादितैं लगाय मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्रनिकरि अपना स्वरूपतैं च्युत होनेतैं संसारमैं भ्रमताकै भले प्रकार निश्चल-

ग्रहण किया जो व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ताका पाक कहिये परिपाक पचना ताका प्रकर्ष कहिये बधनेकी परंपरा ताकरि अनुक्रमकरि अपना स्वरूपविषैं आपकूं आरोपण करताकै अर अन्तर्मग्न जो निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका विशेष तिसपणाकरि साधकरूप है। बहुरि तैसैं ही परमप्रकर्ष कहिये बधना ताकी मकरिका कहिये हद्द ताकूं अधिरूढ कहिये प्राप्त भया जो रत्नत्रय ताका अतिशयकरि प्रवर्त्या जो समस्त कर्मका नाश ताकरि प्रज्वलित दैदीप्यमान अर अस्खलित कहिये फेरि चिगे नाहीं ऐसा निर्मल स्वभावभाव तिसपणाकरि सिद्धरूप है। इनि साधक सिद्ध दोऊ भावनिकरि स्वयमेव आप परिणमता जो एक ज्ञानमात्र भाव सो ही उपायउपेयभावकूं साधे है।

भावार्थ—यह आत्मा अनादिकालतैं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रतैं संसारमैं भ्रमे है। सो जब व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकूं निश्चल अंगीकार करै, तब अनुक्रमतैं अपना स्वरूपका अनुभवनकी वृद्धि करता निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी पूर्णताकूं प्राप्त होय तेतैं तौ साधकरूप है। बहुरि निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी पूर्णताकरि समस्त कर्मका नाश होय तब साक्षात् मोक्ष होय। सो सिद्धरूप भाव है। सो इनि दोऊ भावरूप ज्ञानहीका परिणाम है। सो ही उपायोपेयभाव है। ऐसैं दोऊ ही भावनिविषैं ज्ञानमात्रकै अनन्यपणा है। अन्यपणा नाहीं है। तिसकरि नित्य निरंतर नाहीं चिगता जो एकवस्तु ताका निष्कम्प परिग्रहणतैं तिस ही काल मोक्षके अर्थी पुरुषनिकै जो भूमिका अनादिसंसारतैं लगाय कबहू जिनिनैं पाई नाहीं ऐसी भूमिकाका लाभ तिनिकूं या प्रकार होय है। तातैं ते सत्पुरुष तहां सदाकाल निश्चल भये संते आपहीतैं क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तैं जे अनेकांत कहिये अनेक धर्म तिनिकी मूर्ति भये संते साधकभावतैं है संभव कहिये उत्पत्ति जाकी ऐसी परमप्रकर्षकी हदरूप जो सिद्धि ताके भावके भाजन होय हैं। बहुरि जे इस भूमीकूं नाहीं पावै हैं "कैसी है भूमि? अंतर्नीत कहिये जामैं गर्भित भये अनेक धर्म ऐसा जो ज्ञानमात्र एक भाव तिसस्वरूप है" सो ऐसी भूमिकूं जे नाहीं पावै ते नित्य अज्ञानी होते

संते ज्ञानमात्रभावके अपना स्वरूपकरि नाहीं होना अर पररूपकरि होना देखते संते, श्रद्धान करते संते, जानते संते, आचरते संते मिथ्यादृष्टि भये संते, मिथ्याज्ञानी भये संते, मिथ्या चारित्री भये संते, अत्यंत उपायोपेयभावतैं भ्रष्ट भये संते संसारमैं भ्रमे ही हैं। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥२०॥

अर्थ—जे भव्यपुरुष कोई प्रकारकरि कैसे ही दूरि भया है मोह अज्ञान मिथ्यात्व जिनिका ऐसे हैं, ते ज्ञानमात्र निजभावमयी निश्चलभूमिकाकूं आश्रय करे हैं। ते पुरुष साधकपणाकूं अंगीकरकरि सिद्ध होय हैं। बहुरि जे मूढ मोही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं, ते इस भूमिकाकूं न पाय अर संसारमैं भ्रमे हैं।

अर्थ—जे पुरुष गुरूके उपदेशतैं तथा स्वयमेव काललब्धीकूं पाय मिथ्यात्वसूं रहित होय हैं, ते ज्ञानमात्र अपना स्वरूपकूं पाय साधक होय, सिद्ध होय हैं। अर ज्ञानमात्र आत्माकूं नाहीं पावे हैं, ते संसारमैं भ्रमे हैं। अब कहे हैं, जो वह भूमिका ऐसे पावे हैं।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष स्याद्वादन्यायका प्रवीणपणा अर निश्चलव्रतसमितिगुप्तिरूप संयम इनि दोऊनिकरि अपने ज्ञानस्वरूप आत्माविषैं उपयोग लगावता संता आत्माकूं निरंतर भावे है, सो ही पुरुष ज्ञानमय अर क्रियानयकरि इनि दोऊनिकेविषैं परस्पर भया जो तीव्र मैत्रीभाव तिसका पात्ररूप भया इस निजभावमयी भूमिकाकूं पावे है।

भावार्थ—जो ज्ञाननयहीकूं ग्रहणकरि क्रियानयकूं छोडे है सो प्रमादी स्वच्छन्दभया इस भूमिकूं न पावे है। बहुरि जो क्रियानयहीकूं ग्रहणकरि ज्ञाननयकूं नाहीं जाने है सो भी शुभ-कर्ममैं संतुष्ट भया इस निष्कर्मभूमिकाकूं नाहीं पावे है। बहुरि ज्ञान पाय निश्चल संयमकूं अंगी-कार करे हैं तिनिकै ज्ञाननयके अर क्रियानयके परस्पर अत्यंत मित्रता होय है ते इस भूमिकाकूं पावे हैं। इनि दोऊ नयनिका ग्रहणत्यागका रूप वा फल पंचास्तिकायग्रंथके अंतमैं कह्या है, तहांतैं जानना। अब कहे हैं, इस भूमिकाकूं पावे है सो ही आत्माकूं पावे है।

वसन्ततिलकाछन्दः

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२२॥

अर्थ—जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकार भूमिकाकूं पावे है तिस ही पुरुषके यह आत्मा उदय होय है। कैसा है आत्मा? चैतन्यका जो पिंड ताका निरर्गलविलास करनेवाला जो विकास प्रफुल्लित होना तिसरूप है हास कहिये फूलना जाका, बहुरि कैसा है? शुद्धप्रकाशका भर कहिये समूह ताकरि भला प्रभातसारिखा उदयरूप है। बहुरि कैसा है? आनंदकरि भलै प्रकार तिष्ठया सदा नाहीं चिगता है एकरूप जाका ऐसा है। बहुरि कैसा है? अचल है अर्चि कहिये ज्ञानरूप दीप्ति जाकी।

भावार्थ—इहां चित्पिंड इत्यादि विशेषणतैं तौ अनंतदर्शनका प्रकट होना जनाया है। बहुरि कैसा है? अचल है? शुद्धप्रकाश इत्यादि विशेषणतैं अनंतज्ञानका प्रकट होना जनाया है। अरु आनंदसुस्थित इत्यादि विशेषणकरि अनंत सुखका प्रकट होना जनाया है। अर अचलार्चि इस विशेषकरि अनंतवीर्यका प्रकट होना जनाया है। पूर्वोक्त भूमीके आश्रयतैं ऐसा आत्मा उदय हो है। अब कहे हैं, ऐसा ही आत्मस्वभाव हमारै प्रकट होऊ।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।

किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैर्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥२३॥

अर्थ—मोविषैं स्याद्वादकरि दीपित कहिये प्रकाशरूप भया है लहलाट करता तेजःपुंज जामैं, बहुरि शुद्धस्वभावकी है महिमा जामैं ऐसा ज्ञानप्रकाश उदय होतैं बन्धमोक्षके मार्ग पटकनेवाले जे अन्यभाव तिनिकरि कहा साध्य है ? मेरैं तो केवल अनंतचतुष्टयरूप यह अपना स्वभाव सो निरंतर उदयरूप भया स्फुरायमान होऊ ।

भावार्थ—स्याद्वादकरि यथार्थ आत्मज्ञान भये पीछे याका फल पूर्ण आत्माका प्रकट होना है । सो मोक्षका इच्छक पुरुष यह ही प्रार्थना करे है, जो मेरा पूर्णस्वभाव आत्मा उदय होऊ । अन्यभाव बंधमोक्षमार्गको कथारूप हैं, तिनिकरि कहा प्रयोजन है ? अब कहे हैं, जो नयनिकरि आत्मा साधिये है, परंतु नयहीपरि दृष्टि रहै तौ नयनिके परस्पर विरोध भी है । तातैं मैं नयनिकूं अविरोधकरि आत्माकूं अनुभऊं हौं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः ।

तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेकमेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२४॥

अर्थ—यह आत्मा है सो चित्र कहिये अनेक प्रकार जे अपनी शक्ति तिनिके समुदायमय है । सो नयनिकी दृष्टिकरि भेदरूप किया हुवा तत्काल खंडखंडरूप होय नाशकूं प्राप्त होय है । तातैं मैं मेरा आत्माकूं ऐसैं अनुभवूं हौं, जो मै चैतन्यमात्र मह वस्तू हौं । सो कैसा हौं ? नाहीं निराकरण कीये हैं खंड जामैं तौऊ खंड भेदरहित अखंड हौं, एक हौं, बहुरि एकांतशांतरूप हौं । जामैं कर्मका उदयका लेश नाहीं ऐसा शांतभावमय हौं । अर अचल हौं, कर्मका उदयका चलाया चलूं नाहीं हौं ।

भावार्थ—आत्मामैं अनेकशक्ति हैं, अर एक एक शक्तिका ग्राहक एक एक नय है, सो नयनिकी एकांत दृष्टिकरि ही देखिये तौ आत्माका खंड खंड होय नाश होय जाय। तातैं स्याद्वादी नयनिका विरोध मेटि चैतन्यमात्र वस्तु अनेकशक्तिसमूहरूप सामान्यविशेषस्वरूप सर्वशक्तिमय एकज्ञानमात्र अनुभव करे है। ऐसा वस्तूका स्वरूप है तामैं विरोध नाहीं। अब अखंड आत्माका ऐसैं अनुभव करे सो कहे हैं।

न द्रव्येण खण्डयामि न क्षेत्रेण खण्डयामि न कालेन खण्डयामि।
न भावेन खण्डयामि सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रो भावोऽस्मि ॥

अर्थ—ज्ञानी शुद्ध नयका आलम्बन लेकरि ऐसैं अनुभवै, जो मैं मेरे शुद्धात्मस्वरूपकूं द्रव्यकरि नाहीं खंडू हौं भेद नाहीं देखूं हौं। तथा क्षेत्रकरि नाहीं खंडू हौं। तथा कालकरि नाहीं खंडूं हौं। तथा भावकरि नाहीं खंडू हौं। भलै प्रकार विशुद्ध निर्मल एक ज्ञानमय भाव हौं।

भावार्थ—शुद्धनयकरि देखिये तब द्रव्यक्षेत्रकालभावकरि शुद्ध चैतन्यमात्र भावविषैं किछू भी भेद नाहीं दीखे है। तातैं ज्ञानी अभेदज्ञानस्वरूप अनुभवमें भेद नाहीं करे है। अब कहे हैं, जो ज्ञान तौ मैं हौं, ज्ञेय ज्ञेय है।

शालिनीछन्दः

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव। ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः॥२५॥

अर्थ—जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हौं सो ज्ञेयका ज्ञानमात्र ही नाहीं जानना। तौ यह ज्ञानमात्रभाव कैसा जानना? ज्ञेयनिके आकार जे ज्ञानके कल्लोल तिनिकूं विलगता ऐसा ज्ञान सो ही ज्ञान, सो ही ज्ञेय, सो ही ज्ञाता ऐसैं ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता इनि तीन भावनिसहित वस्तुमात्र जानना।

भावार्थ—अनुभव करते ज्ञानमात्र अनुभवै। तब बाह्य ज्ञेय तौ न्यारे ही हैं ज्ञानमैं पैठे नाहीं बहुरि ज्ञेयनिके आकारकी झलक ज्ञानमैं है। सो ज्ञान भी ज्ञेयाकाररूप दीखे हैं, ए ज्ञानके

कल्लोल हैं। सो ऐसा भी ज्ञानका स्वरूप है। अर आपकरि आप जानने योग्य है तातैं ज्ञेयरूप भी है। अर आप ही आपकूं जाननेवाला है यातैं ज्ञाता भी है। ऐसैं तीनूं भावस्वरूप ज्ञान एक है। याहीतैं सामान्यविशेषरूप वस्तु कहिये तिसमात्र ही ज्ञानमात्र कहिये है। सो अनुभव करनेवाला ऐसैं ही अनुभव करै, जो ऐसा ज्ञानभाव यह मैं हौं। अब कहे हैं, अनुभवकी दशामैं अनेकरूप दीखे हैं। तौऊ यथार्थज्ञाता निर्मल ज्ञानकूं भूले नाहीं है।

पृथ्वीछन्दः

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२६॥

अर्थ—अनुभवन करनेवाला कहे है। जो मेरा आत्मतत्त्व है सो कहूं तो मेचक लसे है अनेकाकार दीखे है। वहुरि कहूं अमेचक कहिये अनेकाकाररहित शुद्ध एकाकार दीखे है। वहुरि कहूं मेचकामेचक कहिये दोऊ रूप दीखे है। तौऊ जे निर्मलबुद्धि हैं तिनिका मनकूं भ्रमरूप नाहीं करे है। जातैं कैसा है? परस्पर भलै प्रकार मिलो जे प्रकट अनेक शक्ति तिनिका समूहस्वरूप स्फुरायमान होता है।

भावार्थ—आत्मतत्त्व है तो अनेकशक्तीकूं लिये है। तातैं कोई अवस्थामें तो अनेक आकार कर्म उदयके निमित्तकरि अनुभवमैं आवे हैं। वहुरि कोई अवस्थामैं शुद्ध एकाकार अनुभवमैं आवे हैं। वहुरि कोई अवस्थामैं शुद्धाशुद्धरूप अनुभवमें आवे है। तौऊ यथार्थज्ञानी स्याद्वादके बलकरि भ्रमरूप न होय है। जैसा है तैसा माने है। ज्ञानमात्रसूं च्युत न होय है। अब कहे हैं, जो अनेकरूपकूं धारता यह आत्माका अद्भुत आश्चर्यकारी विभव है।

पृथ्वीछन्दः

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाऽप्येकतामितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजैरहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥२७॥

अर्थ—अहो ! बडा आश्चर्यकारी ! सो यह आत्माका स्वाभाविक अद्भुत विभव है । जो इतः कहिये एकतरफ देखिये तौ अनेकताकूं धारता है, यह पर्यायदृष्टि है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ सदा ही एकताकूं धारता है, यह द्रव्यदृष्टि है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ क्षणभंगुर है, यह भी क्रमभावी पर्यायदृष्टि है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ ध्रुव दीखे है, यह सहभावी गुणदृष्टि है । जातैं सदा उदयरूप दीखे है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ परमविस्तारस्वरूप दीखे है, यह ज्ञान अपेक्षा सर्वगतदृष्टि है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ अपने प्रदेशनिहीकरि धारिये है, यह प्रदेशनिकी अपेक्षादृष्टि है । ऐसा आश्चर्यरूप विभवकूं आत्मा धारे है ।

भावार्थ–यह द्रव्यपर्यायात्मक अनंतधर्मा वस्तूका स्वभाव है । सो जे पूर्वैं अज्ञानी है, तिनिके ज्ञानमैं आश्चर्य उपजावे है । सो असंभवती वार्ता है । बहुरि ज्ञानीनिके वस्तुस्वभावमैं आश्चर्य नाहीं है । तौऊ अद्भुत परम आनंद ऐसा होय है, ऐसा कबहू पूर्वैं न भया । यह आश्चर्य भी उपजे है । फेरि इस ही अर्थरूप काव्य है ।

पृथ्वीछन्दः

कषायकलिरेकतस्स्खलति शान्तिरस्त्येकतो भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः ।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः स्वभावमहिमाऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥

अर्थ—आत्माका स्वभावका महिमा है सो अद्भुततैं अद्भुत विजयरूप प्रवर्तै है । काहूकरि बाध्या न जाय है । कैसा है ? एकतरफ देखिये तौ कषायनिका कलेश दीखे है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ कषायनिका उपशमरूप शांत भाव है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ संसारसंबंधी पीडा दीखे है । बहुरि एकतरफ देखिये तो संसारका अभावरूप मुक्ति भी स्पर्शे है । बहुरि एकतरफ देखिये तौ केवल एक चैतन्यमात्र ही शोभे है । ऐसैं अद्भुततैं अद्भुत महिमा है ।

भावार्थ–इहां भी पहलै काव्यके भावार्थरूप ही जानना । यह अन्यवादी सुणि बढा आश्चर्य करे हैं । तिनिके चित्तमैं विरुद्ध भासे, सो समाहि शके नाहीं । अर तिनिकै कदाचित् श्रद्धा

आये तौ प्रथम अवस्थामैं बडा अद्भुत दीखै, जो हमने अनादिकाल यौं ही खोया। यह जिन-वचन बडे उपकारी है, वस्तूका स्वरूप यथार्थ जनावे है। ऐसैं आश्चर्यकरि श्रद्धान करे हैं। आगै टीकाकार इस सर्व विशुद्धज्ञानका अधिकार पूर्ण करे हैं। ताके अंतमङ्गलके अर्थी इस चिच्चमत्कारहीकूं सर्वोत्कृष्ट कहे हैं।

मालिनीछन्दः

जयति सहजतेजःपुञ्जमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतात्त्वोपलम्भप्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥२९॥

अर्थ—यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार है सो जयवंत प्रवर्तें है। काहूकरि बाध्या न जाय ऐसैं सर्वोत्कृष्ट होय प्रवर्तें है। कैसा हे? अपना स्वभावस्वरूप जो तेजः प्रकाशका पुंज ताविषैं मग्न होते जे तीन लोकके पदार्थ तिनिकरि होते दीखते हैं अनेक विकल्प भेद जामैं ऐसा है। तौऊ एकस्वरूप ही है। भावार्थ--केवलज्ञानमैं सर्व पदार्थ झलके हैं। ते अनेक ज्ञेयाकाररूप दीखे हैं। तौऊ चैतन्यरूप ज्ञानाकारकी दृष्टीमैं एक ही स्वरूप है। बहुरि कैसा है? अपना निज-रसकरि पूर्ण ऐसा नाहीं छिद्या है तत्त्वस्वरूपका पावना जाकै। भावार्थ--प्रतिपक्षी कर्मका अभाव भया तातैं नाहीं पाया स्वभावका अभाव जाकै ऐसा है। बहुरि कैसा है? प्रसभ कहिये प्रकट बलात्कारैं नियमरूप है दीप्ति जाकी। अपना अनंतवीर्यतैं निष्कंप तिष्ठे है ऐसा चिच्चमत्कार जयवन्त है। इहां जयवन्त कहनेमैं सर्वोत्कर्षकरि वर्तना कह्या, सो यह ही मंगल है। आगै टीकाकार अपना नामकूं प्रकट करते पूर्वोक्त आत्माहीकूं आशीर्वाद करे हैं।

अविचलितचिदात्मन्यात्मनाऽऽत्मानमात्मन्यनवरतनिमग्नं धारयत् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ताज्ज्वलतु विमलपूर्णं निस्सपत्नस्वभावम् ॥३०॥

अर्थ—यह अमृतचन्दज्योति कहिये जामैं मरण नाहीं तथा जाकरि अन्यकै मरण नाहीं सो अमृत, तथा अत्यंत स्वादुरूप मिष्ट होय ताकूं लोक रूढिकरि अमृत कहे हैं। ऐसा अमृतमयी जो चन्द्रमासारिखा ज्योति प्रकाशस्वरूप ज्ञान, प्रकाशरूप आत्मा, सो उदयकूं प्राप्त भया। सो यह

समंतात् कहिये सर्व तरफ सर्वक्षेत्रकालमैं, ज्वलतु कहिये देदीप्यमान प्रकाशरूप रहौ। कैसा है ? अविचलित कहिये निश्चल जो चित् कहिये चेतना सो है स्वरूप जाका ऐसा जो अपना आत्मा, ताविषैं आपहीकरि अपने आत्माकूं निरंतर मग्न हूवा धारता संता है। पाया स्वभावकूं कबहू नाहीं छोडता है। बहुरि कैसा है ? ध्वस्त कहिये नाशकूं प्राप्त भया है मोह जाका अज्ञान अंधकारकूं दूरि कीया है। बहुरि निस्सपत्न कहिये प्रतिप्रक्षी कर्मकरि रहित ऐसा है स्वभाव जाका। बहुरि कैसा है ? निर्मल है अर पूर्ण है।

भावार्थ—इहां आत्माकूं अमृतचंदज्योति कह्या, सो यह लुप्तोपमा अलंकारकरि कह्या जानना। जातैं, अमृतचंद्रवत् ज्योति ऐसा समासविषैं वत् शब्दका लोप होय है तब अमृतचंद्रज्योति कहिये। तथा वत् शब्द न करिये तब अमृतचंद्ररूपज्योति ऐसा कहिये। तब भेदरूपक अलंकार है। तथा अमृतचन्द्रज्योति ऐसा ही आत्माका नाम कहिये तब अभेदरूपक अलंकार हो है। अर याके विशेषण हैं तिनिकरि चंद्रमातैं व्यतिरेक भी है। जातैं ध्वस्तमोह विशेषण तौ अज्ञान अंधकार दूरि होना जणावे है। अर निर्मल पूर्ण विशेषण लांछनरहितपणा पूर्णपणा जणावे है। अर निःसपत्नस्वभाव विशेषण राहुबिंबतैं तथा वादला आदिकरि आच्छादित न होना जणावे है। समंतात् ज्वलन है सो सर्वक्षेत्र सर्वकालमैं प्रतापरूप प्रकाश करना जणावे है। चंद्रमा ऐसा नाहीं। बहुरि अमृतचंद्र ऐसा टीकाकार अपने नाम भी जणाया है। बहुरि याका समास पलटिकरि अर्थ कीजिये तब अनेक अर्थ होय हैं। सो यथासंभव जानने।

ऐसैं समयसारग्रन्थकी आत्मख्याति नाम टीकाकी वचनिकाविषैं सर्वविशुद्धज्ञानका प्रवेश नामा नवमां अधिकार पूर्ण भया ॥९॥

इहां तांई गाथा तौ ४१४ भई। अर काव्य २७५ भये। श्लोकसंख्या १२००० है।

सवैया—सुखविशुद्धज्ञानरूप सदा चिदानंद करता न भोगता न परद्रव्यभावको।
मूरतअमूरत जे आनद्रव्य लोकमांहि ते भी ज्ञानरूप नाही न्यारे न अभावको ॥

यहै जानि ज्ञानी जीव आपकूं भजै सदीव ज्ञानरूप सुखतूप आन न लगावको ।
कर्म कर्मफलरूप चेतनाकूं दूरि टारि ज्ञानचेतना अभ्यास करे शुद्ध धावको ॥१॥

अब संस्कृतटीका पूर्ण करि अमृतचंद्र आचार्य कहे हैं, जो आत्मामैं परसंयोगतैं अनेक भाव होय हैं तिनिका वर्णन ग्रंथनिमें होय है, सो सर्व ही वर्णन इस विज्ञानघनमैं मग्न भये किछू भी नाहीं दीखे हैं ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः

यस्मात् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं । रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्नक्रियायाः फलं । तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल ॥२१॥

अर्थ—यस्मात् कहिये जिसपर संयोगरूप बंधपर्याय जनित अज्ञानतैं प्रथम तौ अपना अर परका द्वैतरूप एकभाव भया, बहुरि जिस द्वैतपणातैं अपने स्वरूपविषैं अंतर भया, बंधपर्यायहीकूं आपा जान्या, बहुरि तिस अंतर पडनेतैं रागद्वेषका परिग्रहण भया, तिसके होतै क्रिया अर कर्ता कर्म आदि कारकनिकरि भेद पड्या, बहुरि तिस क्रिया कारकके भेदकरि आत्माकी अनुभूति है, सो क्रियाका समस्तफलकूं भोगती संती खेदखिन्न भई सो ऐसा अज्ञान है, सो अब ज्ञान भया । तब तिस विज्ञानघनके समूहविषैं मग्न होय गया सो अब याकूं देखिये तौ किछू भी नाहीं है । यह प्रकट अनुभवमैं आवे है ।

भावार्थ—अज्ञान है सो परसंयोगतैं ज्ञान ही अज्ञानरूप परिणया था । कछू दूजा तौ वस्तु था नाहीं । सो अब ज्ञानरूप परिणम्या तब किछू भी न रह्या । तब इस अज्ञानके निमित्ततैं राग, द्वेष, कर्ता, कर्म, सुख, दुःख, आदि भाव होय थे, ते भी विलाये गये । एक ज्ञान ही ज्ञान रहि गया । तीन कालवर्ती अपना परका सर्व भावनिकूं आत्मा ज्ञाता द्रष्टा हुवा देखवो करौ । आगै अमृतचंद्र आचार्य इस ग्रंथ करनेका अभिमानरूप कषायकूं दूरि करता संता यथार्थ कहे हैं ।

वसन्ततिलकाछन्दः

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः । स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥३२॥

अर्थ—यह समय कहिये आत्मवस्तु तथा समय कहिये समयप्राभृत नाम शास्त्र, ताकी व्याख्या कहिये व्याख्यान तथा यह आत्मख्याति नाम टीका, सो शब्दनिकरि करी है। कैसे हैं शब्द? अपनी शक्तिहीकरि संसूचित कहिये भलै प्रकार कह्या है वस्तूका तत्त्व कहिये यथार्थस्वरूप कहिये निज आत्मरूप अमूर्तिक ज्ञानमात्र, तिसविषैं गुप्त होय प्रवेशकरि रह्या है।

भावार्थ-शब्द है सो तौ पुद्गल है। सो पुरुषके निमित्ततैं वर्णपदवाक्यरूप परिणमैं है सो इनिमैं वस्तूका स्वरूपके कहनेकी शक्ति स्वयमेव है। जातैं शब्दका अर अर्थका वाच्यवाचक संबंध है; सो द्रव्यश्रुतकी रचना शब्दहीकै करना संभवै है। अर आत्मा है सो अमूर्तिक है, अर ज्ञानस्वरूप है, तातैं मूर्तिक पुद्गलकी रचना कैसैं करै? तातैं आचार्यनैं ऐसा कह्या है, सो यह समयप्राभृतकी टीका शब्दनिकरि करी है। मैं मेरा स्वरूपमैं लीन हौं। मेरा कर्तव्य यामैं नाहीं है। ऐसैं कहनेमैं उद्धतपणाका परिहार भी आवे है। अर निमित्तनैमित्तिकव्यवहारकरि ऐसा कहिये ही है, जो विवक्षितकार्य फलाने पुरुषनै किया इस न्यायकरि अमृतचंद्र आचार्यकृत यह टीका है हो। इस ही न्यायकरि पढनेसुननेवालेनिकूं तिनिका उपकार भी मानना युक्त है। जातैं याकै पढने सुननेकरि परमार्थ आत्माका स्वरूप जान्या जाय है। तिसका श्रद्धान आचरण भये मिथ्या ज्ञान श्रद्धान आचरण दूरि होय है। परंपरा मोक्षकी प्राप्ति होय है। याका निरंतर अभ्यास करना योग्य है।

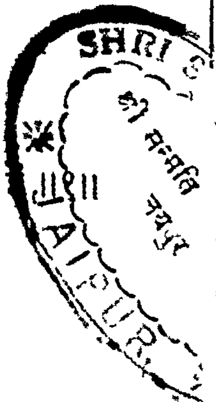
ऐसैं आत्मख्याति नामा समयसारग्रंथकी टीका समाप्त भई।

सवईया इकतीसा

कुंदकुंदमुनि कियो गाथाबंध प्राकृत है प्राभृतसमय शुद्ध आतम दिखावनूं।
सुधाचंद्रसूरि करि संस्कृतटीका वर आत्मख्याति नाम यथातथ्य मन भावनूं॥
देशकी वचनिकामैं लिखि जयचंद्र पढै संक्षेप अर्थ अल्पबुद्धिकूं पावनूं।
पढो सुनूं मन लाय शुद्ध आतमा लखाय ज्ञानरूप गहौ चिदानंद दरसावनूं॥१॥

दोहा----समयसार अविकारका वर्णन कर्ण सुनंत। द्रव्यभावनोकर्म तजि आतमतत्त्व लखंत॥२॥

ऐसैं इस समयसारप्राभृतनामा ग्रंथकी आत्मख्याति नामा संस्कृतटीकाकी देशभाषामय वचनिका लिखी है। सो यह ताका संक्षेप भावार्थरूपसा अर्थ लिख्या है। संस्कृतटीकामैं न्यायतैं सिद्ध भये प्रयोग हैं। तिनिका विस्तार करिये तब अनुमानप्रमाणके प्रयोग प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमनरूप हैं, तिनिका स्पष्टकरि व्याख्यान लिखियें तौ ग्रंथ बहुत बधे। तथा आयु बुद्धि बल स्थिरता अल्पतातैं जेता बण्या तेता संक्षेपकरि प्रयोजन मात्र लिख्या है। ताकूं बाँचिकरि भव्यजीव पदार्थ समझियो। अर किछू अर्थमैं हीनाधिक होय तौ बुद्धिमान् मूलग्रंथतैं जैसैं होय तैसैं समझियो। कालदोषतैं इनि ग्रंथनिकी गुरुसम्प्रदायका व्युच्छेद होय गया है। तातैं जेता बणै तेता अभ्यास होय है। जैनमत स्याद्वादरूप है, सो जे जिनमतकी आज्ञा माने हैं तिनिके विपरीत श्रद्धान न होय है। कहूं अर्थका अन्यथा समझना भी होय तौ विशेषबुद्धिमान्का निमित्त मिलै यथार्थ होय है। जिनमतके श्रद्धानी हठग्राही नाहीं होय हैं ऐसैं जानना।। अंतमंगलके अर्थ परमेष्ठीकूं नमस्कार करि ग्रंथ समाप्त करिये हैं।



छप्पय----मंगल श्रीअरहंत घातियाकर्म निवारे। मंगल सिद्ध महंत कर्म आठूं परजारे।
आचारिज उवज्झाय मुनी मंगलमय सारे। दीक्षा शिक्षा देय भव्यजीवनिकूं तारे।
अठवीस मूलगुण धार जे सर्वसाधु अणगार हैं। मैं नमूं पंचगुरुचरणकूं मंगल हेतु करार है॥१॥
जैपूरनगरमांहि तेरापन्थशैली बडी बडे बडे गुनी जहां पढै ग्रंथ सार हैं।
जयचन्द्र नाम मैं हूं तिनिमैं अभ्यास किछू कियो बुद्धिसारू धर्मरागतैं विचारे है॥
समयसारग्रंथ ताकी देशके वचनरूप भाषा करि पढो सुनूं करो निरधार है।
आपापर भेद जानि हेय त्यागि उपादेय गहो शुद्ध आतमकूं यहै बात सार है॥२॥
दोहा—संवतसर विक्रम तणूं अष्टादश शत ओर। चौसठि कातिक वदि दशैं पूरण ग्रंथ सु ठौर॥३॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत समयप्राभृत नामा प्राकृत गाथाबद्धग्रन्थकी अमृतचन्द्राचार्यकृत आत्मख्याति नामा संस्कृतटीकाके अनुसार यह संक्षेपभावार्थमात्र देशभाषामयवचनिका संपूर्ण भई।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत

समयप्राभृतकी

श्रीमदाचार्य अमृतचंद्र सूरीकृत संस्कृत टीका तथा

पण्डित श्रीजयचन्द्रकृत

आत्मख्याति-वचनिका समाप्त.